विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५० | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | अक्टूबर, सन् १९३९ ई० | संख्या १

वायु-आक्रमण सम्बन्धी सावधानियाँ अथवा हवाई-हमलोंसे बन्दोबस्त

[श्री हरिश्चन्द्र गुप्त एम० एस-सी]

वायुयानोंके आविष्कार और वायु-विद्याकी अनुपम उन्नतिके कारण अब युद्ध-प्रणालीमें समूल परिवर्तन हो गया है। पहिले जैसे युद्ध सीमा-प्रांतके देशों या राष्ट्रकी सरहद पर ही सीमित नहीं रहता; किन्तु वायु-मार्ग द्वारा देशके केन्द्र और सीमा सभी स्थानों पर आक्रमण एक साथ ही होता है। देशसे सभी निवासियों का जीवन संकटमें रहता हैं। और युद्धमें वायु-मार्गसे होनेके कारण युद्धकी भीषणता कहीं अधिक बढ़ जाती है। इस लेखमें हम वायु द्वारा आक्रमणोंसे रक्षा करनेके लिये नागरिक जनता किन-किन युक्तियों और उपायोंको काममें ला सकती है। केवल इसी प्रश्न पर विचार करेंगे। इन साधनों को एक विशेष नाम 'वायु-आक्रमण संबन्धी सावधानियाँ संक्षेपमें वा० आ० सा० देंगे।

वायु-आक्रमण सम्बन्धी सावधानियाँ राष्ट्रीय-रक्षाका निष्क्रिय अंग है, इसका सक्रिय अंग थल और हवाई आक्रमणोंका क्रियात्मक रूपसे सामना करना है। वा० आ० सा० का मुख्य उद्देश्य युद्धमें प्रयोग न किये जाने वाले साधनोंका इस रूपमें प्रयुक्त करना है, जिससे कि वायु-आक्रमणके परिणाम इतने भयंकर न हों, योद्धा और अधिक आवश्यक कार्योंके लिये बाकी रह जावें और जनतामें आक्रमणका सामना करनेकी धार्मिक धारणा बलवती हो उठे। यह सब इसलिये आवश्यक है क्योंकि हम जानते हैं शत्रुका ध्येय जो कुछ हम बा० आ० सा० द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं उस सबका निराकरण करना होता है अर्थात् नागरिक जनता और धन-सम्पत्ति को (मौके दार)| यौक्तिक हानि पहुँचाना, और उनमें हलचल, बेचैनी और पुरुषार्थ-हीनता पैदा कर देना। भावी युद्धमें नगर-केन्द्र पर बम्ब-वर्षा कर अब शत्रु पहिले युद्धोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करेगा। वायु-आक्रमणोंकी हानि केन्द्रीय नगरोंमें रणभूमि की अपेक्षा कहीं अधिक महसूस होती है क्योंकि रणभूमि-में पहलेसे ही इन सब आक्रमणों का सामना करनेके

लिये तैयारियाँ रहती है। लेकिन नगर-केन्द्रसे तो भयभीत जनता ही जाकर सम्मिलित हो जाती है और नगर भी पहिलेसे इतना सुरक्षित नहीं किया रहता, और न उसके लिये अभी इतने साधन-निदान ही हैं। रण भूमिमें सभी प्रकारसे सावधानी कर ली जाती है, खाइयाँ खोद ली जाती हैं, कंकरीटकी पक्की दीवारें बना ली जाती हैं और गहरे गड्ढे खोद लिये जाते हैं। यह सब कुछ नगरों में कहाँ?

विशेषज्ञों का अनुमान है कि यदि विपक्षी दलोंकी सामर्थ्य लगभग बराबर हो तो वायुयानों द्वारा किसी पक्ष को अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करनेमें कोई विशेष सहायता नहीं मिलती, क्योंकि दोनों पक्ष वायु-आक्रमणों-के लिये पहिलेसे ही प्रबंध कर लेते हैं। स्पेनमें एब्रोकी लड़ाईमें लगातार वायुसे बम्ब वर्षा करनेपर भी साम्यवादी (लाल दल) अपने पहाड़ों परके सुरक्षित स्थानोंसे न हिले; क्योंकि जैसे ही बम्ब वर्षा होती वे तुरंत गुफाओंमें खाइयोंमें या गड्ढोंमें घुस जाते। यदि धनकी तरफसे कमी न हो तो नगरोंमें भी ये सब साधन हो सकते हैं, लेकिन इतना रुपया कहाँ?

अभी बा० आ० सा०की बात केवल सैद्धान्तिक ही है, प्रायोगिक रूपमें इस पर अमल नहीं हुआ, क्योंकि अवसर ही नहीं पड़ा। अबीसीनियामें, चीन और स्पेनपर छोटे-से रूपमें जिन देशों ने वायु-आक्रमण किये वे इनकी अपेक्षा वायु-बल में कहीं अधिक बढ़े हुए थे। बराबर वायुबलके दो देशोंमें तो अभी युद्ध हुआ ही नहीं। इसलिये वायु-युद्ध का शास्त्र-ज्ञान उस शिखरको नहीं पहुँचा जिससे कि आगामी महायुद्धका प्रलयकारी भीषण हत्यकाण्ड टक्कर खायेगा। अभी तक मृत्युके विकट दूतों (विष, गैस, महामारी आदि भयावह बीमारियोंके बैक्टीरिया आदि) को किसी युद्धमें अपना ताण्डव-नृत्य खेलने का अवसर नहीं मिला। गत महायुद्ध में लीथल (Lethal) गैस अवश्य प्रयोगमें आई थी लेकिन केवल रणक्षेत्र परकी सेनाके ही प्रति न! तब भी वायु-आक्रमणों की भीषण सम्भावनाओं का पर्याप्त ज्ञान है। अतः बा० आ० सा० का संक्षेप विवरण नीचे दिया जाता है।

सक्रिय बा० आ० सा० के मुख्य तीन अंग हैं :—

१—वायुमें विपरीत—आक्रमण,

२—वायुयानों को नष्ट करनेके लिये तोप-आयोजन,

३—बैलून-चक्र (लाइन) द्वारा रक्षा।

विपरीत-आक्रमण:—इसके लिये रक्षा-सेनामें कुछ वायुयान पीछा करने वाले और कुछ लड़ने वाले होने चाहिये जो शत्रुके आक्रमण-कारी वायुयानों और उनके साथ-साथ चलने वाले और जहाज़ोंका सामना कर सकें, और उनके निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचनेसे पहिले जितने भी उनमेंसे गिराये जा सकें, गिरादें। पहिले यह विचार था कि यदि आक्रमणकी पहिलेसे सूचना मिल जाय तो ऐसा करना सम्भव होगा। लेकिन अब वायुयानोंकी तीव्र गति, उनके दूरी पर बम्ब फेंक देनेकी शक्ति, स्वरक्षाके लिये शास्त्रास्त्र, एकाएकी और बिना ध्वनि किये चुपचाप आक्रमण करनेकी कुशलता आदिमें इतनी उन्नति हो गई है कि पूर्व सूचनाका मिलना केवल दुराशामात्र है। यह बात तो सच है कि वैद्युतिक ध्वनि-सूचक-यंत्रोंमें अत्यन्त सुधार हो गया है; लेकिन जहाज़ काफ़ी ऊँचे चढ़ जायँ और अपने इञ्जनोंको बंद कर दें (जैसा कि इटलीके लोगोंने मजोरकर देशसे कैटोलोनिया पर आक्रमण करते समय किया था और जर्मनी इङ्गलैंडपर उस विधिका अनुसरण करेगा) तो यंत्र बेकार हो जाते हैं। इसलिये लंदन जैसे बड़े शहरोंको सबसे अधिक खतरा आक्रमणकी एकाएकीसे है। यदि ३० मिनटके अन्दर आक्रमणकारियोंका पता न लग पाया तो वे शहरके ठीक ऊपर पहुँच कर वहाँके हवाई घरों (ऐरोड्रोम) और हैंगरो जहाज़-घरों आदिको नष्ट कर डालेंगे, पहिले इसके कि रक्षाका प्रबंध हो सके। इसलिये सुरक्षित हैंगरों और पृथ्वीके अन्दर आश्रय-स्थानोंकी आवश्यकता हो जाती है, साथ ही गिलोल-मशीनें भी अनिवार्य हो जाती हैं जो कि एरोड्रोमके बेकाम होने पर हवाई जहाज़ोंको सीधे ऊपर आकाश में फेंक सकें। चीन-युद्धमें जापानियों ने कई एक चीनके लड़ाई-जहाज़ोंको पहिले इसके कि वे पृथ्वी परसे ऊपर उठ सके आकस्मिक हमला कर नष्ट कर दिया बतला हैं। इसी सम्भावना से डर कर जर्मनों ने पृथ्वीके अंदर बम्ब प्रूफ कई एक जहाज़-घर बना लिये हैं।

भारतवर्षमें अनायास आक्रमण होनेकी कम सम्भावना है, क्योंकि देश इतना विस्तृत है और निकटतम् देश इटली, जापान जिनसे आक्रमणका डर है अधिक दूर हैं। लेकिन यह सम्भव है कि शत्रु किसी निर्जन स्थानमें आ उतरे और वहाँ एक एरोड्रोम बनाकर हवाई कार्यवाही के लिये जहाज़ ले आये और अग्रसर सेना अपने पिछले भागमें ऐसे ही ऐरोड्रोम बनाकर वहाँ जहाज़ इकट्ठा कर लेती है और फिर आगे बढ़ती है जैसा कि जापानियों ने चीन-युद्धमें किया है। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि कितनी ही कड़ी चौकसी क्यों न रक्खी जाय विपरीत आक्रमण की योजना काफ़ी नहीं, दो-एक शत्रुके जहाज़ तो साफ़ निकल ही जाएँगे और जनतामें बम्ब-वर्षा द्वारा खलबली फैला देंगे। इसलिये सक्रिया बा० आ० सा० के दूसरे अंग तोप-आयोजनकी आवश्यकता पड़ती है।

तोप-आयोजन

हाल हीमें तोपोंमें भी आश्चर्यजनक सुधार हो गया है। उनकी पहुँच अब २०,००० फुट तककी हो गई है। पुराने ३ इञ्चकी जगह अब फ्रैञ्च बन्दूकोंका मुँह ७७ मि० मी० और अँग्रेजीका ३$\frac{7}{10}$ इञ्चका होता है। एक ४ इञ्च मुँह वाली बन्दूक भी बन रही है। इससे १०,००० फीटसे नीचे उड़नेवाले सभी जहाज़ों पर हमला हो सकेगा। ये बन्दूकें सरकारी कार्यालयों, विद्युत-घरों, वाटर-वर्क्स, फैक्ट्रियों, पुलों, फौज़-स्थानों, बैटरियों, गोदामों यहाँ तक कि अस्पतालोंमें भी ऊँची मीनारोंमें लगी रहनी चाहिये। इस प्रकार इन मौके.दार जगहोंकी रक्षा हो सकती है। लेकिन एक ओर जहाँ बन्दूकोंके बनानेमें उन्नति हो रही है दूसरी ओर वायुयान और भी ऊँचाई पर उड़नेकी कोशिशमें रहते हैं और अब २४००० फीटकी ऊँचाई पर उड़ सकते हैं, और इन बन्दूकोंकी रेंजके बाहर रह सकते हैं। फिर, कुहरेके दिन तो ये आसानी से दिखाई भी नहीं पड़ेंगे और बन्दूकें बेकार हो जायँगी। रातमें काम कर सकनेके लिये इन तोपोंमें तेज रोशनी (आकाशदीप) लगी रहनी चाहिये और इसके अलावा इनकी रोशनीके लिये अलग बिजलीका इन्तज़ाम होना चाहिये जिससे कि कहीं शहर की बिजली बंद या नष्ट हो जाय तो यह काममें आ सके।

बैलून-चक्र

इस विधिमें (हाइड्रोजन) उदजन गैस भरे हुए गुब्बारेकी एक लाइन सारे शहरके चारों ओर उड़ा करती है। इन गुब्बारोंमें तार बँधे रहते हैं जिससे शत्रुके जहाज़ नीचे न आ सकें क्योंकि नीचे आजाने पर ये जहाज़ तोपके निशानेसे (जो ऊपरकी ओर निशाना किये रहती है) बच सकते हैं। ये गुब्बारे ज़मीनसे तारकी रस्सियों द्वारा बँधे रहते हैं। लेकिन इस विधिको अभी तक युद्ध में परिस्थितिमें काममें नहीं लाया गया। इसमें कई एक बाधाएँ हैं। पहिली यह है कि यह बहुत खर्चेकी आयोजना है। अनुमान है कि केवल लंदनको इस विधि द्वारा बचानेमें १४ करोड़ रुपया लगेगा। इतने रुपयेसे १००० अच्छे लड़ाका जहाज़ बन सकते हैं। फिर इन सब गुब्बारों पर काम करनेके लिये बहुतसे आदमी चाहिये। केवल लंदनके लिये ही ४०००० आदमी चाहिये। युद्धके समयमें जब योद्धा संग्रामके लिये चाहिये तब इतने आदमी इन गुब्बारों पर रखना एक हास्यप्रद सी बात होगी। फिर इन गुब्बारोंके उखड़ जानेका या जंज़ीर के टूट जानेका सदा डर रहता है, विशेषकर वायुके तीव्र झोंकेमें। इस पर भी जर्मनी ने इन गुब्बारों पर लगे हुये बिजलीके तारोंको भी काटनेका उपाय सोच निकाला है। इन सब कमीके कारण इस विधिको फ्रांसने नहीं अपनाया और न कोई दूसरा देश ही इस पर अमल करे।

अब हम बा० आ० सा० के निष्क्रय अंग पर विचार करेंगे। इसके मुख्य अंग तीन हैं :—

१—स्थान खाली कर देना (रिक्तीकरण),

२—खाई खोदना

३—स्वयंसेवक संगठन।

रिक्तीकरण

यह तो अब भली-भाँति विदित ही है कि बम्ब-वर्षामें ईंटके मकान नहीं ठहर सकते। २५ मनके बम्ब द्वारा जमीनमें एक इतना बड़ा छेद हो सकता

है जिसमें एक शहर भर समा जाय। तब भी पृथ्वीके अन्दर कंकरीटकी ऐसी इमारतें बन सकती हैं, जिनकी छत ३ फीट मोटी हों और उनके ऊपर १५ फीट मिट्टीकी तह हो, जिन पर ३० मन तकका बम्ब कुछ असर न करेगा। एक व्यक्तिके लिये ५० रुपयेमें एक कमरा इस प्रकारका पृथ्वीके अंदर बन सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्तिके लिये इस प्रकारके कमरे बनें बहुत तो जगह चाहिये और रुपया भी। और फिर हर कमरेके आस-पास कुछ बाग बगीचा या थोड़ी खुली जमीन होनी ही चाहिये। इन कारणोंसे सारी जनताके लिये तो पृथ्वीतलके नीचे कमरे नहीं बन सकते। इसके अलावा यह भी देखना है कि विषैली गैस तो इनमें घुस कर उपद्रव नहीं करेगी। इस हेतु इन कमरोंको बिल्कुल वायु-अभेद्य होना चाहिये अर्थात् इनमें कहींसे वायु न घुसने पाये और साथ-साथ स्वच्छ वायुके भी बाहरसे आनेका प्रबन्ध हो। यदि कमरे वायु-अभेद्य न हुए तो आश्रित व्यक्तियोंके लिये ये केवल मृत्यु-यातनाके साधनमात्र ही सिद्ध होंगे। यद्यपि इस प्रकारके कमरे बनानेकी ओर कम प्रवृत्ति और सहानुभूति है तब भी धनी मनुष्योंको तो दो एक कमरे अपने घरके नीचे तहखानेमें बनवा ही लेना चाहिये। गत महायुद्धमें लोगों ने अपने मकानोंके ऊपर तारोंके जाल पुरवा रक्खे थे और यह प्रथा भारतवर्षमें अब भी प्रचलित है, लेकिन इससे अब कुछ लाभ नहीं, क्योंकि इससे समय और गरमी पाकर फूटनेवाले बम्बोंसे थोड़े ही छुटकारा मिल सकता है। अतः छतों पर तारका जाल फैलवाना वृथा है।

पश्चिमके बड़े शहरोंमें तो ज़मीनके अन्दर रेलगाड़ी के चलनेके लिये (टनल) गुफाएँ होती हैं और इनमें ग़रीब आदमी आसानीसे जाकर आश्रय ले सकते हैं। गत् सितम्बरमें 'म्यूनिक संकट' के समय लन्दनकी 'नलियों' यानी इन रेलकी गुफाओंमें कुछ रद्दोबदल करनेका विचार था। सम्भवतः इनमें घुसने और निकलनेके मार्ग कुछ और चौड़े किये जाते, क्योंकि अब तो वे लोगोंकी भीड़को एक दम घुस जानेसे रोकनेके लिए सँकरे बनाये गये हैं, अब जब आश्रय देना है तो इन्हें चौड़ा करना पड़ेगा जिससे जल्दीसे भीड़ घुस सके। सरकार ने टेम्स नदीके नीचे एक टनल बनानेका निर्णय किया था। टनलमें आश्रय लेनेमें दो कठिनाइयाँ हैं। पहिली यह कि कहीं बिजली-संचारित रेल और तारोंसे भीड़ जल्दीमें छू न जाय, दूसरी बिजली कहीं बंद न हो जाय जिससे अन्दर अँधेरेमें लोग मर रहें और ऊपर उठाने वाली मशीन चलना बंद हो जाय।

अपने ही घरके नीचे आश्रय लेनेमें इतनी कठिनाइयाँ होनेके कारण एक दूसरा उपाय सोच लिया है। वह है—उस स्थानको खाली कर देना। आया कि स्थानको बिल्कुल खाली कर दिया जाय या उसके नीचे अपने भरके लिये गड्ढा खोद लिया जाय—इस पर बहुत वाद-विवाद हो चुका है। जैसा जिस स्थितिमें ठीक हो वैसा ही किया जाय। खाली करनेकी विधिमें पहिले तो संकटमय स्थानसे उन सब व्यक्तियों को हटाना होगा जो युद्धके दृष्टि-कोणसे बिलकुल बेकार हैं। अर्थात् पहिले तो नाज़ुक स्वास्थ्यकी अबलाओंको जिन्हें आक्रमणके डरसे ही गर्भपात होनेका भय रहता है। इनके बाद बच्चों, वृद्ध, रोग-ग्रस्त, लँगड़े-लूलोंका नम्बर आता है। सबके बाद स्वस्थ पुरुषों व स्त्रियोंको है जो ब० आ० सा० में किसी प्रकार भी सहायता नहीं पहुँचा सकते, निकालनेकी बारी आती है। रिक्तीकरण बड़ी कठिन क्रिया है। बहुतसे बच्चे माता-पिताओंसे छूट जाते हैं। पहिले ही से यदि संकटमय स्थानोंका पता लगा उनके समीप आश्रय-स्थान निश्चित कर लिये जायँ तो ठीक है। और निवासियोंको खाली करने का अभ्यास कराया जाय जिससे संकट आ पड़ने पर गड़बड़ी न फैले। पूरा कुटुम्बका कुटुम्ब एक साथ ही हटाया जाय, या शहरके सब बच्चे एक साथ, फिर वृद्ध एक-साथ और युवा फिर एक साथ-यह प्रश्न विवादास्पद है। इङ्गलैंड इस बातके पक्षमें है कि कमसे कम धनी-निर्धन, ऊँची जाति नीची जाति-ऐसा-भेद भाव खाली करनेके अवसर पर नहीं करना चाहिये।

भारतवर्षमें यह समस्या इतनी जटिल नहीं, क्योंकि पहिले तो शहर ही बहुत थोड़े हैं और उनकी आबादी भी एक जगह स्थिर नहीं रहती, इस पर भी इन शहर-वासियोंके रिश्तेदार आस-पासके गाँवोंमें मिल ही जाते हैं। इस कारण इन्हें खाली करनेमें विशेष आपत्ति नहीं।

इसके अतिरिक्त शहरोंके चारों ओर भी बहुत-सी जगह खाली पड़ी रहती है। चाहें तो जनता वहाँ डेरे लगा कर ठहर सकती है।

खाई खोदना

खाली करनेके बजाय शहरमें और इसके बाहर चारों ओर टेढ़ी-मेढ़ी खाइयाँ खोदी जा सकती हैं, जिनमें कमसे कम गरीब मज़दूर लोग तो जाकर छिप ही सकते हैं यद्यपि धनी आदमी हवाई जहाज़ द्वारा इधर-उधर उड़ जायँ। यह उपाय भी आवश्यक है क्योंकि सारा नगर, जहाँ इतना कारोबार हो, क्षण भर की सूचना (नोटिस) में खाली नहीं किया जा सकता, और जनता में कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो घर छोड़ना ही नहीं चाहते, या यह भी संभव है कि रेल, मोटर और गाड़ियोंका चलना एक दम रुक जाय। चीनके लोगोंमें खाली कर आग लगा भाग जानेकी प्रथा बहुत प्रचलित है। इससे शत्रुको जले हुए शहरमें आकर खाने-पीनेकी सामग्री या किसी और प्रकारकी सुविधा नहीं मिलने पाती। लेकिन शत्रु भी पहिलेसे इसका प्रबंध किये रहता है। जापानी सेना जहाँ कोई शहर इस प्रकार खाली मिला वहाँ बसना आरंभ कर देती है। कभी-कभी तो आग लगानेसे भूल होने पर स्वयं चीनी लोगोंको बहुत हानि हुई है। स्पेन वालोंने इस रीति का अनुसरण नहीं किया। उनका जन्म-भूमिसे इतना प्रगाढ़ प्रेम और बंधन होता है कि वे वहीं कहीं छिप छिपाकर जीवन-निर्वाह कर लेंगे और शत्रु के हाथों अत्याचार भी सह लेंगे।

खाइयोंमें छिपजानेमें डर यह रहता है कि शत्रु ऊपरसे विषैली गैस न छोड़ दे। इससे बचनेके लिये यह उपाय है कि हर एक व्यक्तिको एक गैस-मास्क (कवच) दे दिया जाय। गैस-मास्क क्या है, इस विषय पर गत वर्ष 'युद्ध-गैसका कल्पित हौआ' शीर्षकका लेख विज्ञानमें निकल चुका है।

स्वयं-सेवकोंके संगठन

हवाई हमलोंसे बंदोबस्त करनेमें सबसे महत्वपूर्ण बात तो स्वयंसेवकों का संगठन है। दवाइयाँ बाँटने और पीड़ित व्यक्तियोंका 'प्राथमिक उपचार' (फर्स्ट एड) करनेके लिये, कहीं पर आग लग जाय तो उसे बुझानेके लिये और संकट-ग्रस्त लोगोंको आग से बचाने के लिये नगरसे विषैली गैसों और लाशोंको हटा कर सफ़ाई रखनेके लिये, अगर आवश्यकता पड़ जाय तो जनताको नगर खाली कर देनेमें सहायता करनेके लिये और जिन विधियों पर पहले विचार हो चुका है उनके लिये भरती होनेको—इन सब बातोंके लिये स्वयं-सेवकोंकी आवश्यकता होती है। जर्मनीमें यह संगठन सबसे अच्छा और सराहनीय है इँग्लैंडमें इतना नहीं। कहते हैं जर्मनीके बड़े शहरोंमें सब मिलाकर १० लाख व्यक्ति हैं जिनके ज़िम्मे स्वयंसेवकोंका प्रबंध है। इन्हें हम 'वायु-वार्डन' कह सकते हैं। प्रत्येक घर, होटल, बोर्डिंगहाउस में एक ऐसे ही वायु-वार्डन हैं जो रेडियो परसे सूचना मिलते ही सब सेवकोंको इकट्ठा कर कार्रवाई आरम्भ कर देंगे। हर स्वयंसेवक-दलमें अपने निजीके डाक्टर; नर्स, अग्नि-रक्षा और विष-गैस-रक्षा करनेवाले कार्यकर्त्ता होते हैं। जितने भी युवक इस कार्यके लिये उचित समझे गये हैं सब भरती कर लिये गये हैं। इसके विपरीत इँगलैंडमें मज़दूर-समुदायके अविश्वासके कारण ऐसा नहीं हो पाया। वायवीय आक्रमणोंमें खुले स्थानोंको घोर अंधकारमय ('घोरतम') कर देनेका प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य देशोंमें 'घोरतम' में पूर्ण सफलता प्राप्त करनेके लिये बड़ी कठिन कोशिश होती है। अमरीकामें ब्रैग किलेके पास एक ऐसे ही 'घोरतम' पर प्रयोग किया गया। इधर-उधर विस्तीर्ण ग्रामीण घरोंमें प्रकाश रहनेसे और चलती मोटरोंकी रोशनीके कारण पूर्ण अंधकार नहीं हो पाया। और यह भी मालूम पड़ा कि अत्युत्तम ध्वनि-सूचक यंत्रों और टेलीफ़ोनके विस्तृत चक्रद्वारा यद्यपि बम्ब फेंकनेवाले जहाज़ोंका मार्ग-प्रदर्शन हो गया लेकिन जब जहाज़ उन भारी तोपोंके सामने आये तो ८० करोड़ (कैंडिल-पावर) बत्ती-बलके २६ आकाश-दीपों द्वारा भी उनका ठीक-ठाक निशाना नहीं लगा। मंद चन्द्र-किरणोंसे अथवा बादलोंसे इन आकाश-दीपोंका प्रकाश प्रसरित हो गया। इसके अतिरिक्त पृथ्वीतल परके शोरको बंद करना भी कठिन हो गया। २४ तोपोंसे वे लोग केवल १½ वर्गमीलकी रक्षा कर पाये।

अन्तमें वायवीय आक्रमणोंके विषयोंमें कुछ सामान्य बातें लिखकर इस लेखको समाप्त करेंगे। ऊपर वायुमें से गहरे लाल और नारंगी रंग अच्छी तरह दिखाई देते हैं, मटियाला और हरा सबसे कम। सफ़ेद कपड़े पहने आश्रयी जब झाड़ियोंमें छिपे तो ऊपरसे अच्छी तरह दीख पड़ते हैं। निकट दूरीसे ही बम-वर्षा हो तो भागना या ज़मीनपर लेट नहीं जाना चाहिये, क्योंकि इन दोनों विधियोंसे आदमी और साफ़ दिखाई पड़ता है। चुपचाप खड़े हो जाना या टाँग सिकोड़ कर बैठ जाना ही ठीक होगा। हाँ, अगर कोई भीड़ लगी हो तो वह अवश्य तितर-बितर हो जाय। विस्फोटक पदार्थोंके समीप हो तो कानोंमें रुई अवश्य भर लेनी चाहिये क्योंकि उसकी आहटसे ही कभी-कभी मृत्यु या बहरापन हो जाता है चाहे बम फूट कर शरीरपर न भी लगे।

श्री बी० पी० आदकरकी पुस्तक 'If War Comes के परिशिष्ट A' से अनुवाद।

जंगलके हानिकारक कीड़े

[ले० श्री फणीन्द्र नाथ चटर्जी एम-एस-सी०]

मैने विज्ञानके फरवरी और अप्रैलके अंकोंमें इस विषय पर लेख निकाले हैं, जिनमें सागौनके एक मुख्य पत्रभक्षक हपेलिया मैकेरेलिसके मुख्य पेरासाइटों का वर्णन दिया है। इस अंकमें अब मैं सागौनके दूसरे मुख्य पत्रभक्षक हाईब्लीया प्योराका कुछ वर्णन दूँगा और उनके कुछ मुख्य पैरासाइटोंके विषयमें लिखूँगा।

हाईब्लीया प्योराकी जीवन कहानी हपेलिया मैकेरेलिसकी तरह है (१७ से २० दिनकी होती है)। वह भी सागौन कीं पत्तियोंके दोनों तरफ अंडे देती है और दूसरे दिन अंडेके बीचमें एक काला बिंदु दिखाई देने लगता है, जो कि भविष्यत् बच्चा लार्वा पैदा होने वालेका काला सिर है। जब बच्चा लार्वा निकल आता है तब उसके शरीरकी अपेक्षा सिर बडा होता है और बिलकुल काला होता है। यह केवल अत्यन्त नर्म पत्तियों पर रहता और खाता है। पहिले तो नर्म पत्तियोंके किनारों को थोड़ा सा काट लेता है और उसके अन्दर जाकर, कटी हुई पत्तियोंके टुकड़ेको रेशमके तारसे पत्तियोंमें सिलाई जैसा कर देता है और इस घरके अन्दर भली भाँति पत्तियोंको खाता रहता है। इस प्रकार बढ़ता रहता है और सागौनके पूरे पत्तेको चाट जाता है। और कुछ भी बाकी नहीं रहता है और जब किसी जंगलमें इस कीड़ेका आक्रमण हो जाता है तो दूसरे दिन सब पेड़ बिलकुल नंगे दिखाई देते हैं, अर्थात् सागौनके पेड़की टहनियाँ खड़ी हैं पर उन पर पत्तियाँ बिलकुल नहीं हैं। जंगलकी इस अवस्थाको देखनेसे बहुत खेद होता है क्योंकि हम जानते हैं कि पेड़ोंकी बढ़ती उनकी पत्तियों द्वारा होती है, और उन जंगलोंकी क्या दशा हो जायगी जिनमें पत्तियाँ नहीं हैं—तिजारतकी लकड़ियाँ बिलकुल नष्ट हो जायँगी और बहुत रुपयेका नुकसान हो जायगा। इस प्रकार सर्वदा यदि यह कीड़ा पत्तियोंको चाट जाय, तब तो उनको वशमें करनेकी अत्यन्त आवश्यकता हो जायगी। मैं एक अपनी आँखोंका देखा हुआ उदाहरण देता हूँ। सन् १९३७ के अप्रैलके महीनेमें मेरी एम० एस-सी०की परीक्षा समाप्त हुई और देहरादूनके जंगलातके दफ्तर के कीड़ोंके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० बिसन साहब ने मुझको मेरे चाचाजीके साथ नीलाम्बर (मदरास) भेज दिया जिससे कि हम लोग वहाँ सागौनके कीड़ोंके बारेमें रिसर्च करें। सागौनके अधिक जंगल हैं और उन ऊँचे, मोटे मोटे और सीधे पेड़ोंको देखनेसे मालूम होता है कि कितने करोड़ों रुपयोंका माल खड़ा है। एक दिन हम लोग सागौनके जंगलमें उनके कीड़ोंका निरीक्षण करनेके के लिये गये; इनमें पत्तियाँ बहुत थीं और जंगल बिलकुल हरा भरा था। मैं जब उसके दूसरे दिन उसी जंगलमें गया मुझे आश्चर्य हुआ कि सब पेड़ पत्ती-हीन हो गये हैं और ज़मीनमें बिलकुल काले दानेसे भर गये हैं। यह काम और नुकसान हाईब्लीया प्योरा का था जैसे

टिड्डियाँ खेतोंको देखते देखते नष्ट कर देती हैं, उसी प्रकार यह कीड़ा भी। जब उस जंगलके हर एक पेड़ोंकी टहनियों को देखा गया तब उसमें बहुत बड़े बड़े लार्वे टहनियोंमें मरे पड़े दिखाई दिये। ये लटके हुये थे और हाथसे छूते ही उसी समय गल जाते थे। इन कीड़ोंका इस प्रकार से मर जानेका कारण अभी ठीकसे नहीं मालूम हुआ है; केवल इतना ही संभवतः कहा जाता है कि किसी प्रकार-विरस (Virus disease) की बीमारी केवल प्योरामें ही लग जाती है और मर जाते हैं। इस बीमारीमें इन कीड़ोंके अन्दर ऐलीमनटरी कैनाल इत्यादि नष्ट हो जाती हैं परन्तु कोई सड़ी महक नहीं आती है। यदि इस प्रकारसे कीड़े जंगलमें मरें तो ऐसे कीड़ोंको जंगलातके विभागमें अवश्य भेज देना चाहिये जहाँ उनका भलीभाँति निरीक्षण हो जायेगा।

अब मैं हाईब्लीया प्योराके दो मुख्य पैरासाइटोंका वर्णन करता हूँ :

ऐपेनटलीस मालवीयोलस्

इस पैरासाइटका पालक हाईब्लीया प्योरा है, जो कि सागौन पेड़का मुख्य पत्र-भक्षक है, परन्तु और पेड़ोंका भी पत्र-भक्षक है।

केलीकारपा आरबोरीया वाईडेक्स निगण्ड।

यह पैरासाइट देहरादून और ब्रह्मामें पाया जाता है। इसकी जीवन कहानी बहुत कुछ ऐपेनटलीस प्योरा से मिलती है, क्योंकि यह पूरे लार्वा अवस्था तक पालक अन्दर रहती है, और पालकके बाहर निकल आती है और प्यूपा बनाती है। यह मादा पैरासाइट अपने पालकको ऐपेनटलीन मैकेरेलिसके समान ढूँढती है—अर्थात् पालककी महकका यह पैरासाइट बहुत दूरसे पता लगा लेती है। यह देखा गया है कि तीसरी अवस्था वाले पालक पर पैरासाइट हमला करती है। पहली अवस्था वाले पालकको पैरासाइट नहीं चाहता है, क्योंकि इसको पता है कि इतनी छोटी अवस्था वाले पालकके अन्दर वह अंडा दे तो उसके बच्चेके भोजन करनेके लिये कुछ भी नहीं होगा और मर जायगा। प्रयोग-शालामें ८ दिन की अवस्था वाले पालकके अन्दर पैरासाइट ने अंडा दिया है और ऐसे पालकको वाईनाकुलारके नीचे रखकर चीड़फाड़ से १८ मालवीयोलसके बच्चे लार्वे एक पालकके अन्दरसे निकाले गये हैं जैसा कि पहिले मैंने लिखा है कि ऐपेनटलीस मैकेरेलिस केवल एक ही अंडा अपने पालक हपेलिया मैकेरेलिस के अन्दर देती है परन्तु मालवीयोलस बहुत अंडे एक पालकके अन्दर दे सकती है। यह भी प्रयोग-शालमें ही देखा गया है कि पैरासाइट दूसरे पालकके अन्दर अंडा कभी नहीं देगी, केवल उसीके अन्दर जिसको वह पसन्द करती है—अर्थात् ऐपेनटलीस् मैकेरेलिस कभी हाईब्लीया प्योरा पालकके अन्दर अण्डा नहीं देगी और उसी प्रकार ऐपेनटलीस् मालवीयोलस् कभी हपेलिया मैकेरेलिसके अन्दर अण्डा नही देगी। प्रयोग-शालामें यह देखा गया है कि जो पालक आखिरी अवस्थामें हमला किया गया है वह कभी प्यूपा होने तक जीवित नहीं रहता है; प्योरा लार्वाकी आखिरी अवस्था केवल चार दिनकी हैं और अगर पैरासाइट इस अवस्था वाले पालकके अन्दर अण्डा दे तो पालक और पैरासाइट दोनों ही पूरी तरहसे नहीं बढ़ पाते हैं, और दोनों मर जाते हैं। जैसा ऊपर लिखा है, कि १८ पैरासाइटके बच्चे लार्वे एक प्योरा पालकसे निकले हैं परन्तु जंगलसे पकड़े हुये हाईब्लीया प्योरा चीड़फाड़ करने पर ३६ से ४५ बच्चे प्रत्येक पालकके अन्दरसे निकाले गये हैं और इनका प्रयोग-शालामें बढ़ाया गया।

एक मादा पैरासाइट ऐपेण्टलीस मालवीयोलस अपने जीवन, भर केवल ११ पालकोंको घायल कर सकती है। प्रयोगशालाके पिंजड़ोंमें पैरासाइट केवल दो दिन जीवित रही है, परन्तु बर्फ़में प्रायः दो हफ्ते जीवित रह सकती है।

पैरासाइटका लार्वा पालकके अन्दरसे अलग-अलग छेद निकल आते हैं और निकल आने पर छेद पर एक काला दाग़ लग जाता है। पालकके अन्दरसे जब सब पैरासाइटके लार्वे निकल आते हैं, तब उसके बाद दो दिन तक पालक अधिकसे अधिक चल फिर सकती है है, और अन्तमें मर जाती है। जैसे ही पैरासाइटका लार्वा निकल आता है हर एक अपना अलग-अलग रेशम

का कोवा बना लेते हैं और सब कोवा एक साथ बँध जाते हैं। कोई दो तीन घण्टेके अन्दर कोवा बना लेते हैं। रेशमका कोवा गन्धकके तरह पीला और कोवाके दोनों ओर थोड़ा नोकीला होता है।

अक्टूबरके महीने इस पैरासाइट की पूरी जीविका दो हफ्तेकी है—नर और मादेका जोड़ और फिर मादेका अण्डा देना २ दिन, पैरासाइटके बच्चे लार्वोंका खाना और बढ़ना = ७ दिन, रेशमका कोवा बनना और प्यूपा अवस्था = ५ दिन।

स्टरमीया इनकन्सपीक्यूला—यह पैरासाइट बहुत कुछ मक्खीसे मिलता जुलता है। इस पैरासाइटका पालक हपेलिया मैकेरेलिस और हाईब्लीया प्योरा है। यह पालक सागौनके पेड़के पत्र-भक्षक हैं। यह बहुत स्थानोंमें पाया गया है—ब्रह्मा, मध्य प्रान्त (होशंगा बाद), मदरास (नीलाम्बर) संयुक्त प्रदेश (देहरादून), फरमोसा। इस पैरासाइटका डंक (ओवीपोज़ीटर) बहुत लम्बा हो सकता है और इस कारण यह पालकके अन्दर दूरसे अण्डा दे सकता है। यह पालकके ऊपर फुर्तीसे अंडेको बिठला देती है और अंडे चन्द घंटोंके अन्दर बच्चा लार्वा निकल आता है। चार अंडे तक एक पालकके ऊपर पैरासाइट अण्डा दे सकती है और सबके सब भलीभाँति बढ़ते हैं और उनमेंसे बच्चा लार्वा निकल आता है। घायल किये हुये पालकके अन्दरसे एक पैरासाइट भी निकल सकता है और कुछमें से दो भी निकल आते हैं।

हाईब्लीया प्योरा की जीवन कहानी उत्तरकी ओर २२–२८ दिनकी होती है। अक्टूबर–नवम्बर (लार्वा अवस्था ७-८ दिन प्यूपेरीयम १४–२० दिन)। मध्य प्रान्तमें प्यूपेरीयल अवस्था ८ दिनकी होती है। अगस्त के महीनेमें और ९ दिन सितम्बर–अक्टूबरमें, और यह अवस्था केवल २ दिन अधिक है पालकके प्यूपा अवस्था मईके महीनेमें ७ दिनका होता, है जूनमें ९ दिन जुलाईमें १० दिन, अगस्तमें ९ दिन सितम्बरमें ८ दिन, अक्टूबर में ९ दिन और ८-१० दिन दिसम्बरमें।

पैरासाइट था लार्वा अपना प्यूपेरीया पालकके प्यूपा को पत्तीके लपटमें बनाती है या जमीनमें भी अपना प्यूपेरीया बना लेती है। अक्टूबरमें यह पैरासाइट कमसे कम तीन हफ्ते जीवित रह सकती है। जंगलमें इस पैरासाइटकी ताकत केवल ३०-३५ फी सदीसे अधिक नहीं रही।

कारखानेमें कैसा इञ्जन लगावें?

[ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा]

(गतांकसे आगे)

जल

बायलरमें काममें आने वाले जलका प्रश्न भी विशेष महत्वका है। जहाँका पानी भारी, नमकीन और लोहेको जंग लगाने वाला हो, वहाँ ढोलनुमा बायलर ही लगाना उत्तम रहता है, क्योंकि उसका निरीक्षण और भीतरी सफाई बड़ी आसानीसे की जा सकती है। जल नालिका बायलर केवल वहीं लगाने चाहिये जहाँका पानी हल्का, मीठा और जंग लगाने वाला न हो। किसी कारण वश यदि हमें बायलरके लिये बिल्कुल मीठा, साफ और हल्का जल न मिले तो हमें साथ ही गाढ़ीकरण-यंत्र (Condenser) भी लगाना चाहिये। जिससे इञ्जनमें काम आई हुई झूठी वाष्प (Exhaust steam) गाढ़ीकरण यंत्रमें जाकर स्वच्छ जलमें परिणत हो जावे और वह जल फिर बायलरमें पहुँचा दिया जाय। जल नालिका बायलरके साथ तो अवश्य ही हमें गाढ़ीकरण यंत्र लगाना चाहिये, क्योंकि जलमें कुछ न कुछ मिट्टी आदि सदैव रहती ही है, जो जल नालिकाओंमें जमकर काफी नुकसान पहुँचा सकती है।

यदि बायलरकी आगको चैतन्य रखनेके लिये चिमनी द्वारा हवा खींची जावे तो उसके धुँवालों (Smoke

flues) में समृद्धि यंत्र (Economiser) का लगाना भी बहुत उपयोगी होगा, क्योंकि इसमेंसे होकर जब जल बायलरमें जावेगा तो पहिले ही से बहुत कुछ गरम हो जावेगा जिससे ईंधनका काफी बचत होगी।

बायलरमें उत्तप्त वाष्प (Super heated steam) तैयारकी जावे या सूखी जल मिश्रित (Dry saturated) इस बातका निश्चय या तो इंजन बनाने वालों की सलाहसे किया जाना चाहिये, या इंजनकी बनावट और प्रकारको देख कर।

भार-सम्बन्धी विचार

बायलरका चुनाव करते समय हमें यह भी जानना आवश्यक है कि इंजन पर किस प्रकारका भार रहेगा। कारखानेमें कितनी औसत शक्तिका खर्च है, उसका अनुमान करके उसीके अनुसार हमें बायलर लगाना चाहिये। यदि कुछ घंटोंके लिये ही औसतसे अधिक शक्तिकी आवश्यकता हुई तब तो उसे बायलर पूरी कर सकता है, क्योंकि उसमें पानीके लिये काफी जगह होती है। ढोलनुमा बायलरोंके सम्बन्धमें अक्सर यह देखा गया है कि वे अधिक देर तक इंजनको आकस्मिक भारवहन करनेके लिये वाष्प देनेमें पिछड़ जाते हैं। यदि देते भी हैं तो या उनकी भट्टीके बिगड़ जानेकी सम्भावना रहती है या वे बहुत अधिक ईंधन खर्च कर देते हैं। जल-नालिका-बायलरोंमें यह ऐब नहीं होता। इसकी भट्टीकी दीवारें ईंटोंसे बनी होनेके कारण अत्यधिक तापको भी सहनकर सकती हैं। लेकिन इनमें पानीकी जगह थोड़ी होनेके कारण बिना वाष्पका दबाव बदले इंजनको जल्दी-जल्दी वाष्प देना कठिन है।

बायलरकी बनावट

साथ ही बायलरको मज़बूती और बनावटकी सरलता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। जल-नालिका-बायलर ढोलनुमा बायलरोंकी अपेक्षा कम बे जोखिम होते हैं। इनके फट जानेकी बहुत कम सम्भावना होती है, और यदि फट भी जावें तो अधिक क्षति नहीं पहुँचा सकते। इनकी बनावट इतनी सरल होती है कि इनकी नालियोंकी सफ़ाई निरीक्षण और बदली करना बड़ा सरल है। इनकी नालियों पर बाहरकी ओरसे लगा हुआ धुआँ वाष्पके—फुँहारेसे अथवा खुरच कर साफ कर दिया जा सकता है, और भीतरकी सफाई और निरीक्षण दोनों तरफकी टोपियाँ खोलकर किया जा सकता है। यह सब काम बाहरसे ही हो सकता है, लेकिन ढोलनुमा बायलरोंमें काम करने वालोंको भीतर घुसना आवश्यक होता है। जो बड़ा कठिन काम है। ढोलनुमा बायलरोंमें भट्टीकी चद्दरों और नालियोंके जलनेका बड़ा अंदेशा रहता है, लेकिन जल-नालिका-बायलरोंमें बहुत कम। ढोलनुमा बायलरोंमें सरदी-गरमीके कारण बहुत बल (Strain) पड़ जानेकी सम्भावना रहती है जिससे उसके प्लेट ऐंठ जाते हैं। जल-नालिका-बायलरोंमें ऐसा नहीं होता। जल नालिका बायलरोंमें केवल एक ऐब यही है कि उसकी नालियोंके निरीक्षण और बदलनेमें उनकी टोपियोंको बार-बार खोलना होता है जिससे वे हवा देने लगती हैं और उन्हें बदलना पड़ता है। कई बेर नालियोंकी फ्रेममें टोपियोंकी चूड़ियाँ भी बिगड़ जाती हैं जिनके खराब होने पर बड़ी दिक्कत होती है। लंकाशायर-बायलर सबसे अधिक भरोसे के योग्य होता है। उसके मरम्मतकी अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती है।

कार्य-क्षमता

बायलरका चुनाव करते समय उनकी कार्यक्षमता पर भी विचार करना आवश्यक है, अर्थात् वहाँ कोयलेसे लिये हुए कितने तापको उपयोगमें ला सकता है। पाठकोंकी जानकारीके लिये मिकेनिकल वर्ल्ड नामक पत्रसे एक सारणी इस विषय पर उद्धृतकी जाती है।

भिन्न-भिन्न प्रकारके बायलरोंकी कार्यक्षमता

जाति	ईंधन झोकने का तरीका	वाष्पतप्तक वायुतप्तक अथवा समृद्धि यंत्र	भट्टीमें जाने वाली हवा का प्रकार	ईंधन का प्रकार	कार्य क्षमता %
खड़ा, आड़ीनली	हाथ	—	प्राकृतिक	कोयला	५०
खड़ा, अनेक नली वाला	”	—	”	”	५४
कारनिश (मझोला नाप)	”	—	”	कोयला, चूरा	४५—५५
कारनिश (बड़ा नाप)	”	समृद्धि यंत्र	”	” ”	६०
लंकाशायर (मझोला नाप)	”	वाष्पतप्तक समृद्धि यंत्र	”	” ”	६०—७०
लंकाशायर (बड़ा नाप)	झोका यंत्र	”	”	चूरा और कोक हवा के साथ	६८—७८
जल नालिका (छोटा नाप)	हाथ	—	—	कोयला	६५—७०
जल नालिका (बड़ा नाप)	झोंका यंत्र	वाष्पतप्तक	प्रवाहित	कोयला, चूरा	७४—७८
”	”	वाष्पतप्तक और समृद्धि यंत्र	”	” ”	८०—८४
”	”	”	समतुलित प्रकट	” ”	८४
”	”	वाष्पतप्तक वायुतप्तक और समर्द्धिक यंत्र	”	” ”	८५
”	पिसा हुआ ईंधन	वायुतप्तक और वाष्पतप्तक	”	कोयले की बुकनी	८८
रेल इंजननुमा उठाऊ	हाथ	—	प्राकृतिक	वैलिश कोयला	६४—६८
रेल इंजन का	”	वाष्प तप्तक	वाष्प प्रवाहक यंत्र	”	६५—७०
ढोलाकार जहाजी	”	”	प्रवाहित	”	६०—७०
कारनिश अनेक नाली वाले	”	वाष्प तप्तक और झूठो वाष्प द्वारा जल तप्तक	प्राकृतिक	”	६५—७५

स्थान-सम्बन्धी विचार :—हमारा निर्वाचित बायलर कितनी जगह घेरेगा, यह भी एक विचारणीय बात है। जहाँ थोड़ी शक्ति उत्पन्न करनी और जगहको तंगी भी हो वहाँ खड़े बायलरोंका उपयोग करना चाहिये। लेकिन यह भी न भूलना चाहिये कि लंकाशायर बायलरोंके मुकाबिलेमें इतनी कार्यक्षमता बहुत कम होती है।

जिन शक्ति-गृहों ७०० अश्वबलसे अधिक शक्ति उत्पन्न करनी हो वहाँ ड्राईबक और लंकाशायर बायलर नहीं लगाने चाहिये, क्योंकि वे बहुत जगह रोकते हैं, उनके लिये इमारत बनाने और इंजन-घरसे उनका नलों द्वारा सम्बन्ध करनेमें बहुत खर्चा बैठ जाता है और उसके सम्भालने वाले भी ऊँचे वेतन-भोगी रखने होते हैं। इसलिये इस प्रकारके शक्ति-गृहोंमें जल-नालिका बायलर ही लगाने चाहिये। क्योंकि यह उतनी ही वाष्पोत्पादन शक्ति वाले ढोलनुमा बायलरोंकी अपेक्षा $\frac{1}{8}$ जगह घेरते हैं। खास कर देहाती और पहाड़ी प्रांतोंमें बोझेके कारण ढोलनुमा बायलरोंको मौक़े पर पहुँचाना बड़ी विकट समस्या हो जाती है। जल-नालिका बायलर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बने होते हैं, जो सब हल्के होते हैं और लगाने की जगह ले जाकर जोड़ लिये जाते हैं। अतः ऐसी जगहोंमें यही सबसे अधिक सुविधाजनक होते हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ढोल-नुमा बायलरोंकी अपेक्षा जल-नालिका बायलरोंके जमाने में बहुत अधिक खर्चा बैठ जाता है। इसलिये पहिलेसे यह सोच लेना चाहिये कि बायलर को जमाते समय जो अधिक मूलधन लगेगा उसका ब्याज और छीजन-खर्च (Depreciation) आदि मिलाकर; बायलरकी अधिक कार्यक्षमताके कारण जो कोयलेकी, जगहकी, और बायलर को मौक़े पर पहुँचानेमें जो मज़दूरीकी बचत होती है, इन सबके लाभसे वह खर्चा अधिक तो नहीं बढ़ जाता।

हाथ अथवा यंत्रसे ईंधन झोंकनेका प्रश्नः—

जहाँ थोड़ी मात्रामें शक्ति उत्पन्नकी जाती है वहाँ तो छोटे बायलर लगाये जाते हैं जिनमें ईंधन झोंकनेका काम हाथसे किया जाता है जिसके लिये योग्य और अनुभवी फायरमैन अर्थात् आग वालोंकी आवश्यकता होती है। लेकिन जहाँ अधिक शक्ति उत्पन्न करनेके लिये बड़े बायलर लगाये जाते हैं वहाँ झोका यंत्र (Mechanicl Strobers) से काम लिया जाता है जिन्हें सम्हालनेके लिये इंजीनियरकी सहकारिता-में साधारण आदमियों से भी काम चल सकता है। हाथकी अपेक्षा यंत्र द्वारा कोयला झोंकनेमें उपरोक्त लाभके अतिरिक्त और भी कई लाभ होते हैं, यथा—एकसा ईंधन झोंका जा सकता है, जिससे एकसी गरमी पैदा होती है और बायलरकी वाष्पका क्रियात्मक दबाव सदैव समान रहता है। ईंधन केवल आवश्यकतानुसार झोंका जानेके कारण बरबाद होनेसे बच जाता है। धूआँ भी बहुत कम निकलता है जो कि जनताके लिये हानिकारक समझा जाता है। सस्ते मेलका कोयला और उसका चूरा जो कि हाथसे झोंकनेमें लाभप्रद नहीं होता वह भी काममें आ सकता है। अतः जो अकेले बायलर प्रति घंटा १०००० पौंडसे अधिक जलकी वाष्प बनाते हैं उनमें यंत्र द्वारा ईंधन झोंकना ही सदैव लाभप्रद रहता है। यंत्र द्वारा कोयला झोंकनेके लिये, डलोंको किसी एक खास नापके भीतर भीतर ही तोड़ना होता है जो काम एक विशेष प्रकारके यंत्र द्वारा किया जाता है।

जो बायलर १००००० पौंडसे अधिक जलकी वाष्प एक घंटेमें बनाते हैं उनमें साधारण झोंकाका यंत्र (जंजीर नुमा) द्वारा कोयला झोंकना भी कठिन हो जाता है क्योंकि इतने बड़े चौड़े ज़ंजीरनुमा झोका यंत्र नहीं बनाये जा सकते; अतः ऐसी जगहोंमें चक्की द्वारा कोयलेकी बुकनी बना कर बायलरमें जलाई जाती है। इसे अंगरेजीमें पलवराइजड् कोयला कहते हैं। कोयलेकी मनों चूरी जो कि साधारण कारखानोंमें बरबाद जाया करती है यहाँ सब काममें आ जाती है। इस प्रकारसे कोयलेका एक जर्रा भी अपनी गरमी उपयोगी कामके लिये दे देता है।

कोयलेकी बुकनी जलानेसे निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

१—तेल और गैसीय ईंधनके समान ही इसके द्वारा भी बायलरका काजका फीलचीला (Flexibility of operation) हो जाता है क्योंकि ईंधनकी धार

को कम या ज़्यादा करना बहुत आसान हो जाता है।

२—साधारण बायलर जब किसी इञ्जनको वाष्प नहीं देता उस समय भी उसमें कुछ न कुछ कोयला खर्च होता ही रहता है और जब बंद करते हैं तब भी उसमें कुछ न कुछ कोयला बिना उपयोगी कार्य किये बरबाद हो ही जाता है। (Stand by or banking losses) वह इसमें नहीं होता।

३—हवाकी आमद पर पूरा अधिकार रहता है, जिससे वह कोयलेकी मात्राके अनुसार ही खोली जाती है जिस कारण कोयलेका एक-एक जर्रा ठीक तरीक़ेसे जल जाता है।

४—कार्य-प्रणालीके थोड़ेसे हेर-फेरके साथ ही अनेक प्रकारके सस्ते ईंधनोंका उपयोग किया जा सकता है।

५—आवश्यकता पड़ने पर क्षण भरमें बायलरकी भट्टी बंद कर दी जा सकती है।

बुकनीका ईंधन झोकनेमें निम्नलिखित हानियाँ भी हैं :—

१:—बुकनी बनानेका विशेष खर्चा।

२—उसे जमा करनेकी दिक़्क़त

३—चिमनीको गैसोंमें से खाकको पूर्णतया हटाना।

४—अधिक खाक वाले और जल्दी पिघलने वाले ईंधनके जांगड (Slag) के हटानेकी दिक्कत।

बुकनी बनानेवाली चक्कियाँ

बुकनी बनाने वाली चक्कियाँ दो प्रकारकी हुआ करती हैं, एक तो खड़ी और दूसरी आड़ी बनावटकी होती है जो धीरे और तेज़ चलने वाली होती हैं। खड़ी चक्कियाँ १५० चक्कर प्रति मिनटसे चलती है और आड़ी बनावटकी चक्की लगभग ३०० चक्कर एक मिनटमें लगाती है। इनसे भी विशेष तेज झलने वाली चक्कियाँ जो कि आड़ी होती हैं १००० से २००० चक्कर प्रति मिनट तक लगाती हैं। कई चक्कियाँ तो १०% नमी वाले कोयले तकको ले लेती हैं, इससे अधिक नमी वाले कोयलेके लिये सुखानेके यंत्रका इन्तजाम करना पड़ता है। क्योंकि अधिक नमी वाला कोयला चलनियोंके चिपटने लग जाता है। कोयले का चूरा इस प्रकारसे बनाना होता है कि जिसका ९३% से ९५% तक कोयला १०० छेद प्रति इञ्चकी चलनी से निकल जावे, ७५% से ८५% कोयला २०० छेद प्रति इंच अर्थात् ४०००० छेद प्रति वर्ग इञ्चकी चलनीमें से निकल जावे। कोयलेकी हालत बताकर इस प्रकारके यंत्र-निर्माताओंसे सलाह लेनी चाहिये।

विस्फोटक इञ्जन (Internal Combustion Engines)

विस्फोटक इञ्जनोंमें सब प्रकारके गैस और तेलके इञ्जन आ जाते हैं।

गैस इञ्जन:—जिन कारखानोंकी रद्दीमें लकड़ीके छिलके, बुरादा और चमड़ेके टुकड़े बहुत अधिक मात्रामें निकलते हों, वहाँ दबाव (Pressere) अथवा चुसाव (Suction) वाले गैस-जनकों (Gas producers) के साथ गैस इञ्जन लगा देने चाहियें क्योंकि उस रद्दी का ईंधन की जगह उपयोग करनेसे इञ्जनोंके चालू खर्चमें बहुत किफायत हो सकती है। धातु लगानेकी भट्टियोंसे निकले हुए गैसका भी उपयोग किया जा सकता है लेकिन उसके साथ गैस शोधक (Gas purifier) लगाना ज़रूरी होता है। जहाँ सहायक इञ्जन लगानेकी आवश्यकता हो, वहाँ गैस-इञ्जन ही सबसे उपयोगी होता है।

वाष्प-इंजनको चलानेके अतिरिक्त उनमें अनेक रीतियोंसे वाष्पकी बरबादी हुआ करती है, लेकिन गैस-इञ्जनमें से इस प्रकारकी कोई बरबादी नहीं होती। वाष्प-इंजनकी भाँति, गैस-इञ्जनमें धूएँका तो झगड़ा ही नहीं रहता।

चुसावके गैस-जनकों द्वारा चलने वाले २० से २०० रो० अ० ब० तक के छोटे इञ्जन बड़े कार्यक्षम होते हैं। शहरकी गैस द्वारा चलनेवाले इञ्जनोंमें सबसे बड़ा गुण यह होता है कि उन्हें जब चाहें तब चला या ठहरा दिया जा सकता है। गैस-जनककी सम्हालका झगड़ा उस समय नहीं रहता, बिजलीकी मोटरोंकी भाँति उनपर भरोसा

भी किया जा सकता है क्योंकि शहरको गैस-फैक्टरी चतुर और अनुभवी कार्यकर्त्ताओं द्वारा चलाई जाती है। इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि २०० रो० अ० ब० से अधिक शक्तिके इंजन शहरको गैस द्वारा चलानेमें अधिक खर्चीले हो जाते हैं।

डीसल इञ्जन :—जहाँ ईंधनकी बचतका प्रश्न मुख्य हो वहाँ इस जातिके इंजन बड़े उपयोगी होते हैं। १०००० रो आ० ब० तककी शक्तिके डीसल इंजन खरीदे जा सकते है, और वे जहाँ-तहाँ सफलता-पूर्वक काम भी कर रहे हैं। इस जातिके इंजनोंमें मुख्य अवगुण यह हैं :—

१—प्रारम्भिक खर्च अधिक होता है।

२—चालू खर्च भी अधिक होता है।

३—इनकी सम्हालके लिये चतुर कार्य-कर्त्ताओंकी आवश्यकता होती है।

अर्ध-डीसल इंजनः—इस जातिके इंजनोंकी ताप कार्यक्षमता (Thermal Efficiency) डीसल इंजनोंकी अपेक्षा ८ से १० प्रतिशत तक कम होती है, लेकिन इनकी बनावट बहुत सरल होती है, एक दम चलाया जा सकता है। तेलका व्यर्थ खर्च नहीं होता, धूआँ या किसी प्रकारका मैला बिलकुल नहीं निकलता और इनके चलानेकी मजदूरी भी बहुत कम होती है। इनके मुख्य अवगुण यह है कि इनके जमाने और मरम्मतमें बहुत खर्च पड़ जाता है और अधिक शक्ति उत्पन्न करने वाले बड़े इंजन नहीं मिल सकते।

जलशक्ति (Hydraulic powers)

यंत्रोंके चलानेके लिये जलकी शक्तिका प्रयोग दुनियाँमें बहुत पुराने ज़मानेसे होता है। छोटे-छोटे यंत्र जलके बहावके जोरसे चलाये जाते थे जिन्हें "पनचक्की" आदि नामोंसे पुकारा जाता था। यंत्र-विद्याकी उन्नतिके साथ-साथ इस तरफ भी उन्नति हुई। पाठकों ने सुना होगा निआग्रा नदीके जल-प्रपातोंके सहारेसे बहुत बड़ी मात्रामें बिजली तैयारकी जाती है। भारतमें मैसूर राज्यमें भी इस प्रकारके शक्ति-गृह हैं। ताताको हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीम भी बड़ी महत्वपूर्ण है जा अभी विचाराधीन ही है। पंजाब और काश्मीरमें इसके सफल हो जाने पर हमें एक लाख अश्वबलसे कम शक्ति नहीं मिलेगी।

किसी स्थान पर बिजलीकी शक्ति उत्पन्न करनेके लिये जलशक्तिका विद्युत्पादक यंत्र लगाया जावे या वाष्प इंजनसे चलने वाला, इसका निर्णय करनेके लिये नीचे लिखे प्रश्नों पर विचार करना चाहिये।

(१) कारखाने और शक्ति-गृहके उपयोगके लिये कच्चा माल कितनी दूरसे मँगाया जावेगा, और तैयार मालकी बारबरदारीका क्या प्रबन्ध होगा ?

(२) नियमित रूपसे अटूट और भरोसेके योग्य, हमें जल द्वारा कितनी शक्ति प्राप्त हो सकती है ? यदि हमारी आवश्यकतासे कुछ कम शक्ति प्राप्त होती है तो हमें सहायताके लिये वाष्प, तेल या गैस इंजन तो नहीं लगाना पड़ेगा ?

(३) इमारतकी लागत यंत्रोंकी लागत, ब्याज, बीमा, सब प्रकारके यंत्रके टूट-फूटकी मरम्मत आदि खर्चे जल अथवा वाष्प द्वारा शक्ति उत्पन्न करनेमें प्रति इकाई क्या पड़ते हैं ?

(४) कारखानेमें होने वाली निर्माण-क्रियाओंके लिये वाष्पकी तो आवश्यकता नहीं पड़ती और यदि पड़ती है तो कितनी ?

(५) कच्चे और तैयार मालकी बारबरदारीमें क्या खर्च बैठेगा ?

(६) जल-प्रपातोंके निकट शक्ति उत्पन्न करनेमें और किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर शक्ति उत्पन्न करनेमें प्रति इकाई क्या खर्च बैठेगा ?

(७) वहाँ अच्छे मजदूर मिल सकते हैं या नहीं ?

जलके द्वारा शक्ति उत्पन्न करनेका विचार करते समय निम्नलिखित बातें ध्यानमें रखनी चाहिये जिनका उसके खर्च पर प्रभाव पड़ता है।

१—शक्ति उत्पन्न करनेका खर्च सदैव एक सा रहता है।

२—एक सा खर्च होनेके मुकाबिलेमें उत्पादित शक्तिकी मात्रा।

३—उत्पादित शक्ति और शक्तिकी माँगका संबन्ध और हौज़में जलकी समाई।

४—उत्पादित शक्तिकी कमीको पूरा करनेके लिये सहायक इंजनका खर्च।

५—जलके द्वारा शक्ति उत्पादन करनेके यंत्रोंकी छीजनकी लागत १½ से २½ प्रतिशत तक सालाना लगाई जाती है।

६—मरम्मतका खर्च उनकी लागतका लगभग १% सालाना बैठता है, क्योंकि उनमें खराबी और टूट-फूट बहुत कम होती है।

अन्तिम विचार

स्वयं चालकोंके चुनावपर अंतिम विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर फिर ध्यान देना चाहिये।

१—यंत्रकी विश्वासपात्रता।

२—यंत्रके लिये जगह।

३—शक्तिकी आवश्यकता।

४—आवश्यकता पड़ने पर अधिक भार-वहन करने की योग्यता।

५—जल और ईंधन आदिकी सहूलियत।

६ मरम्मतकी सहूलियत।

७—कार्य-कर्त्ताओंकी योग्यता।

८—जन-समाजकी सहूलियतें।

१—विश्वासपात्रता

ईंधनकी बचतके मुकाबिले में यह प्रश्न अधिक महत्व का है। अनुभव इस बातको बताता है कि वाष्प-इंजन ही सबसे अधिक विश्वास योग्य है। इसमें टूटफूट बहुत कम होती है। एक मामूली वाष्प-इंजन एक बेर जमानेके बाद कई वर्षों तक, सिवा कुछ पुर्जोंके घिसनेके, शान्तिके साथ चलता रहता है। लेकिन तेल और गैसके इंजनोंका काम बड़ा अनिश्चित होता है, क्योंकि उनमें कोई न कोई गुप्त ऐब बना ही रहता है, जिसके कारणका पता नहीं चलता और इंजन के रुकनेसे सब कारखानेका काम बंद हो जाता है, जिससे बहुत नुकसान होता है। तेल और गैसके इंजनों में, जिनमें खासकर एक ही सिलिंडर रहता है, उसके चलने वाले पुर्जोंमें बहुत झटके पड़ते हैं जिससे उनके टूटनेका बहुत अंदेशा रहता है।

२—यंत्रके लिये जगह

चालक यंत्र लगानेके लिये कारखानेमें कितनी जगह मिल सकती है, इस बात को मुख्य रखते हुये भी कई बेर चालक यंत्रोंका चुनाव करना होता है। एक समान शक्ति उत्पन्न करने वाले सब प्रकारके चालक यंत्रोंमें डीसल इंजन सबसे कम जगह घेरता है और केवल वाष्प-इंजनोंमें रेल-इञ्जन सब से कम जगह रोकता है।

३—शक्तिकी आवश्यकता

स्वयंचालक यंत्रके निर्वाचन पर अन्तिम विचार करते समय नीचे लिखी बातों पर जरूर ध्यान देना चाहिये :—

(क) आरम्भमें कारखाना चलानेके लिये हमें कितनी शक्तिकी आवश्यकता है?

(ख) कारखानेकी उन्नति होने पर कितनी बढ़ जावेगी और क्या यही स्वयं-चालक यंत्र उस समय भी काम दे सकेगा?

(ग) आकस्मिक आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये जितनी शक्ति संचित रहनी चाहिये, उतनी शक्ति क्या वह स्वयं-चालक यंत्र जिस पर हमारी निगाह है, दे सकेगा?

इसका सारांश यह है कि इंजन अपनी आरम्भिक आवश्यकताओंसे सदैव अधिक शक्ति वाला लगाना चाहिये जिससे फिर जल्दी ही बड़ा इंजन न खरीदना पड़े।

४—अधिक भारवहन करनेकी योग्यताः—

नित्यके व्यवहारमें कई बेर ऐसा भी होता है कि सब यंत्रों पर पूरा काम आ जानेसे इंजन पर आवश्यकता से अधिक भार भी पड़ जाया करती है। इसलिये अच्छा इंजन वही है जो इसको सहन कर ले। देखा गया है कि वाष्प-इंजन इस विषयमें सर्वोत्तम होते हैं। वे अपनी साधारण सामर्थ्यसे २५% से लेकर ७५% तक अधिक भारवहन कर सकते हैं। तेल और गैसके इंजन बड़ी कठिनता से १०% तक ही और वह भी थोड़ी ही देरके लिये। वाष्प-जनक द्वारा चलित गैस इंजन तो अपनी सामर्थ्यके बाहर बिलकुल ही कार्य नहीं कर सकता।

५—जल और ईंधन आदिकी सहूलियतः—

वाष्प-इंजनके लिये वाष्प तैयार करनेके लिये जो बायलर लगाया जाता है उसके वास्ते हल्के और स्वच्छ जलकी आवश्यकता होती है। और साथही कोयलेंकी भी। इसलिये उपयुक्त जलकी अधिकताके अतिरिक्त रेलकी नजदीकी भी देखी जाती है जिससे कोयला प्राप्त करनेमें दिक्कत न हो। लेकिन कई बेर वाष्प-इंजनकी विश्वास-पात्रता आदि गुणोंके होते हुए भी मजबूरीसे उपरोक्त दिक्कतोंके कारण तेल या गैस इंजन ही लगाना पड़ता है।

यहाँ पर यह फिर भी याद दिला देना आवश्यक है कि थोड़ी मात्रामें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये सब प्रकारकी सहूलियत होते हुए भी वाष्प-इंजन मँहगा पड़ता है और गैस या तेल इंजन सस्ता; दूसरी तरफ, अधिक मात्रामें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये वाष्प इंजन उपयुक्त और सस्ता पड़ता है और तेल या गैस-इंजन अनुपयुक्त और मँहगा।

६—टूटफूटके समय

तेल और गैस-इंजनोंकी बनावट बड़ी बेंडी होती है। उनमें कई गुप्त ऐब* ऐसे होते हैं कि जिनके कारण बड़ा हैरान होना पड़ता है। उनके सुधारने वाले बड़े चतुर और अनुभवी होने चाहिये। यदि देहातमें लगाया हुआ कोई गैस या तेल इंजन बिगड़ जावे तो उसकी मरम्मत बड़ी खरचीली और कठिन हो जाती है, इस बातको नहीं भूलना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यानमें रखनेकी है और वह यह कि कारखानेकी आवश्यक संचित शक्तिका ध्यान रखते हुए निश्चय करना चाहिये कि वहाँ कितने इंजन लगाये जावें, जिससे एक इंजनके टूटनेपर शेष इंजन काम दे दें, और उन पर अनुचित भार भी न पड़ने पावे। यदि सब इंजन एक ही नाप और बनावटके हों तो बहुत उत्तम रहता है क्योंकि एक इंजनके टूटने पर दूसरेके पुर्जे उसमें लग सकते हैं।

दूसरा सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि बिना इंजनकी कार्यक्षमता घटाये शक्ति कम और ज्यादाकी जा सकती है। उदाहरणके लिये मान लीजिये, आपको किसी चीनीके कारखानेके लिये इंजन तजबीज़ करना है। आप जानते हैं कि वहाँ फसलके समय ही केवल काम रहता है और वह भी आरम्भमें बहुत कम, फिर बढ़ते बढ़ते फसलके बीचमें बहुत ज्यादा हो जाता है और फिर घटते घटते अंतमें बिलकुल बंद हो जाता है। अब मान लीजिये, किसी ऐसी जगह एक ही बड़ा इंजन लगा दें जो कि फसलके समय भी भारीसे भारी कामको सम्हाल ले तो उसका परिणाम यह होगा कि (१) थोड़े कामके समय उसकी कार्यक्षमता बहुत कम होगी (२) बड़ा यंत्र होनेके कारण उसके छीजनकी लागत बहुत अधिक होगी, (३) यदि वह यंत्र बिगड़ जाय तो उस समय सबकाम बंद हो जायगा जिससे उस संस्थाको बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। जैसा ऊपर कहा गया है उस प्रकार यदि संचित शक्तिका ध्यान रहते हुए यदि छोटे-छोटे कई इंजन लगादें तो (१) कम काम होने पर एक ही इंजन अधिक कार्यक्षमताके साथ काम करेगा (२) उसके छीजनकी लागत भी बहुत कम होगी (३) वह प्रबन्ध अधिक विश्वासयोग्य होगा (४) एक इंजनके बिगड़ जाने पर दूसरा काम करनेको तैयार रहेगा जिससे कारखानेका काम नहीं रुकेगा।

७—कार्य-कर्त्ताओंकी योग्यता

वाष्प-इंजनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि उसका चलाना बड़ा आसान होता है। अतः खासकर इंजनको सम्हालनेके लिये विशेषकर होशियार आदमीकी जरूरत नहीं, । हाँ, बायलरमें आग झोकनेके लिये अवश्य ही अनुभवी आदमी चाहिये। यदि वहाँ पर अनुभव-हीन आदमी काम करेगा तो बड़े कीमती ईंधनको खूब बरबाद करेगा। उसका अधिकतर झोंका हुआ कोयला धूएँके रूपमें ही निकल जायगा। गैस और तेलके इंजनोंको सम्हालनेके लिये बड़ा अनुभवी आदमी चाहिये क्योंकि उनके कई ऐब बड़े हैरान करने वाले होते हैं। गैस-जनकोंको सम्हालनेके लिये भी विशेष आदमीकी जरूरत होती है। अतः यह सदैव सोच लेना चाहिये, कि हमें योग्य कार्य-कर्त्ता मिल सकेंगे या नहीं। कई बेर अनुभव-हीन कार्य-कर्त्ताओं

हाथमें सौंपने पर मजबूतसे मजबूत भरोसेके योग्य यंत्र टूट कर ढेर हो जाता है।

८—जनताकी सहूलियत

बायलरोंके फटनेसे और उसकी चिमनोंमेंसे अंगारे निकल कर आग लगनेकी सदैव जोखम रहती है। अतः बायलरोंके चलाने वाले बड़े अनुभवी और सरकारी सनद प्राप्त होने चाहिये। चिमनियोंमें अंगारोंका रोकनेके लिये विशेष सामान (Spark arrester) लगाने चाहिये। कई बड़े-बड़े शहरोंमें तो धुआँ करने की भी सख्त मनाई होती है। इसलिये ऐसी जगहोंसे पहिले तो भट्टीकी आग ही इतनी अच्छी प्रकारसे जले कि धुआँ न हो और फिर चिमनी इतनी ऊँची लगानी चाहिये कि जिससे धुआँ थोड़ा बहुत जो कुछ होवे भी, वह मकानोंके बहुत ऊँचेसे साफ़ निकल जावे। यदि धुएँकी बिलकुल ही सख्त मनाई हो तब या तो बिजलीसे काम लिया जाय या गैस अथवा तेल-इंजनों-से जैसा भी मौका हो।

प्राच्य शल्य-शास्त्र

राष्ट्रकी संस्कृति और राष्ट्रीयता बहुतांशमें उसके वैज्ञानिक उन्नति पर निर्भर रहती है। विज्ञानकी कोई भी शाखा जीवित रहनेके लिये और उसकी अविरत वृद्धि जारी रहनेके लिये उसके प्रति उस विशिष्ट शास्त्रके शास्त्रज्ञोंके साथ-साथ सामान्य जनताके सहानुभूतिकी भी अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसीलिये शास्त्रके विषयका सरल परन्तु शास्त्र-शुद्ध लेख द्वारा सामान्य जनतामें प्रचार करना शास्त्रज्ञोंका कर्तव्य है। नेत्रों पर का चश्मा जिस प्रकारका हो उसके अनुसार दृश्यवस्तुकी आकृति स्वास्थ्यकी विकृति दिखाई देती है। शास्त्रकी ओर देखनेकी दृष्टि बदल जानेसे कभी-कभी नये विचार और आविष्कार होते है। और इसीलिये शास्त्रकी उन्नति होती है। प्राच्य-शल्य शास्त्रके विषयमें इस लेखमें निम्न विषयों पर विचार करनेका विचार है।

(१) प्राच्य शल्य-शास्त्रका अत्यन्त उन्नतिका काल

(२) वर्तमान प्राच्यशल्य-शास्त्रका आधुनिक पाश्चात्य शल्य-शास्त्रके साथ तुलनात्मक विचार

शास्त्रकी उन्नतिका काल

आयुर्वेदीय शल्य-शास्त्रके विषयमें सुश्रुतसंहिता ही एक-मेव प्रधान ग्रंथ विद्यमान है। इसी ग्रंथके आधार पर हमको शास्त्रके भूतकालीन उन्नतिकी कल्पना और भविष्य कालीन उन्नतिकी नींव डालनेका प्रयत्न करना है। अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है कि वर्तमानमें सुश्रुतसंहिताके नामसे उपलब्ध ग्रंथ मूल सुश्रुताचार्य लिखित नहीं है। यह बौद्धकालीन नागार्जुन नामक रसायनज्ञ का किया हुआ मूल सुश्रुतसंहिताका संस्करण है।

महाभारतमें और अथर्ववेदमें विश्वामित्रके पुत्र सुश्रुतका वर्णन आता है। इससे पुराण-इतिहास-विदोंकी यह राय है की मूल सुश्रुतसंहिताका काल ईसवी सन्के पूर्व १००० सालके बाद नहीं आ सकता। अतः वर्तमान शल्य-शास्त्र का ज्ञान आजसे करीब-करीब ३००० सालके पूर्व जो ज्ञान था वही है। उसमें कुछ भी उन्नति नहीं हुई है।

सुश्रुतसंहिताके पूर्वमें आयुर्वेदका संपूर्ण ज्ञान अथर्ववेदमें संकलित था। आयुर्वेदको अथर्वका उपांग माना जाता है। जैसे सुश्रुतसंहितामें लिखा है। 'इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य-इत्यादि (सु० सं० अ० १ सू० ६) ऋग्वेदमें कटे हुए पैर या हानकी जगह कृत्रिम धातुसे बनाये हुए अवयवका उपयोग किये जानेका उल्लेख है। यथा —

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णम्
आजा खेलस परितक्तयां।
सद्यो जंघा मायसीं विशपलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधजम्॥
(ऋ० वेद. प्र० मं० १५ ऋ ११६ सू-)

अगस्त्य पुरोहितः खेलीनाम राजा तस्म संबंधिनी विशपलानाम स्त्री, संग्रामे शत्रुभिः छिन्न पदा आसीत् पुरोहितेन अगस्त्येन स्तुतौ अश्विनौ रात्रौ आगत्य अयोमयं पादं समधताम्। इत्यादि (सायनाचार्य टीका)

उपर्युक्त सायनाचार्यके टीकामें उल्लिखित अश्विनी कुमार नामक शल्य-शास्त्रज्ञों नें 'शिरःसंधान' (कटे हुए सिरको जोड़ना) जैसा अत्यंत कठिन शल्यकर्म (Operation) किया था; जो कि अभी तक संसारके किसी शल्यशास्त्रज्ञने नहीं किया है। ये दो बंधु थे। इनका और इनके किये हुये उपर्युक्त शल्य-कर्मका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण और तैतिरीय संहितामें मिलता है। सुश्रुत-संहितामें भी इसका सर्व प्रथम उल्लेख है। यथा—

यज्ञस्य शिरोच्छिद्यत ते देवा

आश्विनाव ब्रुवन् भिषजौ रैस्व इदं यज्ञस्व शिरः प्रतिधत्तमिति तावद्ब्रूतां वरं वृणवहे ग्रह एव नावत्रापि गृह्यतामिति ताभ्यामेतयाश्वित भगृह्णतहन्तो|वैयज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्ताम् (तैतिरीय संहिता ६।४।७।)

आश्विनौ देव भिषजौ यज्ञ वाहाविती स्मृतो।
दक्षस्य हि शिरच्छिन्न पुनस्ताभ्यां समाहितम् ॥
(चरक संहिता)

भीष्माचार्यके व्रण-चिकित्साके लिये सेनामें नियुक्त शल्यशास्त्रज्ञोंके यथा-योग्य सामान लेकर आनेका उल्लेख महाभारतमें मिलता है। यथा

उपतिष्टन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदः।
सर्वोपकरणैर्युक्ता कुशलैः साधुशिक्षिताः ॥
(महाभारत-भीष्म पर्व)

सुश्रुताचार्यके साथ ही साथ काशी-नरेश भगवान् दिवोदास धन्वंतरिके पास पढ़े हुए और भी अनेक शल्य-शास्त्रज्ञ उस कालमें विद्यमान थे जैसाकी सुश्रुत-संहिता के निम्न सूत्र से स्पष्ट है।

अथखुल भगवंतम मरवर मृषि गण परिवृतं आश्रमस्थं काशीराजं दिवोदासं| धन्वंतरिं मोपेत्येनव वैतरणौरभ्र पौष्कलावत करवीरो गोपुररक्षित सुस्रुत-प्रभृतयः ऊचुः ॥ (सु० स० अ० १ सू० २)

उपर्युक्त सूत्रमें 'प्रभृतयः' शब्दसे यह स्पष्ट है कि इस सूत्रमें उल्लिखित विख्यात शास्त्रज्ञोके साथ-साथ अन्य भी अनेक शास्त्रज्ञ उस समय थे।

वैदिक कालमें दृष्टिगोचर होने वाली यह आयुर्वेदीय शल्य शास्त्रकी उन्नतावस्था बौद्धकाल तक विद्यमान रही। बौद्धोंके महावग्ग नामक ग्रंथमें जीवकुमार भृत्य नामक शल्यशास्त्रज्ञने 'मुड़े हुये अंत्र' (Twisted Intestines) को उदर चीरकर ठीक करनेका उल्लेख है।

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि आजसे-करीब-करीब ३००० सालके पूर्व वैदिक कालसे लेकर ठीक बौद्धकालके प्रारम्भ तक जब संसारमें अन्य किसी चिकित्सा-शास्त्रका जन्म भी नहीं हुआ था—तब हमारे वैज्ञानिकों ने आधुनिक सभी भौतिक साधनोंके अभावमें प्राच्य शल्य-शास्त्रकी अत्यन्त उन्नतिकी थी।

तुलनात्मक विचार

आधुनिक शल्यशास्त्रका बहुतांश आधार-भूत ज्ञान आयुर्वेदसे लिया हुआ है। ऊपरके देखनेसे प्रारंभसे यह विधान कुछ धृष्टताका प्रतीत होगा। परंतु इस कथन की सत्यताका ज्ञान जिसने एक बार भी सुश्रुतसंहिता का समालोचन किया है उसको भलीभाँति हो सकता है। सुश्रुतसंहितामें ऐसे अनेक शल्यकर्मोंका इतना विशद वर्णन है और वह आधुनिक ३००० सालके बाद आविष्कृत शल्य-कर्मोंके साथ इतना मिलता जुलता है कि उसको देखनेसे 'यह आविष्कार या अनुकृति !' ऐसी आशंका मनमें उद्भूत होती है।

रोग चिकित्सक और उसका व्यवहार
(Medical Law & Ethics)

विद्यमान शल्यशास्त्रके भिन्न-भिन्न विषयोंका संक्षिप्त समालोचन करनेके पूर्व भारतीय शल्य-चिकित्सकको किस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेका आदर्श आयुर्वेद ने रक्खा है यह देखना आवश्यक है। चिकित्सकके व्यवहारके विषयमें (Medical Ethics) आयुर्वेद-में जितना सूक्ष्म उपदेश है उतना और किसी भी शास्त्रमें नहीं है। जैसा निम्न सूत्रसे स्पष्ट है।

'अधिगत तंत्रेणोपासित तं मार्येन दृष्टकर्मणा कृत-योग्येत शास्त्रं निगदता राजानुज्ञातेन नीचनख रोम्णा शुचिता शुक्ल वस्त्र परिहितेन छत्रवता दंडहस्तेन सोपानत्केन अनुध्दत वेशेन सुभतसा कल्याणाभिव्याहारेण अकुहकेन बंधुभूतेन भूतानां सुसहाय्यवता वैद्येन विशीरवानु प्रवेष्टव्या। (सु० सं० सू० स्था० अ० १)

अर्थः—जिसने चिकित्सा-शास्त्र पढ़कर उसका अभिप्राय भलीभाँति समझ लिया है, चिकित्सा-कर्म देखकर उसका खूब अभ्यास (कृतयोग्येन) किया है। जो शास्त्रको पढ़ा सकता है, जिसने (परीक्षा देकर) राजा से आज्ञा ली है, जो नाखून, बाल, कटवाकर, साफ सफेद वस्त्र पहिन कर, छाता छड़ी हाथमें लेकर, शुद्ध मनसे कल्याणकारी भाषण कर निष्कपट वृत्तिसे (अकूटकेन) सब जीवोको निज बंधुके समान मानकर उसकी सहायता करता है, वह चिकित्सक वैद्यक व्यवसाय-में प्रवेश करने योग्य है।

रोगी परीक्षा (Case Taking)

रोग-निश्चितिके लिये रोगी-परीक्षाका विवरण अत्यंत सूक्ष्म रूपसे किया हुआ है। प्रथम निदान, पूर्वरूप उराशय और संप्राप्ती इनके द्वारा रोग-निश्चिति होनेपर रोगी की प्रत्यक्ष परीक्षा करनेके लिये पंचज्ञानेद्रियोंसे और प्रश्नसे यथावत् रोगीकी परीक्षा करनेका विधान है। यथा निम्न सूत्रोंसे स्पष्ट है।

(१) तस्मात् व्याधीन् भिषगनुपहत-सत्व-बुद्धि-र्हेत्वादि-भिर्भावैर्य यावदनु बुध्येत्।

(चरक० वि० अ० १)

(२) प्रत्यक्षतस्तु खलु रोग तत्वं बुभुत्सुमानः सर्वैरिंद्रियैः सर्वानिंद्रियार्थात् अतुरगतान् परिक्षेत् अन्यभरस ज्ञानात्। (चरक० वि० अ० ४)

रोगीके नाड़ी जीह्वा, मलमूत्र इत्यादिकी परीक्षा किये बिना चिकित्सामें प्रवृत्त न होनेका विधान है। यथाः—

रोगाक्रान्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परिक्षयेत्।
नाडी, मुत्रं, मलं, जीह्वां शब्द स्पर्श दृगाकृती॥

आदौ सर्वेषु रोगेषु नाडीं जीह्वा क्षिमुत्रतः।
परीक्षां कारये द्वैद्यः पश्चात् रोगं चिकित्सयेत्
नाड्या मूत्रस्य जिह्वाया लक्षणं योन विंदती।
मारयत्याशु वै जंतुं सवैद्यो नयशो भवेत्॥

(योग रत्नाकर)

इस प्रकार आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्रके मूलमत 'त्रिदोष' सिद्धांतके अनुसार शारीरिक दोष विकृति और धातु विकृति (Pathology) का अनुमान करनेके लिये नाड़ी जीह्वा; मूत्रमल इत्यादिकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका विधान है। आधुनिक रोग-निश्चितिमें उपयोग में आनेवाले अनेक भौतिक साधनोंसे रोग-निश्चिति में बहुत सहायता होती है। परन्तु अनेक आधुनिक विद्वानोंका भी यह विचार-सम्मत है कि भौतिक साधनोंकी उन्नतिके साथ-साथ पंचज्ञानेंद्रियोंके स्वाभाविक शक्तिका और तर्क ज्ञानका ह्रास होता जा रहा है। प्राच्य शल्यशास्त्र मुख्य दो भागोमें विभाजित है।

(१) शल्य शास्त्र

(२) शालक्य शास्त्र

(१) शल्यशास्त्र :—इस विभागमें सामान्य शल्य-शास्त्र अतर्भाव होता है। यथाः—

तत्र शल्यं नाम तृण काष्ठ पाषाण पांशु लोह लोष्ठास्थि बालनख पूयास्रावांतर्गर्भ शल्योध्दरणार्थम्, यंत्र शास्त्र क्षाराग्नि प्रणिधान व्रणविनिश्चयार्थंच।' (सू० सू० अ० १)

वर्तमानकालमें सर्जरी शब्दका अनुवाद 'शल्यशास्त्र' शब्दमें किया जाता है। यह अनुवाद शास्त्र शुद्ध नहीं है। इस लेखमे रूढार्थको लेकर इस शब्दका प्रयोग किया गया है।

(२) शालक्य शास्त्रः—इस विभागमें नेत्र, नासा कंठ, मुख, कर्ण, इत्यादि अंगोंके रोगोंका विचार किया जाता है। यथाः—

'शालाक्यं नाम उर्ध्वज भुगतानां रोगाणां श्रवणनयन वदन घ्राणादि संश्रितानां व्याधीतां उपशमनार्थम्, शलाका यंत्र प्राणिधानार्थंच॥

(सु० सं० अ० १)

आधुनिक शल्यशास्त्रमें इस विभागके तीन अलग-अलग विभाग किये गये हैं।

(१) नासा, कर्ण और कंठके रोग।

(२) नेत्र रोग

(३) दंत रोग

शुद्धता और निर्जीवायुकरणः—

आधुनिक शल्यशास्त्र के (Asepsis and Disinfection) इन दो मूल भूत सिद्धांतोंकी ओर भी योग्य ध्यान दिया जाता है। आयुर्वेदीय चिकित्सा-सिद्धांतोंके अनुसार जीवाणुओंको वैषम्य जन्म उपद्रव मानते हैं। न तु दोष वैषम्योत्पादक कारण। इसी सिद्धांत पर ध्यान देते हुये शुद्धता और निर्जीवायुकरणका योग्य विचार किया हुआ है। चिकित्सकके शुद्धताका विचार पूर्वमें हम देख चुके हैं। परिचारिकोंके भिन्न-भिन्न गुणोंमें 'शौच' शुद्धता एक विशिष्ट गुण दिया है। यथा :—

उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्तरि।
शौचं चेति चतुष्को ऽयं गुणः परिचरे जने॥
(चरक सू० अ० ८)

रोगीके रहनेके स्थानके विषय में शुद्धताका पूर्ण ध्यान था। यथा :—

व्रणितस्य प्रथममेवागारमन्विच्छेत्, तच्चागारं प्रशस्त वास्त्वादिकं कार्यं

प्रशस्त वास्तुनि गृहे शुचावातप वर्जिते
निवाते नच रोगास्युः शारीरागंतु मानसः
(सु० सं० सू० अ० १८)

रोगीका व्रण और उसके चारों ओरके कमरेके बर्तन वस्त्र प्रावर्ण इत्यादि मरसीयोंसे बचानेके लिये कमरेमें औषधि-द्रव्योंसे धूपन किया जाता है। यथा :—

'ततो गुग्गुलवगरूसेर्जसवचा गौर सर्व चुर्णैलवेण-निंबपत्र विमिश्रै राज्य युक्तैर्धूपयेत्'
(सू० सू० अ० ५)

न केवलं व्रंण धूपयेत् शयनाद्यापि व्रण दौर्गंध्यापगमार्थं निलमक्षिकादि परिहारार्थंच अन्यथा नीलमक्षीकोपसर्पणात् व्रणे कृमयः पतंति।
(डलना चार्य टीका)

आधुनिक चिकित्सामें धूपन-विधिको फ्यूमिगेशन (Fumigation) कहते हैं। यह धूपन फॉर्मोणीत, गंधक, क्लोरीन आदि तीव्र जंतुघ्न-द्रव्योंसे किया जाता है। व्रण प्रक्षालन और शोधन और रोपणके लिये भिन्न-भिन्न द्रव्योंके क्वाथ (काँटे) या उनसे बनाये हुये तैल और घृतोंका प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोगके समय शुद्धता रखी जाने पर इन द्रव्योंमें जीवांशुके संक्रमण का रहना असंभव सा है क्योंकि एक-एक द्रव्य कमसे कम अग्नि पर ३ से २४ घंटों तक उबाला जाता है। प्रत्येक शस्त्र-कर्मके पूर्व शस्त्रोंको अग्निमें तपाकर शोधन किया जाता है। यथाः—

उदरान्मेदसोवर्ति निर्गता यस्य देहिनः।
कषाय भस्म मृत्कीर्णा बध्वा सूत्रेण सूत्रवित्॥
अग्नौ तप्तेन शस्त्रेषा छिंद्यात् मधुसमायुतम्।
(सु० सं० चि० अ० २ सू० ४६)

अग्नौ तप्तेन शस्त्रेण छिंद्यात् अन्यथा अतप्त शस्त्र छेदने पाक भयंस्यात् (ड० टी०)

यंत्र और शस्त्र instruments

आयुर्वैदिक शल्य-शास्त्रमें बिना धार वाले शस्त्रोंको यंत्र कहा जाता है। स्थूल मानसे १०१ यंत्र और २० शस्त्रोंका वर्णन दिया हुआ है। आधुनिक शल्य शास्त्रमें जितने यंत्र और शस्त्र हैं वे बहुतांशमें आयुर्वेदिक वर्णनके अनुसार या उनके आधारपर बनाये गये हैं। उदाहरण के लिये निम्नयंत्र और शस्त्र देखिये।

प्राच्य नाम	आधुनिक नाम
1 – सिंह-मुख स्वस्तिक यंत्र	Lion forceps.
2 – सनिग्रह अनिग्रह संदंश	Dressing forceps.
3 — मुचुंडी (वाग्भट्ट)	Fxation forceps.
4 — व्रहीमुख नाड़ी-यंत्र	Canula.
5 — वृद्धि-पत्र	Scalpel.
6 — अंचिताग्र वृद्धिपत्र	Symes Absess Knife.
7 — गर्भ-शंकू	De Capitation Hook.
8 — ताल-यंत्र	Curettee.
9 — अर्शोयंत्र	Rectal speculum.
10 — दंत शंकू	tooth Scala.

और भी अनेक उदाहरण दे सकते हैं। सीनेके सुचिओंका आकार और सेवन-विधि करीब-करीब एक ही है। यंत्रोंके बनानेकी विधि और धारा-संस्थापन-विधिका सूक्ष्म विचार किया हुआ है।

संज्ञाहरण (Anaesthesia)

क्लोरोफॉर्म, ईथर, कोकेन इत्यादि स्थानिक और सार्वदैहिक संज्ञाहारक द्रव्योंके अविष्कारसे संसारके शल्य-शास्त्रमें एक नवीन युग शुरू हुआ। इनके न होनेसे रोगी को और चिकित्सकको भी अत्यन्त कष्ट होता था। प्राच्य-शल्यशास्त्रज्ञोंका इस कठिनाईकी ओर पर्याप्त ध्यान था और इसीलिये प्रत्येक शस्त्र-कर्मके पूर्व मनोज्ञ परन्तु लघु भोजन और तीव्र मद्य रोगीको देनेका विधान है। यथा :—

प्राक् शस्त्र कर्मणश्रेष्ट भोजये दत्र मातुरम्।
पानपं पाभयेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदना क्षमः॥
(वाग्भट्ट, सू० अ० २८)

शल्यकर्मोंके सामान्य नियम

एक विशिष्ट शल्यकर्मोंका निम्न तीन भागोंमें विचार किया गया है।

१—पूर्व कर्म (preparation for operation)
२—प्रधान कर्म (Operation proper)
३—पश्चात् कर्म (Post operative treatment)

इन तीनों कर्मोंके विषयमें भिन्न-भिन्न नियम बनानेके लिये सुश्रुताचार्य जी ने पूरे तीन अध्याय लिखे हैं।

१—अग्रोप हरणीय अध्याय (सू० स्था० अ० ५)
२—अष्टविधशस्त्र कर्मीय अध्याय (सू० स्था० अ० १८)
३—व्रणितो पासलिय अध्याय (सू० स्था० अ० १८)

उपर्युक्त तीनों अध्याय मिलके शल्य-कर्मके इन तीन विभागोंका अत्यन्त सूक्ष्म विचार किया हुआ है।

प्रधान कर्मके विषयमें आयुर्वेदमें कुछ विशेषता है। सामान्य शल्यकर्म (operation) में जो भिन्न-भिन्न क्रियायें करनी पड़ती हैं उनको निम्न आठ भागोंमें विभाजित किया गया है। तात्पर्य यह है कि निम्न आठ क्रियाओंमें से एकका अधिक एक विशिष्ट शल्यकर्ममें करनी पड़ती है। यथा :—

क्रियाका नाम	आधुनिक शल्यशास्त्रमें इस क्रियाका नाम
1—छेदन	Excision.
2—भेदन	Incision.
3—लेखन	Scanification or Strapping
4—बेधन	Puncturing.
5—एषण—	Probing & Exploration.
6—आरहण	Extaction.
7—विश्रावण	Drainage.
8—सीवन	Suturing.

उदाहरणके लिये 'जलोदर' के शस्त्र-कर्ममें निम्न क्रमसे प्रधान कर्म (operation) करना पड़ेगा। यथा :—

(1) भेदन (Incision)
(2) बेधन (Puncturing)
(3) विश्रावण (Draining)
(4) सीवन (Suturing)

इसी प्रकार किस शरीरावयवमें भेदन की आकृति किस प्रकार हो, इसके भी सामान्य नियम बनाये गये हैं। यथा :—

तत्र भ्रू गंड शंख ललाटाक्षि पुटौष्ठ दंत वेष्ठ कक्षा कुक्षि वंक्षणेषु तीर्यक् छेद उक्तः।
चंद्रमंडलवत् छेदान् पावि पादेषु कारयेत्।
अर्धचंद्राकृतीश्चापि गुदे मेढ्रेच बुद्धिमान्॥
(सू० सू० अ० ५)

सामान्यतया शल्यकर्मोंके विषयमें देखा जाय तो सामान्य विद्रधिसे लेकर सिरपर आघातके बाद मस्तिष्कका कुछ भाग निकल आनेपर उसकी चिकित्साका विधान है। (सू० चि० अ० २) उदरपर आघात होनेसे, आंत्र निकल आनेसे : (सू० चि० अ० २) किसी प्रकार अंत्रमें रुकावट (Intestinal obstruction) (सू० चि० अ० १४) या छेद होनेसे उदरको चीरकर उसको ठीक करनेका विधान है। अंत्रज-वृद्धि (Oblique Inquinal Hernia) को सम्पूर्ण यानी अंडकोशमें

उतरने पर असाध्य माना जाता है। परंतु कुछ ही दिन पहिले एक आधुनिक शल्यशास्त्रज्ञ ने आविष्कार करके निकाली हुई दाह (cantery) की चिकित्सा सुश्रुतोक्त है। इसमें अंत्रज-वृद्धि अपूर्ण (Bubonocele or Incomplete Oblique Ingnibad Harnia) हो यानी उदरसे वंक्षण-नलिकामें बाहर निकलने वाला भाग जहाँ तक पहुँचा है उसके आगेके नलिकाके भागमेंमांस दाह (Cantensation) किया जाता है जिससे उस स्थान पर व्रण-रोपणके बाद कड़ी धातु (Fibro Cicatical Tissue) बननेसे नलिकासे बाहर आने वाला भाग आगे नहीं बढ़ सकता। एक नये आविष्कारके रूपमें चलने वाली यह अंत्रजवृद्धि (Oblique Inguihal Hernia) की चिकित्सा ठीक सुश्रुतोक्त है। यथा :—

अप्राप्त फलकोषायां वात वृद्धि क्रमोहितः।
तन्नया वंक्षणस्था तां दहे दर्धेदु वक्रया॥
सम्यग् मार्गावरोधार्थं कोष प्राप्तांतु वर्जयेत्।
(सू० चि० अ० १६)

इसीके चिकित्साके लिये निम्न स्थानोंमें दाह और सिरमें सोराबध करनेका विधान है। जिसके विषयमें खोजकी आवश्यकता है।

(१) त्वचं भित्वागुष्ट मध्ये दहेतद्यांग विपर्ययान्।
(२) शंखोपरिच कर्णांते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।
व्यत्यासाद्वा सिरां विध्येत् अंत्रवृद्धि निवृतये॥

इससे यह स्पष्ट है कि औदरीक शल्यकर्म (Abdominal Surgery) भी उस कालमें किये जाते थे। इसी प्रकार अर्शकी दाह-चिकित्सा (सू० चि० अ० ६) भगंदरका शल्यकर्म (सू० चि० अ० ८) अश्मरीका (Vesical Calculos) शल्यकर्म (Perineal Cystomy) (सू० चि० आ० ७) ये सभी शल्यकर्म करीब-करीब सुश्रुतके विधानके अनुसार ही किये जाते हैं। अंडकोशमें जल-वृद्धि (Hydrocele) और जलोदर (Ascites) का जल निकालनेके शल्यकर्म सुश्रुतोक्त विधिसे किये जाते हैं।

संधानीय शल्य-शास्त्र (Plastic Surgery) नामसे शल्यशास्त्रका एक भाग है। इसमें कटे हुये अंगों को जैसे नासा-कर्ण ओष्ठ इत्यादिकी—अन्य स्थानसे चर्म लेकर बनाया जाता है। शल्यशास्त्रके इस विभागके विषय में पाश्चात्य शल्यशास्त्रज्ञ डा० न्युबरजर अपनी किताबमें यह लिखते हैं।

'The Plastic Surgery of the 19th Century was stimulated by the examples of Indian Methods'

(Dr. Neuberger's History of Medicine)

कटे हुये नासाका संधान-कर्म सुश्रुतमें ऐसी उत्तमता से वर्णन किया हुआ है कि पाश्चात्य शल्यशास्त्रमें उसी का अनुकरण होता है। उस विधिका नाम भी भारतीय पद्धति रखा गया है। डा० वेबर महाशय अपने चिकित्सा शास्त्रके इतिहासमें लिखते हैं।

'They have already borrowed from them the operation of Rhino plasty' (नासासंधान)

(Weber's History of Medicine)

नेत्र-रोगों (Opthalmology) की चिकित्सामें भी अनेक सुश्रुतोक्त शल्यकर्मोंका अनुकरण न्युनाधिक फर्क करके किया जाता है। कुछ ही दिनों पहिले आधुनिक चिकित्सामें भी प्रचलित (Cataract) मोतिया बिंदुका शल्यकर्म जिसको (Needling) कहा जाता है, सुश्रुतमें दिया हुआ है। ऐसे और भी जिनको भाषा में पलकबंदी (Entropion operation) और नाखून-बढ़ना (Pterigium) कहते हैं, ये दोनों करीब-करीब सुश्रुतोक्त विधिसे किये जाते हैं। ऐसे और अनेक स्थान हैं जिनका यहाँ उल्लेख कर सकते हैं। परंतु विस्तार-भयसे लिखना असंभव है।

इसके सिवाय निम्न विषयों पर आयुर्वेदमें इतना सूक्ष्म अतः विस्तारसे विवरण है कि इनमेंसे बहुतसे विषयोंको आधुनिक वर्तमान विज्ञानके साथ लानेके लिये वर्तमान पाश्चात्य-विज्ञानसे आयुर्वेदको बहुत कम मदद लेनी पड़ेगी।

उदाहरण :—

(1) व्रण-चिकित्सा (Treatment of wounds and ulcers)

(2) सद्योव्रण-चिकित्सा (Treatment of Accidents & Injuries)

(3) दग्ध व्रण-चिकित्सा (Treatment of Burns & Scalds)

(4) व्रण-बंधन (Bandaging)

(5) रक्तस्राव-चिकित्सा (Treatment of Haemorrhage)

(6) अस्थिभग्न और विश्लेष-चिकित्सा (Treatment Fractures & Dislocations)

(7) सिराव्यध – रक्तावसेचन-चिकित्सा (Venesection & Blood-letting)

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि यद्यपि वर्तमान कालमें पाश्चात्य शल्यशास्त्र उन्नति पथपर बहुत कुछ आगे बढ़ा है तथापि प्राच्य शल्यशास्त्र भी उसके बहुत पीछे नहीं है। वैदिक कालसे बौद्ध-काल तक उसने जिस गतिसे उन्नति-पथका आरोहण किया यदि वह आगे भी जारी रहती तो यह शास्त्र संसारमें आदर्श माना जाता। परंतु भारतीयोंके दुर्भाग्य-वश बौद्धकालमें ही उसके उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध हुआ। इस शास्त्रकी आगे उन्नति न होनेके कारणोंके विचारके साथ-साथ भविष्यमें उन्नतिके मार्गोंका विचार अग्रिम लेखमें करनेका इरादा है।

आग पैदा करना

[ले० प्रो० जगमोहन लाल चतुर्वेदी, सिकन्दराबाद, दक्षिण]

क्या तुमने कभी इस ओर भी ध्यान दिया है कि आग और गर्मीसे हमें क्या-क्या लाभ प्राप्त होते हैं? यदि हमारे पाससे अग्निके सब साधन छीन लिये जायँ और सूर्य अपनी प्राकृतिक ऊष्माको खो दे तो हम सर्दीसे काँपने लगेंगे। हम भोजन न पका सकेंगे। कारखानोंमें सब काम बंद हो जायगा और कोई व्यापार न हो सकेगा। रातके समय हम अंधकारमें पड़ जायँगे, क्योंकि न चिराग ही जल सकेगा और न गैस या बिजलीका प्रकाश ही प्राप्त हो सकेगा। ऐसी अवस्थामें जीवन असह्य और दुःखमय हो जायगा। इससे प्रकट है कि मनुष्य-जीवन गर्मीके आश्रित है।

गर्मीका सबसे बड़ा श्रोत सूर्य है। पृथ्वी भी सूर्यका एक बालक है, इसलिये इसमें भी गर्मी पायी जाती है। ज्वालामुखी पहाड़ और पानीके गरम चश्मे इस बातके प्रमाण हैं कि पृथ्वीके गर्भमें बहुत गर्मी मौजूद है। इससे सिद्ध होता है कि गर्मीका पूर्ण भाग हमें सूर्य या पृथ्वीसे प्राप्त होता है।

यदि हम इस तरफ ध्यान दें कि घरमें आग जलानेके लिये हम किन चीज़ोंका प्रयोग करते हैं तो नीचे लिखी हुई चीज़ोंकी एक सूची तैयार हो जायगी :—

पत्थरका कोयला—प्राचीन कालके मनुष्यों ही ने खोज द्वारा यह मालूम कर लिया था कि कोयला जलने वाला पदार्थ है। यह केवल अनुमानकी बात नहीं है, क्योंकि हमारे पास इस बातका सबूत है, कि प्राचीन औज़ारोंसे मनुष्योंने कोयला खोद कर निकाला। पुराने ज़मानेकी कोयलेकी एक खानमें लकड़ीकी कुल्हाड़ी पाई गई है और दूसरी खदानमें कुछ पत्थरके घोड़े और प्राचीन कालके लकड़ीके पहिये मिले हैं। पुराने ज़मानेके मनुष्य मनोविनोदके लिये कोयला न खोदते थे वरन् उसे जलाने के लिये काममें लाते थे। इस भूगर्भिक रेकार्डकी पुष्टिमें हम यूनानी तत्व-वेत्ता (Theoprastus) द्वारा मसीहसे तीन सौ साल पूर्व लिखित एक पुस्तकमें इसका ज़िक्र पाते हैं। फोसिल (Fossil) पत्थरोंकी तरफ इशारा करते समय वह लिखता है कि "यह पत्थर लकड़ीके

कोयलेकी तरह जलते हैं और लोहार इन्हें इस्तेमाल करते हैं" इस रेकार्डसे सिद्ध होता है कि पत्थरका कोयला दो हज़ार वर्ष पूर्व काममें लाया जाता था, मगर पत्थरके कोयलेकी उस समय अधिक माँग न थी क्योंकि लकड़ी बहुतायतसे पाई जाती थी। पत्थरके कोयलेकी माँग उस समयसे बढ़ने लगी जब जंगलोंके कट जानेके कारण लकड़ी कम हो गई। पुराने ज़मानेमें पत्थरका कोयला सतहके निकट ही से निकाला जाता था, क्योंकि उस समय गहराईसे कोयला निकालनेकी क्रियामें पानी खदानमें भर जाता था और इस पानीको निकालनेका कोई तरीक़ा लोगोंको मालूम न था। सोलहवीं शताब्दीमें लंदनकी महिलायें ऐसे घरोंमें जानेसे हिचकिचातीं थीं जिनमें कोयला जलाया जाता था क्योंकि, सतही कोयलेके जलानेसे दुर्गंध निकलती थी। मकानोंमें चिमनियाँ भी ठीक न थीं कि दुर्गंधित पदार्थ हवामें ऊपर निकल जाय। आज कल पत्थरके कोयलेकी माँग बहुत बढ़ गई है क्योंकि अब अच्छा कोयला भी मिलता है और यह कारखानों और इंजनों इत्यादिमें काममें लाया जाता है।

पत्थरके कोयलेके सिवाय लकड़ीका कोयला भी इस्तेमाल किया जाता है। यह बहुधा घरोंमें भोजन पकानेके लिये बड़े-बड़े नगरोंमें इस्तेमाल किया जाता है, यद्यपि इसकी जगह अब भिन्न-भिन्न प्रकारके चूल्होंने ले ली है जिनमें जलानेके लिये मिट्टीका तेल या स्पिरिट काममें लाये जाते हैं। अब बिजलीका चलन बढ़ रहा है और धीरे-धीरे वह ज़माना आने वाला है जब हमारा भोजन घर-घर बिजलीके चूल्हों पर तैयार होने लगेगा। यह ज़माना अभी दूर है। भारतवर्षमें अब भी नगरों और गाँवोंमें लकड़ीका बाहुल्य है। अतएव बहुत लोग लकड़ी जलाकर ही भोजन तैयार करते हैं और ग़रीब तो इसीके द्वारा आग जलाते रहेंगे।

सभ्यताके साथ मनुष्य ने अपना भोजन पकाना सीखा और उसी प्राचीन रीतिसे अग्नि उत्पन्न करनेके तरीकोंका विकास होता गया।

हम नहीं जानते कि अग्नि पैदा करनेकी विधि सबसे पहिले किसने मालूम की। अनुमान किया जाता है कि आदिम निवासियोंने जंगलोंमें आग लगते देखा होगा। कुछ लोगोंका विचार है कि मनुष्योंने आग जलानेकी विधि वृक्षोंकी डालोंकी रगड़से उत्पन्न हुई आगको देखकर सीखी हो। कुछका ख़्याल है कि शिकारके लिये चक़माक़के औज़ार बनाते समय चिंगारीको देखकर आग जलानेका ख़्याल उनके मनमें आया हो।

ज़माना गुज़रा जब लोग सूखी हुई लकड़ीके ही टुकड़ोंको रगड़कर आग पैदा करते थे। सन् १८३६ई० में चार्ल्स डारविनने अपनी बीगल यात्रामें दक्षिणी अमरीकाके निवासियोंको इसी प्रकार आग जलाते देखा। हज़ारों वर्षों तक यही तरीक़ा प्रचलित था। इसके बाद मनुष्यों ने लोहेका इस्तेमाल किया तो चक़माक़ और लोहेको रगड़ कर आग पैदा करना सीखा। सुविधाके लिये पिस्तौलकी तरहका एक यंत्र बनाया गया जिसमें चक़माक़का एक टुकड़ा फौलादसे टकराता था जिसके कारण चिंगारी पैदा की जाती थी। इस चिंगारीसे गंधक चढ़ी हुई सलाइयोंको जलाया जाता था। आज भी कुछ ग्रामीण लोहे और चक़माक़को रगड़ कर आग पैदा करते हैं। इनकी रगड़से जो चिंगारी पैदा होती है उससे रुई या अधजले कपड़ेको जलाया जाता है। इन सब तरीक़ोंसे आग पैदा करनेमें काफी परिश्रम करना पड़ता था। इसलिये पुराने ज़मानेमें घर-घर अग्नि रखनेका विधान था।

क्या अब भी हम इसी तरहसे आग पैदा करना पसंद करेंगे? हमारे पास अब आग पैदा करनेके सुलभ साधन हैं और अब हम इस कष्टको उठानेके लिये किसी तरह तैयार न होंगे। अब तो दियासलाईकी डिबियाँ घर घर मौजूद होती हैं। एक सलाई निकाली, रगड़ा और झट आग जलने लगी। दियासलाईमें भी रगड़ का उसूल काम देता है, मगर यहाँ आग जल्दी जलने लगती है। इसका कारण यह है कि सलाई पर एक ऐसा पदार्थ लगा रहता है जो इतनी ही गर्मीसे जलने लगता है जितनी मामूली रगड़से पैदा होती है। सन् १८०५ई०में चान्सल नामी एक फ्रांसीसी ने पहिली दियासलाई तैयार की थी जिसे जलानेके लिये सलाइयोंको तेज़ाबमें डुबोना पड़ता था। इसके बाद जान वाकर (John walker) नामी अंग्रेज़ ने दियासलाइयाँ बनाई जिनको जलानेके लिये उन्हें Sand Paper के बीचमें रगड़ा जाता था

इसके पश्चात् फासफोरसका इस्तेमाल किया जाने लगा। फासफोरसमें यह गुण है कि यह बहुत जल्द जलने लगता है। इसके सिवाय दियासलाईकी टोपीमें अन्य पदार्थ भी होते हैं विशेष कर ऐसे जिनमें आक्सीजन मौजूद होती है जो सलाईको जल्द जलानेमें मदद देती है। इसीलिये दियासलाई जलाते समय धमाका होता है। इस क़िस्म की दियासलाई बनानेके लिये सलाईकी चोटी पर गोंदमें मिला हुआ पोटेशियम क्लोरेट और पीला फासफोरस लगा दिया जाता है। सलाईकी टोपीके निकटके कुछ भागपर गंधक चढ़ा दी जाती है। इस दियासलाईको जलानेके लिये उसे किसी खुरदकी सतह रगड़ना पर्याप्त है।

इस क़िस्मकी दियासलाईमें इस बातका भय था कि वह अकस्मात् रगड़ खा जाय तो जल उठे। दूसरा भय यह भी था कि फासफोरस (सफेद = पीला) एक मारक विष है। इसके एक ग्रेनसे मनुष्यकी मृत्यु हो सकती है। अतएव बच्चे जो मामूली दियासलाईकी टोपी खा लेते थे, फौरन मर जाते थे। इसके अतिरिक्त जो लोग इस किस्मकी दियासलाई बनाते थे वह भी फासफोरसके विषसे सुरक्षित न रह सकते थे। इसलिये यह एक ज़बरदस्त समस्या थी कि ऐसी दियासलाइयाँ बनाई जायँ जो जल तो आसानीसे सकें मगर जब हम चाहें तभी जलें। बेलजियमकी सरकार ने ऐसी सुरक्षित दियासलाइयाँ तैयार करनेके लिये एक पुरस्कारकी घोषणा की। इस कामके करनेमें दो फ्रांसीसी फलीभूत हुए। अब बहुतसे देशोंमें सफेद फासफोरससे दियासलाई बनाने की सन् १९१८ई०से क़ानूनन मुमानियत है। इस क़िस्मकी दियासलाइयाँ लगभग पचास वर्ष हुये तैयारकी गईं। इन दियासलाइयोंको बनानेके लिये कुछ गोंद लाल फासफोरस के साथ मिलाया जाता है जिसमें बारीक रेत भी मिला दिया जाता है। इन चीज़ोंको डिबियाकी बाहरी सतह पर लगा कर सुखा लिया जाता है। सलाइयोंको मोममें डुबो दिया जाता है। अब गोंद, पोटेशियम क्लोरेट और एण्टीमनी सलफायडको मिलाकर एक लेई सी तैयार कर ली जाती है। इस लेईमें सलाइयोंको डाल कर सुखा लिया जाता है। इन दियासलाइयोंमें यह गुण होता है कि जब तक सलाइयोंको डिबियाकी सतह पर न रगड़ा जाय यह जलती नहीं।

आज कलकी दियासलाइयोंमें उनको कहीं भी रगड़ कर जलाया जा सकता है। फासफोरसके बदले फासफोरस का सलफायड मौजूद होता है और इसके साथ पोटेशियम क्लोरेटके समान चीज़ें मिली रहती हैं।

अच्छी दियासलाइयोंकी यह विशेषता होती है कि वह फूँक मारनेके बाद फौरन बुझ जाती हैं जिससे आग लगनेकी कोई आशंका नहीं होती। इस मतलबके लिये सलाइयोंको मसाला लगानेके पहिले सुहागाके घोलमें उबाला जाता है।

हालमें दियासलाइयोंका मूल्य बढ़ जानेके कारण पेटेण्ट आग-डिबियाँ तैयारकी गईं जिनका प्रयोग सिग्रेट पीने वाले बहुधा करते हैं। इनमें चिंगारी द्वारा पेट्रोलकी वाष्प या रुईको जलाया जाता है। इनका इस्तेमाल प्राचीन कालीन आग-डिबियोंके समान किया जाता है। अब इन डिबियोंमें चिंगारी पैदा करनेके लिये एक परत (Alloy) इस्तेमाल किया जाता है जो लोहा और सीरियम (Cerium) मिलाकर तैयार किया जाता है। जब इस परत पर एक पहिया घूमता हुआ टकराता है तो चिंगारी पैदा होती है। चिंगारी निकलनेका कारण यह बतलाया जाता है कि परतके रगड़नेसे उसकी सतह छोटे-छोटे कणों में घिस जाती है जो रगड़की गर्मीसे चमकने लगते हैं।

हरड़

[लेखक—श्रीयुत रमेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

हिन्दी—हरड़

संस्कृत*—उत्पत्ति बोधक नामः—हरीतकी (हरस्य भवने जाता, भगवान् शिवके घर हिमालय में उत्पन्न होती है); गिरिजा (पर्वत पर उत्पन्न होने वाली) हैमवती हिमालय पर्वत पर होनेवाली) हिमजा (हिमालय पर उगने वाली); शक्रसृष्टा (इन्द्रसे पैदाकी गई (अमृतपान करते हुए इन्द्र से अमृतके विन्दु जमीन पर गिरे उनसे सात प्रकारकी हरड़ उत्पन्न हुई); सुधोद्भवा अमृता (अमृतसे उत्पन्न); सुधा ।

परिचय ज्ञापक नामः —हरीतकी (रंगमें हरेसे रंगकी होनेसे) ।

*संस्कृत निघण्टुकारों ने हरड़के नाम इस प्रकार लिखे हैं—

हरीतकी हैमवती जयाऽभया शिवाऽव्यथा चेतनिका च रोहिणी ।
पथ्या प्रपथ्याऽपि च पूतनाऽमृता जीवप्रिया भिषग्वरा ॥
जीवन्ती प्राणदा जीव्या कायस्था श्रेयसी च सा ।
देवी दिव्या च विजया वन्हितेत्रमिताभिधा ॥

—राजनिघण्टु आम्रादि वर्ग श्लोक २१४, २१५ ।

भाव मिश्र ने ये सब पर्याय नहीं लिखे । वे लिखते हैं—

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता ।
हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ॥
वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥

—भाव प्रकाश, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक ६ ७ ।

कैयदेव ने इसके अतिरिक्त भी कुछ पर्याय दिये हैं—

हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या हैमवत्यपि ।
कायस्था श्रेयसी ज्ञेया प्राणदा विजया शिवा ॥
अव्यथा पूतनाऽयोधा प्रमथा पूतना जया ।
जीवनीया वयस्था स्यादमृता चेतकी मता ॥

— कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग; श्लोक २०६,२०७ ।

धन्वन्तरि निघण्टु ने प्रायः सब वही पर्याय लिखे हैं जो और निघण्टुकारोंने लिखे हैं—

हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या पूतनाऽमृता ।
जयाऽव्यथा हैमवती वयस्था चेतकी शिवा ।
प्राणदा नन्दिनी चैव रोहिणी विजया च सा ।

—धन्वन्तरि निघण्टु;

यही लेखक हरीतकी की व्युत्पत्ति लिखता है—

हरस्य भवने जाता हरिता च स्वभावतः ।
सर्वरोगांश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी ।

—धन्वन्तरि निघण्टु;

राजनिघण्टु हरीतकी की व्युत्पत्ति इससे भिन्न लिखते हैं—

हरते प्रसभं व्याधीन् भूयस्तरति यद्वयुः ।
हरीतकी तु सा प्रोक्ता तत्रकी दीप्ति वाचकः ॥

—राज निघण्टु, आम्रादि वर्ग, श्लोक २२८ ।

हरीतकी की उत्कृष्टता बताते हुए अष्टाङ्ग संग्रहकार ने हरीतकी के कुछ नामोंका निर्वचन किया है—

हरणात् सर्व रोगाणां मासायुक्ता हरीतकी ।
पथ्यत्वात् सर्वधातूनां पथ्या, शिवतया शिवा ॥
यस्माद्विजयते व्याधीन् समग्रान् विजया ततः ।
अभयं सर्वरोगेभ्यो भवत्याशुरत्र शाश्वतम् ।
यतः शीलयतामेनां तेनेयमभया स्मृता ॥

— अष्टाङ्ग संग्रह, अ०, अ० ४६

गुण-प्रकाश संज्ञा—हरीतकी (सर्वरोगान् हरते, सब रोगोंको दूर करने वाली); अभया (अभयं सर्वं रोगेभ्यो भवत्याशुरथ शाश्वतम् इसके नियमित सेवनसे रोगका भय कभी नहीं रहता); विजया (विजयते व्याधीन् समग्रान्, सब रोगोंको जीतने वाली); अव्यथा (व्यथा—रोगदूर करने वाली); प्रमथा (रोगको मथ कर अर्थात् समूल नष्ट कर देने वाली); अयोधा (अव्यर्थ गुणकारक औषधि); कायस्था (शरीर बनाये रखने वाली); वयःस्था (आयु स्थिर करने वाली), पथ्या

(पथ्या त्वात् सर्वधातूनाम्, शरीरकी सब काम करती है इनके लिये हितकर हैं); प्रपथ्या (बहुत अधिक हित-कारक); सुधा, अमृता (अमृता तुल्य, अमरता देने वाली); देवी, दिव्या (दिव्य गुण युक्त); प्राणदा (जीवन देने वाली); जीव्या, जीवन्ती, जीवनीया जीवनिका (जिलाने वाली); पूतना (पवित्र करने वाली); शिवा (कल्याणकारी) श्रेयसी (श्रेष्ठ); चेतकी (चेतना, ज्ञान देने वाली, स्मृति-वर्द्धक); बल्या (बल-दायक); जीव-प्रिया (प्राणियोंकी प्रिय); नन्दिनी (आनन्द देने वाली); भिषक् प्रिया (चिकित्सक की प्रिया (चिकित्सककी भरोसा करने योग्य औषधि) पाचनी (पाचक) रोहिणी (व्रणादियोंको रोहण करने वाली)

बंगाली	हरीतकी, हर्तकी ।
गुजराती	हरड़े, हरड़ ।
मराठी	हरीतकी, हर्तकी
पंजाबी	हर्र, हर्रा
विहारी	हर्रे ।
उड़िया	करेध ।
गढ़वाली	हलर्डुंण ।
कर्णाटकी	अणिले कामि ।
तामिल	करकाय ।
नेपाली	हेरड़ो ।
वर्मा	पन्नगा ।
तुर्की	अणिलेमर
अरबी	अहलीज
मलाया	कटुकामरम् ।
अंग्रेजी	माइरोवेलेन्स (Myrobalans)।
लेटिन	टार्मिनेलिया चिबुला, विल्ड (Terminalia chelula, wild
नैसर्गिक वर्ग	कोम्ब्रिटेसी

प्राप्ति-स्थान

भारत और वर्मामें सर्वत्र विशेष कर सामयिक जंगलों-में और कभी-कभी अधिक आर्द्र मिश्रित जंगलोंमें भी मिलता है ।

उत्तर भारतमें बहुतायतसे होता है । पंजाबमें यह वृक्ष छोटा सामान्यतया ४—५ फीट गहरे तना वाला होता है। अधिक दक्षिणमें और अनुकूल अवस्थाओंमें यह अस्सीसे सौ फीट तक बड़ा आकार प्राप्त कर लेता है । सीधे नियमित आकृति वाले तनेकी गहराई ८ से १२ फीट हो जाती है । उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें निम्न हिमालय और शिवालिक मार्गोंमें सतलुजसे पूर्वकी ओर पाँच हज़ार फ़ीट तक पहुँच गया है । काँगड़ा-घाटीमें कमजोर चट्टानी ज़मीन पर लगभग ३५०० फीट पर बिखरा हुआ, अकेला या चीड़के साथ मिला हुआ मिलता है । यहाँ वृक्षकी वृद्धि इतनी अच्छी नहीं होती ।

मालायारू, हज़ारी बाग़, बंगालमें थोड़ा बहुत सब जगह मिल जाता है । आसाममें बहुतायतसे मिलता है । पूर्वीय बंगाल, विहार, अवध, मध्य भारत और दक्षिण भारतमें यह वृक्ष आम है ।

यह विभिन्न प्रकारकी ज़मीनोंमें, चिकनी ओर रेतीली जमीनमें भी मिलता है । मध्य प्रान्तमें खुले जंगलों या ग्राम्य भूमियोंमें, चट्टानोंमें आम मिलता है । दूसरे क़िस्म की ज़मीनोंमें भी होता है ।

बम्बईमें उच्च जंगलोंमें आम है, बम्बईमें मुख्यतया थाना, नासिक, नागर, खंडेश, पूना, वेलगाम, सतारा और सूरत ज़िलोंमें पाया जाता है । महावलेश्वरके प्लेटो के अन्दर ४५०० फ़ीट पर इन जंगलोंका मुख्य अंश है जिनमें छोटी लकड़ी होती है । नर्मदाके दक्षिणमें आम-तौर पर अधिक मिलता है, आकारमें भी बड़ा होता है। सत्पुड़ाके उच्च स्थलों पर दो हज़ार फ़ीटकी ऊँचाई तक बहुतायतसे मिलता है । गोदावरीके मार्गोंमें उगता है ।

हिमालय पर उच्च तल पर चट्टानों वाले और शुष्क स्थानोंमें तथा दक्षिण भारतके पहाड़ोंमें यह बहुत छोटा वृक्ष होता है । परन्तु बड़े वृक्षकी घाटियों और जंगलोंमें यह भी बड़ा हो जाता है और गहरे रंगकी लकड़ी देता है। बाह्य हिमालयमें नीलगिरी और दक्षिण भारतीय पर्वत-श्रेणियोंमें, त्रावनकोर प्रदेशमें, जहाँ कि वर्षा कम होती है, ६००० फ़ीट तक मिल जाता है ।

मद्रास प्रेसीडेन्सीमें सर्वत्र जंगलोंमें श्राम है। प्रायः शुष्क स्थानों पर पाया जाता है। कोयम्बटूरमें बड़े आकार का होता है। गञ्जाम और गुमसूरमें काफ़ी होता है।

वर्मा, लंका और मलाया प्रायद्वीपमें मिलता है। लंकामें नीचे प्रदेशमें शुष्क ज़िलोंमें होता है। सिंगापुरकी जलवायुके लिये यह अनुकूल नहीं है। वहाँके वानस्पतिक उद्यान (बौटेनिकल गार्डन) में इसको उगानेका प्रयत्न किया गया पर सफलता नहीं मिली। जावामें उगाया जा सकता है। बुटनज़र्ग (Butengorg) में किसी तरह हो सकता है और मलाया प्रायद्वीपमें कुछ भाग ऐसे हैं जो निस्सन्देह इसके लिये अनुपयुक्त नहीं हैं।

वर्णन

एक मध्माकार या बड़ा सामयिक (Deciduous) वृक्ष है ऊपरका भाग गोल मुकुटकी तरह होता है। शाखाएँ बहुत और प्रत्येक दिशामें फैलती हुई और इनके प्रान्तीय भाग प्रायः नीचेकी ओर गिरते हुए, तना वृक्ष के आकारसे प्रायःकर छोटा और सीधा कम ही होता है। ज़मीनसे तीन फीट ऊँचे तनेकी परिधि दो से तीन फीट होती है। वर्मामें तना प्रायः ऊँचा और सीधा चला जाता है।

पत्र, कलिकाएँ, छोटी शाखाएँ और नये पत्ते, लम्बे मुलायम चमकीले, सामान्यतया जंगारके रंगके और कभी कभी चाँदीके रंगके बालोंसे ढके हुए होते हैं। पत्ते एक दूसरेसे समान दूरी पर, प्रायःकर अर्द्ध-सन्मुख (Sub-opposite), अण्डाकृति या समाकार-अस्त लट्वाकार (Oblong ovate), दीर्घतीक्ष्ण (Accuminate) तीनसे आठ इञ्च लम्बे, तीन इञ्च चौड़े; तूल रोमशसे सर्वथा घने बालों वाले या सर्वथा स्निग्ध सब अवस्थाओंमें होते हैं। पत्तेकी मुख्य वाह्य नाड़ियाँ स्पष्ट, मध्य पसलीके दोनों ओर छः से बारह होती है। पत्र-वृन्त पर सिरेके समीप दो या अधिक ग्रन्थियाँ या उभार होते हैं। पत्तेकी $\frac{1}{3}$ लम्बाईसे पत्र वृन्त छोटा होता है।

कुछ स्थानोंमें नवम्बरसे पत्ते गिरने आरम्भ होते हैं और फर्वरी—मार्च तक वृक्ष पत्र-विहीन हो जाते हैं। फिर नये पत्ते मार्चसे मईमें निकलते हैं। ये हलके हरे या कभी ताम्र वर्ण होते हैं।

एक प्रकारका कीड़ा (Bagworm moth (Acanthosyche moorei = एकेन्थोसिशी मूरी वृक्षके पत्तोंको बहुत नुकसान पहुँचाता है।

छाल एक-चौथाई इंच मोटी, गहरी भूरी धूसर सामान्यतया बहुत सी उथली लम्ब अक्ष दरारोंसे युक्त और लकड़ीके वाह्य छिलकेके साथ उतरती हुई होती है।

लकड़ी बहुत सख्त, धूसर वर्ण जिसमें हरी या पीली सी आभा होती है। अन्तः काष्ठ अनियमित, छोटी, गहरी जामनी सख्त, भारी और अच्छी टिकाऊ। वार्षिक चक्र अस्पष्ट। छिद्र छोटे और प्रायःकर अर्द्ध विभक्त, एकाकी या समूहोंमें होते हैं। लकड़ीका भार तिरपनसे छयासठ पौण्ड प्रति घनफुट होता है। बहेड़ेकी लकड़ीसे भारी होती है।

पौधेकी वृद्धि सामान्य होती है। प्रति व्यासार्द्धमें छसे दस चक्र होते हैं। प्राकृतिक उत्पत्तिमें इसमें इसका अधिकतम छाया तापमान ९८° से १६०° फार्नहाइट और न्यूनतम ३०° से ६०° फार्नहाइट होता है। वहाँकी सामान्य वर्षा ३० से १३० इंच होती है।

हलकेसे सफ़ेद रंगके पुष्प स्तवक नये पत्तोंके साथ प्रकट होते हैं। हिमालयकी घाटियोंमें देरमें—जून—अगस्तमें फूल निकलते हैं। मध्य प्रान्तमें सामान्यतया अप्रैल-मईमें फूलनेके अतिरिक्त जुलाई-अगस्त तक भी थोड़े-थोड़े फूल निकलते रहते हैं।

पुष्पस्तवक दो से चार इंच लम्बा, प्रायःकर संयुक्त विवृन्तक, और इस सालके शाखोद्भेदोंके सिरे पर, प्रान्तीय और ऊर्ध्वतम पत्तोंके अक्षोंमें होता है। पुष्प उभय लिङ्गी, व्यास $\frac{1}{6}$ इंच अवृन्तक, वर्ण मैला सा सफ़ेद या पीला और गन्ध भद्दी सी। फूल प्रायःकर एक कीड़ेसे आक्रान्त हो जाते हैं।

स्थानिक भेदसे फल नवम्बरसे मार्च तक पकते हैं और पकनेके बाद शीघ्र गिर जाते हैं। फलकी आकृति और आकार बहुत भिन्न-भिन्न होता है। यह प्रायःकर पाँच लम्ब अक्षमें (Longitudinally) रेखाओं वाला,

कठोर, एकसे दो इंच लम्बा, रंगमें पीला बादामी या नारंगी भूरा, कभी कभी लाल या काली आभा लिये हुए होता है। इसमें सूखा और कठोर गूदा होता है जिसकी मोटाई भिन्न-भिन्न होती है। अन्दर पत्थर जैसी कठोर गुठली होती है, यह सारे भारका तेईससे बावन प्रतिशतक होती है। गुठली ०-६ —०-८ इंच चौड़ी, ०.५—१.६ इंच लम्बी, अण्डाकार, पीतवर्ण, ऊँची नीची, गड्ढोंसे युक्त, कठोर और अर्द्ध कोणायित होती है। हर साल फलोंकी फ़सल भिन्न-भिन्न होती है। लगभग पैंतीससे पैंतालिस ताज़े फलों या साठसे पचहत्तर सूखी हरड़ोंका भार एक पौण्ड होता है।

एक प्रकारका कीड़ा कोमल पत्तोंमें छेद करके अपने अण्डे दे देता है। पत्ता कट जानेसे इसका स्वाभाविक प्रवाह इस कटे हुए स्थान पर अधिक होता है और यह स्थान आकारमें बड़ा हो कर एक उभार या फलका सा रूप धारण कर लेता है। यह फल क्योंकि एक कीड़ेके कार्य द्वारा बना है इसलिये इसे कीट-फल (Galls) कहते हैं। प्राचीन संस्कृत लेखक, यद्यपि, कीड़ोंकी इस प्रकारकी रचना — अवास्तविक फलसे अवश्य परिचित थे जिसके लिये उदाहरणके तौर पर हम नाम ले सकते हैं—माजूफल, कर्कट भृंगी आदि, तथापि हरड़के कीट-फलों (Galls) की ओर उनका ध्यान नहीं गया था। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें इनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

भेद

छिलकेकी स्वल्पता, गूदेकी स्थूलता, आकार गोल या लम्बा तथा वर्ण आदिके अनुसार संस्कृत लेखकों ने सात भेद किये हैं। यहाँ हम उनका नाम, परिचय और उत्पत्ति-स्थान संस्कृत लेखकोंके अनुसार लिख रहे हैं*।

१ विजया—विन्ध्य पर्वत पर उगने वाली हरड़को विजया नाम दिया गया है। यह घीये जैसी लम्बी गोल, ऊपरसे पतली और नीचेकी ओर क्रमशः मोटी होती गई है। सामान्यतया इसका प्रयोग सब जगह होता है। हरड़ की सातों जातियोंमें से यह प्रधान है, क्योंकि यह सुगमता से मिल जाती है। इसका प्रयोग करना सरल है और यह सब रोगोंमें दी जा सकती है।

सर्वप्रयोगे विजया च रोहिणी शतेषु लेपेषु च पूतनोदिता।

विरेचनेस्यादमृता गुणाधिका जीवन्तिका स्यादिह जीर्णरोगजित्॥

स्याच्चेतकी सर्वं गरापहारिका नेत्रामपघ्नीयमयां वदन्ति।

इत्थं यथायोगमियं प्रयोजिता ज्ञेया गुणाढ्या न कदाचिदन्यथा॥

चेतकी च धृता हस्ते यानन्तिसृति देहिनः।
तावद्विरेच्यते वेगात् तत्प्रभावान्न संशयः॥
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजयास्मृता।
सुखप्रयोग सुलभा सर्वव्याधिषु शस्यते॥

—राजनिघण्टु, आम्रादिवर्ग, श्लोक २१९ से २२६ तक।

भाव मिश्र ने इन क़िस्मोंका इस प्रकार वर्णन किया है:—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताभया।

---

*राज निघण्टुके शब्दोंमें सात भेदोंका वर्णन इस प्रकार है—

नाम—

विजया रोहिणी चैव पूतना यामृताऽभया।
जीवन्ती चतकी चेति नाम्ना सप्तविधा मता॥

परिचय—

अलाबुनाभिर्विजया सुवृत्ता रोहिणी मता।
स्वल्प त्वक् पूतना ज्ञेया स्थूलमांसाऽमृता स्मृता॥
पञ्चास्रा चाभया ज्ञेया जीवन्ती स्वर्णवर्णभाक्।
त्र्यस्रा तु चेतकी विद्यात् इत्यासां रूपलक्षणम्॥

प्राप्ति स्थान—

विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना
सिन्धौ स्यारथ रोहिणी तु विजया जाता प्रतिस्थानके।
चम्पायाममृताऽभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये
जीवन्ती च हरीतकी निगदितः सप्तप्रभेद बुधैः॥

उपयोग—

जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः सप्त जातयः ॥

परिचय—

अलाप्रवृत्ता विजया वृन्ता सा रोहिणी स्मृता ।
पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ।
त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥

उपयोग—

विनया सर्वरोगेषु रोहिणी प्रणरोहिणी ।
प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥
अक्षिरोगों भया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् ।
चूर्णार्थे चेतकी शस्ता मयायुक्तं प्रयोजयेत् ॥

चेतकीके दो भेद —

चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥
षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥
का चिदास्वादयात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत् ।
का चित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽया चतुर्धाभेदयेच्छिवा ॥

चेतकी के गुण—

चेतकी पादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः ।
भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥
चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ।
तावद्भिद्यते वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥
नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषनद्विषाम् ।
चेतकी परमी शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता ।
सुख प्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥

—भाव-प्रकाश, पूर्वखण्ड, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक ८ से १८ तक

२—रोहिणी—

फूली हुई सी अच्छी गोल हरड़ोंके वृक्ष सिन्ध प्रदेशमें मिलते हैं। व्रणों पर लेपके रूपमें इसका प्रयोग प्रशस्त है।

३-पूतना—पतले छिलके वाली हरड़ें सिन्धमें मिलती हैं। विरेचनके लिए ये अच्छी हैं।

४-अमृता—चम्पामें उत्पन्न होने वाली मोटे गूदेकी हरड़ है। इसमें चिकित्सा सम्बन्धी गुण अपेक्षाकृत अधिक है।

५-अभया—सुराष्ट्र नामक देशमें उत्पन्न होती है। इसके ऊपर पाँच रेखायें होती हैं। यह नेत्र रोगोंको नष्ट करती है।

६-जीवन्ति—सोनेके रंग वाली यह हरड़ पुराने रोगोंमें अच्छी है।

७-चेतकी—हिमालय पर्वत पर होने वाली तीन रेखाओं वाली हरड़ है। सब रोगोंको नष्ट करती है। इस का विरेचन प्रभाव इतना तीव्र कहा गया है कि जब तक साथमें रहेगी तब तक विरेचन होते रहते हैं।

आयुर्वेदके आदि लेखक महर्षि चरकके समय हरड़के ये भेद ज्ञात नहीं थे। चरक-संहितामें चिकित्सत स्थानके प्रथम अध्यायमें रसायन-प्रकरणमें हरड़के गुण आदिका विस्तृत उल्लेख है, परन्तु इसके भेदोंकी ओर ज़रा भी संकेत नहीं किया गया। यही बात हम सुश्रुत और वाग्भट्टमें देखते हैं। अपेक्षाकृत कुछ पीछे लिखे गये निघण्टु ग्रन्थोंमें ही हम इन भेदोंका वर्णन पाते हैं।

आधुनिक वानस्पतिक विद्वानोंके मतमें भारतीयोंके ये सात भेद फलकी परिपक्वताकी विभिन्न अवस्थायें ही हैं। हम इस विचारसे आंशिक रूपमें भले ही सहमत हों, परन्तु हमारी धारणा यह है कि स्थान-भेदसे फलोंकी आकृति आदिमें जो कुछ फर्क पड़ जाता है उसके अनुसार ही निघण्टुकारों ने इन सात भेदोंकी सृष्टिकी है। चाहे जो विचार ठीक हो, यह सत्य है कि निघण्टुकारोंके ये सात भेद वर्तमान संसारको अज्ञात हैं।

प्रारम्भिक अरेबियन लेखक हरड़को जानते थे। उन से ग्रीकोंको हरड़का ज्ञान हुआ। एक्चु-एरिअस (Actuarious) ग्रीक लेखक पाँच प्रकारोंका वर्णन करता है। मरब्जन-उल-अद्वियाका रचयिता निम्न किस्मोंका ज़िक्र करता है जो फलकी परिपक्वताकी विभिन्न अवस्थाओंकी ओर संकेत करती हैं—

१-हलिलेह-ए-जीरा—फल जब प्रारम्भमें आते ही हैं तो उन्हें इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। इसका आकार लगभग जीरेके बराबर होता है।

२-हलिलेह ए—जवि—कुछ अधिक बड़ा फल, लगभग जौके आकारका।

३-हलिलेह - ए—जंगी—यह फलकी और अधिक उन्नत अवस्था है। सूखने पर यह आकारमें द्राक्षाके समान और रंगमें काला होता है। इसके दो नाम और हैं—हलिलेह–ए–हिन्दी और हलिलेह–ए–अस्वेद। ज़ंगी और अस्वेदका अर्थ होता है काला।

४-हलिलेह–ए–चीनी—फल जब कुछ कठोर हो जाता है और रंगमें हरा सा पीला होता है तब इकट्ठा किया जाता है।

५-हलिलेह–ए–अस्फ़ार—लगभग पका हुआ फल पर फिर भी इस समय यह अत्यन्त ग्राही होता है।

६-हलिलेह – ए—काबुली – पूर्ण पक्व फल।

इन छः क़िस्मोंमें से दूसरी, तीसरी और छठी क़िस्म ही चिकित्सा-प्रयोजनमें ज़्यादा काम आती है। और चौथी तथा पाँचवी क़िस्मोंको मुख्यतया चर्मकार इस्तेमाल करते हैं।

अपने जीवनके विभिन्न कालोंमें फलमें टैनिक पदार्थ के परिमाणको विभिन्नताके सम्बन्धमें ऊपर जो टिप्पणी दी गई है उसको ध्यानमें रखते हुए यह तथ्य बहुत दिलचस्प है और संकेत देता है कि पर्शियन और सम्भवतः अरब भी अपक्व फलको चर्म-कर्मके लिए एक अच्छी क़िस्म समझते थे।

आजकल व्यवहारमें अधिक प्रचलित हरड़ नम्बर तीन या जंगी हरड़ मालूम होती है। और कुछ विद्वानोंका ख़्याल है कि हिन्दुओंके चिकित्सा-शास्त्रकी विजया हरड़ सम्भवतः यही है।

कृषि

बीजकी जनन-शक्ति निर्बल है। इसका स्पष्ट कारण निश्चित रूपसे नहीं जाना जा सका। जिन फलोंमें ऊपर की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं उनमें अंकुरोत्पत्ति कम होती है। कई फलोंका ऊपरके कठोर गूदेका भाग काले चूर्णके रूपमें बदल जाता है। सम्भवतः फंगाईके कारण वे जल्दी आ जाते हैं। धूपकी अपेक्षा छायामें बोनेसे अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। बीज अपनी जनन-शक्ति कुछ हद तक एक साल तक कायम रखते हैं।

छोटे-छोटे ज़मीनके टुकड़ोंमें खाइयोंमें या दूसरी तरह से कई सालों तक मनों बीज बोये गये, परन्तु सफलता संतोषजनक परिणाम नहीं प्राप्त हुए। बीजोंकी निर्बल जनन-शक्ति तथा कीड़ों, गिलहरियों और चूहोंसे खाये जाने की सम्भावना आदि कारणोंसे सन्तोष-जनक परिणाम नहीं प्राप्त हुए।

नर्सरीमें बीजोंसे पौधे लगानेका सबसे अच्छा तरीका यह समझा गया है कि फलोंको पूर्णतया सुखा कर, ऊपर के सख़्त गूदेके आवरणको उतार कर वर्षा-ऋतुसे पहले गुठलियोंको बौक्सोंमें बो दिया जाय। तब उन्हें मिट्टीसे ढक कर नियमित पानी दिया जाय। इस तरीक़ेसे भी केवल बीस प्रतिशतक सफलता प्राप्त हुई है। गीले खादमें कुछ दिन तक फलोंको दबा कर रखनेसे अङ्कुरोत्पत्तिमें कुछ प्रभाव होता हुआ नहीं दिखाई दिया। बोनेके लिए फलोंको वृक्षसे गिरनेके साथ ही इकट्ठा कर लेना चाहिये, वृक्षपर से तोड़े नहीं जाने चाहिये।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें गिरे फलोंके कुछ भाग पर वारिशसे मिट्टी आ जाती है और ये ज़मीनमें गड़े हुए होते हैं। इनमें विद्यमान टैनिनके कारण इनके चारों ओर की ज़मीन काली हो जाती है। गूदे वाला भाग अंशतः दीमकोंसे खाया जाता है या भुरभुरा जाता है और सख़्त गुठली अनावृत हो जाती है। अङ्कुरोत्पत्ति वर्षा-ऋतुमें होती है। कभी इस ऋतुके अन्त तक नहीं होती और कुछ अवस्थाओंमें आगामी साल तक भी नहीं होती। खुले फलोंकी अपेक्षा मिट्टीमें ढके हुए फल अधिक उगते हैं।

नवजात पौधोंकी वृद्धि अपेक्षाकृत मन्द होती है। पहली मौसमके अन्त तक सामान्यतया लगभग चारसे आठ इंच तक ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी मौसमकी समाप्ति तक एक–दो फीट बढ़ जाते हैं। वार्षिक वृद्धि लगभग नवम्बरमें रुक जाती है। पत्ते इस माससे गिरना आरम्भ करते हैं और पौधे जनवरी-फरवरीमें पत्रविहीन हो जाते हैं। नई वृद्धि लगभग मार्चमें आरम्भ होती है। छोटे पौधे पालेको अच्छा बर्दाश्त करते हैं। नर्सरीसे पौधोंको प्रथम वर्षा-ऋतुमें उगाया जा सकता है।

वृक्षकी बहुत ज्यादा माँग नहीं है। यद्यपि जवानीमें यह थोड़ी छाया देता है और धूपसे रक्षामें सहायक होता है। पाले और तेज़ हवाका इस पर बहुत प्रभाव नहीं होता। आगका यह अच्छा मुकाबला करता है और

जल जानेके बाद आरोग्य-लाभ करनेकी इसमें अच्छी शक्ति है। पर इसमेंसे खूब शाखाएँ निकल आती हैं। पाँच सालमें इन नवीन शाखाओंकी औसत ऊँचाई आठ फ़ीट पहुँच जाती है।

उपयोगी भाग

फल, गुठली

ऋतुमें स्वयं पक कर ज़मीन पर गिरी हुई, ताज़ी, ऊपरसे चिकनी, गोल, भारी, पानीमें डूब जाने वाली हरड़ अच्छी समझी जाती है*। पानीमें डूब जानेका गुण जिसमें जितना अधिक होता है वह उतनी ही श्रेष्ठ समझी जाती है † इन गुणोंके साथ-साथ हरड़का भार चार तोला हो तो यह बहुत उत्तम होती है‡।

हरड़ कठोर और दृढ़ होनी चाहिए। इकट्ठा करके हिलानेसे पक्व मृत्तिका-पात्रके टुकड़ोंके समान बजनी चाहिये। हथौड़ेसे कुचलने पर शुष्क पीला चूर्ण देती हैं। जिसमें कठोर अनियमित टुकड़े भी होते हैं। पिसी हुई हरड़का चूर्ण पीला बादामी सा, शुष्क, स्वादमें भी नहीं होना चाहिये। गीला करके हाथमें मसला जाय तो आपस में मिलकर एक समूहमें बन जाता है, भुरभुराता नहीं।

अच्छे फल भारी और भरे हुए होते हैं, काले रंगके धब्बों या उभारों और कीट छिद्रोंसे रहित होने चाहिये। अंगुलियोंके बीचमें पीसनेसे या खरलमें रगड़नेसे यदि यह मैले रंगके चूर्णमें भुरभुरा जाय तो हरड़ घटिया क़िस्मकी समझनी चाहिए।

कीड़ोंसे खाई हुई, आगसे जली हुई पानी पर तैरने वाली, ऊसर भूमिमें उगी हुई, टूटी फूटी हरड़ोंको चिकित्सा कर्ममें न लें*।

संग्रह

व्यापारिक प्रयोजनके लिए पूर्ण पकने पर फल इकट्ठे किये जाते हैं और धूपमें फैला दिये जाते हैं जिससे पूर्णतया सूख जायँ। कई स्थानोंपर सर्वथा पीले तथा पूर्ण पक्व होनेसे पूर्व ही जरा सी पीलिया आने पर फल इकट्ठे कर लिये जाते हैं। धूपमें सुखा कर ये बाज़ारकी हरड़ें बन जाती हैं। सूखते समय ये बारशसे गीली नहीं होनी चाहिये। सूखते हुए ये बहुत सिकुड़ जाते हैं और झुर्रीदार हो जाते हैं।

मिलावट

पूरे फल जब मार्केटमें लाते हैं तो उनमें प्रायःकर मिट्टी रेता, अभ्रक, कुचला, सुपारी, असन (terminalia tormentora) आदि मिले रहते हैं। पिसी हरड़ोंमें कभी-कभी दिवीदिवी (cosalpinia coriaria सिसैल्पीनिया कौरिएरिया), रद्दी सुमाक (Rhus cotinus = रहस कौटिनस) और जंगली कीट फल (galls) मिला दिये जाते हैं। इन मिलावटोंको देखनेके लिये थोड़ा सा चूर्ण एक सफ़ेद काग़ज पर विरल बिखेर दें और ताल (लेन्स) से परीक्षा करें। यदि दिवी दिवी मिलाई गई है तो इसके चमकीले भूरे चपटे बीजोंके खण्ड अवश्य मिलेंगे। हरड़का बाहरका छिलका कभी कभी रंगमें दिवीदिवी बीजसे मिलता-जुलता हो सकता

---

* कालयोगात्स्वयं पक्वा पतिता तु महीतले।
नवा स्निग्धा तथा वृत्ता गुर्वीक्षिप्ता तथाऽम्भसि ॥
नियज्जेद्या तथैकस्मिन् फले चैव द्विकर्षता।
सर्वदा गुणकृत्सा तु ततोऽन्या तु विवर्जिता ॥
कैयदेवनिघण्टु, औषधि-वर्ग, श्लोक २१६, २१८।

† क्षिप्ताऽप्सु निमज्जति या सा ज्ञेया गुणवती भिषग्वर्यैः।
यस्या यस्या भूयो निमज्जनं सा गुणाढ्या स्यात् ॥
—राज निघण्टु, आम्रादि वर्ग, श्लोक २२८।

‡ नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्व द्विकर्षता।
हरीतक्याः फले यत्र तत्सर्वं गुण कृद्भवेत् ॥
कैय निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २१८।
भाव प्रकाश उत्तम हरड़की पहिचान लिखता है—
नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वा क्षिप्ता च वाम्भसि।
निमज्जेत् सा प्रशस्ता च कथिताहि गुण प्रदा ॥
नवादि गुण युक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता।
हरीतक्या फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥
भावप्रकाश पूर्वखण्ड, हरीतक्यादि वर्ग श्लोक २८,२९

* जन्तुजग्धां दवादग्धां जल पङ्के स्थिता पुनः।
ऊषरे वा स्थितां भिन्नां वर्जयेतु हरीतकीम् ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधि वर्ण, श्लोक २१९।

है, परन्तु हरड़के सूक्ष्मतम अंशका पृष्ठ झुर्रीदार दिखाई देगा, जब कि दिवीदिवी बीज चिकने होंगे।

रासायनिक विश्लेषण

हर्र फ़िडोलिन (१८८४) ने फलसे एक नया ऐन्द्रिक अम्ल पृथक् किया जिसे वह चिबुलिनिक अम्ल कहता है। यह सम्भवतः गैलो—टैनिक एसिडका स्रोत है।

एम० पी० एपेरी (१८८८) के अनुसार काली हरड़ में एक हरे रंगका तैलीय रेज़िन होता हैं जो एल्कोहल, ईथर, पेट्रोलियम स्पिरिट और टर्पेन्टाइनके तेलमें घुलनशील है। वह इसे माइरोबैलेनीन नाम देता है।

हरड़में विद्यमान टैनिन्समें लगभग सम्पूर्ण पाइरोगैलोल टैनिन्स होते हैं। गैलोटैनिक एसिड भी होता है। भारतीय फलोंमें शुष्क फलके भारका अट्ठाईससे छियालीस प्रतिशतक टैनिन होता है। बौम्बे प्रेसीडेन्सीमें आक्टूबरमें इकट्ठे किये गये फलोंकी अपेक्षा मार्चमें इकट्ठे किये हुये में टैनिनका परिमाण अधिक था। वर्मामें उगे हुए वृक्ष के प्रत्येक भागमें पिल्ग्रिम (१९२३) ने अच्छे परिमाणमें टैनिन पाया। शुष्क पत्तोंमें चारसे सत्ताईस प्रतिशतक, शाखाओंकी छालमें लगाया छब्बीस प्रतिशतक, अन्तस्त्वक् में बाईस प्रतिशतक, तनेकी बाह्य छालमें लगभग बारह प्रतिशतक और लकड़ीमें सात प्रतिशतक टैनिन था। हूपरने भारतीय छालमें तैंतीस और चौतीस प्रतिशतक प्राप्त किया।

हरड़के अनेक नमूनोंके किये गये विश्लेषणसे मालूम होता है कि एक ही वृक्ष परसे फलोंकी वृद्धिको विभिन्न अवस्थाओंमें लिये गये हरड़ोंमें गलो-टैनिक एसिड छःसे तीस प्रतिशत तक विभिन्न संघटनोंमें होता है। लम्बोतरी, नोकीली, ठोस और पीली हरी हरड़ोंके नमूने परीक्षामें गोल स्पञ्जी हरड़ोंके नमूनोंकी अपेक्षा इतने अधिक बढ़िया पाये गये कि उन्हें एक भिन्न जातिके वृक्षकी उपज समझनेकी भूल हो सकती है। व्यापारमें फलोंको जाँचका एक सामान्य तरीका यह होता है कि फल झुर्रीदार हैं या चपटे पृष्ठके। यह परीक्षा ठीक नहीं मालूम होती। व्यापारिक हरड़ोंके नमूनेमें औसत टैनिक एसिड इकतीस प्रतिशतक होता है। बाज़ारमें मिलने वाले फलोंमें तीनसे सात तक विभिन्न प्रतिशतकतामें आर्द्रता होती है और ज्वलन पर बची हुई राखका परिमाण दस प्रतिशतक होता है। टैनिक एसिड मुख्यतया गूदेमें होता है। फलोंमें एक हरित-वर्ण तैलीय रेज़िन (Olea-resin) होता है जिसका नाम माइरोबैलेनीन है। कीट फल (Galls) में टैनिक एसिड १३.१ प्रतिशतक होता है।

चिबुलिक एसिड—फलोंसे यह निम्न विधिसे प्राप्त किया जाता है। सूखे फल पूर्ण किये जाते हैं। साधारण तापमान पर नब्बे प्रतिशतक एल्कोहलमें दस दिन तक भिगोये जानेके बाद निचोड़ कर द्रवको छारण पत्र (filter paper) में छान लिया जाता है। इससे एल्कोहल पूर्णतया अलग कर लें और अवशेषको तब गरम जलमें घोलें। इसमें ठण्डा पानी तब तक मिलायें जब तक दूधिया रंग बन्द न हो जाय। इस सबके बैठनेके बाद छान लें। धारण से प्राप्त द्रव्यमें सोडियम हरिद् इतना मिलाएँ कि स्थिर गदलापन आ जाय और तब घोल को इथाईल एसिटेट (ethyl acetate) के साथ मिलाकर हिलाएँ जो चिबुलिक और टैनिक एसिडको हल कर लेता है। टैनिक एसिडको अलग करनेके लिये इथाईल एसिटेटको पातित (distil) कर लें और अवशेषको पानीमें घोल लें। और ईथरके साथ हिलाएँ; रखा रहनेसे जलीय घोलसे चिबुलिक एसिडके स्फटिक पृथक् हो जाते हैं और गरम जलसे पुन: स्फटिकीकरण किया जा सकता है। चिबलिक एसिड ३'५ प्रतिशतक-निकलता है। गरम करनेसे यह लगभग २००°से पिघलने लगता है। औप्टिकलि एक्टिव aptically active है।

गुठलीके अन्दरके गूदेमें एक स्वच्छ पारदर्शक, लगभग रंग रहित या पीताभ द्रव तेल ३६.७ प्रतिशतक निकलता है, यह स्वादु और भश्य तेल चिकित्सामें काम आता है। यह तेल स्वादु और भश्म होता है। तेलके एक नमूनेकी परीक्षा की गई जिसका अम्लीय मान (acid value) ८.६ था, साबुनीकरण मान (raponification value) १९२.६ आयोडीन मान (iodine value) ८७.५ था। अविलेय स्निग्ध अम्ल (fatty acid) और साबुन बनने वाला पदार्थ (unraponi fiable matter) ९६.२ प्रतिशतक थे। गुठलीमें टैनिन नहीं होता।

(शेष फिर)

आगरेका हवाघर

[ले० श्री द्वारिका प्रसाद गुप्त एम०एस-सी०]

आगरेकी सैर करने वालोंमें ऐसे बिरले ही निकलें जो ताजमहलको न देखने जायँ। परन्तु इसी प्रकार कौतूहलपूर्ण और भी अनेक स्थान हैं जिन्हें देखनेसे सहज ज्ञानवृद्धि हो सकती है। आगरेका वायु-परीक्षणालय ऐसी ही एक संस्था है।

आगरेसे ग्वालियर जाने वाली सड़क पर चौथे मील-स्तम्भके पास स्थित आगरेका हवाघर (Upper Air observatory, Agra) दिनमें अपनी खड़खड़ तथा रातमें दमकती हुई बत्तियों द्वारा अपना विज्ञापन करता रहता है। इमारतकी सादी बनावट तथा लाल रङ्गसे शीघ्र ही निश्चित हो जाता है कि हम 'हवाके आधुनिक ताज' के पास खड़े हैं।

यह हवाघर भारतवर्षकी ही नहीं बल्कि एशिया भरकी एक उच्च कोटिकी वैज्ञानिक संस्था है जिसके विभिन्न विभागोंका क्षेत्रफल १४ एकड़ है। इन विभागोंका केवल एक ही लक्ष्य है—ऊपरी वायुमंडलका वैज्ञानिक परीक्षण। यह वायुमंडल ही प्रकृतिका कार्यालय है जहाँ पर तूफ़ान, आँधी, मेंह तथा प्रकृति नटीके अन्य अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक 'कार्य-कलाप' हुआ करते हैं।

कोनेके दरवाज़ेसे एक पगडंडी जनरल सेक्शनकी ओर जाती है। इस विभागका वैज्ञानिक महत्व तनिक भी नहीं है। इसके द्वारा इस संस्थाकी तथा ३५ और ऐसे ही छोटे-छोटे हवाघरोंकी कार्य-व्यवस्थाका प्रबन्ध होता है। ये छोटे-छोटे हवाघर विभिन्न श्रेणीके हैं और फ़ारसकी खाड़ीसे बर्मा तक अनेक स्थानोंमें फैले हुए हैं। यहाँसे ऊपरी हवा तथा मौसम संबन्धी तार प्रति दिन पूना, कँराची, कलकत्ता (Forcastng) पूर्व-भाषी भविष्य-वाणी केन्द्रोंको जाते रहते हैं। इन्हीं तारोंके आधार पर ये केन्द्र आगामी मौसमकी पूर्व सूचना देते रहते हैं।

दक्षिण-पश्चिमकी ओर कुछ दूर चलकर एक एंजिन-घर है जो स्वयं अध्ययनकी वस्तु है। यहाँ विद्युत-विश्लेषण (Electrolysis) द्वारा पानीसे उद्जन गैस (Hydrogen) बड़ी मात्रामें बनाई जाती है। लोहेके बेलनों (Iron Cylinders) में अतुल दबाव द्वारा भरकर दूसरे हवाघरोंको भेजी जाती है। पानीका दूसरा अवयव ओषजन (Oxygon) हवामें मिल जाता है। इसको भी एकत्रित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। कर्बन-द्वि-ओषिद (Corbon Dioxide) भी तैयार और विशेष दबाव डालकर द्रवित की जाती है। द्रवित कर्बन-द्वि ओषिदके एक बेलनको टेढ़ा करके यदि उसकी वाल्व खोलदें तो द्रवित गैस दबावमुक्त होने पर बड़ी तेज़ीसे वाष्प बनती है, पड़ोसकी प्रत्येक वस्तु तथा स्वयं को इतना ठंडा कर देती है कि थोड़ा सा द्रव जम भी जाता है। यह ठास कर्बन-द्वि-ओषिद बहुत जल्दी ही वाष्प बन जाती है। इस प्रकार तापक्रम ८०°शतांश तक गिर जाता है। इसके अनेक उपयोग तथा प्रयोग हैं।

एंजिन-घरके सामने इमारतोंका एक समूह है जिसमें वायु-निरीक्षकका दफ्तर, गुब्बारे बनाने का कमरा तथा एक बढ़ई-घर है। यहाँ पर ज़मीनके भीतर एक शीत-संग्रह (Cold storage) है जिसमें गुब्बारे, रबड़की चादरें तथा वे वस्तुएँ रक्खी रहती हैं जो अधिक गर्मीके कारण ख़राब हो जाती हैं। इस कमरेके एक कोनेमें हवा से फुलाए हुए गुब्बारोंके फटनेके ज़ोरदार धड़ाके अक्सर सुननेमें आते हैं।

यहाँसे एक सड़क घासके मैदान और बेल-पत्तोंमें होकर हवाघरके मुख्य भवन पर पहुँचती है। यहाँ छोटे-बड़े अफ़सरोंके दफ्तरोंके अतिरिक्त एक वर्कशाप है जिसमें हवाघरमें स्थायी-रूपसे काम आने वाले यंत्रोंकी मरम्मत होती है, तथा प्रति दिनके कामके अनेक यंत्र बनते हैं और नए यंत्रोंका आविष्कार भी होता है। हवाघरके प्रधान अफ़सर इस कारख़ानेमें बहुत दिलचस्पी रखते हैं और अपना समय, शक्ति तथा विचार अधिकतर इसीमें लगाते हैं। इसी भवनमें एक प्रयोगशाला है जिसमें यंत्रोंका परीक्षण तथा फोटोग्राफीका विशेष प्रबन्ध है। एक दफ्तर और है जहाँ पर बाहरके ३५ स्टेशनोंसे आया हुआ वायु तथा मौसम संबन्धी मासिक, वार्षिक व दैनिक

डेटा (Data) की जाँच पड़ताल होती है और प्रेसके लिये प्रतिलिपि तैयार की जाती है।

मुख्य भवनके उत्तर पूर्वीय कोनेमें सीढ़ियों द्वारा एक चबूतरे पर चढ़ सकते हैं जो धरातलसे ८० फीट ऊँचा है। इस मीनारके ऊपर तीन यंत्र लगे हुए हैं (१) हवा मुर्ग (Wind Vane)—जो कि प्रत्येक ऐसी संस्थाका प्रधान और मनोरंजक यंत्र है, जिससे हवाकी दिशा मालूम होती है। (२) रौबिन्सन कप वायुगति मापक (Robinson cup anemometer) हवाकी रफ़्तार नापनेके लिये और (३) धूप-नापक (Sunshine recorder) जिसके धूप द्वारा जले हुए पत्र-लेख (Chart) से धूप कितने घंटे रही और किस-किस वक्त रही, यह बात मालूमकी जा सकती है।

विभिन्न ऊँचाइयों पर हवाकी गति-विधि (Velocity) नापनेके लिए इसी मीनारसे गुब्बारे छोड़े जाते हैं। उद्जन गैससे भरे हुए रबड़के गुब्बारे छोड़े जाते हैं। उद्जन गैससे भरे हुए रबड़के गुब्बारेसे एक हल्की लम्बी डोरी बाँध दी जाती है। डोरीकी लम्बाई पहिलेसे ही मालूम होती है और इसमें रंगीन पतंगी कागज़ भी बाँध दिया जाता है। गुब्बारा पड़ोसकी वायुसे हल्का होनेके कारण ऊपर उठता जाता है, थ्यडोलाइटकी दूरबीनमेंसे इसको अनुकूल मौसममें लगभग १ घंटे तक देख सकते हैं। पेचों द्वारा यह दूरबीन क्षितिजके समानान्तर (Horizontally) और लम्बाकार (Vertically) चारों ओर घुमाई जा सकती है जिससे कि गुब्बारा जो इधर-उधर हवाके अनुसार ऊपर उठता है, दिखाई देता रहे। प्रत्येक मिनिटके समयान्तरसे (१) दूरबीनके केन्द्र पर डोरी (पूँछ) द्वारा निर्मित कोण (२) गुब्बारेकी कोणीय ऊँचाई (altitude) और (३) कोणीय हटाव (Hori zontal angular displacement) ये तीनों नापे जाते हैं। इनकी सहायतासे तथा थ्यडोलाइटके स्थिरांकोंके पूर्व-ज्ञानसे गुब्बारेकी दूरी निकाली जा सकती है। दूरी मालूम कर लेने पर गुब्बारेकी ऊँचाई त्रिकोणमितिके सिद्धान्त द्वारा ऊँचाई (कोणका स्पर्श (Tan altitude) = $\frac{\text{गुब्बारेकी ऊँचाई}}{\text{गुब्बारेकी दूरी}}$) आसानीसे निकल आती है।

इस प्रकार विभिन्न ऊँचाइओं पर गुब्बारे द्वारा एक मिनामें तय किया हुआ फासला मालूम पड़ जाता है। यही संख्या उस ऊँचाई परकी हवाका वेग है, और इसकी दिशा यही है जिस ओर गुब्बारा उड़कर जाता है। इस प्रकार ५०० मीटरके अन्तरसे १५-२० किलोमीटर तककी हवाकी गति-विधिका ज्ञान हो जाता है।

इस मीनारके नीचले भागमें एक स्टैण्डर्ड भार-मापक (Barometer) और एक सूक्ष्म-भार-लेखक (Micro barograph) यंत्र सुसज्जित हैं। सूक्ष्म भार-लेखक यंत्र कमानीदार भारमापक (Aneroid Barometer) का परिष्कृत रूप है। इसके द्वारा वायुमंडलके प्रतिक्षण बदलते हुए दबावका अखंड लेख मिलता है। ये लेख वायु-भार संबन्धी झुकाव (Continuous record) तथा विशेषतायें (Barometric tendencies and characteristics) बहुत स्पष्टतया बनाते हैं। इनका उपयोग मौसम-चार्टके विश्लेषण करनेके आधुनिक तरीकोंमें अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। घटता हुआ वायु-भार तूफानी मौसमका सूचक है, चढ़ते हुए वायु-भारसे प्रशांत मौसमकी आशा की जा सकती है।

इन यंत्रों द्वारा हवा (वेग और दिशा) तथा भार-परिवर्तन नापनेके बाद वायुमंडलका तापक्रम और आर्द्रता का ज्ञान भी आवश्यक है। ये चार (वायु, भार, आर्द्रता और तापक्रम) बादल और जल-टपकन (Precipitation) जिसके अंतर्गत ओस, वर्षा, हिम और पाला भी आ जाते हैं को मिलकार छः ही मुख्य अंग है जिनके द्वारा प्रत्येक स्थानका मौसम प्रभावित होता है। इसलिये इनको 'वायुमंडलीय तत्त्व' कह सकते हैं। कभी-कभी धूल कण और आकाश-विद्युत भी शामिल कर लिए जाते हैं। पूर्वकी ओर १०० गजके लगभग श्वेतवर्णके कई स्टीवेन्सन झरोकेदार (Screens) घर मिलते हैं। आगरेके

तीव्र मौसमकी कटुताके ये स्क्रीन शिकार बने रहते हैं। इन स्क्रीनोंके अन्दर उच्चतम, न्यूनतम, नम और शुष्क तापमापक, तथा ताप-लेखक और आद्रता लेखक (Hygrometer) यंत्र रहते हैं। ये सब ही स्वयंलेखक यंत्र हैं और मौसमके तत्वों (वायुकी आद्रता और तापक्रम) द्वारा इन पर जो बीतती है उसकी कथा लिखा करते हैं। स्टीवैन्सन स्क्रीन इन यंत्रोंकी सौर-विकीरण (Solar radiation) से रक्षा करते हैं और हवाको बे रोक टोक गुज़रने देते हैं। घासका तापक्रम देखनेके लिये घास-तापमापक घासमें छिपा रहता है। पास ही एक घेरेमें एक साधारण और एक स्वयंलेखक वर्षा-मापक यंत्र रहते हैं। स्वयंलेखकमें जब पानीकी सतह ऊपरको उठती है तो एक हलका सा तरैया (Float) भी उठता जाता है। इसमें लोहेकी नुकीली स्याही भरी एक कलम लगी रहती है। यह कलम एक घूमते हुए ढोल पर वर्षाकी मात्रा ग्राफके रूपमें खींचती रहती है।

विज्ञानके इन खिलौनोंको देखनेके बाद ही दर्शकको एक गगन-चुंबी मूर्त्तिसे परिचय करना पड़ता है। बेट साहबकी झोपड़ी (Bate's pole hut) में से निकलते हुए इस यंत्रको भार-नली वायुवेग-लेखक (Pressure-tube Anemometer) कहते हैं। यह भी एक स्वयं लेखी यंत्र है और धरातलकी हवाके वेग और दिशाका अखंड हिसाब (Continuous record) रखता है। वायु-भारकी तरह वायुकी गति विधि (Velocity) भी प्रतिक्षण बदलती रहती है। अनिवार्य रूपसे इस यंत्रके दो भाग होते हैं—(१) ऊपरी हेड (Head) और (२) लेखक (Record) जो दो 'कोम्पो' नलियों द्वारा एक दूसरेसे मिले रहते हैं। 'हेड' बहुत हल्का होता है और आज़ादीसे घूम सकता है। यह इमारतोंसे कई फीट ऊँचा रहता है। हेडमें कुछ छेद होते हैं।

लेखक-भागमें मुख्यतः बेलनके आकारका (Cylinderical) एक बर्तन होता है जिसमें पानी रहता है। इस बर्तनमें उलटी बोतलके आकारका ताँबेकी चादर का एक तरैया Float) ऊपर नीचे उठ बैठ सकता है। हेडसे आने वाली एक नली पानीके बर्तनसे जुड़ी होता और दूसरी फ़्लोटके अन्दर आती है। हैडके सूराखोंसे यह नलियाँ इस प्रकार संबंधित हैं कि हवा चलने पर कुछ हवा सूराखोंके सहारे बहती है और बर्तनकी कुछ वायु खिंच आती है। इस प्रकार फ़्लोटके चारों ओर पानी पर हवाका दबाव कम हो जाता है। दूसरी नलीके द्वारा जो फ्लोटके अन्दर जाती है—थोड़ी सी हवा फ्लोटमें पहुँच कर वहाँका वायु भार बढ़ा देती है। इस प्रकार हवाके वेगके अनुसार फ्लोट ऊपर नीचे सरकता है। स्पष्ट ही है कि फ्लोटके सरकनेकी मात्रा हवाके वेग पर ही निर्भर होगी। फ्लोटके ऊपरी भागसे एक छोटी पतली किन्तु सीधी छड़ बर्तनमेंसे बाहर निकली होती है। इसमें एक को-किल लेखनी लगी रहती है। इस लेखनी द्वारा फ्लोटकी सरकन एक ऐसे ढोल-पत्रपर अंकित होता रहता है जो घड़ीके यंत्र द्वारा चौबीस घंटेमें एक चक्कर पूरा कर लेता है। ऊपरी 'हैड' से स्पातकी एक छड़ भी आती है जो हवाके साथ घूमती रहती है और हवाकी दिशा चित्रित करती है। देखे बिना इस अनुपम यंत्रकी कल्पना करना कठिन है। यंत्रके लेख-चित्रको देखनेसे ज्ञान होता है कि कितनी ही शान्त और धीमी हवा क्यों न हो उसमें प्रतिक्षण घटाव-बढ़ाव तथा दिशा-परिवर्तन होते ही रहते हैं।

यहाँसे सात आठ गज़की दूरी पर एक अद्भुत यंत्र देखनेका मिलता है जिसे मिलनेशाका भूकम्प-लेखक कहते हैं। सिद्धान्ततः यह एक दोलक (Pendulum) है जो बजाय घड़ीके (Seismograph) दोलककी तरह लटकनेके क्षितिजके सामानान्तर एक स्तम्भ पर अवलम्बित होता है। चूने और ईंटके बने इस स्तम्भकी नींव ४० फीट गहरी होती है। दोलकके स्वतंत्र छोरसे एक नुकीली वस्तु लगी रहती है। इसके द्वारा एक घूमते हुए ढोल पर चिपके हुए एक काजल लगे कागज पर रेखाएँ खिंचती रहती है। और मिनट मिनटके समयान्तर पर बिन्दु बनते जाते हैं। साधारणतया ये रेखाएँ सीधी होती हैं परन्तु जब भूकंप द्वारा स्तम्भ हिलता है तो दोलक भी हिलता है और सीधी रेखाओंके स्थानमें लहर जैसी टेढ़ी रेखाएँ आ निकलती हैं। इन लहरोंके झोकोंका कद भूकम्पकी तीव्रता पर निर्भर करता है।

हाँ, इस यंत्र द्वारा भूकंपके हटाव २०० गुणे बढ़े हो जाते हैं। भूकम्प आनेके समयका ज्ञान मिनट-मिनट पर बनने वाले बिन्दुओंको गिननेसे होता है। इस यंत्रके एक रुपान्तरमें नुकीले विन्दु और काजल-पत्रके स्थानमें ब्रोमाइड पेपर और प्रकाशकी किरणका उपयोग किया जाता है। बादमें यह पेपर डेवेलप कर लिया जाता है।

आकाश-संबंधी छठे तत्त्व -- बादल-के अध्ययनके लिए उनकी ऊँचाई दिशा और वेग जानना आवश्यक है। ऊँचाईका ज्ञान तो गुब्बारों द्वारा हो जाता है। गुब्बारे बादलोंमें अदृश्य हो जाते हैं। अदृश्य होनेमें जो समय लगता है यदि उसका गुणा गुब्बारेके वेगसे कर दिया जाय तो बादलकी ऊँचाई निकल आती है। दिशा और वेग एक यंत्र द्वारा जिसे नीफोस्कोप (Nephoscope) कहते हैं, मालूम हो जाते हैं। यंत्रकी बनावट और प्रयोग विधि बहुत सरल होते हुए भी बिना देखे समझना कठिन है। बादलोंकी सार्वदेशिक विभाजन-विधि बहुत ही रोचक है। बादलोंका वैज्ञानिक अध्ययन भी शिक्षाप्रद है। इस विषयके लिये तो एक स्वतंत्र लेखकी आवश्यकता है।

अनेक मत-मतान्तरोंको ध्यानमें रखते हुए यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि पृथ्वीसे १८५ मील ऊपर तक थोड़ी बहुत मात्रामें हवा मिलती है। दिन प्रति दिनका मौसम जाननेके लिये तथा वायुमंडलकी गति विद्या (Dynamics of the atmosphere का अध्ययन करनेके लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ऊँचाईके साथ-साथ तापक्रम, आद्रता तथा वायुभार किस प्रकार घटते-बढ़ते हैं और विभिन्न मौसमों-में तथा स्थानोंमें इस घटाव-बढ़ावका क्या क्रम है। वायु-मंडलकी इस प्रयोजनसे थाह लेनेके कई तरीके हैं। बहु-तापक्रम सूराक (Multiple temperature indicator) ऊर्ध्व वायु तापलेखक (upper Air Thermograph) तथा साडिन्डग बैलून (Upper Air Thermograph) बहुधा प्रयोगमें आते हैं। इनका सिद्धान्त यह है कि द्विधातुकी एक टेढ़ी पत्तीके वक्र-पनकी मात्रा तापक्रम बदलने पर बदल जाती है। अमुक तापक्रमकी हवा किस ऊँचाई पर है यह जाननेके लिये उस तापक्रमके लिये विशेष वक्रकी पत्ती वाला यंत्र छाँट लिया जाता है। यह एक गुब्बारेके साथ उड़ाया जाता है। नियत तापक्रमके मिलने पर टेढ़ी पत्ती इतनी टेढ़ी हो जाती है कि उसके द्वारा एक विद्युत चक्र जो अब तक अपूर्ण था—पूरा हो जाता है और बिजलीसे गरम हो जलनशील मिश्रण जल उठता है। धूँआ दुर्बीन द्वारा देखा जाता है जिससे यह सूचना मिल जाती है कि नियत तापक्रमकी ऊँचाई पर गुब्बारा पहुँच गया—यह ऊँचाई गुब्बारेकी रफ़्तारसे मालूम हो जाती है।

ऊपरी वायुमंडलकी थाह लेनेके एक और तरीकेको आकाश-लेखी (Meteorograph) कहते हैं। इसके द्वारा वायु-भार, तापक्रम और आद्रताका लेख मिल जाता है। कमानीदार भारमापक (Aneroid barometer) जिसकी थोड़ी हवा निकाल ली जाती है ज्योंही यंत्र ऊपर उठता है, फैलता जाता है। एक रेखाके रूपमें इस घटते हुए दबावका लेख बनता जाता है। इस लेखको एक छोटे-काँच पट पर एक पतली धातुकी नोंक खुरचती जाती है। इसी यंत्रमें तापक्रमके लिये दो पत्तियाँ होती हैं एक जर्मन सिल्वरकी और दूसरी इनवार की जो नीचेकी ओर एक दूसरेसे मिली होती हैं। इनवार निकिल और है स्पातका एक धातु-संकर है जिसमें ३६% निकिल होती है। इसका लम्ब-प्रसार गुणक (Coeff of linear expansion) = ८.७×१०^{-७} हैं। इस लिये साधारण तापक्रम परिवर्तनसे इसकी लम्बाई घटती बढ़ती है)। परन्तु तापक्रम परि-वर्तनके कारण जर्मन सिल्वरकी पत्ती छोटी और बड़ी होती रहती है—यह खुरचने वाली नोंकको ऊपर-नीचे की ओर ढकेलती रहती है। इस प्रकार भार-द्योतक रेखाके ऊपर नीचेके झोकोंसे तापक्रम परिवर्तनका ज्ञान होता है। साथही साथ एक लोम-क्लेद-लेखक (Hair hygrograph) उसी कच-पट पर आद्रताकी रेखा खींचता है। समस्त यंत्र अल्मूनियमके एक पतले बेलनमें रखा जाता है। और यह बाँसके एक हल्के पींजड़ेमें बाँध दिया जाता है। यह पींजड़ा गुब्बारेसे लटका दिया जाता है।

ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं वायुमंडलका भार कम होता जाता है। ऊपर की ओर उठा हुआ गुब्बारा उस ऊँचाई पर जाकर फट जाता है जहाँ पर कि गुब्बारेका आतंरिक

गैस भार वायुमंडलीय दबावसे बढ़ जाता है। यह यंत्र कहीं निर्जन अथवा सजन स्थानमें गिर पड़ता है और इधर-उधरसे गुज़रने वालोंका ध्यान चमकती पीतल-पत्ती (जो बाँध दी जाती है) द्वारा सहज ही आकर्षित कर लेता है। इस यंत्रके साथ एक आदेश पत्र लगा रहता है जिसमें पाने वालेसे प्रार्थना की जाती है कि वे इसे सुरक्षित रक्खें और दफ्तर हवाघर आगरा या कलेक्टर के यहाँ भेज दें। इसके लिए मार्ग व्यय और कुछ इनाम भी मिलता है। काँच पर पहलेसे ही वायु-भार और तापक्रमके चिह्नोंसे अंकित होता है। इस प्रकार प्राप्त किया हुआ आकाश-लेख कर्वन अक द्वारा ४२ गुणा बढ़ा लिया जाता है और वैज्ञानिक तरीकेसे आर्द्रता और तापक्रमके परिवर्तनका ज्ञान हो जाता है वायुमंडलकी 'थाह लेने' का यही मतलब है। आँधी मेंह, तूफान अथवा प्रशांत सब प्रकारके मौसममें इस प्रकारकी खोज कई सालसे हो रही है जिसके आधार पर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्त बनते और परीक्षित होते रहते हैं।

वायु-विद्या एक प्रगतिशील विज्ञान है। जिन समस्याओंको इसे हल करना है वे भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। वायुयान, खेती तथा मानवीय जीवनके अनेक विभागोंमें इसकी उपयोगिता आसानीसे आँकी नहीं जा सकती है। इसका क्षेत्र सार्वदेशीय है और वैज्ञानिकोंका एक संघ इसकी उन्नतिमें संलग्न है। भारतवर्ष ने भी इसमें अपना सहयोग दिया है और आगरेके हवाघर ने जो भाग लिया है वह कम महत्वका नहीं है। इस लेख द्वारा एक झाँकी लेनेका प्रयास किया गया है। वास्तविक ज्ञान तो साक्षात्कारसे ही हो सकता है।

तरुणाईकी वृद्धि कैसे करनी चाहिये ?

(अनुवादक - श्री राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी० एल०टी०)

कुछ दिन हुये एक प्रसिद्ध डाक्टर सर विलियम ओसलर ने कहा था कि चालीस वर्ष पश्चात् जीवन रहने योग्य नहीं रह जाता। विवाद रूपसे उन्होंने कहा "उस समय तक एक व्यक्तिके जीवनके सर्वोत्तम वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। इस आयुके पश्चात् फिर आनन्दकी आशा करना निरर्थक है।"

टामस ए० एडीसनका प्रथम भाषण सर्व साधारण को तब हुआ जब वे चौंसठ वर्षके थे। उन्होंने कहा, 'मेरी आयु चौंसठ वर्षकी है, पर ईश्वरको धन्यवाद है कि मैं अब भी एक तरुण व्यक्ति हूँ।"

क्या कारण है कि कुछ मर्द और स्त्रियाँ तीस पर वृद्ध हो जायँ जब कि और लोग साठ पर तरुण रहें? क्या कारण है कि बहुतसे लोग उस आयु पर जो कि उनके वर्षोंकी दुपहरी होनी चाहिये, झुके हुए, सिकुड़े, खेले हुये, तथा शोचजीर्ण हो जाते हैं जब कि और लोग अनन्त जीवनाशक्तिका तथा बहुवर्षायु तरुणाईका भेद जाने हुये प्रतीत होते हैं? क्या बिना जराँही कल्पसम्भव है?

मनुष्य स्वभावतः अपने रोगकी चिकित्साके लिये छोटा मार्ग ढूँढता है। उस रोगीमें जो अपने चिकित्सकसे कुछ ऐसी जादू भरी गोलियों व दवाकी इच्छा रक्खे जिससे वह तुरन्त स्वस्थ हो जाय यह बात सत्य उतरती है। उस अधिक भारवाली स्त्रीमें भी यह बात सत्य उतरती है जो यह विचार करे कि किसी न किसी टेबलेटसे उसके शरीरकी चर्बी जिसके एकत्रीकरणमें वर्षों लग गये तुरन्त पिघल कर निकल जायगी। उस वृद्ध व समयसे पूर्व वृद्ध व्यक्तिमें भी यह बात सत्य है जिसको इस बातका विश्वास है कि जराँही वृद्धावस्थाको ढूँढकर फिर तरुणवस्था ला सकती है।

वह उन आश्चर्यजनक परिणामोंकी ओर संकेत करता है जो वोरोनाफ, स्टीनक, तथा सर्जुकों ने प्राप्त किये। 'विज्ञानके चमत्कारों'की वह गिलबिल तौरसे बातें करता है। वह इस बातपर पूर्णरूपसे विश्वास करता है कि वृद्ध आयुसे तरुणाई लानेमें सर्जनका स्कैलोल (एक प्रकारका चीड़-फाड़ करने वाला औजार) अल्प समयका मार्ग है। अब हमको इन सब बातोंमें क्या वास्तविकता है इस पर विचार करना है।

स्टीनककी कल्प रीति

जब कभी कोई ग्रन्थिय-चिकित्साकी बात करता है तो स्वभावतः उसका विचार वीना (Vienna) तथा डाक्टर स्टीनककी ओर जो कि ग्रन्थिय-कल्पके आचार्य हैं जाता है।

सन् १९२० ई० में डाक्टर स्टीनकका 'आयुसे क्षीण होते हुये तरुणाई वाली ग्रन्थियोंका पुनर्शक्तिकरण द्वारा कल्प' सिद्धांत निकला। जिस उमंगसे उसके सिद्धांतका आदर हुआ वह उसके वैज्ञानिक सहचरों तक ही सीमित नहीं रहा। इसकी सम्भाविकताओं ने साधारण मनुष्योंकी कल्पनाओंको भी प्रज्वलित कर दिया। इसके आशयसे लोग वैसे ही कम्पायमान हो गये जैसे बामशेलसे हो जाते हैं। वैज्ञानिक परिणामोंके सरल भाषामें विवरण प्राप्त करनेकी ऐसी इच्छा अब तक लोगोंमें न्यूनतम देखनेमें आई है।

स्टीनक-कल्पके तीन रोचक उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो गया कि स्टीनक रीति क्या कर सकती थी। इनमेंसे एक ४४ वर्षायु था जो आयुसे पूर्व ही शक्ति-हीनतासे पीड़ित हो रहा था; एक ६६ वर्षायु था तथा दूसरा ७१ वर्षायु। प्रत्येक उदाहरणके परिणामोंसे इस बातकी पुष्टि होती थी कि प्रसिद्ध प्रयोगकर्ता अपने कार्यमें पूर्णरूपेण विश्वास करता था। तीनों रोगी अपनी आशा-हीनता परित्याग करते हुये प्रतीत होने लगे तथा उनमें नवीन रुचि आ गई। उनके चालमें नवीन फुर्तीलापन प्रकट होने लगा। उनके चर्मकी बनावटमें परिवर्तन प्रतीत होने लगा। भूख बढ़ जानेकी बातका नवीन तरुणाईका लक्षण समझ प्रसन्नतापूर्वक शुभागमन किया। तरुणाईके आनन्द-स्रोतमें बहशियाना रीतिसे बहते हुये किसीको इस बात की पर्वाह न थी कि वह इस बातका भी प्रश्न करता कि यह अवस्था अधिक समय तक रहेगी या नहीं और कब तक रहेगी ? क्या यह परिणाम अल्पसमयक थे ?

देखें यह चमत्कारिक क्रिया क्या थी ?

अन्तरीय तथा बाह्य स्राव

वृद्धावस्था के कारण सम्बन्धी प्रत्येक मानी हुई बात की छान-बीनके पश्चात डाक्टर स्टीनक इस बात पर पहुँचे कि आयु तथा मृत्यु जीवनके शनैः शनैः पुराने पड़कर जीर्ण हो जानेके परिणाम हैं। स्टीनक ने अपने अन्वेषणसे यह परिणाम निकाला कि वह समय जब आयु-क्षीणता-विधि आरम्भ होती है, वह गति जिससे कि एक व्यक्ति के तरुणाईके चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं तथा वह भ्रमात्मक रीति जिससे आयु अपनेको प्रकट करती है हमारे पूर्वज निकास तथा हमारे इण्डोसराइन ग्रन्थियों पर निर्भर हैं। डाक्टर वर्मन ने इन ग्रन्थियोंको हमारे शरीर 'कन्ट्रोलका "इण्टरलाकिङ्ग डिरेक्टरेट" बताया है जो जीवन-विज्ञान-की दृष्टिसे हमारा भाग स्थिर करती हैं। यह ग्रन्थियाँ हमारी वृद्धावस्थाके कारण नहीं; परन्तु वे यह अवश्य निर्धारित करती हैं कि हमारी वृद्धावस्था कब और कैसे आरम्भ हुई। जब वे थके जाती हैं तो पूर्ण स्वस्थ अवस्थासे लेकर वृद्धावस्था तक शरीरके भिन्न परिवर्तन गुप्त चालसे से निकट आते रहते हैं तथा शीघ्र हमको घर लेते हैं।

वृद्धावस्थाके रोकनेके प्रयत्नमें जनेन्द्रिय ग्रन्थियोंका विशेष कर महत्वपूर्ण भाग है। यह इतनी महत्वशील है कि वाल्ट व्हिटमैनकी इस कहावतका कि "जनेंद्रियाँ न होती तो मानों सभी बातोंका अभाव था" लगभग समर्थन करती हैं। डाक्टर स्टीनक ने अपने अन्वेषणसे यह ज्ञात किया कि जनेन्द्रिय-ग्रन्थिके दो भिन्न तथा पृथक कार्य हैं। यह दो प्रकारके स्रावोंका उत्पादन करती है वाह्य तथा आन्तिरक। स्टीनकके सिद्धांतसे वाह्यस्राव जीवकी उत्पत्ति करता है तथा आन्तरिक स्रावसे शरीरमें स्वयम् नवीन जीवनका संचार होता है। अस्तु, एक क्रिया तो नस्ल बढ़ानेमें भविष्यका कार्य करती है, तथा दूसरी व्यक्तिमें नवीन जीवन व शक्तिके संचारमें वर्तमानका कार्य करती है। अथवा साधारण भाषामें यों कहो कि स्टीनककी रीति वाह्य स्रावको घटाकर अन्तरीय स्रावको उत्तेजित करती है। यह परिणाम वास डिफरेन्स (Vas-deferens) के एक भागको निकाल देने तथा खुली हुई शिराओंको बाँधनेसे प्राप्त होता है। यह कार्य एक ओर अथवा दोनों ओर किया जा सकता है। यदि यह दोनों ओर किया जाय, तो व्यक्ति सन्तान उत्पन्न करनेके अयोग्य हो जायगा, और यदि आपरेशन एक ही ओर किया जाय, तो सन्तान-उत्पादन-शक्तिमें बाधा नहीं

पड़ेगी। इस प्रकार ग्रन्थि वाह्यरूपसे कार्य करनेमें असमर्थ होकर अथवा कमसे कम कठोरतासे रोक दिये जानेके कारण आन्तरिक स्राव "गोनैडल हार्मोन"के विकासको तीव्र गति प्रदान करेगी। कल्पका यही आधार है।

डाक्टर वोरोनाफकी रीति

कमसे कम साधारण मनुष्यको इनके प्रयोगके परिणाम उसके अर्थ-सहित-विवरणकी अपेक्षा निस्सन्देह अधिक रोचक प्रतीत हुए। वह पुराना स्वप्न जो पुश्त-दर-पुश्तसे भूतकी तरह मनुष्यका पीछा किये था अब वास्वविकतामें परिवर्तित हो गया जान पड़ता है। शीघ्र ही मनुष्य इसको जनेन्द्रिय-दुर्बलताकी चिकित्सा विचारने लगा। स्त्रियाँ लौटी हुई सुन्दरता तथा प्रदीप्तमान मुखोंके लोभायमान दृश्योंका स्वप्न देखने लगीं। दर्शनशास्त्रवेत्ता अपने ही से प्रश्न करने लगे, "क्या मनुष्य रुक सकता है अथवा क्या वह अपने मार्गमें रुकावट डालने वाले उस भयानक छायाको हटा सकता है? मनुष्यके विचार तथा कलर पर इसका क्या परिमाण होगा?" चार्लटनों तथा वैद्य डाक्टरों ने इस रीति द्वारा जननेन्द्रिय तथा सुन्दरताको पूर्वावस्थामें लानेके संकल्प पर अनुपयुक्त प्रभाव डालकर आर्थिक फसल काटनेका अच्छा प्रयत्न किया।

सन् १९१० ई० में डाक्टर सर्ज वोरोनाफ ने कल्पकी समस्या पर भिन्न कोणसे विचार किया। उनके सिद्धांतानुसार मनुष्य-शरीर में दो प्रकारके तन्तु हैं, एक तो प्राचीन अथवा निम्न प्रकारका—तथा दूसरा बात-नाड़ियाँ ग्रन्थियाँ तथा धमनियाँ जो ज्ञानशील तन्तुकी बनी हुई है। उसके सिद्धांतानुसार जैसे-जैसे शरीर वृद्ध होता जाता है, निम्न प्रकारका तन्तु, घासोंकी तरह अधिकतासे बढ़ जाता है तथा ज्ञानशील तन्तुको चारों ओरसे घेर लेता है जिससे कठोरपन अथवा स्क्लेरोसिस (Sclerosis) हो जाता है। इस बातको रोकनेके लिये वोरोनाफ ने जन्तु-ग्रन्थियों, विशेषतः बानर-ग्रन्थियोंसे एक सत तैयार किया और अपने मरीजोंमें इसका इञ्जेक्शन किया।

वोरोनाफके मौलिक कासप्लैण्टेशन प्रयोगके दिनसे अब तक सहस्रों मनुष्य पीछे लौट कर बानर-वर्ग आ गये तथा इन चिम्पैञ्जी (एक प्रकारका बानर) ग्रंथियोंसे अपना कल्प कराया. बानर-ग्रंथियोंकी माँग इतनी बढ़ गई कि जंगलोंमें यह जंगली चिम्पैञ्जी वास्तवमें नेस्तनाबूदसे हो गये। अतः वोरोनाफ ने बानरोंका एक बृहत् झुण्ड अफ्रीकासे मँगवाया और इटली और फ्रांसके मध्य वेण्टीमेगलिया में, जहाँका वायुजल उनके रहनेके लिये पर्याप्त मात्रामें नम्र था, एक चिम्पैञ्जी-फार्म खोला। फ्रैंको-इटेलियन सीमा पर बसे हुये उसके प्रसिद्ध महलमें मनुष्योंके लिये 'अवशिष्ट भाग' वाले सैकड़ों बानर विद्यमान हैं।

साठ वर्षोंका शारीरिक विष

कल्पके वैज्ञानिक तथा जर्राही रीतिका क्या परिणाम हुआ? कोई स्थाई परिणाम नहीं। स्टीनकका वैसेलिगेचर चीड़फाड़ पचास व साठ वर्षके एकत्रित शारीरिक विषको दूर नहीं कर सकता, धमनियोंके कठोर प्रक्षेपोंके संबंधमें जो समयसे पूर्व आने वाली वृद्धावस्थामें सदा विद्यमान रहते हैं, उनकी क्या सम्मति है? उस प्राचीन विषी रक्त-प्रवाहके सम्बन्धमें उनकी क्या धारणा है जो ग्रंथियोंको उतना ही शीघ्र थकाता रहेगा जितना शीघ्र कि डाक्टर स्टीनक उनको पुनर्जीवन प्रदान करते रहेंगे तथा एक और काट-छाँटसे उनको चालको बढ़ाते रहेंगे? ऐसे जर्राही काट-छाँटसे हृदय पर जो धक्का लगने तथा जीवाणु-प्रवेशका भय है और जो ऐसे चीड़फाड़के प्रत्येक उदाहरणमें स्वभावतः हो जाता है उसके सम्बन्धमें वह क्या कहते हैं? यह सत्य है कि अधिक मात्रामें प्राप्त ग्रन्थियस्राव निस्सन्देह शक्तिवान पदार्थ है तथा चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है, परन्तु समय और अनुभव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे वास्तवमें केवल अल्पसमयक उत्तेजक है। ज्योंही उत्तेजक क्षीण हो जायगा और इसका क्षीण होना आवश्यक है, यदि रक्त-प्रवाहमें वे मूलतत्व जिनसे ग्रन्थियोंका पोषण होता है विद्यमान नहीं हैं, कल्प-क्रियाका परिणाम भी साथ ही साथ क्षीण हो जायगा।

जहाँ तक डाक्टर वोरोनाफके बानर-ग्रन्थि-चिकित्साका सम्बन्ध है परिणाम और भी न्यून सन्तोषजनक है।

ठीक प्रकारका रक्त-मिश्रण प्राप्त करना भी कठिन है। इसी कारण रक्त-दाताओंके निर्धारित नमूने अनेक हैं। हम वास्तवमें यह आशा नहीं कर सकते कि ग्रंथियाँ तथा वातनाड़ियाँ जो स्वयम् डाक्टर वोरोनाफके सिद्धान्तानुसार समस्त तन्तुओंसे अत्याधिक ज्ञानशील हैं, चिम्पैंजीकी ग्रन्थियोंसे मिश्रित हो जायँगी। यह सत्य है कि प्रत्यक्ष में चमत्कारिक परिणाम हुये हैं, और ऐसा क्यों न हो? इन बानर-ग्रंथियोंके स्राव तथा हार्मोनों ने निस्सन्देह मेड़ेका सा काम किया तथा उन वृद्ध मनुष्योंको अल्प समयके लिये अत्याधिक उत्तेजित कर दिया। पर भोजन सम्बन्धी उन त्रुटियोंके सम्बंधमें जिनकी इस प्रकारकी मिथ्या आशाओंसे उत्तरोत्तर वृद्धि होती है क्या कहा जाय? खनिज तराबोर तथा विटेमिन और खनिज भूखी वृद्ध शरीरोंकी क्या अवस्था होगी जब एक बार भी बानर ग्रन्थियोंका कार्य असफल हुआ?

विज्ञान-वेत्ताओंके कल्प सम्बन्धी कार्य ने हमको बहुत सी बातें सिखाई। प्रथम यह कि आन्तरिक स्राव-की ग्रन्थियाँ न केवल जनेन्द्रिय ग्रंथियोंके हार्मोनोंको वरन् थिरायड, पैराथिरायड, ऐड्रीनल, पायनियल, पिच्यु-टरी तथा और दूसरी ग्रंथियोंके, जिनके बारेमें हम लोगों को अभी अति न्यून ज्ञान है, हार्मोनोंको भी हमारे रक्त प्रवाहमें प्रवेशित करती रहती हैं। द्वितीय यह कि यही हार्मोनों वास्तवमें हमारे तरुणाईकी वृद्धिके कारण हैं। तृतीय तथा विशेष महत्वशील बात यह कि इन ग्रंथियों-मेंसे प्रत्येक अपने पोषणके लिये स्वयम् अपने ही रक्त-प्रवाहके ऊपर निर्भर है।

इस बातका आश्चर्ययुक्त प्रमाण यह है। सन् १९११ ई०में राक फेलर इन्सटिट्यूटके कार्यकर्ताओंमें के एक विज्ञान वेत्ता डाक्टर अलेक्सिस केरल ने एक मुर्गीके बच्चेके, जिसकी मृत्यु उसी समय हुई थी, हृदयसे एक अंश तन्तु लेकर उसे एक ऐसे घोलमें रखा जिसमें एक विशेष प्रकारका भोजन पदार्थ विद्यमान था। यह घोल रासायनिक रीति से इस प्रकार तैयार किया गया था कि मुर्गीके बच्चेके हृदयके अंशके टाक्सिन अथवा कोष विष धुलकर दूर हो जाय।

अल्प समयमें ही हृदय-तन्तुके अंशमें वैसी ही धड़कन तथा धकधकाहट पैदा हो गई जैसा कि एक जीवित जन्तुके हृदयमें होता रहता है। इससे अधिक बात और यह थी कि हृदय तन्तुका यह अंश जीवित शरीरके बाहर होते हुये भी, तबसे अब तक धकधका हो रहा है। सारांश यह कि रोग तब आरम्भ होता है जब जीवनके प्राकृतिक नियमके निर्माता अवयवोंमेंसे किसी एकमें बाधा पड़ जाय। या तो एक कोषको उप-युक्त मात्रा तथा उपयुक्त गुणका भोजन तथा वह ओषजन जो इसके लिये आवश्यकीय है, प्राप्त नहीं होता अथवा यह अपने निरर्थक पदार्थोंको जितना शीघ्र चाहिये उतना शीघ्र दूर नहीं कर पाता। दूसरे शब्दोंमें यों कहो कि रोग तभी आरम्भ होता है जब और जहाँ एक विशेष कोष व कोषोंकी वाह्य अवस्था उसके प्रतिकूल हो जाय। अस्तु अब हम यहाँ भोजनके बारेमें विचार करेंगे—विशेषतयः भोजन तथा यह कि ग्रंथिस्वास्थ्यसे उसका क्या सम्बन्ध है।

(शेष फिर)

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५० | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी नवम्बर, सन् १९३९ ई० | संख्या २

हरड़

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

(गताङ्कसे आगे)

गुण

संस्कृत लेखकों ने हरड़में पाँच रस माने हैं। छः रसोंमें से लवण रस इसमें नहीं होता।

कषायाम्ला च कटुका तिक्ता मधुररसान्विता।
इति पञ्चरसा पथ्या लवणेन विवर्जिता ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु

फलके किस भागमें कौन रस प्रधान होता है इसके सम्बन्धमें विभिन्न लेखकोंके मत है—

पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नायावम्लो व्यवस्थितः।
वृन्ते तिक्तस्त्वत्रिकटुः अस्थिन तु तुवरो रसः ॥
—भावप्रकाश, पूर्णखण्ड, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक २७।

मज्जत्वक् स्नायुमांसास्थिस्थिताः पंचाभयोद्भवाः।
स्वादु कषायकट्वम्लतिक्ताख्याः क्रमशो रसाः ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधि-वर्ग, श्लोक २१४।

बीजास्थि तिक्ता मधुरा तदत्तस्त्वग्भगतः सा कटुरुष्ण वीर्या।
मांसांशतश्चाम्लकषाययुक्ता हरीतकी पञ्चरसास्मृतेयम् ॥
—राज निघण्टु

हरीतकीके त्रिदोषहर होनेमें हेतु—

अम्लभावाज्जयेद्वातं पित्तं मधुरतिक्तकात्।
कफं रूक्षकषयात्वात् त्रिदोषघ्नी ततोऽभया ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु,

स्वाद्वम्लभावात्पवनं कटुतिक्ततया कफम्।
कषाय मधुरत्वाच्च पित्तं हन्ति हरीतकी ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २१३।

कैयदेव हरड़के गुण लिखते हैं—

जया विलवणा पञ्च रसा तु तुवरोत्कट।
स्वादु पाकरआयुष्या रूक्षोष्णा बृंहणी लघुः ॥
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी पराम्।
रसायनी च चक्षुष्या बलबुद्धि स्मृतिप्रदा ॥
कुष्ठ वैवर्ण्यवैस्वर्यं पुराणविषमज्वरान्।

शिरोऽक्षिपाण्डु हृद्रोगकामलाग्रहणी गदान् ।।
सशोषशोफातिसार मेहमोहवमि कृमीन् ।
श्वास कास प्रसेकार्शः प्लीहानाहगरोदरान् ।।
विबन्धं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तम्भमरोचकम् ।
हिध्याध्मान व्रणान् शूलं त्रीन् दोषांश्च व्यपोहति ।।
पथ्यायञ्ना च चक्षुष्योवातपित्तहरो भृशः ।
यथोत्तरं पथ्यतथा विज्ञेया त्रिविधायया ।।

—कैयदेव निघण्टु, औषधिवर्ग, श्लोक २०८ से २१५ तक ।

हरीतकी पञ्चरसा च रेचनी कोष्ठायपघ्नी लवणेन वर्जिता ॥
रसायनी नेत्ररूजापहारिणी त्वगभ्यपघ्नी किल योगवाहिनी ॥

—राज निघण्टु, आम्रादि वर्ग, श्लोक २१६ ।

अपथ्या लेखनी लध्वी मेध्या चक्षुर्हिता सदा ।
मेह कुष्ठ प्रणच्छर्दि शोफवातास्रकृच्छ्रजित् ।।
वातानुलोमिनी हृधा सेन्द्रियानां प्रसादनी ।
संतर्पण कृतान् रोगान् प्रभ्यो हन्ति हरीतकी ॥

—धन्वन्तरि निघण्टु

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् ।
रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥
चक्षुष्या लध्वारायुष्या बृंहणी भानुलोमिनी ।
श्वासकाश प्रमेहार्शः कुष्ठ शोथोदर क्रियीन् ॥
वैस्वर्य ग्रहणी रोग विबन्ध विषमज्वरान् ।
गुल्माध्यान तृषा छर्दिहिक्का कण्डू हृदायमान् ।।
कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ।
अश्मरीं मूत्र कृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ।
स्वादुतिक्त कषाय त्वात्पित्तहृत्कफहन्तु सा ।
कटु तिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ।।
पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ।
प्रभावादोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते ।
हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥
कर्यान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रय भेदतः ।
यतस्ततो नेति चिन्त्यं धात्रीलकुचयोर्पथा ।।

—भाव प्रकाश, पूर्वखण्ड, वर्ग प्रकरण ६, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक १९ से २६ तक ।

विभिन्न प्रकारके प्रयोग करने पर हरड़के गुणोंमें भेद होता है—

चर्विता वर्द्धयेत्याग्निं पेषिता मल शोधिनी ।
स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ।।
उन्मीलिनी बुद्धि बलेन्द्रियाणां निर्मूलिनीपित्तकफानिलानाम् ।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ।।
अन्नपान कृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान् ।
हरीतकी हरत्याशु भुक्त स्योपरियोजिता ।।
लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ।
घृतेन वातजान् रोगान्सर्वान्रोगान्गुणान्विता ॥

—भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, वर्गप्रकरण ६, हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक ३० से ३३ तक ।

योग

अभया वटी—*हरड़, काली मिर्च, पिप्पली और सुहागा प्रत्येक समान भाग लेकर सबके बराबर शुद्ध जयपाल मिलाएँ । सेहुण्डके दूधसे मर्दनकर चौथाई रत्तीकी गोलियाँ बनायें ।

मात्रा—दो गोली । एक हरड़को तण्डुलोदकमें पीस कर उसके साथ दो गोली खाय । रोगी जब तक गरम पानी पियेगा तब तक विरेचन होगा । शीतल जल पीनेसे पुनः विरेचन न होगा ।

रोग—जीर्ण ज्वर, प्लीहा रोग, उदर रोग, विशेषतः वातोदर, अजीर्ण, कामला, पाण्डु, आदि ।

---

*अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणश्च समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ।
स्नुही क्षीरेण संकुर्याद् गुञ्जापादमितां वटीम् ।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।।
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ।
जीर्णज्वरं प्लीह रोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ।।
वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति ।
कामलां पाण्डु रोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ।।

—भेषज्य रत्नावली, उदररोगाधिकार, श्लोक ७८ से ८१ तक ।

हरीतकी प्रयोग*—सौ हरड़ोंको तक्रमें स्विन्न करके कुशलतासे बीजको निकाल कर सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्म, चित्रक, पाँचो नमक, अजवायन, अजमोदा, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, हींग, लौंग, प्रत्येक के आठ तोले चूर्णको मिश्रित कर चुक्र तथा निम्बुके रससे तीन दिन भावना देकर उन हरणोंमें भर दें।

मात्रा—एकसे दो हरड़ प्रतिदिन।

रोग—अजीर्ण, मन्दाग्नि विशूचिका, गुल्म तथा शूल आदि।

हरीतकी खण्ड†—

त्रिफला, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेज पत्र, नागकेसर, अजवायन, त्रिकटु, धनियाँ, सौंफ, सोया, लौंग, प्रत्येकका दो तोले चूर्ण; निशोथसनाय प्रत्येक हरड़ खाण्ड यथाविधि पाक करें।

मात्रा – आधा तोला।

अनुपान—गरम जल या दूध

रोग—अम्लपित्त, शूल, अर्श, बातरोग, कोष्ठवात, कटिशूल, आनाद (अफ़ारा) आदि।

‡अभयारिष्ट—हरड़ दस सेर, मुनक्का पाँच सेर, बायविडङ्ग एक सेर, महुये के फूल एक सेर, १२८ सेर जलमें पका कर ३२ सेर बचा लें। छान कर शीत होने पर दस सेर गुड़ डालें और निम्नलिखित प्रक्षेप देकर मृत्पात्रमें बन्द करदें।

प्रत्येक द्रव्य गोखरू, धनिया, निशोथ धायके फूल, इन्द्रायणी, भव्य, सौंफ, सोंठ, दन्ती मूल, तथा मोचरस, प्रत्येक १६ तोले,। एक मास तक रखें और छान कर प्रयोगमें लाएँ।

मात्रा—सवासे ढाई तोला तक

रोग—अर्श, उदर, रोग मलबन्ध, मूत्र रोग, मंदाग्नि।

सामान्य उपयोग

वृक्षका मुख्यतया फलके कारण व्यापारमें, हरड़की मुख्यतया पाँच किस्में ज्ञात हैं जिनके नाम रसकी उत्पत्ति

---

*हरीतव्यः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नश्च कारयेत्।
मालाद् बीजं समृद्धृत्य चूर्णनीमानि पूरयेत्॥
षडूषणं पञ्चपटु यमानी द्वयमेव च।
त्रिक्षारं हिंकु दिव्यञ्च कर्षद्वयमितं पृथक्॥
श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत्।
लिम्पाक स्वरसेनापि भावयेच्चे दिनत्रयम्॥
खादेच्चैनाभयामेकां सवीजीर्णविनाशिनीम्।
चतुर्विधमजीर्णञ्च वन्हिमान्धं विशूचिकाम्॥
गुल्म शूलादि रोगांश्च नाशयेदविकल्पितः।
—भैषज्य रत्नावली, अग्नियान्धादि रोगाधिकार, श्लोक ६२ से ६५ तक।

†त्रिफलाब्दं चतुर्जातं यमानी कटुकत्रयम्।
धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा लवङ्गकम्॥
प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका।
पलद्वन्द्व प्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी॥
यावन्त्येनानि चूर्णानि सिता तद्द्विगुणामता।
दत्वैतानि विधानेन चरिणोष्ठोन साम्पिवेत्॥
हन्त्यम्ल पित्तं शूलञ्च षडर्शांस्यानिलामयम्।
कोष्ठवातं कटि शूलमानाहमपि दारुणम्॥
भैषज्य रत्नावली, शूलरोगाधिकार, श्लोक १८९ से १९२ तक।

*अभयायास्तुम्लमेकां मृद्वीकार्द्धतुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूक कुसुमस्य च॥
चतुर्द्रोणे चले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत्॥
श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
यज्यां मधुरिकां शुण्ठी दन्तीं मोचरसं तथा॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मास मात्रं निधापयेत्॥
ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नियेत्॥
बलं कोष्ठञ्च वन्हिञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघं तथाष्टावुदराणि च।
वर्चौमूत्र निबन्धघ्नो वन्हिं सन्दीपयेत् परम्॥
—भैषज्य रत्नावली, अर्शोरोगाधिकार, श्लोक १०५ से ११० तक।

वाग्भट्ट और वंगसेन या अभयारिष्ट को कुछ परिवर्तन के साथ अर्श चिकित्सामें लिखा है।

के स्थानोंके अनुसार रक्खे गये हैं महत्व है। सूखा फल हरड़ और जंगी हरड़ दो मुख्य रूपोंमें बाजारमें आता है। चमड़ा कमानेके भारतीय पदार्थों में अत्यन्त उपयोगी हैं। अण्डाकृति और नोकदार तथा काटने पर हरिताभ वर्ण और रचनामें कठोर हरड़ व्यापारमें अच्छी समझी जाती है।

भारतमें चर्म-कर्म में हरड़ बहुत चिकित्सामें औषधि-रूपमें उपयोगकी अपेक्षा रँगने और चर्म-कर्ममें इसका उपयोग कहीं ज्यादा होता है। इस्तेमाल होती है ही यूरोपको भी इसी उद्देश्यके लिये भेजे जाते हैं। निर्यात मुख्यतया सूखे फलोंके रूपमें होता है।

अपरिपक्व फल चमड़ेको रंगने और कमानेमें तथा औषधि-व्यवहारमें प्रयुक्त होते हैं। चर्मकर्मके लिये कुछ चर्मकार हलके हरे रंगके फलोंको पसन्द करते है। दूसरे पत्तेकी अपेचा इनकी कीमत भी ज्यादा होती है। कुछ लोग काले या भूरेसे रंगकी किस्मको पसन्द करते हैं। कुछ चर्मकार इनकी मजबूती और सस्तेपनको देखकर खरीदते हैं।

भारतमें हरड़ रंगके रूपमें भी इस्तेमाल होती है। फलके छिलकेका चूर्णकरके पानीमें भिगो दिया जाता है। इसमें कपड़ा डालकर उबाल दिया जाय तो मैला या भूरा सा रंग आ जाता है। इसमें फिटकरी मिला देनेसे पीला पक्का रंग आ जाता है। लोहेके किसी लवण-सामान्यतया प्रोटोसल्फेटके साथ मिलाकर काले रंगकी विभिन्न छायाएँ प्राप्त करनेमें हरड़का रंगके रूपमें विस्तृत उपयोग होता है। रंगकी गहराईके लिये थोड़ा सा गुड़ और लोह-गन्धितके साथ गावका शुष्कफल (डियोस्पिरोस एम्ब्रियोटीरिस = Diospyros Embryoptris मिला कर गहरा काला रंग बनाया जाता है। हरड़ और लोहस गन्धित (Fensus Sulphate) को एक निश्चित अनुपातमें मिलानेसे खाकी रंग बनता है। मद्रासमें हरड़ इसी तरहसे इस्तेमाल होती है और कपास, ऊन तथा चमड़ेको रँगनेमें अकेला भी काम आता है। उत्तर पश्चिम प्रांतोंमें निम्न मुख्य छायाएँ प्राप्त करने में इसका उपयोग होता है—काला, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है; हरा, हल्दी और नीलके साथ मिला कर; गूढ़ा नीला, नीलके साथ; भूरा, कत्थेके साथ। कालेको छोड़ कर अन्य रंगोंमें अपना रंग देनेके बजाय यह मुख्यतया उनके रंगोंको गाढ़ा करनेका काम करता है जिनमें यह मिलाया जाता है। भारतमें सब जगह मंजीठ, हल्दी, टेसू आदिके साथ सहायक रूपमें उनके रंगोंको गाढ़ा करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। कीट-फल ऊन पर हलका पीला रंग देते हैं। कीट-फल स्याही बनाने, कपड़ा रंगने तथा चमड़ा कमानेमें भी प्रयुक्त होते हैं।

लोह-लवणोंके साथ फल देसी स्याही बनानेमें काम आते हैं। फलोंकी थोड़ी प्रतिशतकतामें त्वचाके नीचेका भाग भुरभुरा जाता है। जिन फलोंमें यह हो जाता है वे चर्मकर्ममें काम नहीं आते, पर स्याही बनानेमें काम आ जाते हैं।

ओकके कीट-फलकी तरह हरड़के कीट-फलों (galls) से अच्छी स्याही बनाई जाती है। कोरोमण्डल तट पर इनसे बहुत बढ़िया और टिकाऊ पीला रंग बनाया जाता है। तामिल लोग इन्हें कादुकाई और तेलिंग लोग अलिद काई कहते हैं। कीट फलोंमें टैनिक एसिड प्रचुर होता है और इसलिये चर्मकर्ममें तथा रंगोंको पक्का करनेके लिये रँगनेमें काम आते हैं।

हरड़के पत्ते चारेके रूपमें पशुओंको खिलाये जाते हैं।

छाल चमड़ेको कमाने और रँगनेके काम आती है? यह कभी कभी खाकी और काला रंग रंगनेमें और बंगाल तथा मनीपुरमें बाँसोंको रँगनेमें काम आती है। छाल बहुत ग्राही होती है और रंगोंमें वही छायाएँ देती है जो बबूलकी फलियोंसे आती हैं, परन्तु ये कुछ अधिक पीली आभा लिए हुए होती हैं।

लकड़ी अच्छी टिकाऊ है। इस पर पौलिश अच्छी होती है। फर्निचर, बैलगाड़ियों, कृषि-उपकरणों और मकानोंके बनानेमें काम आती है।

वृक्ष एक गोंद देता है। बरारमें यह बहुत इकट्ठीकी जाती है और अनेक दूसरी गोंदों—कीकर, धौरा, महुआ, बकायन, आदि के साथ मिला ली जाती है। गोंदों से इकट्ठीकी गई यह मिश्रित गोंद स्थानिक बाजारमें

आती है और चिकित्सा प्रयोजनके लिये या रंगरेजोंको रंगोंमें मिलानेके लिये बेंच दी जाती है।

निर्यात

चर्म कर्मके लिये हरड़ युरोप भी भेजे जाते हैं। मद्रास, बम्बई और मध्यप्रांत, मुख्यतया इन तीन स्थानों से व्यापारिक हरड़ें इकट्ठीकी जाती हैं। मध्यप्रांतमें मण्डला, बालाघाट, रामपुर और जबलपुर प्रदेशोंसे बड़ी मात्रामें हरड़ बाहर भेजी जाती हैं। मद्रासमें विमलापट्टम निर्यातका बड़ा केन्द्र है।

चिकित्सोपयोग

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रमें हरड़ इतना अधिक महत्व-पूर्ण द्रव्य समझा जाता है कि हिन्दू साहित्यमें इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक पौराणिक गाथा प्रसिद्ध है। जब इन्द्र देव स्वर्गमें अमृत पी रहे थे तो द्रवकी एक बूंद भूतल पर *गिर पड़ी और उससे हरड़ वृक्षकी उत्पत्ति हुई।

यद्यपि युरोपियन चिकित्सामें हरड़का ज्ञान देरसे है पर इनका प्रयोग नहीं होता रहा। ईसाई युगके प्रारम्भिक भागमें ग्रीक इसको जानते थे। लिंश्टन (Linschoten), जो सोलहवीं सदीके अन्तमें हिन्दुस्तान आया था, पाँच प्रकारकी हरड़ोंका वर्णन करता है। इससे पूर्व हरड़ सम्बन्धी ज्ञान गार्सिया दे ओर्टा (Gorcia d'orta') ने दिया है। इसका टीकाकार डाक्टर पैलुडेनस (Paludanus) लिखता है कि पाँचों प्रकारकी सब हरड़ें उस समय हिन्दुस्तानसे आती थीं। सूखी, आचार और मुरब्बेके शक्लमें भी खाण्डमें सुरक्षित की हरड़ें आती थीं। लिंश्टन लिखता है कि जितनी बड़ी हों उतनी अच्छी होती हैं, काला रंग लिये हुये और कुछ लालसे रंगकी, भारी और पानीमें डूब जाने वाली हरड़ें कफको निकालती हैं, मनुष्यकी बुद्धिको कुशाग्र करती हैं और दृष्टिको साफ करती है। ये शहद और खाण्डमें सुरक्षित रखी जाती हैं, ये शक्तिजनक और आमाशय विरेचक हैं, इनके खानेसे श्वमश्रु अच्छी हो जाती है और वृद्धावस्थाके लिये इनका प्रयोग हितकर है, इनके सेवनसे भूख बढ़ती है और पाचन-क्रियामें मदद मिलती है।

भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थोंमें हरड़को अनुलोमक, दीपक, बल्य और रसायन कहा गया है। खाँसी, दमा, मूत्ररोग, अर्श, आन्त्रकृमि पुरातन अतिसार, मलबन्ध, अफारा, वमन, हिक्का, हृद्रोग, यकृत, प्लीहा-वृद्धि, जलोदर, त्वग्रोगों, ज्वरों तथा अन्य अनेक रोगोंमें इसका प्रयोग होता है। बहेड़े और आँवलेके साथ मिलकर त्रिफला, त्रिफलाके नामसे प्रायः सब रोगोंमें विस्तृत रूपसे इस्तेमाल किये गये हैं। शक्ति बढ़ाने, बुढ़ापेके प्रभावको रोकने और ज़िन्दगीको लम्बा करनेके लिये रसायन बल्य रूपमें हरड़ का अद्भुत प्रयोग किया जाता है। वर्षा-ऋतुमें नमकके साथ, पतझड़में खाण्ड, शीतऋतुके पूर्वार्द्धमें अदरक और उत्तरार्द्धमें पिप्पली, वसन्तमें मधु और दो गरम महीनोंमें गुड़के साथ प्रति दिन प्रातःकाल एक हरड़ खानेका विधान है। ❀ हरड़का गुण लिखते हुये चरक ऋषि लिखते हैं:—हरड़में लवण रसको छोड़कर शेष पांचों रस होते हैं। हरड़ ऊष्ण है, कल्याण-कारिणी है, दोषोंका अनुलोमन करती है। लघु, दीपन; पाचन, आयुके लिये हितकर (दीर्घ आयु प्रदान करने वाली), पुष्टिकर,

---

*पपात विन्दोर्मेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम्।
ततो दिव्या समुत्पन्ना सप्त जातिर्हरीतकी॥
—भावप्रकाश, हरीतव्यादिवर्ग, श्लोक ५।

हरड़की उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक और गाथा इस प्रकार है:—सुधर्माकी सभामें अमृत पान करते हुये विष्णु भगवान्से अमृतके सात बिन्दु गिर पड़े और वे जमीनपर जहाँ जहाँ गिरे वहाँ विभिन्न प्रकारकी सात हरड़ें उत्पन्न हुईं।—

सुधर्मायां गतोविष्णुः सुरासुर समावृतः।
ययौ सुधां स्वयं तस्मात्पतिता सप्त विन्दवः॥
ततो हरीतकी जाता सप्तधा लोमहर्षदा।

❀सिन्धूत्थशर्करा शुण्ठी कणामधु गुडैः क्रमात्।
वर्षादिस्वभया प्रश्या रसायन गुणैषिणा॥
— भावप्रकाश, पूर्व खण्ड,वर्ग प्रकरण ६,श्लोक २४।
—भैषज्यरत्नावली,रसायनाधिकार, श्लोक १६।

धन्य, उत्कृष्ट वयः स्थापक, सब रोगोंको शान्त करने वाली तथा बुद्धि और इन्द्रियोंको बल देने वाली है । † प्रजास्थापन और वयःस्थापन कर 'दशेमानि' (दस औषधियों) में चरकने हरड़का पाठ किया है । ‡हरड़ को घीमें भून कर बनाये चूर्णको घीमें मिलाकर चाटने और उत्तम भोजन करते रहनेसे शरीरमें बल आता है, और शक्ति बढ़ती है । §महर्षि चरक लिखते हैं—हरड़, गुल्म, उदावर्त्त, शोष (क्षय), पाण्डु रोग, मद, अर्श, ग्रहणी दोष (संग्रहणी), पुराना विषम ज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, अफारा (आनाह), प्लीहा, नवीन उदररोग, कफ प्रसेक (मुखसे कफ व लाला निकलना, या जुकाम), स्वर भेद, निवर्णता, कामला, कृमिरोग, श्वमथु (शोथ), दमा (तमक श्वास), वमन, नपुंसकता, अङ्गोंका शिथिल हो जाना, विभिन्न कारणोंसे रसवाही स्रोतों (ग्रन्थियों) से रस आदि न बहना, छाती और फेफड़ोंमें कफ भर जाना, स्मृति और बुद्धि नाश, अपस्मार, उन्माद, इन्हें शीघ्र ही जीत लेती है । *शिवदास मधु भावित हरड़को इसी प्रकार अनेक रोगोंमें लाभकर समझता है ।†

मुसलमान लेखक पके फलको सारक, पित्त और बलगमका नाश करने वाला कहते हैं ।

अजीर्ण रोगी, रूक्ष आहार करने वाले, स्त्री भोग, मद्यपान या किसी विषके सेवनसे दुर्बल, भूख, प्यास और गरमीसे पीड़ित पुरुषको हरड़का सेवन नहीं करना चाहिये, ऐसा चरक आचार्यका मत है । *नरहरि पण्डित और

इसमें हनुस्तम्भ गलग्रह, नवज्वर, शोष, मुखशोष, को और शामिल करते हैं तथा गार्भिणीको भी देनेके लिए मना करते हैं । †रास्ता चलनेसे थके हुए, उपवासके कारण कमजोर और जिसके खूनका क्षय हो गया है; ऐसे व्यक्तियोंको हरड़ खानेसे भावमिश्र रोकता है ।‡

हिन्दू लोग अन्य हरड़ोंकी अपेक्षा जंगी हरड़को चिकित्सामें बहुत ज्यादा इस्तेमाल करते हैं । सामान्यतया

---

†हरतकीं पञ्चरसा मुष्णामलवणां शिवाम् ।
दोषानुलोमिनीं लध्वीं विधाद्दीपनपाचनीम् ॥
आयुष्यां पौष्टिकीं धन्यां वयसः स्थापनी पराम् ।
सर्व रोग प्रशमनीं बुद्धीन्द्रिय बलप्रदाम् ॥
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १, श्लोक २७,२८ ।

‡चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४ ।

§ हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य समश्नतस्तत् पिवतो घृतञ्च ।
भवेच्चिरस्थापि बले शरीरे सकृत्कृतं काधु यथा कृतज्ञे ॥
—वाग्भट्ट, ३, ३६ ।

*कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं शोषं पाण्डवामयं मदम् ।
अर्शांसि ग्रहणी दोषं पुराणं विषमज्वरम् ॥
हृद्रोगं सशिरोरोगमतीसारमरोचकम् ।
कासं प्रमेहयानाहं प्लीहानमुदरं नवम् ॥
कफ प्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामलां कृमीन् ।
श्वमथुं तमकं छर्दिं क्लैव्यमङ्गावसादनम् ॥
स्रोतोविवन्धान्विविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः ।
स्मृति बुद्धि प्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी ।
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १, श्लोक ३६ से ३२ तक ।

†दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापाण्डुता नेत्ररोगान् ।
हिक्काकुष्ठातिसारभ्रमयदकसननाजीर्णशूलप्रमेहान् ।
तृष्णाशूलास्रपित्त ज्वर विततजरारोचकानाहदाहान् ।
हन्यादेतनावश्यं मधुनि पणिता पूतना चाम्लपित्तम ॥
—भैषज्य रत्नावली, रसायनाधिकार, श्लोक २० ।

*अजीर्णिनो रूक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः ।
सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये ॥
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १, श्लोक ३३ ।

†हरीतकीं तु तृष्णायां हनुस्तम्भे गलग्रहे ।
शोथ नवज्वरे जीर्णे गुर्विण्यां तैव शस्यते ॥
—राज निघण्टु, आम्रादिवर्ग, श्लोक २२६ ।

तृष्णायां मुखशोषे च हनुस्तम्भे गलग्रहे ।
नवज्वरे तथा क्षीणे गर्भिण्यां न प्रशस्यते ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु,

‡अध्वातिखिन्ना बलवजितश्च रूक्षः कृशोलङ्घनकर्शितश्च ।
पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत् ॥
—भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, वर्गप्रकरण ६, श्लोक ३५ ।

इसका प्रयोग विरेचनके लिए होता है। बिना गर्मी और क्षोभ उत्पन्न किये यह शीघ्रतासे कार्य करती है। चिर-स्थायी मलबन्ध वाले और जिन्हें पित्तकी अधिकताकी शिकायत रहती है या कोई अन्य ऐसी शिकायत हो जिसमें एक कोमल अनुलोमन लेनेकी बहुधा जरूरत रहती है, ऐसे व्यक्ति हरड़के प्रयोगको बहुत सुविधाजनक पायेंगे।

पक्व फल मुख्यतया विरेचनके लिये प्रयुक्त होता है और समझा जाता है कि पित्त और कफको दूर करता है। यह सौंफ, जीरा, धनियाँ आदि सुगन्धित द्रव्योंके साथ मिला कर दिया जा सकता है। अपक्व फल (हलिलेह-ए-हिन्दी) ग्राही और सारक गुणके कारण बहुत उपयोगी समझा जाता है और यह प्रवाहिका तथा अतिसारकी उत्तम औषधि है, यह भी सुगन्धित और पाचक द्रव्योंके साथ दिया जाता है।

विरेचनके लिये हरड़को लेनेका एक तरीक़ा यह है कि फलके गूदेका दो से चार ड्राम चूर्ण लेकर कषाय या फाण्ट बना लें। इसमें थोड़े सौंफके बीजोंको भी डाल देना चाहिये और शहद या खाण्ड डाल कर पीना चाहिये। कई लोग रातको बिस्तरमें जानेसे पूर्व हरीतकी चूर्णकी फक्की लेकर ऊपरसे गरम पानी पी लेते हैं जिससे सुबह अनुलोमन हो जाय। कोमल प्रकृति वालोंको आधेसे एक तोला हरीतकी खण्ड रातको सोते समय एक पाव गरम दूध या गरम जलसे देना चाहिये। इससे सुबह पेट साफ हो जाता है। हरड़ छः, लौंग या दालचीनी एक ड्राम, जल चार औंस; दस मिनट तक उबालकर छान लें, विरेचनके लिये यह सब एक मात्रा सुबह ली जानी चाहिये। हरड़का मुरब्बा रातको समय दस्तावरके रूपमें लिया जाता है। कठोर कोष्ठकी प्रकृति वालोंको मलके अनुलोमनके लिये गोमूत्रमें उबाली हुई हरड़ गुड़के साथ खिलायें।※ शार्ङ्गधरु ने हरड़को उत्तम अनुलोमकके रूपमें देखा है। मलोंका पाक और भेदन करके, वह लिखता है:—जो अवरोधको नीचे ले जाय वह अनुलोमन द्रव्य समझना चाहिये, जैसे हरीतकी।※ सुश्रुत फलोंमें विरेचनके लिये हरड़को श्रेष्ठ समझता है।† अनुलोमनार्थ घीमें भूनी हुई हरड़के चूर्णके साथ पिप्पली चूर्ण और गुड़ मिलाकर रोगीको दिया जाता है।‡

आमातिसारमें पहले संग्राहक औषधि नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि मलके साथ दोषोंके अवरुद्ध हो जाने पर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये उसकी उपेक्षा करनी चाहिए और स्वयं प्रवृत्त हुए मलमें अथवा कष्टसे आते हुये मलमें हरड़ देनेसे मलके साथ दोषोंके बाहर निकल जाने पर आमातिसार शान्त हो जाता है, शरीर हलका होता है और भूख बढ़ती है।§ पक्वातिसारमें आय पाचनके लिये गरम जलके साथ हरड़का चूर्ण खायें ※चूर्णकी पचीस सेण्टीग्रामकी गोलियाँ प्रवाहिका, विशूचिका, अतिसार और पुरातन अतिसारमें दी जाती हैं। हरड़ और पिप्पलीके समान भाग चूर्णको गरम पानीके साथ खानेसे बारबार थोड़ी-थोड़ी मात्रामें

※ गाढवर्चसां वर्चोनुलोमनाव्यम् गोमूत्राध्यूषितामद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्॥

—वागभट्ट, चि० ८

※कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी॥

—शार्ङ्गधर संहिता

†फलेष्वपि हरीतकी।

—सुश्रुत

‡सगुडां पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां हरीतकीम्।
....भक्षयेदानुलोमिकीम्॥

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १४, श्लोक ११९, १२०।

§न तु संग्राहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे।
विवध्यमानाः प्रागदोषा जनयन्त्यामयान् बहून्॥
तस्मात् उपेक्षितोऽक्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान्।
कृच्छ्रं वातहतान् दद्यादभयां सम्प्रवर्तिनीम्।
तथा प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः।
जायते देह लघुता जठराग्निश्च प्रवर्द्धते॥

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १९, श्लोक १८, २० और २१।

*पथ्या वा.........ऊष्ण वारिणा।

—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १९

होने वाले प्रबल और शूलयुक्त अतिसार नष्ट होते हैं।† उदर रोगोंमें हरड़के चूर्णको गोमूत्रके साथ प्रयोग कराये।‡ चरक लिखते हैं, उदर रोगोंमें एक हजार हरड़ खाये। कई विद्वान् एक हजार हरड़ोंका प्रयोग रसायनोक्त पिप्पली वर्द्धमानके क्रमानुसार करनेके लिये कहते हैं। यह दस हरड़का वर्द्धमान क्रम प्राचीन काल की उत्तम मात्रा है। मध्यम मात्रा दिनमें छः हरीतकी और अल्प मात्रा तीन हरीतकी समझनी चाहिये। परन्तु ये सब मात्रायें आधुनिक पुरुषोंके लिये अत्यधिक हैं। इससे आज कलके अपेक्षाकृत निर्बल पुरुषोंको लाभके स्थान पर हानि होनेका भय है। अतः कुछ विद्वान् ऐसा विधान करते हैं—पहले एक हरड़के सेवनसे आरम्भ करें। दस दिन तक प्रति दिन एक हरड़ बढ़ाते जायँ। इस प्रकार प्रथम दस दिन तक पचपन हरीतकीका सेवन होगा। उसके बाद नब्बे दिनोंमें नौ सौ हरड़ोंका सेवन हो जायगा। फिर प्रति दिन एक-एक कम करते जायँ, अर्थात् पहले दिनोंमें उतरते क्रमसे लेते जांय। इस प्रकार इन दिनोंमें पैंतालीस हरड़ोंका सेवन होता है। और एक सौ नौ दिनोंमें ५५ + ९०० + ४५ = १००० हरड़ोंका सेवन होगा। यह क्रम भी बहुत ठीक नहीं रहता। चिकित्सकको चाहिये कि रोगी के बल और दोष आदिकी परीक्षा करके जैसा उचित समझे वैसा ही करे।

वमनमें मधुके साथ हरड़का चूर्ण खायँ।\\ आमाजीर्ण और मलवधिमें गुणके साथ हरड़का सेवन करें।† हरड़ के चूर्णको उपयुक्त मात्रामें गुड़, सोंठ या सेंधानमकके चूर्णके साथ वात, व पित्तके दोषोंमें सेवन करनेसे जठराग्नि विशेष रूपसे प्रदीप्त होती है।‡ पित्त शूलकी शान्तिके लिये गुड़ और घीके साथ हरड़का चूर्ण खाया जाता है।§ गोमूत्र पाचित हरड़के चूर्णमें लोह भस्म मिलाकर गुड़के साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल नष्ट हो जाता है।|| हिचकीमें कोसे जलके अनुपानसे हरड़ खानेसे लाभ होता है। कफजन्य पाण्डुमें गोमूत्रमें पकाई हुई हरड़ लाभ करती है।¶ हरड़की गुठलीको गोदुग्धमें सिद्ध करके पथरीमें पीनेके लिये वाग्भट्ट कहता है।‡

अभ्यन्तर अर्शमें प्रतिदिन प्रातः गुड़ और हरड़का सेवन करना चाहिये।$ गुड़के साथ हरड़का चूर्ण प्रति दिन भोजनसे पूर्व खानेसे रक्तार्श दूर होता है \\। अर्शके लिए हरड़का कषाय ग्राही प्रक्षालन द्रव्य है। अर्शोघ्न 'दशेयानि'में चरक ने हरड़का उल्लेख किया है।† गोमूत्रमें एक रात रखी हुई हरड़को गुड़के साथ

---

† —सुश्रुत, स० उ० अ० ३०

‡............गोमूत्रेणाभयां वा प्रयोजयेत्।
—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १३, श्लोक १४६।

§हरीतकी सहस्रं वा
—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १३, श्लोक १५१।

\\लिह्यान्मधुनाऽभयाञ्च॥
—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय २३।

†आमेस्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविवन्धेषु च नित्यमद्यात्॥
गुड़ेन पथ्यां तृतीयाम् ....।
—भावप्रकाश

‡ हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुड़ेन वा।
सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥
—चक्रदत्त, अग्निमान्ध चिकित्सा, श्लोक ११

§ सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वाहरीतकीम्॥
—भावप्रकाश

|| मूत्रान्तः पाचितां शुष्कां लौह चूर्णसमन्विताम्।
सगुडमभयामद्यात् सर्वशूल प्रशान्तये॥
—चक्रदत्त, शूल चिकित्सा, श्लोक ८०।

¶ कफपाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्तां हरीतकीम्।
—चरक, चिकिस्सितस्थान, अध्याय २०

‡ पिबेत्क्षीरं ..... हरीतवयस्थि सिद्धं वा॥
— वाग्भट्ट, चिकित्सत स्थान, अध्याय ११।

$ प्रातः प्रातर्गुड़हरीतकीमासेवेत।
—सुश्रुत, चिकित्सित स्थान, अध्याय ६।

\\सगुडामभयां वाऽथ प्राशयेत् पौर्वभोक्तिकीम्॥
—चरक, चिकित्सत स्थान, अध्याय १४, श्लोक ६६।

—चरक, सूत्र स्थान, अध्याय ४; ३६।

या हरड़के चूर्णको तक्रके अनुपानसे अर्शमें प्रयोग करनेसे लाभ होता है‡ ।

सन्निपात-ज्वरमें दाह दूर करनेके लिये हरड़ चूर्णको तेल, घी और मधुके साथ चाटे § । ज्वरहर दशेमानिमें चरक ने हरड़को गिनाया हैं || ।

वातरक्तमें गुड़ और हरड़का सेवन करें ¶। एक दो हरड़ोंको गुड़के साथ खाकर गिलोयका क्वाथ अनुपानमें पियें तो वातरक्त, जिसमें जानुपर्यन्त स्फुटित हो गया है, शान्त हो जाता है/ ।

कफज श्लीपदमें हरड़ कल्कको गोमूत्रके साथ पियें$ । गुल्ममें गुड़के साथ भी हरड़ खाई जाती है। गोमूत्र सिद्ध हरीतकी, तेल और सेंधा नमकको सम भागमें मिलाकर प्रातःकाल कफ-वातज वृद्धिके नाशके लिए सेवन करें ॐ।

एक हरड़को यवकुट करके चिलममें रखकर पीनेसे दमेका दौरा बन्द होता है। चरकमें कासहर दस औषधियोंमें हरड़ परिसंख्यात है† ।

हरड़ोंमें प्रचुर परिमाणमें मौलिक एसिड होनेके कारण पुरातन व्रणों और घावोंमें बाह्य प्रयोगमें स्थानिक लेप के रूपमें, और मुख पाकमें गरारोंके रूपमें इनका प्रयोग किया जाता है।

बच्चों और युवाओंके मुख पाकमें इसका प्रयोग किया जाता है। कण्ठ रोगमें हरड़का कषाय मधुके साथ पिलाया जाता है* । कण्ठ व्रणके लिये कषाय ग्राही प्रक्षालन द्रव्य है। दिनमें दो-तीन बार इसके कषायसे गरारे करने चाहिये। सिक्किमके पहाड़ी कण्ठ व्रणकी औषधिके रूपमें फलोंका व्यवहार करते हैं। बूढ़े लोग कत्थेके साथ हरड़के चूर्णको दाँतोंको मजबूत करनेके लिये चबाते हैं।

फलके बहुत सूक्ष्म कल्कको कैरन तेलके साथ मिला कर दाह और छालों पर लगानेसे अकेले कैरन तेल लगाने की अपेक्षा आराम शीघ्र होता है। त्वचाके रोगोंमें लेप रूपमें हरड़ लाभ करती है चरक ने कुष्ठघ्न 'दशेमानि'में हरड़का परिगणन किया है+ ।

फलोंके यवकुट चूर्णको पानीमें भिगोकर रात भर रखा रहने देकर प्रातःकाल उससे आँख धोई जाय तो यह आँखोंके लिये बहुत ठण्डा प्रक्षालन द्रव्य समझा जाता है। इसके हलके जलीय शीत कषायसे प्रतिदिन आँख धोनेसे आँखोंकी जलन शान्त होती है। आँखोंके रोगोंमें घीमें भुनी हुई हरड़का लेप बनाकर आँखके चारों ओर लगाया जाता है÷ । फलोंको जलाकर बनाई भस्म मक्खनके साथ व्रणों पर उत्तम मरहमके रूपमें इस्तेमाल होती है। मक्खनकी जगह बैज़लीनका भी प्रयोग किया जासकता है।

---

‡ गोमूत्राध्युषितां दद्यात्सगुड़ां वा हरीतकीम् ।
हरीतकीं तक्रयुतां........ प्रयोजयेत् ॥
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १४, श्लोक ६८ ।

§ पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैः लिह्याद्दाहविनाशिनीम् ॥
— भावप्रकाश

|| —चरक, सूत्र स्थान, अध्याय ४ ।

¶........सर्वेषुगुड़हरीतकीं वा सेवेत् ।
—सुश्रुत, चिकित्सा स्थान, अध्याय ५ ।

/ हरीतकीः प्राश्य समं गुड़ेन एकाथवा द्वे च ततो गुडूच्छयाः ।
क्वाथोऽनुपीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुजवाररक्तम् ॥
—भैषज्य रत्नावली, वातरक्ताधिकार, श्लोक ६ ।

$ पिवेद्वाष्य भयाकल्कं मूत्रेणान्यतयेन वा ।
—सुश्रुत, चिकित्सा स्थान, अध्याय १५
.. ..सगुडां वा हरीतकीम् ।
—सुश्रुत, उत्तरतन्त्र, अध्याय ४२ ।

ॐहरीतकीं मूत्रसिद्धं सतैलां लवणान्विताम् ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातायमापहा ॥
—भैषज्यरत्नावली, वृद्धिरोगाधिकार, श्लोक ६८ ।

† —चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४

* हरीतकी कषायं वा पेयो माक्षिक संयुतः ॥
—वाग्भट्ट, उत्तरतन्त्र, अध्याय २२

+ खादिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्त पर्णारग्बधकर वीरविडङ्ग जातिप्रवाल इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति ।
—चरक, सूत्रस्थान, अध्याय ४, ३७ ।

÷ कार्या हरीतकी तद्वद् घृतमृष्टा विडालकः ।

लेखमें सहायक पुस्तकें—
(१) फ़ौरेस्ट फ़्लोरा; डी० ब्रैंडिस (१८७४)।
(२) इण्डियन ट्रीज़; ब्रैण्डिस।
(३) फ़्लोरा इण्डिका; विलियम रौक्सबर्घ (१८७४)।
(४) इण्डिजिनस ड्रग्स औफ़ इण्डिया; कनाई लाल दे (१८९६)।
(५) डिक्शनरी औफ दि इकौनोमिक प्रौडक्ट्स औफ़ इण्डिया; वाट (१८९३)।
(६) दि कमर्शियल प्रौडक्ट्स औफ़ इंडिया; सर जार्ज वाट।
(७) ए मैनुअल औफ़ इंडियन ट्रीज़; गैम्बल (१९०२)।
(८) सिल्विकल्चर औफ़ इण्डियन ट्रीज; ट्रूप।
(९) इंडियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स; बसु एण्ड कीर्तिकर।
(१०) कमर्शियल ड्रग्स औफ़ इंडिया; एन० बी० दत्त (१९२८)।
(११) इंडिजिनस ड्रग्स औफ़ इंडिया; आर० एन० चोपड़ा (१९३३)।
(१२) ए डिक्शनरी औफ़ दि इकौनोमिक प्रौडक्स औफ़ दि मलाया पेनिन्शुला; आइ० एच० बुर्किल (१९३५)।
(१३) चरक संहिता; जयदेव विद्यालङ्कार।
(१४) सुश्रुत संहिता।
(१५) भैषज्यरत्नावली; जयदेव विद्यालङ्कार।
(१६) चक्रदत्त; सदानन्द शर्मा (१९२६)।
(१७) राज निघण्टु
(१८) कैयदेव निघण्टु
(१९) भावप्रकाश निघण्टु
(२०) धन्वन्तरि निघण्टु

आदि, आदि।

सभापतिका भाषण

[काशीके २८ वें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अंतर्गत विज्ञान-परिषद्के सभापति डाक्टर गोरख प्रसादका भाषण]

इस परिषद्का सभापति चुन कर हिन्दी-भाषी जनताने मेरा जो सम्मान किया है उसे मैं हृदयसे अनुभव कर रहा हूँ और मैं इसके लिये धन्यवाद देता हूँ। वैज्ञानिक क्षेत्रमें भी हिन्दीका महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है और यह उचित ही है। उदाहरणतः संयुक्त-प्रान्तके इंटरमीडियेट बोर्ड ने हाई स्कूलकी विज्ञानकी परीक्षाओंमें हिन्दी या उर्दूमें उत्तर देना अनिवार्य कर दिया है। एक समय था जब लोगोंको संदेह हुआ करता था कि हिन्दी-द्वारा सरल विज्ञानकी भी शिक्षा या परीक्षा हो सकेगी या नहीं; परन्तु अब वह समय आ गया जब ऐसी शिक्षा और परीक्षामें हिन्दी या उर्दूको ही माध्यम बनाना अनिवार्य हो गया है; यह बड़े संतोषकी बात है। इस कठिन कार्यके लिये क्षेत्र तैयार करनेका अधिकांश श्रेय उन व्यक्तियोंको है जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ झेल कर हिन्दीमें विज्ञान-संबन्धी प्रथम पुस्तकें लिखीं।

मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं जान पड़ता कि अब शीघ्र ही हिन्दीमें हाई स्कूल तकके लिये अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार हो जायँगी। परन्तु यह साहित्य संपूर्ण विज्ञानके साहित्यका कदाचित एक हज़ारवाँ भाग भी न होगा। उन लोगोंके सामने जो विज्ञान-साहित्य-निर्माणमें लगे हैं अभी अति बृहद् कार्य ज्यों-का-त्यों पड़ा है। अनेक विषयोंको किसीने अभी तक छुआ नहीं है, विशेषकर विज्ञानकी उच्च शाखाओं को। यह परमावश्यक है कि शीघ्र ही प्रत्येक अंगपर कोई-न-कोई छोटी-मोटी प्रकाशित पुस्तकें हो जाय; अवश्य ही प्रथम प्रयास होनेके कारण ये पुस्तकें कदाचित प्रथम श्रेणीकी न हो सकेंगी और संभवतः ये अधिक ब्योरेवार भी न होंगी; परन्तु एक बार ढाँचा तैयार हो जाने पर आगामी लेखक त्रुटियोंको सहज ही दूर कर लेंगे और आवश्यक ब्योरा भी भर लेंगे।

परन्तु जिस धीमी चालसे हम इन दिनों वैज्ञानिक साहित्यके निकालनेमें आगे बढ़ रहे हैं उस गतिसे चलने पर हमें उपरोक्त उद्देश्यके साधनमें सैकड़ों वर्ष लगेंगे। हमें अधिक तीव्र गतिसे आगे बढ़ना पड़ेगा।

परन्तु इसमें कई एक अड़चनें हैं जिनमेंसे मुख्य है धनाभाव। सम्मेलनकी इसी विज्ञान-परिषद्के गतवर्षके सभापति ने जो दसवर्षीय योजना रक्खी थी वह बड़ी ही सुन्दर थी, परन्तु उसमें एक लाख रुपयेकी आवश्यकता थी। वह कहाँसे आये? दुर्भाग्यवश अभी तक कोई भी योग्य व्यक्ति इस कार्यके पीछे तन-मन-धनसे नहीं लग सका है। न कोई आशा ही दिखलाई दे रही है कि निकट भविष्यमें कोई ऐसा मिलेगा जो इतना धन इकट्ठा कर देगा।

मेरी रायमें वह समय आ गया है जब सरकार और दानवीरोंको चाहिये कि वे स्वयं वैज्ञानिकोंकी सहायता करें।

जब तक अन्य कोई उपाय नहीं निकलता तब तक लाचार होकर उतने ही साधनोंका सहारा लेना पड़ेगा जो इस समय वर्तमान हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी ऐकैडेमी और प्रयागकी विज्ञान-परिषद् ये चारों संस्थायें आज हिन्दीमें अच्छा वैज्ञानिक-साहित्य छाप सकती हैं। व्यवसायी प्रकाशकोंसे उच्च वैज्ञानिक पुस्तकें छापनेकी आशा करना वृथा है क्योंकि इनके प्रकाशनमें घाटा-ही-घाटा है। हिन्दुस्तानी ऐकैडेमीको छोड़ अन्य संस्थाओंमें इतना धन नहीं है कि वे लेखकोंको उचित पारिश्रमिक दे सकें। हिन्दुस्तानी ऐकैडेमीमें भी प्रतिवर्ष केवल लगभग तीस हज़ारकी आमदनी है, जिसमेंसे पचीस हज़ार तो सरकार से मिलता है और लगभग पाँच हज़ार पुस्तकोंकी बिक्री से। दुर्भाग्यवश वहाँ दफ्तर-ख़र्च और रेल-भाड़ा कुछ अधिक होता है और इसलिये आयसे सत्रह हज़ार रुपया तो यों निकल जाता है। कुछ पारितोषिक, पुस्तकालय आदि में खर्च होता है। शेषका आधा उर्दूके लिये निकल जाता है। जो बचता है उसमेंसे एक मासिक पत्रिका छपती है, और यदि शेषका एक चौथाई वैज्ञानिक पुस्तकोंके लिये रक्खा जाय तो आठ सौ रुपयेसे कुछ कम ही इस कामके लिये मिलता है। सम्मेलनकी विज्ञान-परिषद्के गतवर्षके सभापतिकी योजनामें लगभग डेढ़-सौ पृष्ठोंकी एक पुस्तकके लिये एक हज़ार रुपयेका ख़र्च आँका गया था जो मुझे भी ठीक जान पड़ता है। इस प्रकार हिन्दुस्तानी ऐकैडेमीसे तीन वर्षमें दो पुस्तकोंके छपनेकी आशाकी जा सकती है।

उपरोक्त अन्य तीन संस्थाओंमें अपेक्षाकृत बहुत सस्तेमें काम चलता है। उदाहरणतः, प्रयागकी विज्ञान-परिषद् ने अभी तक जितनी भी पुस्तकें छापी हैं उनके लिये लेखकोंको एक कौड़ी भी नहीं दी गई है। इसलिये ऐसे संस्थाओंको उन उदार लेखकों पर आश्रित रहना पड़ता है जो या तो स्वांतःसुखाय या मातृभाषा पर तरस खाकर कुछ लिख देनेकी कृपा करते हैं। इस प्रकार कुछ बहुत ही अच्छी पुस्तकें निकल सकी हैं, परन्तु ऐसे लेखक इने-गिने ही हैं और किसीसे भी दो-तीन वर्षमें एकसे अधिक पुस्तककी आशा नहीं की जा सकती। प्रयागकी विज्ञान-परिषद् के मंत्री रहनेके कारण मैं मुफ़्त पुस्तक प्राप्त करने की कठिनाइयोंको अच्छी तरह जानता हूँ।

मुफ़्तमें पुस्तक लिख देने वालोंकी संख्या इतनी परिमित है कि अधिकांश विशेष विषयों पर लेखक ही नहीं मिलते। एक छोटा-सा उदाहरण लीजिये। मैं बहुत दिनोंसे इस प्रयत्न में हूँ कि एक छोटी-सी पुस्तिका कपड़ा रंगने पर कोई लिख कर मुझे दे दे। इलाहाबाद और कानपुरमें मैंने काफ़ी कोशिश की, परन्तु अभी तक ऐसा कोई मुझे नहीं मिल सका जो इस कामको करनेके लिये तैयार हो।

ख़ैर, इन सब कठिनाइयोंके रहते हुये भी प्रयागकी विज्ञान-परिषद प्रतिवर्ष एक या दो पुस्तकें, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी एक या दो पुस्तकें, और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा दो तीन पुस्तकें छाप सकती है। इस प्रकार संयुक्त प्रांत की सब संस्थाओंके सहयोगसे प्रतिवर्ष पाँच या छः पुस्तकें छप सकती हैं। यदि इनमें सहयोग हो तो ये पुस्तकें विज्ञानकी भिन्न-भिन्न शाखाओं पर निकल सकती हैं और दस-बीस वर्षोंमें इस ओर भी पर्याप्त उन्नति हो सकती है। साथ ही, यदि इस प्रांतके बाहरकी संस्थाओंका भी सहयोग हो तो उन्नति और भी शीघ्र होगी।

ऊपर मैंने कहा है कि साहित्य-सेवा की दृष्टिसे मुफ़्त लिखने वालोंकी संख्या अत्यंत परिमित है। परन्तु

निश्चय है कि इनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जायगी। उनकी संख्या शीघ्र नहीं बढ़ती, इसका एक कारण यह है कि नवीन लेखकोंके मार्गमें इस समय अनेक कठिनाइयाँ हैं। हमारे सभी वर्तमान वैज्ञानिकों ने अपने-अपने विषयका ज्ञान अँग्रेज़ी माध्यम द्वारा प्राप्त किया है। अन्य जो कुछ साहित्य भी वे पढ़ते हैं उसका अधिकांश अँग्रेज़ीमें रहता है। दैनिक समाचार भी वे अँग्रेज़ी पत्रोंमें पढ़ते हैं। पढ़ने-पढ़ानेका काम भी अँग्रेज़ीमें होता है। इसलिये स्वाभाविक है कि वे अँग्रेज़ीमें अधिक सुगमतासे अपने भावोंको प्रकट कर सकते हैं। ऐसे लोग जब हिन्दी लिखने बैठते हैं तो उनको उपयुक्त शब्द और मुहावरे सूझते ही नहीं। केवल विज्ञानमें ही यह बात नहीं है। विशुद्ध साहित्यके क्षेत्रमें भी यही बात लागू है। इसका कभी-कभी तो हास्य-प्रद परिणाम होता है। जब कोई मौलिक कहानी लेखक उन भावोंको जो उसे अँग्रेज़ी-भाषामें पढ़ी किसी रचनाके कारण सूझे हैं, अपनी मनगढ़ंत हिन्दीमें लिखता है और अपने नवीन शब्दों या मुहावरों पर भरोसा न कर उनके सामने कोष्ठोंमें अँग्रेज़ीके शब्दोंको भी लिख देता है तो आप क्या कहेंगे? मेरा अभिप्राय यहाँ उन अँग्रेज़ी शब्दों और मुहावरोंसे नहीं है जिसे लेखक जान-बूझ कर अपने किसी विशेष पात्रके कहे वाक्योंमें डाल देता है, और जिसका अभिप्राय उस पात्रकी अँग्रेज़ी शिक्षा और बोल-चालके ढंगका सच्चा चित्र अंकित करना रहता है। ऐसा करना तो सर्वथा उचित ही है, ठीक उसी प्रकार जैसे गँवार पात्रोंके मुखसे देहाती भाषा और बंगाली पात्रोंके मुखसे लिंग-भेद-रहित वाक्योंका कहलाना। मेरा यहाँ केवल उन प्रयोगोंसे तात्पर्य है जिन्हें लेखक स्वयं अपनी ओरसे करता है। कुछ वर्ष हुये मैंने 'माधुरी' में कहीं देखा था कि लेखक महोदय ने लिखा था 'यह सफलताकी बड़ी कुञ्जी है।' परन्तु उन्हें इसका भरोसा नहीं था कि पाठकगण उनकी 'बड़ी कुञ्जी' समझ सकेंगे और इसलिये उन्होंने इसके सामने कोष्ठोंके भीतर Master-key भी जोड़ दिया था। परन्तु ऐसे प्रयोगोंकी तलाशमें बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समितिकी मासिक मुखपत्रिका 'वीणा' की नवीनतम प्रति (अक्टूबर १९३९) में 'नग्न ज्वाला' नामकी एक कहानी है जिसमें लेखक महोदय लिखते हैं—

'उस स्वप्नसे वह इतना बेचैन हो गया कि वह मानों अब बैठ न सकेगा, रुक न सकेगा। सृष्टिका केन्द्र (Centre of Gravity) जैसे उसे खींच रहा है।'

भला इस Centre of Gravity की क्या आवश्यकता थी? एक पृष्ट आगे इसी कहानीमें है—

'अपनी समस्त शक्तियाँ और साहस बटोरकर नीलमणि ने तीन दिन पहलेके उस दृश्यक अपनी स्मृतिके Perspective में देखा—जैसे किसी पिछली रातका भयानक स्वप्न हो।'

बेचारे लेखकको perspective की हिन्दी न सूझी होगी। कोई शब्द वह ऐसा न गढ़ सका होगा जिसके आगे वह कोष्ठोंमें इस शब्दको रख सकता। इसलिये उसने इस शब्दको ज्यों-का-त्यों और रोमन लिपिमें रख दिया। संभवतः उसने सम्पादक महोदयसे प्रार्थना भी की हो कि आप इन शब्दोंका हिन्दी रूपान्तर कर दीजियेगा। कदाचित संपादक जीको भी कोई उपयुक्त शब्द न सूझा हो।

इसी प्रकार 'वीणा'की इसी प्रतिमें प्रसादके विशाख' नाटककी आलोचना करते हुये एक लेखक लिखता है:—

'शेक्सपीयरके सदृश प्रसाद जी का हास्य भी बौद्धिक (Intellectual) है।'

इन उदाहरणों से आप देख सकते हैं कि पारिभाषिक शब्दोंको कौन कहे, साधारण बोलचालकी भाषा लिखनेमें किसी ऐसे सुगम उपायकी बराबर आवश्यकता प्रतीत होती है जिससे अँग्रेज़ी जानने वालोंको उचित हिन्दी शब्द तुरन्त मिल जायँ। परंतु आज तक कोई भी ऐसा अँग्रेज़ी-हिन्दी कोश जो लेखकोंके लिये वस्तुतः उपयोगी हो, नहीं बन पाया है। मैं अपने निजी और लेखकों और भावी लेखकोंके भी अनुभवसे जानता हूँ कि अनेक एक 'अनुवादकोंके लिये कोश' की विशेष आवश्यकता है जिसमें साधारण अँग्रेज़ी शब्दोंमेंसे प्रत्येकके लिये वे सभी हिन्दी शब्द दिये हों जो सम्भवतः प्रयुक्त हो सकते हैं और उस अँग्रेज़ी शब्दके प्रत्येक अर्थके लिये

उपयुक्त हिन्दी शब्द दिये जायँ। ऐसे कोशमें अँग्रेज़ी शब्दोंके समझानेकी चेष्टा न की जाय सदा ध्यान इस बात पर रक्खा जाय कि उसी विचारको मुहावरेदार हिन्दीमें प्रगट करना हो तो कैसे किया जायगा और यह कितने प्रकार से किया जा सकता है। ऐसा कोश उन लोगोंके लिये उपयोगी होगा जो अँग्रेज़ी और हिन्दी दोनों अच्छी तरह जानते हैं, परन्तु समय पर उनको उपयुक्त शब्द या मुहावरा नहीं सूझता। ऐसे व्यक्तियोंको कोशमें दिये हुये बहुतसे शब्दोंमेंसे उस शब्दको चुन लेनेमें कोई कठिनाई न होगी, जो उनके मतलबका हो। ऐसा कोश अवश्य ही बड़े कामका होगा। अभी तक जितनी भी अँग्रेज़ी-हिन्दी डिक्शनरियाँ मैंने देखी हैं वे सभी लेखकोंके लिये नहीं, उन विद्यार्थियोंके लिये बनी हैं जो किसी विशेष अँग्रेज़ी शब्दका अर्थ जानना चाहते हैं। लेखकोंके लिये सबसे उपयोगी कोश अब भी आप्टेकी इंगलिश-संस्कृत डिक्शनरी है। परन्तु बहुतसे हिन्दी शब्द संस्कृतसे नहीं निकले हैं। फिर, बहुतसे नवीन शब्द भी अब गढ़ लिये गये हैं जो समाचार पत्रों और पत्रिकाओंमें बराबर आते हैं और जिनका समावेश अभी किसी अँग्रेज़ी-हिन्दी कोशमें नहीं हुआ है। लेखकोंके कोशमें इनको भी सम्मिलित कर लेना चाहिये।

कदाचित काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस कामको आसानीसे कर सकेगा। ऐसे कोशसे नवीन वैज्ञानिक लेखकोंको बड़ी सहायता मिलेगी।

वैज्ञानिक लेखकोंको साधारण भावोंके प्रकट करने वाले शब्दोंके अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें भी बड़ी कठिनाई पड़ती है। पारिभाषिक शब्दोंके कोश काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और प्रयागकी विज्ञान-परिषद्की ओरसे छपे हैं, परंतु ये सर्वथ अपूर्ण हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे एक समिति इस संबंध में कार्य कर रही है आशा है। इसके परिश्रमसे अधिक संपूर्ण कोश शीघ्र तैयार होगा।

अभी हिन्दी वैज्ञानिक भाषा परिमार्जित नहीं हो पायी है। इसे जिस किसी भी धारामें बहा दी जायगी बह जायगी। परंतु इसी कारणसे उनका उत्तरदायित्व जो वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणमें लगे हैं भारी है। तो भी कई लोग प्रचलित पुस्तकों और कोशोंकी अवहेलना करते हैं। यदि वे कोई अधिक उत्तम नवीन शब्द गढ़ सकें तो अवश्य उन्हें नवीन शब्द चलाना चाहिये। परन्तु पहले वाले अच्छे शब्दोंके बदले केवल आलस्यवश तुरन्त गढ़े हुये शब्दोंके प्रचारसे हानि छोड़ कर लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक लेखकको उसी विषयकी लिखी पूर्व पुस्तकों पर और तत्संबन्धी पारिभाषिक कोश पर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

ऊपरकी बातें महत्वपूर्ण हैं। उनके बाद कुछ कम महत्ववाली बातों पर भी विचार कर लेना अनुचित न होगा। इनमेंसे एक तो है अँग्रेज़ी शब्दोंका देवनागरीमें लिखना। कुछ लोग न जाने क्यों अँग्रेज़ी शब्दोंको देवनागरीमें लिखते समय उन्हें बेमतलब तोड़-मरोड़ देते हैं। यदि किसी अँग्रेज़ी शब्दके उच्चारण या लेखनमें कठिनाई पड़ती हो तब तो उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देना कदाचित अनुचित न होगा, पर सीधे-सादे शब्दोंको बदलना अवश्य ही अनुचित है। यदि अँग्रेज़ी शब्दके बदले कोई हिन्दी शब्द रख लिया जाय जिसके अर्थसे पाठकको कुछ सहायता मिलती हो तो बात बिलकुल दूसरी है, परंतु यदि अँग्रेज़ी ही शब्द रखना है और वह न तो उच्चारणमें और न लिखने में किसी प्रकार कठिन है तो अँग्रेज़ी शब्दको ज्यों-का-त्यों रखना ही उचित प्रतीत होता है।

परन्तु कई एक ध्वनियोंके लिखनेमें वास्तविक कठिनाई पड़ती है। हिन्दीमें ह्रस्व ए, ऐ, ओ और औ हैं नहीं। फिर कुछ लोग आ का गोल उच्चारण ऑ के लिये विशेष चिह्न ॅ का उपयोग नहीं करते। कभी-कभी ह्रस्व ऑ की भी आवश्यकता पड़ती है। इन सबके लिये क्या करना चाहिये, इस पर नियम बन जाना चाहिये। फिर, जहाँ हिन्दी ध्वनियाँ हैं वहाँ भी लोग मनमानी गड़बड़ी करते हैं। उदाहरणतः, ए और ऐ में अकसर बहुतसे लोग बदलो-बदला कर डालते हैं। डाक्टर सेठी नेगेटिवके बदले नैगेटिव लिखते हैं (देखो उनका प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान), परन्तु जहाँ वे 'कैमरा' लिखते वहाँ एक फोटोग्राफीकी पुस्तक लिखने वाला

'केमरा' लिखता है (देखो अमजद अली खाँ सरल फोटोग्राफ़ी शिक्षा)। अधिकांश विज्ञापनोंमें भी 'केमरा' ही लिखा मिलता है। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द ounce के बदले कोई आउंस और कोई औंस लिखता है। अँग्रेज़ी शब्द height को कोई हाइट और कोई हैट लिखता है। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी ऐकैडेमी, प्रयागकी विज्ञान-परिषद्, इंटरमीडियेट बोर्ड और वर्नाक्यूलर एजुकेशन बोर्ड मिलकर कोई एक विशेष शैली नियत कर लें और अपनी प्रत्येक पुस्तकमें उन नियमोंका पालन करें और करावें तो यह गड़बड़ी शीघ्र ही मिट जायगी।

इस संबंधमें अक्षर-विन्यासके कुछ अन्य अंगोंपर भी विचार करना पड़ेगा। जैसे इस पर कि संयुक्ताक्षरोंका कहाँ तक उपयोग किया जाय। अकसर हम साधारण उच्चारणमें कई एक स्थितियोंमें विना हलंत वाले अक्षरोंको हलंतयुक्तकी तरह पढ़ते हैं। उससे, इसमे गरमी आदि शब्दोंके मध्य अक्षर इसके उदाहरण हैं। इसके आधार पर ऐनैस्टिग्मैट्को ऐनैमटिगमैट लिखना ठीक होगा या नहीं ? बहुत कठिन उच्चारण और वर्णविन्यास रहनेसे अवश्य ही अँग्रेज़ीसे पूर्णतया अनभिज्ञ लोगोंमें शब्द धीरे-धीरे दूसरा हो जायगा। कुछ-कुछ उसी प्रकारसे जैसे हमारे माली लोग कैंडिटफ्टको चाँदी टप या वर्बेनाको बबीना कहते हैं। परन्तु दूसरी ओर वर्ण-विन्यासमें अधिक सरलता लानेकी चेष्टा करनेमें इसका भी डर रहेगा कि शब्द इतने बदल जा सकते हैं कि वे पहचान न पड़ें। जर्म्स को जरमस लिखनेसे अवश्य यह जर-मस पढ़ा जायगा। इसलिये कुछ मोटे नियमोंका बना लेना उचित होगा और इनका सभी लेखक पालन करें।

वैज्ञानिक शब्दोंके लिंगके विषयमें भी बड़ी गड़बड़ी रहती है। क्यों न कुछ नियम बना लिये जायँ जिनके आधार पर विदेशी नपुंसक शब्दोंका हिन्दीके लिये लिंग निर्धारण किया जाय। लिंग आसानीसे शब्दके अंतिम स्वरके आधार पर निश्चित किया जा सकता है। उदाहरणतः, यदि हम मान लें कि सब अकारांत विदेशी शब्द जिनसे किसी नर-नारी-भेद रहित वस्तुका बोध होता है, पुल्लिंग गिने जायँगे तो क्या हर्ज होगा ? आखिर हम बोलते ही हैं कि हवा बहती है; पवन बहता है। तो फिर यदि कहीं बरवश हमें विंड शब्दका प्रयोग करना पड़े तो विंड बहता है इस वाक्य को शुद्ध माननेमें क्या हानि है ? परंतु स्थिर नियमोंके अभावमें कोई लिखेगा-विंड बहता है, कोई लिखेगा विंड बहती है और भविष्यके कोशकारों को पुस्तकोंमें ढूँढ़-ढूँढ़ कर देखना पड़ेगा कि किसी शब्दको किस लेखक ने किस लिंगमें प्रयुक्त किया है, और हमारे भावी विद्यार्थियोंको पारिभाषिक शब्दोंके साथ-साथ उनका लिंग भी रटना पड़ेगा। निकट भविष्यके विद्यार्थी तो शायद मनमाना लिंग लिख कर ही परीक्षा-सागर पार हो जायँगे।

ऊपर मैंने ज्यों-के त्यों ले लिये गये विदेशी शब्दोंके बारेमें जो कुछ कहा है उससे यह न समझना चाहिये कि मैं सभी या अधिकांश विदेशी शब्दोंको ज्यों-का-त्यों ले लेनेके पक्षमें हूँ। कदापि नहीं। इस विषय पर मेरी सम्मति आज भी वैसी ही है जैसी मैंने अपनी पुस्तक 'फ़ोटोग्राफ़ी' के लिये गढ़े शब्दोंके संबंधमें दस वर्ष पहले प्रकाशितकी थी। उस समय मैंने लिखा था—

"ऊपरके वर्णनमें कई एक नये-नये गढ़े शब्द लिखे गये हैं; पाठकोंके मनमें यह अवश्य खटकेगा; पर किया क्या जाय। या तो अँग्रेज़ी शब्दोंको ज्यों-का-त्यों प्रयोग किया जाय, या नये शब्द गढ़े जायँ। उन शब्दोंको जिनका प्रयोग फ़ोटोग्राफ़ी-संबंधी बात-चीतमें बार-बार किया जाता है हमने ज्यों-का-त्यों रख देना ही उचित समझा है। और शब्दोंके बदले नया शब्द ही गढ़ लेना उचित जान पड़ता है, क्योंकि वे पहले कितने ही बेढब क्यों न जान पड़ें, पीछे प्रिय जान पड़ेंगे। कुछ भी हो, अँग्रेज़ी न जानने वालेको "इनफ़िनिटो-कैच" से तो "अनन्त-पकड़" ही अच्छा और सरल जान पड़ेगा। कुछ लोग इन नये गढ़े शब्दों पर अवश्य हँसेंगे, पर उन्हें विचार करना चाहिये कि अँग्रेज़ीके शब्द भी कुछ कम उपहास योग्य नहीं हैं। नमूनेके लिये डार्क स्लाइड ही लीजिये। डार्क हुआ "अँधेरा" और स्लाइड हुआ "खिसकने वाला"। इन शब्दोंके अर्थको जानकर फ़ोटोग्राफ़ी न जानने वाला कौन ऐसा विलक्षण बुद्धिमान है

जो अनुमान कर सकेगा कि डार्क स्लाइड किस जानवरका नाम है ? लाल बुझक्कड़को छोड़ कर और दूसरा तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता। हमारे एक फ़ोटोग्राफ़र मित्र, जिनसे इस विषय पर हम बातें कर रहे थे, सहसा बोल उठे "मारली है बाज़ी। इसको कहना चाहिये हिन्दीमें अन्धेर खसकर।"

सारांश यह कि बाज़ारमें बिकने वाली चीज़ें जिनका अँग्रेज़ी नाम प्रचलित हो गया है, या ऐसे शब्द जो शिक्षित समाजके साधारण बोल-चालमें आ गये हैं, प्रायः ज्यों-के-त्यों ले लिये जायँ, परन्तु अन्य शब्दोंका अनुवाद कर लिया जाय।

ऊपर मैंने कहा है कि यदि वैज्ञानिक साहित्यका प्रथम ढाँचा तैयार हो जाय तो उसमें पीछे आवश्यक ब्योरा आसानीसे भरा जा सकता है। इस संबंधमें मेरी राय है कि यदि एक वैज्ञानिक विश्वकोश तैयार किया जाय तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसा विश्वकोश यदि प्रसिद्ध एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिकाके वैज्ञानिक अंशोंके प्रसारका हो तो हम प्रायः सभी विषयोंका प्रारंभिक साहित्य तैयार कर लेंगे और प्रायः सभी आवश्यक पारिभाषिक शब्द बन जायँगे। यह कार्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साहित्य-विभागके बूतेके बाहर जान पड़ता है, परन्तु काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा यदि चेष्टा करे तो इस कामको कर सकती है, या यदि सम्मेलन ही सरकारसे आवश्यक धन प्राप्त कर सके तो इस कार्यके करनेमें सफल हो सकता है।

भाषण समाप्त करनेके पहले कुलका निष्कर्ष मैं दोहरा देना चाहता हूँ। वह यह है कि गत वर्षके सभापतिकी बतलाई दश-वर्षीय योजनाके लिये प्रयत्न किया जाय और आवश्यक धन प्राप्त करनेकी चेष्टा की जाय। तब तक जो कुछ भी काम वर्तमान साहित्यिक संस्थायें कर सकती हैं उसे वे एक दूसरेकी सहयोग और परामर्शसे करें। ऐसे विषय पर जिस पर पहले कोई पुस्तक कहींसे निकल चुकी है और वह अब भी खरीदी जा सकती है, दूसरी पुस्तक निकालनेकी चेष्टा अभी न की जाय; हाँ, यदि वह विषय ऐसा हो कि उस पर लिखी पुस्तकसे संस्थाको आर्थिक लाभ होनेकी संभावना हो तो बात दूसरी है। सब संस्थायें मिलकर ऐसी चेष्टा करें कि कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानके प्रत्येक अंग पर कम-से-कम प्रारंभिक पुस्तकें अवश्य निकल जायँ। पारिभाषिक-शब्द-कोश-निर्माण-समिति अपना कार्य अधिक वेगसे चालू करे और एक अच्छा अँग्रेज़ी-हिन्दी कोश भी बने। विदेशी शब्दोंको नागरीमें लिखनेके लिये नियम बन जायँ और यथासंभव लेखकोंसे उनका पालन कराया जाय। जहाँ तक संभव हो विदेशी नपुंसक शब्दोंके लिये लिंग-निर्धारण-नियम भी बन जायँ। हो सके तो एक वैज्ञानिक विश्वकोश भी तैयार किया जाय। आवश्यक कार्योंके लिये सरकार से आर्थिक सहायता माँगी जाय और धनी व्यक्तियों और रियासतोंसे भी धन एकत्रित किया जाय।

तरुणाईकी वृद्धि कैसे करनी चाहिये ?

(अनुवादक—श्री राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी० एल०टी०)

(गताङ्कसे आगे)

ग्रन्थि-उत्तेजनमें विटेमिन (डी) का भाग

शरीर पर विटेमिनोंके कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हैं। एक बच्चेके भोजनमें, जो प्रारम्भिक पायरिया रोगसे पीड़ित हो रहा है, यदि तुम एक ग्लास संतरेका रस प्रयुक्त कर दो तथा फूले हुए रक्त प्रवाहित मसूड़ोंको पिक वर्णमें परिवर्तित तथा शक्तिवान और स्वस्थ होते हुए देखो, तो समझ लो विटेमिन (सी) ने अपना प्रभाव दिखाया है। और समयोंमें विटेमिनें अपनी

चमत्कारिक क्रिया अधिक सूक्ष्म रीतिसे करती हैं जो वाह्य रूपसे न्यूनतम ज्ञात हो सकता है जैसे उदाहरणार्थ ग्रंथियोंमें होता है।

यह स्पष्ट है कि वे विटेमिने जो शरीरके साधारण स्वास्थ्यकी उन्नति करती है ग्रंथियोंके स्वास्थ्याकी भी अवश्य उन्नति करेंगे। यह ग्रंथियाँ शरीरके ही अंश हैं उसी रक्त प्रवाहसे पोषित हैं जिससे और अन्य अंश हैं तथा उन्हीं उपयुक्त तथा अनुपयुक्त बातोंसे प्रभावित जिनसे उदाहरणार्थ चक्षु, त्वचा अथवा रोयें हैं।

परन्तु एक और सीधा सम्बन्ध है। समस्त ग्रंथियों को धूपवाली विटेमिन (डी) के पर्याप्त मात्राकी आवश्यकता पड़ती है, यदि उनको अपनी क्रिया उपयुक्त रीतिसे निरन्तरित रखनी है तो खटिकम तथा स्फुट प्रविष्ट तथा विटेमिन डी रहित भोजन पदार्थके एक आधुनिक प्रयोग ने यह स्पष्ट कर दिया कि न केवल रिक्टों (rickets) का ही, जैसा कि आशाकी जा सकती थी, प्रादुर्भाव हो गया, वरन् समस्त ग्रन्थियों पर इसका प्रभाव उलटा ही पड़ा। पैराथिरायड सत, जिसका प्रभाव बहुधा वैसा ही है जैसा कि विटेमिन डी का, रिक्टोंकी कुछ उन्नति न कर सका—यद्यपि भोजनमें आवश्यकीय खनिज पदार्थ विद्यमान थे। थिरायड सत जो बहुधा बड़ा शक्तिवान होता है, आशाहीन प्रमाणित हुआ तथा थिरायड ग्रन्थि पर इसका प्रभाव अल्पमात्र ही था।

जब प्रयोगीय विषयमें मछलीका तेल, वायोस्टीरल तथा धूप द्वारा विटेमिन डी प्रवेशित किया गया, ग्रंथियाँ तुरन्त अपनी प्राचीन अवस्थामें आगई तथा पूर्णरूपसे उन्होंने अपनी क्रिया प्रारम्भ कर दी। ग्रन्थीय रसोंके प्रभावका वे पूर्ववत् उत्तर देने लगीं।

विटेमिन (बी) का प्रभाव

ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव दिखानेमें विटेमिन (बी) धूपवाली विटेमिनसे केवल दूसरी ही श्रेणीमें है। एक ऐसा भोजन जिसमें विटेमिन (बी) केवल न्यूनमात्र हो प्रत्येक ग्रंथिके कार्यमें अन्तको विघ्न उत्पादक होगा—औरोंकी अपेक्षा किसी-किसी में अधिक क्लिष्टता सहित। पिच्यटरी ग्रंथि अर्थात वह महत्वशील लघु ग्रंथि जो मस्तिष्कके अधार पर स्थित है, सुचारु रूपसे कार्य करनेके लिये, विटेमिन (बी) पर ही विशेषतया: निर्भर है।

ऐड्रीनलोंमें अर्थात उन ग्रंथियोंमें जो हममें विद्यमान शक्ति तथा जीवनकी मात्रा निर्धारित करती हैं, विटेमिन (ए) ही मूल आवश्यकीय पदार्थ है। (बी) तथा (डी) विटेमिनोंकी अपेक्षा यह विटेमिन इन ग्रंथियोंके लिये अधिक महत्वशील हैं, यह है कारण कि कार्टेक्स पर अर्थात ग्रंथियोंके उस भाग पर जिस पर जीवन स्वयम् निर्भर है, इसका प्रभाव सीधा पड़ता है।

जननेन्द्रिय ग्रंथियोंके लिये (ए) तथा (बी) विटेमिनों की आवश्यकताके अतिरिक्त एक अद्भुत विटेमिन (ई) की भी आवश्यकता है। इस विटेमिन बिना सन्तान उत्पत्ति ही नहीं हो सकती।

ग्रंथियोंसे विटेमिनोंका सम्बन्ध अभी पूर्णतयः समझ में नहीं आया है। प्रयोग शालाओं तथा क्लीनिकोंमें नवीन प्रयोग हो रहें हैं जिनसे यह बात अन्तको स्पष्ट हो जायगी। तक तक हमें इस बातसे ही संतोष करना चाहिये कि ग्रंथियाँ विटेमिनोंसे अवश्यमेव प्रभावित होती हैं, तथा जब वे भोजन पदार्थोंमें अविद्यमान हों, तो उससे इन्डोसटाइन संस्थान असमतुलित अवस्थाको प्राप्त होता है।

नलिका-विहीन ग्रंथियोंके इस असमतुल अवस्थामें इतने खतरे हैं कि हमको किसी विटेमिन न्यूनताके खतरे को पास ही नहीं आने देना चाहिए। वाह्य दिखाव, स्वास्थ्य तथा चरित्रके ऐसे रक्त लक्षणोंसे, जिनसे ग्रंथियाँ भयानक आधिपत्यको प्राप्त हो जायँ, अपनी रक्षा उत्तम रीतिसे हम समतुलित तथा विटेमिन परिपूरित भोजन द्वारा ही कर सकते हैं। विटेमिनोंकी न्यूनताके दूर करनेके ज्ञान द्वारा ही अधिपत्य प्राप्त ग्रंथियां हमारी दासता स्वीकार कर सकती हैं।

शक्तिहीन अंशका मूलच्छेदन

विटेमिन परिपूरित भोजन द्वारा ग्रंथियोंके स्वस्थता की बीमा हमारे कल्प-कथाका केवल एक भाग है। हम तुरन्त वृद्धावस्थाको प्राप्त नहीं होते। शरीर भिन्न अङ्गों से युक्त एक जंजीर सदृश है जो सदा अति निर्बल भागमें

ही खण्डित होती है। ऐसा हो सकता है कि हृदय समय से पूर्व वृद्ध हो जाय अथवा जिगर व गुर्दोंकी ही ऐसी अवस्था हो जाय। जिस प्रकार उपयुक्त भोजन करना महत्वशील है उसी प्रकार पुराने शरीर-कोषों तथा व्यर्थ पदार्थोंका निकालना महत्वशील है। कारण कि भोजन चाहे कितना उत्तम क्यों न हो यदि हम उसे स्थिर शरीरों में रखेंगे तो उनसे शक्तिवान तथा स्वस्थ तन्तुका निर्माण होना कदापि सम्भव नहीं।

मेरे विचारसे आन्तरिक स्वच्छता तरुणाईका अर्थ रखती है। उन समस्त लोगोंको जो तरुण बने रहनेकी आशा करते हैं अपने मल निकालने वाली नालियोंको क्रियाशील बनाये रखनेका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

कारण कि हम भोजन पदार्थोंका विश्लेषण करना सीख चुके हैं, हमको इस बातका भी ज्ञान हो गया है कि ताज़े फल तथा शाकका अधिक व्यवहार कर हम अपने अन्तप्रणालीको सरलतापूर्वक स्वच्छ तथा क्रियाशील रख सकते हैं। सेलीलोज़के अधिक मात्रामें होनेके कारण उपर्युक्त पदार्थ उत्तम समझे जाते हैं तथा भोजन के लिये उन सब वस्तुओंको पूरित करते हैं जिनकी भोजन में आवश्यकता है। अपनेको नियम-बाध्य बनानेके लिये हम चाहे प्रकृतिक नीति काममें लावें, पर यह अधिक महत्वकी बात है कि हम जो कुछ भी करें, उसमें विलम्ब न हो। नहीं तो आन्तरिक अस्वच्छताके कारण सड़ावसे पैदा हुआ विष अभाग्यवश हमारे आंतोंकी पतली झिल्ली में जलन पैदा कर देगा। तत्पश्चात हमारे रक्त प्रवाह द्वारा चूसे जाने पर शरीरके प्रत्येक भागमें ले जाया जायगा।

तरुणाई क्या पूर्णतयः मानसिक अवस्था है?

शरीर पर मानसिक अवस्थाके प्रभावका उल्लेख किये बिना कल्प पर एक लेख लिखना नितान्त मूर्खता है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि तरुणाई पूर्णतया मानसिक है; अर्थात जब हमारा मन तथा हमारे विचार तरुण हैं तो शरीर तरुण बना रहेगा। मैं इससे पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। बैठे हुए सदा इस बातके कहने से कि "मैं दिनों-दिन तरुण और तरुण हो रहा हूँ" काम नहीं चलेगा। परन्तु जब हम संसारको सुखका स्थान समझते हुए तथा जीवनको तरुण-दृष्टिसे देखते हुये उपयुक्त भोजन तथा ठीक आदतोंके समावेशका विचार करते हैं तो मानों हम काल बलीके विरुद्ध एक ऐसा संयोग उपस्थित करते हैं जो शीघ्र दमन न हो सके।

जबसे आदमको अपनी दाढ़ीके भूरा होनेका ज्ञान प्राप्त हुआ तभीसे मानों लोग तरुणाईकी खोजमें तत्पर हैं। कुछ वर्षों तक हममें से अनेक जर्राही द्वारा तरुणाई के लघु मार्ग होनेका स्वप्न एक पुजोंश तथा दागलोंका सा स्वप्न देखा करते थे। इन लोगोंमें अब जाग्रति पैदा हो रही है, तथा अब यह लोग पहलेकी अपेक्षा अधिक समझने लगे हैं कि जब मनुष्य समस्त प्राकृतिक शक्तियों के अनुकूल चलता है—जिनमें भोजन जो वह खाता है, वायु जो वह श्वास लेता है तथा धूप जो उसके शरीरमें प्रवेश करती है, इत्यादि बातें सम्मिलित हैं—तभी वह आयुसे पूर्व आने वाली वृद्धावस्थासे छुटकारा पाने तथा अधिक समय तक सुखदाई व लाभप्रद तरुणावस्था बितानेके योग्य होता है।

(बेञ्जमिन गेलार्ड हासरके लेखका अनुवाद)

फैसिस्ट मुल्कोंमें विज्ञानकी दुर्गति

[ले०—श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एम० एस-सी०]

विज्ञान आज बीसवीं सदीके युगमें भी जिसकी नस नसमें विज्ञानकी प्रदानकी हुई प्राण-शक्ति प्रवाहित हो रही है, खतरेमें है। मध्य कालीन यूरोप में विज्ञान वेत्ताओं ने धार्मिक संस्थाओंके अतिष्ठताओं से हाथसे भाँति-भाँतिकी यन्त्रणाएँ पायी थीं। सदियों तक पोप वगैरहके अत्याचारके कारण विज्ञान एक इंच भी आगे कदम नहीं बढ़ सका था और उन दिनों की याद करके तो विज्ञान आज भी सिसक उठता है।

किन्तु आज जर्मनी और पोपके देश इटलीमें विज्ञान के सच्चे पुजारियों पर डिक्टेटरोंकी कोप-दृष्टि पड़ी हुई है।

विज्ञानको ये दोनों डिक्टेटर—हिटलर और मुसोलिनी जबर्दस्ती नाजीवादकी पोषक बनाना चाहते हैं। नाजीवाद तथा फैसिज़्मकी उक्तियों और ग़लत थियोरियों को जबर्दस्ती ये लोग विज्ञानकी स्वीकृत-छाप दिलाना चाहते हैं। जापानमें भी अनायास विज्ञानको राजनीति के अखाड़ेमें घसीटा जा रहा है।

डिक्टेटरोंकी चेरी बन कर विज्ञानको जीनेके लिये मजबूर किया जा रहा है। किन्तु विज्ञान ऐसे वातावरणमें हरगिज पनप नहीं सकता। और डर है कि उस दूषित वातावरणमें कहीं उसका दम ही न घुट जाय।

विज्ञान-मार्गके पथिक तो पूरी ईमानदारीके साथ अनुसन्धान करना जानते हैं—हिटलर क्या सोचता है या मुसोलिनी क्या चाहता है इसकी उन्हें कुछ परवाह नहीं रहती। अतः सच्चे वैज्ञानिकोंके लिये उन डिक्टेटरों के मुल्कमें जगह नहीं। इन मुल्कोंमें वैज्ञानिक तथ्यको घुमा-फिरा कर ऐसा रूप देनेकी कोशिशकी जाती है कि वह डिक्टेटरोंके किसी खास राजनैतिक मतलबको हल कर सकें। वैज्ञानिकोंके लिये विचार स्वातंत्र्यका तो उन देशों-में रंचमात्र भी मौका नहीं। फलस्वरूप वे वैज्ञानिक जो अपने सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहते हैं, और डिक्टेटरों के रुखका ख्याल नहीं करते या तो कन्सेण्ट्रेशन कैम्पमें सड़नेके लिये भेज दिये जाते हैं या उन्हें देश निकाला दे दिया जाता है या इस दुनियासे ही नाजीवाद ठेकेदार उन्हें ख़त्म कर देते हैं। संसारका सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइन्सटाइन केवल एक यहूदी होनेके नाते आज अपनी प्रयोगशाला छोड़कर विदेशोंमें मारा-मारा फिर रहा है। जर्मनीका शासन-सूत्र जबसे हिटलरके हाथमें आया है पूरे १६०० वैज्ञानिक और प्रोफेसर देशसे बाहर निकाले जा चुके हैं।

हिटलर चाहता है कि जीव-विज्ञान और मानव-विज्ञानके विशेषज्ञ ऐसी वैज्ञानिक उक्तियाँ निकालें जिनकी मददसे वैज्ञानिक तरीकों पर यह साबित किया जा सके कि समूची यहूदी जाति ही नीच और निष्कृष्ट होती है तथा यहूदी वैज्ञानिक मानव जातिकी भलाईकी बात कभी सोच ही नहीं सकता। अभी देशके वैज्ञानिक इस बातको भली-भाँति जानते हैं कि यह जाति-बलकी नाजी थ्योरी सर्वथा ग़लत है, किन्तु हिटलर जबर्दस्ती अपने देशके वैज्ञानिकोंके मुँहसे यह थ्योरी सही क़बूल कराना चाहता है।

और खेद तो इस बातका है कि विज्ञानको बदनाम करने वाले कुछ ऐसे लोग हिटलरको मिल भी जाते हैं जो हाँमें हाँ मिलाते हुये तनिक भी नहीं हिचकते।

नाजी जर्मनीकी विज्ञान-परिषद्के मौजूदा अध्यक्ष प्रोफेसर जे० स्टार्कको सन् १९१९ ई० में फिज़िक्सके लिये नोबेल पुरस्कार मिला था। ये उन्हीं व्यक्तियोंमेंसे हैं जिनकी मददसे हिटलर आगे अपना उल्लू सीधा कर रहा है। आप एक वैज्ञानिककी हैसियतसे फर्माते हैं "यहूदी जातिके लोग विशेष रूपसे रूढ़िवादी और हठी होते हैं"—

कुछ दिन हुये अँग्रेजीके प्रसिद्ध विज्ञानके साप्ताहिक 'नेचर' में एक जर्मन नाज़ी वैज्ञानिककी लेखनीसे एक लेख प्रकाशित हुआ था कि "थियोरेटिकल वैज्ञानिकको हेयकी दृष्टिसे देखना चाहिये क्योंकि वे समाज और देश-की हितकामनासे प्रेरित होकर वैज्ञानिक अनुसन्धान नहीं करते। और वैज्ञानिक दो श्रेणीके हुआ करते हैं एक अच्छे और दूसरे बुरे—अच्छे वैज्ञानिकोंमें आर्यन वैज्ञानिकोंकी गिनती है तथा बुरोंमें यहूदी वैज्ञानिकोंकी। अवश्य ही 'नेचर' के सम्पादक ने अपने सम्पादकीय नोटमें इस लेख की तीव्र अलोचनाकी थी। किन्तु इसी तरहकी गलत धारणाको फैलाने वाले अक्सर लेख फैसिस्ट मुल्कोंके पत्र पत्रिकाओंमें आये दिन प्रकाशित होते रहते हैं। डिक्टेटर वाले देशोंके शिक्षा मंत्रीके व्याख्यानोंमें भी उसी तरहके ख्यालातका प्रदर्शन प्रचुरतासे किया जाता है।

स्वयं जर्मनीके अन्दर ही पिछली शताब्दीके अन्तिम चरणमें थियोरेटिकल विज्ञानके आचार्य्य हर्ट्ज़ ने वायर-लेस तरङ्गोंके सम्बन्धमें जो अनुसन्धान किये थे। उन्हींके आधार पर तो आजका रेडियो सेट, फैसियाइल मशीन और टेलिविज़न काम कर रहे हैं निरे प्रयोगात्मक अनु-सन्धान बिना थियरी और कल्पना-शक्तिकी मददके एक इंच भी तो आगे नहीं बढ़ सकते।

हज़ारोंकी संख्यामें जर्मनी और आस्ट्रियासे वैज्ञानिक भाग-भाग कर अमेरिका और इंगलैण्डमें शरण ले रहे हैं। इनकी सहायताका भी प्रश्न उन देशोंके वैज्ञानिकोंके

सामने है। इंगलैण्ड और अमेरिकाकी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं ने इनकी सहायतार्थ सार्वजनिक चन्दे भी इकट्ठे किये हैं और इसके लिये विशेष पुस्तकालयोंका आयोजन किया गया है ताकि बौद्धिक विकासके लिये उन्हें पूरा अवसर मिल सके।

साथ ही इन उन्नतिशील देशोंकी वैज्ञानिक संस्थाओं को इस बातकी फिक्र है कि किस तरह जर्मनी, आस्ट्रिया जापान और इटली स्पेन जैसे डिक्टेटर-प्रधान मुल्कोंमें विज्ञानके दीपकको बुझानेसे रोका जाय, क्योंकि इन फैसिस्ट मुल्कोंमें तो विज्ञानके उसी पहलूको पनपनेका मौका दिया जाता है जो वहाँकी गवर्नमेण्टकी ताकतको बढ़ानेमें मदद दे और भाँति-भाँतिकी संहारक युद्ध सामग्री नये-नये तर्जकी तैयार कर सके या युद्ध कालमें देशको स्वावलम्बी बनानेके लिये जो रसायनिक तरीकोंसे कृत्रिम कच्चा माल तैयार कर सकें।

इसी सिलसिलेमें अमेरिकाकी विज्ञान-वर्द्धिनी सोसायटी ने एक प्रस्ताव निम्नलिखित आशयका पास किया है—

"विज्ञान राष्ट्रीयताके तंग दायरेमें महदूद नहीं हो सकता और न किसी जाति विशेषकी यह निजी सम्पत्ति ही बन सकती है। यह केवल ऐसे वातावरणमें पनप सकता है जहाँ शान्ति और पूर्ण रूपसे बौद्धिक स्वतंत्रता लभ्य हो।

यदि विज्ञानको मानव समाजका हित करना है तो यह आवश्यक है कि वह जनताके अन्दर इस बातका प्रचार करे और उसके अन्दर इस वैज्ञानिक मनोवृतिका विकास करे कि वे जातिके बलपर फैलायी गई गलत धारणाओंको विज्ञानकी कसौटी पर कस कर फौरन पहचान लें कि वे झूठी हैं।"

सन् १९३८ ई० में कैम्ब्रिजमें 'ब्रिटिश असोशियेशन फ़ार एडवान्समेन्ट आफ़ सायन्स' ने भी इस प्रश्न पर गौर किया था और इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर इस अशोसियेशन ने अमेरिकाके वैज्ञानिकोंको भी निमंत्रित किया था। काफ़ी गौर करनेके बाद इस प्रश्न पर विचार करनेके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर कमिटी भी बनाई गई है। यह कमेटी डिक्टेटरोंके पञ्जे से विज्ञानकी रक्षा करने के लिये स्कीम बना रही है। और यदि इसे संसारके अन्य देशोंके वैज्ञानिकों और विचारशील जनताको मदद मिली तो अपने प्रयत्नमें यह अवश्य सफल होगी।

गणितके कुछ मनोरंजक प्रश्न

(ले० चन्द्रभूषण मिश्र बी० ए० एल-एल० बी०)

पाठकों! अधिकांश लोग गणितको बड़ा ही शुष्क विषय समझते हैं। परन्तु यदि वे ध्यानपूर्वक गणितके किसी भी अंगका भी अध्ययन अथवा मनन करें तो उन्हें शीघ्र ही अपनी भूल पर पश्चाताप करना पड़ेगा। और अन्तमें विवश होकर उनको यह मानना पड़ेगा कि वास्तवमें गणित भी संसारके सबसे अधिक रोचक विषयोंमें सर्व प्रथम नहीं तो उनमेंसे एक अवश्य है। इसी कारण तो कुछ लोग गणित को 'साइन्सोंकी रानी' कहते हैं। पाठकोंके आनन्दके लिये कुछ रोचक प्रश्नोंका उल्लेख किया जाता है।

प्रश्न एक मनुष्यके बायें हाथमें सिक्कोंकी विषम संख्या (odd) है और दायें हाथमें सम संख्या (even) केवल वही आदमी जिसके हाथमें सिक्के हैं, जानता है कि किस हाथमें विषम संख्या है और किस हाथमें सम संख्या। आप कैसे जानेंगे कि किस हाथमें विषम तथा सम संख्या है?

उत्तर—जिसके हाथमें सिक्के हैं उस आदमीसे आप यह कहें कि वह अपने बायें हाथके सिक्कोंकी संख्या को ३ से गुणा करे। दायें हाथके सिक्कोंकी संख्याको २ से गुणा करे। फिर उससे दोनों गुणनफलोंको जोड़नेके लिये कहो। और उससे योगफल पूछो। यदि योगफल एक विषम संख्या है तो यह समझो कि उसके बायें हाथमें विषम संख्या है। और यदि योगफल सम संख्या हो तो समझो कि उसके दायें हाथमें विषम संख्या है।

बालक पाठकगण! अब यह समझनेका प्रयत्न करो कि ऐसा क्यों होता है? ध्यानसे सोचो। कारण तुम्हें स्वयं मालूम हो जायेगा।

२. एक बालक आकर तुमसे कहता है, "मैंने एक

संख्या ली है उसको मैंने २ से गुणा किया, गुणनफलमें ४ जोड़ा और फिर योगफलको ३ से गुणा किया। गुणनफलको ६ से भाग दिया। फिर भजनफलमें से पहिलेकी ली हुई संख्या घटा दी गई। बताओ हमारे पास कौन सी संख्या शेष रह गई।"

उत्तरः—२ शेष रहेगा।

बालकों! सोचो, क्या कारण है कि प्रत्येक दशामें २ ही शेष रहेगा।

३. प्रश्न—एक बूढ़ा मनुष्य आकर तुमसे कहता है. "मैं उन्नीसवीं शताब्दीमें पैदा हुआ था। मैं तुमसे साल नहीं बताऊँगा। और जो चाहो पूँछ सकते हो। परन्तु तुम मुझे यह अवश्य बतला दो कि मैं किस साल पैदा हुआ था"।

उत्तर—तुम उससे इस तरह पूछो, "जिस वर्ष तुम पैदा हुये हो उस वर्षके दहाई अंककी संख्याको १० से गुणा करो और ४ जोड़ दो। इस योगफलमे इकाईकी संख्याको जोड़ दो उससे यह अंतका योगफल पूँछो"। उस योगफलको १२४ में से घटा दो। शेषको १९२०में से घटा दो। यही उसके जन्मका वर्ष हुआ।

उदाहरण—मान लो वह १८४८ में पैदा हुआ था। ४ को १० से गुणा करो। ४० में ४ जोड़ो। ४४ में इकाईकी संख्या अर्थात् ८ जोड़ दो। ५२ योगफल हुआ। १२४ में ५२ घटा दो। शेष ७७ हुआ। १९२० में ७२ घटा दो। १८४८ आ गया। अब यह विचार करो कि क्यों इस प्रकारसे उत्तर आ जाता है।

४. प्रश्न—नीचे एक सारिणी दी जाती है। उससे २१ वर्षसे कम अवस्था वालोंकी अवस्था शीघ्र ही जानी जा सकती है।

क	ख	ग	ग	घ
१	२	४	८	१६
३	३	५	९	१७
५	६	६	१०	१८
७	७	७	११	१९
९	१०	१२	१२	२०
११	११	१३	१३	
१३	१४	१४	१४	
१५	१५	१५	१५	
१७	१८	२०		
१९	१९			

यदि किसीकी अवस्था जाननी हो तो उससे पूँछो कि उसकी अवस्था किन किन कालम (columns) में है। फिर उन उन कालमोंके सबसे ऊपरकी संख्याओंको जोड़ लो वही उसकी अवस्था होगी।

उदाहरण - मान लो कि उसकी अवस्था २० वर्ष की थी। परन्तु वह आपसे कहता है कि मेरी उम्र तीसरे और पाँचवें कालममें है। तीसरे कालमके ऊपर ४ है। पाँचवे कालमके उपर १६ है। १६ + ४ = २०

५. ८१ गायोंको ९ साधुओंमें बाँटना है। पहिली गाय १ सेर, दूसरी गाय २ सेर और तीसरी गाय ३ सेर दूध देती है। इसी प्रकार ८१ वीं गाय ८१ सेर दूध देती है। उन गायोंको इस प्रकार विभाजित करना है कि प्रत्येक साधुको दूधका परिणाम बराबर मिले।

उत्तर - नीचे एक वर्ग ८१ खानोंका दिया जा रहा है। प्रत्येक खानेमें संख्यायें लिखी हैं जो उस गायके लिये हैं जो उतने ही सेर दूध देती है। ९ कालम हैं और प्रत्येक कालमकी लिखी हुई संख्याओंका जोड़ बराबर होता है। इस वर्गके खाने की पूर्तिको ध्यानपूर्वक देखो और समझनेका प्रयत्न करो। इसी प्रकार स्वयं ८ साधुओं और ६४ गायोंका प्रश्न लो और उसे हल करो।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१०
२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	१९	२०
३१	३२	३३	३४	३५	३६	२८	२९	३०
४१	४२	४३	४४	४५	३७	३८	३९	४०
५१	५२	५३	५४	४६	४७	४८	४९	५०
६१	६२	६३	५५	५६	५७	५८	५९	६०
७१	७२	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०
८१	७	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०

बेतार जगत्

(ले० श्री बंकटलाल ओझा, हैदराबाद, दक्षिण)

विषय प्रवेश

आज संसारमें रेडियो सर्व साधारणकी वस्तु हो गई है। अल्प व्ययमें ही मनुष्य इसे अपने घरमें लगा कर संसारके इस कोनेसे लेकर उस कोने तकके समाचार, गायन भाषण आदि घर बैठे सुनकर आनन्द लूट रहा है। और आज कई राष्ट्र इसी रेडियोके प्रतापसे अपने मतका प्रचार विश्व भरमें कर रहे हैं। आजके इस महायुद्धमें तो सभी समाचारोंकी प्राप्तिका मार्ग रेडियो ही हो गया है। दैनिक समाचार पत्र भी इसके समान ताजे समाचार देनेमें फीके हैं और कुछ आश्चर्य नहीं कि पिछले महायुद्ध में जिस प्रकार समाचार पत्रोंकी ग्राहक संख्यामें अपार वृद्धि हुई थी और नित्य समाचार पत्र पढ़नेका एक व्यसन सा हो गया था उसी तरह रेडियोका भी व्यसन आजसे हजारों गुना अधिक हम दो हो नहीं परन्तु छः मासमें ही देखते। सभी देशोंमें ब्राडकास्टींग स्टेशन जहाँसे समाचार आदि प्रसारित किये जाते हैं वहाँकी सरकारोंका एक मात्र आधिपत्य रहता है। भारतमें भी यह विभाग प्रान्तीय स्वराज्य मिलने पर भी प्रान्तीय सरकारोंके अधीन न रह कर सिन्ध भारत सरकारके अधीन है। और हमारे देशमें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास हैदराबाद दक्षिण आदि लगभग १२ बड़े बड़े नगरोंसे ब्राडकास्टिंग होता है। जहाँ पर भारतकी विभिन्न प्रांतीय सभाओंके कार्यक्रम और समाचार प्रसारित किये जाकर संसार भरमें फैलते हैं।

उन्नीसवीं सदीके अन्त और बीसवीं सदीके प्रारम्भ में भौतिक विज्ञानके संबंधमें अनेक अन्वेषण हुये। जिनके फलस्वरूप पृथ्वी परके पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान-प्राप्तिके लिये अनेक साधनोंके उपयोगों द्वारा मानव प्राणीका बहुत कुछ उपकार भी हुआ है। सुख-साधनकी सामग्रियोंमें दिनों-दिन प्रगति होती जारही है। उसी प्रकार इस भौतिक संसारमें अल्पसे अल्प और विशालसे विशाल प्रत्येक वस्तुके गुण-धर्म और उसमें व्यवहार होने वाली सभी तरहकी शान्तिका सच्चा स्वरूप उनके परस्पर संबन्धोंका ज्ञान होता जा रहा है। और इन ज्ञानोंके उपयोगसे मानव जीवन अधिक सुखमय, निरोग, और आनन्दमें हो, ऐसे नये नये साधन उपलब्ध हो रहे हैं। ऐसे ही नये आविष्कारोंमें 'रेडियो' भी एक है।

आँखों द्वारा दूरबीनकी सहायतासे हजारों मीलोंके अन्तर पर स्थित तारों और ग्रहोंको हम अपने निकट देख सकते हैं और सूक्ष्मदर्शन यंत्रकी सहायतासे अति सूक्ष्म पदार्थको भी कई गुना बड़ा देखते हैं। उनका विशेष ज्ञान हम प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार 'रेडियो'की सहायतासे किसी भी स्थान पर उत्पन्नकी हुई ध्वनिको चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म और किसी भी भाषामें क्यों न हो दूरीकी मर्यादाको पार कर हमारे कानोंमें उस स्थान पर जिस रूपमें कही गई थी उसी समय सुन सकते हैं। इतना ही नहीं, वह ध्वनि किसकी है वह भी हम पहचान सकते हैं। इसी तरहका परन्तु इससे भी पूर्व आविष्कृत 'टेलीफोन' से हम कई मीलोंके अन्तर पर बोलने वाले मनुष्यसे केवल एक चोंगा लगाकर वार्तालाप कर सकते हैं।

'टेलीफोन' के पहले 'तार' का आविष्कार हुआ। 'तार' और 'टेलीफोन'में दोनों ही स्थल तारोंसे संबंधित किये जाते हैं और विद्युत् की लहरें संचालित कर इष्ट कार्य सिद्ध किया जाता है। उन स्थलोंमें से एकको 'प्रेषण स्थल' (Transmitting Station) और दूसरेको 'ग्रहण स्थल' (Receiving Station) कहते हैं। उपरोक्त स्थलों पर विशेष यंत्रोंकी आवश्यकता होती है। तार द्वारा लम्बे अन्तर पर ध्वनि या संज्ञा उत्पन्न कर उसके संकेतोंसे सन्देश पहुँचाया जाता है और टेलीफोनसे प्रत्यक्ष शब्द चाहे जितने अन्तर पर चोंगेके सामने कहने पर सुनाई देता है।

परन्तु इन आविष्कारोंके पश्चात् बेतारका तार और रेडियोका स्थान है। इन दोनोंमें विद्युत् धारा और विद्युत् शान्तिके संयोगसे विद्युत् चुम्बकीय तरंग (Electro-magnetic Waves) उत्पन्न कर उसके द्वारा

तारोंको बिना जोड़े ही एक स्थानसे दूसरे स्थान पर सन्देश या ध्वनि भेजते हैं। जिसे हम तार कहते हैं। उसका व्यवहार गत एक शताब्दीसे ही हो रहा है। और बेतारके तारका आविष्कार सन् १९०७ ई० में हुआ है। इसका श्रेय इटलीके श्री मार्किन नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकको है। इसके पहले हमारे देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० सर जगदीश चन्द्र बोस ने इस संबंधमें बहुतसी ज्ञातव्य बातोंका पता लगाया था। परन्तु बेतारके द्वारा प्रथम समाचार श्री मार्किन ने ही भेजा। इसका उपयोग गत् महायुद्धके अवसर पर विशेष हुआ। इसकी सहायतासे संज्ञादर्शक ध्वनि उत्पन्न कर सांकेतिक सन्देश पहुँचाये जाते हैं। परन्तु मनुष्यकी ध्वनि, गायन, भाषण आदि चाहे जिस अन्तरसे हो जैसेका वैसा सुनाई दे, ऐसा साधन तो 'रेडियो' के आविष्कार द्वारा ही प्रस्तुत हुआ है। और यह गत १०-१५ वर्षसे ही उपलब्ध हुआ है। बेतारके तारमें वैज्ञानिकों ने संशोधन और परिवर्द्धनके लिये अनेक प्रयोग ओर अन्वेषण किये और उसी सतत् परिश्रमका फल 'रेडियो' है।

'रेडियो' का सविस्तार परिचयके प्रथम 'बेतारका तार' (वायरलेस) किस सिद्धांत पर अवलंबित है यह अपनेको पहले जान लेना चाहिये। कारण कि इसीकी नींव पर ही रेडियोका विशाल भवन रचा गया है।

सूर्य किरणोंका विकीरण (Radiation) होते समय पृथ्वीसे वह ग्रहण किये जाते हैं। और उसीसे पृथ्वी प्रकाशित होती है। और उसी तरह प्रेषण स्थल (Broadcasting Station) से निकली हुई लहरका विकीरण होते ही लहरको जो ग्रहण करता है उस यंत्रका नाम 'ग्राहक यंत्र' (Receiver) है उसीको 'रेडियो' कहते हैं।

अंग्रेजी शब्द 'रेडियो' अपने यहाँ केवल 'ध्वनिग्राहक' यंत्रके लिये ही प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु इस शब्द का मूल अर्थ देखे तो प्राण किया द्वारा निर्मित सभी प्रकारके (एडिएशन) कार्यके लिये यह शब्द लागू होता है। इसी प्रकार लहरें बेतारका तारमें उत्पन्न करनी पड़ती हैं। 'बेतारका तार' और 'रेडियो'में जिस तरह विद्युत् चुम्बीय प्रवाह उत्पन्न कर प्रसारित किया जाता है उस यंत्रको 'क्षेपक यंत्र' या 'प्रेषक यंत्र' (Transmitter) कहते हैं, और जिस स्थानसे वह प्रवाह उत्पन्न कर प्रसारित किया जाता है उस स्थानको 'प्रेषण-स्थल' वा उद्गम-स्थल कहते हैं। जिस स्थान पर उपरोक्त स्थान से प्रसारित की हुई लहरोंको ग्रहण किया जाता है उसे 'ग्रहण-स्थल' (Recieving Station) और जो यंत्र उसे ग्रहण करता है उसे 'ग्राहक यंत्र' (Radio) कहा जाता है। विशेष कर 'ग्राहक यंत्र' ही 'रेडियो' कहलाता है।

विद्युत्की विशेष प्रकारकी लहरें (विद्युत् चुम्बकीय तरंग) किसी भी स्थान पर उत्पन्न कर बिना तारके वायुमंडलमें से भेजी जा सकती है। उसमें प्रवाहके समान प्रसारित होनेकी शक्तिके कारण ध्वनि जिस रूपमें व्यक्त की गई थी उसे उसी रूपमें उसी समय चाहे जिस स्थानसे रेडियोकी सहायता द्वारा मनुष्य सुन सकता है।

जिस प्रकार सूर्यकी ज्योति सभी ओर एक साथ फैलती है उसी तरह यह लहरें विशेष प्रकारसे उत्पन्न कर सभी ओर एक साथ फैलाई जाती है। इसी क्रिया को 'ब्रॉडकास्टिंग' कहते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस प्रकारके विशाल शक्ति शाली 'प्रेषण स्थल' संसार के सभी मुख्य-मुख्य नगरोंमें सन् १९२१ ई० के पश्चात् स्थापित किये गये हैं। इन स्थानों पर शिक्षा, मनोरंजन विनोद, कथा-कहानी, इतिहास, दैनिक समाचार, बाजार-भाव आदिके कार्यक्रम नित्य ही चलते हैं और हजारों मीलोंकी दूरी पर बैठे हुये लोगोंको आसानीसे सुनाई पड़ते हैं। ऐसे स्थान पर प्रसारित की गई ध्वनि सुननेके लिये केवल 'ग्राहक यंत्र' (Reciever) रखना पड़ता है। बेतारकी दूरध्वनिमें विद्युत् चुम्बीय नामक विशेष लहरोंका प्रवाह उत्पन्न करना पड़ता है। और यह ध्वनि-विद्युत् स्वरूपमें आने वाली होती है परन्तु वह स्वयं श्रव्य नहीं होनेके कारण उसे 'रेडियो'की सहायतासे उस लहरको श्रव्य बनाया जाता है। जिससे हम 'प्रेषण स्थल'पर प्रसारित ध्वनि घर बैठे इस यंत्रके अतिरिक्त अर्थात् 'रेडियो' के बिना नहीं सुन सकते। इसीलिये इसकी आवश्यकता होती है।

यह 'ग्राहक यंत्र' (रेडियो) विविध रूप, रंग, कम अधिक शान्ति और मूल्यका होता है। इनमेंसे कई यंत्र ऐसे भी हैं जिसका चोंगा (Head phone) कान पर लगानेसे ही सुनाई पड़ता है। प्रेषण स्थलसे चारों ओर १०-१२ मीलके अन्दरमें सुनाई दे, ऐसे सस्ते 'रेडियो से' भी निकले हैं जिसे 'क्रिस्टल-सेट' कहते हैं। कई यंत्र हजारों मील दूर होने वाली ध्वनि (अर्थात् भाषण आदि) को एक विशाल भवन या मैदानमें बैठे हुये हजारों आदमी एक साथ सुन सके, ऐसे भी आते हैं। उसमें 'महावक्ता' (Loud speaker) का या 'कीप' (Funnel) का उपयोग किया जाता है। और यह बहुत ही कीमती है। यह यंत्र उस सम्बन्धी संपूर्ण ज्ञान होने पर उसमें काम आने वाली सामग्रीको जोड़ कर बना सकते हैं। इस विषयमें हम आगे लिखेंगे। ऊपर हमने जिसे 'प्रेषण स्थल' कहा है उस स्थान पर मीनारोंकी तरह बहुत ही ऊँचे अर्थात् गगनचुम्बी लोहेके खम्भे खड़े कर उन पर कई तार निरोधक (Insulator) समान्तर लगाये जाये हैं। और इस तरह इन तारोंमें कम अधिक शान्ति शरदी विद्युत् शक्तिकी लहरें हलचल करनेके लिये उत्पन्न कर विद्युत् चुम्बकीय तरंग आकाश तत्व (ईथर) में प्रसारित होती हैं। इस तरह प्रेषण स्थलको कम अधिक शक्तिशाली बना सकते हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगकी गति प्रकाशकी गतिके समान एक सेकण्डमें १८६००० मीलकी होती है। और एक सेकण्डमें सात बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लेती है। ध्वनि लहर प्रकाश लहर और ताप लहर एक ही तरहकी अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय तरंग है। केवल कम अधिक झूलन संख्या (Frequency) का अन्तर है। परन्तु यह लहर प्रकाश लहरके समान न दृश्य न ध्वनि लहरके समान श्रव्य और न ताप लहरके समान स्पर्शजित है। अर्थात् प्रेषण स्थल पर उत्पन्नकी गई लहरें मनुष्यको दिखाई नहीं देती।

सभी 'प्रेषण स्थलों' पर आनुक्रमिक तरंग द्रव्यके शिखरोंके मध्यकी दूरी (Wavelength) उत्पन्नकी जाती है। तथा वहाँ एकके बाद एक बराबर अन्तर पर जाने वाली तरंग द्वंद्का (Wavelength) अन्तर निश्चित मीटर ❀ की लम्बाईका होता है। और एक मीटरसे हजारों मीटरकी दूरीके विविध स्थल ठहराये जाते हैं। जैसे दिल्लीमें तीन प्रकारकी लहरों द्वारा सन्देश भेजे जाते हैं उनका क्रमसे मीटर ३३८·६, ३१·३ ६ ·४९, और १४·६२ तथा क्लोसाईकल ९९६,४८९०, ४६६०, और १८२९० है। जब बम्बईका मीटर क्रमशः १२४४, ३११·४ और १२३१, ६५५० क्लोसाईकल हैं। भारत तथा विदेशोंके मीटर आदि पर आगेके किसी अध्यायमें प्रकाश डालेंगे। १ से ७५ तकके मीटरकी दूरी को ह्रस्व (Short waves) ७५ से २५० मीटर तकको मध्यम (Medium) और २५० से अधिक मीटरको दीर्घ (Long waves) में गणना होती है। तरङ्गान्तर क्या है और उसको गणना कैसे होती है यह आगे आयेगा।

'प्रेषण-स्थल' से जिस समय ध्वनि विश्व भरमें प्रेषित करनेकी होती है उस समय वह प्रेषण स्थल पर ही निर्माण होकर प्रसारित हो, ऐसा नियम नहीं है। परन्तु जहाँ ध्वनि होती है वहाँ पर बक्सके सम्मुख सूक्ष्म ध्वनि वर्द्धक (Microphone) रख कर उसे तार द्वारा टेलीफोनके समान प्रेषक स्थल संबन्धित किया जाता है। और यहाँसे ध्वनी लहरका विद्युत् प्रवाहमें रूपान्तर होकर वह ध्वनि प्रेषण स्थलपर उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगमें लीन हो जाती है। इस प्रकार विद्युत् चुम्बकीय तरंगको अपना वाहन बना कर अतिवेगसे बिना तारोंकी सहायताके जाती है, और इसीलिये एक स्थान पर की गई ध्वनि सभी ओर ('रेडियो' यंत्र इस लहरका ग्रहण करने वाला होनेपर) उसी समय विश्व भरमें सुनाई देती है।

❀ पृथ्वीके परिछायाका चौथा भागका करोड़वाँ भाग ३९·३७२१ = १मीटर।

कारखानोंकी व्यवस्था

(ले० ओंकारनाथ शर्मा)

(लेखककी "औद्योगिक प्रबंध" नामक अप्रकाशित पुस्तक का पाँचवाँ अध्याय)

यह सर्वसम्मत सिद्धांत है कि प्रत्येक संस्थाकी सफलता उसके प्रबंध पर और उसका प्रबंध उसके कर्मचारियोंके संगठन पर निर्भर रहता है। इसलिये प्रत्येक संस्थाके संस्थापकोंको इस विषयपर विशेष ध्यान देना चाहिये। सब प्रकारकी संस्थाओंके कर्मचारियोंका संगठन कैसा होना चाहिये, इस विषयके अटूट नियम तो नहीं बनाये जा सकते, क्योंकि प्रत्येक कारखानेके प्रबंध और संगठनमें उसमें होने वाले काम, आर्थिक स्थिति और अन्य स्थानिक कारणोंके अनुसार भिन्नता हुआ करती है। लेकिन फिर भी इस अध्यायमें इस विषयके कुछ थोड़ेसे मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन मात्र करानेका प्रयत्न किया जायेगा।

अक्सर बड़े कारखानोंके चलानेके लिये एक कम्पनी बना ली जाती है, और उसके हिस्सेदारोंमें से निर्वाचन द्वारा डाइरेक्टरोंकी एक समिति बना ली जाती है, जिसे कम्पनीके कारखाने और व्यापारका सब प्रबन्ध करना होता है।

कारखानेका प्रबंध करनेके लिये यह समिति एक मुख्य यांत्रिक (Chief Engineer) को नियुक्त करती है, जो कि अपने वैज्ञानिक कार्य-कारखानेके प्रबंधमें बड़ा दक्ष होता है, और डाइरेक्टरोंका विश्वासपात्र होता है। इसलिये कारखानेका पूर्ण शासन-भार उसीके जिम्मे छोड़ दिया जाता है। यह यांत्रिक आर्थिक विषयोंमें सदैव डाइरेक्टरोंकी समितिकी आज्ञानुसार कार्य किया करता है। अथवा यों समझिये कि डाइरेक्टरोंका तो काम यह निश्चय करना होता है कि कारखानेमें क्या काम हो और अधिकसे अधिक कितनी लागतमें? और मुख्य यांत्रिकका यह कर्त्तव्य होता है कि वह निश्चय कर दे कि डाइरेक्टरों द्वारा बताया हुआ काम किस प्रकारसे हो सकता है और यदि उसमें आर्थिक कठिनाइयाँ आनेवाली हों तो वह डाइरेक्टरोंको पहिलेसे सुझादे और हो सके तो यह भी बता दे कि वे किस प्रकारसे सुलझ सकती हैं। इसका आशय यह है कि मुख्य यांत्रिकका कर्त्तव्य कारखानेके संचालनकी नीतिको निर्धारित करते समय डाइरेक्टरोंको सलाह देना और फिर उनकी निर्धारित नीतिके अनुसार कारखानेका प्रबंध करना होता है।

अब यह प्रश्न सामने आता है कि जब डाइरेक्टर लोग इस बातका निश्चय कर लें कि उन्हें अमुक काम करनेके लिये अमुक स्थान पर कारखाना जमाना है तब किस विशेषज्ञको मुख्य यांत्रिकके स्थान पर नियुक्त किया जाय जो निश्चय करे कि :—

१—कारखानेके लिये कौन-कौनसे यंत्रोंकी आवश्यकता होगी है।

२—खरीदे जाने पर कौन-कौनसे यंत्र कौन-कौनसी जगह पर जमाये जावें।

३—कारखानेका संगठन कैसा हो।

४—किसी-किस पद पर किस-किस कार्यकर्त्ताको नियुक्त करें।

यह प्रश्न तीन प्रकारसे हल हो सकता है।

(१) किसी विश्वासपात्र और योग्य सलाहकार यांत्रिकको कारखानेका डिज़ाइन करने, उसकी इमारत का निर्माण करवाने और उसका ढङ्ग जमानेके लिये नियुक्त करना और साथ ही में किसी सुयोग्य यांत्रिकको मुख्य यांत्रिकके स्थान पर नियुक्त कर देना जो कारखानेके चालू होने पर उसे सम्हाल ले।

यदि उपरोक्त सलाहकार यांत्रिकको इसी प्रकारके कारखानोंको डिजाइन करने और निर्माण करवाकर चालू करनेका पूर्ण अनुभव है और यदि वह कोई चालाकी न कर जाय, तब तो निश्चय ही कार्य उत्तम और सफलता पूर्वक होगा। असलमें इस तरीकेसे काम करवानेमें अकसर दो दिक्कतें हुआ करती हैं। उनमेंसे पहिली तो यह कि सलाहकार यांत्रिक अपनी मेहनतके लिये कुछ फीस लिया करते हैं जो कि कारखाना तैयार करनेमें खर्च होने वाली पूँजीका कुछ भाग हुआ करती है; इस

लिये यदि वह चालाकी करना चाहे तो अपनी फीस बढ़ानेके लिये अधिक पूँजी खर्च करवा सकता है। दूसरी दिक्कत यह है कि जहाँ एक बार निर्माण-कार्य समाप्त हुआ और सलाहकार-यांत्रिककी ज़िम्मेदारी भी वहीं समाप्त हुई, जिससे पीछे बहुत दिक्कतें उठानी पड़ती हैं।

(२) सलाहकार-यांत्रिकको ही मुख्य यांत्रिक बनाकर कारखानेका शासन भार सौंपना। जब इस तरकीब से काम लिया जाता है तब तो वह आरम्भसे ही ऐसा प्रयत्न करेगा कि जिससे कारखानेकी प्रत्येक चीज़ पक्की और उत्तम हो जिससे बादमें उसे दिक्कत न उठानी पड़े। असलमें यही तरकीब सबसे अच्छी भी है, क्योंकि इसमें उसके वेतनका प्रारंभिक पूँजीसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता और वह अपने रोज़गारको चालू रखनेके लिये हर एक काम बड़ी किफ़ायत और ख़ूबीसे पक्का और उत्तम करेगा। यदि प्रारंभिक पूँजी थोड़ी खर्च होगी तो पूँजीका व्याज और छीजन खर्च भी कम होगा।

अब यह भी प्रश्न उठ सकता है कि कहाँ तो सलाहकार-यांत्रिकको नियुक्त करना चाहिये और कहाँ स्थायी यांत्रिकको नियुक्त करना चाहिये? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि यह सब व्यापारकी योजनाके अनुसार निश्चय करना चाहिये। यदि हमारी योजना बहुत बड़ी है तब तो हमें किसी विख्यात, अनुभवी और सुयोग्य यांत्रिकको स्थायी रूपसे नियुक्त कर देना चाहिये जिससे वह आरम्भसे अन्त तक सब काम सम्हाल ले। और यदि हमारी योजना साधारण है और हम थोड़ी पूँजीसे ही काम चलाना चाहते हैं तो हमें किसी अनुभवी सलाहकार-यांत्रिककी सम्मति और सहायतासे कारखाने को जमाना चाहिये और काम चलानेके लिये एक साधारण योग्यता वाले अच्छे यांत्रिकको साधारण वेतन देकर स्थायी रूपसे नियुक्त कर देना चाहिये, जिसका कर्त्तव्य होगा कि वह सलाहकार-यांत्रिकके प्रदर्शित मार्गसे काम चलावे।

(३) कारखानेके डिज़ाइन और निर्माणका काम किसी ठेकेदारको सौंप दिया जाय और वही अपने यांत्रिकों द्वारा सब काम करवा दे। वैसे तो यह तरकीब देखनेमें बड़ी सुगम प्रतीत होती है, लेकिन इसका परिणाम अन्तमें अकसर निराशाजनक होता है। यह तो सभी जानते हैं ठेकेदार लोग केवल पैसा कमानेसे मतलब रखते हैं और इसलिये उनकी बनाई हुई योजनायें भी ऐसी ही होती हैं जिसमें उनका सबसे अधिक मतलब सिद्ध हो। संयोग वश यदि वे योजनायें मालिकोंके लिये लाभप्रद हो जावें तो उनका भाग्य ही समझना चाहिये। वैसे यदि आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो यह तरीक़ा सिर्फ़ पागलपनसे भरा हुआ है, लेकिन तब भी हमारे दुर्भाग्यवशसे हमारे देशकी सरकार, म्युनिसपैलिटियाँ, सेठ, ज़मींदार और राजा महाराजा स्वयं परिश्रम न करके इसी तरीक़ेको पसन्द करते हैं। भारतवर्षमें अकसर देखा गया है कि इस प्रकारके ठेके विदेशोंकी यंत्र-निर्माण करने वाली कम्पनियाँ किसी न किसी रूपमें आकर ले लेती हैं और फिर जैसे बने वैसे स्वनिर्मित सामानको वहाँ घुसेड़नेकी कोशिश करती हैं। वहाँ उनके अच्छे बुरेका कोई प्रश्न ही नहीं रहता। हमारा यहाँ पर उपरोक्त बातें कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि हमेशा ठेकेदारसे इस प्रकारके काम करवाना, अथवा विशेष प्रकारका सामान माँगना हानिकारक ही होता है, बल्कि मतलब यह है कि इस प्रकारके प्रबन्धमें मालिकोंको सावधानीसे काम करने और ठेकेदारको समझ-बूझ कर चलनेकी आवश्यकता है। किस किस चीज या कामका ठेका किसको और किस प्रकारसे दिया जाय इसका कुछ दिग्दर्शन अगले अध्यायमें किया जायगा।

कार्य-कर्त्ताओंका संगठन

कारखानेका काम चालू रखनेके लिए किन-किन कार्य-कर्त्ताओंकी आवश्यकता होगी, अब इस बातका विचार करना है। छोटे और बड़े कारखानोंमें कार्य-कर्त्ताओंका संगठन भिन्न-भिन्न प्रकारका हुआ करता है। लेकिन अच्छा संगठन वही कहलाता है, जिसके प्रत्येक कार्य-कर्त्ताका अधिकार, कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारियाँ अलहदा-अलहदा और एक दूसरे से स्वतन्त्र हों, अर्थात् किसी भी दो कार्य-कर्त्ताओंकी एक ही बातकी ज़िम्मेदारी नहीं होनी चाहिये जिसमें वे एक दूसरेके भरोसे रह जावें और काममें बाधा पड़े। हाँ, वे एकताके सूत्रमें अवश्य ही बँधे रहने चाहिये और उन्हें आपसमें एक दूसरेसे पूर्ण सहानुभूति होनी चाहिये और सब अपनेको एक ही संस्थाका आवश्यक अंग समझें।

हर एक कारखानेका काम और आर्थिक स्थिति एकसी न होनेके कारण यह तो नहीं बताया जा सकता कि उनमें कौन-कौनसे कार्य-कर्त्ता अवश्य ही होने चाहिये और उनकी क्या-क्या ज़िम्मेदारियाँ होनी चाहिये, लेकिन यहाँ पर यह बतानेका प्रयत्न अवश्य ही किया जायगा कि आधुनिक कारख़ानोंके संगठनका विकास किस प्रकार हुआ और उनके मूल-सिद्धान्त क्या हैं, जिससे पाठक गण अपनी परिस्थितिके अनुसार अपने कारख़ानेका संगठन आप ही सोच लें।

कारख़ानोंके संगठनका विकास :—

प्राचीन समयके कारख़ानोंमें अकेला लोहार ही यांत्रिक (Engineer) का काम और आधुनिक कारख़ानोंमें पाये जाने वाले सभी मुख्य-मुख्य पदाधिकारियोंका काम भी वही किया करता था, अर्थात् कारख़ानेका मैनेजर, यांत्रिक, चित्रकार (Draughtsman), भंडारी (Store keeper), फोरमैन कारीगर और यहाँ तक कि कुलीका काम भी वही किया करता था। यदि कभी उसे किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती थी तो वह अधिक से अधिक एक घन चलाने वालेको नौकर रख लिया करता था। फिर जैसे-जैसे उसका काम बढ़ता गया तब या तो उसने दूसरे लोहारोंको नौकर रख लिया या अपना साझी बना लिया। और फिर भी आगे ज्यों-ज्यों काम बढ़ता गया और अधिक संख्यामें कुछ लोग इस प्रकार इकट्ठे होकर एक स्थान पर काम करने लगे तो उस समय व्यवस्था ठीक रखने और विधिवत् काम चलानेके लिये, उन बहुतसे कारीगरोंमेंसे किसी एक सबसे होशियार कारीगरको मिस्त्रीके रूपमें काम करना पड़ा। इस प्रकार से उन्नति होती रही, कारख़ानोंका संगठन बढ़ता और दृढ़ होता रहा, यहाँ तक कि वहाँ सेठ, प्रबंधक, मुनीम, गुमाश्ते, फोरमैन, मिस्त्री, कारीगर और मजदूर आदि दिखाई पड़ने लगे। जैसे-जैसे जनताकी आवश्यकतायें बढ़ती गई, यंत्र-विद्याकी उन्नति होती गई, और नाना प्रकारका बँधा हुआ अर्थात् नम्बरी माल तैयार होने लगा तो वहाँकी व्यवस्था और भी खूब नियमपूर्वक होने लगी और संगठन बहुत दृढ़ हो गया। वहाँके कार्य-कर्त्ताओंकी श्रृंखला नीचे दिये हुये वृक्षकी जैसी कुछ हो गई। इस प्रकारका संगठन बड़े-बड़े कारख़ानोंमें ४० या ५० वर्ष पूर्व तक पाया जाता था और कई छोटे कारख़ानोंमें अब भी है।
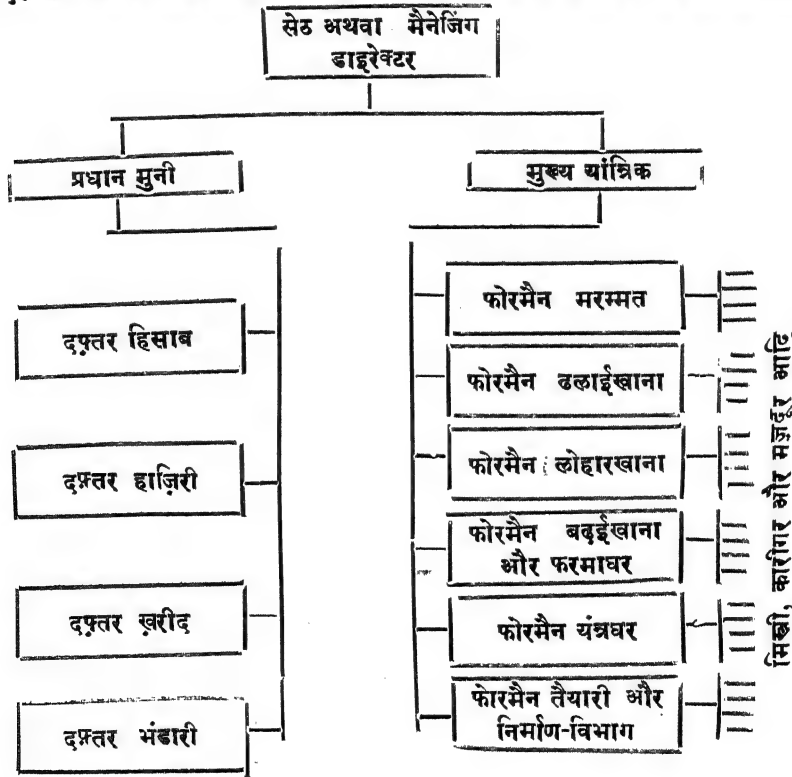
फोरमैनका कर्त्तव्य :—

पुराने समयमें तो फोरमैन ही आवश्यकतानुसार कारीगरोंको समझानेके लिये नक़शे वगैर: बना लिया करता था या अपने किसी सहकारीसे बनवा देता था लेकिन जब काम अधिक हो गया तब कुछ याँत्रिक चित्रकार रखने पड़े। फिर भी जब चित्रोंके काममें कठिनाइयाँ आने लगी तब यांत्रिक चित्रकारोंका एक विभाग ही अलहदा बना दिया गया जो मुख्य यांत्रिकके निरीक्षणमें काम करने लगा।

फिर भी फोरमैनके ज़िम्मे भाँति-भाँतिके काम रहे। पूर्व समयमें उसने कौन-कौनसा काम किस-किस प्रकारसे करवाया है, इसका कोई लेखा नहीं रहता था, केवल उसकी स्मरण-शक्ति पर ही भरोसा रक्खा जाता था। फोरमैनका कर्त्तव्य था कि उसे जो काम दिया जाय, उसे करनेकी सबसे सुगम और सस्ती तरकीब सोचे, यह निश्चय करे कि उसमें कौन-कौनसा और कितना-कितना सामान लगेगा, फिर वह सामान वस्तु-भंडारसे मँगावे, तैयार मालका निरीक्षण कर देखे कि वह ठीक बना है या नहीं और यदि ठीक हो तो उसे तैयार मालके गोदाममें भिजवा दे। फोरमैनके ही हाथमें कारीगरों और मज़दूरोंको भरती करना और मौकूफ़ करना था, उसीको अपने मातहतोंसे नियमानुसार काम करवाना होता था और उसे ही यह देखना होता था कि उसके विभागसे सम्बन्ध रखने वाला काम दूसरे विभागोंमें ठीक समय पर और ठीक प्रकारसे होता है या नहीं। इन सब बातोंके अलावा उसे और भी छोटे-मोटे अनेक प्रकारके काम आवश्यकतानुसार करने होते थे।

कारीगरका कर्त्तव्य :—

कारीगरका कर्त्तव्य होता था कि अपना असली काम करनेके अलावा, वस्तु-भंडार अर्थात् गोदामसे जाकर अपने लिये सामान लावे, अपने औज़ारोंको सुधार कर रक्खे और अपने लिये दूसरे कारीगर अथवा विभागसे काम ले और स्वयं उस वस्तु पर अपने कामका हिस्सा कर चुकनेके बाद दूसरे कारीगर अथवा विभागको उस वस्तु पर आगेका काम होनेके लिये यदि आवश्यकता हो तो पहुँचा भी दे।

श्रम विभाग:—

यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि अधिक कार्य-क्षमता प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको केवल वही काम दिया जाना चाहिये जिसमें वह खूब निपुण हो। इसलिये प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये जिससे एक चतुर कारीगरका समय वस्तु-भंडारसे सामान लानेमें अथवा दूसरे कारीगरसे अपने हिस्सेका काम माँगनेमें और इधर-उधर बोझा घसीटनेमें समय नष्ट न हो। इसी प्रकार मिस्त्री और फोरमैनका भी अमूल्य समय छोटी-छोटी बातोंमें जैसा कि ऊपर बताया है, बरबाद नहीं किया जाना चाहिये। कारीगरोंका काम भी कई दर्जेका होता है। सब प्रकारके काममें अधिक होशियारीकी ज़रूरत नहीं होती। उदाहरणके लिये आज कलके बड़े कारखानोंमें जहाँ अधिक मात्रामें एकसा बँधा हुआ नम्बरी माल निकला करता है वहाँ प्रत्येक समानको सही और सच्चा बनानके लिये गेज बना लिये जाते हैं जो कि नापकी अधिक और कम सीमा बताते हैं, जिनकी सहायतासे साधारण कारीगर भी विशेष यंत्रों द्वारा थोड़ेसे परिश्रम और समयमें बहुतसे सही और सच्चे पुर्ज़े जल्दी-जल्दी बना सकता है, और वह भी ऐसे कि जिन्हें आपसमें मिलाते समय रेतने-रगड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। साथ ही आजकल विशेष कामके लिये विशेष-प्रकारके औज़ार भी बनाये जाते हैं जिन्हें अँग्रेजीमें जिग और फिक्चर (Jig and Fixture) कहते हैं जिनके साथ पुर्ज़ोंको बाँधकर खरीदनेमें बिल्कुल सही और सच्चा और जल्दी-जल्दी काम होता है, और काम करने वालेको कुछ अक़्ल खर्च न करके केवल यंत्र की भाँति काम करना होता है। इसलिये आधुनिक कारखानोंमें औज़ार-गृह नाम का एक विशेष विभाग होता है जहाँ सब प्रकारके गेज और औज़ारोंका भंडार रहता है, वहीं पर बड़े-बड़े होशियार कारीगरों द्वारा नये-नये औज़ार बनवाये जाते हैं और सब प्रकारके धार वाले मोठे औजारोंकी धार तेज़की जाती है। पुराने ढंगके कारखानोंमें तो यंत्रोंको चलाने वाले ही अपने औज़ारोंको अपनी इच्छानुसार तेज़ कर लिया करते थे, लेकिन यह अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुका है कि अच्छा काम करनेके लिये हर एक खास शकलमें ही धार लगानी चाहिये,

इसलिये यह काम भी औज़ार-गृहके विशेषज्ञ कारीगरों को ही सौंप दिया जाता है। यंत्रगृहके कारीगरोंको तो इतना ही करना पड़ता है कि ज्योंही उनके औज़ार खराब हों, मोटे और टूटे हुये औज़ारको एक दम औज़ार-गृहमें लौटा कर बदलेमें तेज़ और अच्छे औज़ार लाकर अपना काम चालू कर दे।

ऊपर जिस प्रकार साधारण और चतुर कारीगरोंका विभाग हो गया उसी प्रकार विचारसे काम करने वालों और शारीरिक श्रमसे काम करने वालोंका भी अलहदा-अलहदा विभाग कर दिया जाता है। हम यह बात जानते हैं कि जब हमें किसी कामके करनेका बहुत अभ्यास हो जाता है तब वह काम थोड़ेसे श्रममें बहुत जल्दी हो जाता है क्योंकि उस काममें हमें बार-बार विचारमें समय लगाने की ज़रूरत नहीं रहती और शरीर भी उस परिश्रमके लिये अभ्यस्त हो जाता है। इसलिये एक-एक विभागोंमें भी प्रत्येक प्रकारके काम करने वालोंके लिये अलहदा-अलहदा ठीये अर्थात् (Gangs) बना दिये जाते हैं. जिसका फल यह होता है कि कम वेतन वाले साधारण योग्यताके कारीगर भी अभ्यास होनेसे बड़ा सच्चा काम करने लगते हैं। इधर अनुभवी कारीगर जो कि दिमाग़ से सोचनेका काम कर सकते हैं उन्हें उपाय-विभाग (Planning Department) में लगा देते हैं जिनका काम केवल नये-नये प्रकारके विशेष औज़ारोंको बनवाना और अच्छा और सस्ता काम करवानेके उपाय ढूँढ़ना होता है। यह विभाग "चालक विभाग" (Progress Deptt.) की जोड़ीमें रहकर काम किया करता है।

इस प्रकारसे आधुनिक कारखानोंमें मुख्य यांत्रिकके मातहत रहने वाले खोज या अन्वेषण विभाग (Research Department), परीक्षण-विभाग (Inspection Department) और नकशा-घर (Drawing office) के साथ ही औज़ार-गृह (Tool Room), उपाय और चालक-विभाग सब मिल कर कारख़ानेके निर्माण विभागों (Manufacturing Department) से विचारके कामको बहुत हल्का कर देते हैं।

आदर्श प्रबन्धके लक्षण :—

आधुनिक कारखानोंमें किस प्रकारसे प्रबंध होना चाहिये इसके सिद्धान्तोंका उल्लेख करते हुये टेलर महाशय अपनी "वैज्ञानिक प्रबंधके सिद्धान्त"* में लिखते हैं कि कारखानेका आदर्श प्रबंध वही है जिसके द्वारा:—

१—सच्चे विज्ञानका विकास हो।

२—कार्यकर्त्ताओंका अनुभव बढ़े और उनकी वैज्ञानिक शिक्षा हो।

३—कार्य-कर्त्ताओंका वैज्ञानिक रीतिसे चुनाव हो।

४—उच्च पदाधिकारियों और सामान्य कार्यकर्त्ताओं में प्रेम बढ़े और आपसमें सहानुभूतिपूर्ण बर्त्ताव हो।

ए० हेमिल्टन चर्च और एल० पी० एलफोर्ड महाशय "अमेरिकन मेशिनिस्ट"† में प्रकाशित एक लेखमें लिखते हैं कि आदर्श प्रबंधके तीन लक्षण होते हैं। यथा:—

१—पूर्व अनुभवका सदुपयोग होना।

२—कार्यकर्त्ताओंके परिश्रमका सदुपयोग।

३—उच्चपदाधिकारियों और सामान्य कार्यकर्त्ताओं का प्रेम सहानुभूति पूर्ण परस्पर व्यवहार।

अमेरिकनकी यांत्रिक परिषद् (American Society of Mechanical Engineers) की औद्योगिक प्रबंध सम्बन्धी समिति ने सन् १९१२ ई० के वार्षिक विवरणमें लिखा है कि कारखानोंके वैज्ञानिक प्रबंधमें निम्नलिखित बातें अवश्य आजानी चाहिये।

१—एक विभाग ऐसा होना चाहिये जो हर एक काम करनेके सर्वोत्तम तरीक़ोंको सोचे, और उसे करने की सविस्तर विधि तैयार कर उस विभागको दे, जिसमें वह काम किया जायगा।

२—उच्च पदाधिकारियोंका संगठन ऐसा होना चाहिये कि जिसमें प्रत्येक प्रबंध-कर्त्ताकी एकहरी अर्थात् एक ही ज़िम्मेदारी हो।

---

*Federick W. Taylor, "Principles of Scientific Management"

†A. Hamilton church & L. P. Alford in "Americon Machinist" of May 30-1912, Page 857.

३—प्रत्येक कार्यकर्त्ताको शिक्षा मिलती रहनी चाहिये कि जो काम उसके ज़िम्मे है उसके करनेकी सर्वोत्तम विधि क्या है।

४—कार्यकर्त्ताओंका वेतन किसी न्यायपूर्ण सिद्धांत के अनुसार होना चाहिये। उत्तम तो यह है कि उनका वेतन उनकी योग्यता, कामकी उत्तमता और मात्राके अनुसार हो। ऐसा करनेके लिये, प्रत्येक सामानको तैयार करते समय जो-जो क्रियायें उस पर हों उनका वैज्ञानिक रीतिसे विश्लेषण करना होगा, जिससे यह निश्चय हो जाय कि उसकी तैयारीमें कितना समय लगना चाहिये और जो कार्यकर्त्ता उस समयके भीतर काम पूरा कर दे उसे संतोष-प्रद वेतन भी मिल जाय।

अमेरिकाके "इंडस्ट्रियल मैनेजमेन्ट नामक पत्रकी सन् १९२० ई०के अगस्तकी संख्याके ८९ पृष्ठ पर एक लेख में एच० के० हाथावे महाशय सलाह देते हैं कि कार-खाना जमाते समय निम्नलिखित बातों पर बारीकी से अवश्य ही विचार कर लेना चाहिये।

१—सम्पूर्ण कारखानेके संगठन और प्रबंधकी एक योजना तैयार कर लेनी चाहिये और उसमें यह निश्चय हो जाना चाहिये कि उक्त कारखानेमें कौन-कौनसे विभाग होंगे और प्रत्येक विभागके आश्रित कौन-कौनसे छोटे विभाग होंगे और उनका स्वत्व और शासन बल कितना होगा, उनके कार्य-क्षेत्रका विस्तार कितना होगा और दूसरे विभागोंसे उनका क्या सम्बन्ध रहेगा और उनके प्रति क्या-क्या ज़िम्मेदारियाँ रहेंगी और किसी विशेष विभागका शासन-बल अन्य विभागों पर कहाँ तक मर्यादित रहेगा।

२—एक नक़शा ऐसा तैयार हो जाना चाहिये, जिसमें दिखाया गया हो कि कारखानेके संस्थापकोंकी योजनाके अनुसार व्यापारकी वृद्धि होने पर प्रत्येक विभाग की इमारतें कहाँ कहाँ और कैसी होंगी और आरम्भमें बनाई इमारतोंमें फेरब-दल और बढ़ोत्तरीके लिये कहाँ कहाँ जगह छोड़ी जाय।

३—तैयार मालसे सम्बन्ध रखने वाली सब निर्दिष्ट बातों (Data) को एकत्रित कर नियमसे लिपि-बद्ध कर लेना चाहिये।

४—काममें आने वाले यंत्रों और सब साज-सामान-से सम्बन्ध रखने वाली सब निर्दिष्ट बातोंको भी एकत्रित कर नियमसे लिपिबद्ध कर लेना चाहिये।

५—सब यंत्रोंका बंधेज हो जाना चाहिये और उन की संहालके तरीकोंका विकास हो जाना चाहिये।

६—सब प्रकारके औज़ार-गृह स्थापन करनेका निश्चय हो जाना चाहिये।

७—वस्तु-भंडार (Store) अथवा गोदामको चलानेके तरीकोंका विकास हो जाना चाहिये।

८ सब प्रकारके आदेशों (orders) को किस प्रकारसे हाथमें लिया जाय और पूर्ण किया जाय, इस की विधिका भी निश्चय हो जाना चाहिये।

९—हाज़िरी लेने और उसका हिसाब रखनेके लिये उपयोगी हों।

१०—आदेशोंको पूरा करनेका क़ायदा इस प्रकारका होना चाहिये कि जिससे उनकी तैयारीमें कहीं रुकावट न आ जाय।

११—कार्य-कर्त्ताओंका संगठन ऐसा होना चाहिये कि जिससे हर एक कामके तैयारीकी बागडोर सदैव हाथ में रहे।

१२—एक समय-निर्धारण - विभाग (Time Study Department) की भी स्थापना होनी चाहिये, जो कि काम करनेके सर्वोत्तम तरीकोंका बंधेज करता रहे और उसीके अनुसार सब कार्यकर्त्ताओंका वेतन निश्चित हो।

१३—कारखानेमें बने हुये कामके मूल्य निर्धारणके तरीके (Costing systems), लेखा रखनेके तरीके, वस्तु-भंडारका हिसाब रखनेके तरीके, हाज़िरी रखनेके तरीके औरको चलानेके तरीके (Production routing methods) ऐसे बना लेने चाहिये जिससे केवल कारखानेका आय-व्ययका लेखा रखने और प्रबन्ध करनेमें ही सुविधा नहीं बल्कि उससे इस प्रकारकी निर्दिष्ट बातें (Data) भी प्राप्त होनी रहें जिनकी सहायतासे परोक्ष रीति (Indirect) से होने वाले ख़र्चोंका विश्लेषण भी किया जा सके और उसका उचित भाग कारखानेमें बने काम पर लगा दिया जा सके और साथ ही यह भी निश्चित होता रहे कि संस्थाको क्या हानि अथवा लाभ हो रहा है।

संगठनके विभाग :—

टामस बी० फोर्ड्स महाशय ने अपने Control through organisstion and budgets "संगठन और बजटके द्वारा औद्योगिक प्रबन्ध" नामक निबन्धमें और एच टिंगले महाशय ने अमेरिकाके "मैनेजमेंट और एडमिनिस्ट्रेशन" नामक पत्रकी दिसम्बर १९२३ की संख्याके पृष्ठ ७१६ में प्रबन्धके विभागों पर प्रकाश डाला है उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

प्रत्येक औद्योगिक संस्था का उत्तम प्रबन्ध करनेके लिये संगठनके चार मुख्य विभाग होने चाहिये।

(१)—आर्थिक विभाग:—यह विभाग कार्य-संचालनके लिये पूँजीका प्रबन्ध करता है और सब प्रकारकी आर्थिक समस्याओंको हल करता है। इस विभागका मुख्य अफ़सर कोषाध्यक्ष होता है जिसके लिये निम्नलिखित काम होते हैं, यथा :—

(क)—पूँजीका प्रबन्ध करना।

(ख)—पूँजीका हिसाब रखना।

(२)—यांत्रिक विभाग:—यह विभाग कारखानेमें बनाये जाने वाले सामानका आविष्कार और उसकी आकृति की रचना (Design) करता है।

इस विभागका मुख्य अफ़सर मुख्य यांत्रिक होता है जिसके ज़िम्मे निम्नलिखित काम होते हैं।

(क)—सामानकी आकृतिकी रचना (Design) करना।

(ख)—नक़शे तैयार करना और उनमें आवश्यक फेर-बदल करते रहना।

(ग)—प्रयोगशाला और निरीक्षण विभाग (Inspection Department) का संचालन करना।

(घ)—कारखानेके सब विभागों पर शासन करना।

(३)—निर्माण विभाग:—यह विभाग सामानका निर्माण करता है, इसका मुख्य अफसर कार व्यवस्थापक (Works Superintendent) कहलाता है। इसके आधीन निम्नलिखित अफसर रहते हैं। यथा:—(१) जायदाद दरोगा (Plant Supervisor) (२) औज़ार दरोगा (Equipment Supervisor) (३) भंडारी (Store keeper), (४) मज़दूर दरोगा (Labour supervisor) और (५) उत्पादक यांत्रिक (Production Engineer) इनकी ज़िम्मेदारियाँ निम्नलिखित है।

(१)—जायदाद दरोगा:—इसके ज़िम्मे चार प्रकार के काम होते हैं।

(क)—जायदादका निर्माण और सम्हाल। इस काम के करनेके लिये बढ़ई, सिलावट, मेमार, यंत्रोंकी मरम्मत करने वाले और बिजली वाले उसके अधिकारमें रहते है।

(ख) सफ़ाई और स्वास्थ्य। इस कार्यके लिये मेहतर धोबी, और सफाई वाले उसके अधिकारमें रहते हैं।

(ग)—जायदादकी हिफ़ाजत । इस कामके लिये चौकीदार और आग बुझाने वाले उसके अधिकारमें रहते हैं।

(घ) प्रकाश और शक्ति उत्पादन । इस कार्यके करने के लिये शक्तिगृह यांत्रिक, इंजन चलाने वाले और प्रकाश निरीक्षक उसके अधिकारमें रहते हैं।

(२) औज़ार दरोगा—इसके जिम्मे दो काम होते हैं।

(क)—उपाय विभाग (Planning Department का काम किये जाने वाले मालके मूल्यकी कूत (Estimate) करने वाले, किये जाने वाले कामका कार्य-क्रम बनाने वाले और उनका समय निश्चित करने वाले Time study रहते हैं। और आये हुये आदेशों का काम तैयार करवानेके लिये आवश्यक सामान जुटाना भी इसी विभागके कर्मचारियोंका कर्त्तव्य है।

(ख) औज़ारोंकी प्राप्ति और उनकी सम्हाल। इस कामको करनेके लिये, औज़ार मँगवाने वाले, उनका लेखा रखने वाले भाँति भाँतिके गेज, जिग, फिक्चर और बरमे और रुखानियोंको डिजाइन करने वाले (Gig & tool Draughtsman), उन्हें बनाने वाले,. उनकी मरम्मत करने वाले और यांत्रिकोंको लेने-देने वाले, उसके मातहत रहते हैं।

(३)—भंडारीः—इसके ज़िम्मे तीन काम होते हैं।

(क)—कच्चा माल खरीदना, इस कामके लिये आवश्यक मुनीम और गुमाश्ते उसके अधिकारमें रहते हैं।

(ख)—उत्पादन प्रबन्ध, इससे सम्बन्ध रखने वाले तीन काम होते हैं।

१—कच्चे और तैयार मालके स्टाककी सूची रखना।

२—कारखानेके लिये कार्यादेश पत्र निकालना और यह देखना कि भिन्न-भिन्न विभागोंमें समय पर काम होता है या नहीं, इसविभागको अक्सर "चालक विभाग" (Progress Deptt.) कहा करते हैं और इसका कार्य-कर्त्ताओंको "पीछा करने वाले" अर्थात् चेजर कहते हैं।

२—काम, कच्चे और तैयार मालको वसूल करना, उसे भंडारमें रखना और एक विभागसे दूसरे विभागमें उसे भिजवानेका प्रबन्ध करना । इस कार्यके लिये आवश्यक कुलियोंका जत्था एक अथवा अधिक जमादारोंको निगरानीमें उसके मातहत रहता है।

(ग)—तैयार मालका निर्माण और खानगी । इससे सम्बन्ध रखने वाले निम्नलिखित कार्य होते हैं—

गठरी-बन्दी, सामान लदाई, और बारबरदारी । इन कामोंको करने वाले कारीगर, कुली और मोटर और क्रेम ड्राइवर वगैरः इसी अफसरके मातहत रहते हैं।

(४)—मजदूर दरोगा :—इसके जिम्मे तीन काम मुख्य होते हैं तथाः—(क) कार्य कर्त्ताओंकी भरती। (ख) उनके आरामकी चीज़ों और बातोंकी सम्हाल, (ग) उनकी औषधि और मरहम-पट्टीका प्रबन्ध और खतरोंसे उनकी रक्षा।

मज़दूरों की रात्रि पाठशालाओंका भी यही अफ़सर संचालन किया करता है।

(५)— उत्पादिक यांत्रिकः—इसके मातहत बढ़ई खाने, फरमाघर, ढलाईखाने, लोहार खाने, यंत्र-घर, तैयारी और निर्माण विभागके फोरमैन रहा करते हैं।

(४) विक्रय-विभागः—यह विभाग कारखानेमें बने मालकी विक्रीका प्रबन्ध करता है। इस विभागका मुख्य अफसर विक्रय-विभाग-व्यवस्थापक होता है जिसके ज़िम्मे विज्ञापन कार्य, दुकानोंका प्रबन्ध, विक्रेता और प्रचारकोंका कार्य होता है।

उपरोक्त वर्णनको वृक्षके रूपमें नीचे दिखाया जाता है।

बढ़ई
मेमार
मिस्त्री
बिजली वाले
जायदाद निर्माण और सम्हाल
चौकीदार
आग बुझानेवाले
जायदादकी हिफ़ाज़त
मेहतर, सफाई, वाले, धोबी
सफ़ाई और स्वास्थ्य
इंजन ड्राइवर
प्रकाश निरीक्षक
प्रकाशक और शक्ति उत्पादन
मूल्य कूटनेवाले कार्यक्रम बनाने वाले, समय निश्चय करने वाले
उपाधि वि०
औज़ारोंका लेखा
" की प्राप्ति
" की रचना
" की संहाल
औज़ारोंकी प्राप्ति, रचना, सम्हाल
एजेण्ट, मुनीम, गुमाश्ते
कच्चे माल की खरीद
कच्चे और तैयार मालकी स्टाक सूची, कारखानेमे मालका लेन देन आदेशोंकीतामील
उत्पादन प्रबन्ध
गठरी बंदी
लदाई
बारबरदारी
तैयार मालका निर्यात प्रबंध
मजदूरोंकी भरती
मजदूरोंको आराम
मजदूरोंकी रक्षा
बढ़ई खाना
ढलाईखाना
फरमाघर
लोहार खाना
यंत्रघर
तैयारी और निर्माण विभाग
लेखक मजदूर और कारीगर
वेतन
हाजिरी
लेखा
कोषाध्यक्ष
आर्थिक विभाग
विज्ञापन
दुकानें
प्रचारक
वि० वि० व्यवस्थापक
विक्रय विभाग
नकशाघर
निरीक्षण वि०
प्रयोगशाला
रसायनिक
भौतिक
मुख्य यांत्रिक
यांत्रिक विभाग
जायदाद दरोगा
औज़ार दरोगा
भंडारी
मज़दूर दरोगा
उत्पादक यांत्रिक
कारखानेका व्यवस्थापक
निर्माण विभाग
मैनेजिंग डाइरेक्टर अर्थात् प्रबन्धक अध्यक्ष
डाइरेक्टरोंका बोर्ड
कम्पनीके हिस्सेदार

कौन विभाग किसके मातहत रहे ?

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न कारखानोंमें व्यापारकी भिन्नताके अनुसार उनके संगठन भिन्न-भिन्न प्रकारके हुआ करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक विभागके कर्त्तव्य भी सब कारखानों में एकसे नहीं होते ।

पाठकोंको बहुत थोड़े कारखाने ऐसे मिलेंगे जिनका संगठन और उनके प्रत्येक विभागका कर्त्तव्य उपरोक्त प्रकार का हो । उदाहरणके लिये निरीक्षण-विभाग (Inspection Department) को ही लीजिये । पाठक देखेंगे कि कई कारखानोंमें यह निर्माण-विभाग व्यवस्थापक के मातहत होता है और उसीके मातहत उत्पादन-विभाग भी होता है । अतः चाहे यह दोनों विभाग एक न हों तब भी निरीक्षण-विभागको अपने अफ़सरके करवाये हुए कामकी आलोचना करनी होगी । ऐसी हालतमें सम्भव है वह कड़ी आलोचना न कर कुछ रिआयत कर दे जिसका नतीजा यह हो कि उस समय तो उसमें कोई बुराई न दिखाई दे, लेकिन बादमें अधिक नुक़सान हो जाय ।

यदि मुख्य यांत्रिकके मातहत निरीक्षण-विभागको कर दिया जाय, जिसकी सीधी मातहतीमें नक़शाघर भी रहता है, तो सम्भव है कि नकशेकी ग़लतीके कारण जो भूल रह गई हो उसमें वह पक्षपात कर जाय । इस कारण कई लोगोंकी राय है कि निरीक्षण-विभाग भी आर्थिक विभाग आदिकी भाँति सीधा मैनेजिंग-डाइरेक्टर अथवा मुख्य व्यवस्थापकके मातहत होना चाहिये । जिससे वह निडर होकर कार्यकी आलोचना कर सके । लेकिन इसमें यह आपत्ति आती है कि मैनेजिंग डाइरेक्टर अथवा मुख्य व्यवस्थापक यंत्र-विद्या और विज्ञानके इतने विशेषज्ञ नहीं होते जितने कि निर्माण-विभाग-व्यवस्थापक और मुख्य यांत्रिक। इसलिये वे वैज्ञानिक झगड़ोंका फैसला नहीं कर सकते । इन्हीं सब बातोंको सोचते हुये यह ठीक जँचता है कि यह विभाग मुख्य यांत्रिकके ही मातहतमें रहे; लेकिन अन्तिम निश्चय कामके प्रकार और अपनी-अपनी परिस्थतिके अनुसार होता है । इसीलिये भिन्न-भिन्न कारखानोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके संगठन पाये जाते हैं । पूर्वोक्त संगठनसे थोड़ा सा भिन्न एक और संगठन दिया जाता है जो कई मध्यम दर्जेके कारखानोंमें पाया जाता है ।

हिस्सेदार
डाइरेक्टर का बोर्ड
मैनेजिंग डाइरेक्टर
आर्थिक वि०
मंत्री, दफ़्तर
कार व्यवस्थापक
विक्री व्यवस्थापक
मुख्य यांत्रिक
वेतन
हाज़िरी
लेखा
उपाय विभाग
दफ़्तर
उत्पादक यांत्रिक
खरीद-विभाग
परीक्षा विभाग
दफ़्तर
नकशाघर
निरीक्षण-विभाग
खोज और अन्वेषण
औज़ार नकशाघर
समय निर्धारण विभाग
चालक विभाग
दफ़्तर
औज़ार गृह
भंडार विभाग
कारखाना नं० १
कारखाना नं० २
खानगी
वारबरदारी
औज़ार
कच्चा माल
अधूरा माल
तैयार माल
फोरमैन
दफ़्तर
फोरमैन
फोरमैन
दफ़्तर
फोरमैन
गठरी-बंदी
दफ़्तर
गैरेज
मरम्मत
ड्राइवर
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री
मिस्त्री

प्रबन्धक अध्यक्ष (Managing Director) का कर्त्तव्य :—

प्रबन्धक अध्यक्षका मुख्य गुण उसका व्यक्तित्व होना चाहिये और उसकी उपस्थितिकी बनिस्बत उसकी अनुपस्थिति के समय उसके तेजका अधिक प्रभाव होना चाहिये। उसे अपने सहकारियोंके साथ सब कार्योंकी योजना करनी चाहिये, लेकिन उनकी अधिक बारीकियोंमें न जाकर उन कामोंको अपने सहकारियोंके भरोसे छोड़ दे, उनमें विश्वास रक्खे और उनसे सहानुभूति रक्खे। उसके सहकारियोंको भी यह समझ लेना चाहिये कि उनके नेताका उनपर पूर्ण विश्वास है और उनके प्रत्येक कामके साथ उसकी पूर्ण महानुभूति है। अध्यक्षका यह भी कर्त्तव्य है कि उसके सहकारियों और मातहतोंमें मतभेद के कारण जो झगड़े उत्पन्न हो जावें उन्हें बुद्धिमानी और धैर्यके साथ शान्त कर दे और सारे कारबारको शान्तिके साथ चलावे। उसे अपना ढंग इस तरहसे डालना चाहिये कि कारख़ानेसे उसकी अनुपस्थिति किसी प्रकारसे कार्यमें बाधा न पहुँचावे, क्योंकि अकसर उसे प्रदर्शनियोंमें, व्यापारिक सभाओंके अधिवेशनोंमें, अपने व्यापारकी उन्नतिके लिये नये-नये क्षेत्र पैदा करने आदि अनेक कामों के लिये बाहर जाना होगा।

उसे अपने व्यक्तित्वको ऐसा प्रभावशाली बनाना चाहिये कि जिस कामको वह उठावे उसमें उसके मातहत अवश्य उसका साथ दें। उसे ख़ूब पता रहना चाहिये कि उसके कारख़ानेमें कहाँ-कहाँ और क्या-क्या हो रहा है और उसे सर्वोपरि निरीक्षककी भाँति काम करना चाहिये।

कई कारख़ानोंमें एक बहुत अच्छा रिवाज देखा गया है कि प्रतिदिन कार्य आरम्भ होते ही प्रबन्धक अध्यक्षके दफ़्तरमें उसके मुख्य सहकारी आकर एक साथ मिलते हैं और उस दिनकी डाक सबके सामने पढ़ी जाती है। कुछ व्यक्तिगत और गुप्त रहने वाली चिट्ठियोंको छोड़ कर सब पहिले हीसे खोल ली जाती हैं और जो-जो चिट्ठियाँ जिस-जिस विभागके अफ़सरके सम्बन्धकी होती हैं उसे दे दी जाती हैं। इससे बड़ा भारी लाभ यह होता है कि प्रत्येक विभागके अफ़सरको व्यापारकी स्थितिका कुछ कुछ ज्ञान रहता है और वे अपने कामके सम्बन्धमें अच्छी राय दे सकते हैं।

मुख्य यांत्रिक

मुख्य यांत्रिकको अपने विभागके कार्य-संचालनमें सहायता देनेके लिये कई योग्य सहकारी रहते हैं जो प्रयोगशाला, नक़शा घर और निरीक्षण-विभाग आदिको सम्हाला करते हैं।

बिना बाँधे सामान (Non standard Material) से संबन्ध रखने वाले ग्राहकोंकी पूँछ ताछके सब यंत्र प्रबन्धक अध्यक्ष मुख्य यांत्रिकके पास भेज देता है। जो उस सामानके सम्बन्धकी समस्त वैज्ञानिक बातों पर विचार कर आवश्यकता होने पर उसकी तफ़सील (Specification) के अनुसार डिज़ाइन और नक़शे बनवाता है और उन नकशों के अनुसार उपाय-विभागके मूल्य कूतने वाले उसके मूल्यका अनुमान लगाते हैं जो ग्राहकको मंज़ूरीके लिये भेज दिया जाता है। कई कारख़ानोंमें मुख्य यांत्रिकके दफ़्तरमें ही मूल्य कूतनेका काम होता है। जब ग्राहक उनके दिये हुये भावको मंज़ूर कर लेता है तब फिर उस सामानका आदेश पत्र मुख्य यांत्रिकके पास भेजा जाता है जिसके अनुमान नक़शेघरमें उसकी पूरी बनावटके यांत्रिक चित्र (Working Drawings) तैयार किये जाते हैं। फिर उपाय-विभागमें वे नक़शे भेज दिये जाते हैं जहाँ उस कार्य को करनेकी विशेष विधियाँ निर्माण-विभागके उपयोगके लिये लिख कर दे दी जाती हैं।

मुख्य यांत्रिकका यह भी कर्त्तव्य होता है कि वह अपने कारख़ानेमें सम्बन्ध रखने वाले नये-नये आविष्कारों कार्य करनेके नये-नये तरीक़ों और साधनोंसे पूरी जानकारी रखे और हमेशा इस फिक्रमें रहे कि उस कारख़ानेमें बनने वाले बँधे सामानके डिज़ाइनमें किस प्रकार उन्नति हो सकती है? किस प्रकारसे उस सामानको सस्ता और अच्छा बनाया जा सकता है? लेकिन इस विषयमें सदैव ध्यान रखना चाहिये कि जब तक वे नये आविष्कार और नये तरीक़े परीक्षाओं और अनुभव द्वारा पूर्णतया उपयोगी, सस्ते और अच्छे सिद्ध न हो जावें उस समय तक अपने

बँधे सामान के डिज़ाइन में फेर-बदल नहीं करनी चाहिये। जल्दबाज़ी और बेढंगे पने से बदलियाँ और उन्नति करने की कोशिश में कई बार बहुत फ़िज़ूल ख़र्च हो जाता है और असली उन्नति में बाधा पड़ जाती है। कई संस्थायें एक निश्चित समय के बाद हमेशा अपने बँधे सामान में एक नया नमूना तैयार किया करती हैं और उसमें पिछला बनने के बाद से अब तक जो-जो उन्नतियाँ हुई हैं उन सबका समावेश इसमें कर देती हैं। इस उद्देश्य से प्राप्त किये नये नमूनों की परिक्षायें दी हुई तफ़सील के अनुसार बाहरसे ख़रीदे हुये सामानकी भौतिक और रासायनिक परीक्षायें मुख्य यांत्रिक ही अपने अन्वेषण विभाग, निरीक्षण-विभाग और प्रयोग-शालाओं में करवाता है।

मुख्य यांत्रिकका यह भी कर्त्तव्य होता है कि वह सब प्रकारके विवादास्पद वैज्ञानिक विषयों पर अपना निर्णय दे और प्रत्येक विभागको वैज्ञानिक विषयों में अपनी सम्मति देने को तैयार रहे। उसे हमेशा मुख्य मुनीमका सहयोग प्राप्त करना चाहिये। इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि जो कुछ भी काम वह करेगा उसका आर्थिक मूल्य भी होता रहेगा।

निर्माण-विभाग-व्यवस्थापकका कर्त्तव्य :—

निर्माण-विभाग-व्यवस्थापकका भी वही कर्त्तव्य होता है जो प्रबन्धक अध्यक्षका। केवल अन्तर यही रहता है कि उसका कार्य-क्षेत्र और अधिकार कारख़ानेमें ही सीमित रहता है।

प्रत्येक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने वाले अफ़सरकी सहायता के लिये किसी-किसी रूपमें एक योग्य सहकारी अवश्य होना चाहिये। इससे कार्य-संचालनमें बड़ी सहायता मिलती है और मुख्य अफ़सर की अनुपस्थितिमें वह कार्य-भार सम्हालनेको तैयार रहता है।

पौधोंमें श्वासोच्छ्वास क्रिया

[ले०—श्री जगमोहन जी]

पौधे भी श्वासोच्छ्वासकी क्रियामें जानवरोंकी भाँति आक्सीजन लेते हैं और कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ते हैं, परन्तु हम देख चुके हैं कि भोजन तैयार करनेकी क्रियामें पौधे हवासे कार्बन डाइ आक्साइड लेते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं। इस बातको पढ़ कर संभव है तुम दंग रह जाओ और पूँछना चाहो कि जब पौधे कार्बन डाइ आक्साइड लेते हैं तो निकालते क्यों होंगे। वास्तवमें बात यह है कि दिनके समय पौधे अपने भोजनके निर्माण में हवासे कार्बन डाइ आक्साइड लेते और आक्सीजन छोड़ते रहते हैं जिसका परिणाम यह होता कि श्वासोच्छ्वासकी क्रिया प्रच्छन्न हो जाती है। अस्तु, श्वासोच्छ्वास-क्रियाको सिद्ध करनेके लिये ऐसी अवस्थामें प्रयोग किया जाय जिसमें रश्मि-संयोग न हो सकता हो। स्पष्ट है कि ऐसी दशामें प्रयोगको अँधेरेमें किया जाय, अन्यथा पौधोंके उन भागोंको काममें लाया जाय जिनमें हरा पदार्थ न हो।

कार्बन डाइ आक्साइडकी जाँच चूनेके पानीसे की जाती है। यदि चूनेके पानीमें घोल लिया जाय और उसका साफ़ पानी निथार कर या छान कर निकाल लिया जाय, फिर इस पानीमें कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ी जाय तो वह दूधया हो जाता है, कारण कि इसमें खरियाके छोटे-छोटे कण बन जाते हैं। यदि शीशेकी नली द्वारा चूने के पानीमें फूँका जाय तो वह दूधया हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि हम साँस द्वारा कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ते हैं। पौधे भी साँस लेते हैं। इस बातके सिद्ध करनेके लिये उगते हुये बीज काममें लाये जा सकते हैं। सेमके भीगे हुये बीजोंको एक कुप्पीमें रख दिया जाता है और इसके अन्दर एक परख नलीमें चूनेका पानी भर दिया जाता है; फिर कुप्पीको कार्कसे बन्द कर दिया जाता है। दो दिनके बाद परख नलीको हिलानेसे मालूम होता है कि इसका रंग दूधया हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि कुछ हवा सेमके बीजोंमें पहुँच गई और

आक्सीजन उसके अन्दरके निशास्तासे मिलकर कार्बन आक्साइड बनाती है।

इसी प्रयोगको पत्तेदार पौधेसे किया जा सकता है। इस उद्देश्यसे गमलेमें लगे हुये एक पौधेको फानूससे ढक दिया जाता है। फानूसके भीतर एक कटोरीमें चूनेका पानी भी रख दिया जाता है। दूसरे दिन देखनेसे मालूम होता है कि चूनेका पानी दूधया हो जाता है।

हम जानते हैं कि जो गैस हम साँस द्वारा छोड़ते हैं, बाहरी हवासे गरम होती है जिससे अनुमान किया जाता है कि साँसके समय हमारा शरीर शनैः शनैः जलता रहता है और यह इसी जलनेका परिणाम है कि शरीरका ताप बाहरी तापसे बढ़ा हुआ होता है। यदि हम दौड़ें तो साँस-क्रम बढ़नेके साथ-साथ हमारे शरीरका ताप और भी बढ़ जाता है।

क्या साँसकी क्रियाके समय पौधोंका भी ताप बढ़ जाता है ?

सेमके बीजोंको पानीमें भिगो दिया जाय, फिर इन भीगे बीजोंको एक कीपमें रख कर गिलासमें रख दिया जाय और गिलासमें कुछ पानी डाल दिया जाय। गिलास में रक्खे हुये कीपको फानूससे ढक दिया जाय। फानूसमें कार्क लगा दी जाय। कार्कके छेदमें एक तापमापक यंत्र इस तरह प्रवेश किया जाय कि इसकी घुण्डी सेमके बीजोंमें रक्खी रहे। इसी तरहसे दूसरे कीपमें सूखे बीज रख दिये जायँ और गिलासमें पानी न डाला जाय। इसको भी फानूससे ढक दिया जाय और बीजोंमें तापमापक यंत्रकी घुंडी रख दी जाय। इन दोनोंको एक दिन यों ही रहने दो। दूसरे दिन दोनों तापमापक यंत्रोंकी घुण्डियोंको देखो तो मालूम होगा कि भीगे हुये बीजोंमें रक्खे हुये ताप मापक यंत्रका ताप सूखे बीजोंमें रक्खे हुये तापमापक यंत्र से एक या दो अंश अधिक होगा। इससे सिद्ध होता है कि साँस लेनेके समय पौधोंका भी ताप बढ़ जाता है।

हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं कि श्वासोच्छ्वास-क्रिया में शरीर धीरे-धीरे जलता है। जलनेके लिये आक्सीजन आवश्यकीय है। क्या पौधोंको भी श्वासोच्छ्वास क्रियामें आक्सीजनकी आवश्यकता होती है ?

काँचकी कुप्पीमें सोख़्ताके भीगे हुये टुकड़े डाल दिये जायँ और उन पर भीगे हुये बीज रख दिये जायँ। एक परख नलीमें कास्टिक पोटाशका घोल भर कर इसे कुप्पीमें लटका दिया जाय फिर कुप्पीमें कार्क लगा दी जाय। कार्कमें दोनों किनारों पर समकोण पर मुड़ी हुई नली लगा दी जाय और इस नली पर एक किनारा रङ्गीन पानी में रख दिया जाय। कुप्पीमें बीजोंके लिये हवाका परि-माण परिमित है। यदि इस परिमाणमें अधिकता हो तो नलीके अन्दरका पानी बाहरकी तरफ़ निकलेगा। यदि इसके परिमाणमें कमी हो तो पानी नलीके अन्दर चढ़ेगा मगर इसके अन्दर कोई परिवर्तन न हो तो नलीका पानी अपने स्थान पर ठहरा रहेगा। हम देख चुके हैं कि साँस लेनेकी क्रियामें कार्बन डायआक्साइड निकलती है, परन्तु इसके कारण नलीके पानीमें कोई परिवर्तन न होगा क्योंकि कास्टिक पोटाशका घोल तुरन्त उसे चूस लेगा। इसलिये यदि इसके अन्दर कोई परिवर्तन न होगा तो आक्सीजनकी वजहसे, क्योंकि हवामें जो नाइट्रोजनका भाग होता है, अक्रिय है। अतएव यह सरलतासे किसीसे मिलता नहीं। जब इस प्रकार प्रयोग किया जाता है तो रंगीन पानी नलीमें चढ़ जाता है। इससे साफ़ प्रकट है पौधे श्वासोच्छ्वास-क्रियामें हवासे आक्सीजन प्राप्त करते हैं।

जब कोई पौधा जीवित रहता तो उसे बढ़ने और जीवनके अन्य कामोंके संचालनके लिये अपनी शक्तिका ह्रास करना पड़ता है। इस हानिकी पूर्ति उसके भोजनसे होती है। रश्मि-संयोगके द्वारा पौधोंका शरीर जो बहुतसे कोष्ठोंका समूह होता है, तैयार होता है और इन कोष्ठोंमें शक्तिका भंडार संचित रहता है जिसे ये सूर्यसे प्राप्त करते हैं।

पौधोंकी श्वासोच्छ्वास-क्रियाका ज्ञान हमारे दैनिक जीवनमें बहुत सी बातोंमें काममें लाया जाता है। इसी ज्ञानके आधार पर जब बीजोंको बोया जाता है तो मिट्टी को ऊपरसे इतना नहीं दबाया जाता कि बीजों तक हवा न पहुँच सके। पानी देते समय भी इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि पानी बहुत समय तक खेतोंमें न पड़ा रहे, अन्यथा पौधोंकी जड़ें और बीज हवा न मिलनेके कारण सड़ जाते हैं। इसी मतलबसे गमलोंमें मिट्टी भरने

से पहले पेंदीमें एक छेद कर दिया जाता है जिससे पानी गमलेमें ठहरने नहीं पाता। दलदली स्थानमें उगने वाले पौधोंमें कुछ जड़ें ऐसी होती हैं जो प्रधान जड़से निकल कर ज़मीनमें घुस जानेके बदले हवामें निकल आती हैं। इसका कारण यह है कि दलदली स्थान पर साँस लेनेके लिये काफ़ी हवा नहीं मिलती। अतएव ये जड़ें साँस लेनेके लिये हवामें निकल आती हैं।

यदि हम कोयला जलायें तो उसमें रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं और उष्णता प्रकट होती हैं। शक्करको जलानेसे भी इसी प्रकारके परिवर्तन होते हैं। कोयला अथवा शक्करके जलनेसे कार्बन डाइ आक्साइड और पानी बनते हैं और शक्ति प्रकट होती है। सब पौधों के कोष्टोंमें, कोयलेके जलनेकी भाँति शक्कर टूटती-फूटती है। इन दोनों क्रियाओंमें अन्तर यह होता है कि पौधोंके कोष्ठोंके टूट-फूटकी क्रिया कम ताप पर होती है। इसका नतीजा यह होता है कि प्रत्येक कोष्ठको शक्ति मिलती रहती है और कोष्ठोंमें पानीकी थोड़ीसी मिक़दार बढ़ जाती है और कार्बन डाइ आक्साइड पत्तियोंको रन्ध्र द्वारा बाहर निकल आती है। इस शक्तिका केवल सूक्ष्मतम भाग पौधोंके उपयोगमें आता है और अधिकाँश उष्णता के रूपमें निकल आता है।

जब तरकारियों और फलोंको बंद कोष्ठोंमें संचित किया जाता है तो गर्मी इकट्ठी होती रहती है और तापके बढ़ जानेसे संचित पदार्थकी बहुत हानि होती है। ताप की बढ़तीके कारण पौधोंके कोष-पुंजोंसे अधिक पानी वाष्पकी सूरतमें निकलने लगता है। कोष्ठोंमें शक्कर तेज़ी से टूटने लगती है और इसके साथ-साथ तरकारियों और फलोंमें अन्य रासायनिक परिवर्तन तेज़ीसे होने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि संचित पदार्थ अधिक समय तक टिक नहीं सकते और इनका स्वाद भी बिगड़ जाता है। किसानों और थोक बेंचने वालोंके सहयोग और गम्भीर खोज द्वारा बहुतसे फलों और तरकारियोंके सम्बन्धमें गवेषणापूर्ण अनुसन्धान इसलिये हो रहें हैं कि उनके कोष्ठोंमें शीत-रक्षण विधिका प्रभाव शकर और इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंके टूटने फूटनेके संबन्धमें मालूम किया जा सके। कम ताप होने पर पौधोंके कोष्ठोंकी शक्ति देने वाली क्रियाएँ बहुत सुस्त पड़ जाती हैं और इसका परिणाम यह होता है कि कोष्ठों की शक्कर अथवा अन्य पदार्थ टूटने-फूटनेसे बच जाते हैं और फलस्वरूप यह अधिक दिनों तक ख़राब नहीं होते और न इनका मज़ा ही बिगड़ने पाता है।

यदि पौधोंके चारों तरफ़से आक्सीजनको कम कर दिया जाय तो श्वासोच्छ्वासकी क्रियामें कमी हो जाती है। इस सिद्धान्तके आधार पर केम्ब्रिजके लघुताप गवेषणागार (Low temperature Research station पर बहुतसे प्रयोग किये जा रहें हैं। वहाँ यह बात मालूम हुई है कि सेवोंको सुरक्षित रखनेके लिये शीत-रक्षण विधि (Cold storage) की अपेक्षा गैस-रक्षण विधि (Gas storage) अधिक उपयोगी है। इस विधिमें विशेष प्रकारके कोष्ठोंमें नाइट्रोजन और कार्बन डाइ आक्साइड प्रवेशकी जाती है। ऐसा करनेसे कोठेके अन्दर अयुक्त (Free) आक्सीजन की मिक़दार बहुत कम हो जाती है जिससे श्वासोच्छ्वास की क्रिया कम हो जाती है और फल सुरक्षित बने रहते हैं। फल पकनेके साथ जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं वह भी रुक जाते हैं और इस तरहसे फलका जीवन-काल बढ़ जाता है। इस विधानसे पौधोंके खाद्य पदार्थ बहुत काल तक सुरक्षित और संचित रह सकते हैं अथवा उन्हें दूर-दूर प्रदेशोंमें ताज़गी और मज़ेको बिना नष्ट किये हुये भेजा जा सकता है।

श्वासोच्छ्वासकी ऊष्मा हानिकारक और मलीन फँफूदीकी उत्पत्तिको बढ़ाती है। सन् १९३५ ई० में यह मालूम किया गया था कि फलोंको आयोडीनके घोलमें भिगोये हुये काग़ज़में लपेट दिया जाय या फलोंको संदूकमें आयोडीन मिश्रित लकड़ीका बुरादा भर दिया जाय तो उन पर फँफूदी उत्पन्न नहीं होती।

संध्या होते ही पौधोंमें एकीकरणकी क्रिया बन्द हो जाती है; मगर श्वासोच्छ्वासकी क्रिया सदा होती रहती है। अतएव रातके समय जानवरोंकी नाईं पौधेभी हवा को दूषित करते हैं। इसलिये रातके समय पौधोंके निकट सोना हानिकारक है।

पर्देकी ओटमें

डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

शरीर रूपी भंडार

यह अनुमान लगाया जाता है कि एक मनुष्यके अन्दर इतनी चर्बी होती है जिससे कि १ मन ३० सेर साबुन बन सकता है, तथा इतना लोहा होता है कि पौन पौन इंचोंको २ कीलें तैयारकी जा सकती हैं। शक्कर की मात्रा भी इतनी रहती है कि उससे ३ प्याले भरकर कहवा तैयार किया जा सकता है। यदि कार्बनको हम सीसे (Graphite) में परिणत कर देवें तो हम उससे ६,००० पेन्सिलें तैयार कर सकते हैं। चूना भी इतनी मात्रामें होता है जिससे एक छोटेसे मकान पर सफ़ेदीकी जा सकती है। दियासलाईकी २,००० बत्तियाँ बनाना शरीरमें होने वाले फास्फोरससे कठिन नहीं है। ओषजन् (Oxygen) तथा हाइड्रोजन् ४०० गज़ लम्बी सड़क पर २ घंटे तक प्रकाश कर सकते हैं।

मनुष्यके शरीरका संगठन

शरीरमें अणुओंके मध्यमें खाली स्थान छोड़ दिया गया है। देखनेमें तो शरीर इतना विशाल मालूम पड़ता है, परन्तु यदि सब अणुओंको मिला दिया जावे तो सम्भवतः दिखलाई भी न पड़े। उसका आकार शरीरके आकारका १० अरब भाग हो जाता है।

मनुष्यका ढाँचा २०६ हड्डियोंका बना होता है। इन हड्डियोंको ७२० पेशियाँ चलाती हैं। ६३ सेरके मनुष्यके अन्दर ४०,६९४ ग्राम पानी, ११,३५७ ग्राम कार्बन, १,६९४ ग्राम हाइड्रोजन, १,६२६ ग्राम नाइट्रोजन, ३,६८२ ग्राम ओषजन् तथा २,७१६ ग्राम राख होती है।

एक आदमीके अन्दर लगभग ६५ प्रतिशत जल रहता है। हृदय, रीढ़की हड्डी तथा प्लीहामें ७५ प्रतिशत जल स्थान घेरे हैं। रक्त भी जलसे बचा नहीं है। उसमें भी ८० प्रतिशत जल सम्मिलित है। पशुओंमें जलकी मात्रा सब से अधिक है। ६९ प्रतिशत् स्थान जलके अधिकारमें है।

शरीरके सबसे ठण्डे तथा गर्म भाग

शरीरके सबसे गर्म भागका पता विद्युत् थरमो-मीटरसे लगाया गया है। यकृत तथा गुरदेका तापक्रम सबसे अधिक है। हृदयका तापक्रम १° फारनहाइट, फेफड़ोंका २° तथा दिमाग़का ६° होता।

चर्मका तापक्रम कम रहता है। कानका तापक्रम ७६° फारन हाइट, तथा नाकका ७०° फारनहाइट रहता है। यदि शरीरका ताप २४ घंटों तक लगातार निकलता न रहे तो तापक्रम ९८·४° फारन हाइटकी अपेक्षा १८५° तक पहुँच सकता है।

अवयवोंकी आयु

शरीरकी आयु तो बहुत वर्षोंकी होती है, परन्तु उसके अवयव कम दिनों तक रहते हैं। कोई अवयव कुछ सप्ताहोंमें हो लड़खड़ा जाता है और उसके लिये दूसरे अवयवकी आवश्यकता पड़ जाती है, परन्तु कुछकी आयु वर्षों की भी हो जाती है। एक स्त्रीका बाल ४ वर्ष तक रहता है, तथा पलकोंकी आयु केवल ४ सप्ताहकी ही होती है।

शरीरके बाहर कार्य करने वाले अवयव

डा० कैरेलने जो कर्नल सी० ए० लिण्डबर्गके सहकारी हैं, लिखा है कि यदि हृदय, गुर्दे, गट्ठियों, नसों तथा अन्य भागोंको लिण्डबर्गके बनाये हुये (Life Chamber) में रख दिया जावे, तो वे उसमें अच्छी प्रकारसे कार्य भी कर सकेंगे तथा कई घंटे जीवित भी रक्खे जा सकते हैं।

फेफड़ोंका कार्य

युवक एक मिनटमें १६ से ले कर २० बार तक साँस लेता है। परन्तु बच्चे तथा रोग-ग्रसित इससे कहीं अधिक बार वायु खींचते तथा निकालते हैं।

युवक एक मिनटके भीतर १४ पिण्टसे २० पिण्ट वायु भीतर ले जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक पिण्ट वायु एक साँसके साथ अन्दर जाती है। व्यायाम या शारीरिक कार्य्य करनेके समय २०, ३०, ४० और कभी-कभी ८० पिण्ट तक वायु एक मिनटमें अन्दर चली जाती है। इसका कारण साँसकी गतिका बढ़ जाना है। एक ६० वर्षकी आयुका आदमी अपने जीवन-पर्यन्त

५०४, ०००, ००० बार वायु अन्दर ले जाता है तथा ६, ६००,००० घन फीट वायु इतनी बारमें चली जाती है।

मनुष्यका आकार

एक साधारण आदमीका भार ७० सेरके लगभग होता है। उसका आकार ३० वर्षकी आयुके पश्चात्से कम होने लगता है।

एक अँग्रेज़की औसतकी ऊँचाई ५ फुट ७$\frac{3}{8}$ इंच तथा भार ७७$\frac{1}{2}$ सेर होता है। आयरलैण्ड निवासीकी ऊँचाई ५ फुट ८ इंच तथा भार ७६$\frac{1}{2}$ सेर होता है। ब्रिटिश द्वीपके सबसे लम्बे निवासी स्काटलैण्डमें रहते हैं। इनकी ऊँचाई ५ फुट ८$\frac{3}{4}$ इंच तथा भार ८२$\frac{1}{2}$ सेर होता है। सबसे नाटे मनुष्य वैल्समैन हैं। इनकी ऊँचाई ५ फुट ६$\frac{1}{2}$ इंच तथा भार ७९ सेर होता है।

स्कैण्डिनेविया-निवासी यूरोपमें सबसे लम्बे होते हैं। अफ्रीका महाद्वीपमें पृथ्वीके सबसे लम्बे तथा नाटे मनुष्य रहते हैं।

तापक्रमकी अवधि

साधारण मनुष्य अधिक न तापमें रह सकता है और न अधिक शीतमें ही रह सकता है। परन्तु संसारमें कुछ लोग हो गये हैं जिन्होंने इसमें की रिकार्ड बना लिया है। प्रोफेसर सौबेंटको कहते हैं कि वे २६० सेण्टोग्रेडके तापक्रम पर रह चुके हैं। प्रसिद्ध अँग्रेज मूर्तिकार शैन्ट्री ने जिस कमरेमें अपना ढाँचा सुखाया था, उसका तापक्रम १७४° सैण्टीग्रेड था।

प्रसिद्ध ध्रुव अन्वेषक स्वतका जब फ्रैंकलिनके पथमें एक दलके साथ जा रहा था, तब जनवरी माहमें एक दिवस तापक्रम—-७५° सेण्टीग्रेड था। परन्तु इतने पर भी वह उत्तरकी ओर १० मील प्रति दिनकी चालसे चलता रहा।

निद्राकी अवधि

हम लोग प्रायः १० या १२ घंटे एक दिनमें सोते हैं, परन्तु क्या कभी किसी ने अनुमान लगाया है कि आदमी आधी शताब्दीसे अधिक भी एक नींदमें सो सकता है? प्रसिद्ध दर्शनाचार्य्य एपीमेनिडस एक समय जब कि वह अपने पिताकी भेड़ोंकी देखभाल कर रहा था, एक खोहमें ७५ वर्ष तक लगातार सोता रहा। अमेरिका के माइनोस्टाके पास एक झोपड़ेमें होम्स नामक एक मनुष्य तीस वर्ष तक निद्रादेवीकी गोदमें पड़ा रहा। सोनेके पूर्व इसका भार ९८ सेर था, परन्तु उठने पर ४२ सेर ही रह गया। ड्रेसडेनका एक रेलवे झंडा दिखलाने वाला एक घटनाके पश्चात् १८ वर्ष तक जगा नहीं। आदमीकी सबसे कम नींद १४ मिनटकी होती है।

आदमी अधिकसे अधिक ८४ घण्टे जग सकता है। परन्तु इससे कहीं अधिक समय तक भी लोग जगे हैं। बुडापेस्टके एक अफसर को गत महायुद्धमें गोली लगी थी। तबसे यह सुना जाता है, कि वह एक सेकण्डके लिये अब तक सोया नहीं। उसके सब अवयव भली भाँति कार्य्य करते हैं। भगवानकी लीला अपार है।

अनशनकी सीमा

भारतवर्षमें अनशन करनेका प्रश्न बहुत प्रचलित है। पश्चिमी देशोंमें भी इसका प्रचार है। सब स्थानोंमें लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये इसका प्रयोग करते हैं। सन् १९२० ई० में आयरलैण्डमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये युद्ध छिड़ा हुआ था। विद्रोही नेता श्री टेरेन्स मैक्स्विने तथा कार्कके लार्ड मेयरको २ वर्षका कारागार हुआ था। इन दोनों सज्जनों ने अनशन किया था। ७५ दिनोंके पश्चात् इसी अनशनने इनकी मृत्यु बुला ली। सन्१९३१ ई०में श्री पूज्य महात्मा गाँधी ने ३ सप्ताह तक अनशन किया था और वे बाल बाल बचे थे। बाइबिलके नये टेस्टामेण्टको देखनेसे पता चलता है कि ईसामसीह ने भी ४० दिन तथा ४० रातों तक अनशन किया था।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।
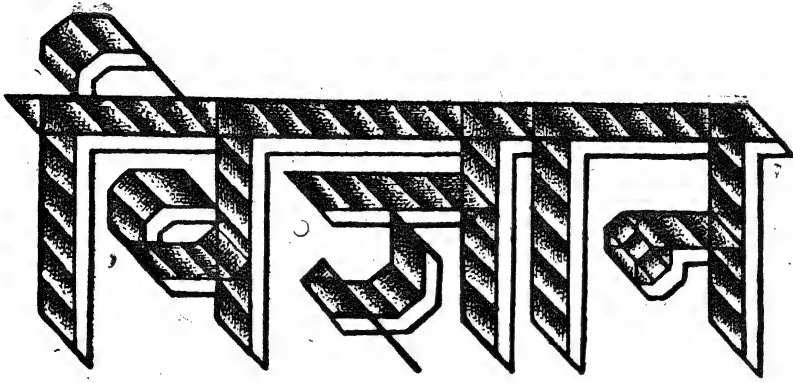
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५० | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | दिसम्बर, सन् १९३९ ई० | संख्या ३

भू-रचना

(लेखक—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी; गवर्नमेण्ट ट्रेनिङ्ग कालेज, आगरा)

मनुष्यने जबसे विचार-शक्ति पाई, तभीसे सृष्टि-रचना-विषयक कल्पनाओंकी उड़ान भरना प्रारम्भ कर दिया था। पृथ्वी कैसे बनी, पंच तत्व किस क्रमसे प्रकट हुये, ऊँचे-ऊँचे पर्वत व गहरे समुद्र किसने बनाये? इन प्रश्नोंका उत्तर आदि कालसे लेकर आज तक सोचा जा रहा है। सब धर्मोंमें इन प्रश्नोंपर चर्चा मिलती है। कुछ कहते हैं कि छः दिनमें संसार बनाकर सातवें दिन ईश्वरने विश्राम किया; कुछ कहते हैं कि समुद्रके मथनेसे पृथ्वी व चन्द्र उत्पन्न हुये तथा सगरके साठ हज़ार पुत्रोंने अश्व खोजनेके निमित्त पृथ्वी खोदकर पातालकी यात्राकी। खुदी हुई भूमि द्वारा ही समुद्र बन गये जो कि सगरके नाम पर सागर कहलाये। इसी प्रकार बहुतसी भ्रमपूर्ण किंवदन्तियाँ प्रचलित रहीं। पिछली शताब्दी तक इन प्रश्नोंके उत्तर का ठेका धर्म-गुरुओंके हाथ था। बीच-बीचमें ज्योतिषी जी भी अपना नुसख़ा बना देते थे। किन्तु जबसे विज्ञान-वेत्ताओंने शोध करना प्रारम्भ किया तबसे अटकल-पच्चू गप्प लड़ाने वाले मौन हैं। खोज करते-करते मनुष्य अब जान गया है कि धरा-निर्माण किस क्रमसे हुआ था।

इस दिशामें वैज्ञानिक खोज करने वाला प्रथम दार्शनिक लाप्लास हुआ। यह फ्रांसीसी था—कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले। इसीने सर्व प्रथम घोषणा की कि पृथ्वी, मंगल, शनि आदि ग्रह प्रारम्भमें अलग-अलग न थे, बल्कि सब सूर्यमें समाये हुये थे। इतना जान लेने पर मनुष्य-मस्तिष्क में शंका उठी कि आख़िर सब ग्रह सूर्यसे क्यों अलग हुये?

भू-जन्म

इसका उत्तर अभी कुछ ही वर्ष हुये कैम्ब्रिज-विश्व-विद्यालयके प्रसिद्ध विद्वान् सर रौबर्ट बौलने दिया है। इनका कहना है कि अनन्त काल पूर्व जब कि एक भी ग्रह उत्पन्न न हुआ था हमारा सूर्य-संतानहीन सूर्य शून्यमें अकेला धधका करता था। अकस्मात् एक अन्य सूर्य जो हमारे सूर्यसे कई गुना बड़ा था, उसके पाससे

निकला। यह सूर्य हमारे सूर्यसे अधिक शक्ति-शाली था। अतः हमारे सूर्यमें ज्वारभाटे उत्पन्नकर दिये—जिस प्रकार कि सूर्य एवं चन्द्र मिलकर पृथ्वीके समुद्रोंमें उत्पन्न किया करते हैं। हमारे सूर्यका बहुत सा भाग महा सूर्यकी ओर खिंचने लगा। जब महा सूर्य समीप आगया तो वह भाग इतना खिंचा कि मूलस्रोतसे भिन्न होगया। महा सूर्य अपने मार्ग चला गया, किन्तु यहाँ एकसे दो कर गया। यही घटना थी जिसने ग्रहोंको जन्म दिया। यदि महा सूर्य समीप होकर न निकला होता तो आज भी हमारा सूर्य पहलेकी भाँति धधकता होता; एक भी ग्रह उत्पन्न न हुये होते। टेलिसकोप द्वारा देखनेसे पता चलता है कि आकाशमें कई सूर्य ऐसे हैं जिनके एक भी ग्रह नहीं हैं। हमारा सूर्य भी उन्हीं की भाँति हुआ होता। जिन सूर्योंके ग्रह हैं उनके ग्रह भी इसी प्रकारकी घटना द्वारा उत्पन्न होते देखे गये हैं।

अलग हो जानेवाला, सिगार-आकृति-सदृश भाग, ज्योतिर्नियमानुसार, अपने पिता सूर्यकी परिक्रमा करने लगा। निरन्तर गति पूर्ण होनेके कारण इसके कई खण्ड होगये। सब खण्ड एकसे न थे। कुछ बड़े और कुछ छोटे थे। बड़े खण्डोंने समीपवर्ती अल्प खण्डोंको अपनी ओर खींचकर मिलाना प्रारम्भ कर दिया। इन टुकड़ोंमें जितने ही अधिक अल्प खण्ड सम्मिलित होते गये, आकार बढ़ता गया। आकार बढ़नेके साथ ही साथ आकर्षण शक्ति बढ़ती गई। अन्तमें वह समय आया जब कि केवल दस बड़े-बड़े खण्ड रह गये। इन खण्डोंने पड़ोसी निर्बल पिंडोंको अपनेमें मिला लिया। यह सब ग्रह जन्म-समय

गैस-अवस्था

में थे। उस समय छितराई हुई गैसके अणु इतने सूक्ष्म थे और वे इस मन्थर गतिसे एकत्रित हो रहे थे कि उष्णता अल्प मात्रामें उत्पन्न हो सकती थी। किंतु इन अल्प अणुओंका एकत्रीकरण अवाध गतिसे होता रहा—इन्हें सम्मिलित होनेसे कोई न रोक सका। परिणाम यह हुआ कि जब इस एकत्रित वाष्पमेघका आकार पर्याप्त मात्रामें बढ़ गया, आकर्षण-शक्तिकी तीव्रता अति प्रबल होगई। अब तो अल्प खण्ड और भी त्वरित वेगसे आ आ कर एकत्रित राशिमें गिरने लगे। इनके टकरानेकी तीव्रता बढ़ती गई। फलस्वरूप, संघर्षण व गति ने तापमान बढ़ा दिया। गैस अवस्था वाले ग्रहका केन्द्रीय भाग सघन व ठोस था ही, गर्मी उत्पन्न होते ही पिघल चला। यह

तरल

दूसरी मुख्य घटना थी जिसने पृथ्वीमें मार्ग परिवर्तनोंको निमंत्रण दिया। सम्पूर्ण ग्रह पिघला न था। केवल मध्यवर्ती ठोस भाग ही द्रव रूपमें हुआ था। जो भाग ठोस न था वह गैसके रूपमें ही बना रहा। तरल भागको गैस भाग उसी प्रकार चारों ओरसे घेरे था जिस प्रकार गरीको नारियलकी जटायें। आगे चलकर हम देखेंगे कि तरल पदार्थ पृथ्वी कहलाया और गैस भाग (शुद्ध हो जानेपर) वायुमंडल। बहुतोंकी धारणा होती है कि पृथ्वीसे वायुमंडल भिन्न है, पर उनकी यह धारणा भ्रम पूर्ण है। वातावरण या वायुमंडल पृथ्वीका ही अंग है।

पृथ्वी मध्य भाग कोई ५,००० वर्ष तक तरल होता रहा। इसी बीच उस तरल भागमें कई रासायनिक क्रियायें होगईं। यह अब बिल्कुल पतला न था, रक्तोष्ण लावाके रूपमें था। गर्म दूधके ऊपर पड़ने वाली मलाई की भाँति इस चाशनीकी ऊपरी सतह पर भी पपड़ी जमने जा रही थी कि

चन्द्रमाका जन्म

हुआ। क्यों? आइये सोचें!

चन्द्रमाकी जन्म-समस्या हल करनेके लिये वैज्ञानिकों ने बड़े-बड़े मनोरंजक सिद्धान्त बताये हैं। हम लोग केवल कुछ-एक पर दृष्टिपात करेंगे, क्योंकि आगे बहुत दूर जाना है। व्यर्थ समय बिताना उचित नहीं।

श्रीयुत जी. डारविनका कहना है कि जब पृथ्वी गैस-तरल अवस्थामें थी तब आजकी पृथ्वीसे कई गुना बड़ी थी। प्रथम तो इसलिये कि उसमें चन्द्रमा सम्मिलित था दूसरे इसलिये कि छितराई हुई अवस्थामें थी। संकुचित अवस्थामें न थी। उस समय सूर्यसे भी इतनी दूर न थी जितनी कि आज है। उस समय केवल चार घंटेमें कीली

का चक्कर लगाती थी जब कि आज कल चौबीस घंटोंमें। तात्पर्य यह कि वह अत्यन्त वेगसे घूमती थी। आज कल सूर्यका चलना विदित नहीं हो पाता, उस समय सूर्य दौड़ता हुआ स्पष्ट दिखता होगा। चन्द्रमा अभी उत्पन्न न हुआ था।

इधर पृथ्वीका मध्य भाग तरल होनेमें लगा था। उधर सूर्यकी प्रचण्ड "आकर्षक-खैंच" पृथ्वीमें ज्वार-भाटे उत्पन्न कर रही थी। भूमध्य-रेखाकी पेटी वाला भाग सूर्यकी ओर लम्बायमान होकर खिंचने लगा। यहाँ तक खिंचा कि पृथ्वीसे अलग होगया। जितने भागसे यह अंश अलग हो गया उस भागमें गहरे-गहरे खड्ड हो गये। इन समुद्रोंमें अभी पानी न था।

इस समय तीन-चार घटनायें एक साथ हो रही थीं। एक ओर तो भूमध्य-प्रदेश चन्द्रमाके रूपमें पृथ्वीसे विलग हो रहा था, दूसरी ओर पिघला हुआ लावा ऊपरी सतह पर शीतल हो कर जम रहा था—जमी हुई पपड़ीके नीचे खौलता हुआ अथाह तरल पदार्थ टक्कर मार रहा था। चारों ओर अशान्ति थी। सूर्यकी "आकर्षक-खैंच" इस तरल पदार्थमें उथल-पुथल उत्पन्न कर रही थी। ऊपरी पपड़ी हर घंटे ऊपर-नीचे होती। जिस स्थान पर पपड़ी दुर्बल होती नीचेका रक्तोष्ण लावा पिचकारी चलाता हुआ ऊपर निकल आता। इस ज्वालामुखी-स्रोतसे निकलने वाले पदार्थमें कई तत्व रहते, जैसे, गन्धक, हाइड्रोजनादि गैस। पहले कहा जा चुका है कि गर्मीको घेरे रहने वाली जटाओंकी भाँति गैसका आवरण पृथ्वीको घेरे था। इस गैसमें आक्सीजनकी मात्रा भी सम्मिलित थी। जैसे ही ज्वालामुखी अथवा रासायनिक प्रभावोंके कारण इस आक्सीजनमें हाइड्रोजनकी उपयुक्त मात्रा (एक परमाण आक्सीजन + दो परिमाण हाइड्रोजन) का मेल हुआ कि अकाशमें जल उत्पन्न हो गया। यह जल निरन्तर धरा-तल पर गिरता रहा, किन्तु गर्मीकी अधिकताके कारण नीचे तक न आ पाता, बीच हीमें सूख जाता था। कुछ समय पश्चात् जब उष्णता कम हुई तब पानीकी बूँदे नीचे तक आने लगीं। अब तो मूसलाधार वर्षा हुआ करती। कुछ ही घंटोंमें सौ-सौ इंच गहरा पानी बरस जाता। इस प्रकार की वर्षा अब कहीं नहीं होती।

ऊपर घनघोर वर्षा हो रही थी, नीचे गीला धरा-पृष्ठ जमने लगा था। तत्कालीन गीली चट्टानों पर गिरने वाले वृष्टि-धार-चिह्न आज भी ज्योंके त्यों अंकित पाये गये हैं। गीली चट्टानोंके ऊपरसे होकर जल-धारायें प्रचण्ड वेगसे सामुद्रिक खोखलोंमें एकत्रित होनेमें व्यग्र थीं। पृथ्वीके जिस भागसे चन्द्र-निर्माणके लिये चंदा दिया गया था, मटमैला जल उसी भागका घाव पूरा करनेमें लगा था। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि समुद्रोंमें पाई जाने वाली जल-राशि केवल आकाशकी ही देन नहीं है, बल्कि तत्कालीन जमने वाली चट्टानोंकी भी। उनका मत है कि तरल-धरा-खण्डका जो भाग जमता गया वह प्रस्तर होता गया, जो तरल ही बना रहा वह (जल-रूपमें) प्रयुक्त हो गया जिस प्रकार कि दूध जम जाने पर जमा हुआ भाग अलग हो जाता है, और शुद्ध जल अलग। कुछ भी हो, इन साधनों—आकाशीयगैस तथा तरल-धरा-खण्डके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं दीखता जिससे समुद्रोंमें इतना जल पहुँचा होगा।

तरल भागको घेरे रहने वाले गैस-वितानसे जितना अधिक पानी बन कर नीचे बरसता गया गैस-आवरण उतनी ही विदीर्ण होता गया—फटता गया होते-होते एक समय आया जब कि गैस-आवरणका नाम-निशान न रहा—उसके स्थान पर अदृश्य पारदर्शक वायु-समुद्र लहराने लगा। यही वायुमंडल भावी जीवन-यात्राकी पृष्ठ-भूमि थी। यद्यपि अभी यह विषरहित न था तथापि श्वासोपयोगी भी न था; किन्तु स्पष्ट था, इस पारसे उस पार की वस्तुयें दीख पड़ सकती थीं।

सूर्यकी किरणें प्रथम बार धरातल तक आ सकनेमें सफल हुईं। अभी तक जब तक गैस-आवरण छाया था, अभेद्य कवचको फोड़ कर नीचे आ सकना उनके लिये असम्भव था। किन्तु अब उसके मार्गमें कोई रुकावट न थी। अबसे पृथ्वीको सूर्य-दर्शन होने लगे, वास्तविक दिन होना प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व दिन किस प्रकारका हुआ करता होगा पाठक स्वयं कल्पना कर लें।

यह तो हुआ पृथ्वीके बाह्य जगत् वातावरणादिका दृश्य। आइये, अब पृथ्वीके अंतरङ्गमें प्रवेश करके देखें।

जिस समय वाह्य धरातलकी पपड़ी जम चली थी उसी समय अभ्यन्तरकी ओर भी।

सघनता

प्रारम्भ हो गई थी। ऊपर वाला भाग जम जानेके कारण भारी हो गया। भारी होनेसे नीचेको धँसका। पपड़ीके डूबते ही नीचे खोलने वाले लावा-सागरकी विशाल धारायें ऊपर उठ आईं और पपड़ीकी पीठपर छितराने लगीं। बाहरका तापक्रम भीतरी तापक्रमसे कम था—बाहर शीतलता अधिक थी। अतः पपड़ी पर छितराने वाली गीली चाशनी शीतल होकर जमने लगी। इस प्रकार चट्टानोंके दो परत जम गये। दो परत हो जाने पर बोझ और भी बढ़ा—अबकी बार दोनों स्तर नीचेको धँसके। पहलेकी भाँति फिर तरल लावा ऊपर उठा, ऊपरी चट्टान पर छितराया, शीतल हुआ और जमा। इस प्रकार चट्टानोंके ऊपर चट्टानें जमती गईं। इन्हें भूगर्भ-प्रस्तर-श्रृंखला कहते हैं। इन्हीं चट्टानोंको सहायतासे विद्वानोंने पृथ्वीकी अवस्था, आयु, विकास-क्रमादि अंकित कर लिये हैं।

इन प्रस्तर-खण्डोंमें बड़ी आश्चर्यजनक क्रियायें हो रही थीं। इधर ऊपरी सतह पर चट्टानें बनती जा रही थीं, उधर सबसे नीचे दब जाने वाली चट्टान दबाव तथा आंतरिक दाहके कारण पिघल रही थी। बीच वाली चट्टानें भी ऊपरी दबाव व नीचेके तापक्रमसे काया-कल्प कर रहीं थीं। तापकी मात्रा भिन्न होनेके कारण धातुयें भी भिन्न प्रकारकी बनी। यह भी नियम नहीं है कि बनते समय जिस धातुकी थीं आज तक उसी धातुकी है। अटूट गतिसे तचने रहनेके कारण धातु-परिवर्तन भी होता चला आया है। पाठक इस समय जिस स्थान पर बैठे हैं उसे यदि नीचे तक खोदा जाय तो कई प्रकारकी चट्टानोंके परत मिलेंगे। कुछ चट्टानें खड़िया मिट्टीकी होगी तो कुछ कड़ी मिट्टीकी, कुछ भुरे-भुरे श्वेत संगमरमरकी होंगी तो कुछ तेलिया पत्थरकी, आदि। कोई भी स्थान ऐसा न होगा जिसके नीचे इस प्रकारकी या अन्य प्रकारकी चट्टानोंके एकसे अधिक परतन पाये जाँय। इन परतोंकी रचना उपर्युक्त रीतिसे हुई। मैदानी प्रान्तोंमें भूमिको खोदा जाय तो कुछ दूर तक भिन्न-भिन्न प्रकारकी मिट्टियों (काली, पीली, श्वेत, लाल) की तहें मिलेंगीं। इन तहोंकी रचना उपर्युक्त रीतिसे नहीं हुई। इनकी सृष्टिका श्रेय पर्वतोंको पीस कर चूर्णिताङ्ग वितरित करने वाली जलधाराओंको है। जलवृष्टि ने यह काम, असंख्य वर्षोंमें कर पाया है। प्रति वर्ष पर्वतोंको तोड़कर निचले भागमें बहा लाना जलका ही काम था। जल ने पर्वतोंकी ऊँचाई इतनी छोटी कर दी है कि प्रारम्भिक ऊँचाईका पता लगाना मनुष्यके लिये कठिन है। सचमुच यह पर्वत जन्म-समय बड़े ऊँचे रहे होंगे। इन उठे हुये नुकीले शैल-शृङ्गोंकी रचना भी क्या श्रृंखलाके नियमानुकूल हुई या किसी अन्य रीतिसे।

पर्वतोंकी उत्पत्ति

भिन्न रीतिसे हुई। पिछली पंक्तियोंमें पाठकों ने एक चट्टानके ऊपर दूसरी चट्टानके जमनेकी परम्परा पढ़ी। यह परम्परा धीरे-धीरे शिथिल होती गई। लगभग १०,००० वर्ष बाद यह क्रिया समाप्त सी हो गई, कारण यह कि इतने समयमें चट्टानोंके कई पुर्त लग चुके थे। उनका नीचे धँसकना शान्त हो गया था। नीचे वाला तरल पदार्थ भी उनको पार कर ऊपर तक न आ सकता था। पर ध्यान रहे कि यह आठ-दस मंज़िल वाला गुम्मट स्तम्भ-हीन था, आधार-हीन था। शेषनागके फन पर या कच्छप भगवानकी पीठ पर न टिका था—द्रव सागर पर रक्खा था। अपने ही बल पर सधे रहने वाले महराबकी भाँति अधड़में सधा था। आख़िर बेचारा कहाँ तक सधा रहता। एक समय आया जब कि कुड़कन, सिमटन संकोच, झुर्रियाँ पड़ना आदि प्रारम्भ हो गया। जो भाग निर्बल था टूटा, नीचेसे पिचकारीकी धार आकाश तक जा जाकर भूमिपर गिरने लगी, लावाराशिके पिरेमिड पर पिरेमिड बनने लगे, कीचड़के गगन-चुम्बी ढेरोंका जमघट लग चला। यही नुकीली राशियाँ पर्वत हुईं। हिमालय, पिरेनीज़ व इण्डीज श्रृंखलायें इसी प्रकारकी घटनाओंके परिणाम हैं। कल्पना कीजिये, इस युगका दृश्य कितना भीषण रहा होगा—प्रगाढ़-सघन-कृष्ण-कीचड़से आच्छन्न आकाश, पृथ्वी पर रक्तोष्ण लावाकी अटूट मूसलाधार वृष्टि। जिस प्रकार भूमि-खण्ड व आकाश मिलकर पिचकारीसे होली

खेल रहे थे उसी प्रकार समुद्र व चन्द्रमा मिलकर जल-राशिको गेंद बनाकर फुटबाल खेल रहे थे। अन्तर केवल इतना था कि भूमि व आकाशके बीच कीचड़का आवागमन था और समुद्र व चन्द्रमाके बीच विशाल-ऊर्मिजाल-का। इन ऊर्मिजालोंको

ज्वार-भाटा

कहते हैं। उस समय यह बहुत ऊँची उठते थे—आजके ज्वार-भाटोंसे १५,००० गुने ऊँचे (प्रोफेसर हेरल्ड जेफरीके मतानुसार) आजकलके ज्वार-भाटोंकी ऊँचाई लहरोंके अतिरिक्त ३/४ फ़ीट अधिक है। उस समय इनकी ऊँचाई २१/२ मील रहती होगी। ज़रा कल्पना कीजिये, कितना भयावह दृश्य रहता होगा। इतने ऊँचेऊँचे ज्वार-भाटोंके उठनेका मुख्य कारण यह था कि चन्द्रमा अत्यन्त समीप था। आजकल चन्द्रमाकी दूरी २,४०,००० मील है जब कि उस समय केवल ६६० मील थी। उस समय पृथ्वी व चन्द्रमा दोनों ही बड़ी शीघ्रतासे घूम रहे थे। पृथ्वीके विषयमें कहा जा चुका है कि ४ घंटेमें घूम जाती थी, अर्थात् दो घंटे का दिन दो घंटेकी रात, चन्द्रमाको भी पृथ्वीका चक्कर लगाने में ५ घंटे लगते थे। हर ढाई घंटे बाद पूर्णिमा व अमावस्या बारी-बारीसे होती थी। चौथ, पंचमी, छठ, अष्टमी या चौदस होती होगी या नहीं, यदि हाँ तो किस प्रकार की, आदि बातोंकी कल्पना पाठक स्वयं करलें। पूर्वसे पश्चिम तक जितना मार्ग आजकल चन्द्रमा पूरे बारह घंटेमें पार करता था उतना तब केवल दो घंटेमें पार करता था। इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय एक ओरसे दूसरी ओरको भागता हुआ बड़ासा चन्द्रमा स्पष्ट दिखता होगा। एक बात और थी, उस समय चन्द्रमाके दोनों पहलू दृष्टिगोचर होते होंगे। आजकल पूर्णिमा तथा शुक्ल पक्ष की अन्य तिथियोंको देखा होगा। उनमें चन्द्रमा का एक ही भाग (चर्खा कातती हुई बुढ़िया वाला भाग) दिखाई देता है। सिक्केकी एक ही पहलू देखनेको मिलती है। किसीने नहीं देख पाया कि सिक्के की दूसरी पहलूमें क्या है। एक पहलूके दृष्टिगोचर होनेका कारण यह है कि चन्द्रमा अपनी कीलीपर अब नहीं घूमता। केवल पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगाता है। पृथ्वी अपनी कीलीपर लट्टूकी भाँति घूमती हुई सूर्यके चारों ओर घूमती है। एक समय था जब कि चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगानेके अतिरिक्त अपनी कीली पर भी लट्टूकी भाँति घूमता था। जिस समय अपनी कीलीपर भी घूमता था उस समय आकाशसे होकर निकलनेपर बारी-बारीसे दोनों पहलू दिखाता जाता था। लुढ़कते-पुढ़कते बड़ेसे चन्द्रका द्रुत गतिसे भागना कितना मनोरंजक रहता होगा, पर दुःख है इसे देखनेके लिये पृथ्वीपर कोई प्राणी न था। प्राणी की कौन कहे पेड़-पौधे तक न थे।

चन्द्रमा तो पृथ्वीके समीपसे होकर चारों ओर चक्कर लगाता ही था, उसके पीछे-पीछे ढाई मील ऊँची लहरें भी दौड़ा करती थीं। समुद्रोंका सारा पानी चन्द्रमाकी ओर खिंच जाता था। पीछेका समुद्र-तलजल-शून्य होजाता था। जलकी ऊँचीसी कगार एक घंटेमें पाँच हज़ार मीलकी चालसे चन्द्रमाका पीछा कर रही थी। सारी पृथ्वीमें कम्प, सारी चट्टानोंमें कम्प, सारे पहाड़ोंमें कम्प, जिधर देखो उधर कम्प था। समुद्र-मन्थनके इसी युग में

प्रायद्वीपोंकी रचना

हुई। सब जगह उथल-पुथल थी। तूफ़ानी लहरोंमें डगमगाने वाली नौकाकी भाँति स्थल-भाग दोलित हो रहा था, प्रायद्वीपों व समुद्रोंका बँटवारा हो रहा था और आकृति–निर्माण हो रहा था। चन्द्रमा और सूर्य, ज्वार-भाटाकी मथानी पकड़कर समुद्र मथ रहे थे। चट्टानों, पर्वतों, प्रायद्वीपों आदि स्थल-खण्डोंका नवनीत ऊपर उठ रहा था।

किन्तु यह तूफ़ानी दृश्य सदैव बना ही नहीं रहा। शनैः-शनैः इसकी भी तीव्रता कम हुई। किसने कमकी? इसे समझनेके लिए कल्पना कीजिये किसी ऐसे प्रदेश में जहाँ बारहों मास तीव्र वायु प्रवाहित होता रहता है। दो हवाई चक्र हवाके बलपर घूम रहे हैं। एक चक्र बड़ा है और दूसरा छोटा। उन दोनोंके ऊपर होकर एक चौड़ी पट्टी लपेट दी गई है। यदि पट्टी न लपेटी जाती तो दोनों चक्र हवाके साथ-साथ स्वतंत्र गतिसे घूमते रहते,

किन्तु पट्टी बँध जानेसे उनकी स्वतंत्रता जाती रही। उनकी गति अवरुद्ध होगई तथा पहले की तरह न रही । चन्द्रमा व पृथ्वी सभी घूमने वाले गोलोंकी दशाभी ज्वार-भाटेकी पेटीने यही कर दी। दोनोंकी गतिमें रुकावट आती गई । यह रुकावट अथवा शिथिलता अति सूक्ष्म थी। पृथ्वीकी घूमने वाली गति शिथिल होते जानेके अर्थ हुए—दिनकी लम्बाई बढ़ते जाना। यह बढ़ना लगभग अज्ञात-सा था। १२,००० वर्षमें दिनकी लम्बाई एक सेकण्ड बढ़ती। इसी गतिसे बढ़ते-बढ़ते अब २४ घंटेका दिन होने लगा है, कहाँ पहले ८ घंटे का होता था।

ज्वार-भाटेने दिनकी लम्बाई तो बढ़ाई पर साथ ही साथ पृथ्वीको चन्द्रमासे दूरभी किया। वैज्ञानिकोंका कहना है कि यह पिण्ड भविष्यमेंभी अगणित वर्षों तक एक दूसरेसे दूर होते चले जायँगे; तब तक न रुकेंगे जब तब पृथ्वीका अपनी कीलीपर घूमने वाला समय तथा चन्द्रमाका परिक्रमा लगाने वाला समय बराबर-बराबर न होने लगेगा। उस समय हमारा दिन २४ घंटेका न होकर ४७ दिनका हुआ करेगा और माहभी इतने ही दिनों का। तात्पर्य यह कि पृथ्वी इतनी मन्थर गतिसे रेंगा करेगी कि सूर्य आज जितने मार्गको १२ घंटेमें तय करता प्रतीत होता है उसे २३½ दिनोंमें (१ दिन = २४ घंटे) तय करता प्रतीत हुआ करेगा। अन्तमें इसके पश्चात् वह क्षण अवश्य आयेगा कि पृथ्वी शान्त हो जायगी। जो भाग सूर्यके समक्ष रह जायेगा वही सदा उजेलेमें रहा करेगा, शेष भाग सदैव अंधेरेमें। उस समय पृथ्वीकी आकर्षण-शक्ति वह न होगी जो आज है। इसके अभावके कारण वायु-मंडलको पृथ्वीपर रोके रह सकने वाली कोई शक्ति न होगी। वह अनन्तमें विलीन हो जायगा। धीरे-धीरे जल, वनस्पति आदि समाप्त हो जायँगे। प्राणी एक भी न रह सकेगा, पृथ्वीभी मुर्दा ग्रहों की भाँति निश्चल पड़ी रहा करेगी। पर घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं, ऐसा होनेमें न जाने कितने मन्वन्तर लगेंगे। तब तक मनुष्य अपने पड़ोसी ग्रह मंगलमें उड़ जायगा—तब तक वृहस्पतिमें भी जीवन प्रारम्भ हो जायगा, न होगा वहीं उड़ चलेंगे। उड़नेमें सफलताके लक्षण अभीसे दिखाई देने लगे हैं। पचीस वर्षकी नन्हीं सी आयुमें ही इस कलाने आशातीत गुल खिला दिये हैं।

पाठकों! इस लेखमें हम लोगोंने देखा कि पृथ्वी किस क्रमसे विकसित हुई, गैस-रूपसे तरलावस्थामें आई, तरल पदार्थ शीतल हुआ, पपड़ी जमी, चट्टानोंकी परतें जमीं। साथ ही साथ गैस-आवरणसे जलकी वृष्टि हुई, क्योंकि हाइड्रोजन व आक्सीजन उचित मात्रामें मिल सके इसका श्रेय पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिको है। हाइड्रोजन एक बाहरी गैस है जो भ्रमण करते-करते पथ-च्युत होकर हमारे वायमंडलकी सीमामें घुस आती है। यह गैस जहाँ हितकर है वहाँ प्राण-घातक भी है। वातावरणमें इसका आवश्यकतासे अधिक रुकना ठीक न था। जानस्टन स्टोनीका अनुमान है कि यदि यह गैस वर्तमान मात्रासे थोड़ी भी अधिक हुई होती तो आज भी पृथ्वी जलती होती, आगकी लपटें निकलती होतीं। जल व वनस्पतिका नाम तक न होता। इसकी परिमित मात्रा ही हमारे ग्रहके लिए अमृत हो गई। परिमित मात्रा ही रोक रखना कम या अधिक न रोकना, काम था विशेष प्रकारकी आकर्षण-शक्तिका। यदि आकर्षण-शक्ति वर्तमान मात्रासे अधिक हुई होती तो अधिक हाइड्रोजन रुकी रहती। आकर्षण-शक्तिका इस मात्रामें उत्पन्न होना पृथ्वीके भार पर निर्भर है। यदि पृथ्वीका आकार, फैलाव विस्तारादि वर्तमान मात्रासे अधिक होता-वृहस्पति या शनिकी भाँति होता तो यहाँ भी आकर्षण-शक्ति अधिक होती। फल यह होता कि यह भी उनकी भाँति धधकती होती। इस समय न लेखक होता न लेख और न पाठक। पृथ्वीका एक विशेष मात्रावाली होना ही आगे वाली घटनावलियों का मूल हुआ।

पानी तो बनता ही—कोई कारण न था कि उपर्युक्त घटनायें होती जातीं और अन्तमें जलकी उत्पत्ति न होती। यह कोई कौतूहल-जनक बात न थी—कौतूहल-जनक बात तो यह थी कि पानी बनना ठीक उसी समय प्रारम्भ हुआ जब कि चन्द्रमा पृथ्वीसे अलग हो रहा था—पृथ्वीमें गहरे खड्ड छोड़ रहा था। पानीको टिकनेके लिए स्थान मिल गया। यदि समुद्र-गर्त तैयार न मिलते तो पानी सारी पृथ्वीमें फैला-फैला फिरता। यह पानी इतना अधिक

था कि सारी पृथ्वीको दो मीलकी गहराईमें डुबाये रखता (वालेस के मतानुसार) यदि पूरी पृथ्वी दो मील गहरे समुद्रमें डूबी होती तो जीवन समुद्र-सीमासे निकलकर आगे न बढ़ पाता। न वृक्ष होते, न पशु, न पक्षी। समुद्रसे भाप उड़ती और समुद्रमें ही बरसती। पानी उतना का उतना ही भरा रहता। उच्च श्रेणीके जीवोंका विकास न हो सकता था। जहाँ पाठक बैठे हैं वहाँ मछली, कच्छप, घड़ियाल, अजगरादि युद्ध करते दृष्टिगोचर होते। चंद्रमाका बनना व समुद्री गड्ढोंका तैयार होना जीवन विकासके लिये महा आवश्यक सिद्ध हुआ। पृथ्वी बाल-बाल बच गई। एक ही घटना न हुई होती तो आगे होने वाली सैकड़ों घटनायें न हो पातीं, सृष्टि कुछकी कुछ हुई होती। चन्द्रमाने केवल सामुद्रिक खड्ड ही नहीं बनाये बल्कि ढाई-ढाई मील ऊँचे ज्वार-भाटे उत्पन्न किये जिनकी बदौलत ही प्रायद्वीप, पर्वत व समुद्र-सीमाओंका बँटवारा हुआ। दिनकी लम्बाई बढ़ानेमें ज्वारभाटेने योग दिया। पृथ्वीका विशेष मात्रामें होना तथा चन्द्रमाका पृथ्वीसे उत्पन्न होना मुख्य घटनायें थीं जिन्होंने इस ग्रहको जीवित ग्रह बना दिया।

यह ठीक है कि इस समय समुद्र, धरातल, व आकाशमें चहल-पहल थी, किन्तु यह चहल-पहल निर्जीव तत्वोंकी थी, जीवित प्राणियों या वनस्पतियोंकी क्रीड़ा कहीं भी प्रारम्भ न हुई थी। चट्टानें सूनी थीं, समुद्र जीव-हीन था और आकाश विहगहीन था। अगले लेखमें हम देखेंगे कि जीवन सर्व प्रथम थलमें प्रारम्भ हुआ या जलमें अथवा आकाशमें। यहभी देखेंगे कि जीवित प्राणियोंकी उत्पत्ति जीवित पदार्थोंसे हुई या निर्जीव पदार्थों से?

रेडियमका शिकार

(ले०—श्री गौरीशंकर तोषनीवाल)

रेडियम धातुका नाम आप लोगों ने अवश्य ही सुना होगा। यह विविध रोगोंके उपचारके काममें भी आती है। यदि रेडियमका सूक्ष्मसे सूक्ष्म कण भी खो जाय तो उसका स्थान पूरा करना बहुत मँहगा तो होगा ही (क्योंकि यह सोनेसे ४,००० गुण अधिक महँगा होता है), लेकिन अगर कोई प्राणी अनजानमें इससे छू भी जाय, उसकी ज़िन्दगी ख़तरेमें पड़ जायगी। अतएव वैज्ञानिकों ने इसे ढूँढ़ निकालनेका एक अद्भुत तरीक़ा आविष्कृत किया है।

रेडियम इतने छोटे कणोंमें काममें लाया जाता है कि इसका खोया जाना अपरिहार्य है। नासूरकी बीमारीमें डाक्टर लोग शायद ही कभी १०० मिलीग्रामसे अधिक काममें लाते हों। ये कण इतने छोटे होते हैं कि उन्हें प्लेटिनम या चाँदीकी ट्यूब या सुईमें नमकके बुरादेसे लपेट कर रखा जाता है, लेकिन फिर भी इसके खोनेका डर हमेशा बना ही रहता है।

इन कणोंको ढूँढनेके लिये काफ़ी प्रयत्न किया गया है। इन्हें रेडियम-हाउण्ड कहते हैं। एक इलेक्ट्रोस्कोप लिया जाता है, जिसमें एक सोनेकी पत्ती होती है। जब विद्युत्से इस पत्तीको 'चार्ज' किया जाता है, पत्ती अपनी जगहसे ९०° के कोण पर उठ जाती है। अगर अब रेडियमके कणको इसके पास लाया जाय तो पत्ती नीचे गिरने लगती है और बिल्कुल पास ले जाने पर वह अपनी पहले वाली स्थिति ग्रहण कर लेती है।

न्यूयार्कके प्रेसबिटेरियन अस्पतालमें एक चाँदीकी सुई जिसमें ३००० रु० का रेडियम था, खो गई। वह इसी तरकीबसे ढूँढ़ निकाली गई। यह सुई शफ़ाखानेके कूड़ेमें गिर गई थी, लेकिन इसका पता तभी लगा जब वह कूड़ेके साथ भट्टीमें पहुँच गई। चाँदी तो गल गई, लेकिन रेडियम ज्यों का त्यों पड़ा रहा। भट्टीके ठंडा होने पर जली हुई राख डोलमें भर-भरके रेडियम-हाउण्डके पास लाई गई। जब राखका तेइसवाँ डोल आया, सोनेकी पत्ती नीचे गिर गई।

ज्योंही रेडियम हेरा जाता है, सब लोग ढूँढ़नेमें लग जाते हैं। प्रयोगशालामें विलेमाइट या मामूली फ्लोरस्कोप से इसे ढूँढ़ निकाला जा सकता है। विलेमाइट एक प्रकार की धातु है, जो रेडियमको देखकर चमकने लगता है,

लेकिन जब तक यह रेडियमके बिल्कुल पास नहीं होता तब तक यह अपना काम ठीक नहीं करेगा। उस हालतमें रेडियम-हाउण्ड ही काममें लाये जायेंगे।

जब इलेक्ट्रोस्कोप पूरे सूक्ष्म परिचायक नहीं होते तो गाइगर मूलर काउण्टर काममें लाया जाता है। जब रेडियमकी किरणें इस पर अपना प्रभाव डालती हैं, लाउड स्पीकर-द्वारा इसमेंसे खर-खर सुनाई पड़ता है। यह यंत्र इतना सूक्ष्म परिचायक है कि इससे २० मिलीग्राम रेडियमका १३५ फ़ीटकी दूरीसे पता लगाया जा सकता है।

कनाडाके एक अस्पतालमें डाक्टरने किसी मरीज़का उपचार करते समय एक केपस्यूल जिसमें ५० मिलीग्राम रेडियम था, खो दिया। बादमें पता लगा कि केपस्यूल नालियोंके कूड़ेमें कहीं पड़ा है। इञ्जीनियरों ने डाक्टरको शहर भरकी नालियोंके नक़्शे दिये। डाक्टर गाइगर मूलर काउण्टर लेकर रेडियमका शिकार करने चला। नलों की बहुत खोज-बीनके बाद उसे कहीं खर-खर शब्द सुनाई पड़ा। ज्यों-ज्यों डाक्टर उस ओर बढ़ता गया, आवाज़ भी बढ़ती गई। अन्तमें उस नालेकी खुदाईकी गई और रेडियम पकड़ लिया गया।

कुछ वर्ष पहले सियु-फाल्स के अस्पतालमें एक नर्स रेडियमकी सुई मेज़ पर रख कर भूल गई। सुई लसदार फ़ीतेके चिपक गई और फेंक दी गई। वह कूड़ा ४० मील दूर सुअरोंके खेतोंमें फेंक दिया गया। डाक्टरोंको पता लगते ही इलैक्ट्रोस्कोपोंके साथ वहाँ दौड़ गये। वे रेडियमको ढूँढ़ रहे थे कि एकाएक सोनेकी पत्ती नीचे गिर गई, हालाँ कि इलेक्ट्रोस्कोप वहीं पर पड़ा था। यह कई बार हुआ। उन्हें सुअरों पर सन्देह हुआ। झुण्डको कई भागोंमें बाँटा और उन्हें इलेक्ट्रोस्कोपोंके सामने लाते गये। इस प्रकार करते-करते उन्हें एक सुअर मिला, जिसके सामने आनेसे पत्ती बिल्कुल नीचे गिर गई। फ़ौरन क़साई बुलवाया गया और उसमेंसे रेडियम निकाल लिया।

रेडियम बहुत क़ीमती धातु है। इसके एक ग्रामका मूल्य ७५,००० रु० कूता गया है। अमेरिका भरमें यह केवल ३०० ग्राम ही है। ज्यों-ज्यों इसका प्रयोग रोगोंके इलाजोंमें बढ़ रहा है, रेडियम-हाउण्डका बनाया जाना भी बढ़ रहा है। लेकिन क्या शत प्रतिशत सफलता मिलेगी? अभी तक तो ५० प्रतिशतमें ही सफलता मिल सकी है। इस ढूँढ़े हुए रेडियमसे लाखों रुपयोंकी बचत तो होती है, कई प्राणियोंके प्राण भी बच जाते हैं।

दूध, पैस्ट्युराइज़ किया हुआ—दूधको खौलानेसे जीवाणु मर अवश्य जाते हैं और इसलिए यह अधिक समय तक टिक सकता है, परन्तु इस क्रियामें इसमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है और दूधके कई एक गुण मिट जाते हैं। इसलिए बिना खौलाये ही यदि जीवाणुओंको मारना हो तो दूधको पैस्ट्युराइज किया जाता है। इस क्रियासे दूध कच्चा ही रहता है, परन्तु तो भी प्राय: खौलाये दूधकी तरह बहुत समय तक ठहर सकता है। नीचे इस क्रियाकी सरल रीति दी जाती है जो दस-पांच सेर दूधके लिए सुविधा-जनक है। यदि मन दो मन या अधिक दूधको पैस्ट्युराइज़ करना हो तो विशेष मशीनोंका उपयोग करना पड़ेगा। दूधको छोटे-छोटे बरतनोंमे रक्खो जिनमें सेर दो सेर तक दूध अँटता हो। इन बरतनोंके मुँहोंको ढक दो और तब इनको सपाट पेंदेके कड़ाहे या कड़ाहीमें रक्खो परन्तु बरतनोंका पेंदा कड़ाहेको न छूये। इसके लिए कड़ाहे में एक तह कंकड़-पत्थर (इंच आध इंच मोटी) बिछा दो। फिर कड़ाहेमें इतना पानी भरो कि दूधके बरतनोंके मुँहके तीन-चार अंगुल नीचे तक पानी पहुँच जाय। तब कड़ाहेके नीचे तेज़ आँच लगा कर पानीको इतना गरम करो कि इसका तापक्रम लगभग १५५ डिगरी फ़ारनहाइट हो जाय। फिर आँच खींच लो, केवल इतनी ही आँच रहे कि तापक्रम १५० डिगरी और १५५ डिगरी के बीच बना रहे। आधे घंटे बाद दूधके बरतनोंको निकाल कर खूब ठंडे पानीमें रख कर दूधको शीघ्र खूब ठंडा करो (इसका तापक्रम ४० डिगरी फ़ा० हो जाय)। आवश्यकतानुसार ठंडा पानी बदलते रहो जिसमें दूध शीघ्र ठंडा हो। गरमीके दिनोंमे बर्फ़का इस्तेमाल करो। इसके बाद जब तक दूध ख़र्च न हो इसको ठंडा ही रक्खो। गरमी और फिर तुरन्त सरदी पाकर अधिकांश जीवाणु मर जाते हैं।

धातुओंकी क़लई और रँगाई

[ले०—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०]

धातुओंपर क़लई दो रीतिसे की जा सकती है, बिजली की सहायतासे या बिना बिजलीके। इस लेखमें पहले बिजली द्वारा क़लईपर विचार किया जाय, फिर बिना बिजलीकी क़लईपर। अंतमें रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे धातुओंके रंगनेपर भी विचार किया जाय। बिजलीसे क़लई करना (विशेषकर सोनेकी क़लई) इतना आसान है कि इसे बहुतसे व्यक्ति अपने शौक़के लिए करते हैं। दो-चार रुपयेकी पूँजीसे भी छोटे कामोंपर क़लई की जा सकती है।

बिजलीका क़लई

बिजलीकी क़लईका व्यवसाय—बिजलीकी क़लई (एलेक्ट्रोप्लेटिंग) से काफ़ी नफ़ा उठाया जा सकता है, विशेषकर छोटे शहरोंमें, जिनमें प्रतिद्वंद्विता इतनी तीव्र नहीं रहती जितनी बड़े और व्यवसायी नगरोंमें। अब तो प्रायः धातुकी सभी छोटी-मोटी वस्तुओंपर किसी-न-किसी प्रकारकी क़लई रहती है जिसमें देखनेमें वे अधिक सुंदर लगें या मुर्चा आदि न लगनेके कारण अधिक दिन चलें। कई पुरानी वस्तुएँ भी दुबारा क़लई करके फिरसे कामके लायक बनाई जा सकती हैं और इसलिए नई वस्तुके ख़रीदनेकी अपेक्षा क़लईसे काफ़ी पैसा बच जाता है। अच्छे घरोंमें दरवाज़े और खिड़कियोंपर लगी सिटकनी या हैंडल, पानीके कलकी टोंटी, ताले, इत्यादि कई वस्तुएँ क्रोमियम या निकेलकी क़लई चढ़ाकर चमकीली और अधिक टिकाऊ बनाई जा सकती हैं। मोटरकारों और बाइसिकिलोंके कई पुरज़ोंपर भी ऐसी क़लई की आवश्यकता पड़ती है। औज़ार, बिजलीके लैम्पोंके होल्डर आदि, टेबुल-लैम्प, आभूषण, बटन, बक्सुएँ, और अन्य कई छोटी-मोटी चीज़ोंपर क़लई कर देनेसे उनका सौंदर्य बढ़ जाता है। खानेके बरतनोंपर चाँदीकी क़लई भी अक्सर की जाती है। गुलदस्ते, तश्तरियाँ, क़लमदान आदि फैंसी चीज़ोंपर चाँदी, सोने या कहीं चाँदी कहीं सोनेकी क़लई करके उनकी मनोहरता बढ़ाई जाती है।

इसलिए बिजलीसे क़लईकी बराबर माँग रहती है। यह काम थोड़ी ही पूँजीमें किया जा सकता है। यदि काम खूब अच्छा किया जाय और समझके साथ रोज़गार बढ़ानेकी चेष्टाकी जाय तो शीघ्र ही इससे अच्छी आमदनी हो सकती है।

गत दस पंद्रह वर्षोंमें क्रोमियमकी क़लईका रिवाज बहुत बढ़ गया है। यह शीघ्र बदरंग नहीं होता और इतना कड़ा होता है कि शीघ्र घिसता नहीं। इसपर चमक भी खूब आती है।

क्या-क्या सामान चाहिए—छोटे पैमानेपर काम करनेके लिए बहुत सामानकी आवश्यकता नहीं पड़ती। दो-चार चीनी मिट्टी या पीली (जबलपुरी) मिट्टीके गहरे बरतन या चौकोर टंकियाँ या शीशेके गहरे और चौड़े बरतनोंकी आवश्यकता पड़ेगी। इनमें उचित घोल भरकर उन वस्तुओंको लटकाया जाता है जिनपर क़लई करनी होती है। इनके अभावमें तामचीनीके बड़े-बड़े प्यालोंसे काम चल जायगा। ठंढे घोलोंके लिए काठकी टंकियाँ घरपर बनाई जा सकती हैं (चित्र १)। बिजलीके लिए सबसे अच्छा उपाय तो डायनामो है जिसे इंजनसे या बिजलीसे चलाने पर बिजली उत्पन्न होती है। जिन शहरों में बिजली रहती भी है वहाँ भी डायनामोकी आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि शहरकी बिजली २२० वोल्ट (या ११० वोल्ट) की होती
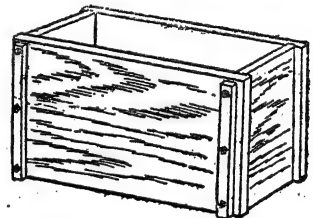
चित्र १—लकड़ीकी टंकी। इसे सागवानका बनाना चाहिए और इसके भीतर पिच पोत देना चाहिए।

है और क़लईके लिए बहुत कम वोल्टकी बिजली चाहिए। फिर शहरकी बिजली डी० सी० या ए० सी० किसी भी मेलकी हो सकती है, परन्तु क़लईके लिए डी० सी० बिजली चाहिए। यदि शहरकी बिजली डी० सी० हो तो रेज़िस्टैंस लगाकर इसका वोल्ट अवश्य कम कर दिया जा सकता है, परंतु तब यह बिजली बहुत मँहगी पड़ती है। उदाहरणतः, निकेलकी कलईमें केवल २ वोल्ट की आवश्यकता पड़ती है। यदि २२० वोल्टको रेज़िस्टैंस की सहायतासे २ वोल्टका कर दिया जाय तो २२० रुपये की बिजली खर्च होनेपर केवल २ रुपयेकी बिजली क़लई करनेमें लगेगी और शेष २१८ रुपयेकी बिजली रेज़िस्टैंसमें मर जायगी। इसलिए उन शहरोंमें जहाँ बिजली है ६ (या ८) वोल्टका डायनामो चाहिए और उसे शहरकी बिजलीके वोल्टके अनुसार २२० या ११० वोल्टको बिजली की मोटर चाहिए। ३० से लेकर ३०० ऐम्पियर तक बिजली देनेवाले डायनामो आसानीसे मिल सकते हैं। आपके लिए कितने ऐम्पियरका डायनामो चाहिए यह इसपर निर्भर है कि आपको कितने सामानपर एक साथ ही क़लई करनी है। डायनामोकी ताक़तके हिसाबसे मोटर भी छोटे-बड़े हॉर्स-पॉवरका चाहिए। संभवतः रोज़गार पीछे बढ़ेगा इसे ध्यानमें रखकर कुछ बड़ी ही मशीनें खरीदनी चाहिए। साधारण रोजगारके लिए ५० ऐम्पियरका डायनामो काफ़ी होगा और इसके लिए १ हॉर्स-पॉवरका मोटर चाहिए। इससे साइकिल और मोटर साइकिलके सब पुरज़ोंपर क़लई की जा सकेगी (हैंडिल-बार और पहियेकी रिमपर या मोटर कारके रेडियेटरपर भी)।

जिस शहरमें बिजली नहीं है वहाँ मिट्टीके तेल वाले इंजनसे डायनामोको चलाना पड़ेगा।

आरंभमें बहुत छोटी मशीनसे काम चल सकता है। इसलिए यदि किसी पुरानी टूटी-फूटी मोटरकारका डायनामो खरीद लिया जाय तो सस्तेमें मिल जायगा। ६ वोल्टका डायनामो अच्छा होगा। खरीदनेके पहले इसकी पूरी जाँच कर लेनी चाहिए। इस्तेमालमें इसपर घराड़ी (पुली) ऐसी नापकी लगानी चाहिए कि इसका आरमेचर उतनी ही तेज़ीसे नाचे जितनी तेज़ीसे यह मोटरकारके २० मील प्रति घंटे चलनेपर नाचता।

डायनामोके अभावमें मोटरकारकी बैटरीसे भी काम चल सकता है, परंतु इसे बार-बार चार्ज कराना पड़ेगा जिसमें बहुत खर्च बैठेगा। फिर, डायनामोके बिना क्रोमियम की क़लई नहीं की जा सकती, क्योंकि इसके लिए बहुत
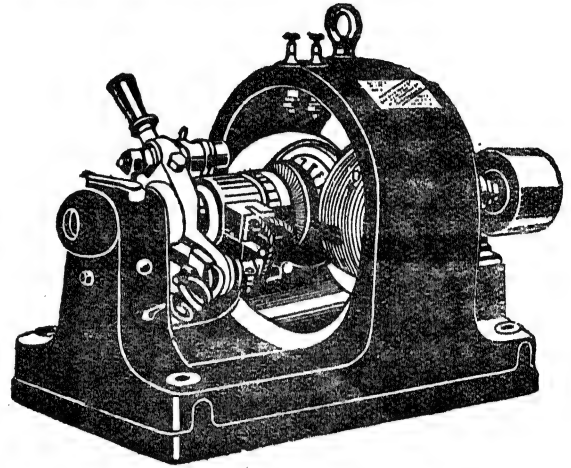
चित्र २—तेलके इंजनसे चलने वाला डायनामो। एलेक्ट्रोप्लेटिंगके लिए ६ वोल्ट और लगभग ५० ऐम्पियरका डायनामो चाहिए।

(वस्तुके प्रति वर्ग फुट सतहके लिए १०० ऐम्पियर तक) बिजली लगती है।

बिजली के वोल्टको घटाने-बढ़ानेके लिए एक रियोस्टैट याने घटने-बढ़ने वाले रेज़िस्टैंसकी आवश्यकता पड़ेगी। दो चार चाकू-नुमा स्विचों (नाइफ़-स्विच) की भी आवश्यकता पड़ेगी। इनमेंसे कुछ एक पोल वाले हों, कुछ डबल पोल वाले। चित्र १६-१७ से पता चल जायगा कि इनको कहाँ-कहाँ लगाना चाहिए। तीन पीतल या ताँबेकी छड़ें भी चाहिए। ये कम-से-कम ½ इंच मोटी हों। ये पोली हों तो कोई हरज नहीं, परंतु ये इतनी कमज़ोर न हों कि साधारण बोझसे लच जायँ। इनसे ही वे चीजें लटकाई जायँगी जिन-पर क़लई की जायगी और ताँबे, निकेल, चाँदी आदिके पत्र भी इन्हींके सहारे लटकाये जायेंगे। इनमेंसे प्रत्येकके एक सिरेमें छड़की लंबाईकी दिशामें छेद चाहिए जिसमें बैटरी या डायनामोसे आया तार डाला जा सके। इससे समकोण बनाता हुआ सिरेसे आध इंच हटकर एक छेद रहे जिसमें

चूड़ी पेरकर पेंच पहना दिया गया हो। इस पेंचके कसने से डायनामोसे आया तार अच्छी तरह बँध जायगा (चित्र १७ देखो।

रबड़ चढ़े (छोटे कामके लिए १२ या १४ नम्बरके) तारसे कनेकशन करना उचित होगा। यदि बैटरीसे बिजली लेनी हो तो तारको बैटरीकी खूँटियोंपर लपेटनेके बदले मज़बूत कमानी वाली क्लिपोंका इस्तेमाल करना चाहिए जो इसी कामके लिए बिकती हैं। ० से १० वोल्ट तक बताने वाला एक वोल्ट-मीटर भी चाहिए। अन्य सामान निम्नांकित हैं। घोलोंको गरम रखनेके लिए अँगीठी या बिजलीका गरम-प्लेट (हॉट-प्लेट) या गैसका स्टोव, या मिट्टीके तेलका स्टोव चाहिए। शायद मिट्टी के तेलके स्टोवमें ही अधिक सुविधा होगी। एक तापमापक (थरमामीटर) भी अवश्य रखना चाहिए। यह ० से २५० डिगरी फ़ारनहाइट तक बता सके। जस्तेकी क़लई की
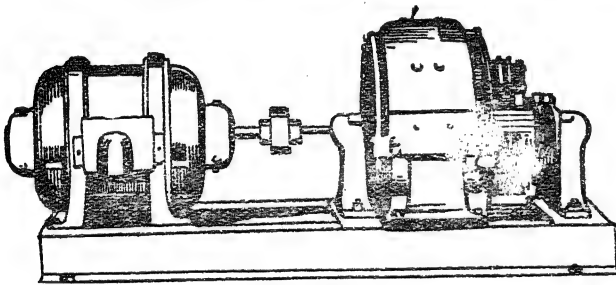
चित्र ३—बिजलीकी मोटरसे चलने वाला डायनामो। दाहिनी ओर डायनामो है, बाईं ओर मोटर। मोटर २२० वोल्टकी (या ११० वोल्टकी, जैसी शहरकी बिजली हो) बिजलीसे चलती है। डायनामोसे ६ वोल्टकी बिजली पैदा होती है। डायनामो और मोटरकी धुरियाँ एक सीधमें हैं और उनके बीच 'कपलिंग' है जिससे मोटर डायनामोको चला सकता है।

हुई चादरकी बनी एक बड़ी बाल्टी या टंकी भी चाहिए जिसमें पानी भरकर उस बरतनको रक्खा जा सके जिसमें असली क़लई वाला घोल रहेगा (देखो चित्र १८)। बाहरी बरतनमें आँच लगानेपर पहले बाहरी बरतनका पानी धीरे-धीरे गरम होता है और तब भीतरी बरतनका घोल गरम होता है। इस प्रकार घोलका तापक्रम अधिक सुगमतासे निश्चित मात्रापर रक्खा जा सकता है।

रासायनिक स्वच्छताकी आवश्यकता—बिजलीसे क़लई करनेमें सफल होनेके लिए यह नितांत आवश्यक है कि वस्तु रासायनिक दृष्टिकोणसे भी पूर्णतया स्वच्छ हो और जब तक क़लई चढ़ न जाय यह बराबर स्वच्छ ही रहे। वस्तुको किसी भी समय हाथसे छू देनेपर, या इसे हवामें छोड़ देनेपर (ऐसा करनेसे हवाके ऑक्सिजनके कारण इसमें मुर्चा लगनेकी क्रिया आरंभ हो जाती है), या असावधानीके कारण वस्तुपर किसी अवांच्छनीय पदार्थ के लग जानेपर अवश्य ही क़लईमें त्रुटियाँ दिखलाई पड़ेंगी। यदि किसी समय वस्तुमें लेशमात्र भी गंदगी लग जाय तो नीचेकी संपूर्ण, या कम-से-कम आवश्यक, क्रियाओंको निःसंकोच दोहराना चाहिए, जिसमें वस्तु फिर पूर्णतया स्वच्छ हो जाय। स्वच्छ करनेके बाद वस्तुको हाथसे न छूना चाहिए और जब तक इसे क़लई करने वाले घोलमें न डाल दिया जाय तब तक इसे स्वच्छ पानीमें डुबाकर रखना चाहिए, परंतु ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि वस्तुको अधिक समय तक पानीमें न रखना पड़े, नहीं तो वहाँ भी थोड़ा बहुत मुरचा लगना आरंभ हो जाता है। सफाई करते समय वस्तुको तार या नरम मुँहकी सँड़सीसे उलटना और पकड़ना चाहिए।

क्रमबद्ध सफ़ाई—क़लई करनेके लिए यदि किसी विशेष क्रमका बराबर पालन किया जाय तो अधिक अच्छा होगा और तब प्रत्येक बार पूर्ण स्वच्छता आ सकेगी। वस्तुपर चाहे किसी भी धातुकी क़लई चढ़ानी हो उसकी सफ़ाई करनेका ढंग वही रहता है।

पहली धुलाई—वस्तुपर तेल और चिकनाहटका नामो निशान भी न रह जाना चाहिए। इसके लिए राख, साबुन और ब्रश (कूँची) से वस्तुको अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। तरह-तरहकी नरम और कड़ी, सूतसे लेकर तार की बनी कूँचियाँ बाज़ारमें बिकती हैं। ये कई आकारकी बनाई जाती हैं क्योंकि टेढ़ी-मेढ़ी वस्तुओंको सदा सीधी ही कूँचीसे साफ़ नहीं किया जा सकता। यदि वस्तुपर लाह (चपड़े) या सेलुलायड या अन्य किसी वस्तुकी वार्निश कभी चढ़ी रही हो तो उस वस्तुके घोलकसे पहले ही

वार्निशको छुड़ा लेना चाहिए । लाह स्पिरिट (मेथिलेटेड स्पिरिट) से छुड़ाया जा सकता है। अन्य वार्निशके लिए उस 'थिनर' का प्रयोग करना चाहिए जो उस वार्निशको पतला करनेके लिए बिकता है, राख और साबुनसे माँजनेके बाद वस्तुको थोड़ा-सा सोडा और कपड़ा धोने वाले किसी अच्छे साबुनके गरम घोलसे ब्रशकी सहायता लेकर धोना चाहिए। इससे सब चिकनाहट दूर हो जायगी। इसके बाद साबुनको धो डालनेके लिए वस्तुको तीन बार स्वच्छ खौलते पानीसे धोना चाहिए। अंतमें वस्तुको बहते हुए ठंढे पानीमें अच्छी तरह धोना चाहिए।

लोहेके लिए तेज़ाब—यदि वस्तु लोहे या इस्पातकी हो तो इस परसे सब मुर्चा और चिप्पड़ छुड़ाना पड़ेगा। इसके लिए वस्तुको तेज़ाबमें डालना चाहिए। १० भाग पानीमें १ भाग (नापके अनुसार, तौलके अनुसार नहीं) सलफ़्यूरिक ऐसिड (गंधकका तेज़ाब) मिलाना चाहिए। पानीमें तेज़ाबको धीरे-धीरे डालना चाहिए और शीशेकी छड़से पानीको चलाते रहना चाहिए। भूलकर भी तेज़ाब में पानी न डालना चाहिए, नहीं तो तेज़ाब उबल पड़ेगा और शायद कोई दुर्घटना हो जायगी। इस घोलमें वस्तुको कुछ सेकंड तक रखना काफ़ी होगा, परन्तु यदि वस्तु कामती (ढाले हुए) लोहे की बनी हो तो उसे कई बार तेज़ाबमें छोड़ना चाहिए और बीच-बीचमें तारकी कड़ी कूँची से ज़ोर-ज़ोर रगड़ना भी चाहिए जिसमें यदि कहीं चिप्पड़ हों तो वे छूट जायँ। प्रत्येक बार कूँचीसे रगड़नेके बाद वस्तुको पानीसे धोकर तेज़ाबमें छोड़ना चाहिए। अन्तमें वस्तुको स्वच्छ पानीसे धो डालना चाहिए।

ताँबे या पीतलके लिए निखार—पीतल और ताँबे की वस्तुओंपर यदि हरा या काला मुर्चा लगा हो तो उनको क्षण भरके लिए निम्न घोलमें डुबाया जाता है—

पानी	४ सेर
नाइट्रिक ऐसिड	८ छटाँक
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	½ छटाँक
सलफ़्यूरिक ऐसिड	१ सेर

सलफ़्यूरिक ऐसिडको धीरे-धीरे ही पानीमें छोड़ना चाहिए (ऊपरका पैरा देखो)। मिश्रणके ठंढा हो जाने पर ही इसे इस्तेमाल करना चाहिए। इसमें वस्तुको क्षण भर ही रखना काफ़ी होगा। यदि अधिक समय तक वस्तु इसमें पड़ी रहेगी तो उसमें गड्ढे पड़ जायँगे जिनका मिटाना असम्भव होगा। तेज़ाबसे निकालते ही वस्तुओंको गरम पानीसे तुरन्त धोना चाहिए और फिर ठंढे पानीसे अच्छी तरह धोना चाहिए।

ऊपरके कामको खुले मैदानमें करना चाहिए, क्योंकि तेज़ाबसे जो धुआँ निकलता है वह हानिकारक है। यदि कोठरीके भीतर यह काम करना पड़े तो वायुके आवागमन पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। आवश्यकता हो तो बिजली का पंखा ऐसी स्थितिमें लगाना चाहिए कि वह दूषित वायु को तुरन्त खींचकर बाहर फेंक दे। यदि गंदा पानी बहनेके लिए लोहेका पाइप लगा हो तो पानीके कलको भरपूर खोल कर उपरोक्त क्रियाएँ करनी चाहिए जिसमें जो कुछ भी तेज़ाब गिरे वह तुरन्त पानीमें मिल जाय और बह जाय।
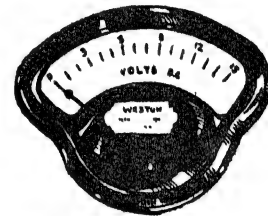
चित्र ४—वोल्ट-मीटर।
इससे पता चलता है कि कितने वोल्टकी बिजली क़लई वाली टंकीमें जा रही है। ० से १० वोल्ट तक बताने वाला वोल्ट-मीटर एलेक्ट्रोप्लेटिंगके लिए ठीक होगा।

टाँका लगी वस्तुओंको साफ़ करना—यदि वस्तुमें कहीं राँगे या पीतलसे जोड़ी गई संधियाँ होंगी तो संभवतः वहाँ कुछ कड़ी-कड़ी चिप्पियाँ होंगी या वहाँ सोहागा या रजन जमा होगा। इन सबको हटानेके लिए निम्न घोलका प्रयोग किया जाता है।

पानी	५ सेर
पौटैसियम बाइक्रोमेट	१½ छटाँक
सलफ़्यूरिक ऐसिड	८ छटाँक

इससे पहले जोड़को साफ़ करके तब उपरोक्त निखारने वाले घोलका प्रयोग करना चाहिए।

खौलते पानीसे धोना—यह आवश्यक है कि प्रत्येक रासायनिक घोलसे धोनेके बाद वस्तुको खौलते या प्रायः खौलते पानीसे धोया जाय और तब फ़िर उसे अच्छी तरह ठंढे पानीसे धोया जाय। बिना ऐसा किये आगामी घोलका प्रयोग नहीं करना चाहिए। खौलते पानीसे धोनेका मतलब यह है कि वह हाइड्रोजन गैस जो तेज़ाबमें धातुके पड़नेके कारण उत्पन्न होती है और धातुमें चिपकी रह जाती है निकल जाय। यदि यह हाइड्रोजन न निकाला जायगा तो
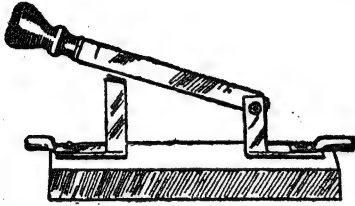
चित्र ५—चाकूनुमा स्विच।
यह एकहरा (सिंगिल पोल) स्विच है। दोहरे (डबल पोल) स्विचसे डायनामो या बैटरीके दोनों तारोंका कनेकशन एक साथ कटता है।

वस्तु अच्छी तरह स्वच्छ न हो सकेगी या क़लई अच्छी तरह न चिपकेगी। खौलते पानीसे तेज़ाब भी अच्छी तरह निकल जाता है। यदि कहीं भी नाम मात्र तेज़ाब लगा रह जायगा तो वहाँ धातु धीरे-धीरे कट जायगी और इसलिए वहाँकी कलई उखड़ जायगी।

ऐल्युमिनियमको स्वच्छ करना—ऐल्युमिनियम बहुत नरम होता है और यदि इसको उन रासायनिक वस्तुओंसे स्वच्छ करनेकी चेष्टा की जाय जिनसे अन्य वस्तुएँ स्वच्छ की जाती हैं तो यह कट जाता है। इसलिए ऐल्युमिनियमसे चिकनाहट दूर करनेके लिए निम्न घोलका प्रयोग करना चाहिए।

पानी	५ सेर
सोडा (सोडियम कारबोनेट)	१ छटाँक
ट्राइसोडियम फ़ॉसफ़ेट	१ छटाँक
सोडियम क्रोमेट	$\frac{1}{8}$ छटाँक

इस घोलको १८० डिगरी फ़ारनहाइट तक गरम करके इसमें वस्तुको छोड़ना चाहिए। वस्तुके पड़नेपर कुछ गैस निकलने लगती है। इसमें वस्तुको केवल तीन या चार मिनट तक ही रखना चाहिए। तब वस्तुको धोकर इसे निम्न तेज़ाबी घोलमें डुबाया जाता है।

आधा पानी मिला हाइड्रोफ़्लोरिक ऐसिड	१ भाग
पानी	६ "

हाइड्रोफ़्लोरिक ऐसिड शरीरपर न पड़े, नहीं तो ऐसे घाव हो जाते हैं जो शीघ्र अच्छे नहीं होते। इसके अतिरिक्त इस घोलको शीशे या चीनी मिट्टीके बरतनमें नहीं रखना चाहिए, क्योंकि यह शीशेको काट डालता है। इसे सीसा (धातु) से मढ़े लकड़ीके या रबड़ (गटा पर्चा) के बरतनोंमें रखना चाहिए, क्योंकि यह सीसा या रबड़को नहीं काट सकता। यदि वस्तुपर निकेलकी क़लई करनी हो तो इस घोलमें वस्तुको १५ या २० सेकंड तकके लिए डुबाया जाता है। परन्तु यदि वस्तुपर जस्तेकी क़लई करनी हो तो वस्तुको इस घोलमें एक मिनट तक रखना चाहिए। इस घोलका उद्देश्य यह है कि सोडा पड़े पहले घोलका सब अंश मर जाय, चिकनाहटका नाम न रहे और ऐल्युमिनियम परसे ऐल्युमिनियम ऑक्साइड (ऐल्युमिनियमका मुरचा) बिलकुल कट जाय। इसके बाद वस्तुको ठंढे पानीसे अच्छी तरह धोना चाहिए और फिर जब तक इसे क़लई करने वाले घोलमें न डाला जाय स्वच्छ जलके भीतर लटका कर रखना चाहिए।

मशीनपर पॉलिश करना—यद्यपि यह स्वच्छताके लिए नहीं किया जाता, तो भी अच्छा होगा यदि प्रत्येक वस्तुको क़लई करनेके पहले बफ़िङ्ग-व्हील (पॉलिश करनेकी मशीन) से चमका लिया जाय (चित्र १०)। इससे वस्तुकी सतह चिकनी और चमकदार हो जाती है और खरोंच मिट जाते हैं। यदि बफ़िङ्ग-व्हीलका प्रयोग न किया जाय और खरोंच आदिको रहने दिया जाय तो क़लई करनेपर भी खरोंच आदि बने रहेंगे और सतह चिकनी और चमकदार न होगी। इसलिए वस्तु सुन्दर न लगेगी। ढाली हुई वस्तुओंपर केवल बफ़िंग करना अकसर काफ़ी नहीं होता। उनपर बफ़िंग करनेके पहले उनको सान रखनेके चक्के (ग्राइंडिंग व्हील) से आवश्यकतानुसार घिसकर फालतू धातु निकाल दी जाती है और इस प्रकार उसकी सतह

समथल कर ली जाती है। इसके बाद मोटे और तब बारीक दानोंकी कड़ी वस्तुओंको सहायतासे (नीचे देखो) उनपर बफ़िङ्ग की जाती है और पॉलिश लायी जाती है। सानकी मशीन यदि बिजलीकी मोटर या इंजनसे चले तो अच्छा है क्योंकि पैरसे चलने वाली मशीनोंमें इतना बल नहीं रहता कि घिसनेका काम उनसे अच्छी तरह हो सके।

बफ़िंगकी मशीनोंमें नरम चमड़े या कपड़े की कई तहोंसे बने हुए चक्केको बहुत तेज़ीसे (मिनटमें १५०० से लेकर ३००० बार तक) नचाया जाता है। कपड़ेपर एमरी पाउडर या अन्य कोई करकराती वस्तु लगा दी जाती है। चमड़ा चढ़े ठोस बफ़िंग व्हील भी बिकते हैं, परन्तु छोटे कामोंके लिए उनकी आवश्यकता न पड़ेगी। नाचते हुए चक्केपर वस्तुको धीरेसे दबानेसे थोड़ी ही देरमें स्पर्श स्थान चिकना और चमकदार हो जाता है और इस प्रकार वस्तुपर सर्वत्र पॉलिश की जा सकती है। यह काम बहुत सरल है, तो भी बिना यह जाने कि किस बारीकी और किस पदार्थका चक्केके साथ प्रयोग करना सर्वोत्तम होगा अच्छी पॉलिश नहीं की जा सकती है। अच्छी और शीघ्र पॉलिश करनेका गुर यह है कि पहले मोटे दानेके चूर्णोंसे काम आरंभ किया जाय, फिर उत्तरोत्तर बारीक चूर्णोंसे। अंत वाला चूर्ण इतना बारीक और नरम हो कि वस्तु दर्पणकी तरह चमकने लगे। साधारण वस्तुओंको दो या तीन तरहके चूर्णोंसे पॉलिश करना काफ़ी होता है और कुछ कामको तो केवल खूब बारीक चूर्णसे ही पॉलिश कर देना काफ़ी होता है। यदि पॉलिश करनेवाली वस्तुओंको बारीकीके हिसाबसे लिखा जाय (सबसे मोटी वस्तु पहले और सबसे बारीक वस्तु अंतमें रहें) तो निम्न सूची बनेगी :—एमरी (नंबर १२० मोटा से लेकर नंबर १५० अत्यन्त बारीक तक), ट्रिपोली, प्यूमिस, क्रोकस, चूना (इसमें दरदरे दाने न रहें) और सोनारोंका लाल पाउडर (रूज़ह)। ये पदार्थ बुकनीके रूपमें भी मिलते हैं और उनकी बट्टियां भी बिकती हैं। बट्टी बनानेके लिए उनमें कोई उचित चर्बी मिला दी जाती है (ऐसी जो पीछे आसानीसे धो डाली जा सके)। जब बुकनीका इस्तेमाल किया जाता है तब बफ़िंग-व्हीलकी प्रत्येक तहपर बढ़िया सरेस लगाकर उसपर बुकनी छिड़क दी जाती है और सुखा ली जाती है, परन्तु बट्टियाँ अधिक सुविधाजनक होती है, क्योंकि नाचते हुए चक्केको बट्टीसे छू देनेसे ही बट्टीका कुछ अंश चक्केके कपड़ोंमें चिपक जाता है।

बफ़िंग व्हीलपर पॉलिश बहुत सँभाल कर करनी चाहिए (कहीं गड्ढा न हो जाय, कहीं टूट न जाय)। सदा स्मरण रखना चाहिए कि जैसी अच्छी पॉलिश वस्तु पर इस समय लाई जायगी वैसी ही पॉलिश क़लई करनेके बाद भी चढ़ेगी—अधिक अच्छी पॉलिश किसी प्रकार भी न आ सकेगी।
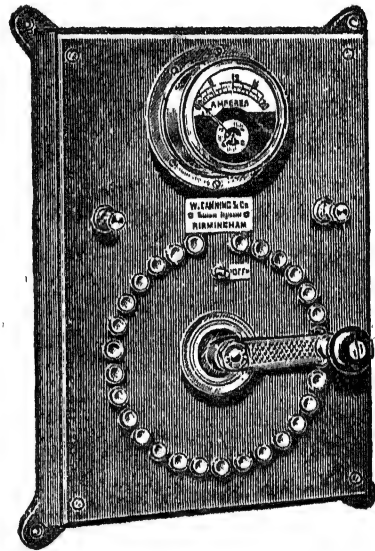
चित्र ६—रियोस्टैट या रेज़िस्टैंस बोर्ड। हैंडिलको घुमाकर भिन्न-भिन्न स्थितियोंमें करनेसे रेज़िस्टैंस घटाया-बढ़ाया जा सकता है और इस प्रकार क़लईकी टंकीमें जाने वाली बिजलीका वोल्ट इच्छानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है (ठीक उसी प्रकार जैसे पंखेके रेगुलेटरसे पंखे को तेज या धीमा किया जा सकता है)। चित्रमें दिखलाये गये यंत्रमें ऐम्पियर-मीटर भी लगा है, परंतु यदि इसके बदले वोल्ट-मीटर लगाया जाय तो अधिक सुविधा होगी।

बफ़िंग व्हीलको बफ़, मॉप, बॉब या डॉली भी कहते हैं।

पॉलिश करनेकी चर्बीको छुड़ाना—जब पॉलिश करनेका काम इच्छानुसार संतोष-जनक हो जाय तब वस्तु को फिर एक बार स्वच्छ करने वाले किसी घोलमें डुबाना पड़ेगा। साधारणतः वस्तुको निम्न नुसखेसे बने खौलते घोलमें साफ किया जाता है—

कॉस्टिक सोडा (या पोटाश)	१ पाव
पानी	५ सेर

परन्तु यदि बिजलीकी सहायता ली जाय तो काम अधिक अच्छा साफ होगा। इसके लिए चित्र १८ में दिखलाई रीतिसे वस्तुको घोलमें लटकाना चाहिए। बरतन

चित्र ७—तारकी कूँची (ब्रश)। इससे उस वस्तुको जिसपर क़लई की जाती है साफ़ किया और चमकाया जाता है।

चीनी मिट्टी या पीली मिट्टीका हो, या किसी पुरानी बैटरीकी बाहरी (कड़े रबड़की) टंकीका प्रयोग किया जा सकता है। इस बरतनके ऊपर दो छड़ रख दिये जाते हैं। एकसे वस्तुको लटकाया जाता है। दूसरेसे सीसा (धातु) या लोहेको चादर, जैसा चित्र १८से स्पष्ट है। बिजलीका कनेकशन दिखलाई गई रीतिसे करना चाहिए। बीचमें एक रियोस्टैट (घटने-बढ़ने वाला रेज़िस्टैंस) अवश्य रहना चाहिए जिसमें बिजलीकी मात्रा न्यूनाधिक की जा सके। स्विच डबल पोल डबल थ्रो और चाकू-नुमा हो। बिजली चाहे ६ वोल्टकी बैटरीसे ली जाय, चाहे ६ (या कुछ अधिक) वोल्टके डायनामोसे। रियोस्टैटका रेज़िस्टैंस इतना कम रक्खा जाय कि बिजली चालू करनेपर खूब ज़ोरसे बुलबुले उठें। किस घोलका प्रयोग किया जाय यह केवल इसी बातपर निर्भर है कि वस्तु किस धातुकी बनी है। निम्न नुसखे भिन्न-भिन्न धातुओंके लिए ठीक होंगे; परन्तु घोलके सब अवयव अच्छी तरह घुल जायँ और इस्तेमालके समय घोल खूब गरम कर लिये जायँ।

लोहे और इस्पातके लिए—

कॉस्टिक पोटैश	१ छटाँक
साबुन	४ छटाँक
पानी	५ सेर

पीतल और उसी प्रकारकी धातुओंके लिए—

सोडा (कपड़ा धोनेवा)	२ छटाँक
ट्राइसोडियम फ़ॉसफ़ेट	१ "
कपड़ा धोनेका बढ़िया साबुन	२ "
पानी	५ सेर

जस्तेके लिए—

सोडा कपड़ा धोनेका	$1\frac{1}{2}$ छटाँक
खानेका सोडा (सोडियम बाइ कारबोनेट)	$\frac{1}{2}$ "
पानी	५ सेर

वस्तु और सीसा या धातुके पत्रको गरम घोलमें लटकानेके बाद बिजलीके कनेकशन इस प्रकार किये जाते हैं और रियोस्टैट इस प्रकार साधा जाता है कि स्विच दबानेपर वस्तुपरसे बुलबुले ज़ोरसे उठें। स्विचका हैंडिल दूसरी ओर फेंकनेसे ही बिजली उल्टी दिशामें चलने लगती है। प्रति दो-चार सेकंडमें बिजलीकी दिशाको बदलते रहना चाहिए। वस्तुको केवल दो-तीन मिनट तक ही इस प्रकार स्वच्छ किया जाता है। यदि वस्तुमें कहींपर टाँका लगा हो तो वस्तुको इससे कम समय तक ही साफ करना चाहिए, नहीं तो टाँकेके घुल जानेसे जोड़के खुल जानेका भय रहता है।

वस्तुको धोने वाले घोलसे निकालते ही उसे पहले खौलते पानीसे और फिर ठंढे पानीसे अच्छी तरह धोया जाता है। यदि, धोनेके बाद, पानी वस्तुकी सतहमें बूँद-बूँद होकर इकट्ठा हो और सफ़ाईसे बह न जाय तो समझना चाहिए कि वस्तु अभी अच्छी तरह साफ़ नहीं हुई और इसलिए उसे फिर उपरोक्त रीतिसे साफ़ करना चाहिए, परंतु अब की बार पहले बारीक चूनेसे माँजकर वस्तुको उपरोक्त घोलमें डालना (और बिजली चलाना) चाहिए। जब इस प्रकार दुबारा वस्तु साफ़ हो जाय और पानी उसपर बूँद-बूँद होकर न इकट्ठा हो तो उसको ऊपर बतलाये गये निखारनेवाले घोलमें या तेज़ाबके घोलमें (जैसी धातु हो) एक बार फिर ६ या भरके लिए डाल

कर खौलाना और ठंडे पानीसे धोना चाहिए और वस्तुको स्वच्छ पानीमें तब तक लटकाकर रखना चाहिए (जिसमें इसमें हवा न लगने पाये) जब तक इसको क़लई करने वाले घोलमें डालनेका अवसर न मिले।

आवश्यक रासायनिक पदार्थ—आवश्यक रासायनिक पदार्थ साधारणतः दवाखानोंमें मिल जायँगे। वहाँ जो पदार्थ न मिल सकें उन्हें किसी वैज्ञानिक सामान बेचने वालेकी दूकानसे खरीदना चाहिए। कुछ दूकानें कलकत्ते और बंबईमें ऐसी हैं जहाँसे बिजली द्वारा क़लई करनेका सब सामान (और डायनामो वगैरह भी) मिल सकता है (उदाहरणतः मेसर्स टी० ई० टॉमसन ऐण्ड कंपनी, पो० ऑ० बॉक्स १६३, कलकत्ता)। सुविधाके लिए उन वस्तुओंका नाम यहाँ गिना दिया जाता है जिनकी आवश्यकता वस्तुओंको साफ करनेके लिए साधारणतः पड़ती है।

कॉस्टिक सोडा या कॉस्टिक पोटैश
कपड़ा धोने वाला साबुन
पेट्रोल
ट्राइसोडियम फॉसफ़ेट
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड या नमकका तेज़ाब
नाइट्रिक ऐसिड
सोडियम बाइक्रोमेट
हाइड्रोफ़्लोरिक ऐसिड
सल्फ्यूरिक ऐसिड
पैर, मोटर या इंजनसे संचालित बफ़र
दो तीन बफ़िंग व्हील
एमरीकी बफ़िंग वाली टिकियाएँ (नंबर १२० से १५० तक)
चूना और रूइकी टिकियाएँ

रासायनिक पदार्थोंको काममें लानेमें सावधानी—बिजलीसे क़लई करनेमें जो रासायनिक पदार्थ काममें आते हैं उनमें से कई एक अति तीव्र विष हैं। इसलिए बड़ी सावधानीसे काम करना चाहिए। उन्हें हमेशा ताला-कुञ्जी में बंद रखना चाहिए जिसमें लड़के या अनजान व्यक्ति उन्हें न पा सकें। कई एक घोलोंमें साइनाइड पड़ते हैं और सभी साइनाइड अति तीव्र विष हैं (दो रत्ती खानेसे मृत्यु हो जायगी)। तो भी उचित सावधानीसे काम करनेपर दुर्घटनाका कोई डर नहीं रहता। आखिर बहुत
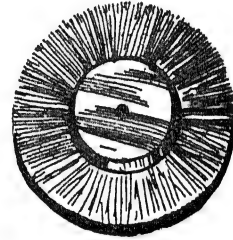
चित्र ८—तारका गोल ब्रश।
इस ब्रशको धुरीपर चढ़ाकर तेज़ीसे नचाया जाता है (आगामी चित्रोंको देखो) और वस्तुको इसीसे छुआकर चमकीला किया जाता है।

से लोग इनसे प्रतिदिन काम करते ही हैं। यदि हाथ कहीं कटा हो तो इन पदार्थोंको हाथसे न छूना चाहिए नहीं तो ख़ून तक पहुँच जानेपर मृत्यु हो सकती है। उचित तो यही है कि इनको हाथसे कभी न छुआ जाय, या हाथपर रबड़का दस्ताना पहन लिया जाय। स्मरण रखना चाहिए कि ओंठपर या आँखमें पड़नेसे भी ये विष अपना काम कर दिखाते हैं और इनसे जो गैस निकलती है वह भी बड़ी विषैली होती है। इसलिए ऐसे घोलोंको जिनमें साइनाइड पड़ते हैं खुले मैदानमें या सब दरवाज़े खिड़की खोलकर बनाना चाहिए। जिस कोठरीमें खुले बरतनोंमें ऐसे घोल रक्खे हों उनके सब दरवाज़े और खिड़कियाँ बराबर खुली रहें (आमने-सामनेकी दीवारोंमें, विशेषकर पूरब और पच्छिमकी दीवारोंमें, खिड़कियाँ अवश्य हों जिसमें एक ओरसे हवा बराबर आती और दूसरी ओरसे निकलती रहे)। साइनाइड वाले घोलों में तेज़ाबका छींटा भूलसे भी न पड़ने पावे, क्योंकि तेज़ाब पड़नेसे हाइड्रोसाइनिक ऐसिड गैस निकलती है जो अत्यंत तीव्र विष है।

क्रोमिक, सलफ़्यूरिक, नाइट्रिक, हाइड्रोक्लोरिक और हाइड्रोफ़्लोरिक ये सभी तेज़ाब यदि त्वचापर पड़ेंगे तो घाव हो जायगा। यदि वे कभी हाथपर पड़ जावें

तो बहते पानीमें (अर्थात् खुले कलके नीचे या घड़ेसे पानी उँड़ेलकर) तुरंत अच्छी तरह धो डालना चाहिए। सलफ़्यूरिक ऐसिडमें, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है कभी भी पानी न मिलाना चाहिए। पानीमें ऐसिड धीरे-धीरे डालना चाहिए। इस कामके लिए पीली मिट्टीके बरतनोंका प्रयोग करना अच्छा है। शीशेके बरतन कभी-कभी गरमीके कारण फूट जाते हैं और सब तेज़ाब फैल जाता है।
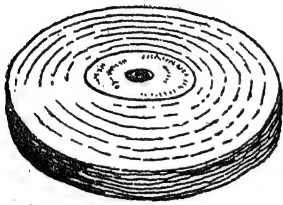
चित्र १—बफ़िंग-व्हील या मॉप।
यह कपड़े या नरम चमड़ेकी कई तहोंसे बना रहता है और इसको भी खूब तेज़ीसे नचाकर पालिश करनेके लिए इस्तेमाल किया जाता है।

तेज़ाबको हमेशा शीशेके डट्टे लगे बोतलोंमें और ऐसी जगह रखना चाहिए जहाँ ठोकर लगने या लुढ़कनेका डर न रहे। तेज़ाब और अन्य रासायनिक पदार्थोंके लगनेसे बोतलोंपर की चिप्पियाँ (अर्थात् लेबुल) कट जाते हैं या उन परके अक्षर उड़ जाते हैं, इसलिए पीछे उनका पहचानना कठिन हो जाता है। इस असुविधासे बचनेके लिए सब चिप्पियोंपर गरम मोम पोत देना चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तेज़ाबसे कपड़ा भी कट जाता है।

ताँबेकी क़लई

बिजली द्वारा ताँबेकी क़लई करनेके लिए निम्न घोल का प्रयोग किया जाता है—

पानी	१० सेर
सोडियम कारबोनेट	१ छटाँक
सोडियम साइनाइड (विष)	३½ छटाँक
कॉपर साइनाइड (विष)	३ छटाँक
हाइपो	½ छटाँक

सोडियम कारबोनेटको पहले पानीमें घोल डालना चाहिए। तब सोडियम साइनाइडको डालकर लकड़ी से चलाना चाहिए। जब यह पूर्णतया घुल जाय तो थोड़ा सा इस घोलको खरलमें लेकर उसमें कॉपर साइनाइड डाल कर लकड़ीके बट्टेसे घोंटना चाहिए। घोल केवल इतना ही लिया जाय कि कॉपर साइनाइड लेपके समान गाढ़ा रहे। इसे अब शेष घोलमें डालकर लकड़ीसे इतना चलाना चाहिए कि कुल घुल जाय। अंतमें हाइपो डालकर लकड़ीसे चला दिया जाता है। हाइपो फ़ोटोग्राफ़ीके सामान बेचने वालोंके यहाँ मिलेगा। सस्ती चीज़ है। इस घोलको ठंढा ही इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए स्टोवकी आवश्यकता न पड़ेगी।

क़लई चढ़ानेकी क्रिया—यदि एक हौज़ सीमेंटका बनवा लिया जाय जिसके पेंदेमें नल लगाकर नलको बाहर निकाल दिया जाय तो सुविधा होगी, क्योंकि तब सब काम इसी हौज़में किया जा सकता है और जो कुछ भी घोल आदि गिरेगा उसपर पानी छोड़ देनेसे वह तुरन्त बह जायगा। यदि ऐसे हौज़का प्रयोग किया जाय तो उसपर काठकी चौकी रखकर और चौकीपर घोल वाली टंकीको रखकर क़लई करनी चाहिए जिसमें बहुत झुकना न पड़े। पानीका कल भी इसी हौज़के भीतर एक कोनेमें लगा रहे।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है चीनी या पीली मिट्टी या शीशेकी टंकी या बरतनमें घोल रखकर क़लई की जा सकती है, परन्तु इनके अभावमें लकड़ीकी टंकीमें भी काम किया जा सकता है क्योंकि घोल गरम करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु टंकीके भीतरी भागको अच्छी तरह पिघले 'डामर' से रंग देना चाहिए। 'डामर' वही वस्तु है जिसे पिघलाकर सड़कोंपर डाला जाता है। अँग्रेजीमें इसे 'पिच' या 'टार' (अलकतरा) कहते हैं। इस प्रकार रंग देनेसे लकड़ी जल-अभेद्य हो जाती है और उसको तेज़ाबसे कोई हानि नहीं पहुँचती। (यदि इस प्रकारकी कई टंकियाँ बना ली जायँ तो सुविधा होगी क्योंकि तब प्रत्येक धातुसे क़लई करने वाले घोल अलग-अलग टंकियोंमें पड़े रहने दिये जा सकते हैं और बार-बार टंकियों को खाली करना और धोना न पड़ेगा। फिर जब एक ही टंकीमें कभी कोई कभी कोई घोल रक्खा जाता है तो पूर्ण

स्वच्छता न हो पानेके कारण एक घोलका कुछ अंश दूसरेमें चला ही जाता है जिससे हानि होती है, परन्तु यदि प्रत्येक घोलके लिए अलग टंकीका प्रबन्ध न हो सके तो टंकीसे निकालनेपर घोलोंको बोतलोंमें रखना चाहिए। यदि सफाईसे काम किया जाय तो क़लई वाले घोल बहुत दिन चलते हैं। वस्तुओंके साफ़ करने वाले घोलोंको रखनेके लिए बोतलोंके बदले पीली मिट्टीके दो तीन बड़े-बड़े बरतन भी चाहिये।)
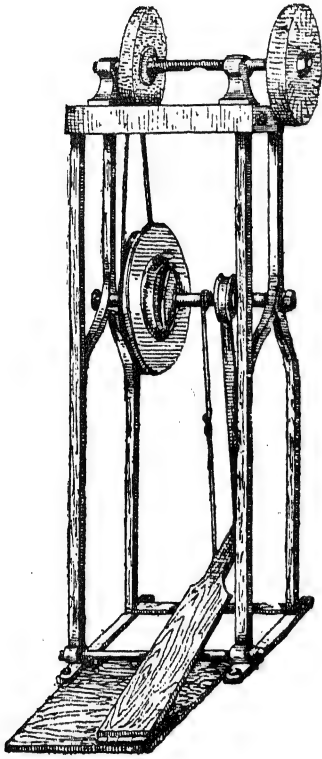
चित्र १०—पैरसे चलने वाला बफ़िंग व्हील। ऐसा यंत्र आसानीसे बनवा लिया जा सकता है. परंतु यदि अधिक काम करना रहे तो मोटर या इंजनसे चलने वाला यंत्र लेना चाहिए (अगला चित्र देखो)।

रियोस्टैटके लिए किसी पुरानी बैटरीका कड़े रबड़ वाला बरतन (या काठका बक्स जिसके भीतरी भागमें पिघला डामर अच्छी तरह पोत दिया गया हो) काम दे देगा। इस बरतनको साधारण नमकके गाढ़े घोलसे करीब तीन चौथाई भर देना चाहिए। फिर इसमें टीन या अन्य धातुके
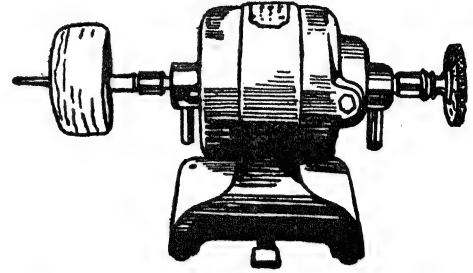
चित्र ११—मोटरसे चलने वाला बफ़िंग व्हील। बाईं ओर बफ़िंग-व्हील (पॉलिशिंग व्हील, या मॉप) है। दाहिनी ओर स्कैच-ब्रश (तारका ब्रश) है। ये पेंचपर हैं और बदले जा सकते हैं। मोटरको प्रति मिनट १५०० से ३००० बार नाचना चाहिए।

दो बड़े और चौकोर टुकड़ोंको लटका देना चाहिए। जब चित्र १६ में दिखलाये गये रियोस्टैटके बदले इन टीनके
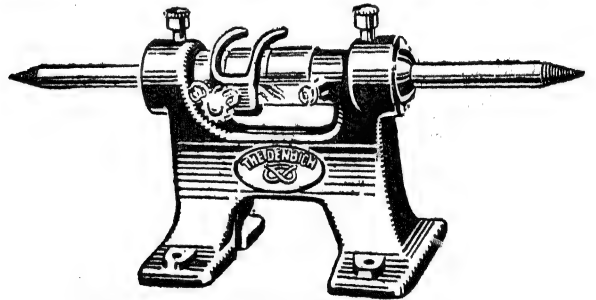
चित्र १२—इंजनसे चलनेवाला धुरी। इसपर तरह-तरहके बफ़िंग-व्हील आदि कसे जा सकते हैं।

टुकड़ोंमें तार कस दिए जायँगे तब बिजलीकी मात्रा इन टीनोंको समीप या दूर करनेसे इच्छानुसार बढ़ाई या घटाई जा सकेगी। यदि टीनके टुकड़ोंको भरपूर दूर कर देने पर भी आवश्यकतासे अधिक बिजली आती हो तो नमकके घोलको कम कर देना चाहिये।

चित्र १७ में दिखलाई गई रीतिसे सब कनेकशन कर के विशुद्ध ताँबेके दो पत्रोंको अगल-बगल वाली दो छड़ोंसे

लटका दो। इनको ऐनोड कहते हैं। स्विच दबाने पर इन ऐनोडों से ताँबा निकल कर वस्तु पर धीरे-धीरे चढ़ जाता
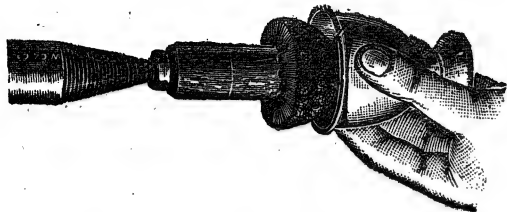
चित्र १३—कटोरीके भीतर पॉलिश।
तरह-तरहके बरतनोंपर पॉलिश करनेके लिए विशेष-विशेष आकारके ब्रश बनते हैं।

है। इसके बाद ऐनोड वाले बरतनमें उपरोक्त रीतिसे बनाया कॉपर और सोडियम साइनाइड वाला घोल डालना
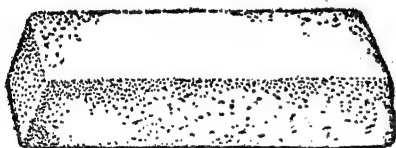
चित्र १४—रूज़हकी टिकिया।
रूज़ह, चूना, ट्रिपोली आदि पॉलिश करने वाले पाउडरोंकी टिकियाँ बिकती हैं इनको बफ़िंग-व्हीलपर लगा लिया जाता है।

चाहिये। तब रियोस्टैटका रेज़िस्टैंस भरपूर बढ़ा देना चाहिये (या यदि नमकका पानी वाला रियोस्टैट हो तो टीनके

चित्र १५—क़लई किए बरतनोंपर घोंटाई करनेका यंत्र-
चित्रमें दिखलाया यंत्र इस्पातका बना है। इस्पातके बदले अक़ीक़ और ऐगेट पत्थरोंका भी प्रयोग किया जाता है।

टुकड़ोंको भरपूर दूर कर देना चाहिए। तब वस्तुको (जो पहले बतलाई गई- रीतिसे स्वच्छ करके पानीमें लटकाया हुआ है) पानीसे निकाल कर एक या दो नंगे (बिना रबड़ चढ़े) ताँबेके तारसे बाँध दो और इन तारोंके दूसरे सिरोंको ताँबेकी उस छड़में लपेट दो या पेंचसे कस दो। जो बरतन पर बीचमें रक्खी जायगी। इसका उद्देश्य यह है कि छड़ और वस्तुके बीच बिजलीका कनेकशन पूरा हो जाय। (अन्य धातुओंसे क़लई करनेमें भी वस्तुको ताँबेके तारसे ही लटकाया जाता है।) ये तार बहुत पतले न हों। आवश्यकतानुसार ८ नम्बरसे लेकर १८ नम्बर तकका तार
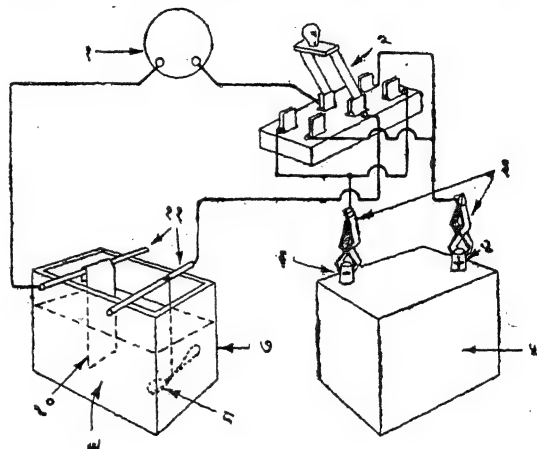
चित्र १६—क़लई करनेके पहले वस्तुकी सफाई (बिजलीसे)।

१—रियोस्टैट, २—डबल पोल डबल थ्रो स्विच। ३—बैटरी स्प्रिंग क्लिप, ४—पॉज़िटिव टर्मिनल, ५— ६—वोल्टकी बैटरी, ७—शीशेकी टंकी, ८- वस्तु जिसपर कलई करनी है। ९—क़लई साफ करने वाला घोल। १०—सीसा (धातु), ११—पीतल या ताँबेकी छड़ें।

प्रयोग किया जा सकता है।) अब स्विच दबाकर पहले बिजली चालू कर लो और तब छड़ को हाथमें पकड़ कर धीरेसे वस्तुको घोलके भीतर लटका दो। तुरन्त ही रियोस्टैट के चल भागको इस प्रकार हटाओ-बढ़ाओ कि वोल्ट मीटरमें सुई ४ वोल्ट पर आ जाय। यदि वस्तु पर कहीं बुलबुले चिपकें हो तो वस्तुको हिला कर बुलबुलोंको हटा दो। आधे घंटेमें ताँबेकी काफ़ी मोटी तह वस्तु पर चढ़ जायगी। जब क़लई हो रहे हो तब, वस्तुको घोलसे बिना बाहर निकाले ही उसके लटकाने वाले तारोंको कुछ हटा बढ़ा दो

जिसमें सब जगह बराबर क़लई हो। बहुत छोटी वस्तुओं को तारसे अलग-अलग लटकानेके बदले उनको तारकी चलनीमें रख कर लटकाया जाता है, परन्तु तब अक्सर इस चलनीको इस प्रकार हिलाना चाहिये कि उसमें रक्खी वस्तुयें उलट-पलट कर नवीन स्थितियोंमें आती रहे।
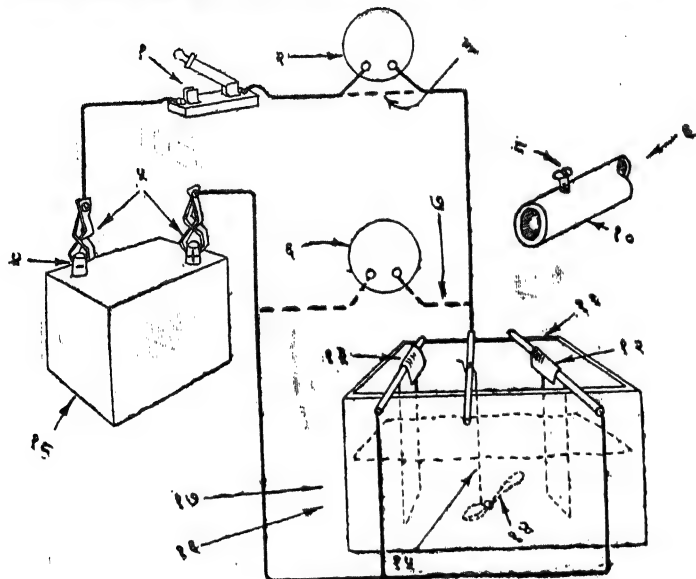
चित्र १७—बिजलीसे क़लई करनेके लिए कनेकशन। १—स्विच, २—रियोस्टैट, ३—विन्दु मय रेखासे दिखलाया गया है कि रियोस्टैट न लगाने पर किस प्रकार तार लगाना चाहिए। ४—नेगेटिव टर्मिनल, ५—बैटरी स्प्रिंग-क्लिप, ६—वोल्ट-मीटर, ७—विन्दु मय रेखासे दिखलाया गया है कि यदि वोल्टमीटर लगाया जाय तो कनेकशन किस प्रकार करना चाहिए। ८—बैटरीसे आये तारको कसनेके लिए पेंच। ९—वस्तुको लटकाने वाली पीतल ताँबेके छड़ोंके एक सिरेका प्रवर्द्धित चित्र। १०—छड़। ११—कलई करनेकी टंकी। १२—एनोड। १३—एनोड। १४—वस्तु। १५—वस्तुको लटकानेको ताँबेका तार। १६ - १८—बैटरी।

क़लई हो जाने पर वस्तुको घोलसे निकाल लो और और उसे तुरन्त बहते पानीमें अच्छी तरह धोओ। यह बहुत आवश्यक है। साइनाइडका लेश मात्र भी वस्तुमें न लगा रह जाय।

यदि इसी ताँबे पर चाँदी, सोने, निकेल या क्रोमियम आदिकी क़लई करनी हो तो धोनेके बाद तुरन्त वस्तुको स्वच्छ पानीमें लटका कर रख देना चाहिये और जब तक दूसरी क़लईके घोलमें यह न डाला जाय जब तक वस्तुको यों ही पानीमें पड़ा रहने देना चाहिए।

निकेलकी क़लई

लोहा, इस्पात और लोहेके मेलसे बनी धातुओंकी वस्तुओं पर सीधे निकेल (निकल) की क़लई करनेकी चेष्टा न करनी चाहिए। उन पर पहले ताँबेकी क़लई न करनी चाहिए। (ऊपर देखो)। अकसर ताँबेकी क़लईको तारकी कूँचीसे रगड़ते हैं और तब उसे घोंटते भी हैं जिससे इसमें अच्छी चमक आ जाय और यदि कहींसे क़लई ढीली हो तो पता चल जाय। कूँचीसे रगड़ने या घोटनेके बाद वस्तुको क्षण भर के लिए तेज़ाबसे निखारना (उ० दे०) चाहिए। निकेलकी क़लईके लिए आवश्यक यंत्र वे ही हैं जो ताँबेकी क़लईके लिये हैं। अत: केवल इतना ही है कि ऐनोड अबकी बार निकेलके रहेंगे और घोल दूसरे ही नुसख़ेसे बनेगा। ऐनोडके लिये शुद्ध निकेल से बनी चादर या छड़ या सिल्लीका प्रयोग करना चाहिए।

निकलकी क़लईके लिए घोल—नुसखा यह है।

पानी	१० सेर
निकेल सलफ़ेट	१२ छटाँक
निकेल क्लोराइड	४ ,,
बोरिक ऐसिड	२ ,,

इस घोलको नई टंकियोंमें या अच्छी तरहसे स्वच्छकी गई टंकियोंमें इस्तेमाल करना चाहिए। यदि साइनाइड पड़ा कोई घोल टंकीमें कभी रक्खा गया हो तो सफ़ाईकी ओर और भी ध्यान देना चाहिए, क्योंकि सायनाइडसे निकेल वाला घोल खराब होता है।

निकलकी क़लई करने की विधि

निकेलकी क़लईके लिए घोलको गरम करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। (और इसलिये पिच लगी लकड़ीकी टंकीसे काम चल जायगा) रियोस्टैटका रेज़िस्टैंस भरपूर बढ़ा कर वस्तुको पानीमेंसे निकाला जाता है (जहाँ वह सफ़ाई करनेके बाद लटकाया रहता है, जैसा पहले बतलाया
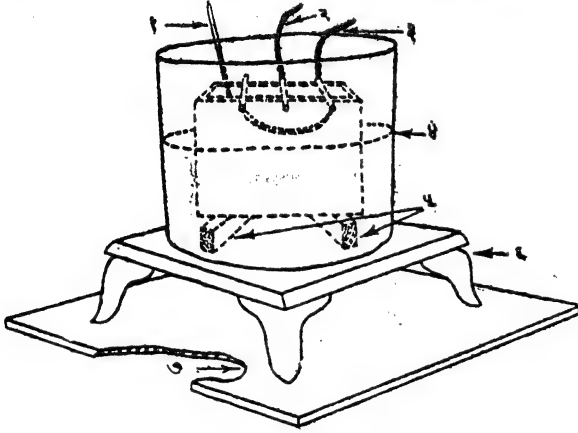
चित्र १८—कलई करने वाले घोलको गरम करनेकी रीति।

१—थर्मामीटर, जिससे ० से लेकर २५०° तकका तापक्रम नापा जा सके। २—बैटरीके नेगेटिव टर्मिनलका कनेक्शन इस तारसे होना चाहिए। ३—बैटरीके पॉज़िटिव टर्मिनलका कनेकशन इस तारसे होना चाहिए। ४—पानी की सतह, ५—टंकीको पेदीसे उठाये रखनेके लिए टेक। ६—गैसका स्टोव, इसके बदले मिट्टी के तेलका स्टोव इस्तेमाल किया जा सकता है। ७—मेजकी रक्षाके लिए रखी गई ऐसबेस्टसकी चादर।

जा चुका है), और बीच वाली छड़से ताँबे या निकेलके तारसे उसे लटका दिया जाता है (ब्योरेके लिये देखो ताँबे की क़लई)। तुरन्त रियोस्टैटका चल भाग हटा-बढ़ा कर ऐसी स्थितिमें कर दिया जाता है कि वोल्टमीटर की सुई २ वोल्ट पर आ जाए। यदि क़लई गहरी करनी हो तो ४५ मिनट तक इसी प्रकार २ वोल्ट पर क़लई होने दो। परंतु साधारण कामके लिए काफ़ी अच्छी क़लई करीब १५ मिनटमें हो जायगी। क़लईका काम समाप्त होने पर वस्तुको निकाल कर और अच्छी तरह धोकर सुखाना चाहिए।

निकेल पर पॉलिश—यदि वस्तु पर अन्य कोई क़लई न करनी हो तो इस पर बफ़िंग-ह्वील पॉलिश करना चाहिए, परन्तु चक्का बहुत नरम कपड़े (मलमल) का हो और उस पर विशेष बारीक चूनेकी टिकिया घिसी गई हो। वस्तु को पहिये पर हल्के हाथ लगाना चाहिए। पॉलिश करनेके बाद वस्तुको साबुनसे धोकर कपड़ेसे पोंछा और सुखाया जा सकता है, या क़लई करनेके पहले पॉलिश करने पर बिजलीकी सहायतासे चिकनाहट मिटानेकी जो रीति बतलाई गई है उसका उपयोग किया जा सकता है।
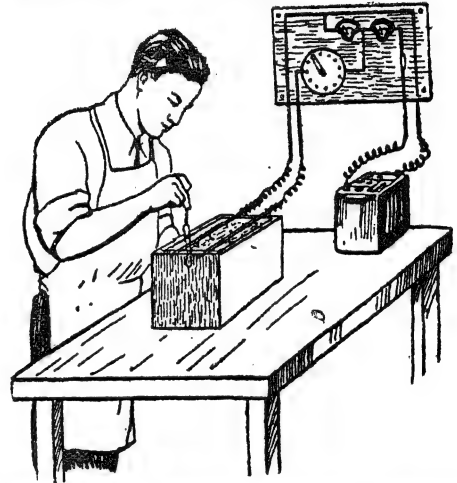
चित्र १९—छोटे कामोंपर क़लईके लिए सरल प्रबन्ध। इस चित्रमें बैटरी, वोल्टमीटर, टंकी आदिके रखनेकी अच्छी रीति दिखलाई गयी है। चित्रमें केवल एक ही ऐनोड दिखलाया गया है। इसलिए वस्तुपर दोनों ओर क़लई करनेके लिए वस्तुको दो चार बार उलटना पड़ता है। दो, ऐनोडके रहनेसे (चित्र १६ देखो) अधिक सुभीता रहता है।

यदि इस रीति का उपयोग किया जाय तो फिर निखार वाले घोलमें भी वस्तुको क्षण भर के लिए डुबाना आवश्यक होगा। इसके बाद वस्तुको खौलते पानीसे धोकर

स्वच्छ ठंढे पानीसे अच्छी तरह धोना चाहिए और अन्तमें उसे सुखा लेना चाहिए।

ऐल्युमिनियम पर निकेलकी क़लई

ऐल्युमिनियम पर निकेलकी क़लई करनी हो (इसकी आवश्यकता ऐल्युमिनियम पर क्रोमियमकी क़लई करनेमें विशेष रूपसे पड़ती है) तो इस पर पहले जस्तेकी हलकी क़लई करनी पड़ती है। एक मिनट तक तेज़ाब वाले घोलमें रखनेके बाद (नुसख़ा ऐल्युमिनियमको साफ़ करनेके सम्बन्धमें पहले दिया जा चुका है) वस्तुको अच्छी तरहसे ठंढे पानीमें धोया जाता है और तब उसे जस्तेकी क़लई करनेके घोलमें रक्खा जाता है। इस घोलका नुसखा यह है।
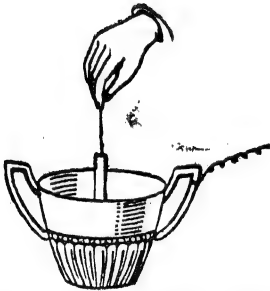
चित्र २०—बरतनोंके भीतर क़लई करना। बरतनमें ही क़लई करने वाला घोल भर दिया जाता है और इसके भीतर ऐनोड लटका दिया जाता है।

ज़िंक साइनाइड (विष)	४ छटाँक
सोडियम साइनाइड (विष)	४ छटाँक
लिकर अमोनिया	८ औंस
पेपटोन	$\frac{1}{2}$ छटाँक
पानी	१० सेर

ऐनोड जस्तेकी चादर के हों। बिजली चालू करके और वस्तुको बैटरी या डायनामोंके नेगेटिव तारसे जोड़ कर वस्तुको घोलमें डाला जाता है। रियोस्टैटका रेज़िस्टैंस इतना कम रहे कि वोल्ट मीटर लगभग ६ वोल्ट बतलाये। केवल चार या पाँच सेकण्डमे वस्तुको बाहर निकाल लेना चाहिए और इसे अच्छी तरह धोकर इस पर निकेलकी क़लई करनी चाहिए। स्मरण रहे कि ऐल्युमिनियम पर जस्ता और निकेलकी क़लई टिकाऊ तभी हो सकती है जब इसे सूखे स्थानमें रक्खा जाय। अन्यथा क़लई उखड़ जायेगी।

पुराने काम पर निकेलकी क़लई—अकसर बाइसिकिल आदि मशीनोंके पुराने पुरज़ोंपर फिरसे क़लई करनी पड़ती है। यह काम नई वस्तुओंपर क़लई करनेसे अधिक कठिन है, क्योंकि पुरानी चीज़ोंमें तरह-तरहके गड्ढे पड़े रहते हैं, मुरचा और खरोंच रहता है और कई स्थानपर
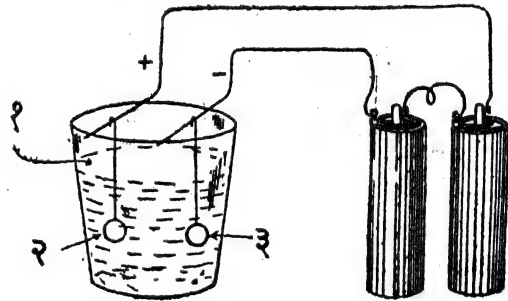
चित्र २१ सोनेकी क़लई। सोनेकी हलकी क़लई करनेमें इतनी कम बिजली लगती है कि दो ड्राइ सेलोंकी बैटरीसे भी काम चल सकता है। १—क़लई करनेका घोल, २—सोनेका टुकड़ा, ३—अँगूठी जिस पर क़लई करनी है।

वे घिसे रहते हैं। इनमें खूब तेल और ग्रीज़ भी लगा रहता है। इसलिए पहले इन पुरज़ोंकी खूब सफ़ाई करनी आवश्यक है। यदि पेंच या ढिबरीसे कुछ अंग एकमें एक जुड़े हों तो उनको अलग कर डालना चाहिये और सबको पेट्रोलसे अच्छी तरह धो डालना चाहिए (दिया और आग आसपासमें कहीं न रहे) ढिबरी, पेंच, पिन आदि छोटी वस्तुओं पर अलग क़लई करनी पड़ेगी। हैंडलबारसे हैंडल (ग्रिप) और पीडलसे रबड़ निकाल डालना चाहिये। यदि साइकलोंके पुरज़ोंपर एक साथ ही क़लई करनी हो तो छोटी-छोटी वस्तुओं ढिबरी, पेंच आदि की पोटली बनाकर हैंडलबारमें बाँध देना चाहिए जिसमें पीछे कोई दिक़्क़त न पड़े।

पेट्रोलसे साफ़ करनेके बाद बफ़िंग-व्हील और ट्रिपोली पाउडरसे सब पुरज़ोंको साफ़ करना चाहिए।

मुरचा सब छूट जाय। यदि सफ़ाईके बाद पता चले कि किसी पुरज़े पर पहले क़लई नहीं हुई थी तो उसपर नये कामकी तरह क़लई करनी चाहिए। परन्तु यदि पहले क़लई हुई थी तो उसे छुड़ना पड़ेगा। निकेल पर निकेल की क़लई मज़बूत नहीं होती।

निकेलको क़लई छुड़ाना यदि क़लई बहुत पतली हो तब तो बफिंग-व्हीलसे ही वह छूट जायगी, अन्यथा वस्तुको निम्न घोलमें डालना चाहिए।

पानी	२ सेर
सलफ़्यूरिक ऐसिड	८ सेर
नाइट्रिक ऐसिड	२ सेर

जैसा पहले बतलाया जा चुका है पानीमें ऐसिड डालना चाहिए, सो भी धीरे-धीरे अच्छी तरह चलाते रहना चाहिए।

जिस वस्तुसे निकेलकी कलई उतारनी हो उसे पहले पेट्रोलसे धो कर खौलते कास्टिक पोटैशके १० प्रतिशत घोलमें वस्तुको डुबाना चाहिए। फिर उसे खूब गरम पानी से धोना चाहिए और तब ताँबेकी तारमें बाँधकर उपरोक्त नुसख़ेके अनुसार बने तेज़ाबोंके मिश्रणमें वस्तुको लटकाना चाहिए। क़लईकी मोटाईके अनुसार दो-चार मिनटसे लेकर लगभग आधे घंटेमें सब क़लई कट जायगी। इसलिए वस्तुकी जाँच अकसर करते रहना चाहिए और ज्योंही क़लईकी जाय इसे तुरन्त पानीसे धो डालना चाहिए। तेज़ाबसे उपरोक्त क्रियामें कड़ुई गैसें निकलती हैं इसलिए इस कामको यथासंभव घरके बाहर करना चाहिए। इसके बादकी शेष क्रिया पहले जैसी है।

क्लेदतामापक यंत्र

[ले०—श्री बाबूराम जी पालीवाल]

क्लेदता

क्लेदता, वायु-मंडलमें जलकी मात्रा कितनी है इस विषयकी जानकारी कराती है। यह जल हवामें वाष्पके रूपमें समुद्रों, नदियों, झीलों, बर्फ़से ढके हुये पहाड़ों, नम पृथ्वी तथा अन्य भिन्न-भिन्न ज़रियोंसे आता है। यह उड़नेकी क्रिया बहुत सी बातों अर्थात् वायुतापक्रम, वायु की गति; वायु-भार और वायुमें पानीकी मात्रा पहिले ही से कितनी विद्यमान है, आदि पर निर्भर होती है। वायुके तापक्रम तथा गतिके बढ़नेसे पानी जल्दी उड़ा लिया जायगा और इसके विपरीत वायु-भारका बढ़ना तथा वायु में पानीकी मात्रा अधिक होना पानी उड़नेकी क्रियाको कम करता है, परन्तु वायुमें पानी शोषण करनेकी शक्ति सीमित है और वह केवल तापक्रमपर निर्भर है। किसी निश्चित तापक्रम पर एक निश्चित वायुकी मात्रा एक निश्चित मात्रामें ही जलकण अपने अन्दर शोषण कर सकती है जो उस तापक्रमके सम्पृक्त वाष्प-दबाव द्वारा जाना जा सकता है। यह मात्रा तापक्रमके घटने-बढ़नेसे घटती बढ़ती रहती है। यदि वायुमें पूरी मात्रामें जितना कि वह शोषण कर सके, जल विद्यमान हो तो उसे संपृक्त कहते हैं, अन्यथा उसे असम्पृक्त कहते हैं। यह पानीकी भापकी मात्रा या तो ग्राम प्रति घन मीटरमें या जल-वाष्प-दबावमें जो कि मिली-मीटरमें व्यक्त किया जाता है, प्रकट की जाती है। यदि वायु बिलकुल शुष्क हो और उसमें जलका लेश मात्र भी भाग न हो तो क्लेदता शून्य होगी।

क्लेदता दो प्रकारसे प्रकटकी जाती है। एक सापेक्ष-क्लेदता और दूसरा निरपेक्ष-क्लेदता।

निरपेक्ष-क्लेदता—निश्चित वायुकी मात्रामें जल कितना है यह बात निरपेक्ष-क्लेदता द्वारा प्रकटकी जाती है जो ग्राम प्रति घनमीटर अथवा वायुमें विद्यमान जल वाष्पके आंशिक दबावमें बताई जाती है।

सापेक्ष-क्लेदता—वायुमें जलकी मात्रा उस मात्रासे जो कि एक निश्चित वायु उसी तापक्रम पर शोषण कर सकती है यदि वह सम्पृक्त हो, किस अनुपातमें विद्यमान है।

यह अनुपात सापेक्ष-क्लेदतामें प्रकट किया जाता है जो कि प्रति सैकड़ामें होता है, अर्थात्—

$$\text{सापेक्ष-क्लेदता} = \frac{\text{वायुमें विद्यमान जलकी मात्रा}}{\text{उसी आयतन और तापक्रमपर सम्पृक्त वायुमें जलकी मात्रा}}$$

ओसांक

यदि जल-वाष्पसे मिली हुई वायुको धीरे-धीरे ठंडा किया जाय तो एक वह तापक्रम आ जाता है जिस पर
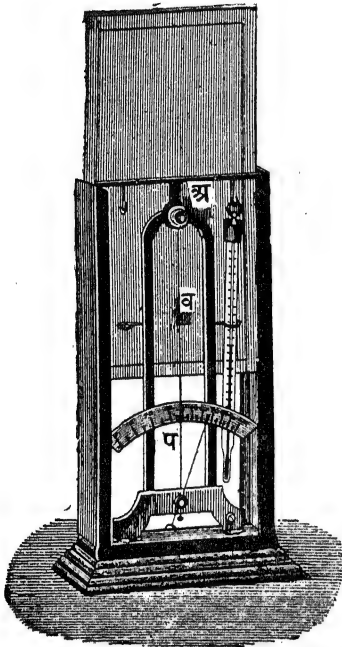
चित्र १—केशक्लेदमापक या हेयर हाइग्रोमीटर

उतनी ही भाप वायुको सम्पृक्त करनेके लिये काफ़ी होती है। इस तापक्रमको ओसांक कहते हैं, क्योंकि यदि वायुको और अधिक ठंडा किया जाय तो वह अपने अन्दर भाप न रख सकेगी और जितना पानी वह न रख सकेगी वह ओसके रूपमें जमा हो जायगा। कोहरा, बादल, वर्षा आदि इसी प्रकारके वायुके पानी द्वारा बनते हैं। यह आसानी से देखा जा सकता है कि चार वस्तुओं, यानी तापक्रम, निरपेक्ष-क्लेदता, सापेक्ष-क्लेदता, और ओसांक का एक दूसरेसे सम्बन्ध है। इसीलिए यदि इनमेंसे दो मालूम हो जायँ तो बाकी दो भी मालूम किये जा सकते हैं। हम लोगोंके पास भिन्न-भिन्न तापक्रमों पर संपृक्त वाष्प-दबाव मालूम करनेकी सारिणियाँ रहती हैं। इस प्रकार यदि हमें तापक्रम और निरपेक्ष-क्लेदता मालूम हो तो निरपेक्ष-क्लेदता को वाष्प-दबावसे भाग देकर सापेक्ष-क्लेदता मालूमकी जा सकती है और जिस तापक्रम पर सम्पृक्त वाष्प-दबाव और निरपेक्ष-क्लेदता एक ही हो तो वह ओसांक होता है।

यंत्र

जिस यन्त्रका व्यवहार क्लेदता नापनेके काममें आता है उसे क्लेदमापक या हाइग्रोमीटर कहते हैं। वह कई प्रकारका होता है।

(१) रासायनिक—क्लेदमापक इसके द्वारा निरपेक्ष-क्लेदता मालूमकी जा सकती है, परन्तु इसका वायु-मण्डल निरीक्षणालयोंमें बहुत कम प्रयोग होता है। इसका कार्य सुखाने वाले ट्यूबों द्वारा वायुकी भापको खींच कर उसे सोखने पर निर्भर होता है।

(२) ओसांक क्लेदमापक—जिन क्लेदमापकों द्वारा वायुका ओसांक मालूम किया जाता है और फिर उस ओसांकसे क्लेदता मालूमकी जाती है उन्हें ओसांक क्लेद मापक कहते हैं। इन क्लेदमापकोंमें डेनियल हाइग्रोमीटर,
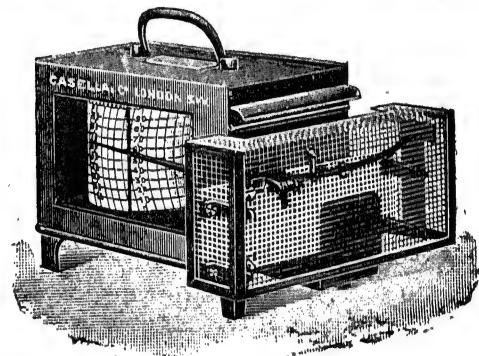
चित्र नं० २—हेयर हाइग्रोग्राफ़

रेनो-हाइग्रो-मीटर और डाइन-हाइग्रोमीटर अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब क्लेदमापकोंमें एक ही सिद्धान्त काम करता है. अर्थात् यंत्रकी एक सतह धीरे-धीरे ठंडीकी जाती है—यहाँ तक कि वायुके अन्दरकी नमी ओसके रूपमें सतह पर जमने लगे और उस समय सतहका तापक्रम ले लिया जाता है।

फिर तापक्रमको धीरे-धीरे बढ़ने दिया जाता है कि ओस उड़ जाय तब फिर तापक्रम ले लिया जाता है। इस प्रकार दोनों तापक्रमोंके—जिस पर ओस जमी थी और जिस पर उड़ गई थी—बीचका तापक्रम ओसांक होता है। इस ओसांकसे सारिणी द्वारा क्लेदता मालूम कर ली जाती है। वायु-मंडल-विज्ञानमें इन यंत्रोंका प्रयोग अधिक नहीं किया जाता। अतः इनका विवरण यहाँ नहीं दिया जाता।

चित्र ३

(३) केश-क्लेदमापक—मामूली कामके लिये वायु-मंडल-निरीक्षणालयोंमें सापेक्ष-क्लेदता केश-क्लेदमापकसे नाप ली जाती है। यह मनुष्यके लम्बे बालोंके गुच्छे का बना होता है। बालोंको पहले ऐलकोहल अथवा ऐलकली के घोलसे धोकर खूब साफ़ कर लिया जाता है जिससे बालोंसे तेल आदि निकल कर शुद्ध बाल रह जाते हैं। इस प्रकार साफ़ किये हुये बालोंमें वायुसे नमी खींच कर अपने अंदर शोषण करनेकी शक्ति आ जाती है और नमीके घटने बढ़नेसे बाल घटते बढ़ते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर लिया गया है कि वायुकी नमीके घटने बढ़नेसे बालोंकी लम्बाई करीब-करीब उसी अनुपातसे घटती बढ़ती है जिस अनुपातसे सापेक्ष-क्लेदता।

चित्र १ में केश-क्लेद मापक दिखाया गया है। इसमें बाल 'व' का एक सिरा 'अ' पर बाँध दिया गया है और दूसरा सिलंडरके ऊपर हो कर गुज़रता है और किसी बोझ या स्प्रिङ्ग द्वारा कड़ा रक्खा जाता है। सिलंडरमें एक प्वाइंटर लगा होता है जो पैमाना 'प' के ऊपर होता है। यह पैमाना ० से लेकर १०० भागोंमें विभाजित रहता है। वायुमें क्लेदता कम होने और बढ़नेसे बालोंकी लम्बाई भी घटती या बढ़ती है और इससे सिलंडर घूमता है। सिलंडरके घूमनेसे प्वाइंटर भी घूमता है। इस प्रकार प्वाइंटरको पैमानेपर पढ़कर क्लेदता फ़ौरन मालूमकी जा सकती है। इस यंत्रको समय-समयपर दूसरे स्टैण्डर्ड क्लेदमापकोंसे मिला लेना पड़ता है, अथवा नीचे लिखी विधि-द्वारा क्लेदता मालूम करके ठीककर लेना पड़ता है। इस प्रकार क्लेदता ५ फ़ीसदी तक इस यंत्रसे सही मालुम की जा सकती है।

(४) नम और शुष्क बल्ब क्लेदमापक या साइक्रोमीटर—सापेक्ष-क्लेदता इस यंत्र द्वारा बहुत आसानीसे बहुत सही निकाली जा सकती है। वायु-मंडल-निरीक्षणालयों में अधिकतर इसी यंत्रका प्रयोग होता है। यह एक पारेके दो थर्मामीटरोंको फ्रेममें जोड़कर बनाया जाता है। दोनों थर्मामीटरोंमें से एककी घुंडीमें एक भीगा हुआ मलमलका टुकड़ा लपेट देते हैं जिससे एक बत्ती लगी होती है जिसे पानी भरे हुए एक छोटेसे बरतनमें डाल देते हैं। इस प्रकार पानी भाप बनकर मलमलके ऊपरसे उड़ता है और उस थर्मामीटरका ताप-क्रम गिरता है। जितना ही अधिक पानी भाप बनकर उड़ेगा, नम और शुष्क थर्मामीटरोंमें उतना ही अधिक अंतर होगा और जितना अधिक अन्तर होगा उतनी ही कम क्लेदता वायुमें होगी। यदि नम बल्ब और शुष्क बल्ब-तापक्रम एक ही हो तो वायुमें १०० प्रतिशत क्लेदता होगी, यानी वायु सम्पृक्त होगी। इस प्रकार शुष्क बल्ब और नम बल्ब तापक्रमोंका अंतर क्लेदताका सीधा माप है। वायुभार और वायुगतिका भी पानीके उड़नेपर प्रभाव पड़ता है। वायुभारकी अधिकता जलकी शोषण करनेकी शक्तिको कम करती है और वायु-गतिकी तीव्रता उसे बढ़ाती है। वायुभारका असर बहुत कम होता है और उसे छोड़ा जा सकता है और वायुगतिके असरको एकसा रखनेके लिए मलमलपर पानी बराबर एक ही तरहसे जाता रहना चाहिए, जो आसमान-साइक्रोमीटर या स्लिंग थर्मामीटर द्वारा पिछले लेखमें (विज्ञान, अगस्त सन् १९३९ पृष्ठ १८४) बताए गएके अनुसार बड़ी आसानीसे किया जा सकता है, परन्तु भारतवर्षके वायुमंडल-निरीक्षणालयोंमें तो स्टीवेंसन-स्क्रीनके अंदर ही शुष्क और बल्ब थर्मामीटरों को रख दिया जाता है जैसा कि पिछले लेखमें (विज्ञान अगस्त सन् १९३९ पृष्ठ १८२-१८३) बताया जा चुका है। शुष्क और नम बल्ब तापक्रमसे सारिणियों द्वारा सापेक्ष-क्लेदता निकाली जा सकती है। यद्यपि ६°श के नीचेके तापक्रमपर क्लेदताका निकालना इस प्रकार कुछ कठिन है, परन्तु इससे ऊँचे तापक्रमपर यह आसानीसे निकाला जा सकता है। यदि त¹ और त² क्रमशः शुष्क बल्ब और नम बल्बका परम-मान तापक्रम हो, द¹ वायुके अंदरका वाष्प-दबाव हो और द² त² तापक्रमपर संपृक्त वाष्प-दबाव हो और ह बैरोमीटर द्वारा वायुभार हो तो वाष्पीकरण की गति इस प्रकार बताई जा सकती है :—

$$\frac{द^1 - द^2}{अ\ ह} = त^1 - त^2$$

$$\therefore\ द^1 - द^2 = अ\ ह\ (त^1 - त^2)$$

यहाँ पर अ एक स्थिरांक है जो वायुकी स्थितिपर निर्भर है और जो बहुतसे प्रयोगों द्वारा निश्चित किया जाता है। इस कामके लिए प्रति दिन इतना गुणा-भाग नहीं किया जाता, वरन् सारिणी बनी होती है जिससे तुरन्त निकाल लिया जाता है।

केश-क्लेदमापक-स्वलेखक यंत्र (हेयर हाइग्रोग्राफ़) इन सबके अलावा क्लेदता नापनेका एक स्वयं-लेखक यंत्र भी होता है जो केश-क्लेदमापक के सिद्धान्त पर काम करता है। इसे हेयर हाइग्रोग्राफ़ (चित्र नं० २) कहते हैं। इस प्रकारके यंत्रका एक नक़शा (चित्र नं०३) यहाँ दिया जाता है। यह बालोंके गुच्छेका बना होता है। बालोंको एलकैलीके घोलमें धो लेते हैं जिससे तेलका थोड़ा बहुत तत्व जो बालोंमें हो, निकल जाय। फिर बालोंको फ्रेमके दोनों सिरों अ¹ और अ² से बाँध देते हैं। इस फ्रेममें बालोंके दोनों सिरोंके अंतरको कम अधिक करनेके लिए एक स्क्रू लगा होता है। बालोंके बीचों-बीच में एक हुक 'ब' लगा होती है और उसमें बाल लटके होते हैं। यह हुक एक लीवर 'स' से जुड़ी होती है और जिससे एक कम-पीस 'ड' सटा रहता है जो दूसरे कम-पीस 'ई' से एक हलकी सी स्प्रिंग 'फ' द्वारा सटा रहता है। दूसरे कम-पीस 'ई' को कलमकी धुर्रासे स्क्रू 'ज' द्वारा जोड़ देते हैं। इस प्रकार वायुकी क्लेदताके घटने बढ़नेसे जो बालोंकी लंबाई घटती बढ़ती है यह घटना बढ़ना लीवर द्वारा कई गुना होकर कलमको ऊपर नीचे करता है। ड्रमपर एक चार्ट लगा होता है और ड्रमके अंदर एक घड़ी लगी होती है जो ड्रमको घुमाती है। इस प्रकार चार्टके ऊपर अपने आप एक वक्र रेखा बन जाती है जिससे प्रति समयकी क्लेदता जानी जा सकती है। यद्यपि यह यंत्र उतना सही नहीं होता और इससे कभी-कभी १० या १५ प्रतिशतकी भी ग़लती होती है, परन्तु एक स्वलेखक यंत्र होनेके कारण इससे हर समयकी क्लेदता जानी जा सकती है। अतः वायुमंडल-विज्ञानके विद्यार्थियोंके खोजके काममें बड़ा उपयोगी होता है।

कागज़

[ले० श्री रामदास तिवारी, एम० एस-सी०]

वर्तमान सभ्यतामें कागज़का स्थान बहुत ऊँचा है। शिक्षित तथा अशिक्षित सभी व्यक्तियोंको किसी न किसी रूपमें कागज़का प्रयोग करना पड़ता है। अतः हमारे लिए यह जानना कि रासायनिक दृष्टिकोणसे कागज़ क्या है और किस प्रकार बनाया जाता है, बहुत ही आवश्यक है।

यदि आप प्राचीन समयके किसी शब्द-कोषको उठाकर देखें तो उसमें कागज़का मतलब यह लिखा होगा कि यह एक पदार्थ है जो सूत या लिनेनके चिथड़ोंसे बनाया जाता है, परन्तु वर्तमान समयमें सस्ते साहित्यकी उन्नतिके साथ ही साथ कागज़का प्रयोग बढ़ता गया और यह परिभाषा भी बदल गई। आजकल तो सूतका प्रयोग बहुत ही कम होता है और अधिकांशमें कोई भी लकड़ी जिसमें रेशे हों, कागज़ बनानेके काममें लाई जाती है। ज़्यादातर लकड़ीकी लुगदी, स्पाटों घास, भावर घास तथा भूसेका प्रयोग होता है।

साधारण कागज़ जो अखबार छापनेके लिये, किताबों पर चढ़ाने तथा किताबें बाँधनेमें आवश्यक होते हैं, यन्त्रों द्वारा बनाई हुई लुगदीसे बनाये जाते हैं। यह चीड़ तथा अन्य मुलायम लकड़ियोंको पानीके साथ कुचल कर तथा पीसकर बनाई जाती है। इस लुगदीमें उस लकड़ीका जिससे वह बनी होती है लिगनोसेल्यूलोज़ होता है जो लिगनिन तथा सेल्यूलोज़का मिश्रण होता है। इन दोनों पदार्थोंके अलग न हो सकनेके कारण यह रंगहीन नही किया जा सकता तथा कागज़ समयके साथ पीला पड़ता जाता है। अतः इस प्रकारसे बना हुआ कागज़ किताबें छापने तथा स्थाई रूपका अन्य काम करनेके लिये बेकार है।

अच्छा कागज़ बनानेके लिये रासायनिक लुगदीका प्रयोग होता है। इस लुगदीमें शुद्ध सेल्यूलोज़ होता है और लिगनिनका अंश बिलकुल नहीं रह जाता। इसको बनानेके लिये लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़े या बुरादेको लेकर कैलसियम वाई सलफाइट, कास्टिक सोडा, या कैलसियम वाई सलफाइट तथा सोडियम सलफ़ाइडके मिश्रणके साथ ऊँचे दबाव पर रासायनिक क्रिया करते हैं। इस क्रियासे लिगनिन कैलसियम वाई सलफ़ाइट या कास्टिक सोडासे मिल कर एक पदार्थ बनता है जो पानीमें घुलनशील है इस प्रकार अलग किया जा सकता है और इस प्रकार सेल्यूलोज़ का शुद्ध रूप रह जाता है। इसके पश्चात् इसको धोकर ब्लीचिंग पाउडर या सोडियम हाइपो क्लोराइडकी सहायतासे रंगहीन किया जाता है। लुगदी जिपसम या मिट्टीके साथ मिलानेसे एक मज़बूत रूपमें आ जाती है। हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि हमें कागज पर स्याहीसे लिखना है और स्याही कागज़ पर फैलना न चाहिये। अतः इसके साथ रोजिन, साबुन तथा फिटकरी मिलाते हैं। इस प्रकार कागजके ऊपर एल्यूमीनियम रेज़िनेट की एक सतह बन जाती है और स्याही नहीं फैलती। इस क्रियाको साइज़िङ्ग कहते हैं। सतह चिकनी करनेके लिए कैसीनका भी उपयोग किया जाता है जो कि दूध फाड़ कर बनाई जाती है।

लुगदीको कूट-कूट कर दबावके द्वारा तावोंमें बनाते हैं और फिर इसे गर्म रोलरोंके बीचसे निकालते हैं जिससे यह सूख जाते हैं। इसके पश्चात् वे पालिश करने वाले सिलिंडरोंके बीचसे निकाले जाते हैं और इस प्रकार कागज बन कर तैयार हो जाता है।

हमारे भारतवर्षमें कागज बनानेके लिये बहुत ही बड़ा क्षेत्र है। यहाँ अनेक प्रकारकी लकड़ियाँ तथा घासें पैदा होती हैं जिनका प्रयोग हो सकता है। इन पदार्थोंकी रासायनिक परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि इनसे बहुत ही अच्छा कागज़ बन सकता है। इतना होने पर भी हमारे यहाँके कारखाने इतना कागज नहीं बना सकते कि हम अपना काम स्वयं चला सकें। हमें काफ़ी कागज़ बाहर से मँगाना पड़ता है। यदि हमारे यहाँके कारखाने यहाँकी पैदा होने वाली वस्तुओंका ठीक उपयोग करें तो हमारे यहाँ बहुत अच्छा तथा सस्ता कागज बनाया जा सकता है और काफ़ी रुपया बाहर जानेसे बचाया जा सकता है।

स्वागताध्यक्षका भाषण

[काशीस्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अंतर्गत विज्ञान परिषद्के स्वागताध्यक्ष डा० मुकुन्द स्वरूप वर्माका भाषण]

प्रतिनिधिगण, देवियो तथा सज्जनो !

स्वागत—कारिणी समितिका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझको इस बातका अवसर दिया है कि मैं आप सब विद्वानोंका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनपर स्वागत कर सकूँ। यद्यपि कई अन्य वयोवृद्ध विद्वान् इस कार्यके लिये अधिक उपयुक्त थे तो भी इस कार्यका भार उन्होने मुझपर डालकर मेरा विशेष आदर किया है। इस कारण समितिके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करना मेरा कर्त्तव्य है।

स्वागत–कारिणी समितिको अत्यन्त आनन्द है कि मातृभाषाके प्रेमसे प्रेरित होकर आप सब विद्वान् देशके दूर-दूरके भागोंसे अपना अमूल्य समय और धनका व्यय करके यहाँ पधारे हैं। समिति आपका हृदयसे स्वागत करती है तथा कृतज्ञता प्रकाश करती है। ऐसे-ऐसे प्रकांड विद्वानोंका यहाँ एकत्र होना इसका प्रमाण है कि वह दिवस दूर नहीं है जब विज्ञानका प्रचार मातृभाषा द्वारा ही होगा—जब वैज्ञानिक विषयोंका पठन-पाठन, वैज्ञानिक साहित्यका प्रकाशन तथा वैज्ञानिक प्रश्नोंपर विचार मातृभाषा द्वारा ही किया जायगा।

जिस पुण्यमयी काशीकी भूमिपर मैं आप महानुभावोंका स्वागत कर रहा हूँ वह हिन्दीके ऋषि और महर्षियोंकी भूमि है। हिन्दीके हेतु अपने जीवनको न्यौछावर करने वालोंकी यह जन्मभूमि है। कौन हिन्दी-प्रेमी नहीं जानता कि इसकी ही पुनीत रजपर तुलसी, कबीर, हरिश्चंद्र, इत्यादि प्रभृति व्यक्ति खेले हैं। काशीने हिन्दीको क्या दिया है इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यही कहना पर्याप्त होगा कि जीवन-दान दिया है। किन्तु जहाँ वाराणसीकी गोदमें हिंदी-साहित्य का लालन-पालन हुआ है वहाँ विज्ञानके उद्भव और पुनरुत्थानका गौरव भी इसी विद्याके केन्द्रको प्राप्त है। आयुर्वेदका, जो विज्ञानकी महती और अत्यन्त प्राचीनतम शाखा हैं, इसी भूमि पर जन्म हुआ था। महर्षि धन्वंतरि तथा दिवोदासने यहीं पर जन्म लेकर मनुष्य-जातिको व्याधि-यंत्रणा तथा जरासे मुक्त करनेवाले विज्ञानका इसी नगरीमें उपदेश किया था। अतएव आजके विज्ञान परिषद्का अधिवेशन, जो उसी प्राचीनतम भूमिपर मनाया जा रहा है, विशेष महत्व रखता है।

जबसे देशमें विश्वविद्यालय तथा कालेज स्थापित हुए और उनमें विज्ञानकी शिक्षा अंग्रेज़ी द्वारा दी जाने लगी तभीसे देश और मातृभाषा प्रेमियोंका मातृभाषा द्वारा विज्ञानकी शिक्षाकी आवश्यकता प्रतीत होने होने लगी। अतएव समय-समय पर वैज्ञानिक लेख प्रकाशित होने लगे तथा पुस्तकोंका प्रकाशन भी प्रारंभ हुआ। किन्तु वैज्ञानिक विषयोंपर लेख लिखनेमें जो विशेष कठिनाई पड़ती है वह पारिभाषिक शब्दोंकी है। इस संबन्धमें काशी-नागरी-प्रचारणी सभा द्वारा जो कार्य किया गया है वह विशेष उल्लेखनीय है। सन् ११२६ ई० में उक्त सभाने वैज्ञानिक विषयोंके आचार्यों की एक कमेटी बनाई, जिसका मैं मंत्री था और पारिभाषिक शब्दोंकी सूची तैयार करनेका भार उसको सौंपा। कमेटीके सदस्योंने अत्यन्त उत्साहके साथ कई वर्षों तक परिश्रम करके रसायन भौतिक विज्ञान, अंक तथा रेखा-गणित और भूगर्भशास्त्र (केमिस्ट्री, फ़िज़िक्स, मैथेमेटिक्स, जिओलॉजी) के पारिभाषिक शब्द बना डाले। इन शब्दोंकी सूची काशी-नागरी-प्रचारणी सभाने प्रकाशित की है। किंतु खेद है कि आर्थिक संकटके कारण और कार्य न हो सका और कितने ही विषय छुए तक भी न गये।

हिंदू-विश्वविद्यालयकी ओर से हिन्दी द्वारा विज्ञानके प्रचारके लिये जो कार्य हुआ है वह भी अत्यन्त स्तुत्य है। जहाँ उक्त विश्वविद्यालयकी एडमीशन परीक्षा तक भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक विषयोंका पठन-पाठन हिन्दी ही द्वारा होता है वहाँ अब इण्टरमीजिएटमें भी कई विषयोंमें हिन्दी भाषा माध्यम बना दी गई है और उक्त विषयोंमें उच्च कोटिकी की पुस्तकें जो इण्टरमीजिएटके विद्यार्थियोंके लिये पर्याप्त हों, प्रकाशित करवाई गई हैं। रसायन और भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके लेखक हिंदी वैज्ञानिक जगत्के सुपरिचित प्रो०

फूलदेवसहाय वर्मा और डा० निहालकरण सेठी हैं। अन्य विषयों पर भी पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं। स्वास्थ्य विज्ञान (हाइजीन) और शरीर-रचना-शास्त्र (एनेटॉमी) पर भी, जो विश्वविद्यालयके अन्तर्गत आयुर्वैदिक कालेजमें पाठ्य विषय है, उच्च कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित हो गए हैं जिनमें लगभग ५००० पारिभाषिक शब्द हैं।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके विज्ञान परिषद्के मुखपत्र 'विज्ञान' द्वारा जो हिंदीकी सेवा हुई है उससे आप भली भाँति परिचित हैं। यह पत्र सहस्त्रों संकट सहते हुए भी उच्च कोटिके लेखोंको प्रकाशित करता रहा है। पारिभाषिक शब्दोंपर भी इस पत्रमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। किन्तु खेदकी बात है कि हिंदीमें इस प्रकारके केवल एक ही पत्रके होने पर भी उसको आर्थिक संकटोंसे ग्रस्त रहना पड़ता है तथा सुलेखकोंकी उदासीनताका ग्रास बना रहता है।

विज्ञानके प्रचारकी आवश्यकताके संबंधमें आप सरीखे विद्वानोंके सम्मुख कुछ कहना केवल नष्ट समय करना है। आपने स्वयं ही विज्ञानको अपने जीवनका एक ध्येय बना लिया है और उसीपर जीवन अर्पण कर दिया है। किन्तु आवश्यकता इस बातकी है कि आप साधारण जनताको भी भली-भाँति बता दें कि देश और जातिका कल्याण विज्ञान ही से है। विज्ञानके बिना देशकी उन्नति नहीं हो सकती। कुछ सज्जनोंका कथन है कि विज्ञानके ही कारण संसार इस समय घोर संकटमें पड़ा हुआ है। मनुष्यकी चिंताएँ, स्पर्धा, अन्याय, व्यथा इत्यादि विज्ञानके ही कारण बढ़ गये हैं। यदि विज्ञानकी इतनी उन्नति न हुई होती तो विषैली गैस और बम डालने वाले एरोप्लेन भी न बने होते। किंतु वे यह भूलते हैं कि विज्ञानकी उन्नतिके बिना सहस्त्रों मीलपर बैठे हुए अपने प्रियजनोंसे बातचीत भी न हो सकती; दो घंटेके भीतर उनके सुसमाचार भी तार द्वारा न आ पाते; सर्जरीके जो चमत्कार देखे जाते हैं वे भी न दिखाई देते और जीवनकाल भी पचीससे पैंतालीस वर्ष न होता। जलराशिके समान विज्ञान एक शक्ति है। उससे सहस्त्रों मीलके क्षेत्र शस्य-सम्पन्न भी किये जा सकते हैं तथा नगर और प्राणी डुबाये भी जा सकते हैं।

मनुष्य सदा अपनी मातृ-भाषामें ही विचार करता है। यह मनो-विज्ञानका एक बहुत बड़ा सिद्धांत है। इस कारण हम लोग जितनी सुगमतासे अपनी भाषा सीख सकते हैं, पढ़ सकते हैं तथा भावोंको मनोगत कर सकते हैं दूसरी भाषामें हमको वह सुगमता नहीं हो सकती। पठन-पाठन, अध्ययन, विचारोंका परिवर्तन जिस पूर्णतासे अपनी भाषामें होता है दूसरी भाषामें नहीं। अन्य भाषाके द्वारा मौलिकता नष्ट हो जाती है क्योंकि केवल भाषा सीखने में ही शक्तियोंका अपव्यय होता है। अतएव विश्वविद्यालयों और कालेजोंसे अनुरोध करना चाहिए कि वे वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययन-अध्यापनका माध्यम हिंदी ही बनावें। चाहे प्रारम्भमें पारिभाषिक शब्द पूर्ववत् ही रहें किंतु विचार हिंदी भाषा द्वारा ही प्रगट किए जायँ। इसमें चाहे प्रारंभमें भले ही कुछ कठिनाई हो किंतु थोड़े ही समयमें यह बहुत उपयोगी प्रमाणित होगा।

दूसरी आवश्यकता वैज्ञानिक साहित्यकी है। यद्यपि हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखी गई हैं किन्तु अभी तक इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। मराठी, गुजराती या बंगलामें हिन्दीकी अपेक्षा वैज्ञानिक साहित्य कहीं अधिक बढ़ा हुआ है। इसका कारण लेखकोंकी अरुचि, पुस्तकोंके प्रकाशनमें कठिनाई तथा जनताकी उदासीनता है। लेखकोंकी अरुचिका विशेष कारण वे कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण पुस्तकें प्रकाशित ही नहीं हो पाती। विज्ञान-संबंधी पुस्तकोंमें ब्लाक देने पड़ते हैं जिनके कारण व्यय बहुत होता है और पुस्तकका मूल्य बढ़ जाता है। जनता उनको खरीदती नहीं। अतएव प्रकाशकोंको भी हानि उठानी पड़ती है।

प्रारंभमें वैज्ञानिक विषयों पर सर्वप्रिय पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिये जिनमें अधिक ब्लाक न देने पड़ेंगे। प्रत्येक पुस्तक लगभग १०० पृष्ठकी हो। इनका मूल्य भी जितना कम हो सके उतना रक्खा जाय। साथमें स्थायी ग्राहक बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। जिन विषयों पर पुस्तकें लिखी जायँ वे ऐसे होने चाहिये जो रुचिकर तथा उपयोगी हों। उद्योग, शिल्प, वाणिज्य आदि पर भी पुस्तकें लिखी जानी चाहिए। इस प्रकारकी एक वैज्ञानिक माला प्रकाशितकी जाय। इस कार्यके लिये मेरी

सम्मतिमें विज्ञान-परिषद् ही उपयुक्त संस्था है। परिषद् एक ऐसी कमेटी बनावे जो इसकी एक आयोजना तैयार करे और तदनुसार पुस्तकोंके प्रकाशन तथा विक्रयका प्रबन्ध करे। समय आ गया है जब हम इस बातका पूर्ण अनुभव कर लें कि देशका कल्याण विज्ञान पर ही निर्भर है और विज्ञानका प्रचार प्रत्येक देशभक्तका कर्त्तव्य है। बेकारी जो देशमें आज चारों ओर फैली हुई है और कम-से-कम ५० प्रतिशत शिक्षित नवयुवक जिसके ग्रास बने हुये हैं, उसको मिटानेका साधन भी केवल विज्ञानका प्रचार है। ऐसी पुस्तकें जिनमें छोटी-छोटी दस्तकारियोंका वर्णन हो, जो घर-घरकी जा सकें, सरल हिन्दीमें प्रकाशित होनी चाहिए जिनसे साधारण व्यक्ति किसी विशेष कलाकी शिक्षा पा सकें। यदि इस ओर विशेष ध्यान दिया जाय और परिश्रम के सहित कार्य किया जाय तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस कार्यमें पूर्ण सफलता मिलेगी। सरकारसे इस काममें सहायता मिलनेकी पूर्ण आशाकी जा सकती है।

मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। एक बार फिर मैं आपका स्वागत करता हूँ और आपने यहाँ पधारनेमें जो कष्ट उठाया है उसके लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ। मैंने आपके सामने जो दो एक प्रस्ताव रक्खे हैं, मैं आशा करता हूँ कि आप उन पर विचार करके अपने विचारोंको कार्य-रूपमें परिणत करेंगे।

आयुर्वेदमें नयी खोज*

[ले०—डा० अदालत सिंह जी एम० बी०]

नयी खोजकी बात किसीके लिये तभी आती है जब कि खोजने वालेमें जीवितव्यके लक्षण मिलते हों—प्राप्त स्थितिसे उसे असन्तोष हो तथा उसके जीवन-विस्तार इतने व्यक्त, व्यापक और सच्चे हों कि जीवन-संग्राम सम्बन्धी किसी बातमें भी पिछड़ना उसके लिये असह्य हो जाय। हमारा पुराना आयुर्वेद जिसके लिये हमें नयी खोजकी चर्चा करनी है बहुत दिनों तक बिना वास्तविक भूख किंवा खोजकी ज़रूरतके रह चुका है। सौभाग्यसे अब ऐसे मौक़े मिल रहे हैं और संभव है हम इसके गरिमामय शरीर में कुछ नयी-नयी धमनियों, नये-नये नर्वों तथा इसके अंग-प्रत्यंगोंमें यत्र-तत्र नये-नये धातुओं किंवा कोषाणुओंका प्रस्थापन कर सकें—जिसके फलस्वरूप आयुर्वेद सर्वग्राह्य तथा सार्वभौमिक बनकर अपनी नयी खोजकी धुनसे मानव-विकासके इतिहासमें नये-नये अध्याय खोल दे। किन्तु उस "भूख"को निरा "बनावटी" या छद्म ही समझना चाहिये जिसके साथ-साथ आगत आहारको पचाने तथा आत्मसात् करनेके लिये अन्तःस्थ साधनोंका (रसादिकोंका) पूरा-पूरा प्रबन्ध न हो—स्पष्ट शब्दोंमें जब तक पुराने आयुर्वेदका नये वातावरणोंके अनुकूल काफ़ी साहित्यिक एवं 'सैद्धान्तिक' कायापलट न हो जायगा तब तक नयी बातोंको पचानेमें बहुत दिक़्क़तें होंगी और नयी खोजकी चर्चा सिर्फ़ कहनेकी बात रहेगी न कि करनेकी। अस्तु।

अब हम अपने प्रस्तावित अनुसन्धानोंका दिग्दर्शन करते हुए उनकी उपादेयता, व्यवहारिकता एवं वास्तविक कठिनाइयोंका कुछ वर्णन करेंगे जो कि इस निबन्धके विषय-विशेष हैं। हमारे अनुसन्धानोंके खोजःस्रोत दो मुख्य मार्गसे बह सकते हैं, जैसे—

अर्वाचीनीकरण

आयुर्वेदके अर्वाचीनीकरणसे मतलब सिर्फ़ यही नहीं कि अंग्रेजी या दूसरे विदेशी भाषाओंकी डाक्टरी पुस्तकोंका देशी भाषाओंमें किसी न किसी प्रकार कुछ उलथा कर लिया

---

*यह निबन्ध २८ वें हिन्दी-साहित्य सम्मेलन काशी की विज्ञान परिषद्में पढ़ा गया था।

जाय जैसा कि आज फैशनसा हो गया है और जिसके लिये पांडित्य-प्रदर्शनका स्थान अधिकसे अधिक मध्यम श्रेणीका ही मिल सकता है। यथार्थतः अर्वाचीनीकरणके काममें उच्चकोटिकी विद्वत्ता और मौलिकताकी ही जरूरत होती है। सहस्त्रों वर्षका पुराना अस्थिपंजर नयी जवानी प्राप्त कर ले—इसके लिये वैज्ञानिक कायाकल्प अथवा आनुसान्धानिक अर्वाचीनीकरण ही एक मात्र साधन है। पुराने शरीरकी स्वस्थ हड्डियों, अन्तरंगादिकों तथा मस्ल नर्वादिक कर्मण्य-अंगावयवोंको यथापूर्व रहना चाहिये तथा बेकार बदगोश्तवत् बातोंको आयुर्वेदसे निकल जाना चाहिये जिस प्रकार आजकलके युद्धमें तीर-कमानसे तथा पहाड़-झाड़ी उखाड़कर लड़ने वाली बहादुरी हमारी आत्मरक्षाके लिये अपर्याप्त है—यद्यपि लंका फतह करनेके लिये किसी ज़मानेमें हमारे पूर्वजोंके लिये यही पर्याप्त थी—उसी प्रकार रोग-निदानका पुराना सिलसिला—नब्ज पकड़कर तीनों त्रैलौकिकोंके भूत, भविष्य और वर्त्तमानका ब्यौरा बक 'देना' इत्यादि वर्तमानमें आयुर्वेदके प्रतिष्ठित जीवन के लिये हास्यजनक है और इसके सुन्दर तथा सुवैज्ञानिक शब्दार्थको धक्का लगाने वाला है। आपकी किसी तरहकी "नयी खोज" का संसारमें कोई मूल्य नहीं है जब तक कि आपके आयुर्वेदका आर्वाचीनीकरण सर्वतोमुखी नहीं है—अर्थात् साहित्यमें तथा व्यवहारमें सोचनेके; तरीकेमें और नतीजा पर पहुँचनेमें; दत्तांकों (Data) को समझने तथा उनके अर्थको समझाने में।

सम्प्रति अर्वाचीनीकरणका विचार हम निम्न ब्यौरेसे करेंगे—

(१) साहित्यिक—पहला काम इस शीर्षकमें जीवन सम्बन्धी सभी विज्ञानोंको अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी—अथवा भावी तथा भूयमान नवायुर्वेद के प्रधान माध्यममें बोध्य एवं-पाठ्य बना देना है। इस कामके लिये आजकल प्रयत्न हो रहे हैं अवश्य, पर असंगठित और कुछ अन्य-मनस्क तरीके पर। साथ ही नवायुर्वैदिक नामकरणका प्रश्न ऐसा है जिसमें संगठन और अनुसन्धानसे ही आयुर्वैदिक साहित्यको थोड़े समय में अधिक और स्थायी लाभ हो सकता है। अनियंत्रित नामकरणसे पाठकों तथा छात्रोंको भाप के धोखे हो सकते हैं। उदाहरणके लिये एक शब्द इन्फ्लेमेशन (Inflammation) कोई लेखक "दाह" लिखता है कोई "शोथ" इत्यादि। बैक्टीरिया (Bacteria) और प्रोटोजोआ (Protoza) में बिना कोई भिन्नीकरणका भाव रखते हुये कोई "कीटाणु" लिखता है कोई जीवाणु इत्यादि। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञान परिषद्, साहित्य सम्मेलन या और कोई कमेटी संगठित होकर इस तरह के नामकरणोंका सोच समझके नियंत्रण और सञ्चालन करे तो बहुत अच्छा हो।

(२) सैद्धान्तिक—इस शीर्षकसे हम अपने पुराने आयुर्वेदके अच्छे सिद्धान्तोंको अर्वाचीनीकृत वेशमें संसारके सामने रखना चाहते हैं, तथा अपनी बेकार भ्रमकारक बातों को आयुर्वेदके पाठ्य तथा व्यवहार्य्य साहित्यके बाहर रखना चाहते हैं। उदाहरणार्थ

क—हमारा पुराना "त्रिदोष वाद" आजकलके वैज्ञानिक "एंडोक्रिनोलॉजी" से बहुत समाधानित हो रहा है। पुराने त्रिदोषवाद पर सिर्फ़ ढोल पीटने के बदले हम पित्ताधिक, वाताधिक तथा कफाधिक स्थितियोंके तरह तरहके बायोकेमिकल, मेटाबॉलिक या फिज़िओ पैथॉलॉजिकल अनुसन्धान करके रुग्नावस्थाओंके ऐसे बहुतसे व्यवहारिक विस्तारोंका पता लगा सकते हैं जिनके दत्ताङ्क संसारके निष्पक्ष और सार्वभौमिक अन्वेषकों पर अच्छा असर डाल सकें।

ख—यह मानी हुई बात है कि सुश्रुतकी गिनती वाली मनुष्यकी अस्थिपंजरकी हड्डियोंकी संख्या आजकी प्रत्यक्ष गिनतीसे नहीं मिलती। अर्वाचीनीकरण चाहता है हम आयुर्वेदके पाठक एवं व्यवहार्य ग्रंथोंमें "प्रत्यक्ष" के मुताबिक ही संशोधन कर लें। उसी तरह हमारी पुरानी फिजिऑलॉजीका अन्नसे लेकर वीर्य तक बनने का "गाथा क्रम" नितान्त भ्रममूलक है और यह ज़रूरी है कि इस तरह की सभी बातें आयुर्वेदसे हट जायँ।

(३) वैज्ञानिक—रोग-निदानका काम हमारे देशके पुराने सिलसिलेमें अभी तक बहुत जगह सिर्फ़ चाज्ञाको या बुझौवल-बुद्धिसे लिया जाता था। अर्वाचीनीकरण चाहता है कि यथा-साध्य सभी तरहके अद्यावधि-लभ्य वैज्ञानिक औज़ारों तथा तरीकों का व्यवहार करके हम मतलब निकालना सीखें। फिर अपने नवायुर्वैदिक साहित्य में भारतीयताकी छाप रखनेके लिये रोगों अथवा रोग

लक्षणोंके नामकरणमें जहाँ तक हो अपने देशी नामोंको ही अनुसन्धान-पूर्वक वर्तमान पैथॉलजी, फिज़िऑलजी तथा एनेटॉमीके शब्दोंमें स्पष्ट या परिभाषित करके सीखने और सिखाने लायक बना देवें।

(४) चैकित्सक-क-दवा सम्बन्धी—यह प्रसिद्ध है कि आयुर्वेदमें पहलेसे ही कुछ बहुत अच्छे-अच्छे योग हैं, परन्तु बाज़ारमें बिकने वाले किस योगको अच्छा कहा जाय और किसको ख़राब—उसके लिये अभी तक कोई दृष्टव्य आदर्श या कसौटीकी जाँच नहीं है, जैसा कि सभी सभ्य और स्वतन्त्र देशोंके "फार्मेकोपिआ" (भैषज्य संहिता) में हर एक दवाकी पहिचानका विश्वसनीय आदर्श या टेस्ट रक्खा जाता है यहाँ भी सभी व्यवहार्य शास्त्र-विहित औषधोंके लिये अनुसन्धान पूर्वक स्टैण्डर्डाइजेशन टेस्ट या बायलजिकल ऐस्सेइंगकी खोज निकालनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

पुराने आयुर्वेद में आजकलके जीवाणुओं तथा कीटाणुओं जैसे प्रत्यक्ष रोग-कारक और पूयकारक दर्शनीय तथा दृष्टव्य कारणोंकी ओर ध्यान जानेके अवसर कम थे। अतः इन जीवाणुओं तथा कीटाणुओंके सम्बन्धमें आविष्कृत-तथा चिकित्साके महत्वको बढ़ाने वाले तरह तरहके ऐंटिसेप्टिक, डिसइनफेक्टेण्ट, वैक्सिमो-सीरम तथा बैक्टिरियो-फाज एवं विशिष्ट रासायनिक या "केमोथीरापी" के सभी सफल साधनोंको आयुर्वेदमें बिना बिलम्ब जगह मिल जानी चाहिये। तरह उसी बिजली, एक्सरे, रेडियम तथा तरह तरह के दृश्य एवं अदृश्य नैसर्गिक शक्तियों का जहाँ तक हो व्यवहार करनेमें आयुर्वेदको ज़रा भी आना-क़ानी नहीं करनी चाहिए।

पेरेण्टेरल या इन्जेक्सन-मार्गसे औषध-सेवन पहले भले ही आयुर्वेदकी चीज़ न हो अब इसकी अपनी बात बन जाना चाहिये। शल्य व्यवहारका कोई भी तरीका चाहे वह भूमंडलके किसी भागसे निकला हो—आयुर्वेदमें चला आवे अगर रोगियोंके कष्टहरणमें वह वस्तुतः गुण-कारक हो। इसी तरह धातुविद्याके आधुनिक तरीके। वंश सुधारके नये नये विश्वस्त और स्वीकृत सिद्धान्त तथा अर्वाचीन मनोविश्लेषणके चैरिसिक व्यवहार हमारे आयुर्वेदके लिये "आत्मसात्" करने लायक हैं।

ख—भोजन सम्बन्धीः—जैसे-जैसे देशकी आबादी बढ़ती जा रही है। वैसे-वैसे "यन्त्रवाद" या कलपुर्ज़ेकी भरमार भी बढ़ती जा रही है। इस इंडिस्ट्रयलाइजेसनके और अधूरी सिविलाईजेशन की हालतमें हमारे जन-साधारणको प्रति दिन पहलेसे कहीं अधिक रोगोंसे मुकाबला करना पड़ता है। उनमें रोगक्षमता या अनाक्रम्यता प्राचुर्यको लानेके लिये हमारे आयुर्वेदको वैज्ञानिक तथा पूर्ण या "बैलेंस्ड" भोजन-व्यवस्था रखनी चाहिये प्रोटीन, फैट, कार्बोहाइड्रेट नमकीन पदार्थ, विटामिन और जलका सुन्दर प्राकृतिक अनुपात रहे। रोग-निवारण और वंशसुधारकी दृष्टिसे भोजनका अर्वाचीनीकरण हमारे आयुर्वेद के लिये बहुत ही महत्वका है इस सम्बन्धमें सिर्फ धार्मिक विश्वासोंको लकीरोंपर पुरानी रूढ़ियोंको खुश करते रहनेसे ही हमारा काम नहीं चलेगा और हमें आधुनिक विज्ञानों पर भरोसा रखके अपना कल्याण सोचना होगा।

आविष्करण

आयुर्वैदिक आविष्कारोंके लक्ष्यसे हम निम्न तीन शीर्षक पर विचार करेंगे। (१) औषधि-संबन्धी (२) भोजन सम्बन्धी (३) रोगोत्पत्ति सम्बन्धी।

(१) यों तो आयुर्वेद के नवायुर्वेदमें परिणत हो जाने पर एतद्विषयक संसारका सारा आविष्कृत ज्ञान आयुर्वेद का है और यहाँ का अर्वाचीनीकृत ज्ञान-भंडार सारे संसार का है—तिस पर भी हम कह सकते हैं कि प्रकृति ने हमारे वैज्ञानिक अध्ययन और आविष्कारके लिये वनस्पतियोंके प्राचुर्यको जितना इस देशमें छोड़ रक्खा है उतना कदाचित और किसी देशमें नहीं। हमारे यहाँ हिमालयस्थल भागों में ऊँचीसे ऊँची और समुद्रतल तक नीचीसे नीची जमीन, संसारमें सबकी मिट्टियोंसे मिलने वाली मिट्टियाँ और तदनुकूल जल-वायुके तारतम्य—इस प्रकार मौजूद हैं कि उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवके बीच शायद ऐसा पौधा कोई नहीं है जिसको अगर हम जीवित और जनितव्य हालतमें भारतवर्ष लावें तो कहीं न कहीं वह अच्छी तरह नहीं जम सके। कर्नल चोपड़ा तथा कीर्त्तिकर और वसु प्रभृति बहुतसे अन्वेषकोंने भारतके वानस्पत्य औषधों को असीमितसा बतलाया है। अतः

आयुर्वेदका आविष्करण संबन्धी पहला ओजःस्रोत इसी दिशामें पड़ना चाहिये। देशी औषधियोंके अनुसन्धानके काम जो कि आजकल विशेषकरके सिर्फ़ ट्रापिकल स्कूल ऑव मेडिसिन, कलकत्तेमें ही हो रहे हैं वे किसी भी अर्वाचीनीकृत आयुर्वैदिक शिक्षण-संस्था—अस्पताल, स्कूल या कालेजमें हो सकते हैं।

देशी वानस्पतिक दवाओंके अनुसन्धानमें हम सिर्फ़ अपने पुराने आयुर्वैदिक ग्रंथोंके सहारे या इशारे पर निर्भर न करके ग्राम्य-विशेषोंके दंतकथाओं तथा हिन्दुस्तानी हकीमोंके अनुभव और साहित्यसे भी मदद ले सकते हैं।

(२) भोजन सम्बन्धी—इस संबन्धमें खाद्य विश्लेषण प्रभृति छोटे-छोटे अनुसन्धान अभी तक जो कुछ हुए हैं वे प्रायः सल अमतों या उपरस्थ मध्यम श्रेणीकी दृष्टि या ज़रूरतोंके ख्यालसे आयुर्वेद को देशके ग़रीबोंसे अधिक सम्बन्ध है और होना चाहिये। अतः उनके खाद्य सामग्रियोंका विश्लेषण करके गुण दोषका जमा-खर्च बनाना इस तरह अनुसंधान हमारे भावी नवायुर्वैदिक अन्वेषकोंके सामने नाच रहे हैं। बहुतसे प्रांतीय अन्न और फल—बाजरा, टाँगून, ज्वार, सावां, महुआ प्रभृति अभी ठीक ठीक वैज्ञानिकतया विश्लेषित नहीं हो सके हैं। फल गुड़ प्रभृति खाद्य पदार्थोंको देहाती ढंगसे रखने पर क्या कभी दोष आ सकते हैं—इधर भी नवायुर्वैदिकोंका ध्यान आना चाहिए।

(३) रोगोत्पत्ति-सम्बन्धी

समय-समय पर अज्ञात-कारण रोग या महामारियोंसे नवायुर्वैदिक चिकित्सकोंको मुक़ाबला करना पड़ेगा ऐसे मौक़े पर आविष्कार यशके प्रेमी रोगोत्पत्ति पर नया प्रकाश डालकर आयुर्वेदका ज्ञान-भंडार बढ़ा सकते हैं। सम्प्रति "शिशु-यकृत" और एपिडेमिक ड्राप्सी जैसे रोग भारतमें आयुर्वेदकी आविष्करण निष्ठाका अन्दाज़ा लेना चाहते हैं।

उपसंहार—इसी शताब्दीमें शीघ्र या देर भारत एक स्वतन्त्र देश होगा और हिन्दी ही उसकी प्रधान भाषा होगी। आयुर्वेदको जो कि चन्द मतलबी लोगोंके न समझनेके कारण सिर्फ़ हिन्दुओंकी मजहबी चीज समझा जाता था अब औदार्य्य और सत्यनिष्ठाको ग्रहण कर के संसारके सामने अपने शब्दार्थको वैज्ञानिक वातावरण में सत्य करना होगा। निबन्धकी प्रस्तावित सभी बातोंको मान लेने पर आयुर्वेद वस्तुतः नवायुर्वेद बन जायगा। लेखककी विचार-धारा ऐसे ही लक्ष्यों पर अवलम्बित है जिनसे कि भावी राष्ट्रके सारे काम सैनिक या असैनिक नागरिक या ग्राम्य, चिकित्सा सम्बन्धी या रोग-निवारण सम्बन्धी तथा हिन्दुओंके या अहिन्दुओंके सिर्फ़ आयुर्वेद हीके नाम पर चल सकें।

पौधोंमें स्वेदन

[ले० श्री जगमोहन जी]

पौधोंमें स्वेदन-क्रिया किस तरह होती है ?

पौधे जिस क्रिया द्वारा पत्तियोंसे वाष्प निकालते हैं उसे स्वेदन कहते हैं। यह क्रिया मनुष्यके स्वेदनसे बहुत मिलती-जुलती है। जब किसी सतहसे वाष्प निकलती है तो वह सतह ठंडी हो जाती है। जब त्वचासे पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है तो रक्तकी गरमी कम हो जाती है और इस तरहसे शरीर ठंडा हो जाता है। घोड़ों और अन्य बच्चे देनेवाले जानवरोंमें भी पुरुषकी तरह पसीना निकलता है और इसके वाष्प बनकर उड़नेसे शरीरकी गरमी अधिक बढ़ने नहीं पाती। कुत्ते गरमीके दिनोंमें हाँपते दिखाई देते हैं। उनकी ज़बान और मुँहसे पानी वाष्प बनकर तेज़ीसे उड़ता रहता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह इस क्रिया द्वारा गरमीको झेल लेते हैं। पक्षियोंमें शारीरिक ऊष्माको समावस्थामें रखनेकी क्रिया अधिक पेचीदी है। शीत-रक्त जानवरोंमें यह शक्ति नहीं होती कि वह अपने शरीरकी गरमीको बनाये रख सकें। उनका ताप वातावरणके तापानुसार न्यूनाधिक होता

रहता है। पौधोंमें भी उष्ण-रक्त जानवरोंकी भाँति तापके परिवर्तनको सहनेकी सामर्थ्य होती है।

पौधोंमें स्वेदन-क्रिया किस अंगसे होती है ?

एक पौधेको गमले सहित ले लिया जाय और गमलेको मोमजामासे इस तरह ढक दिया जाय कि गमलेकी सतहसे वाष्प न निकलने पाये। अब पौधेको फानूससे ढक दिया जाय। कुछ घंटोंके बाद देखनेसे मालूम होता है कि पानीकी बूँदें फानूसके शीशे पर छा गई हैं। कभी ऐसा भी होता है कि फानूस धुँधला हो जाता है। फानूसके अन्दर पानी कहाँसे आया ? चूँकि गमलेकी सतह मोमजामा से ढक दी गई थी इसलिये स्पष्ट है कि यह पानी पत्तियों ही से निकला है। बस, अब तुम कह सकते हो कि पत्तियों द्वारा पौधे कार्बनका एकीकरण करते हैं और श्वासोच्छ्वास और स्वेदन करते हैं।

क्या पौधोंमें स्वेदन-क्रियाकी रफ़्तार सदा एकसी रहती है ?

स्वेदन-मापकयंत्र द्वारा कुछ मनोरम प्रयोग स्वेदन-क्रियाके संबन्धमें किये जा सकते हैं। एक यंत्रमें एक लम्बी नली होती है जिसका एक किनारा पानीके बरतनमें डूबा रहता है। दूसरे किनारेका सम्बन्ध एक चौड़ी नलीसे होता है जिसमें किसी पौधे या वृक्षकी टहनी लगा दी जाती है। इस यंत्रको पानीसे भर दिया जाता है और गर्म स्थानपर रख दिया जाता है। ज्योंही पत्तियोंसे वाष्प बाहर निकलती है पानी नलीमें चढ़ जाता है। यदि शीशेकी नलीको कुछ क्षणोंके लिये बरतनसे उठा लिया जाय और फिर पानीके बरतनमें रक्खा जाय तो हवाका एक बुलबुला नलीमें आ जाता है और बुलबुलेकी चालसे स्वेदनकी रफ़्तारका पता चल सकता है। यदि इस यंत्रको धूप अथवा तेज़ हवामें रख दिया जाय तो बुलबुलेकी चाल पहलेकी अपेक्षा बहुत तेज़ हो जाती है। विपरीत इसके यदि इस यंत्रको किसी ठंडे स्थानपर अथवा स्थिर हवामे रख दिया जाय या टहनीकी पत्तियोंको कम कर दिया जाय तो बुलबुलेकी रफ़्तार में कमी हो जाती है।

स्वेदन-क्रिया पत्तीकी कौनसी सतहसे अधिक होती है ?

स्वेदन-मापक-यंत्रकी चौड़ी नलीमें एक पत्तेदार टहनी लगा दी जाती है और नलीमें बुलबुलेकी रफ़्तार मालूम कर ली जाती है। इसके बाद सब पत्तियोंकी ऊपरी सतह पर वेसलीन लगा दी जाती है जिससे पत्तियोंकी ऊपरी सतह हवा और पानीके लिये अभेद्य हो जाय। फिर एक बुलबुला नलीमें लेकर इसकी रफ़्तारको मालूम कर लिया जाता है। पहली और दूसरी रफ़्तारमें बहुत अन्तर होता है। दूसरी टहनी लेकर फिर प्रयोग किया जाता है। इस टहनीकी भी स्वेदनकी रफ़्तार मालूम कर ली जाती है। इसके बाद सब पत्तियोंकी नीचेकी सतहों पर वेसलीन लगा दी जाती है। हवाके बुलबुलेको यंत्रमें लेकर देखनेसे मालूम होता है कि स्वेदन-क्रिया बन्द सी हो गई है।

स्वेदन-मापक-यंत्रके बदले कोबल्ट-क्लोराइड-कागज़से भी यह बात जाँची जा सकती है। कोबल्ट क्लोराइडके घोलमें सोख़्ताके टुकड़े डुबो दिये जाते हैं। तो फिर इन टुकड़ोंको सुखा लिया जाता है। भीगे हुये टुकड़ोंका रंग गुलाबी होता है मगर सूखने पर नीला हो जाता है। भीगने पर इसका रंग फिर गुलाबी हो जाता है। यदि सूखे हुये कोबल्ट क्लोराइड कागज़को पत्तियोंकी दोनों सतहों पर रखकर देखा जाय तो मालूम होता है कि नीचेकी सतहका रंग जल्द गुलाबी हो जाता है और ऊपरी सतहका बहुत धीरे-धीरे। इन दोनों प्रयोगोंसे सिद्ध होता है कि वाष्प अधिकतर पत्तियोंकी नीचेकी सतहसे ही निकलती है। इसका कारण यह है कि पत्तियोंकी ऊपरी सतह पर रन्ध्र बहुत कम होते हैं। पत्तियोंकी ऊपरी सतह पर सूर्यकी किरणोंका प्रभाव सीधा पड़ता है। यदि ऊपरी सतह मोटे कोष्ठोंसे सुरक्षित न रहे तो पत्तियाँ तेज़ीसे सूखने लगे और उनका काम नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। रन्ध्रकी कोमल रचना गरमी और पानीके तीव्र प्रहारको सह नहीं सकती। इसलिये अधिकतर पौधोंमें रन्ध्र पत्तियोंकी नीचेकी सतहपर होते हैं जहाँ वह बहुत हद तक सुरक्षित रहते हैं। पत्तीकी ऊपरी सतह प्रकाशके प्राप्त करनेके लिये बनाई गई है। अतएव उसमें आयताकार कोष्ठ होते हैं।

रन्ध्र स्वेदनमें किस तरह सहायक हैं ?

जिन रन्ध्रों द्वारा स्वेदन-क्रिया होती है उन्हें सूक्ष्मदर्शी यंत्रसे देखने पर मालूम होगा कि इनके इधर-उधर दो कोष्ठ होते हैं जिन्हें संरक्षक कोष्ठ कहते हैं। संरक्षक ने

कोष्ठोंमें हरा द्रव भी होता है। चूँकि संरक्षक कोष्ठोंकी अन्दरकी दीवारें पतली होती हैं इसलिये पानीकी प्रचुरतामें यह फूल जाते हैं और रन्ध्र बड़े हो जाते हैं। जब पानीका अभाव होता है तो संरक्षक कोष्ठ मुरझाकर चपटे हो जाते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि रन्ध्र बन्द हो जाते हैं। रन्ध्र पौधेके विस्मय-जनक यंत्र हैं जिनके द्वारा पौधे पानीके निकासमें ज़रूरत के हिसाबसे कमी या बेशी कर सकते हैं। यदि मृत पौधोंकी तुलना जीवित पौधोंसे की जाय तो मालूम होगा कि मृत पौधोंसे पानी वाष्प रूपमें अधिक निकलता है। कभी-कभी जब पानीका बाहुल्य होता है, रन्ध्र द्वारा पानीकी बूंदें निकलती है जो प्रातःकाल घासकी जातिके पौधोंकी पत्तियोंकी नोकोंसे लटकती हुई दिखाई देती हैं ?

पौधे स्वेदनमें कमी और किस तरह करते हैं ?

बहुतसे पौधे सर्दीकी ऋतुमें अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं, परन्तु इसके पहले निशास्ता छालकी विशेष तहमें चला जाता है जहाँ यह सुरक्षित रहता है और वसंत-ऋतुमें नई पत्तियोंके बनानेमें खर्च होता है। इन पत्तियोंका सूक्ष्म रूप तो पहले ही से मौजूद होता है। पतझड़के बाद इन पर छोटी-छोटी घुंडियाँ सी होती हैं जिन्हें कलियाँ कहते हैं। ये कलियाँ आगामी ऋतुकी टहनियाँ हैं। पत्तियाँ छिलकोंसे सुरक्षित रहती हैं। वसंत-ऋतुमें छिलके झड़ जाते हैं और नई पत्तियाँ निकल आती हैं।

स्वेदनके ज्ञानसे मनुष्यने क्या लाभ उठाया है ?

मनुष्यके लिये पौधोंकी स्वेदन-क्रिया बड़े महत्वकी चीज़ है। पौधोंकी स्वेदन-क्रिया पानी बरसानेमें बहुत सहायक होती है। पीपलके वृक्षकी तरफ़ देखो। इसमें कितनी पत्तियाँ है ? अब अनुमान करो कि वृक्षसे कितनी वाष्प निकलती होगी। बनमें इस तरहके सहस्रों वृक्ष होते हैं, फिर उनसे कितनी वाष्प निकलनी चाहिये ? यदि पौधे पृथ्वीसे पानी लेकर अपने शरीरके अन्दर ही रख लेते तो बहुत कम वर्षा होती। यही वजह है कि जब किसी स्थान के जंगल काट दिये जाते हैं तो उस स्थानकी वर्षा कम हो जाती है। विपरीत इसके जब सूखे प्रदेशोंमें वृक्ष लगाये जाते हैं तो वहाँकी वर्षा बढ़ जाती है। जंगल आस-पास के प्रदेशोंको ठंडा रखते हैं।

पौधोंकी स्वेदन और श्वासोच्छ्वास-क्रियाके ज्ञान किसानका बड़ा उपकार किया है। ग्रीष्म ऋतुमें मवेशियोंके लिये हरे चारेकी कमीको दूर करनेके लिये एक क्रिया की जाती है जिसे चारा-संरक्षक-विधि कहते हैं। इस तरीकेसे बहुतसे पौधोंको सुरक्षित रक्खा जा सकता है, परन्तु इस ओर ध्यान दिया जाय कि फ़सलको पकनेसे कुछ पहले अथवा बीज या दाना निकलना शुरू होते ही काट लिया जाय। इस मौक़ेपर पौधोंमें इसकी मिक़दार यथेष्ट होती है और कोष्ठोंकी दीवारोंमें काष्ठ अधिक नहीं होता वरन् इनमें ऐसे पदार्थ होते हैं जिनसे मीठा चारा तैयार होता है। इस अभिप्रायसे ताज़ी हरी फ़सलको काटकर गड्ढोंमें भर दिया जाता है; फिर अच्छी तरह दबाया जाता है। इस बातका विशेष ध्यान रक्खा जाता है, कि श्वासोच्छ्वास और स्वेदनसे पौधोंको अधिक हानि न होने पाये और चारा लगभग ताज़ी अवस्थामें सुरक्षित रहे। चारेको कीटाणुओं द्वारा सड़नेसे बचानेके लिये जर्मनीके डाक्टर रोजान (Rojohn) ने यह तजवीज़ पेशकी है कि चारेमें ऐसा घोल मिला दिया जाय जिससे गंधकका आक्साइड और फारमेलीनके वाष्प निकलते रहें। यह घोल फ़सलके लिये अहितकर नहीं होता, मगर कीटाणुओंकी क्रिया रोक देता है; फिर भी ऐसे कीटाणु बच जाते हैं जो चारेको उपादेय बना देते हैं। यह पौधोंके कोष्ठों की शकरको दूधाम्ल में बदल देते हैं। जर्मनीमें इनकी कीटाणुओंकी क्रियाको उत्तेजन करनेके लिये चारेके गड्ढोंमें चारेके साथ शकरामल (Molasses) मिला दिया जाता है फिनलैंडके डाक्टर विर्टानन (Dr. Virtanen) ने भी चारेको उपादेय बनानेके लिये एक नया तरीक़ा निकाला है। इस तरीकेमें चारेके साथ नमक और गंधकके तेज़ाब का मिश्रण मिला दिया जाता है। ऐसा करनेसे चारा कुछ अम्ल हो जाता है और श्वासोच्छ्वास द्वारा कोष्ठोंके पदार्थोंका टूटना-फूटना न्यूनतम हो जाता है।

क्या पौधे अपने वातावरणके अनुकूल बदल जाते हैं ?

पानीकी प्रचुरता अथवा न्यूनताके अनुकूल पौधोंके शरीरमें बहुतसे परिवर्तन पाये जाते हैं। जिस तरह वातावरणने जानवरोंकी शरीर-रचना पर प्रभाव डाला है

उसी तरह पौधों परभी। लम्बे-लम्बे वृक्षोंसे भोजन प्राप्त करनेकी टेवने जिस तरह जिराफ़की गर्दनको लम्बाकर दिया उसी तरहसे यह भूमि और अन्य प्रदेशोंके पौधोंको भी अपने जीवन-निर्वाहके संग्राममें ऐसे गुण प्राप्त हुये जिनकी मददसे वे जीवित हैं। नीचे कुछ पौधोंका ज़िक्र किया जायगा जिनमें वातावरणके अनुसार गुण पाये जाते हैं।

कँवल:—यह तालाबोंके ठहरे हुये पानीमें पैदा होता है। इसकी पत्तियाँ पानीकी सतह पर तैरती है और इन्हें सहारा देनेके लिये मज़बूत तनोंकी जरूरत नहीं होती। निरीक्षण करने पर डंठल हलका और नर्म मालूम होता है। इसमें बहुत सी हवाई कोठरियाँ होती हैं जिनकी वजहसे यह पानीमें सीधे खड़े रहते हैं। डंठलमें पानी ले जाने वाली नलियाँ (पन-नलियों) की बहुत कमी होती है क्योंकि पानी चूसने के लिये यह जड़ोंके आश्रित होती हैं। हलका और नर्म होनेके कारण डंठल बिना टूटे हुये इधर-उधर आसानीसे झुक सकता है। डंठल बड़े होते हैं। जब पानी बढ़ जाता है तो डंठल बड़े हो जाते हैं। कँवलकी पत्तीकी ऊपरी सतह मोटी होती है। इस पर मोमकी एक तह जमी होती है जिसकी सबबसे यह सूखी बनी रहती है। पत्तीकी नीचे सतह पतली होती है और यह सदा पानीमें रहती है। रन्ध्र कँवलकी ऊपरी सतह पर होते हैं क्योंकि नीचेकी सतह पर इनका होना बिलकुल निरर्थक होगा। पत्तियोंके डंठल पर लम्बे मोटे हिस्से से लगे रहते है जो कीचड़में मौजूद होता है। इस लम्बे मोटे हिस्सेसे जिसे भूप्रकांड कहते हैं, जड़ें निकलकर कीचड़में धँस जाती हैं। भू-प्रकांड और जड़ोंमें भी हवाई कोठरियाँ होती हैं। रन्ध्रके द्वारा घुसकर हवा डंठल, भू-प्रकांड और जड़ों तक पहुँच जाती है। हवाई कोठरियोंसे इन पौधोंको तैरानेमें मदद देती हैं। इसके सिवाय इन कोठरियोंसे पानीके पौधोंको एक लाभ और है। पानीके पौधे इन कोठरियोंमें अक्सीजन इकट्ठा रखते हैं क्योंकि पानीमें जिस मिकदारमें घुसी हुई आक्सीजन पायी जाती है वह उनके लिये पर्याप्त नहीं होती। साधारणतया जड़ोंके दो काम होते हैं:—(१) ज़मीनसे पानी चूसना (२) पौधेको मज़बूतीसे जकड़े रखना। किन्तु कँवलके पौधेमें जड़ोंका पानी चूसता नहीं है। इनका काम केवल इतना ही है कि पौधेको कीचड़में थामे रहे। कुछ पानीके पौधे ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध कीचड़से नहीं होता। यह पौधे अधर तैरते रहते है।

जिस तरह कँवलका जीवन पानीमें रहनेके लिये उपयुक्त है उसी तरह घूअर, नागफनी इत्यादि पौधोंका जीवन सूखे, गरम और रेतीले स्थानके लिये उपयुक्त हैं। परमात्माने इन पौधोंको ऐसे उपायोंसे सुसज्जित किया है कि थोड़ा पानी मिलने पर भी वह अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। घूअर, नागफनी और सेवड़में इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पत्तियाँ नहीं होती, अगर होती भी है तो काँटोंकी शकल की। तने पत्तियोंकी शकल के होते हैं और रश्मि-संयोग-क्रिया इसके सिवाय इन पर मोटा छिलका रहता है जिस पर मोमकी तह होती है। इनकी वजहसे वाष्पके निकासमें बहुत कमी हो जाती है। इन पौधोंमें रन्ध्र बहुत कम होते हैं और यह पत्तियोंके भीतरी भागमें पाये जाते हैं। इसलिये अधिक पानी नहीं चूस सकतीं। अतएव प्रकृतिने इन पौधोंके तनों और पत्तोंमें ऐसी बात पैदा करदी है कि वह बहुतायतसे मेंहका पानी इकट्ठा रख सकते हैं। यही कारण है कि इनकी पत्तियाँ और तने मोटे और रसदार होते हैं।

आस्ट्रेलियामें यूकेलिप्टसके समान पौधोंने स्वेदन क्रियाको रोकनेके लिये दूसरा ही तरीका अंगीकार किया है। यह अपनी पत्तियोंको तने पर इस तरह कर लेते हैं कि सूर्यके प्रकाशके सामने खड़ी रहें। इस तरकीबसे उनमें स्वेदन कम हो जाता है।

सूखे, गरम और रेतीले स्थानोंके सिवाय इस किस्मके पौधे समुद्रके किनारे, दलदली जगहों पर और उच्च स्थानों पर भी पाये जाते हैं। समुद्रके किनारे और दलदली स्थान पर यद्यपि पानीकी बहुतायत होती है मगर इन स्थानोंके पानीमें नमक और तेज़ाबके सदृश मारक चीज़ें मौजूद होती है जिनकी ज़्यादा मिकदार पौधोंके लिये हानिकारक होती है। अतएव ऐसे पौधोंमें भी वह तरकीबें होती हैं जिनसे वाष्प कम निकले, अन्यथा अधिक वाष्प निकलनेकी अवस्थामें अधिक पानी चूसा जायगा और पानीके साथ नमक इत्यादि हानिकारक चीज़ें पौधोंके भीतर इकट्ठी हो जायँगी जिनकी ज़्यादती पौधोंके लिये मारक है।

मज़दूरीके तरीक़े

[ले०—श्री ओंकार नाथ शर्मा]

(लेखकको "औद्योगिक प्रबंध" नामक अप्रकाशित पुस्तक का पाँचवाँ अध्याय)

कोई मनुष्य, किसी दूसरे मनुष्यसे अपने या अपने मालिकके वास्ते कोई शारीरिक काम करवा कर, काम करने वालेको उसके गुज़ारेके लिए पूर्व निश्चित हिसाब से जो पैसा या वस्तु देता है वह मज़दूरी कहलाती है। जब कि काम करने वाला काम करवाने वालेकी इच्छा और आदेशोंके अनुसार लगातार काम करे तब तो उसे दिया हुआ पैसा-मज़दूरी कहलाता है और जब कि काम करने वाला बिना काम करवाने वालेके आदेशके अपनी इच्छासे अपने भरोसे छोड़े हुये कामको करता रहे तो उसका मेहनताना वेतन-तनख़्वाह कहलाता है।

आजकलके कारखानोंमें कारीगरों और कुलियोंको मेहनताना देनेके कई तरीक़े प्रचलित है जिनमेंसे खास-खास तरीकोंका वर्णन यहाँ किया जायगा।

१—समयकी मज़दूरी अथवा रोजन्दारीकी तनख़्वाह:—यह तरीका सबसे पुराना है, लेकिन बड़े कारखानोंके कई विभागोंमें अब भी यह चालू रहता है, क्योंकि वहाँ दूसरे तरीक़े काममें नहीं लाये जा सकते। उदाहरणके लिये फरमा-घर या औज़ार-घरको हम ले सकते हैं, क्योंकि वहाँ कोई ऐसा काम नहीं बनता जो कि बार-बार बनाया जाता हो। ऐसी जगहोंमें यदि हम किसी होशियार कारीगरको किसी प्रकारके प्रलोभनसे दबा कर जल्दी काम निकलवाना चाहें तो बहुत कुछ सम्भव है कि जल्दी-जल्दी में कामको वह उतना सही नहीं बना सकेगा जैसा पहिले तसल्लीमें बनाता। इसलिये वहाँ समय बचानेसे इतना लाभ नहीं होगा जितना कि गलत काम करनेसे नुक़सान हो जायगा। साथ ही, जब तक कि एक ही कामको कई बार न दुहराया जाय, हम कामकी दर भी नहीं निश्चित कर सकते। इसी प्रकार, कुलियोंके कामकी दर निश्चित नहीं की जा सकती, क्योंकि उन्हें भी कई प्रकार का काम करना होता है। इसलिये कारीगरों और कुलियोंसे पूरा-पूरा काम लेनेका भार मिस्त्री और फोरमैनों पर ही रह जाता है, और कारीगरोंको दिनके घंटोंके हिसाबसे मज़दूरी दे दी जाती है चाहे काम कितना भी निकले।

कारखाने भरके सब कर्मचारियोंको इसी हिसाबसे मेहनताना देनेमें सबसे भारी नुक़सान यही है कि अधिक काम करने वाले होशियार कारीगरको कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता और वह भी आगे चलकर ढीला पड़ जाता है, क्योंकि उसके साथ काम करने वाले जो कि उससे भी सुस्त और कम होशियार हैं उतना ही पैसा कमाते हैं।

२—कामकी मात्रा पर मज़दूरी अथवा ठेका:—

इस तरीक़ेके अनुसार, पुराने अनुभवके बल पर किसी कामको करनेके लिये जो समय लगता है उसके अनुसार उस कामकी मज़दूरी मुक़र्रर कर दी जाती है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि किसी उचित तरीक़ेसे कोई कारीगर किसी कामको २ घंटेमें पूरा करता है और प्रति घंटा उसकी मज़दूरीकी दर ।) है तो उस कामकी मज़दूरी ॥) पक्की बाँध दी जायगी। अब मान लीजिये कि वह उस कामको डेढ़ घंटेमें पूरा कर देता है, तो उसे अब डेढ़ घंटेमें ही ॥) मिल जावेंगे, अर्थात् पहिले यदि उसे दिन भरमें नौ घण्टा काम कर २।) मिल जाते थे तो अब उसे ३) मिले, अथवा यों कहिये कि उसे ।॥) का फ़ायदा हो जायगा जिससे उसका अधिक काम करनेको जी चाहेगा। अब मान लीजिये कि वह उसी कामको सुस्तीके साथ ३ घण्टेमें पूरा करता है तो उसे दिनमें ९ घण्टे काम करनेके बाद १॥) ही मिलेगा। कई बार ऐसा भी होता है कि कारीगर लोग अधिक पैसेके लोभमें काम तो बहुत सा करते हैं, लेकिन वह नुक़सानी होता है। इसलिये कारखानेदार उसकी मज़दूरी चुकानेके पहिले निरीक्षण (Inspection) करवाते हैं और प्रत्येक नुक़सानी माल का घाटा सहनेके लिए किसी हद तक कारीगरको ज़िम्मेदार ठहराया जाता है, फिर भी कारीगर लोग अपनी आमदनी को डेढ़ी और दुगनी तक कर लेते हैं, जिसका कई बार फल यह होता है कि कारखानेदारोंके मुँहमें रेट घटानेके

पानी भर आता है और वे मज़दूरीकी दर घटा भी देते हैं। इसका फल यह होता है कि कारीगर लोग एक खास हद्दसे आगे जो उन्हें हानिकारक पड़ती है, काम नहीं करते, उसका नतीजा कारीगरीके विकास पर बुरा पड़ता है। हाँ, उन्नत यंत्रों और तरीक़ोंके आविष्कार अथवा किसी अन्य न्याय-संगत कारणके उपस्थित होने पर यदि मज़दूरी की दर घटाई जावे तब तो और बात है, लेकिन फिर भी इससे मज़दूर और मालिकोंमें ग़लतफ़हमीके कारण असंतोष फैल ही जाता है।

३—बढ़ोत्तरी (Premium) पर मज़दूरीका तरीका:—आजकल कई प्रकारके बढ़ोत्तरीके तरीके प्रचलित है, लेकिन वे सब ठेकेके ही विकसित रूप हैं। लगभग इन सब तरीकोंमें कारखानेदारोंको भी बचतका फायदा मिलता है, और कई तरीके तो ऐसे हैं कि उनमें एक हद्दसे आगे कारीगरकी अपेक्षा क़ारखानेदारको फ़ायदेका हिस्सा अधिक मिलता है।

ठेकेके तरीक़ेसे इसमें पहिला फ़र्क़ यही है कि कारीगर कितना भी काम करे उसे नुकसान नहीं होता, अर्थात् उसे उसकी रोज़ानाकी मज़दूरी तो मिल ही जायगी जो कि उसके समयके हिसाबसे होती है। इस तरीक़ेमें भी हर एक कामका मेहनताना पुराने अनुभव पर मुकर्रर कर दिया जाता है और बार-बारमें उसकी फेर बदल नहीं करते जब तक कि या तो उस कामके करनेके उन्नत प्रकारके यंत्र न ईजाद हो जावें अथवा किसी नये तरीकोंके अनुसार उस कामके विभाग न हो जावें। बढ़ोत्तरीके तरीक़ोंमें से दो तरीक़े सबसे अधिक प्रचलित हैं, एक तो "हैलसे" का तरीक़ा और दूसरा "रोवन" का तरीक़ा, इन दोनों तरीकोंका यहाँ वर्णन किया जाता है।

हैलसे (Halsey) के तरीक़ेके अनुसार कारीगर जितना समय बचाता है उसका ३० से ५० प्रतिशत तक उसके साधारण प्रति घण्टा मेहनतानेके हिसाबसे उसे दे दिया जाता है, लेकिन कितना प्रतिशत दिया जाय यह बात कामके मुश्किल अथवा आसान होनेके दरजे पर है। इस प्रकारसे काम करने वाले कारीगरोंके किये हुए कामको खूब अच्छी तरहसे जाँच-पड़ताल (Inspection) की जाती है। इसमें भी कुछ खरचा तो होता ही है लेकिन वह, कारखानेदार, समयकी बचतके अपने फ़ायदेके हिस्से में से, देता है। इस तरीकेमें कुछ परिवर्तन कर कमती और ज़्यादा मज़दूरी पाने वाले कारीगरोंको भी एक ही काम पर लगाया जा सकता है, लेकिन एक सी ही मज़दूरी पाने वाले कारीगरोंको एक प्रकारके काम पर लगानेका अधिक रिवाज है। यह अकसर देखा भी गया है कि थोड़ी मज़दूरी पाने वाले सुस्तीसे काम किया करते हैं।

रोवन (Rowan) के तरीक़ेके अनुसार कामके करनेके नियत समयमेंसे कारीगर जितना समय बनाता है उसीके अनुपातसे उसको मजदूरी प्रति घंटा बढ़ा दी जाती है। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि किसी कामको पूरा करनेके लिये छः घंटेका समय नियत है, और यदि कोई कारीगर उसे चार घंटेमें ही कर दे तो वह ३३⅓ प्रतिशत समय बचाता है। अब यदि उसे १॥) प्रति घंटा वेतन मिलता है तो उसे इस मौके पर २) प्रति घंटा मिलेगा।

प्रत्येक कामको करनेका समय भिन्न-भिन्न दरजेके कारीगरोंके लिये भिन्न-भिन्न होता है, और समय बचानेके बदलेमें जो बढ़ोत्तरी अथवा इनाम प्रत्येक कारीगरको दी जाती है वह भी कारीगरोंके दरजेकी अनुसार होती है।

सरसरी तौरसे विचार करने पर तो यही मालूम होता है कि हैलसे और रोवन के तरीक़ोंमें बहुत थोड़ा अन्तर है, लेकिन यदि हम कोई विशेष उदाहरण लेकर दोनों तरीक़ोंसे हिसाब लगावें तो स्पष्ट हो जायगा कि हैलसेके तरीक़ोंके अनुसार समयकी बचतका लाभ कारीगरों और कारखानेदारोंमें एक ही अनुपातमें बँटता है, इसके विपरीत रोवन के तरीकेके अनुसार थोड़ी बचत करने पर कारीगरको कारखानेदारसे अधिक हिस्सा मिलता है, और ज्यों-ज्यों बचत अधिक होती जाती है कारीगरका हिस्सा कम होता जाता होता है और कारखानेदारका बढ़ता जाता है। यदि इस तरीक़ेका उपयोग किया जाय तो कारखानेदार को जैसा पहिले कहा जा चुका है लोभमें फँसकर कामकी दरको कम करनेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी, लेकिन अधिक बचत कर दिखानेमें कारीगरको कोई प्रलोभन नहीं रहता।

दोनों प्रकारके तरीक़ोंके अनुसार कारीगरोंकी मज़दूरी का हिसाब लगानेके नियम यहाँ दिये जाते हैं।

हैलसेका तरीक़ा—

(काम किये घंटे × घंटेकी मज़दूरी) + (समयको बचत का नियत प्रतिशत भाग × घंटेकी मज़दूरी)

रोवनका तरीक़ा—

(काम किये घंटे × घंटेकी मजदूरी +) $\left\{ \frac{\text{बचतके घंटे} \times \text{काम किये घंटे}}{\text{निश्चित समय}} \div \text{घंटेकी मज़दूरी} \right\}$

४—गैनटका मज़दूरी पर इनामका तरीक़ा (Gantt's task bonus wage system)—यह तरीक़ा बहुत प्रचलित तो नहीं है लेकिन बड़े-बड़े कारखानोंमें जहाँ इसको चालू किया बड़ा संतोषप्रद नतीजा मिला है। इस तरीक़ेके चालू करने वालोंको समयका बड़े ग़ौरसे अध्ययन (Time study) कर प्रत्येक काम के लिये ठीक-ठीक समय निश्चित करना चाहिये। साथ ही ऊपरी प्रबन्धके खर्चोंकी भी खूब छानबीन करनी चाहिये जिससे इनामका प्रतिशत अनुपात लगानेमें सहायता मिले प्रत्येक कामको ठीक-ठीक तरीक़ोंसे करनेका इनाम कारीगर को उसी समय दिया जाता है जब कि वह उस कामको निश्चित समयके भीतर पूरा कर देता है। यदि कारीगर अपने कामको निश्चित समयसे पहिले पूरा कर देता है तो उसे उस निश्चित समयकी मज़दूरीके अतिरिक्त जितने समय में वह कामको वास्तवमें पूरा करता है उस पर इनाम दिया जाता है। निम्नलिखित उदाहरणसे यह विषय स्पष्ट हो जायेगा।

उदाहरण—मान लीजिये किसी कामको करनेका समय ६ घण्टे निश्चित किया गया है और उसका इनाम ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत है और कारीगरका मेहनताना १॥) प्रति घण्टा है तो ऐसी हालतमें :—

(क)—यदि वह ७ घण्टेमें उस कामको पूरा करता है, तो उसे एक घण्टा अधिक खर्च करनेके कारण कोई इनाम नहीं दिया जाता, केवल ७ घण्टेकी मज़दूरी ही दे दी जाती है जो कि १०॥) होती है।

(ख)—यदि वह ६ घण्टेमें कामको पूरा करता है तो उसे—

६ घंटेकी मज़दूरी १॥) प्रति घंटाके हिसाबसे......९)
६ घंटेका इनाम १॥) का ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत फी घंटाके हिसाबसे...................३)

योग १२)

(ग)—यदि वह कामको ५ घंटेमें पूरा करता है तो उसे—

६ घंटेकी मज़दूरी जो कि उस कामके लिये निश्चित है १॥) प्रति घंटाके हिसाबसे............९)
५ घंटेका इनाम १॥) का ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत फ़ी घंटाके हिसाबसे..........................२॥)

योग ११॥)

ऊपरके उदाहरणसे मालूम होगा कि यदि इनामकी दर ऊपरी प्रबन्धके ख़र्चेसे समतुलित करके रखी जावे तो कामको करवानेका ख़र्चा तो क़रीब-क़रीब एकसा ही रहेगा लेकिन कारीगरको समय बचानेके बदलेमें इनामके कारण प्रति घंटा मजूरी अधिक मिल जायगी। यह बात ऊपरके उदाहरणमें ही निम्न प्रकार स्पष्ट हो जाती है, यथा :—

जब काम ७ घंटेमें किया तब प्रति घंटा १॥) मजूरी मिली

जब काम ६ घंटेमें किया, तब प्रति घंटा २) मजूरी मिली

जब काम ५ घंटेमें किया, तब प्रति घंटा २।)॥। से कुछ अधिक (२ रु० ४$\frac{4}{5}$ आ०) मजूरी मिली

मज़दूरीका इनाम देनेके कई और भी तरीक़े उपरोक्त तरीक़ेसे थोड़ी बहुत भिन्नता लिये हुये मिलेंगे।

५:—हिस्सेदारीकी मजदूरीका तरीका:—

जिन तरीक़ोंसे मजदूरों को संस्थाके फ़ायदेमेंसे कुछ हिस्सा मिलता है उसे हिस्सेदारीकी मज़दूरी (Copartnership) का तरीक़ा कहते हैं। हिस्सेदारीके तरीक़ों में संस्थाके सब कर्मचारियोंके सम्मिलित प्रयत्नसे संस्थाको जो लाभ होता है उसका कुछ अंश सबमें किसी उचित तरीक़ेसे बाँट दिया जाता है।

इसलिये प्रत्येक मज़दूर स्वयं तो मेहनतसे काम करता ही है लेकिन साथ हीमें यह भी चाहता है कि उसके अन्य साथी भी ध्यानसे अच्छा काम करें जिससे संस्थाको फ़ायदा हो। इस प्रकारसे वह स्वयं संस्थाका एक आवश्यक और उपयोगी अंग हो जाता है।

कई लोग यह दलील करते हैं कि मज़दूरको कुल संस्थाके लाभमेंसे हिस्सा मिलना एक बड़ी दूरकी बात हो जाती है। इसलिये एक साधारण बुद्धि वाले कारीगर या कुलीको अधिक परिश्रम करनेके लिये कैसे प्रोत्साहन मिलेगा। उसके अन्य सहकारियोंका ईमानदारीसे मेहनत करना या न करना तो उसके क़ाबूकी बात नहीं है। इसका उत्तर यह है कि जिन संस्थाओंमें यह तरीक़ा चालू होता है उनके डाइरेक्टरोंके बोर्डमें मज़दूरोंका भी कुछ निर्वाचित प्रतिनिधित्व रहता है जिससे उन्हें काफ़ी तसल्ली रहती है। साथ ही संस्थाके प्रबन्धमें उनका साथ होनेके कारण और भी अनेक प्रत्यक्ष फ़ायदे होते रहते हैं, और खासकर मज़दूरों और कारखानेदारोंके बीचमें जो झगड़े अन्य जगह रहा करते हैं वे शान्त रहते हैं और प्रत्येक सालके अन्त में मज़दूरोंको कुछ पैसा भी प्रत्यक्ष रूपसे मिल जाता है। देखा गया है कि ऐसी जगहों पर मज़दूर लोग चोरी बहुत कम करते हैं।

कई कारखानोंमें ऐसा भी रिवाज होता है कि प्रत्येक मज़दूरके सालाना नफ़ेके हिस्सेमेंसे कुछ अंश काटकर कारखानेकी पूँजीमें शामिल कर दिया जाता है, जिसका नतीजा यह होता है कि कुछ सालमें मज़दूर अपनी हैसियतके अनुसार काफी बड़े हिस्सेका मालिक हो जाता है और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है उसका सम्बन्ध कारखानेसे अधिकाधिक दृढ़ होता जाता है।

(शेष फिर)

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५० | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | जनवरी, सन् १९४० ई० | संख्या ४

गुड़ वाली रोटीका रहस्य

(लेखक—श्री स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

अभी थोड़े दिनसे अमृतसर, लाहौर, देहलीमें हर एक बीमारी पर जनता घर-घरमें एक हाँडीमें गुड़ और पानी डाल कर उसमें पहिले बनी हुई गुड़ रोटी वाला पानी डाल कर बन्द करके रख देते हैं। कुछ दिनमें उस हंडीके गुड़-पानीके घोलमें एक रोटीसी ऊपर बनकर आ जाती है। उस समय उस रोटीको निकाल कर उसमेंका अवशेष पानी पीते हैं तथा नई हंडीमें फिर उस पानीका थोड़ासा पानी और गुड़ तथा ताज़ा पानी डालकर फिर उसे ढक कर रख देते हैं। जब रोटी पड़ जाती है तो उस जलका उपयोग करते हैं और आगेसे आगे उसको बाँट कर नई-नई हण्डी लोग तैयार करते रहते हैं। किसीको बुखार हो, खाँसी हो, कुष्ठ हो, रक्त-विकार हो. कोई बीमारी राज़ी न होती हो वह इस तरह गुड़ रोटीका पानी बना कर पीते हैं। यह हर बीमारीको दूर करनेका नुसख़ा उपरोक्त तीन चार शहरोंमें बड़े जोरसे बवाई बीमारीकी तरह फैला हुआ है और पिछले दिनों जब महात्मा गांधी जी देहली पधारे तो किसी सज्जनने यह तोहफा महात्मा जीको इसलिये शायद भेंट किया कि आप भी सेवन करें और देखें। सम्भव है आपका रक्तचाप (ब्लड प्रशर) इसके सेवनसे दूर हो जाय। महात्मा जी इस तोहफेको अपनी कुटियामें ले जाकर रख आये हैं और उस सज्जनसे जाते समय कहा था कि हम इसको देखेंगे।

यह सर्व रोगहर नुसख़ा कहाँसे मिला, और कैसे मिला ? इसकी खूब किंवन्तियाँ गढ़ी गई हैं और वह किम्वदन्तियाँ इतनी रोचक बनाई गई हैं कि सुनने वाला कहने वालेकी बातों का सहसा विश्वास कर लेता है। यह गुड़ वाली रोटी क्या है ? और कैसे बनती है ? तथः इसमें रोग-नाशक शक्ति है या कल्पना मात्र, इसके रहस्य पर हम कुछ प्रकाश डालेंगे ताकि जनताका भ्रम दूर हो जाय।

गुड़ वाली रोटी क्या है ? और कैसे बनती है ?—जो व्यक्ति शराब बनाते हैं या सिरका बनाते हैं अथवा जो

वैद्य आसव अरिष्ट बनाते हैं उनसे छिपा नहीं है कि कई बार गुड़ पानी मिलाकर इसमें कुछ सन्धान उत्पन्न करने वाला-सिरका, आसव आदि किसी वस्तुका थोड़ासा जामन-उसमें डाल दें और उस बर्तनको ढक कर रख दें तो उस बर्तनमें सन्धान या खमीर उठ खड़ा होता है और ८-१० दिनमें सन्धानके पूरा हो जाने पर यदि उसे उसी तरह पड़ा रहने दें तो कुछ दिनोंमें उस घोल पर एक मलाईसी तह फफूँदीकी आने लगती है जो धीरे-धीरे मोटी होती जाती है। यह रोटी उस बर्तनके अनुसार-जितना जल हो-उसको ढके हुए बन जाती है। प्राय: यह रोटी आसव व सिरके बिगड़ने पर अधिक बनते देखी जाती है। इस रोटीको निकाल कर उस जलको छान लेते हैं। इस जलको बीमारियोंमें पिलाते हैं। यह वास्तवमें आसवका एक विकृत रूप है और उस समय गुड़के मीठेसे बनता है जब गुड़-को जलमें घोलकर उसमें थोड़ासा इसीका जामन लगा दें। जामनमें एक प्रकारके कीटाणु होते हैं जिनका नाम यीस्ट (ख़मीर) है। यह कीटाणु जब किसी मीठाके घोलमें पहुँच जाते हैं तो मिठाईके कणोंको खाने लगते हैं और उनकी भोजन-प्रक्रियासे गुड़का मीठापन नष्ट होने लगता है और उसके स्थानपर मद्य बनने लगता है। जब तक मद्य बनता रहता है तब तक तो उस मीठा घोलपर कोई मलाई नहीं आती। जब उस घोल का मीठा खाया जाता है और खमीरका उठना बन्द हो जाता है, तब उस घोलपर उन यीस्ट कीटाणुओंकी मलाई आने लग जाती है। जिसे फफूँदी भी कहते है, थोड़े दिनमें वह रोटीसी मोटी हो जाती है। इस रोटीको निकाल कर अलहदा कर दें फिर भी उस जलमें यीस्ट-कीटाणु असंख्यात् होते हैं। यह एक प्रकारके वानस्पतिक कीटाणु हैं। इन कीटाणुओंमें विटेमिन (बी) होता है। यह विटेमिन या खाद्योज निम्नलिखित बीमारियोंमें बड़ा उपयोगी है।

जिन व्यक्तियों की पाचन-शक्ति ठीक नहीं रहती,अजीर्ण अतिसार बिष्टब्धता, उदर-शूल आदिकी शिकायत बनी रहती है उन्हें अच्छा लाभ करती है। जिन व्यक्तियोंकी माँस-पेशियाँ निर्बल हों, दिमाग़ी कमज़ोरी बनी रहती हो, स्नायु-मण्डलकी कोई बीमारी या बात-रोगका कष्ट हो रहा हो उसे लाभदायी है। जिन व्यक्तियों का यकृत और अन्य पाचक ग्रन्थियाँ निर्बल हों या उनके कोई रोग हो रहे हों, सूजन हो, दिल-धड़कनकी बीमारी हो, गुर्दे अच्छी तरह काम न करते हों उनको यह लाभ करता है।

जिन व्यक्तियोंको बेरी-बेरी-रोग होगया हो, जिसमें प्राय: शरीरके भीतरी भागमें शोथ हो जाता है, मन्द-मन्द ज्वर रहता है, हाथ पैर पर भी सूजन आजाती है, दिल फैल जाता है फेफड़े व दिल वग़ैरहमें जलीय सूजन हो जाती है, शरीर क्षीण हो जाता है, भूख मन्द पड़ जाती है मूत्रमें धातु (अलब्यूमन) जाता है—ऐसे रोगियों को इसके सेवन से अधिक लाभ होता है। इस यीस्टकी कृपासे ही इस गुड़ वाले घोलसे उक्त रोगोंमें लाभ होता है। जो कुछ लाभ यीस्टके कारण इस घरमें तैयार घोलसे होता है इससे अधिक लाभ द्राक्षासव, द्राक्षारिष्टसे होता है। द्राक्षासव और द्राक्षारिष्टमें भी वही यीस्ट विद्यमान होते हैं।

हानिकी सम्भावना—द्राक्षासव आदि यीस्ट-युक्त औषधि तो वैद्यों द्वारा बड़ी सावधानीसे बनाये जाते हैं, किन्तु कई आदमी यह गुड़ वाली रोटी बनाते समय सावधानी नहीं कर सकते। ऐसी दशामें एक दूसरी जातिके कीटाणु जिन्हें फूंगस या मोल्ड कहते हैं कहीं वह उसमें पड़ जावे तो लाभकी अपेक्षा उस जलके सेवनसे हानि होती है। ऐसे दो एक केसर अमृतसरमें देखे गये हैं। जिस वस्तुके सेवनसे यह लाभ होता है उस वस्तुको या तो सेवन करना चाहिये, वरना किसी औषधि-निर्माण-शालाकी बनी यीस्ट-युक्त द्राक्षासव जैसी किसी औषधिका सेवन निरापद हो सकता है। इसमें कोई संशय नहीं कि गुड़की रोटी वाला जल दो चार पैसेमें बन जाता है। बाज़ारसे द्राक्षासव लेनेमें अधिक द्रव्य ख़र्चना होता है। किन्तु साथ में यह भी तो एक बात है कि फूँगस-जनक-रोग यदि लग जाय तो उनसे पीछा छोड़ाना कितनी भारी बात है, इसको साधारण जनता नहीं जानती।

पौधोंकी वंश-वृद्धि

[ले०—श्री जगमोहन लाल जी]

जानवरों और पौधोंमें वंश-वृद्धिका सरलतम कौन-सा मार्ग है ?

जबसे प्राणियोंकी रचना हुई तबसे जीवन-मरणका चक्र बराबर चल रहा है। जो इस नश्वर संसारमें आता है उसे एक दिन जाना पड़ता है। चाहे मनुष्य हो चाहे अन्य प्राणी, यह क्रम सब पर लागू होता है। श्री भगवद्गीता का "जातस्य ध्रुवः मृत्युः" वाला सिद्धान्त स्वयं सिद्ध है। यदि प्राणियोंमें वंश-वृद्धिकी इच्छा न होती तो यह संसार-चक्र कदापि न चल सकता। पुराणोंमें एक कथानक इस प्रकार आया है कि ब्रह्माने आदिमें अपने शरीरसे कुछ ऋषियोंकों उत्पन्न किया, किन्तु यह ऋषि संसार-रचनाकी तरफ प्रवृत्त न हुये। फिर ब्रह्मासे स्वायं मनु और सतरूपाकी उत्पत्ति हुई और तबसे मैथुनी सृष्टिकी रचना हुई। इस कथानकसे यह प्रकट होता है कि तबसे उत्पत्ति-क्रिया प्राणियोंका एक विशेष गुण बन गई है। अतएव सब जीवधारियोंमें यह क्रिया पाई जाती है। परन्तु सब प्राणियोंमें उत्पत्ति-क्रिया समान नहीं होती।

क्या जीवधारी निर्जीव पदार्थसे उत्पन्न होते हैं ?

सदियों तक इस बात पर विश्वास किया जाता था कि कुछ जानवर और पूर्व स्थित जीवधारियोंसे उत्पन्न नहीं होते, वरन् इनका जन्म निर्जीव पदार्थसे होता है। जीवधारियोंकी इस उत्पत्ति-विधिको स्वयं-उत्पत्ति-क्रिया कहते हैं। मिश्रियोंका ख्याल था कि मेंढक और चूहे नील नदीकी उस मिट्टीसे उत्पन्न होते हैं जिसे बाढ़ के समय यह खेतों में छोड़ देती है। आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं जिनका ख्याल है कि मेंढक, केंचुए और बीरबहूटियाँ वर्षाके जलके साथ गिरते हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि घोड़े का बाल पानीमें पड़ा-पड़ा सांप बन जाता है और सड़ते हुये मांससे छोटे-छोटे कृमि पैदा हो जाते हैं। बहुतसे परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यह सब चीजें संभव नहीं। इस बातका निराकरण कि "मक्खियाँ सड़ते मांसमे पैदा होती हैं" सबसे पीछे हुआ, क्योंकि यह साधारण अनुभवकी बात थी कि मक्खियोंके बच्चे (Maggots) सड़ते हुये मांसमें दीख पड़ते हैं। सतरहवीं शताब्दीके अर्धकाल व्यतीत होनेके कुछ समय ही बाद रेडी ने, जो इटलीका एक जीव-शास्त्रज्ञ था इस अंध-विश्वासका खंडन किया।

उसने सड़ते हुये मांसको कई मर्तबानोमें रक्खा। एक को खुला छोड़ दिया गया, दूसरेको जालीसे ढक दिया गया और तीसरे पर एक मोटा मोमी कागज़ बाँध दिया गया कि मांसकी बू तक उसमेंसे न निकल सके। कुछ समयके बाद रेडीने देखा तो मालूम हुआ कि खुले हुये मर्तबानके मांसमें और जालीसे ढके हुये मर्तबानकी जाली के ऊपर कृमि (Maggots) मौजूद हैं। मगर तीसरे मर्तबानके निकट जो मोमी कागज़से ढका था न तो कृमि और न मक्खियोंके ही चिह्न थे। उसने इससे यह नतीजा निकाला कि पहिले मर्तबानमें कृमिकी मौजूदगीका कारण यह था कि मांसकी गंधसे आकर्षित होकर मक्खियाँ इसके अन्दर पहुँच सकीं और उन्होंने वहाँ अंडे दिये। दूसरे मर्तबानकी जाली पर कृमिकी मौजूदगीका कारण यह था कि मक्खियाँ मांस तक न पहुँच सकीं। वह जाली पर आकर रुक गईं और उन्होंने जाली पर अंडे दिये। मोमी कागज़ पर कृमि न थे क्योंकि मक्खियाँ इन मर्तबानकी ओर आकर्षित नहीं हुईं।

सच तो यह है कि कृमि उसी स्थान पर पाये जाते हैं जहाँ मक्खियाँ मौजूद होती हैं। वे मांससे उत्पन्न नहीं होती। रेडीने अपने प्रयोगोंमें बड़ी सावधानी और तीक्ष्ण निरीक्षणसे काम लिया है जिसका परिणाम यह हुआ कि जीव-शास्त्रज्ञोंको धीरे-धीरे यह विश्वास हो गया कि स्वयं उत्पत्ति संभव नहीं है। परन्तु कुछ वर्षों के बाद ल्यूवनहाक (Leeuwenhock) ने सूक्ष्म जीवोंका संसार खोज निकाला और स्वयं-उत्पत्ति समस्या (Spontaneous generation) पर पुनः विचार होने लगा। यह सूक्ष्म जीव वास्तवमें ऐसे थे जिनके सम्बन्धमें स्वयं-

उत्पत्तिका सिद्धांत युक्तसंगत प्रतीत होता था। इसलिये इस विषय पर फिर वाद-विवाद आरम्भ हो गया।

इस वाद-विवादका अन्त लूईपास्चर (Louis Pasteur) और जान टिंडाल (John Tyndall) के प्रयोगोंने कर दिया। पास्चरने द्रव भोजनकी बहुत-सी शीशियाँ तैयारकीं। यह द्रव भोजन जीवाणुओंके लिये अच्छी भोजनकी सामग्री थी। जब इन शीशियोंमें जीवाणु उत्पन्न हो गये तो पास्चरने शीशियोंके द्रव भोजनको अच्छी तरह उबाला। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवाणु मर गये। उबलते समय ही उसने कुछ शीशियोंकी गर्दन पिघलाकर शीशियोंको बन्द कर दिया और अन्य शीशियों को खुला छोड़ दिया। जब उबालनेके बाद फौरन ही खुली शीशियोंके द्रव भोजनका परीक्षण किया गया तो उसे जीवाणुओंके चिन्ह न मिले। किन्तु जब प्रयोगशाला में इन शीशियोंको खुला रख दिया गया तो कुछ समयके बाद इनमें जीवाणु फिर पाये गये, मगर बन्द शीशियोंमें कोई जीवाणु न पाया गया। यह सिद्ध करनेके लिये कि इन शीशियोंके पदार्थमें जीवाणुओंके पोषण करनेकी शक्ति है या नहीं, पास्चरने कुछ शीशियोंको फोड़ कर खुला छोड़ दिया। ऐसा करनेसे कुछ ही कालमें जीवाणु उत्पन्न हो गये और द्रव भोजन सड़ने लगा।
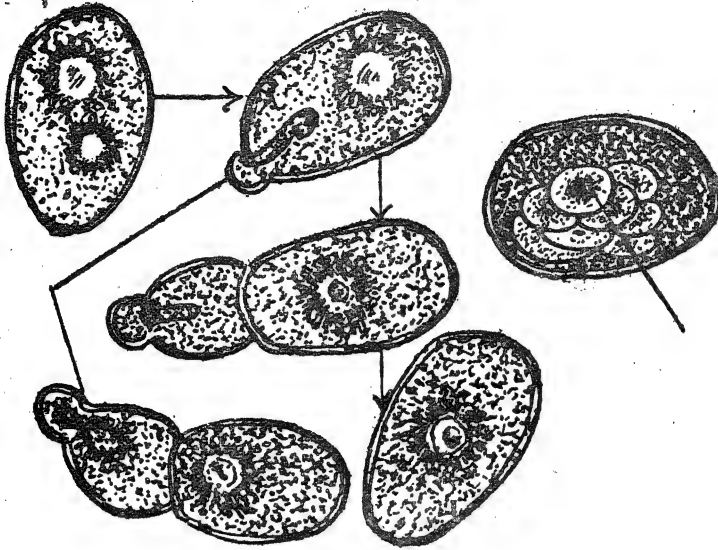
चित्र नं० १

पास्चरने यह निश्चय कर लिया कि जीवाणु निर्जीव पदार्थसे उत्पन्न नहीं हो सकते, अतएव उनकी उत्पत्ति उन जीवाणुओंसे हुई होगी जो हवाके धूल-कणों पर मौजूद रहते हैं। इस बातको साबित करनेके लिये वह कुछ सुराहियोंको उच्च पर्वतोंके शिखरों पर ले गया जहाँकी हवा धूल-कणोंसे रहित और स्वच्छ थी। उसका मत ठीक निकला। उन शीशियोंमें, जो पर्वत-शिखरों पर खोली जाती थीं और जिन्हें धूल आच्छादित वायु-मंडलमें लानेसे पहिले बन्द कर दिया जाता, शायद ही कभी कोई जीव पाये जाते। टिंडालके प्रयोग भी इतने ही विश्वसनीय साबित हुये। इन वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया कि सरलतम जीव भी पूर्ववर्तीय जीवोंसे ही उत्पन्न हो सकते हैं।

एमीबा और उसके निकटके कुटुम्बियोंमें वंश - वृद्धि किस तरह होती है ?

एमीबाकी तख्ती (Slide) का सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा परीक्षण करते समय कभी-कभी एक जीव वंश-वृद्धि करते हुये दिखाई देता है। यह इस क्रियाका आरंभ नीचे लिखे तरीके पर करता है। पहिले यह अपने असत-पैरोंको खींच लेता है और फिर कुछ क्रिया-हीनसा हो जाता है। इसका मूल-बिन्दु जो कोष्ठके केन्द्रमें मौजूद होता है दो भागोंमें विभक्त हो जाता है।

मूल-बिन्दुके विभागके समय कोष्ठ-रस केन्द्रसे विरोधी दिशाओंमें बहने लगता है। इसी समय दोनों हिस्से एक दूसरेसे पृथक होने लगते हैं। इन दोनों हिस्सोंको मिलाने वाला कोष्ठ-रस पतला होता जाता है यहाँ तक कि यह एक तागाके समान रह जाता है और फिर बिल्कुल टूट जाता है। आधे घंटेके अन्दर दो एमीबा तैयार हो जाते हैं और

प्रत्येकमें एक-एक मूल-बिन्दु के इस विभाग और कोष्ठ शरीर के दो सम भाग होने को द्वि-सम-विभाग (Binanry Fission) क्रिया कहते हैं।

प्रत्येक नये कोष्ठसे असत्-पैर निकलते हैं, यह जीव रेंगता है। जो कोई सूक्ष्म जीव या पौधा इसके मार्गमें आता है उसे निगल जाता है और तेज़ीसे पूर्ण एमीबा बन जाता है। सम-विभाग क्रियामें जननीका अस्तित्व पूर्ववत् बाक़ी नहीं रहता। पूर्ण जीव दो संतानोंमें विभक्त हो
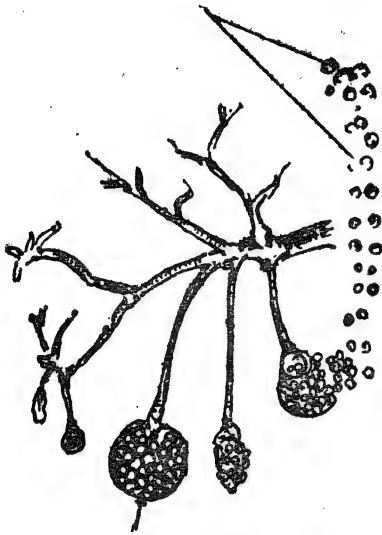
चित्र नं० २—बीज मूलक

गया। इन दोनोंको बहुधा पुत्री-कोष्ठ (Daughter cells) कहते हैं और जननीको मातृ-कोष्ठ (Mother-cells) कहते है। विचार दृष्टिसे इन कोष्ठोंको न माता ही और न पुत्रियाँ ही कह सकते हैं परन्तु इनके नामकरण के लिये कोई बेहतर नाम ही नहीं मिले।

सम-विभाग-क्रिया एमीबा और पेरेमीसियममें ही नहीं होती बल्कि बहुतसे एक-कोष्ठीय जानवरों और पौधोंमें पायी जाती है। बहु-कोष्ठीय जीवोंके कोष्ठ भी इसी भाँति विभक्त होते हैं, परन्तु इस विभागको सम-विभाग नहीं कहते क्योंकि इस अवस्थामें केवल एक नया कोष्ठ तैयार होता है न कि एक नया जीव। शब्द, सम-विभाग एक-कोष्ठी जानवर या पौधेकी उत्पत्तिके लिये प्रयोग किया जाता है।

ख़मीरके पौधेकी वंश-वृद्धि किस तरह होती है?

तुम ख़मीरके पौधेसे परिचित हो यद्यपि तुम इसे पौधा न समझते हो। दबी-दबाई ख़मीरकी टिकिया में, जो विटेन देने और ख़मीरी रोटी पकानेके लिये काममें लायी जाती है, हज़ारों जीवित एक-कोष्ठीय पौधे होते हैं। इन्हें उचित भोजन दिया जाय तो ख़मीरका पौधा तेज़ीसे बढ़ता है और वंश-वृद्धि करता है। जब यह ऐसा करता है तो मूल-बिन्दुओंमें विभक्त हो जाता है। इसलिये मूल-बिन्दु एक सिरे पर मौजूद रहते हैं। इन मूल-बिन्दुओंके बीचमें एक कोष्ठ-दीवार बन जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि कोष्ठ-शरीर बीचमें विभक्त नहीं होता, बल्कि एक सिरे पर मूल-बिन्दु सहित बड़े कोष्ठको मातृ-कोष्ठ और छोटे भाग को पुत्री-कोष्ठ या कली कहते हैं। उत्पत्तिका यह तरीक़ा एमीबाकी उत्पत्तिसे कुछ भिन्न है। ख़मीरमें कोष्ठ-शरीरका विभाग असम होता है मगर एमीबामें कोष्ठ-शरीर का विभाग सम होता है। जब कोई जीव अपने शरीरके असम-विभाग द्वारा वंश-वृद्धि करता है तो इस क्रियाको कलियाना (Budding) अथवा विषम-विभाग कहते हैं।
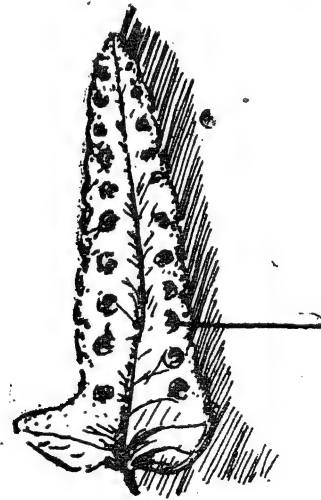
चित्र नं० ३

यदि बल-पूर्वक इनको अलग न किया जाय तो कली कुछ समय तक मातासे जुड़ी रहती है। वास्तवमें यह तब तक जुड़ी रहती है जब तक कि इसमें भी एक कली न

निकल आये। इस तरहसे ख़मीरके पौधोंकी एक छोटी-सी ज़ंजीर बन जाती है। इन कलियोंके जुड़े रहनेमें कोई महत्व की बात नहीं है। यदि इनको हिला दिया जाय तो छोटी-छोटी कलियाँ बड़ी हो जाती हैं और प्राकृतिक विधि द्वारा इनसे संतति-वृद्धि होती है।
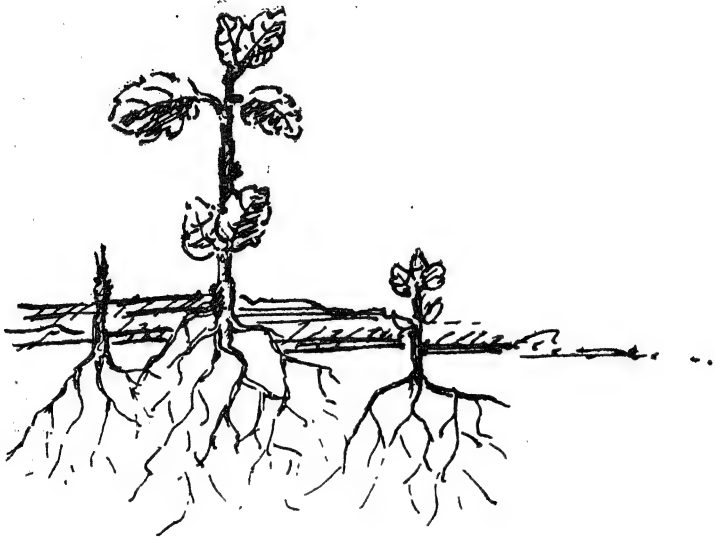
चित्र नं० ४

सादा जीव एक ही समयमें बहु-संख्यामें संतानोत्पत्ति किस तरह करते हैं ?

कभी-कभी एक-कोष्ठीय-जीव अथवा सादा बहु-कोष्ठीय जीवका एक कोष्ठ दो हिस्सोंमें विभक्त न होकर बहुतसे भागोंमें बँट जाता है। इस क़िस्मकी उत्पत्ति-क्रियामें मूल-विन्दुके विभक्त होते ही प्रत्येक भाग फिर विभक्त हो जाता है। यह क्रिया यहाँ तक जारी रहती है कि आठ या सोलह अथवा इससे अधिक संख्यामें मूल-बिन्दु बन जाते हैं। प्रत्येक मूल-बिन्दुके इर्द-गिर्द थोड़ा-सा कोष्ठ-रस एकत्रित हो जाता है और एक कोष्ठकी जगह तुरन्त ही बहुतसे छोटे-छोटे कोष्ठ तैयार हो जाते हैं। प्रत्येक कोष्ठको चारों तरफ़ एक मोटी रक्षक दीवार तैयार हो जाती है। इस प्रकार बने हुये कोष्ठको बीज-मूलक (Spore) कहते हैं और उत्पत्ति-क्रियाको बीज-मूलकोत्पत्ति (Sporulation) कहते हैं। चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, प्रत्येक बीज-मूलक अपना अस्तित्व रखता है, क्योंकि इसमें मूल-विन्दु के इर्द-गिर्द थोड़ा-सा कोष्ठ-रस होता है।

जब ख़मीरका भोजन बाकी नहीं रहता यानी सब शकर शराब और कार्बन डाइ आक्साइडमें बदल जाती है तो कलियाना (Budding) बन्द हो जाता है। इस अवस्थामें ख़मीरका प्रत्येक कोष्ठ फूल जाता है, फिर चार हिस्सोंमें विभक्त हो जाता है। प्रत्येक भागके चारों तरफ़ कड़ी दीवारें बन जाती हैं और इस तरहसे बीज-मूलक बन जाते हैं जो सुरक्षित बने रहते हैं। जब जननी-कोष्ठकी बाहरी दीवार सूख कर फटती है तो चारों बीज-मूलक निकल पड़ते हैं और हवामें उड़ने लगते हैं। इस बीज-मूलकोंमें सर्दी, गर्मी और ख़ुश्कीके मुक़ाबिला करने की शक्ति होती है। इस प्रकार यह बहुत दिनों तक जीवित रह सकते हैं। जब यह बीज-मूलक मीठे द्रवमें जा गिरते हैं तो कलियाना-क्रियासे उनकी वृद्धि होने लगती है जिसके कारण मीठा शरबत शराबमें बदल जाता है।

फफूँदी जो भीगी रोटी पर आती है बीज-मूलकोत्पत्ति द्वारा वंश-वृद्धि करती है। यदि फफूँदीको सूक्ष्म दर्शी यंत्र द्वारा परीक्षण करो तो तुम्हें मालूम होगा कि यह एक सादा कोष्ठ नहीं है बल्कि फैली हुई एक पेंचीदी चीज़ है। फफूँदी जिस पदार्थ पर उगती है उसमें इसके कुछ तागे धँस जाते हैं और उससे यह अपना भोजन चूस लेते हैं। कुछ तागे ऊपर उग कर हवामें निकल आते हैं। हवामें निकले हुये तागोंकी नोकें कभी-कभी फूल जाती हैं। बीज-मूलकोत्पत्ति इन्हीं फूले हुये हिस्सोंमे होती है। इन फूले हुये हिस्सोंमें बहुतसे मूल-विन्दु होते हैं। जब तागेके ऊपरी भागका कोष्ठ-रस बँट जाता है तो प्रत्येक टुकड़ेमें एक या अधिक मूल-विन्दु होते हैं। प्रत्येक छोटे कोष्ठके इर्द-गिर्द एक दीवार बन जाती है। इसे बीज-मूलक कहते हैं। तागेका फूला हुआ हिस्सा जिसमें बीज-मूल-

कोत्पत्ति होती है बीज-मूलक-डिबिया (Sporangium) कहलाती हैं। यह बीज-मूलकको उस समय तक रखनेके लिये थैलीका काम देती है जब तक कि वह पक कर जनक-पौधेसे अलग होनेके लिये तैयार नहीं होते। बीज-मूलकोंको अलग-अलग देखनेसे उनमें कोई रंग नहीं दिखाई देता, परन्तु समूहमें फफूँदीकी उप-जाति (Species) के अनुसार यह काले, हरे या पीले मालूम होते हैं। जब बीज-मूलक बहुत हो जाते हैं तो पूरा पौधा रंग-सा जाता है।
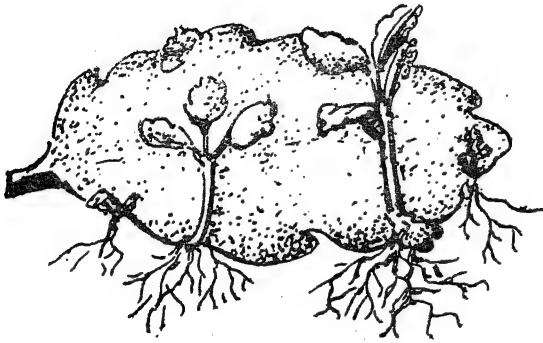
चित्र नं० ५

तुमने बीज-मूलकके समूह कुकरमुता Nerhroms की टोपीके नीचे काईके ऊपर और शायद फर्न (Fern) पर उगते हुये देखे होंगे। फर्नकी पत्तीकी नीचेकी सतह पर मौसममें भूरी लकीरें या धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बों या लकीरोंसे भूरे चूर्णको हिलाकर अलग कर लो। यह चूर्ण केवल बीज-मूलकोंका समूह है। फर्नमें फफूँदीकी तरह पौधेके थोड़ेही भागसे बीज-मूलक बनते हैं, अन्य भाग पौधेके पोषणमें लगे रहते हैं। यह बात स्वाभाविक है कि जब कोई कुछ पेचीदा पौधा बीज-मूलक बनाता है तो प्रत्येक बीज-मूलक काफ़ी बढ़ जाता है और इसमें बहुतसे परिवर्तन होते हैं तब कहीं जाकर यह अपने जनकके समान नया जीव बननेके योग्य होता है।

पेचीदे पौधोंमें वंश-वृद्धिके सादा तरीके क्या हैं ?

एक माली जानता है कि जिरेनियम, बिगोनियाँ, गुलाब और कोटनके नये पौधे तैयार करनेका श्रेष्ठ तरीक़ा यह है कि पौधेसे तनेका एक छोटासा टुकड़ा काट लिया जाय और उसे पानी अथवा भीगे रेतसे कुछ समय तक रख दिया जाय। ऐसा करनेसे इन टुकड़ोंसे जड़ें निकल आती हैं, फिर इन पौधोंको दूसरी जगह लगाया जा सकता है। यह तना जिससे जड़ें फूट निकलती हैं और जो बढ़कर नया पौधा बन जाता है, क़लम कहलाता है। कुछ पौधोंको क़लम द्वारा लगाना कठिन है, परन्तु एक निपुण माली प्रत्येक पौधेसे इस प्रकार नये पौधे तैयार कर सकता है। कभी मनुष्यके बिना हस्तक्षेपके क़लमें लग जाती हैं। करंजके झाड़से जो टहनियाँ गिर पड़ती हैं वह समय पाकर मिट्टीसे दब जाती हैं। इनसे जड़ें निकल आती हैं और नये पौधे बन जाते हैं।
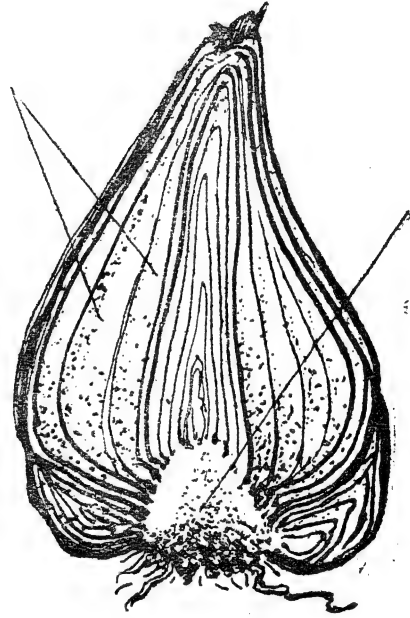
चित्र नं० ६

कभी-कभी जनक-पौधेसे बिना अलग हुये ही तनोंसे नये पौधे तैयार हो जाते हैं। पोदीनाका लम्बा तना मिट्टीके समानान्तर बढ़ता है। लगभग आधे या एक फुटके अन्तरसे एक छोटासा तना पत्तियों सहित सीधा ज़मीनके ऊपर निकल आता है। इससे निकल कर जड़ें ज़मीनमें धँस जाती हैं और पोदीनाका नया पौधा तैयार हो जाता

है। ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक पौधा अपने मातृ-पौधेका हाथ पकड़े हुये है और कुछ समयके बाद अपनी पुत्रीके लिये अपना हाथ बढ़ाये रखता है। रेलवे बेलका झुका हुआ तना कभी-कभी मिट्टीसे दब जाता है। इस स्थानसे जड़ें निकल आती हैं। नये पौधोंकी इस उत्पत्ति-क्रियाको "दाब" कहते हैं।

अन्य पौधेभी हैं जिनमें वंश-वृद्धि तने द्वारा होती है, परन्तु यह एक ऐसा तना है जिसे तुम सहजमें पहचान नहीं सकते। आलू वास्तवमें एक तना है, यद्यपि यह ज़मीनके अन्दर बढ़ता है और इस पर पत्तियाँ नहीं दिखाई देतीं। फिर भी यह तना है, क्योंकि इस पर छोटी
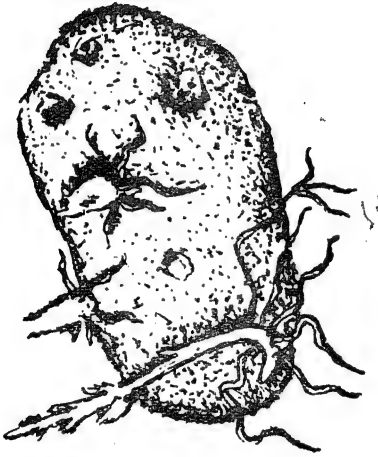
चित्र नं० ७

छोटी घुंडियाँ होती हैं जिन्हें आँखें कहते हैं। मोटे रसदार ज़मीं दोज़ तनेको कंदल (Tuber) कहते हैं। जब आलू का एक टुकड़ा ज़मीनमें लगा दिया जाता है तो आँखें उगने लगती हैं और नये तने और पत्तियाँ निकल आती हैं। यदि आलूको यों ही ज़मीनमें छोड़ दिया जाय और आवश्यकतानुसार सोचा जाय तो एक कंदलसे बहुतसे आलूके पौधे उग आते हैं।

तने कभी-कभी दूसरे तरीक़े पर छिपे रहते हैं। कभी-कभी रसीले होनेके बदले वे बहुत छोटे और सादे होते है। इस तरह पत्तियाँ जो साधारणतया तनेके पहलू में पाई जाती हैं बहुत निकट आ जाती हैं। इस प्रकारके संक्षिप्त तनेको जिस पर बहुतही क़रीब-क़रीब रसदार छिलके (पत्तियाँ) होती हैं, कंद (Bulb) कहते हैं। जब कंदको ज़मीनमें छोड़ दिया जाता है तो पत्तियाँ और फूल निकलनेके बाद इससे छोटे-छोटे कंद पहलूकी शाखाओं की जगह तैयार हो जाते हैं। अनुकूल ऋतुमें इनसे नये पौधे तैयार हो जाते हैं। यह एक दूसरा सरल तरीक़ा है जिसके द्वारा कुछ पेचीदे पौधे जैसे प्याज़, नरगिस इत्यादि वंश-वृद्धि करते हैं।

ज़मीनके अन्दर रहने वाले तनेकी एक मिसाल अरवी के गट्ठे की है। इसमें वंश-वृद्धिकी योग्यता पाई जाती है। यहभी कंदसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसे घन कंद कहते हैं। अन्तर इतना है कि कंदमें भोजन सामग्री छिलकोंमें इकट्ठी रहती है, परन्तु इसमें भोजन सामग्री तनेमें मौजूद होती है। अरबीके गट्ठेमें मौजूदा तनेके नीचे मुर-झाये हुये पुराने तनेका चिन्ह दिखाई देता है। केसरकी उत्पत्तिभी इसी विधिसे होती है।

हल्दी, अदरक और अन्य पौधोंमें भी ज़मीनके अन्दर
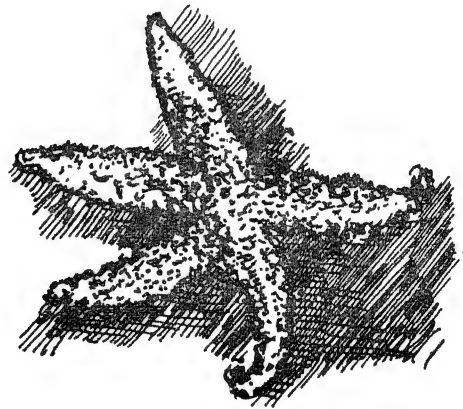
चित्र नं० ८—तारा मछली

रहने वाले तने होते हैं। यह कुछ चपटे और ज़मीनके समानान्तर बढ़ते हैं। इनपर कलियाँ और छिलके होते हैं। इन कलियोंमें से कुछ ऊपरकी तरफ़ उगती हैं और ज़मीन के बाहर निकल आती हैं, और इनसे पत्तीदार शाखाएँ तैयार हो जाती हैं, परन्तु अधिक भाग पृथ्वीके नीचे

ही बढ़ता रहता है। इस किस्मके तनेको भू-प्रकांड कहते हैं।

कभी-कभी जड़ोंसे नये पौधे तैयार होते हैं, जैसे शकरकंद, रतालू, डहेलिया इत्यादि। कुछ हालतोंमें पत्तियाँ भी या पत्तियोंका केवल एक भाग जब पौधेके अन्य भागसे पृथक हो जाता है तो नया पौधा तैयार हो जाता है। पथरचटा (Bryophyllum) की पत्ती जब मिट्टी में अनुकूल अवस्थामें रख दी जाती है तो उससे जड़ें फूट निकलती हैं और नया पौधा तैयार हो जाता है। चूँकि जड़, तना और पत्ती पौधेके वानस्पतिक अंग हैं, इसलिये उत्पत्तिकी इस विधिको वानस्पतिक उत्पत्ति या वंश-वृद्धि (Vegetative Propagation) कहते हैं।

इस सरल विधि द्वारा कौनसे जानवर वंश-वृद्धि करते हैं?

अधिकांशमें बहुकोष्ठीय जानवर अपने शरीरके टुकड़ोंसे नये प्राणी उत्पन्न नहीं कर सकते। परन्तु बिना रीढ़के कुछ जानवरोंमें यह बात संभव है। तारा-मछली (Star fish) को कुछ किस्में ऐसी हैं कि उनको एक भुजा अलग हो जाने पर कटी हुई भुजासे पूर्ण प्राणी तैयार हो जाता है। वंश-वृद्धिकी यह क्रिया साधारण नहीं है। परन्तु बहुतसी किस्मकी तारा-मछलियोंकी वंश-वृद्धि भुजा कटने पर इसी तरीक़े से होती है। छोटा चपटा केंचुआ (Flat Worm Planaria) यदि काट दिया जाय तो इससे कई नये प्राणी तैयार हो जाते हैं।

पुनरोद्धारसे क्या तात्पर्य है?

देखनेमें केवल इतना ही नहीं आता कि तारा-मछलीकी एक भुजासे नया प्राणी बन जाय बल्कि अंग-भंग तारा-मछलीका हीन अंग फिर तैयार हो जाता है। दोनोंही हालतोंमें पुनरोद्धार-क्रिया होती है जिसका तात्पर्य है—फिर उत्पन्न करना। परन्तु दोनोंमें कुछ भेद है। पहिली मिसालमें पुनरोद्धार द्वारा उत्पत्ति होती है जबकि छोटा भाग बढ़कर एक पूरे नये पौधेमें परिणत हो जाता है। यह क्रिया जानवरोंमें भूले-भटके ही हुआ करती है। पुनरोद्धारकी ऐसी मिसालें बहुत साधारण हैं जिनमें उत्पत्ति नहीं होती। बहुतसे बिना रीढ़ वाले जानवरोंमें यह शक्ति पायी जाती कि कटी हुई टाँग अथवा किसी दूसरे भागको पुनः बना लेवें, मगर रीढ़ वाले जानवर इस कामयाबीके साथ अंगों का पुनरोद्धार नहीं कर सकते।

निकोलस कोपरनिकस

(१४७३-१५४३)

(ले०—श्री रामचन्द्र तिवारी, बी० एस-सी० देहली यूनीवर्सिटी)

निकोलस कोपरनिकस उन प्रारम्भिक वैज्ञानिकोंमें-से थे, जिन्होंने सिद्धांत और निरीक्षणमें स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित किया। उनके समयमें प्राचीन भूमि-केन्द्रिक ज्योतिष-सिद्धांतका प्रचार था। यह वह समय था जब ईसाई मताधिकारी ज्ञानाधिकारी भी थे। उन लोगोंका विश्वास था कि हमारी पृथ्वी स्थिर है और अन्य ग्रह इसके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। कोपरनिकस ने इस सिद्धांतके आधार पर निरीक्षित सामग्रीको समझनेका प्रयत्न किया। जब उन्हें इसमें सफलता न मिली तो उन्होंने इस सिद्धांत-को अशुद्ध मान कर छोड़ दिया और सूर्य-केन्द्रिक सिद्धांत-का प्रतिपादन किया। इस प्रकार सिद्धांतका मोह छोड़ कठोर सत्यकी ओर निःसंकोच बढ़नेका मार्ग उन्होंने दिखाया।

कोपरनिकस ज्योतिषी थे। इनका जन्म १९ फ़रवरी, सन् १४७३ ई० को विस्तुला-तट स्थित थौर्न* नगरमें हुआ था। इनका जन्म-गृह अब भी वर्तमान कहा जाता है। तेरहवीं शताब्दीमें टयूटॉनिक योद्धाओं ने प्रशियन लोगोंको हरा

* पोलैण्डमें विस्तुलाके दाये तट पर

कर जो राज्य स्थापित किया, थौर्न उसीकी सीमा पर था। कुछ समय पश्चात् वह पोल लोगोंके अधिकारमें चला गया।

कोपरनिकसके पिताका नाम भी निकोलस कोपरनिकस था। वे क्रेकोॐ जो उस समय पोलैण्डका प्रधान नगर था, के धनाढ्य व्यापारी थे। वे सन् १४५८ई०के लगभग थौर्न चले गये। वहाँ पर उन्होंने बड़ी उन्नतिकी और मजिस्ट्रेट-का पद प्राप्त किया। उनकी जातिके विषयमें पोल तथा जर्मनोंमें विवाद चलता रहता है। दोनों जातियाँ उसके पुत्रको अपना सदस्य बनाना चाहती थीं। परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दीमें इन नगरोंकी जन-संख्या प्रायः पूर्णतया जर्मन होनेके कारण उनके जर्मन होने की सम्भावना ही अधिक है। कोपरनिकसके एक भाई तथा दो बहिने थीं। इनके भाई एनड्रियस विदेश-यात्रा तथा अध्ययन-काल में इनके साथ रहे।

कोपरनिकस जब दस वर्षके थे तभी इनके पिताका शरीरांत होगया और बालकोंको इनके मामा लूका वत्सेल-रोड ने पाला पोसा। लूका चरित्रवान् व्यक्ति थे। उन्होंने इटलीमें शिक्षा पाई थी और सन् १४८९ ई० में अर्मलैण्डके बिशप बने। उन्होंने अपने भानजेको थौर्नके स्कूलमें भेजा जहाँसे वह सन् १४९१ई०में क्रेकोके विश्व-विद्यालयमें गया। इस विश्वविद्यालयमें गणित तथा ज्योतिष के विशेषज्ञ चतुर शिक्षक थे। गणित-अध्यापक ब्रुदज़ेवस्की (Brudzewski) टॉलमी† के भूमि-केन्द्रिक सिद्धांतको मानते हुये भी उदार सहानुभूति-पूर्ण व्यक्ति थे। सम्भवतया कोपरनिकस ने ज्योतिष-यंत्रोंके व्यवहार तथा आकाश-निरीक्षणकी शिक्षा यहीं पाई। तीन वर्ष पश्चात् वह घर लौट गये। इनके मामा को बिशप-पद पर पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। वे हाइल्सवर्ग ‡ और समुद्रके किनारे फ्राउनवर्गके केथेड्रल में रहते थे। लूका अपने भानजेको फ्राउनवर्ग का धर्माधिष्ठाता निर्वाचित कराना चाहते थे। उनका पहिला प्रयत्न असफल हुआ और कोपरनिकसको अब इटलीमें अध्ययन जारी रखनेकी आज्ञा मिल गई। सन् १४९६ई० में वह आल्प्स पार कर बोलोना (Bologna) पहुँचा और वहाँ चार वर्ष तक कानूनका अध्ययन किया। दो वर्ष पश्चात् उसका भाईभी उसके पास पहुँच गया। यहाँ पर कोपरनिकसमें डोमेनिको-मेरिया-दा-नोवारा (Domenico Maria de Novara) (१४५४-१५०४) ज्योतिष-अध्यापकके व्यक्तिगत सम्पर्क में आया। नोवारा कुशल शिक्षक तक सतर्क निरीक्षक थे। वे समस्त ब्रह्माण्डकी रचनाको सरल गणित सम्बन्धों द्वारा समझना चाहते थे। कोपरनिकस पर इनके सम्पर्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। नोवारा और कोपरनिकस अकसर मिलनेपर एक साथ आकाशका निरीक्षण करते। इस कार्यमें कोपरनिकस इतने शिष्य नहीं होते थे जितने कि सहायक और निरीक्षणके साक्षी। कोपरनिकस इस समयके कुछ निरीक्षणोंको आगे चल कर अपने काममें लाये। बोलोनामें उन्होंने उपाधि नहीं प्राप्तकी। वे सन् १५०० ई० में रोम गये और वहाँ पर वैयक्तिक रूपसे विद्यार्थियोंको गणित पढ़ाते रहे। इससे इनकी प्रसिद्धि हो चली।

सन् १४९७ ई० के लगभग अपनी अनुपस्थितिमें वे फ्राउनवर्गके धर्माधिकारी निर्वाचित हो गये। अधिकांश लोगोंकी भाँति कोपरनिकसने भी धर्माधिकारिता पैसेके लिये स्वीकार की जान पड़ती है॥। सन् १५०१ई०में दोनों भाई घर लौटे और मामाकी आज्ञासे पुनः अध्ययन समाप्त करने चल दिये। पाड्वा† में कोपरनिकसने कानूनकी शिक्षा पूर्ण की। यहीं उसने यूनानी भाषा पढ़ी। अब वह प्लेटोकी मूल पुस्तकें पढ़ सका और उससे तथा अन्य यूनानी पुस्तकोंसे ज्ञान तथा उत्साह प्राप्त कर आगे बढ़ा। फेरारा‡ जाकर सन् १५०३ई०में उसने क़ानूनमें आचार्यत्व प्राप्त किया और फिर पाड्वा लौट कर औषधि-शास्त्रका अध्ययन प्रारम्भ किया। हमारे वैद्योंकी भाँति उस समयमें ईसाई धर्माधिकारी

---

* पोलैण्डमें, जर्मन सेनाओंके अधिकारमें

† Claudius Ptolemacus 127-151 A.D. मिश्री, गणितज्ञ, ज्योतिषी तथा भैकोलिका

‡ पूर्वी प्रुशियामें

॥ Copernicus by Armitage, p. 48, l. 14.

† इटलीके वैनेशिया प्रान्तमें

‡ इटलीके एमीलिया प्रान्तमें

चिकित्सक धर्माधिकारी होनेके कारण चिकित्साशास्त्रको त्याज्य समझते थे। सन् १५०६ई०के आरम्भमें वे अध्ययन समाप्त कर अर्मलैण्ड लौट गये।

उनके मामा इन दिनों रोगी रहते थे। इसलिये तथा चिकित्सक होनेके कारण उन्हें हाइल्सवर्गमें रहनेकी आज्ञा मिली। सन् १५१२ई०में अपने मामाकी मृत्यु-पर्यन्त वे यहीं रहे। यह सम्भव है कि आगामी तीस वर्षोंके अपने जीवन-कार्यका ढाँचा उन्होंने यहीं तैयार किया हो। यहीं पर उसे अर्मलैण्डकी राजनीतिका भी ज्ञान हुआ। पोल तथा ट्यूटॉनिक दो विरोधी पड़ोसी शक्तियोंके बीच अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित रखना इस छोटे भूभागके लिये अत्यंत कठिन हो गया। इनके मामाके सिर पश्चिमी प्रशिया तथा पोल लोगोंके बीच राजनैतिक वकालतका कठिन कार्य भी आ पड़ा। पोल प्रशियाको अपने राज्यमें मिलाना चाहते थे और वहाँके निवासी स्वतंत्र रहना चाहते थे। इस चर्चामें कोपरनिकसको कभी अपने मामाके साथ, कभी उनका प्रतिनिधि बनकर राजनैतिक वार्तालापमें भाग लेना पड़ा। कोपरनिकस अपने अभिभावककी मृत्युके उपरांत ही फ्राउनवर्ग आये। योग्य चिकित्सक होनेके कारण उन्हें दूसरे विषयोंकी चिकित्साके लिये प्रायः हाइल्सवर्ग जाना पड़ता था। उन्होंने प्रशियाके ड्यूकके एक मंत्रीकी सफल चिकित्साकी। वे अपने इस कार्यके लिये बहुत प्रसिद्ध हो गये। निर्धन लोग सदा उनसे इस विषयमें सहायता पाते थे। वे साधारण औषधियोंका ही व्यवहार करते थे।

फ्राउनवर्गका कैथेड्रल डानज़िगकी खाड़ीके पास एक नीची पहाड़ी पर स्थित है। इसके चारों ओर रक्षाके लिये एक दीवार है। यह कहा जाता है कि घेरेके उत्तर-पश्चिम के कोने पर जो तिमंज़ली मीनार है उसीमें कोपरनिकस रहते थे। उनके भाई सन् १५१९ई०से पहिले ही एक असाध्य रोगके ग्रास बन चुके थे। कोपरनिकसने फ्राउनवर्ग परसे अपने सब निरीक्षण किये। उसकी पुस्तकमें उनके २७ निरीक्षणोंको मिलानेसे इनकी संख्या दूनेसे अधिक हो जाती है।

कोपरनिकस लूथरके समकालीन थे। यद्यपि वह सुधारकोंमें सम्मिलित न हुये थे तथापि वह उच्च धार्मिक पदाधिकारियोंके कोपका भय रहते हुये भी उन लोगोंके प्रति सहनशील एवं उदार थे। कोपरनिकसने ३६ वर्ष अपनी पुस्तक 'दि रिवोल्यूशनिबस' (De Revolutionibus) पर लगाये। उसने सूर्य, चन्द्र तथा ग्रहोंकी आकाशमें चाल सरल तथा विश्वसनीय रीतिसे निश्चित करनेकी इच्छासे कार्य प्रारम्भ किया। सन् १५१४ई०में "लेटरन कौंसिल" ने कोपरनिकसको तिथि-पत्र सुधारनेके प्रयत्नमें निमंत्रित किया। कोपरनिकस ने वहाँ बताया कि जब तक सूर्य तथा चन्द्रकी चालका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता इस प्रकारका प्रयत्न विशेष लाभदायक न होगा। उसने इस समस्याको अपने सम्मुख रखनेका बचन दिया। अपने सन् १५४३ई०की पुस्तकमें उसने इसकी चर्चा भी की है। सोलहवीं शताब्दीमें ग्रेगरीने जो तिथिपत्रमें सुधार किये उनकी नींव कोपरनिकसके ही कार्य पर है।

फ्राउनवर्गके प्रारम्भिक वर्षोंमें उन्हें अध्ययनके लिये पर्याप्त समय मिला। परन्तु सन् १५१५ई०में उसकी योग्यताके कारण उनपर विशेष उत्तरदायित्व आ पड़े। वह मठके सम्पत्तिक तथा आध्यात्मिक विभागोंका अध्यक्ष बना दिये गये। वह साढ़े तीन वर्ष इस पद पर रहे और युद्ध तथा द्वेषके कलुषित एवं संकटमय वातावरणमें उन्होंने यह उत्तरदायित्व बड़ी योग्यतासे निभाया। इन दिनों उसे ऐलेन्शटाइन दुर्गपर रहना पड़ता था और यदा-कदा ही फ्राउनवर्ग आ पाता था। सन् १५१९ई०में जब युद्ध प्रारम्भ हो गया तो हाइल्सटाइन तथा फ्राउनवर्ग पर भी आक्रमण हुये। इन घटनाओं ने कोपरनिकसके नेतृत्व तथा सूझ के गुणकी कठिन परीक्षा ली। सन् १५२१ई०में युद्ध समाप्त हो जाने पर शांति-सभामें उसने अर्मलैण्ड द्वारा सही क्षति पर एक मेमोरियल पेश किया।

युद्धके कारण प्रशियन सिक्केका मूल्य गिर गया। कोपरनिकस ने इस समस्या पर समय लगाया और विभिन्न तत्वोंका विवेचन कर उपस्थित कठिनाई दूर करने का मार्ग इङ्गित किया। स्वार्थी लोगोंके विरोधके कारण इस दिशा वे विशेष सेवा न कर पाये।

कोपरनिकस ने अपने कार्य की नींव अलमजस्ट (Almagest)* की १३ पुस्तकों में परम्परा-संचित

*Al (Arabic) Magest (superlative) अरबों द्वारा Ptolemy की रचनाको दिया नाम।

ज्ञान पर रक्खी। इसके संग्रहकर्ता टॉलमी ने मुख्यतः सामग्री हिप्पार कूज़* से, जिसका निरीक्षण उच्च दर्जेका था, ली थी। यहाँ तक उसके पास अच्छी सामाग्री थी। परन्तु अलमजस्टमें अचल-भूमि-केन्द्रिक सिद्धांत माना गया है, और उसके पक्षमें निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये जाते थे।

१. प्रत्येक साल वस्तुकी एक स्वाभाविक चाल होती है जो उसे ब्रह्माण्डके केन्द्रकी ओर उससे दूर या उसके चारों ओर ले जाती है। पृथ्वी तथा जलको सहज चाल नीचेको है तथा वायु और अग्निकी ऊपरको। यदि पृथ्वीको एक दैनिक चक्कर काटते हुये माना जाय तो यह सरल स्वाभाविक चालोंका नियम टूटता है।

२. भारी वस्तुएँ सरल रेखाओंमें पृथ्वीके केन्द्र (जो ब्रह्माण्ड का केन्द्र भी है) की ओर गतिवान हैं और वहाँ पहुँच कर स्थिर हो जायगीं। वे अन्य किसी दिशामें स्वाभाविक रीतिसे नहीं चलतीं। इसलिये सारी पृथ्वीमें जो इस प्रकारकी भारी वस्तुओंका ढेर है, किसी ओर भी चलनेकी क्रिया नहीं हो सकती और भूमिकी कोई अस्वाभाविक चाल सनातन नहीं हो सकती।

३. यदि पृथ्वी घूमती होती तो बादल तथा वायु मण्डलमें उड़ती अन्य वस्तुएँ हमें विपरीत दिशामें भागती दिखाई देतीं।

४. यदि पृथ्वीको दिनमें एक बार घूमता हुआ माना जाय तो उसकी चालको बहुत तेज़ होना होगा। ऐसी दशामें घूमती वस्तुमें बाहरी वस्तुको अपनी ओर आकर्षित करनेकी अपेक्षा अपने भागोंको बाहरकी ओर फेंकनेकी प्रवृत्तिकी सम्भावना ही अधिक है। यदि पृथ्वी घूमती होती तो वह कभीकी खण्ड-खण्ड होकर बिखर गई होती और जीवन उसपर न पाया जाता।

कोपरनिकसने इन आपत्तियों पर इस प्रकार विचार किया।

१. उसने कहा कि भौमिक अथवा आकाशीय किसी भी वस्तुका सहज चलन वृत्ताकार है। जब वस्तु अपनी स्वाभाविक अवस्थामें रहती है तब वह केवल इसी चलनके आधीन होती है। सरल रेखा-चलन उस पर तभी आरोपित होता है जब वह अपनी स्वाभाविक अवस्थासे हट जाती है। ऊपर तथा नीचे गिरती वस्तुओंका चलन हमें लम्बाकर इसलिये दिखाई देता है कि वह पृथ्वीका भाग होनेके कारण वृत्ताकार भी घूम रही हैं। जब वे इसकी धरातलपर स्थिर होती हैं तो वे केवल इसी वृत्ताकार-चलनके आधीन होती हैं।

२. कोपरनिकस पहली तथा दूसरी आपत्तिमें सूक्ष्म भेद करते नहीं जान पड़ते। परन्तु यदि भौमिक वस्तुओंके सदृश सरल-रेखा-चलन पर कोई भी (स्वाभाविक) चलन आरोपित करनेकी स्वतंत्रता हो तो यह अंतर स्वयं ही जाता रहता है। ९वें अध्यायमें कोपरनिकस आकर्षण-शक्ति पर विचार करते हैं। यह विचार इस विषय पर विशेष प्रभाव डालता है। कोपरनिकस लिखते हैं कि मेरी सम्मति में गरुता वस्तुओंके पारस्परिक आकर्षणकी ओर प्रवृत्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और यह आकर्षण-शक्ति ईश्वर ने प्रत्येक पदार्थको दी है जिससे वह एकत्रित होकर सम्पूर्ण एकतामें भासित हो सके। हमें यह मानना होगा कि गुण या प्रभाव सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहोंमें भी हैं और इसीकी सहायतासे वह गोलाकार जैसे हमें दिखाई पड़ते हैं, बने हुये हैं। इस प्रकारकी आकर्षण-शक्तिके होते हुये भी ये पिण्ड अपने विभिन्न वृत्त-मार्गों पर घूमते रहते हैं।

इस प्रकार यदि प्रत्यक्ष गतिवान पिण्डोंमें आकर्षण-शक्तिका होना माना जाय तो भौमिक आकर्षण-शक्ति पृथ्वीकी गति-हीनताका किसी प्रकार भी प्रमाण नहीं हो सकती।

३. बादलों आदिके विपरीत दिशामें घूमनेके विषयमें हमें मानना होगा कि भूमिका वातावरणका एक बड़ा भाग और उसमें तैरती वस्तुएँ पृथ्वीके साथ वैसे ही घूम रही हैं जैसे कि परम्परागत विचारोंमें वातावरणके ऊपरी भाग को आकाशके दैनिक चक्रके साथ घूमता तथा केतुओंको अपने साथ घुमाता माना गया है।

४ कोपरनिकस कहते हैं कि दैनिक चलनमें भूमि बिखरेगी नहीं, क्योंकि यह गति स्वाभाविक होगी और

---

* यूनानी ज्योतिषी १४६-१२६ B. C. Trigonometry की नीव डाली।

इसका प्रभाव विस्फोटनके विपरीत होगा। यदि हमें पृथ्वीके इस प्रकार बिखर जानेका भय है तो ब्रह्माण्ड जो रूढ़िके अनुसार भूमिसे भी कहीं अधिक तेज़ीसे घूम रहा है क्यों नहीं नष्ट-भ्रष्ट हो जाता।

सारांशमें वे कहते हैं, पृथ्वीका अचल होनेकी अपेक्षा चल होना अधिक सम्भव है।

भूमिको अचल तथा ब्रह्माण्डका केन्द्र माननेकी भावना का जन्म धर्माधिकारियोंके अहंकारमें हुआ था। हमारा निवास-स्थान यदि ब्रह्माण्डका केंद्रत्व खो दे तो उसकी (और हमारी) महत्ता क्या रह जायगी, यह विचार कभी उन्हें पृथ्वीको चल न मानने देता था। परन्तु संसारको अपनी आँखोंसे देखने वाले बुद्धिमान लोगोंके और भी विचार थे जो धर्म तथा साधारण जनतामें अमान्य होने पर भी विद्वानोंमें प्रचलित थे।

प्राचीन लोगोंका विचार था कि आकाशीय पिण्डोंका दैनिक चक्र समझा जा सकता है।

कुछ लोगोंका विचार था कि बुद्ध और शुक्र सूर्यके चारों ओर वृत्ताकार घूमते हैं।

पाइथोगोरसके कुछ अनुयायी, यद्यपि वे सूर्य-केन्द्रिक-सिद्धांतको किसी रूपमें न मानते थे, पृथ्वीको स्थानमें गतिवान समझते थे।

अरिस्टार कुज़* कोपरनिकसकी योजनाकी अविकसित कल्पना पहिले ही कर चुका था।

जिस समय कोपरनिकसने अपनी योजनाका विकास किया तो उन्हें इन सब कल्पनाओं तथा विचारोंका ज्ञान था। ज्योतिषको कोपरनिकसकी सबसे बड़ी देन इन विचारोंका नियमित-ग्रह-सिद्धांतके रूपमें विकसित कर देना है, जिससे पहिलेसे अधिक शुद्ध तालिकाएँ प्रस्तुत की जा सकीं और जिसके मूल-सिद्धांतकी सहायतासे केपलर तथा न्यूटनके लिये अगली शताब्दीमें आगे बढ़ना सम्भव हुआ।

कोपरनिकस ग्रहोंकी निरीक्षित चालका अचल-भूमि-केन्द्रिक सिद्धांतके अनुसार सन्तोष-प्रद गणित न कर पाया। जब उसने अपने गणित तथा निरीक्षणके फलोंको मिलाना चाहा तब पृथ्वीके चारों ओर ग्रहोंके मार्गके लिये जिन वृत्तों तथा नीचो-बृचो (Epieyeles) की कल्पना उसे करनी पड़ी उनसे बड़ी गड़बड़ी फैल गई। उदाहरणतया, उन्हें ग्रहोंके विकेन्द्रीय (Fccentric) मार्ग पृथ्वीके चारों ओर कल्पित करने पड़े, जिसका फल यह हुआ कि भूमि-केन्द्रिक-सिद्धान्त ही जाता रहा। इसके विपरीत जब उन्होने सूर्यको केन्द्र माना, और पृथ्वीके अन्य ग्रहों की भाँति उसके चारों ओर घूमनेकी तथा दिनमें एक बार धुरी पर चक्कर काटनेकी कल्पनाकी तो सब सामग्री एक दम सरल और बुद्धि-गम्य हो गई। इस प्रकार चल पृथ्वी पर स्थित मनुष्यके दृष्टिकोणसे अन्य ग्रहोंके वास्तविक निरीक्षित स्थान और चाल सरलतासे निकल आये। वे सूर्यके चारों ओर इसी भाँति विभिन्न व्यासोंके मार्गों पर घूमते माने गये हैं। क्योंकि स्थिर तारोंकी भूमि पर इन चालोंका निरीक्षण किया गया था इसलिये स्थिर तारे सूर्य तथा अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा हमसे बहुत दूर हो गये। पृथ्वीके चारों ओर घूमने वाले पिंडोंमें केवल चन्द्रमा रह गया। यह हमारे सबसे अधिक पास है, इसका पता हिप्पार-कुज़ने लगा लिया था। दार्शनिक सूर्य-केन्द्रिक सिद्धान्तको पहिलेसे मानते थे, खोजके आधार पर उसे प्रमाणित न कर पाये थे। कोपरनिकस इसमें सफल हुये। वे चल पृथ्वीके सिद्धान्तसे उस समय तक संतुष्ट न हुये जब तक उन्होंने गणित करके यह प्रमाणित न कर दिया कि अन्य प्रचलित तथा सम्भव सिद्धान्त इतनी सरलतासे यथार्थतासे मेल नहीं खाते। इसके पश्चात् यह कल्पना उनके लिये सत्य हो गई। प्रकृतिके एक सच्चे अनुसन्धान-कर्त्ताकी भाँति अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करते समय उन्होंने कहा है कि यह सब चाहे बहुत मनुष्योंको कठिन तथा प्रायः बुद्धि-अगम्य जान पड़े, चाहे बहुमतके सिद्धान्तों के कितना विरुद्ध हो, हम परमात्माकी सहायतासे कमसे-कम उन लोगों के लिये जिन्हें गणितका कुछ भी ज्ञान है पुस्तकमें इस सिद्धान्तको सूर्य-सा प्रत्यक्ष कर दिखायेंगे।

उसने अपनी खोजसे एक और भी फल निकाला। यदि पृथ्वी एक व्यासके मार्गपर सूर्यके चारों ओर वार्षिक चक्कर लगाती है तो स्थिर तारे, जितना उस समय समझा

---

* यूनानी ज्योतिषी २०० B. C. के लगभग

जाता था, हमारे उतने पास नहीं हो सकते, क्योंकि इन तारोंके प्रकाश तथा आकारमें पृथ्वीसे उनकी दूरीमें अन्तर पड़नेके कारण कोई अर्ध-वार्षिक परिवर्तन नहीं देखा गया। उस समयका विचार था कि तारे ब्रह्माण्डके ढकने वाले एक अत्यन्त बड़े गोल आवरणमें जड़े हैं। यह विचार अब ठहर न सका। सूर्यकी महान् दूरीसे भी परे अमाप्य स्थान में सरक गये। मनुष्यको इस प्रकार ब्रह्माण्डकी महानता की भावना प्राप्त हुई।

संसारका एक चित्र सम्मुख आया और प्रथम बार अनुभव पर स्थित अंकोंने उसका समर्थन किया। कोपर-निकसका दिया चित्र अब भी विद्यमान है। विज्ञानमें जैसा सदासे होता आया है, धीरे-धीरे बढ़ते प्राप्त-ज्ञानके आधार पर चित्र अधिकाधिक निश्चित होता गया है और अधिकतर गम्भीर विचार इसमें मिलते गये हैं।

कोपरनिकसने अपने कार्यके आवश्यक अंगोंको सन् १५३० ई०तक पूर्ण कर लिया था, परन्तु उसने इसे प्रकाशित नहीं किया था, इसलिये नहीं कि दूसरोंको यह ज्ञान, चाहे वह उसके समकालीन लोगोंको कितना ही आपत्ति-जनक तथा अमान्य रहा हो, प्राप्त हो जायगा, वरन् इसलिये कि अबोध-अज्ञान लोग व्यर्थका बखेड़ा खड़ा कर देंगे। वह सदा इसी सशंयमें रहा कि मैं अपनी पुस्तकको प्रकाशित करूँ अथवा पाइथोगोरसकी भाँति मित्रोंमें बोलकर इसके ज्ञानका प्रचार करूँ।

प्रकाशित न किये जाने पर भी विद्वानोंमें कोपरनिकसके कार्यकी चर्चा फैल चली थी। सन् १५३९ ई० में वितेनवर्ग*के प्रोटेस्टेंट विश्वविद्यालयके गणित-अध्यापक रेटिकस (Rhticus) उनके पास आया। उसे कोपरनिकसके सिद्धान्तोंमें रुचि थी और उनके विषयमें अधिक जानना चाहता था। कोपर-निकसने उसका स्वागत किया और इस उत्साही नवयुवकको अपने सिद्धान्तोंके विषयमें पूर्ण जानकारी करा दी। रेटिकस प्रोटेस्टेंट प्रांतसे आया था। इस कैथोलिक भूभागमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करके भी वह दो वर्ष तक ठहरा और बहुतसे विद्वानोंसे जान पहिचानकी। अपने गुरुके प्रति-कृतज्ञता जतानेके लिये उसने कई नव-प्रकाशि ज्योतिष तथा गणित पुस्तकें भेंटकी।

कोपरनिकस मरते समय अपना समस्त पुस्तकालय केथेड्रलको भेंट कर गये। रेटिकसने ही कुछ समय पश्चात् न्यूर्नवर्ग† में दि रिवोलूशनिबसके मुद्रण तथा प्रकाशन का प्रबन्ध किया। कोपरनिकस अपनी छपी पुस्तकका स्पर्श २४ मई सन् १५४३ ई० को मृत्युशय्या पर ही कर पाया और इसके कुछ घंटे पश्चात् इस संसारसे सदाके लिये विदा हो गया। इस प्रकार उसने न तो अपनी शुद्ध वैज्ञानिक पुस्तकके प्रति लोगोंका प्रारम्भिक वैराग्य ही देखा और न कुछ समय पश्चात् धर्माधिकारियों द्वारा पुस्तक पर किये गये अत्याचार ही उसको दृष्टिगोचर हुये।

इसका पुस्तक सबसे बड़ा प्रभाव चालीस वर्ष पश्चात् गियोरडैनो ब्रूनो (Giordano Bruno) नामक नोला (Nola) के धर्माधिकारी पर पड़ा। उसने लूथर की भाँति मठ छोड़ दिया और उस अमान्यताके युगमें भाषण तथा लेखोंसे पुस्तककी मुक्त-कंठसे प्रशंसाकी। उसने कहा कि कोपरनिकसकी खोज मनुष्यको दुखसे छुड़ायेगी और अनुसन्धान तथा विचारके नये युगकी प्रवर्तक होगी। सामान्यी-करणको वह विचार-विस्तारका मार्ग समझते थे। इस प्रकार उसने दूरदर्शितासे जो सोचा वह उसके समयमें प्रमाणित नहीं किया जा सकता था। उसने स्थिर तारोंके आवरणके विचारको एक दम छोड़ दिया और तारोंको पहिली बार अपने सूर्यके समान स्थानमें बिखरे अन्य सूर्य समझा। इन सब सूर्योंके अपने ग्रह हैं, पृथ्वियाँ हैं, जिन पर जीव-निवास करते हैं।

वह कहता है कि प्रकाशोत्पादक तथा प्रकाशित आकाशीय वस्तुओंका अमाप्य राज्य ही बस एक स्वर्ग है। ईश्वरको हमें अपनेसे परे न खोजना होगा। वह हमारे पास है। हममें हैं, हमसे अधिक हममें है, इसी अन्य संसारोंके निवासियोंको उसे हमारे संसारमें न ढूंढना होगा क्योंकि वह वहाँ भी उनके संसारमें हैं। उनमें है।

यह सब ईसाई-धर्म-शिक्षाके विरुद्ध था, इसलिये वह धर्म-रक्षक-सभा तथा पोपकी आज्ञानुसार सन् १६०० ई० में रोममें जीवित जला दिया गया।

*पश्चिमी प्रशियामें।

†पश्चिमी प्रशियामें—

त्रिदोष सिद्धान्त*

(लेखक—कविराज श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी)

आयुवेदमें शारीरिक सम्पूर्ण स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक क्रियाओंके अन्तिम मूलकारण तीन भौतिक सूक्ष्म तत्व माने गये हैं जिनको वात पित्त और कफ़ कहते हैं। इनमें वात अप्रत्यक्ष रूप किन्तु पित्त और कफके कतिपय स्थूल रूपोंको प्रत्यक्षभी देखा जा सकता है। इनमें वातकी आकाश और वायु तत्वसे, पित्तकी तैजस् तत्वसे और कफ़ की पृथ्वी और जल तत्वसे उत्पत्ति मानी जाती है। ऋषियोंने इनकी क्रिया और स्थूल परिणामोंसे ऐसा पता लगाया है कि ये जिन भूतोंसे उत्पन्न होते हैं उन्हींके गुण इनमें पाये जाते हैं। वातमें आकाश तथा वायुभूतके सूक्ष्मता और चलता आदि गुण होते हैं, और ये शरीरके सूक्ष्म चलभावों ((Vital Activities) के मूलकारण हैं। पित्तमें अग्नितत्वके तीक्ष्णता, उष्णता आदि गुण होते हैं। यह शरीरकी उष्णता और उष्णताकी कारणभूत शरीरकी पचनात्मक प्रक्रिया (Katabolism) का मूलकारण है। कफमें पृथ्वी और जलके स्निग्धता-गुरुता-शीतता आदि गुण होते हैं और यह शरीरमें स्निग्ध शीत गुरु और स्थिर भागोंका कारण होता है। संक्षेपमें यह शरीरकी स्थिरता और रचना (Anabolism) का कारण है।

१—शरीरमें होने वाली भौतिक क्रियाओंका कारण वात माना जाता है और इन क्रियाओंको वातिक क्रियायें कहते हैं।

२—पचनात्मक रासायनिक क्रियाओंका मूलकारण पित्त है और इन क्रियाओंको वात्तिक क्रियायें कहते हैं।

३—इन दोनोंके विपरीत रचनात्मक रासायनिक क्रियाओंका मूल कारण कफ़ है और इनको श्लैष्मिक क्रियायें कहते हैं।

दर्शन शास्त्र सब क्रियाओंका कारण सत्व-रजस् और तम इन तीन गुणोंको मानता है और आयुर्वेद वात पित्त कफ इन त्रिधातुओंको कारण मानता है; परन्तु वास्तवमें ये धातुयें त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे ही बनी हैं। सुश्रुतशरीरके प्रथमाध्यायके देखनेसे पता चलता है कि आकाश और वायुतत्वसे उत्पन्न वातमें प्रधानतः रजोगुण होता है। इससे सिद्ध होता है कि भौतिक जगत्में सम्पूर्ण गति और चेष्टाओंके मूलकारण रजोगुणकी भाँति वायुभी शारीरिक सम्पूर्ण गति और चेष्टा जिसे शरीरकी प्राणशक्ति कहते हैं का कारण है। इसी तरह तेजस तत्वसे उत्पन्न पित्त धातु में मुख्यतः सत्वगुण सम्पूर्ण प्रकाश तथा तेजका मूलकारण है। उसी प्रकार शरीर स्थित पित्तभी प्रकाश तेज उष्मा निर्बल बुद्धि मेधा आदि सात्विक भावोंका कारण है। जल और पार्थिव तत्वसे उत्पन्न कफ धातुओंमें मुख्यतः तमोगुण होता है। भौतिक जगत्में जिस प्रकार तमोगुण स्थिरताका मूलकारण है उसी प्रकार शारीरिक जगत्में कफ़ शरीरके अवयवोंमें स्थिरता तथा क्षीणता नष्ट होनेसे बचाने वाली सहन शक्ति और मानसिक धीरताका कारण है।

वात पित्त कफोंको (शरीरधारणाद्धातवः) के अनुसार शरीर धारक होनेसे धातु कहा जाता है और रोगोंका मूलकारण होनेसे इन्हें दोष कहा जाता है। (दूषणाद्दोषः) इसी प्रकार अनेक मलोंके रूपमें शरीर धातुओंको मलिन करनेके कारण (मलिनीकारणाद् मलाः) मल शब्दसे कहा जाता है।

धातु रूप वातः—'वा' गति गन्धनयोः, से वात शब्द बना है। इसलिए जितनीभी शरीरमें गतिरूप क्रियायें होती हैं वे सब वायु की हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको मनके पास पहुँचाना और पेशिओंमें वेग उत्पन्न करके चेष्टाओंका करना ही गति रूप क्रिया है। इन क्रियाओंको पाश्चात्य मतमें कहा जाता है। चित्तमें जो कुछ संकल्प विकल्प आदि वृत्तियाँ होती हैं, ये भी मनकी गति रूप क्रियायें है। अतः इनको भी वायुके कार्य कहते हैं। चरक आदि में स्पष्ट रूपसे लिखा है कि 'वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः' वायु

* इस विवादास्पद विषय पर लेखकने जो विचार प्रस्तुय किये हैं, वे स्वतः उनके हैं। हमारा उत्तरदायित्व नहीं है। —सम्पादक

शरीर रूपी मशीनका चलाने वाला है। 'प्राणोदान समान व्यान अपानात्मा' यह शरीर का प्राण आदि पाँच भेदसे उपकार करता है। 'प्रवर्तकश्चेष्टानाम्' यह सब चेष्टाओंका प्रवर्तक है। 'सर्वाःहि चेष्टाः वातेन', इसलिए यह शरीरकी प्रवर्तक शक्ति है। 'सर्वेन्द्रियाणामुद्योतकः सर्वेन्द्रियाणामभिवोटा' यह इन्द्रियोंसे होने वाले ज्ञानको मस्तिष्क तक पहुँचाता है और उसके अनुसार इन्द्रियोंको चलाता है। इससे पता चलता है कि वायु ज्ञानवाहिनी शक्ति है। 'सर्वधातुव्यूहकरः सन्धानकर शरीरस्य प्रवर्तको वाचः हर्षोत्साहयोर्योनिः' वातही पित्त और कफ दोनोंकी क्रियाओं, रस, रक्त मांसादि शारीरिक धातुओंके बनानेकी प्रक्रियाओं तथा वाणीका प्रवर्तक है। यही उच्छ्वास निःश्वास आदि श्वास-स्थानमें होने वाली क्रियाओंका तथा हृदयके संचालन से हर्ष उत्साह और रस रक्त संवहनका भी कारण है। इससे ज्ञात होता है कि वायुको शरीरमें होने वाली अनैच्छिक क्रियाओंका प्रवर्तक कहा है। 'समीरणोऽग्नेः' वायु पाचक रसोंको निकलता है। 'चेप्ता बहिर्मलानाम्' यह स्वेद मल मूलादि मलोंको बाहर फेंकता है। अतः यह शरीरको स्रावक और निःस्रावक शक्ति है। 'दोष संशोषणः' वही शरीर के मलों का संशोषण करता है।

वायुके भेद

वातके स्थान और कार्य-भेदसे विशेष नामरूप दिये गये हैं जिनमें से कुछ प्रसिद्ध इस प्रकारसे कहे जाते हैं।

प्राण वायु

'प्राणोऽत्र मूर्धगा उरः कण्ठचरो बुद्धि हृदयेन्द्रिय-चित्तधृक्' इसका स्थान शिर है और इसे चित्त बुद्धि, हृदय और इन्द्रियोंका नियामक कहा गया है, अतएव इसे भौतिक स्नायु बल कहा जाता है।

उदान वायु

'उरः स्थान मुदानस्य नासानाभि गलांश्चरेत् वाक्प्रवृत्तिः-प्रयत्नोर्जा बल वर्णादि कर्म च' इसका स्थान उरस् है, यह उरःस्थान में श्वास-प्रश्वासको स्वाभाविक अवस्थामें रख कर शरीरके बल, ओज और वर्ण को कायम रखता है। अतएव इसको श्वास-स्नायु-बल कहा जाता है।

व्यान वायु

'कृत्स्नदेहचरो व्यानो रस संवहनो यतः। स्वेदासृक् स्रावणो वापि पञ्चधाचेष्टमत्यपि'॥ व्यानवायु सब शरीरमें व्याप्त होकर रस, रक्त तथा स्वेदापि शरीरके द्रवोंकी गतिको नियमित रखता है और भिन्न-भिन्न चेष्टाओं (अनैच्छिक मांस-पेशियों) की गति को उत्पन्न करता हुआ सर्वविध वायुओंकी शक्तिको सहायता पहुँचाता है।

अपान वायु

'अपानोऽपानगः श्रोणि वस्तिमंद्रोरू गोचरः-शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः'। कोष्ठ के निम्न भागमें रहने वाले वातको अपान कहा जाता है। यह यथा समय मल, मूत्र शुक्र, आर्तव तथा गर्भको बाहर फेंकता है। संभवतः इस बातसे उस अनैच्छिक वात-शक्ति का बोध होता है जो त्रिकास्थि के सम्मुख विद्यमान इडा पिंगलाके चक्रों, वस्ति-गुहाके चक्रों तथा वस्ति गुहामें विद्यमान वृक्क, मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय अण्ड आदिमें विद्यमान नाड़ी-चक्रोंमें पाई जाती है।

समान वायु

'आमपक्काशयचरो समानो वह्नि संगतः, वा साऽन्नं पचति-तज्जांश्चविशेषान्विविनक्ति हि' आमाशय और आन्त में रहने वाली वायुको जो भोजनको अन्दर ले जाता, विश्लिष्ट करता, पचाता तथा रस और मलको पृथक् करता है, उसे समानवायुके नामसे कहा जाता है। 'समानोऽग्नि समीपस्थः कोष्ठे चरित सर्वतः अन्न गृह्णाति पचति, विवेचयति मुञ्चति।'

दोषरूप वायु

वात, पित्त कफ तीनों अपनी समावस्थामें रहते हुए धातु-रूपमें लिखी हुई क्रियाओंके द्वारा शरीर आरोग्यके कारण होते हैं। इसके विपरीत मन्द अथवा वृद्धावस्थामें अनेक रोगोंके कारण होते हैं। इन्हीं अवस्थाओं को दोष प्रकोपावस्था भी कहते हैं।

वात प्रकोपके लक्षण

'वात वृद्धौ त्वक् पारुष्यंकार्श्य-कार्ष्ठ्य-गान स्फुरणमुष्णकामिता निद्रानाशो अल्पबलत्वं गाढवर्चस्त्वञ्च

भवति," वातका शरीर पर बड़ा भारी प्रभाव होता है। यही कफ द्वारा शरीरका पोषण करता है। वातके निर्बल पड़ जानेसे एकाङ्ग या सर्वाङ्गमें निर्बलता आ जाती है। अतः निर्बलता वात-प्रकोपका मुख्य लक्षण है। वात-प्रकोपके कारण किसी अंगमें पोषण कम हो जाने के कारण उसमें क्षयको प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है और अंगमें कृशता, लघुता, शोष और क्षीणताभी उत्पन्न हो जाती है। वात-प्रकोपके कारण अवयवोंमें वास्तविक शक्तिके घट जानेसे वृद्धि घट जाती है जिससे समयसे पूर्व वृद्धावस्थाके लक्षण आजाते हैं। किसी अंग या सर्वाङ्गमें कृशता आदि लक्षण पैदा हो जानेसे उस अवयव या सर्वाङ्ग का वर्ण भी काला सा पड़ जाता है। वृद्धावस्थामें स्वभावतः वात-प्रकोप हो जाने पर हृदय वृक्कयकृत् आदि अंगोंमें काले रंगके दाने संचित हुए पाये जाते हैं। अतः कालापन भी वात-प्रकोप का लक्षण माना जाता है। 'वरुणः श्यावोऽरुणा वापि' यदि किसी अंगकी शक्ति घट जानेसे उसमें रक्त ठीक न पहुँच सके तो पोषणमें न्यूनता आजावे और उसके सेलोंमें चय की प्रतिक्रिया आरम्भ हो जावे तो ऊष्मा कम होकर शीतता आ जाती है। अतः शीतता भी वात-प्रकोपका लक्षण है। वातिक शक्तिके घट जानेसे अवयवोंमें क्षयकी प्रक्रिया आरम्भ हो जाने पर वात प्रकोपसे खरता (कैलसिफिकेशन) भी हो जाती है। इसी प्रकार यदि त्वचाके पोषणमें न्यूनता आ जावे और त्वचास्थित स्वेदग्रंथियाँ निर्बल पड़ जायें तो त्वचा पर रूक्षता या परुषता आजाती है और बालोंकी जड़ें निर्बल होजानेके कारण बाल झड़ने लगते हैं। वात-प्रकोपसे शरीर की नाना गतियोंमें भी विषमता आजाती है जिससे अंगोंमें संकोच, स्तम्भ, आवर्त उदावर्त आक्षेप, उद्वेष्टन और कम्पन आदि अस्वाभाविक लक्षण होने लगते हैं। "संगांगं भंग संकोच वर्त हर्षण तर्पणम्। कम्प पारुष्य सौषिर्य शोष स्पन्दन वेष्टनम्। स्तम्भः कषायरसता" वाग्भट। अंगावयवोंमें संकोच आदि नाना विधिकी गतियाँ वातप्रकोपके कारण होती हैं। आन्तोंमें वात-प्रकोप होनेसे आन्तोंकी मांसपेशियोंमें स्तम्भ तथा उदावर्त होकर मलबन्ध आदि हो जाते हैं। इसी तरह मूत्रमार्गमें स्तम्भ और उदावर्त होनेसे मूत्ररोध हो जाता है। श्वास-नालियोंमें वात-प्रकोप जन्य उदावर्त होने से श्वास-रोगका वेग आरम्भ हो जाता है, क्योंकि शरीर की संज्ञाभी वातके आधीन है। अतः वातप्रकोपमें शूल भेद तोय आदि अनेक प्रकारकी अस्वाभाविक संज्ञायें होने लगती हैं और कभी-कभी संज्ञा सर्वथा नष्ट हो जाती है। चक्षुरादि इंद्रियोंमें संज्ञाओंके नष्ट हो जानेसे तिमिर, घ्राण-नाश, स्पर्शनाश, वाधिर्य ओर मूकता आदि रोग हो जाते हैं। अंगावयवोंकी संज्ञा और चेष्टाओंके मन्द पड़ जानेके कारण एकांगघात, पक्षघात आदि रोग हो जाते हैं। आन्तों में होने वाली तथा धातुओंमें होने वाली पचनात्मक प्रक्रिया वातसे नियमित होती है। जब वायु अपना कार्य ठीक नहीं करता है तो वचनमें विषमता आ जानेसे भोजनका आमरस या अपक्व द्रव्य अवयवोंमें संचित हो जाता है जिससे आमवात और उरुस्तम्भ रोग हो जाते हैं। वात-प्रकोपके कारण शारीरिक अवयवोंको भांति मानसिक निर्बलता में निद्रानाश, प्रलाप, विषाद, भ्रम, मूर्छा आदि रोग हो जाते हैं।

वातक्षयके लक्षण

'तत्रवात क्षये मन्द चेष्टता वचसोऽल्पता। अल्प हर्षस्तथा मूढ़ संज्ञता चेति लक्षणम्' इसके विषय में पहले कहा जा चुका है कि अंगावयवोंमें वातकी शक्ति घट जानेसे मांसपेशियोंकी चेष्टायें मन्द पड़ जाती हैं और सर्वथा नष्ट हो जाती हैं। इंद्रियोंमें इस शक्तिके नष्ट हो जानेसे मूकता और बाधिर्य आदि हो जाते हैं, शरीरमें उत्साह नहीं रहता है।

वात-प्रकोपके कारण

"व्यायामादपतर्पणात् प्रलप-नाद् भंगात् क्षयात् जागरात्। वेगानाञ्च विधारणादति शुचः शैत्यादति-त्रासतः। रुक्ष क्षोभ कषायतिक्त कटुकैभिः प्रकोपं व्रजेत् वायुः" शक्तिसे अधिक परिश्रम करने, अंगावयवोंको शक्ति क्षीण होने पर वात-प्रकोप हो जाता है। इसी तरह उपवास (लंघन) करनेसे, शिरमें भारी चोट लगने या किसी अंगावयवके टूटने, मस्तिष्कसे रक्तस्राव होने, शक्तिसे अधिक पढ़ने, तीव्र चिन्ता, शोक, भय आदि मानसिक रोगोंके हो जानेसे शरीर क्षीण होकर वात-प्रकोप

हो जाता है। अत्यधिक भोजन करनेसे भी शरीर निर्बल हो जाता है। चिरस्थायी या तीव्र रोगोंके कारण शारीरिक धातुओंके क्षीण हो जाने या शुद्ध आर्तवके क्षीण हो जाने, या देर तक अधिक मात्रामें वमन आदि लेनेसे भी शरीर निर्बल पड़ कर वात-प्रकोप हो जाता है। मल-मूत्र आदि वेगोंको रोकने या अधिक शीतमें कार्य करनेसे भी वात-प्रकोप हो जाता है। त्वचा या मुख द्वारा विष-द्रव्यके शरीरमें प्रविष्ट हो जाने तथा भोजनके ठीक परिपक्वकृत होने और मल-बन्धके कारण आन्तोंमें उत्पन्न हुए आमरस और नाना प्रकारके विषोंके शरीरमें व्याप्त हो जानेसे भी वात-प्रकोप हो जाता है। आयुकी दृष्टिसे वृद्धावस्थामें जब शरीरकी शक्ति-क्षीण हो जाती है तो वात-प्रकोप हो जाता है। रसोंकी दृष्टिसे कटु तिक्त और कषाय-रस जो कि पोषक-रसको सुखा कर शरीरको कृश करते हैं, वात-प्रकोपक होते हैं, अथवा शरीरके किसी अंग या सर्वाङ्गमें निर्बलता उत्पन्न करने वाले द्रव्य जिनमें पोषक द्रव्योंकी मात्रा बहुत कम है और इसीलिए जो शरीरके अवयवमें लघुता रूक्षता, खरता स्पर्शता विषदता, और चलता उत्पन्न करते हैं, निरन्तर चिरकाल तक सेवन करनेसे वात-प्रकोपक होते हैं। 'लघु-शीत-रूक्ष-खर-सूक्ष्म स्पर्श गुण बहुलानि वायव्यानि द्रव्याणि हानि विचार वैशद्य लाघव कराणि। और ऐसे द्रव्य जो पेटमें वायु उत्पन्न करते हैं, वात प्रकोप होते हैं।

धातु रूप पित्त

'तप सन्तापे' धातुसे पित्त शब्द बना है। अतः शरीर के सन्ताप तथा तेजोमय कार्यों में मूल-करणको पित्त कहा जाता है। यह जीवनके लिए अत्यावश्यक शरीरमें होने वाली रासायनिक क्रियाओंका नियामक है; अथवा शरीरमें जो कुछ भी तेजोमय कार्य होते हैं उन सबका परिचालक पित्त है। प्रधानतः शरीरके स्वाभाविक सन्तापकी रक्षा जिससे सन्ताप ९८ से ९८'५ डिग्री हमेशा बना रहता है और त्वचाकी शोषण-शक्ति, अन्नका विपाक, मनकी तेजस्विता, दृष्टिकी उज्वलता और रक्तका उज्वल लालवर्ण, धारण शक्ति, बुद्धिकी प्राप्ति और पराक्रम—ये ही शरीरमें तेजोमय कार्य हैं, इसलिए सुश्रुतमें लिखा है कि—"राग पक्त्योजस्तेजो मेधोष्मकृत्, पित्तं, पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति" इसी तरह वाग्भटनें बताया है कि "पित्तं पक्त्यूष्मदर्शनैः" "क्षुतड्रुचि प्रभामेधा धी शौर्य तनु मार्दवैः शरीरस्यानुग्रहं करोति।" शरीरमें होने वाले द्विविध रासानिक परिवर्तन १—आहार द्रव्य सम्बन्धी। २—धात्वीय पाचन सम्बन्धी, पित्तके द्वारा संपादित किये जाते हैं। इनमें द्वितीय प्रकारसे पाचनको धातु-पाक कहते हैं। रस-रक्तादि धातुओंमें पाक करने वाले पित्तको धात्वाग्नि और आहार परिपाक करने वाले पित्तको पाचकाग्नि कहा जाता है। अतएव आयुर्वेदमें १३ प्रकारकी अग्नियाँ (पाँच पञ्च भूतात्मक, सात सप्त धात्वाग्नि और एक जाठराग्नि) बताई गई हैं। और कहा है कि पित्ताग्निया रस-रक्तादि धातुओंमें पाक करके प्रसाद और किट्ट भागको पृथक् करती हैं। प्रसाद भाग शरीरकी आवश्यकताओंको पूरा करता हुआ अङ्ग बन जाता है। किट्ट भाग नाना द्रव्यों स्वेद निष्ठीवन आदिके द्वारा शरीरसे बाहर निकल जाता है। 'सप्तभिर्देह धातारो धातवो द्विविधो पुनः' यथास्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्ट प्रसादवत्।

पित्तके भेद

वायुकी तरह पित्तके स्थान और कार्य भेदसे विशेष नाम रूपादि दिये गये हैं। वे निम्न प्रकारसे हैं—

पाचक पित्त—

इसका मुख्य स्थान आमाशय है। यह आमाशयमें रह कर चातुर्विध भुक्त द्रव्योंका पाक करता है। सूक्ष्म रूपसे लाल-रस आदिमें पाचक पित्त होता है। भुक्त पदार्थों में से शरीरोपयोगी अंशका रस बन कर बाकी अंश को मलके रूपमें बाहर कर देना इसी पित्तका काम है। "तच्चादृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्वामाशय मध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति च रसदोषमूत्रपुरीषाणि तत्रस्थमेव चात्म शक्त्या शेषाणं पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽनुग्रह करोति तस्मिन् पाचकोऽग्निरिति संज्ञा।"

भ्राजक पित्त

जैसे आमाशय पक्वाशय आदि पाचन सम्बन्धी अंगों तथा रुधिर धातुओंमें पित्तकी क्रिया विशेषतया होती है

उसी तरह त्वचामें भी विशेषरूपसे पित्त-क्रिया होती है। त्वचाका वर्ण, त्वचा पर पाई जाने वाली स्वाभाविक प्रथा तथा उसकी मृदुता पित्तके ही कारण उत्पन्न होती है। त्वचाकी असंख्य स्वेद ग्रन्थियों वसा स्रावक ग्रन्थियोंमें अवश्य ही रासायनिक क्रिया विशेष तीव्रतासे होती है। यदि यह क्रिया ठीक प्रकार चलती रहे तो त्वचाका वर्ण तथा मृदुता भी बनी रहती है। त्वचाकी प्रभाका उत्पादक होनेसे इस पित्तको 'भ्राजक पित्त' कहते हैं। त्वचा पर लगाये जाने वाले लेप सेल सेकापिका पाचक भी है। "यत्पित्तं त्वचस्थितं तस्मिन्भ्राजककोऽग्निरिति संज्ञा, सोऽभ्यंग परिषेकावगाहा वलेपनानां क्रिया द्रव्याणां पक्ता छायानां च प्रकाशकः।"

रंजक पित्त

यह यकृत् और प्लीहा में होती है। इसी को रंजक अग्निके नामसे कहा गया है। यह पित्त रसको रंग कर रक्त में परिणत करता है। "यत्तु यकृत् प्लीहोः पित्तं तस्मिन्-रंजकोऽग्निरिति संज्ञा स रसस्य राग-कृदुक्तः।"

साधक पित्त

'साधकं हृद्गतं पित्तम्' यह विशेषतः हृदय में पाया जाता है, अर्थात् यह हृदयमें होने वाले मानसिक भावोंके उत्पन्न करनेमें सहायक है। इसके ठीक कार्य करने पर हृदयमें तमोगुणका प्रभाव नहीं होने पाता—अर्थात् शूरता का भाव रहता है और ठीक कार्य न करने पर भीरुता आ जाती है। इसके समावस्थामें रहने पर बुद्धि स्वच्छ और विषमावस्थामें बुद्धि विकृत हो जाती है। तथा मोह उत्पन्न हो जाता है। इन भावोंका साधन होनेसे इसको 'साधक पित्त' कहा है। "यत्पित्तं हृदय सस्थितं तस्मि-न्साधकोऽग्निरिति संज्ञा सोऽभिप्रार्थित मनोरथ साधन कृदुक्तः।"

आलोचक पित्त

नेत्रोंमें रूपकी प्रतीतिका कारण भी पित्त माना जाता है। यह पित्त रूपको दिखाता है। अतः इसे "आलोचकाग्नि" भी कहते हैं। माना जाता है कि नेत्रोंके पश्चिम पटलमें कुछ रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे रूपकी प्रतीति होती है। सम्भवतः इस रासायनिक क्रिया प्रवर्तक रसको ही आलोचक-रस कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि शरीरमें होने वाली पचनात्मक रासायनिक क्रियाओंके मूल-कारण भूतत्वको जो कि कार्यानुमेय है, पित्त कहा जाता है और तेजोगुण द्रव्योंको पित्तका रूपान्तर कहा जाता है। "यद् दृष्टयां पित्तं तस्मिन्नालोचकोऽग्निरिति संज्ञा स रूपऽधिन्कृतः"।

पित्त प्रकोपके लक्षण

"विस्फोटाम्लक धूमका प्रलपन स्वेद सुतिर्मूर्छनं, दौर्गन्ध्यं दरणं मदोऽपि सरणं पाकोऽतिस्तड्भ्रमौ। ऊष्मा तृप्ति तमः प्रवेशदहन कट्वम्ल तिक्ता रसाः। वर्णः पांडु विवर्जितः क्वथितता कर्मणि पित्तस्य वै" अवयवोंमें होने वाली स्वाभाविक पचनात्मक प्रक्रियाका अधिक न्यून या तीव्र हो जाना पित्त-प्रकोप कहा जाता है। इस क्रिया के तीव्र होने पर पित्तके कार्य भी तीव्र हो जाते हैं और न्यून होने पर शिथिल पड़ जाते हैं। पचनात्मक प्रक्रियाके अधिक होनेसे शरीरकी ऊष्मा अधिक बढ़ जाती है तो शरीर गरम हो जाता है और ज्वर हो जाता है। जैसे ज्वरसे मिथ्याहार-विहारसे आमाशय पक्वाशयकी पाचक ग्रन्थियोंमें अधिक ऊष्मा पैदा होने लगे तो वह रस-रक्त द्वारा शरीरमें फैल कर ज्वरको उत्पन्न करती है। इसी प्रकार किसी एक अङ्गमें अत्यधिक ऊष्मा होने लगे तो वह रस-रक्त द्वारा शरीरमें फैल कर गरमी बढ़ा कर ज्वर उत्पन्न कर देती है। जिस अङ्ग या रोगमें यह क्रिया तीव्र होती है वहाँ रक्त भी अधिक आता है जिससे वह स्थान लाल होकर शोथयुक्त हो जाता है। यदि उस स्थानकी शोथ बढ़ जाय तो वहाँ पाक हो जाता है। और यदि पाक भी बढ़ता जाय तो वहाँ पर कोथ (सड़न) हो जाता है; अतः रोग, शोथ, पाक आदि पित्त-प्रकोपके लक्षण कहे जाते हैं। उष्ण, तीक्ष्ण या क्षोपक द्रव्योंके अधिक खाये जाने पर आमाशयकी भीतरी झिल्लीमें पचनात्मक प्रक्रिया भी तीव्र हो जाती है जिससे उसमें अधिक रक्त आकर शोथ हो जाता है और पाचक-रस निकालने वाली ग्रंथियोंसे अधिक रस निकलने लगता है जिससे अधिक क्षुधा लगती है। आमाशयमें अधिक ऊष्माके बढ़ जानेसे प्यास भी बढ़

जाती है। अतः अम्लपित्त, अतिक्षुधा, अतिपिपासा पित्त-प्रकोपके लक्षण हैं। त्वचाकी ग्रंथियोंमें पित्त-प्रकोप होने पर उसकी पचनात्मक प्रक्रिया अधिक तीव्रतासे होने लगती है तो रक्तके रक्ताणु अधिक मात्रामें नष्ट होते हैं जिससे शरीरका रंग फीका पड़ जाता है और पांडु हो जाता है। इसी तरह यकृत्में पित्त-प्रकोप होनेसे वह रक्त द्वारा नेत्र त्वचा आदिमें भी पीलापन आ जाता है। शरीरमें बढ़ी हुई पचनात्मक प्रक्रियाका मस्तिष्क पर प्रभाव हो जाने या किन्हीं तीक्ष्ण उष्ण विष द्रव्योंके मस्तिष्कमें पहुँचनेसे वहाँ की पचनात्मक प्रक्रिया तीव्रहो जाय तो मस्तिष्कमें रक्त संचय होकर उन्माद, मूर्छा, भ्रम आदि के लक्षण हो जाते हैं जो पित्त-प्रकोप कहे जाते हैं।

पित्त क्षयके लक्षण

"पित्त क्षये तु मन्दोष्मा मन्दाग्नित्वं प्रमाल्पता" शरीर की पचनात्मक प्रक्रियाके अति क्षीण होनेसे शरीरकी ऊष्मा घट जाती है। आमाशयमें प्रक्रियाके मन्द पड़ जानेसे पाचक रसकी न्यूनता पर क्षुधा तथा पिपासा मन्द हो जाती है। त्वचामें रक्त-संचारके मन्द पड़ जानेसे त्वचाकी प्रभा और कान्ति फीकी पड़ जाती है। मनमें अनुत्साह धी, मेधा, स्मृति आदि भावोंमें मन्दता आ जाती है। रक्तका दबाव घट जाता है।

पित्त प्रकोपके कारण

"कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्ण लवण क्रोधोपवासातप। स्त्रीसंपर्क तिलातसीदधिसुराशुक्तारनालादिभिः। युक्ते जीर्यति भोजने च शरपि ग्रीष्मे सति प्राणिनां पित्तं प्रकोपं व्रजेत्।"

पित्त तैजस् हैं, अतः ऐसे द्रव्य जो आग्नेय हों तथा शरीरमें पचनात्मक प्रक्रियाको उत्तेजित कर अवयवोंमें उष्णता और तीक्ष्णता उत्पन्न करें वे पित्त-प्रकोपक होते हैं। इसी तरह अग्नि और वायु-तत्वसे उत्पन्न कटु-रस द्रव्य, अग्नि तथा जल तत्वोंसे उत्पन्न लवण-रस द्रव्यभी अत्यधिक प्रयोग करनेसे पचनात्मक प्रक्रियाको उत्तेजित करते हैं। इसके अतिरिक्त तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रुक्ष, लघु विशद गुणयुक्त भी आग्नेय होनेके कारण पित्त-प्रकोपक होते हैं। जैसे—सर्षय-लशुन-कांजी सिरका तिल आदि उष्ण द्रव्य निरन्तर प्रयोगसे मुख और त्वचा द्वारा प्रविष्ट हुए तीव्र विषद्रव्य शरीरके एकांग या सर्वाङ्गमें तीक्ष्णता उष्णता और क्षोभ उत्पन्न करनेके कारण पित्त-प्रकोपक होते हैं। आमाशय तथा आन्तोंमें शोथ या विदाह उत्पन्न करने वाले तथा अजीर्ण उत्पन्न करने वाले द्रव्य भी शरीरमें अधिक उष्णता उत्पन्न करते हैं। अतः विदाही और गुरु द्रव्य भी पित्त-प्रकोपक होते हैं। तीव्र धूपमें काम करने और धूप लग जानेसे भी शरीरमें अधिक गरमी उत्पन्न होकर पित्त-प्रकोप हो जाता है। क्रोध, शोक, भय आदि मानसिक वेग भी शरीरमें पित्त रसोंको उत्तेजित कर अधिक ऊष्मा उत्पन्न करते हैं। उष्ण देशमें पित्त रोग अधिक होते हैं और सहसा उष्ण देशमें जाने भी पित्त-प्रकोप हो जाता है। वर्षा-ऋतुकी शीतके बाद शरद्-ऋतुके आरम्भमें सूर्यकी किरणोंके सहसा तीव्र होने के कारण शरीरमें अधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है और पित्त-प्रकोप हो जाता है। "वर्षा शीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः। तप्तानां सञ्चितं पित्तं शरपि कुप्यति।"

धातुरूप कफ

पित्त शरीरमें तैजस् गुण होनेसे जलाने या पाकका काम करता है। यदि अकेला पित्त ही शरीरमें काम करता तो उसमें शरीरकी धातुयें भी जलने लगती और शरीर स्थिर नहीं रह सकता था, परन्तु प्रकृति ने पित्तके जलाने या तोड़नेके कार्यके साथ-साथ शरीरमें रचनात्मक कार्य पचनात्मक प्रक्रियाके बिना नहीं हो सकता। अतः पित्त (तैजस्) और कफ (आप्य) दोनों परस्पर मिल कर कार्य करते हैं जिससे शरीरकी स्थिति बनी रहती है। यह कफ शरीर और मस्तिष्ककी रचना तथा वृद्धिका मूलकारण है। यदि यह कार्य न करे तो प्रत्येक अवयवमें कृशता, शिथिलता, उत्साहके स्थान पर आलस्य तथा वुद्धि विकसित न होनेसे मूढ़ता आ जाती है। "सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गत: कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति। यद्यथा दार्ढ्यंशैथिल्यमुपचमं कार्श्यमुत्साहमालस्यं कृशता क्लीवता बुद्धिमोहमेवादीनि द्वन्द्वानि" कफके समावस्थामें रहनेसे शरीरमें वृद्धि होती है। पुंस्त्व शक्ति और धातुओंकी पुष्टि होती है और धैर्य तथा सहिष्णुता या क्षमाशक्ति स्थिर रहती है। इसके निर्बल होने पर पुंस्त्व-शक्ति नष्ट हो

जाती है। कफ़ ही शरीरका प्राकृतिक बल या क्षमा-शक्ति है जिससे शरीर अपनेको रोगाक्रमणसे बचाये रखता है। इसके क्षीण होने पर शरीरकी वृद्धि उपचय आदि न होने पर अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं या अनेक विष शरीरमें अपना प्रभाव जमा सकते हैं। अतः यह 'ओज-जीवन शक्ति' के नामसे कहा जाता हैं। "प्राकृतस्तु बलश्लेष्मा सचैवोजः स्मृतः कफः" यह शरीरमें होने वाली क्षतिको पूरा करता है और अवयवों, आमाशयों तथा सन्धियोंके चिकनेपनका कारण है। शरीरकी सम्पूर्ण सन्धियाँ स्नायु (कण्डरा) आदिसे निबद्ध होती हुई भी निरन्तर घर्षणसे क्षीण या अस्त व्यस्त हो जाती है। यदि कफ़ उनकी श्लैष्मिक कलाके रूपके रक्षा न करता। "सन्धि संश्लेषण स्नेहन पूरण बृहंण तर्पण खल स्थैर्यकृत् श्लेष्मा पञ्चधा प्रविभक्त उदक कर्मणा अनुग्रहं करोति"

कफ़के भेद

क्लेदक कफ़ — इसका मुख्य स्थान आमाशय माना जाता है। यह मधुर पिच्छल और क्लेदक स्वभाव होनेसे मुख-आमाशय-पक्वाशय आदिमें जलकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और आमाशय आदिमें भोजनको गीलाकर घोलकर श्वेत सा चिकना द्रव बनाता है। "यस्त्वामाशय संस्थितः क्लेदक सोऽन्नसंघातः क्लेदनात्"।

अवलम्बक कफ़

यह अन्नके पोषक रससे हृदयकी अविच्छिन्न गतिमें परम सहायक है। यह उदरके लिये भी पोषक कहा जाता है। इसके प्रकोपमें हृदय-गति दुर्बल और मन्द पड़ जाती है। फुफ्फुस और पार्श्व भाग कफ़से आच्छादित हो जाता है। सम्भवतः ज्वरमें इसी कफ़के प्रकोपसे श्वास ज्वरका भय रहता है। "अवलम्बक उद्रथस्तिक संधारणमात्य वीर्येण अन्नरस सहितेन हृदयावलम्बनं करोति"।

बोधक कफ़

यह जिह्वा कण्ठमें विद्यमान होकर द्रव्य रसोंके बोधक में सहायक होता है और जिह्वा तथा कण्ठमें चिकनापन उत्पन्न करते हुये स्वर मधुरताका भी कारण है। "जिह्वा-मूल कण्ठस्थो रसनार्थे प्रवर्तेत बोधकः"।

संतपक कफ़

मस्तिष्क या सिर तथा सब इन्द्रियोंके स्नेहन तथा तर्पणका कार्य करता है। इसके प्रकोपमें शिरः पीड़ा गौरव अनन्त वात आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। "शिरः संस्थोऽक्षितर्पणात् तर्पकः। शिरः स्थः स्नेह सन्तर्पणाधि-कृतत्वात् इन्द्रियाणीमात्मवीर्येणानुग्रहं करोति।

श्लेषक कफ़

सन्धि आदिमें चिकनेपनको कायम रखना और अस्थि सन्धियोंको दृढ़ बनाना इसका कार्य है जिससे वायु द्वारा प्रेरित होकर शरीरावयव उत्तम रीतिसे हिलजुल सकते हैं। "सन्धिसंश्लेषाच्छ्लेषकः सन्धिषु स्थितः"।

कफ प्रकोपके लक्षण

"श्लेष्मकोपेभवेत् शैत्यं शैत्यंगौरवमेव च, तन्द्रावमादः स्तैमित्यं प्रसेकश्च श्लथाङ्गता" सम्पूर्ण शरीरमें होने वाली रचनात्मक प्रक्रियाको कफ़ कहा जाता है। यदि यह प्रक्रिया सारे शरीर या किसी अंगमें अत्यधिक बढ़ जाय या निर्बल हो जाय और शरीरकी क्षमा शक्ति (साधारण रोग प्रतिरोधक शक्ति) निर्बल हो जाय तो इसे कफ़ प्रकोपक कहा जाता है। जब किसी अंग (हृदय आमाशय आन्त्र आदि) पर अत्यधिक कार्य आ पड़ता है तो सम्भवतः उसमें रचनात्मक प्रक्रिया अधिक तीव्रतासे होती है उसका पोषण भी अधिक होता है और वह अंग आकार में अधिक बढ़ जाता है। उदाहरणतः, यदि शरीरकी धमनियोंकी दीवारें मोटी हो जावें और महाधमनीका हृदय में वर्तमान आरम्भिक छिद्र शोथके कारण कुछ तंग हो जावे तो हृदय जिसे रक्तको धकेलनेके लिये अधिक कार्य करना पड़ता है, आकारमें बढ़ जाता है। जब शरीर या किसी अंगमें उसकी आवश्यकतासे अधिक पोषण द्रव पहुँच जाता है तो वह मल-रूपमें बाहर निकलने लगता है इसे भी कफ़का प्रकोप कहते हैं। यदि पहले शरीर या उस अंगकी वातिक शक्ति क्षीण हो जाने जिससे पहुँचा हुआ पोषकरस भली प्रकार खर्च न होकर मलरूपमें बाहर निकलने लगता है तो इसे वात और कफ सम्मिलित प्रकोप कहते हैं। जैसे आमाशयकी झिल्लीके नीचे अत्य-धिकमात्रा लसिका (Lymph) के संचित हो जानेसे

इस झिल्लीमें से श्वेत सा द्रव (Mucin) जो साधारणतः बहुत थोड़ी मात्रामें निकलता है। आमाशय, मुख आदिमें विद्यमान कफके प्रकोपमें मुखका स्वाद मीठा और कुछ फीका सा होता है। चिकनेसे द्रव्यकी वमन होती है या वमनेच्छा बनी रहती है और मुखसे पानी गिरता है। क्षुधा और पिपासा मन्द पड़ जाती है। आमाशयमें पड़े हुये द्रवमें विषकी प्रक्रिया (Fermentation) होनेसे कच्चे डकार आने और भोजनके पक्व न होनेसे आमरसके शरीरमें व्याप्त हो जाने पर अनेक अलकस आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह जब आवश्यकता से अधिक भोजन द्रव्य शरीरमें पहुँच जाय या शरीरमें लीन न हो सके तो वह मलरूपमें बाहर निकलने लगता है जिसे कफ-प्रकोप कहा जाता है। पोषक द्रव्यके शरीरमें लीन न होने पर मल मूत्रादि मार्गोंसे मलरूपमें अधिक निकलने पर शरीरमें दुर्बलता आलस्य और गौरव हो जाता है। शरीरमें पोषक द्रव्य कम पहुँचने या लीन न होने के कारण रक्त निर्बल हो जाता है उसका जलियांश बढ़ जाता है और रक्तवाहिनियोंकी दीवारें निर्बल हो जाती हैं जिससे लसिका द्रवभाग रक्तवाहिनियोंमें से अधिक निकलता और त्वचाके नीचे विद्यमान अवयवोंमें स्थिर हो जाता है और त्वचाके नीचे विद्यमान अवयवोंमें स्थिर हो जाता है और त्वचाका रंग श्वेत पड़ जाता है जो कि कफ प्रकोपके लक्षण हो जाते हैं।

कफ क्षयके लक्षण

"श्लेष्मक्षये रूक्षतान्तर्दहिस्तृष्णाच जागरः अन्यत्रामाशत् सर्वाशयानां शिरसस्तथा शून्यता सन्धिशैथिल्यमिति लिङ्गषिड्विदुः"। शरीरके पोषक द्रव्य कफके क्षीण हो जानेसे शरीर दुर्बल होता है, अवयवोंमें रूक्षता आ जाती है। सन्धियोंमें पोषक द्रव्यके सूख जानेसे शिथिलता आ जाती है। शरीर और मस्तिष्क निर्बल और शून्य हो जाते हैं। मस्तिष्ककी निर्बलता या तर्पक भागके न्यून हो जानेसे प्रायः निद्रा-नाश हो जाता है। किसी अंगावयवमें रचनात्मक प्रक्रियाके बढ़ जाने पर पित्त-प्रकोपसे दाह तथा तृष्णा भी बढ़ जाती है।

कफ-प्रकोपके कारण

"गुरुमधु रसातिसिग्ध दुग्धेक्षु भक्ष्यद्रव दध्नि दिननिद्रा पूय सर्पिःप्रपूरैः। तुहिनपातनकाले श्लेष्मणः संप्रकोपः प्रभवति दिवसादौ भुक्तमात्रं वसन्ते"। इससे ज्ञात होता है कि वे द्रव्य जो शरीरमें पोषक रसको अत्यधिक बढ़ाकर शरीरके अवयवोंमें गुरुता, पिच्छिलता, स्निग्धता और शीतता उत्पन्न करते हैं वे कफप्रकोपके कारण बनते हैं। अत्यधिक उत्पन्न पोषक रस शरीरमें लीन न होकर मलरूप कफके रूपसे शरीरावयवोंमें स्थित हो जाता है और श्वासनलिका मलमूत्र आदि मार्गसे बाहर भी भी निकलने लगता है। अतएव अधिक मात्रामें तथा प्रोटीन युक्त भोजन कफ प्रकोपका कारण होता है। ऐसे द्रव्य प्रायः ग्राम्य तथा जलीय मांस घृत तैलयुक्त तथा भावा खाण्डसे बने हुये मिष्टान्न तथा दही आदि होते हैं जो कफको बढ़ाते हैं। ऐसे द्रव्योंकी रचनामें कफ समान प्रायः जल और पृथ्वी तत्व अधिक होते हैं। रसों की दृष्टिसे प्रायः मधुर रस और अम्ल तथा लवण रस जल और पृथ्वीसे बने हैं, जिनमें पोषक रस अधिक अथवा पोषक रस उत्पन्न करनेकी शक्ति अधिक होती है। गुरु मधुर शीत स्निग्ध द्रव्योंके अत्यधिक सेवन करनेसे शरीरमें मलरूप कफ संचित हो जाता है तो शरीरके एकाङ्ग या सर्वाङ्गमें अति स्थूलता, गुरुता आलस्य, शोथ व किसी अवयवकी अनुचित वृद्धि हो जाती है और श्वास भोजन, नेत्र, कर्ण आदि किसी मार्गसे मलरूप कफ-स्राव होने लगता है, इसके अतिरिक्त अव्यायाम, एकासनाभ्यास, दिनमें अधिक सोना भी कफ-प्रकोपके कारण हैं। शीतकालमें भोजनके अपथ्यसे तथा वसन्तके बाद सहसा गर्मी पड़नेसे भोजनकी मात्रा कम न करनेसे भी कफका प्रकोप हो जाता है। धान्योंमें माष महामाष (लोभिया) गोधूम तथा नवीन धान्य कफको बढ़ाते हैं।

मलरूप वात-पित्त कफ

मलभूत वातादियोंमे वायु, पित्त और कफके सदृश दृश्य नहीं होता है, अपितु कार्यसे उसका अनुभव होता है। "तत्र वायु सदा सूक्ष्म इतरौ तु द्रव्यात्मकौ, मलभूतौ तु नियतं स्थूलौ पित्तकफौ स्मृतौ"। अतएव मलरूप वायु

से अभिप्राय उस वायुसे है जो भोजन-प्रणाली में विद्यमान भोजन द्रव्यमें विदाह-प्रक्रियासे उत्पन्न होती है और उद्गार अधोवायु वायुके रूपमें बाहर निकलती है। धातु रूप वायुके आंतोंमें से मल निकलना, आंतोंकी गति ठीक रखना, पाचक रसको उत्पन्न करना आदि कार्योंके शिथिल या विकृत होने पर अर्थात् आंतोंकी मांसपेशियोंमें उद्वत हो जानेसे यह मलरूप वायु रुक कर अध्मन आरोप आदि के रूपमें अनुभव होता है। "पक्वाशयंतु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना, परिपिण्डितः पक्वस्य वायुःस्यात् कटु भावतः" मलरूप पित्त स्थूलत्भा होनेसे प्रत्यक्ष देखा जाता हैं। अम्ल पित्त विषम ज्वर आदिमें मुख आदि द्वारसे निकलने वाला अम्ल अथवा कटु रस पदार्थ मलरूप पित्त है। यह पित्त जिसे यकृत् रक्तसे पृथक् कर आन्तों द्वारा बाहर निकलता है और जो मलस्क कहा जाता है मलरूप पित्त कहा जाता है। इसके स्वरूपको बताते हुये सुश्रुतने लिखा है—"पित्त तीक्ष्णं द्रवं पूतिः नीलं पीतं तथैव च उष्ण कटुरस चैव विदग्धं चाम्लमेवच।" मलरूप श्लेष्मा भी प्रतिश्याय श्वासकास आदि रोगोंमें नासा आदि मार्गोंसे निकलता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता है। जब शरीरका पोषक द्रव्य लसिका आदि मलरूपमें श्वास भोजन मूत्रलया आदि मार्गोंसे बाहर निकलने लगता है तो उसे मलरूप श्लेष्म कहते हैं। "श्लेष्मा श्वेतो गुरूः स्निग्धः पिच्छिलः शीतएवच। मधुरस्त्वा विदग्धः स्याद् विदग्धः लवणः स्मृतः"।

पित्तका स्थान

पित्तके सब शरीरमें व्यापी होने पर भी शोधन चिकित्सासे उसको शान्ति करनेके विषयमें उसका हृदय नाभिके मध्यमें जहाँ पचनात्मक प्रक्रिया विशेषतः होती है पित्तके स्थान माने जाते हैं। शरीरमें रक्त, यकृत् प्लीहा, आमाशय, पक्वाशय, नेत्र, मस्तिष्क, त्वचा आदि पित्त के विशेष स्थान कहे जाते हैं। पित्तके क्षय की वृद्धिमें ये स्थान विशेष प्रभावित होते हैं। अतएव पित्त-विकारोंका वर्णन करते हुये अर्श आदि रोगों में पित्त विष्मूत्र नेत्र स्वन्द् पित्तातृ पित्त-नील-मित्यादि उदाहरण लिखे हुये हैं।

वात-प्रकोप की सामान्य चिकित्साः—

बाल रोगोंमें पोषक तत्वकी कमी होती है। अतः स्निग्धता, स्थिरता तथा कृशता उष्णताके साथ शरीरमें जो द्रव्य बलवर्धक और बृंहण हों उनका प्रयोग करना चाहिए।

षड रसोंमें- मधुर, अम्ल तथा कुछ लवण रस बल्य-होते हैं। अर्थात् इन रसोंसे युक्त द्रव्योंका साक्षात्, स्नेह, सेक, उपनाह, अवगाहन आदि प्रयोग वात-प्रकोपको शान्त करते हैं। दूध, मक्खन, दहीका पानी, घृत, द्राक्षा, बादाम पिस्ता, गेहूँ, सैन्धव और लवण आदि बल्य और बृंहण कहे जाते हैं। औषधियोंमें भी बला, शतावरी, असगन्ध, मूसली अष्ट वर्ग आदिके आसव घृत तेल आदि वातहर होते हैं। बल्य तथा बृंहण द्रव्योंके हाथमें रोगीको बैठाया जाता है और उसके नासिका और सिर आदि भिन्न-भिन्न अवयवमें वात-प्रकोप-हर औषधियोंसे सिद्ध नस्य तैल, घृत रस आदि डाले जाते हैं या मले जाते हैं। आंतोंमें वात-प्रकोप होने पर वातहर बादाम, जैतूनके तैल या घृत मिलाये जाते हैं, और अनुवासन वस्ति दी जाती है। किसी स्थानिक वातनाडियोंमें दुबलता, शोथ, शूल होने पर वातहर द्रव्योंके स्वेद सेक और उपनाह लगाये जाते हैं।

वातस्योपक्रम स्वेदः स्नेहः संशोधनं मृदुः। स्वाद्वम्ल लवणोष्णानि भोज्यन्थभ्यंग मर्दनम्। वेष्टनं त्रासनं सेको मद्यं पैष्टिक गौडिकम। स्निग्धोष्णावस्तयोवास्ति वस्ति नियमा सुख शालिता। इत्यादि।

पित्त-प्रकोप चिकित्सा—सम्पूर्ण शरीर या किसी अंगमें बढ़े हुए पित्त-प्रकोप तथा उष्णता, तीक्ष्णता तथा क्षोभको शान्त करनेके लिये, पित्त-विपरीत शीत, स्निग्ध शामक तथा क्षोभहर द्रव्योंका अन्तः प्रयोग किया जाता है और इन्हींका शरीरमें लेप, सेक, स्नान, अवगाहन आदि भी कराये जाते हैं। पित्त-शामक द्रव्य प्रायः मधुर, तिक्त और कषाय होते हैं। साधारणतयाः दूध,घी,चावल,मक्खन, दलिया और शर्बत आदि औषधियाँ उपरोक्त रसयुक्त होनेसे पित्त शामक हैं। शीत जलवायु और शीत-प्रधान प्रदेशोंमें रहने से भी पित्त-प्रकोप शान्त होता है। शरीरमें मलरूप से उत्पन्न या बाहरसे प्राप्त तीक्ष्ण क्षोभक विषोंको निकालने के लिये तथा यकृतसे मलभूत पित्त और शरीरके किसी भागमें पित्त-प्रकोप जन्य रक्त संचयको निकालनेके लिये

शोधन-चिकित्सामें विरेचन सर्वोत्तम माना जाता है। "विरेचनं पित्त हराणाम्"। किसी स्थानमें पित्त-प्रकोप जन्य रक्त संचयको दूर करनेके लिये त्वचा पर शीत-शामक लेप किये जाते हैं या रक्त मांक्षण किया जाता है। इसी प्रकोप जन्य उत्तेजित मानसिक भाग क्रोध, ईर्ष्या आदि भावोंके लिये प्रेम, प्रसन्नता आदि सौम्य भाव शामक होते हैं। "पित्तस्य सर्पिषः पाने स्वादुशीतैर्विरेचनं। स्वादु तिक्त कषायानि भोजनान्यौषधानि च, सौम्याभावाः पयः सर्पि विरेकश्च विशेषतः॥"

कफ-प्रकोप-चिकित्सा—जो द्रव्य व्यवहार, लघु, रुक्ष तीक्ष्ण तथा उष्णतासे शरीरमें बढ़े हुए कफ (पोषक रस) को शरीरमें लीन कर और मल-रूपमें निकलने वाले कफको निकाल या शोषण करके गुरुता, शीतता, स्निग्धताके स्थानमें क्रमशः लघुता, उष्णता तथा रुक्षता उत्पन्न करते है उन्हें कफ़हर कहते हैं। ऐसे द्रव्य प्रायः कटु, तिक्त और कषाय रस होते हैं। आमाशय पक्वाशयमें सचित श्लेष्माको निकालनेसे वमन और विरेचन भी कफ़हर हैं। इसी तरह पोषक रसको शरीरमें लीन होनेकी शक्ति बढ़ानेसे पुराने वासा-आसव कफ़हर होते हैं।

इसके अतिरिक्त आंतोंके पोषक रसको लीन करनेकी शक्तिको बढ़ानेके लिये अनेक प्रकारके व्यायाम भी कफ़हर कहे जाते हैं। शरीरके किसी वाह्य भागमें संचित कफ़को कम करनेके लिये उस स्थान पर रुक्ष, उष्ण औषधियोंसे मर्दन किया जाता है। शिर तथा आमाशयमें संचित मल-रूप कफको निकालनेके लिये शिरोविरेचन, उष्ण तीक्ष्ण द्रव्योंका गण्डूष धूम तथा कवल किये जाते हैं। लंघन, लघु भोजन और वमन भी आमाशय संचित कफ को सुखाने और निकालनेके कारण कफ़हर हैं। किसी वाह्य अवयावमें संचित कफको पिघला कर निकालनेके लिये उस स्थान पर स्वेद और रक्त मोचन भी किया जाता है।

"श्लेष्मणो विधिना युक्त तीक्ष्ण वमन रेचनम्। अन्त रुक्षाल्य तीक्ष्णोष्णं कटु तिक्त कषायकम्। विशेषाद्वमनं यूकः चार्द्रं मेदोघ्नमौषधम्। धूमोपवास गण्डूषाः निःसुखत्वं सुखाम च।"

बाज़ारकी ठगीका भंडा-फोड़

[ले० स्वामी हरिशणानन्द वैद्य]

देवदारु

देवदारु एक साधरण काष्ठ है जो हिमालय पर्वत-श्रेणीमें कोई ११-१२ हज़ार फीटकी ऊँचाई पर उत्पन्न होता है। प्रायः अनेक आयुर्वेदिक औषधियोंमें इसका उपयोग होता है। हम देखते हैं कि अक्सर लोग बाज़ारमें मिलने वाली कैल हिपार पड़तल नामक शहतीरियोंकी लकड़ियाँ उसके स्थान पर डालते या बेंचते हैं। वास्तवमें देवदारु यह नहीं है। देवदारुके वृक्ष अधिक ऊँचाई पर होते हैं। उसके शहतीर गंगा और जमुना दो ही नदियोंके बहाव-द्वारा नीचे लाये जाते हैं। यह लकड़ी अबदुल्लापुर या हरद्वारसे ही मिलती है।

यह लड़की दो प्रकारकी आती है—एक तेलयुक्त दूसरी तेलरहित। तेलयुक्त लकड़ी कठोर होती है, स्वादमें अधिक चरपरी लगती है। तेल-रहित लकड़ी, हल्की आसानीसे टूटने वाली स्वादमें फ़ीकी ज़रा चरपरी होती है। इन दोनोंमें गन्ध अजवायन की-सी आती है। दूसरी लकड़ियाँ स्वादमें कटु होती हैं और उनकी गन्ध विरोजासे मिलती-जुलती होती है। देवदारु गन्ध और स्वादसे आसानीसे पहचाना जाता है।

कँवीला

कँवीला एक लाल वर्णका पाउडर होता है जिसकी अत्यन्त सूक्ष्म कीणकाओं होती हैं। इन कोणकाओंको आतशी शीशासे साफ़ देखा जा सकता है। यह एक वृक्ष विडंग फलके ऊपरका रज है। जब फल पकता है तो यह झड़ने लग जाता है। उस समय लोग इसको एकत्र करके झाड़ कर निकाल लेते हैं। यह चीज़ देखनेमें अत्यन्त लाल और भारी होती है। इसीलिये आयुर्वेदज्ञोंको यह भ्रम हो गया कि यह कोई खनिज द्रव्य है (वास्तवमें यह खनिज

द्रव्य नहीं,प्रत्युत वानस्पति द्रव्य है और यह अत्यन्त कृमिघ्न व रेचक है। इसके सेवनसे कद्दूदाने या स्फीत कृमि मर जाते हैं। भेड़-बकरियोंके पेटमें जब कृमि उत्पन्न हो जाते हैं तो उनको भी इसके सेवन करानेसे कृमि मर जाते हैं। वैद्य इसे हर एक कृमिको मारने वाला समझते हैं। यह उनकी भूल है इसके सेवनसे कद्दूदाने ही मरते हैं यह स्मरण रहे।

यह रेशमको रँगनेमें अधिक प्रयुक्त होता है। विलायत बहुत जाता है इसकी माँग अधिक होने के कारण इसमें ईंटकी सुर्खी पीस कर मिला देते हैं। इसीलिये इसमें मिलावट तो नहीं हैं। इसको दो तरहसे देखते हैं। ज़रा गीला करके सफ़ेद वस्त्र पर लगा कर देखनेसे यदि स्वच्छ और चमकीला पीत केसरी वर्ण हो तो उत्तम है। यदि मट-मैला पीत वर्ण हो तो मिलावट समझनी चाहिये। स्पिरिटमें घोलने पर कँबीला रंग उसमें हल हो जाता है और मिला-वट नीचे बैठ जाता है, इससे कंबीलामें मिश्रणका ज्ञान अच्छी तरह हो जाता है। विलायत वाले १-१॥ प्रतिशतसे अधिक मिलावटके कंबीलाको नहीं लेते।

लौंग

लौंग पान व दालके मसालेमें डालकर खाई जाने वाली एक साधारण चीज़ है तथा अनेकों औषधिमें डाली जाती है। माँग अधिक होनेके कारण हिन्दुस्तानमें वह लौंग जिनका तेल विलायत वाले निकाल लेते हैं—यहाँ भेज देते हैं। दुकानदार पंसारी उस लौंगको रंग कर असली लौंगके रंग जैसा बना कर फिर असली लौंगमें मिला कर बेंचते हैं। इसकी पहचान साधारणतया कठिन है, पर लौंगको ध्यानसे देखा जाय तो यह सत्व गुण-रहित लौंग पहचाने जाते हैं। असली लौंग शकलमें गोलाई लिये मोटे होते हैं। जब लौंग पतले चिपटे और हलके तथा खानेमें निर्गन्ध और निःस्वाद होते हैं। इससे भिन्न यदि इन लौंगको पानीमें भिगो दें तो नकली लौंगके ऊपरसे रंग पानीमें घुलने लगता है तथा पानी पर वह तैरते रहते हैं। असली लौंग थोड़ी देरमें कुछ नीचे पानीके तले जाते हैं।

चाय

चाय हिन्दुस्तानमें धीरे-धीरे एक साधारण पेय वस्तु बनती चली जाती है लोग इसको पहिले तो केवल सर्दियों में ही पीते थे अब लोग बारहो महीना इसे पीने लगे हैं। मद्रास, बम्बई, सिन्ध, पंजाब, बङ्गाल और आसाममें तो यह अपना घर लोगोंके अन्दर बना बैठी है। इसकी हिन्दुस्तानमें इतनी अधिक माँग बढ़ गई है कि उतनी पैदावार नहीं है। इसी लिये यह नकली बहुत बनती है। यह नकली भी दो तरहकी होती है।

चाय पीने वाले जानते हैं कि चाय वर्णकी दृष्टिसे तीन श्रेणियोंमें विभक्तकी जाती है—एक हरी, दूसरी ब्राउन तीसरी काली। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें लोग भिन्न-भिन्न वर्णों की चाय पसन्द करते हैं। अमृतसर चायकी बहुत बड़ी मण्डी है। जिला कांगडा, पालमपुर, देहरादून आदिकी चाय यहाँ आकर बिकती है। इससे भिन्न जितनी नकली चाय अमृतसरमें बनती है शायद ही भारतके किसी दूसरे शहरों में बनती है। लाखों रुपयेकी नकली चाय यहाँसे प्रति वर्ष अन्य प्रान्तोंको जाती है। आश्चर्य है कि पंजाब गवर्नमेण्ट इन नकली चीजकी—जो साधारण पेयकी वस्तु बनी हुई है, रोक-थाम नहीं करती।

नकली चाय—वास्तवमें एक विशेष प्रकारका पौधा है जिसकी खेती आसाम, नीलगिरी, देहरादून, कांगड़ा आदि पर्वत प्रान्तीय भूमि या तराईमें की जाती है। चाय का पौधा वर्षमें दोबार विशेष रूपसे कोंपलें निकालता है उस समय उसकी कोंपल या नव पल्लव तोड़ कर उसे विशेष यान्त्रिक उत्ताप पर सुखाते हैं तथा उसको रंगते और पॉलिश करते हैं और उसके भिन्न-भिन्न आकृतिके पत्रविष्ठनों को छान लेते हैं।

जहाँ यह चाय होती है वहाँ देखा गया है कि अनेक चायके कृषक प्रथम उस चायको उबाल कर आप पीते हैं और उन पत्तोंको सुखा कर अमृतसर भेज देते हैं जिसे यहाँके व्योपारी उसे रंग कर तथा पॉलिश वगैरह देकर फिर असली चायका रूप दे देते हैं। इसे असली चायमें मिला कर तथा स्वतन्त्र दोनों तरहसे बेंचते हैं।

बिलकुल नकली चाय—इससे भिन्न यहाँके व्योपारी मौसममें एक दो ऐसे पौधोंके पत्ते एकत्र करते हैं जो नव पल्लवित होनेके समय उनको तोड़कर बनाया जाय तो वह

बिलकुल चायकी शकलके बन जाते हैं। यह पत्ते हज़ारों मन यहाँ लाये जाते हैं। इन्हें विशेष विधियोंसे रंग कर तथा पॉलिश करके उनको चायका ढंग-रूप दे दिया जाता है। यह चायमें मिश्रित कर तथा अमिश्रित दोनों रूपसे चाय के नामसे बेंचे जाते हैं। लाखों रुपयेके यह पत्ते हिन्दुस्तानी चायके नामसे बेचें जाते हैं। पर गवर्नमेण्टने आज तक इस बातका भी अनुसन्धान नहीं किया कि इस नकली चायका स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है। यह तो स्पष्ट है कि जो रंग इन पर दिया जाता है वह सब एनीलीनका ही होता है। खनिज रंग प्राय: अखाद्य होते हैं। ऐसी दशामें यह कभी सम्भव नहीं कि इनका बुरा स्वास्थ्य पर प्रभाव न होता हो। पर गुलामोंके देशोंमें इसे पूँछने वाला कौन है?

साबूदाना

यह चिकित्सोंसे छिपा नहीं है कि साबूदाना या सागूदाना एक पन्थकी चीज है। जब रोगी अति निर्बल होता है, अन्न नहीं पचा सकता तब उसे साबूदानाको खीर या लपसी बना कर देते हैं।

साबूदाना एक वृक्षके मूलमें मिलता है। इस साबूदाने की वृक्षको खेती होती है और उन जड़ोंको निकाल कर उसमें साबूदाना मिला कर उसे विशेष विधिसे दानेदार बना लेते हैं। रासायनिक दृष्टिसे साबूदाना श्वेत सारीय या माड़ी जातिका एक शीघ्र पाची द्रव्य है।

नकली साबूदाना—अमृतसरमें चावलोंका बहुत बड़ा व्योपार होता है। इनकी जो टूटन (कनियाँ) बच जाती है दो-ढाई रु० मन बिकती है। कुछ मक्कार व्यापारियों ने इस चावलकी कनिकाओंको बारीक पीस कर एक विशेष मशीनके द्वारा उनका गोल दाना बना लेते हैं और उसे सुखा कर फिर दूसरी मशीनमें पालिश कर लेते हैं। इस नकली साबूदानेकी शकल बिल्कुल वैसी ही होती है जैसी असली साबूदानेको। फिर दूसरी खूबी यह है कि यह नकली साबूदाना खीर पकाने पर बिलकुल वैसा ही बनता है जैसा असली साबूदाना। क्योंकि चावल हीसे एक प्रकारका श्वेत सारीय ही द्रव्य है। इसकी और उसकी रासायनिक रचनामें बहुत कुछ साम्य है। इसलिए यह नकली साबूदाना हज़ारों रुपयेका यहाँसे बन कर देशान्तरित किया जाता है। इसने असली साबूदानेकी कीमत गिरा दी है। अब यहाँ पर इन्हीं चावलोंकी कनियोंसे ग्लूकोज और डेक्सट्रीन भी बनने लगे हैं।

बनफ़शा

यूनानी औषधियोंमें बनफशाका विशेष स्थान है। इसके पुष्प उत्पन्न सौम्य ज्वर नाशक श्लेष्मसात्म्याक हैं। बड़ी उपयोगी चीज़ है। भारतमें यह काश्मीर, चम्पा, शिमला आदि पर्वत-मालाओंमें ही उत्पन्न होती है। देहली व अमृतसर यही दो इसकी बड़ी मार्केट हैं। बनफशा और बनफशा-पुष्पकी इतनी अधिक हिन्दुस्तानमें माँग हैं कि उतनी निकासी नहीं। इसकी खेती नहीं होती। स्वतः पर्वतोंमें उत्पन्न होती है। बेसमझ लोग इसको जबसे जड़से उखाड़ने लगे हैं इसकी पैदावार दिन बदिन घट रही रही है और माँग काफी रहती है। इसलिये यार लोगों ने ५-६ वर्षोंके भीतर नकली बनफशाकी सृष्टि कर डाली है। बनफशा जैसा एक पी[illegible] फूलका पौधा पहाड़ोंमें बहुत होता है, पत्तोंकी आकृति बनफशासे मिलती है। वह सुखा कर बाजारमें आने लगी है और इस चार-पाँच वर्षोंमें ही इसकी विक्री इतनी बढ़ गई है कि केवल अमृतसरसे १२-१५ हज़ारकी निकल जाती है। वह किसी हकीम ने जाँच नहीं की कि यह गुण करती है या अवगुण है कौनसी बला। यदि किसीके आँखें हों तो देखें। पीले फूलकी विक्री बनफशाके नामसे हो रही है। कोई इसको बेचनेसे नहीं रोकता।

पानीकी कहानी

[ले० श्री रामचन्द्र तिवारी]

बरसातके दिन थे और प्रातःकाल। कल दोपहर तक पानी बरस कर चुका था। मैं उठा और सोचा कि हवा खानेसे पेट भरे या न भरे, लेकिन बड़े लोग विशेष श्रद्धाके साथ हवा खाते हैं इसलिये मुझे भी इस महायोगसे वञ्चित न रहना चाहिये।

मैं घरसे बाहर निकला। बड़े शहरमें हवा भी सड़कों

पर चलती है। मुझे देखते ही उसने छेड़ना प्रारम्भ कर दिया। कभी धोती, कभी कुर्ते, कभी बालोंको इधर-उधर उड़ाने लगी। कुछ मिनटोंके पश्चात् मैं नगरसे बाहर निकल आया। चारों ओर लम्बी-लम्बी घासें लहरा रही थीं।

सूर्य अभी पूर्णतया उदय नहीं हुये थे। मैंने पैर बढ़ाया। एक कौवा पीछेसे बोला काँव, दाँई ओरसे गौरय्या चहकी और सामने श्यामा अपने घोंसलेके पास बीची डाल पर बैठी पूँछ हिला रही थी। मैंने सड़क छोड़ी और पगडण्डी पर चलने लगा। लम्बी-लम्बी घासें अपने सिरों पर एक-एक मोती पहिने खड़ी थीं। हवाके झोंकोसे यह मोती इधर-उधर बिखर कर अन्तर्धान हो जाते। सूर्यकी यह किरणें जो सोते संसारको सूर्योदयका समाचार सुनाती हैं उन मोतियोंमें घुस कर इन्द्र-धनुष बना रही थी।

मैं आगे बढ़ा ही था कि बेरकी झाड़ी परसे एक मोती मेरे हाथ पर आ पड़ो। ठण्डी-ठण्डी ओसकी बूँदका शरीरसे स्पर्श होते हो कठोर मोतीकी भावना जाती रहीं। यह मोती स्नेहमय, कोमल और शीतल था। वह ओसकी बूँद कुछ देर तक मेरे हाथ पर पड़ी रही, मैं जाकर एक पुलिया पर बैठ गया और सामने देखने लगा।

मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि ओसकी बूँद मेरी कलाई परसे सरक कर हथेली पर आ गई। मेरी दृष्टि पड़ते ही वह ठहर गई। थोड़ी देरमें मुझे सितारके तारोंकी सी झंकार सुनाई देनी लगी। मैंने सोचा कि कोई बजा रहा होगा। चारों ओर देखा। कोई नहीं। फिर अनुभव हुआ कि यह स्वर मेरी हथेलीमें से निकल रहा है। ध्यानसे देखने पर मालूम हुआ कि बूँदके दो भाग हो गये हैं और वे दोनों हिल हिल कर यह स्वर उत्पन्न कर रहे हैं मानों बोल रही हो।

उसी सुरीली आवाज़में मैने सुना।

"सुनो, सुनो..."

"मैं चुप था"

फिर आवाज़ आई "सुनो, सुनो"

अब मुझसे न रहा गया। मेरे मुखसे निकल गया "कहो, कहो।"

ओसकी बूँद मानों प्रसन्नतासे हिली और बोली।

"सुनो, सुनो।"

"मैं ओस हूँ"

"मैं जानता हूँ" मैंने कहा।

"ओसकी बूँद हूँ"

"हो"

"पानी हूँ"

"मालूम है"

"मैं बेरके पेड़में से आई हूँ"

"झूठी" मैंने कहा और सोचा बेरके पेड़से क्या पानी का फव्वारा निकलता है।

बूँद फिर हिली। मानों मेरे अविश्वाससे उसे दुःख हुआ हो।

"तुम्हें ज्ञान नहीं है। सुनो, सुनो। मैं इस पेड़के पासकी भूमिमें बहुत दिनोंसे इधर-उधर घूम रही थी। कभी इस मिट्टीके कणसे मिल जाती और कभी उससे। इस प्रकार विनोदमें मेरा मन बहलता जाता था। जान न पड़ता था कि जीवन भारमय है। मैं इसी प्रकार कणोंका हृदय टटोलती फिरती थी कि एकाएक पकड़ी गई।

"कैसे" मैंने पूँछा

"वह जो पेड़ तुम देखते हो न! ऊपर ही इतना बड़ा नहीं है। पृथ्वीमें भी लगभग इतना ही बड़ा है। इसकी बड़ी जड़ें, छोटी जड़ें और जड़ोंके रोयें हैं। यह रोयें बड़े निर्दय होते हैं। मुझ जैसे असंख्य कणोंको यह बलपूर्वक पृथ्वीमें से खींच लेते है। कुछको तो यह पेड़ एक दम खा जाते हैं और अधिकांशको सब कुछ छीनकर बाहर निकाल देते हैं। यह पूरे डाकू हैं पूरे—"

क्रोध और घृणासे उसका शरीर काँप उठा।

"तुम क्या समझते हो कि यह इतने बड़े यों ही खड़े हैं। इन्हें इतना बड़ा बनानेके लिये मेरे असंख्य बंधुओं ने अपने प्राण-नाश किये हैं।"

मैं बड़े ध्यानसे उसकी कहानी सुन रहा था।

"हाँ, तो मैं भूमिके कणोंमें से भाँति-भाँतिके द्रव्यों को अपने शरीरमें घुलाकर आनन्दसे फिर रही थी कि दुर्भाग्यवश एक रोयेंसे मेरा शरीर छू गया। मैं काँपी। दूर भागनेका प्रयत्न किया परन्तु यह निर्दय पकड़ कर छोड़ना नहीं जानते। मैंने लाख हाथ-पाँव मारे, चिल्लाने

का प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ। मैं रोयेंमें खींच ली गई।

"फिर क्या हुआ ?" मैंने पूँछा। मेरी उत्सुकता बढ़ चली थी।

"मैं एक कोठरीमें बन्दकर दी गई। मैंने समझा कि बस अब इसी अँधेरे कारागारमें सड़ कर मरना होगा। मैंने हाथ पाँव ढीले छोड़ दिये। परन्तु थोड़ी देर पीछे ऐसा जान पड़ा कि कोई मुझे पीछेसे धक्का दे रहा है और कोई मानों हाथ पकड़ कर आगेको खींच रहा हो। मैंने आँखें खोली और देखा कि उस कोठरीमें मेरे और बांधव उपस्थित थे। मेरा एक भाई मेरे पीछे पकड़ कर वहाँ लाया गया। उसके लिये स्थान बनानेके कारण मुझे दबाया जा रहा था। आगे एक और बूँद मेरा हाथकर ऊपर खींच रही थी। मैं उन दोनोंके बीच पिस चली। मेरा दम घुटने लगा और मेरे शरीरमें सहस्त्रों सुइयोंके चुभनेके सदृश पीड़ा होने लगी। मैं बेहोश हो गई।"

"ओफ़, बड़ी दुख-पूर्ण कहानी है तुम्हारी"

"मैं लगभग तीन दिन तक यह साँसत भोगती रही और यह हरे हरे पत्ते जो देखनेमें तुम्हें सुन्दर लगते होंगे, जानते हो क्या है !"

"क्या है ?"

"डाकुओं और हत्यारोंके अड्डे हैं। जिस समय मैं पत्तेमें पहुँची तो मुझे जो कष्ट हुआ वह वर्णन नहीं किया जा सकता। पत्तेमें सहस्त्रों डाकू छिपे बैठे रहते हैं। शरीर के फैलते ही वे मेरे ऊपर टूट पड़े और जो कुछ माल असबाब मैं पृथ्वीके कणोंमेंसे घुला कर लाई थी सब छीन लिया और मेरे शरीरके कई अंग तोड़कर चट कर गये। परन्तु इस विषयमें मैं सौभाग्यशाली रही। अपनी आँखोंसे मैंने देखा कि वे कई बूँदोंको समूचा ही निगल गये। मैं डरसे काँपती, सोचती रही कि मेरे भाग्यमें क्या लिखा है।

"परन्तु नहीं ! मैं वरुणदेवकी प्यारी थी। उन्होंने मेरी रक्षाकी। उनके एक इतने आकर मुझे अपने स्थानसे ठेल दिया और मैं नउके नन्हें नन्हें छेदोंमें हो जैसे-तैसे जान बचाकर भागी। मैंने सोचा था कि पत्ते पर पहुँचते ही उड़ जाऊँगी। परन्तु बाहर निकलने पर ज्ञात हुआ कि रात होने वाली थी और सूर्य भगवान, जो हमें उड़नेकी शक्ति देते हैं. जा चुके हैं, और वायु मण्डलमें इतने जल-कण उड़ रहे हैं कि मेरे लिये वहाँ स्थान नहीं है, तो मैं अपने भाग्य पर भरोसा कर इन डाकुओंके द्वार पर ही सिकुड़ी पड़ी रही। अभी जब तुम्हें देखा तो जानमें जान आई और रक्षा पानेके लिये तुम्हारे हाथ पर कूद पड़ी।"

इस दुख तथा भावपूर्ण कहानीका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने कहा—

"जब तक तुम मेरे पास हो कोई पत्ता तुम्हें न छू सकेगा।"

"भैया, तुम्हें इसके लिये धन्यवाद है। मैं जब तक सूर्य न निकलें तभी तक रक्षा चाहती हूँ। उनका दर्शन करते ही मुझमें उड़नेकी शक्ति आ जायगी।"

"परन्तु सूर्य निकलनेमें तो अभी पर्याप्त समय है। क्या मैं तुम्हें लिये योंही बैठा रहूँगा। मेरा हाथ दुखेगा नहीं।"

वह डरी और गिड़गिड़ाकर बोली

"नहीं, मुझे पत्तों पर न डालना। मेरा जीवन विचित्र घटनाओंसे परिपूर्ण है। मैं उसकी कहानी तुम्हें सुनाऊँगी तो तुम्हारा हाथ तनिक भी न दुखेगा।"

उसने कृपाकी भीख माँगते हुए मेरी ओर देखा।

"अच्छा, सुनाओ।"

"सुनो, सुनो" सुरीली आवाज़ आई

"बहुत दिन हुये, मेरे पुरखा, हद्रजन और ओषजन नामक दो गैसे सूर्य मण्डलमें लपटोंके रूपमें विद्यमान थे।"

"तुम्हारी बड़ीसे बड़ी गिनती भी उन वर्षोंको नहीं गिन सकती। इन गैसोंकी गगन-चुम्बी लपटें कई-कई मील लम्बी थीं। मेरा यह कोमल शरीर उन दिनों उनके शरीरमें लुप्त था। जब कभी मैं कल्पनाकी आँखोंसे उस दृश्यको देखनेकी चेष्टा करती हूँ तो मेरा हृदय गर्वसे फूल उठता है। कितना शानदार होगा वह दृश्य, मेरे पुरखाओंके प्रभावसे दिक्‌दिगंत प्रकाशित होते थे।

"सूर्य मण्डल अपने निश्चित मार्ग पर चक्कर काट रहा था। वे दिन थे जब हमारे ब्रह्माण्डमें पर्याप्त उथल-पुथल हो रही थी। अनेकों ग्रह और उपग्रह बन रहे थे।

"ठहरो, क्या तुम्हारे पुरखा अब सूर्य मण्डलमें नहीं है ?"

"हैं, उसके वंशज अपनी भयावह झपटोंसे अब भी उनका मुख उज्ज्वल किये हुये हैं। हाँ, तो मेरे पुरखा बड़ी प्रसन्नतासे सूर्यके धरातल पर नाचते रहते थे। वे अपने चारों ओर गहरे स्थानमें नाना ग्रहोंको बनते देखते और आश्चर्य करते थे।

"एक दिनकी बात है कि वे अपने आनन्द-प्रमोदमें मस्त थे कि दूर पर एक प्रकाण्ड प्रकाश-पिण्ड दिखाई पड़ा। उनकी आँखें चौंधियाने लगी। यह पिण्ड बड़ी तेज़ीसे सूर्यकी ओर बढ़ रहा था। और ज्यों-ज्यों पास आता जाता था इसका आकार बढ़ता था। यह सूर्यसे लाखों गुना बड़ा था। उसकी महान आकर्षण-शक्तिसे हमारा सूर्य काँप उठा। ऐसा ज्ञात हुआ कि उस ग्रहराज से टकरा कर हमारा सूर्य चूर्ण हो जायगा। वैसा न हुआ वह सूर्यसे सहस्रों मील दूरसे ही घूम चला, परन्तु उसकी भीषण आर्कषण-शक्तिके कारण सूर्यका एक भाग टूट कर उसके पीछे चला। मेरे पुरखा भी उसी भागके साथ लिपटे चले आए।

इतना भारी खिंचाव संभाल न सका और कई टुकड़ोंमें टूट गया। ज्यों-ज्यों वह महा सूर्य दूर चलता गया यह टुकड़े पीछे छूटते गये और सूर्यको ही अपना केन्द्र मान कर उसके चारों ओर घूमने लगे। उन्हींमेंसे एक टुकड़ा हमारी पृथ्वी है। यह प्रारम्भमें एक बड़ा आगका गोला थी और हमारे पुरखा इसी पर लपटोंके रूपमें किलोलें करते हैं।"

"ऐसा ? परन्तु उन लपटोंसे तुम पानी कैसे बनी।"

"मुझे ठीक पता नहीं। हो, यह सही है कि हमारा ग्रह ठण्डा होता चला गया और मुझे याद है कि अरबों खरबों वर्ष पहिले मैं हद्रजन और ओषजनके रासायनिक प्रेमके कारण उत्पन्न हुई हूँ। उन्होंने आपसमें मिल कर अपना प्रत्यक्ष अस्तित्व गँवा दिया है और मुझे उत्पन्न किया है। मैं उन दिनों भापके रूपमें पृथ्वीके चारों ओर घूमती फिरती है। वह समय बड़े आन्नदका था। महानता विराजमान थी। उसके बाद न जाने क्या मैं हुआ ? किसी कारणसे बेहोश हो गई। ऐसा ज्ञात हुआ कि मेरे दिलकी धड़कन एकाएक बन्द हो गई और मैं बड़े ऊँचेसे गिरी।

"जब मुझे होश आया तो मैंने अपनेको ठोस बर्फ़के रूपमें पाया। मेरा शरीर अब भाप-रूपसे अत्यंत छोटा हो गया था। वह पहिले कोई सतरहवाँ भाग रह गया था। मैंने देखा मेरे चारों ओर मेरे असंख्य साथी बर्फ़ बने पड़े थे। जहाँ तक दृष्टि जाती थी बर्फ़के अतिरिक्त कुछ दिखाई न पड़ता था। जिस समय हमारे ऊपर सूर्यकी किरणें पड़ती थीं तो सौंदर्य बिखर पड़ता था। देवता स्वर्ग छोड़ कर उस स्थान पर विहार करने आते थे। हमारा जीवन वैसे तो शांत और सुखमय था परन्तु जब कभी हवा अपने मुखकी पीड़ाके कारण बेचैन हो कर फूँकने लगती थी तो आँधी आ जाती थी और हमें उड़ाये-उड़ाये फिरती थी। मुझे उसका यह उद्यम कभी अच्छा नहीं लगा। परन्तु हमारे कितने साथी ऐसे भी थे जो बड़ी उत्सुकतासे इसकी प्रतीक्षा करते थे और आँधीमें ऊँचा उड़ने, उछलने कूदनेके लिये कमर कसे तैयार बैठे रहते थे।"

"बड़े आन्नदका समय रहा होगा वहाँ।"

"बड़े आनन्दका।"

"कितने दिनों तक ?"

"कई लाख वर्षों तक ?"

"कई लाख !"

'हाँ, चौंको नहीं। मेरे जीवनमें सौ दो सौ वर्ष दाल में नमकके सामान भी नहीं है।"

मैंने ऐसे दीर्घजीवीसे वार्तालाप करते जान अपने धन्य माना और ओसकी बूँदके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ चली।

"हम शांतिसे बैठे एक दिन हवासे खेलनेकी कहानियाँ सुन रहे थे कि अचानक ऐसा अनुभव हुआ मानों हम सरक रहे हों। सबको मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी। अब क्या होगा ?

'इतने दिन आनन्दसे काटनेके पश्चात् अब दुख सहन करनेका साहस हममें न था। बहुत पता लगाने पर हमें ज्ञात हुआ कि हमारे भारसे ही हमारे नीचे वाले भाई दब कर पानी हो गए हैं। उनका शरीर ठोसपनको छोड़ चुका है और उनके तरल शरीर पर हम फिसल चले हैं। इस प्रकार स्वयं अपने हाथ अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारनेकी

बात जान हमारा दुख और भी बढ़ गया। परन्तु अब क्या हो सकता था। अपना मार्ग रोकनेकी सामार्थ्य हममें न थी।

"मैं बर्फकी जिस चट्टानका भाग थी वह कोई डेढ़ मील ऊँची थी। इतना बड़ा संगठन होनेके कारण हममें महान् शक्ति थी। कितनी ही छोटी-छोटी चट्टाने हमारे सामने पड़ कर चूर-चूर हो गई। हमारा चलना धीरे-धीरे जारी रहा। कई कई वर्षोंमें हम कई अँगुल सरके, परन्तु धीरे-धीरे यह चाल तेज़ हो गई और हमने देखा कि हमारे सम्मुख हमारे वे असंख्य भाई, जिनका शरीर तापसे अथवा भारसे पानी हो चुका था, हममें मिलनेके हृदय खोले खड़े हैं। जिस समय हम उनके पास पहुँचे तो हमने मिल कर उन्हें प्रणाम किया और उन्होंने चिल्ला कर उसका उत्तर दिया और प्रसन्नता जतानेके लिये अनेकों बूँदे हवामें उछल पड़ीं।

"हम बहुत दिनों तक समुद्रमें इधर-उधर घूमते रहे। हमारी चट्टानका नीचेका भाग धीरे-धीरे गलना जा रहा था। सागरकी तरङ्गे प्रेमसे आकर हमें खूब थपेड़े लगातीं।

"एक दिनकी बात है कि सागरके छाती पर हमें एक काला धब्बा दिखाई दिया। पूँछने पर जल-कणोंने बताया कि मनुष्य नामक एक जीव वृक्षोंकी सहायतासे उसकी छातीको चीरता उसके वक्ष-स्थान पर विहार करता है। यह सुनते ही क्रोधसे हमारी आँखें जलने लगीं। हम लोगोंने मिलकर गर्जन किया। सागरमें पानीका समूह मचल पड़ा। हमने अपनी सहायताके लिये अपनी पुरानी सखी आँधीको बुला लिया। इस प्रकार तैयारी कर विद्रोही मानव पर धावा बोल दिया। वह लहरोंसे तो बहुत लड़ा, परन्तु जिस समय हमारी चट्टान उसके सिर पर जा पहुँची उसने हथियार डाल दिये। हमारे तनिकसे इशारेसे नाव उलट गई और तीन चार कीड़े हाथ पैर मार सदाके लिये सागरके गर्भमें समा गये।

"कीड़े!" "मनुष्यका यह अपमान" मैंने क्रोध दबाते हुये कहा।

"क्षमा करो। देखो, मुझे फेंको मत। सागरमें हमारी चट्टानके सम्मुख वे कीड़ेसे अधिक न थे। मुझे मनुष्यकी सामर्थ्यका कोई ज्ञान न था।"

"मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" मैंने शांत होते हुये कहा। "देखो, फिर कभी ऐसी धृष्टता न हो।"

"क्षमा करो। मैं जड़ हूँ। मुझे क्या करना चाहिये। इसका ज्ञान नहीं। मुझसे अवसर देख कर बात करनी आती।"

"नहीं आती, तो सीखना होगा। आज संसार पर मानवका राज्य है। वह विद्रोहीको दण्ड देना जानता है।"

"मैं सीखनेका प्रयत्न करूँगी"

मनुष्यकी मान्यताका सिक्का उसके हृदय पर बैठा देनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता हुई वह मैं वर्णन नहीं कर सकता।

वह एक बार पिचकी मानों झुक कर मनुष्यको प्रणाम किया हो और फिर कहना प्रारम्भ किया।

"मैं कई मास समुद्रमें इधर-उधर घूमती रही। फिर एक दिन गर्म-धारासे भेंट हो गई। उसके जलते अस्तित्व को ठंडक पहुँचानेके लिये हमने उसकी गर्मी सोखनी प्रारंभ कर दी और इसके फल स्वरूप मैं पिघल पड़ी और पानी बन कर समुद्रमें मिल गई।

"समुद्रका भाग बन कर मैंने जो दृश्य देखा वह वर्णनातीत है। मैं अभी तक समझती थी कि समुद्रमें केवल मेरे बन्धु-बांधवों का ही राज्य है, परंतु अब ज्ञात हुआ कि समुद्रमें चहल-पहल वास्तवमें दूसरे ही जीवों की है और उसमें निरा नमक भरा है। पहिले-पहिल समुद्रका खारीपन मुझे बिलकुल नहीं भाया, जी मचलाने लगा। पर धीरे-धीरे सब सहन हो चला।

हाँ, तो समुद्रमें मैंने देखा कि एक-से-एक विशाल जीव हैं। समुद्रमें क्या न्याय है कि बल-शाली दुर्बलको खा जाता है। इसीके अनुसार समुद्रमें बड़ी मछलियाँ छोटियों का खा जाती हैं।

एक दिन मैं घूमते-घूमते एक द्वीप पर पहुँची। यह काला-काला-सा ठोस भाग समुद्रसे कुछ उभरा हुआ था। मैंने भूमि अभी तक न देखी थी। हाँ, सुना अवश्य था कि पानीका एकछत्र राज्य वहाँ नहीं होता। मैंने सोचा कि इसके चारों ओर घूम फिर कर देखूँ कि भूमिका रूप रंग कैसा होता है। थोड़ा-सा चक्कर काटनेके पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे सामने एक विशालकाय मुख खुला

हुआ है और पानीकी एक धारा उसमें बही जा रही है। मैं अपने आपको न सँभाल सकी। धारा में पड़ कर मुखमें पहुँची। उस विशाल मुखमें कितनी ही छोटी-बड़ी मछलियाँ पड़ी थीं। उसके दूसरे ओर एक झिल्ली-सी लगी थी। मैं और जल-कणोंके साथ उसमें-से निकल भागी। थोड़ी देर में भूमि ने अपना मुख बन्द किया और मछलियोंका ढेर उसके भीतर समा गया।

"अरे वह भूमि नहीं ह्वेल रही होगी"

"हाँ, जब वह हिली तो मैंने अपने साथी से पूँछा तो उन्होंने भी यही नाम लिया, ह्वेल"

"हाँ, ह्वेल"

"बस यही वहेल"

"हाँ, क्योंकि समुद्र में अनिवार्य शिक्षा नहीं है इस लिये मैंने उसका उच्चारण क्षमा किया

"एक दिन मेरे जी में आई कि मैं समुद्रके ऊपर तो बहुत घूमी हूँ, भीतर चल कर भी देखना चाहिये कि क्या है? इस कार्य के लिये मैंने गहरे जाना प्रारम्भ कर दिया। जब पानी ४ डिग्री सेण्टीग्रेड पर होता है तो वह अधिकतम भारी हो जाता है। बस, मैंने यही उपाय किया और बर्फ की सहायतासे अपने को भारी बना नीचे उतरना प्रारम्भ कर दिया।

"मार्गमें मैंने विचित्र-विचित्र जीव देखे। मैंने अत्यन्त धीरे-धीरे रेंगने वाले घोंघे, जालीदार मछलियाँ, कई-कई मन भारी कछुवे और हाथी वाली मछलियाँ देखीं। एक मछली ऐसी देखी जो मनुष्य से कोई गुनी लम्बी थी। उसके आठ हाथ थे। वह इन हाथों से अपने शिकार को जकड़ लेती थी और अपनी हथेलीमें से निकलते छिपने वाली नलियोंका उसके शरीरमें घुसा कर रक्त पी लेती थी। मैंने जब इसका यह भीषण कृत्य देखा तो झट नीचे उतर गई।

"मैं आगे चल कर मोती वाले सीपोंके देशमें पहुँची। वहाँ कितनी छोटी-बड़ी सीप चट्टानोंसे चिपकी और इधर-उधर रेंगती मिलीं।

"मैं और गहराईकी खोजमें किनारोंसे दूर गई तो मैंने एक ऐसी वस्तु देखी कि मैं चौंक पड़ी। अब तक समुद्रमें अँधेरा था, सूर्यका प्रकाश कुछ ही भीतर तक पहुँच पाता था और बल लगा कर देखनेके कारण मेरे नेत्र दुखने लगे थे। मैं सोच रही थी कि यहाँ पर जीवोंको कैसे दिखाई पड़ता होगा कि सामने ऐसा जीव दिखाई पड़ा मानों कोई-लालटेन लिये घूम रहा हो। यह एक अत्यन्त सुन्दर मछली थी। इसके शरीर से एक प्रकारकी चमक निकलती थी जो इसे मार्ग दिखलाती थी। इसका प्रकाश देख कर कितनी छोटी-छोटी अनजान मछलियाँ इसके पास आ जाती थीं और यह जब भूखी होती थी तो पेट भर उनका भोजन करती थी।

"विचित्र है"

"जब मैं और नीचे समुद्रकी गहरी तहमें पहुँची तो देखा कि वहाँ भी जङ्गल है। छोटे ठिंगने, मोटे भद्दे पत्ते वाले पेड़ बहुतायतसे उगे हुये हैं। वहाँ पर पहाड़ियाँ हैं घाटियाँ हैं। इन पहाड़ियोंकी गुफाओंमें नाना प्रकारके जीव रहते हैं जो निपट अंधे तथा महा आलसी हैं।

"यह सब देखनेमें मुझे कई वर्ष लगे। मुझे कुछ गर्मी लगी। कुछ घोट अनुभव होने लगा। जी में आया कि ऊपर लौट चलें। परन्तु प्रयत्न करने पर जान पड़ा कि यह असम्भव है। मेरे ऊपर पानीकी कोई तीन मील मोटी तह थी। इसका भार सँभालना मेरे लिये दूभर हो गया। इसलिये मैं भूमिमें घुस कर जान बचानेकी चेष्टा करने लगी। यह मेरे लिये कोई नई बात न थी। करोड़ों मन जल-कण इसी भाँति अपनी जान बचाते हैं और समुद्र का जल नीचेको धँसता जाता है।

"मैं अपने दूसरे भाइयोंके पीछे-पीछे चट्टानमें घुस गई। इस क्रियामें मुझे बड़ा कष्ट हुआ। शरीरके असंख्य टुकड़े हो गये। परन्तु जी कड़ा कर सब सहा। कई वर्षों में कई मील मोटी चट्टानमें घुस कर हम पृथ्वीके भीतर एक खोखले स्थानमें निकले। और एक स्थान पर इकट्ठा होकर हम लोगों ने मीमांसा की कि क्या करना चाहिये। कुछ की सम्मतिमें वहीं पड़ा रहना ठीक था। परन्तु इसमें कुछ उत्साही युवा भी थीं। वे इस प्रकारके आलस्यमय जीवनसे घृणा करती थीं। वे एक स्वरसे बोलीं "हम खोज करेंगी, पृथ्वीके हृदयमें घूम-घूम कर देखेंगी कि भीतर क्या छिपा हुआ है।" मेरी इच्छा चुपचाप आराम करने की थी। परन्तु जब कई मित्रोंने हाथ में हाथ

डाल कर बल-पूर्वक खींचा तो मुझे उनके साथ जाना पड़ा।

"हम लोग आगे बढ़े और छिद्रोंमें होकर मार्ग खोजने लगे। गर्मी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। हमें अपने शरीरमें हलकापन जान पड़ने लगा। एक प्रकारका आनन्द अनुभव होने लगा। मार्गकी कठिनता बढ़ रही थी। हम लोगोंने अब भाप रूप हो जाना उचित समझा। उस रूप में शरीर अत्यन्त बड़ा हो जाने पर भी उसमें सूक्ष्मताकी मात्रा बढ़ जाती है। उस रूपमें हम छोटे-छोटे छिद्रोंमें होकर निकल सकते थे और अपनी खोज जारी रख सकते थे।

"अब हम शोर मचाते हुये आगे बढ़े, तो एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ ठोस वस्तुका नाम भी न था। बड़ी बड़ी चट्टानें लाल पीली पड़ी थीं। सोनेके तालाब भरे थे। और नाना प्रकारकी धातुयें इधर-उधर बहनेको उतावली हो रही थीं। उनसे ऊपरका वातावरण गंधकसे परिपूर्ण था। यहाँ हमारा दम घुटने लगा। हम खोजके मतवाले सर हथेली पर रख कर उस गंधकके धुँवेमें घुस गये। यह अच्छा ही हुआ। वे लोग बड़े सभ्य थे। जिस समय गंधकके कणोंने हमें आते देखा मार्ग छोड़ दिया और हमें किसी प्रकारकी कठिनाई न होने दी। यह वह स्थान था जहाँकी प्रत्येक वस्तु अंगार बनी हुई थी।

"इसी स्थानके आस-पास एक दुर्घटना होते-होते बची। हम लोग अपनी इस खोजसे इतने प्रसन्न थे कि अंधा-धुंध बिना मार्ग देखे बढ़े जाते थे। इससे अचानक एक ऐसी जगह जा पहुँचे जहाँ तापक्रम बहुत ऊँचा था। यह हमारे लिये असह्य था। हमारे अगुवा काँपे और देखते देखते उनका शरीर ओषजन और उद्जनमें विभाजित हो गया। इस दुर्घटनासे मेरे कान खड़े हो गये। मैं अपने और बुद्धिमान साथियोंके साथ एक ओरको निकल भागी।

"हम लोग अब एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ पृथ्वी का गर्भ रह रह कर हिल रहा था। इस प्रकार हम एक झूले पर झूलनेके आनन्दमें मग्न होकर खिलखिला रहे थे कि एक बड़े जोरका धड़ाका हुआ। हम बड़ी तेजी से बाहर फेंक दिये गये। हम ऊँचे आकाशमें उड़ चले। इस दुर्घटनासे हम चौंक पड़े थे। पीछे फिर कर देखनेसे ज्ञात हुआ कि पृथ्वी फट गई है और उसमें धुँआ, रेत, पिघली धातुयें तथा लपटें निकल रही है। यह दृश्य बड़ा ही शानदार था और इसे देखनेको हमें बार-बार इच्छा होने लगी। हममें से कुछ मित्रों ने गर्मी कम होनेके कारण अपनेको पानी रूपमें परिवर्तित कर लिया और नीचे उतर कर एक तालाबमें भर गये। वहासे यह विचित्र कौतुक देखने लगे।"

"मैं समझ गया। तुम ज्वालामुखीकी बात कह रही हो।"

"हाँ, तुम लोग उसे ज्वालामुखी कहते हो। मैंने बहुत दूर पर बहुतसे मनुष्य खड़े उस स्मरणीय दृश्य देखते देखे। डरपोक होनेके कारण पास आनेका उनका साहस न होता था।"

"हाँ! तुम मनुष्यको कायर कहती हो मेरे सामने! खैर, मैंने तुम्हें क्षमा किया। कहो जल्दी अब सूर्य निकलने वाले हैं। नहीं तो अभी तुम्हें पत्तीके हवाले करता हूँ।"

"नहीं, नहीं, ऐसा न करना। सुनो, सुनो।"

मैंने सुननेके लिये ध्यान लगाया।

"हम जिस गड्ढेमें एकत्रित हुये थे वह ज्वालामुखीसे अधिक दूर न था। पिघले पत्थर और धातुयें जिन्हें तुम लावा कहते हो बहते-बहते शीघ्र ही हमारे पास आगये। उनके शरीर का ताप हमारे लिये असह्य था। इसलिये हम छुनछुनाकर फिर भाप बने और उड़ गये।"

"अब जब हम ऊपर पहुँचे तो हमें एक और भापका बड़ा दल मिला हम गरजकर आपसमें मिले और आगे बढ़े। पुरानी सहेली आँधीके भी हमें यह दर्शन हुये। वह हमें पीठ पर लादे कभी इधर ले जाती कभी उधर। यह दिन बड़े आनन्दके थे। हम आकाशमें स्वछंद किलोलें करते फिरते थे।"

"हम जिस समय मस्त होकर आपसमें टकराते तो हमारे शरीरोंसे एक दिव्य प्रकाश निकलता था जिससे पृथ्वी चमक उठती थी। इस बिजलीके प्रभावसे हवाकी ओषजन और नभजन गैसें आपसमें मिल जातीं और हम बरसते समय इन दोनोंके रासायनिक पुत्रका भोग लगाते हैं। इनके मेलसे शोरेके तेज़ाब जैसी एक गैस बनती है

है उसे घुलाकर हम पृथ्वी पर ले आते हैं। वह खेतोंमें फसलोंके लिये बड़ी लाभदायक होती है।"

"हम कुछ दिनों आकाशमें खेलते रहे परन्तु बिना खाये पिये अब बुरा लगने लगा था। समुद्रसे जो कुछ नमक हमए घुलाया था। वह हम जब भाप बने थे तो पीछे रह गया था और पृथ्वी पर आकर जो कुछ हमने पेट में डाला था वह भी भाप बनती बेर पीछे छोड़ आये थे।

"कुछ भूखसे और बहुतसे भाप जल-कणोंके मिलनेके कारण हम भारी हो चले और नीचे झुक आये और एक दिन बूँद बन कर नीचे कूद पड़े।"

"मैं एक पहाड़ पर गिरी और अपने साथियोंके साथ मैली कुचैली हो एक ओरको बह चली। पहाड़ोंमें एक पत्थरसे दूसरे पत्थर पर कूदने और किलकारी मारनेमें जो आनन्द आया वह भूला नहीं जा सकता। बहुत दिनों से भूखी रहनेके कारण मैंने बहुत सी सामग्री अपनेमें घुला ली और इस प्रकार पेट भर जानेसे मेरा मन खेलमें और भी लगने लगा।"

"हम एक बार बड़ी ऊँची शिखर परसे कूदे और नीचे एक चट्टान पर गिरे। बेचारा पत्थर हमारे प्रहारसे टूट कर खण्ड-खण्ड हो गया। यह जो तुम इतनी रेत देखते हो पत्थरोंको चबा-चबा कर हमीं बनाते हैं जिस समय हम मौजमें आते हैं तो कठोरसी कठोर वस्तु हमारा प्रहार नहीं कर सकती।"

"एक दिन हम उछलते चले जा रहे थे कि एक चट्टान को मस्ती सूझी। उसने अपने अत्यन्त विशाल शरीरका गर्व कर हमारा मार्ग रोक लिया। वरुण की प्रजा इस अपमानको सहन नहीं कर सकती। हम लोगोंने उसे इस धृष्टताका मज़ा चखानेकी मंत्रणाकी। फिर क्या था, ज़ोर लगा। हम उसकी नस-नसमें घुस गये और जम कर जो अपने शरीरको फुलाया तो चट्टान जगह-जगहसे चटक कर इधर-उधर बिखर गई।

"इसके बाद एक और बड़ा शिखर हमसे ऐंठ पड़ा। हम लोग पृथ्वीमें सिर लगाकर उसके नीचे घुस गये और उसके नीचेसे भूमिको बढ़ा दिया। वह अपने ही बड़प्पनके भारसे गिरी—अररर धम। हमने अपने जय-घोषसे पहाड़ी गुँजा दी।

"इसके बाद हम एक गुफ़ामें घुसे। इसमें सैकड़ों प्रकार के रेंगने वाले जीव रहते थे। वहाँ पर हमने भाँति-भाँतिके सर्प, गोह और छिपकलियाँ भी देखी। हमने चार पैर वाले सर्प देखे और वह सर्प भी देखे जिनके पैर अदृश्य हो रहे थे और जिन्हें देख कर तुम लोग सर्पोंको छिपकली परिवार का एक दिशामें विकसित रूप कहते हो।

"अपनी विजयोंसे उन्मत्त हो कर हम लोग इधर-उधर बिखर गये। मेरी इच्छा बहुत दिनोंसे समतल भूमि देखने की थी; इसलिये मैं एक छोटी धारामें मिल गई। यह धारा चट्टानोंमें अठखेलियाँ करती एक बड़ी धाराके पास पहुँची। दोनोंने कल-कल स्वरसे एक दूसरेका स्वागत किया और एक दम मिल कर एक हो गई।

"सरिताके वे दिवस बड़े मजेके थे। हम कभी भूमिको काटते, कभी पेड़ोंको खोखली कर उन्हें गिरा देते और अपने बन्धु-नाशका बदला लेते।

बहते-बहते मैं एक दिन एक नगरके पास पहुँची। मैंने देखा कि नदीके तट पर एक ऊँची मीनारमेंसे कुछ काली-काली हवा निकल रही है। मैं उत्सुक हो उसे देखनेको क्या बढ़ी कि अपने हाथों दुर्भाग्यको न्यौता दिया। ज्योंही मैं उसके पास पहुँची अपने और साथियोंके साथ एक मोटे नलमें खींच ली गई। कई दिनों तक मैं नल-नल घूमती फिरी अपनो सखी सरला हवासे बिछुड़नेके कारण मेरा जी बड़ा बेचैन रहता था। मैं प्रति क्षण उसमेंसे निकल भागनेकी चेष्टामें लगी रहती थी। भाग्य मेरे साथ था। बस, एक दिन रातके समय मैं ऐसे स्थान पर पहुँची जहाँ नल टूटा हुआ था। मैं तुरन्त उसमें हो कर निकल भागी और पृथ्वीमें समा गई। अन्दर ही अन्दर घूमते-घूमते इस बेरके पेड़के पास पहुँची।"

वह रुकी, सूर्य निकल आये थे।

'बस" मैंने कहा

"हाँ, तुम क्षुद्र मनुष्य, मैं अब तुम्हारे पास नहीं ठहर सकती। सूर्य भगवान निकल आये हैं। तुम मुझे रोक कर नहीं रख सकते।"

"मनुष्य और क्षुद्र ! छोटे मुँह बड़ी बात।"

"हाँ, क्षुद्र और ओछा—हल्दीकी गाँठ पाकर अपने आपको पंसारी समझ बैठा हैं।

"हैं, तेरी, इतनी मजाल" मैं गुर्राया।

पर मेरा क्रोध व्यर्थ था। वह ओसकी बूँद धीरे-धीरे घटी और आँखोंसे ओझल हो गई

भारतके लिये पेट्रोल की समस्या

[ले० श्री सुरेशशरण अग्रवाल]

गत जून मासके विज्ञान (भाग ४९, संख्या ३) में लेखकने भारतमें मोटरके व्यवसाय पर प्रकाश डाला था। परन्तु यह सर्व विदित है कि मोटर लारियाँ आदि बिना ईंधनके नहीं चलती हैं। इसके लिये अधिकतर पेट्रोलका प्रयोग किया जाता है। अतएव शीघ्र आवागमनके लिये मोटर-लारीका प्रयोग करने पर और भारतमें मोटरोंका निर्माण करने पर हमें उसके ईंधनकी ओर भी अवश्य ध्यान देना होगा। भारतवर्षके जियोलोजिकल सर्वेके अनुसार सन् १९३७ई०में भारत और ब्रह्मामें ३५,०३,२२,२२२ गैलन मिट्टीका तेल निकाला गया जो इस व्यवसायके इतिहासमें सबसे ऊँची मात्रा है। ब्रह्मामें नेचुरल गैससे १,०६,१९,३१३ गैलन गैसोलीन निकाला गया और पंजाबमें ४,५६,७८० गैलन यद्यपि भारत और ब्रह्मामें सन् १९३७ई० में इतना तेल निकाला गया, परन्तु यह सारे संसारमें निकाले गये तेल का ०·५० प्रतिशत मात्र है और इस ०·५० प्रतिशतमें ०·४० प्रतिशत तो ब्रह्माके येनांगयुआंगके मैदानोंसे मिला और ०१० प्रतिशत असली भारत से। इसके विरुद्ध अमेरिकामें ६२·७ प्रतिशत, रूसमें ९·१ प्रतिशत बेनीज़ुयेलामें ९·२ प्रतिशत, ईरानमें ३·८ प्रतिशत, डच द्वीपोंमें २·६ प्रतिशत और रूमानियामें २·५ प्रतिशत तेल निकाला गया।

उपर्युक्त आंकड़ोंसे भारतमें मिट्टीके तेलकी अल्प उपजका भली-भाँति परिचय मिल जाता है और देशोंमें भी जैसे जर्मनी, फ्रांस, बेलजियम, संयुक्त राज्य, स्विटज़रलैण्ड आदिमें मिट्टीके तेलके प्राकृतिक भंडार नहींके बराबर है। फलतः वहाँ वालोंको यह पदार्थ विदेशों—अमेरिका, रूस, रूमानियासे मँगाना पड़ता है। परन्तु अब और जब विशेषकर युद्धका वातावरण हो और युद्ध व्यापक हो, बहुत कम देश आयात के सहारे निभा सकते हैं। अतः ठोस द्रव, वायव्य पेट्रोलके बदले अन्य पदार्थोंका प्रयोग बढ़ रहा है। यह कृत्रिम पेट्रोल अथवा स्थानापन्न पदार्थ अनेक प्रकारके कच्चे मालोंसे जिनकी जिस देशमें जैसी बहुतायत हो, तैयार किया जाता है। अब कृत्रिम पेट्रोलके मूल्य पर ध्यान नहीं दिया जाता, वरन् इस व्यवसायकी निरन्तर वृद्धिकी जा रही है, क्योंकि आवागमन के साधनोंके अतिरिक्त पेट्रोल मशीनगनों और अनगिनती

प्रदेश	कुल स्थानापन्न पदार्थ टनोंमें	कुल मोटर-पेट्रोलका व्यय टनोंमें	स्थानापन्न पदार्थोंकी प्रतिशत मात्रा
जर्मनी	१४,११,२००	२५,८७,२००	५४.५
इस्टोनिया	७,१५४	१४,०१४	५१.६
चेकोस्लोवाकिया	६१,३४८	२,१५,६००	२८.५
लिथूनिया	१,२६८	५,५८६	२२.७
हंगेरी	१३,३४४	६७,७१८	१९.७
पोलैंड	१७,५९६	९६,२३६	१८.३
लटविया	३,३८५	१९,०१२	१७.८
युगोस्लेविया	३,७३०	२९,५९६	१२.६
बेलजियम	३५,९६६	४,००६२४	९.०
फ्रांस	२,४२,९४२	२७,७०,४६०	८.८
संयुक्त राज्य	३,८४,१६०	४७,४३.२००	८.१
इटली	३६,२६०	४,७३,८३०	७.७
आस्ट्रिया	१०,२९०	१,४३,३७४	७.२
स्विडन	१५,४३२	४,९३,१३९	३.१
हालैंड	१०,५८४	३,८४,७४८	२.८
फिनलैंड	२,८४२	१,१०,२५०	२.६
स्विटज़रलैंड	२,९८९	१,९९,८२२	१.५

युद्ध-सामग्रीके लिये बड़ी आवश्यक वस्तु है। निम्न तालिका (संख्या १) में सन् १९३७ ई०में यूरोपके विभिन्न देशोंमें स्थानापन्न पदार्थोंकी उपज दिखलाई गई है:—

कोयलेसे संयोगिक तेल—संसारमें तेल प्रचुर मात्रामें इने गिने देशोंमें ही निकलता है। हाँ, कोयला भिन्न-भिन्न स्थानोंमें और बहुतायतसे मिलता है। अतएव वैज्ञानिक कोयलेको तेलमें परिवर्तित करनेका उपाय सोचने लगे। इस कार्यमें बर्जियस प्रथम सफल हुए। उन्होंने अपने गवेषणात्मक कार्यों से प्रदर्शित किया कि कोयले पर विशेष अवस्थाओंमें हाइड्रोजनकी प्रक्रिया करानेसे तेल प्राप्त हो सकता है। यूरोपमें कोयले, टार, अपक्व मिट्टीके तेल से पेट्रोल तैयार करनेके लिये बड़ी-बड़ी योजनायें तैयार की गई हैं। यूरोपके बाहरभी देशोंने इस कार्यमें पैर बढ़ाया है। संयोगिक द्रव ईंधनोंकी तैयारीके लिये जापानमें 'सप्तवर्षीय योजना' की गई है। तुर्कीमें संयोगिक प्लाण्ट्स की तैयारियाँ हैं। कुछ काल बीते आस्ट्रेलियाकी सरकारने भी आस्ट्रेलियामें कोयले से तेल बनानेके व्यवसायकी सफलताको जाननेके लिये एक कमेटी नियत की थी।

कोयलेसे पेट्रोल निकालनेकी दूसरी विधिका श्रेय दो सज्जनों फ़िशर और ट्रोप्षको है। अतः यह विधि फ़िशर-ट्रोप्ष नामसे प्रसिद्ध है। इस विधिमें निम्न श्रेणीका कोयलाभी आधारभूत प्रयोग किया जा सकता है। जैसा कोयला हो उतनी मात्रामें तेल मिलता है। यह विधि यद्यपि देरसे आई परन्तु प्रसिद्ध फ़ारसी कहावतके अनुसार 'देर आयद दुरुस्त आयद' और अब इसी विधिकी तूती बोलती है। जर्मनीमें तेज़ीसे दोनों विधियोंका उपयोग किया जाता है। फ़िशर-ट्रोप्ष ढंगसे सन् १९३७ ई० में १,५०,००० टन मोटर स्प्रिट तैयार की गई। उसके बादसे कई विशाल कम्पनियाँ खुल गई हैं और जब सब काम कर रही होंगी तो प्रति वर्ष ५,३०,००० टन तेल मिलेगा। फ्रांसमें एक प्लाण्ट से १३,००० टन प्रतिवर्ष पैदा किया जाता है। कुल मिला कर यूरोपमें ८ प्लान्ट काम कर रहे हैं और इस वर्षके अन्त तक ६,००,००० टन मात्रामें तेल निकल सकेगा। परीक्षा रूपमें सिन्थेटिक आयल लिमिटेड, स्काटलैण्डमें एक छोटा-सा प्लान्ट जो बड़े पैमाने पर भी फैलाया जा सकता है, खोला गया है। जापानने जर्मनीके एसेन नगरकी कोप्पर्स कम्पनीसे तीन बड़े प्लान्ट अपने यहाँ लगवाये हैं। यह भी ख़बर है कि जापानकी सरकार ८५,८०,००० गैलन वार्षिक मोटर स्प्रिट और ४,६४,००,००० गैलन भारी-तेल तैयार करने का सोच रही हैं। दक्षिणी अफ्रीकामें भी एक प्लान्ट खुलने की ख़बर है।

बेंज़ीन मोटर ईंधन—जब वायुकी अनुपस्थितिमें कोलतेको ८००°—१०००° शतांश पर गरम करते हैं तो गैस टार और कोक मिलते हैं, बेंज़ीन गैस और टार दोनोंमें होती है। इस प्रकार प्रति टन कोयलेसे ३ गैलन बेंज़ीन मिलता है। बेंज़ीनमें रसायनज्ञके शब्दोंमें ऐण्टी नाक (Anti-knock) गुण होते हैं और इसको निम्न श्रेणीके मोटर-ईंधनोंसे मिश्रित करने पर उनकी ऐण्टीनाक पदवी बढ़ जाती है। निम्न तालिका (संख्या २) में यूरोपके विभिन्न देशोंकी बेंज़ीन-मोटर ईंधनको उपज दी गई है: —

प्रदेश	टन	प्रदेश	टन
जर्मनी	३,२१,४००	संयुक्त राज्य	२,२५,४००
चेकोस्लोवाकिया	११,७६०	आस्ट्रिया	८,०३६
हंगेरी	३,०३८	स्विडन	४९०
पोलैण्ड	६,८००	हालैण्ड	१०,५८४
बेल्जियम	३५,९६६	फिनलैण्ड	१९६
फ्रांस	७८,४००	स्विटजर लैण्ड	२,६४०
		योग	८०८,०१०

संख्या २

यदि बेंज़ीन मोटर-ईंधनके बजाय यूरोपमें लोग गैसोलीनको जलाते तो ६८,९२,६०० पौंडकी बचत हो जाती। परन्तु व्यवसायकी रक्षा करनेके हेतु यह बढ़ता व्यय भी उठाया जाता है। बहुत-सा इंधन तो भंडारोंमें सुरक्षित रक्खा रहता है। न मालूम कब आवश्यकता पड़ जाय। वैसे ही युद्धका अवसर है।

बेंज़ीन मोटर-ईंधनके स्थान पर पावर-अल्कोहलका भी प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पावर-अल्कोहलकी चर्चा और उस पर गवेषणात्मक कार्य हमारे प्रान्त तथा विहारमें खूब हो रहे हैं और दोनों सरकारोंने पावर-अल्कोहल सम्बन्धी एक कमेटी भी बिठाई है। निम्न तालिका (संख्या ३) में यूरोपके कुछ देशोंमें कुल मोटर-ईंधनके व्ययकी तुलना पावर-अल्कोहलके व्यय से की गई है:—

प्रदेश	पावर अल्कोहलका व्यय	कुल मोटर-ईंधनका व्यय	प्रतिशत अल्कोहलकी मात्रा
जर्मनी	२,०५,८००	२५,८७,२००	८·०
फ्रांस	१,५०,३३२	२७,७७,४६०	५·०
चेकोस्लोवाकिया	४६,५८८	२,१५,६००	२३·०
इटली	३६,२६०	४,७३,८३०	७·६
संयुक्त राज्य	१५,६८०	४७.४३,२००	०·३
स्विडन	१४,८१६	४,९३,१३६	३·०
हंगेरी	१०,२९०	६७,७१८	१५·२
पोलैण्ड	७,८४०	९६,२३६	८·१
युगोस्लेविया	३,७२४	२९,५९६	१२·९
आस्ट्रिया	२,२५४	१,४३,३७४	५·६
लटविया	२,१५६	१९,०१२	११·१
लिथूनिया	१,२७४	५,५८६	२२·७
योग	५,००,०९४	१,१६,५१,९४८	४·३

संख्या ३

इस तालिकासे स्पष्ट है कि संयुक्त राज्यमें प्रतिशत अल्कोहलकी मात्राका व्यय बहुत ही कम है। चेकोस्लोवाकिया (जो अब जर्मन राज्यमें है) और लिथूनियामें प्रति शत मात्रा २३.०० तथा २२.७ क्रमशः हैं। बात यह है कि संयुक्त राज्य ने मिश्रण कार्यों के लिये पावर-अल्कोहलके प्रयोग पर ज़ोर नहीं दिया है। इसका कुछ कारण तो यह है कि पावर-अल्कोहलके प्रयोग करनेके लिये कच्चा माल, शीरा, बाहरसे मँगाना पड़ेगा। वास्तवमें अंग्रेज़ी सरकार ने आयात शीरेसे तैयारकी हुई अल्कोहल पर ९ पेन्स प्रति गैलन कर लगा रक्खा है। यदि ऐसा न होता तो सम्भव था भारतवर्षका बहुत सा शीरा संयुक्त राज्यमें खप जाता। परन्तु जहाँ सन् १९३१ई०के जनवरी, फरवरी, मार्चमें गैसोलीनकी विक्री ३२,४०,००,००० गैलन हुई और सन् १९३८ में इसी कालमें ३१,९०,००,००० गैलन हुई थी, अल्कोहलकी विक्री १,३०,००,००० गैलनसे १,४८,००,००० गैलन हो गई।

पावर-अल्कोहलके लिये जापानमें जो हो रहा है उसे भी देखना अच्छा होगा। वहाँके माल-विभागके, दफ्तर ठेकेजात ने सन् १९३६ई०में पाँच अल्कोहल प्लाण्ट लगानेके लिये १०,००,००० यन (१३,२०,००० रुपया) खर्च करनेका निश्चय किया। अलकोहलके ठेकेके विधानसे प्रोत्साहित हो ओसाकाके ताकाशी लोहा कार्यालयमें अब तक १७ यूनिट बना लिये है, जिनमें सबसे बड़ेका दैनिक विस्तार ९९.८ प्रतिशत शुद्धता वाली अल्कोहलका ९.३५० गैलन है। फार्मूसामें सन् १९३८-३९ के अंतमें १,४०,००,००० गैलन वार्षिक विस्तार वाली अल्कोहल पानेकी योजना थी।

कम्प्रेस्ड ईंधन गैसें—जबसे हलके मिलवाँ धातुके

सिलिण्डर या बेलन चले हैं मोटर-गाड़ियोंमें पेट्रोलकी जगह कम्प्रेस्ड गैसोंको ईंधनकी तरह काममें लाते हैं। जर्मनीमें तो सन् १९३८ई०में १,५०,००० टन गैसोलीनकी जगह कम्प्रेस्ड गैसोंसे मोटर गाड़ियाँ चलीं। कम्प्रेस्ड गैसोंका ईंधन जैसा सबसे अधिक प्रयोग जर्मनीमें होता है द्वितीय इटलीमें मिलन और फ्लोरेन्समें ५०० बस और ट्रक्स तो विद्यमान हैं जो कम्प्रेस्ड गैसोंसे चलती हैं। इस समय लगभग ४०,००० टन पेट्रोलियम गैसोलीनको कम्प्रेस्ड गैसों ने स्थानान्तरित कर दिया है। जर्मनी और इटलीमें उन मोटरों तथा ट्रक्स आदि पर जो कम्प्रेस्ड गैससे चलाई जाती हैं कर कम लिया जाता है और इस प्रकार कम्प्रेस्ड गैसके व्यवसायको उत्तेजना दी जाती है। पाठक जर्मनी और इटलीमें मिट्टीके तेलकी अल्प उपजको जानते हैं। जर्मनीके इशतुतगार्त नगरमें स्वेज गैसोंका भी सफलता से उपयोग किया है। स्वेज गैसका १ घन मीटर (३५·३ घन फ़ीट) ११ घन सेण्टीमीटरके बराबर है।

भारतवर्षमें अब दिन ब दिन सड़क पर ढुलाई बढ़ती जाती है। कहीं-कहीं तो रेलवे वालोंको भीषण प्रतियोगिताका सामना करना पड़ता है। इंगलैण्डमें आजकल १२,७२,००० आदमी सड़क ट्रान्सपोर्टमें लगे हुये हैं और रेलवेमें केवल ६,५,०००। भारतमें भी शायद सड़क-ट्रान्सपोर्ट रेलवे ट्रान्सपोर्टसे बढ़ती जा रही हो। इसका संदेह १९३९ ई० वाले इण्डियन मोटर-वेहीकिल्स अमेण्डमेण्ट बिलसे होता है। हमारे यहाँ स्थानापन्न ईंधनोंका प्रयोग सम्भव है परन्तु अभी तो फिलहाल गैसोलीनके ढंगका ईंधन अधिक चलेगा। यह भी हम जानते हैं कि लगभग भारतमें हुआ सभी पेट्रोल विदेशोंसे आता है। सन् १९३७ ई०में १०,३१ ९८, ९४३ गैलन पेट्रोल व्यय हुआ था जिसमें १, ५४, १९, ४७१ गैलन भारतमें तैयार किया गया और ३, ८१, ४९,१४३ गैलन ब्रह्मासे आयात हुआ शेष विदेशोंसे आया।

सन् १९३३ ई० में अंग्रेज़ी सरकार ने ब्रिटिश हाइड्रो-कार्बन आयल्स प्राडक्ट बिल प्रचलित कर स्वदेशी मोटर ईंधनकी उपजकी रक्षाकी थी और फिर बिलिंघम प्लाण्ट लगाया गया था। जिन कारणोंसे यह सब हुआ वे कारण भारतमें भी विद्यमान हैं। यही नहीं, भारतमें भी इंगलैण्डकी भाँति कोयलेका व्यवसाय उन्नतिशील नहीं है यदि बिलिंघम प्लाण्ट जैसा एक प्लाण्ट भारतमें भी लगवा दिया जाय जो प्रतिवर्ष १,५०,००० टन मोटर स्प्रिट निकालता हो तो ६,००,००० टन कोयलेकी आवश्यकता पड़ेगी। इससे २,००० आदमी तो कार्यालयमें और २,००० कोयलेके मैदानोंमें खप जायेंगे। सभी देश अपना-अपना मोटर ईंधनका व्यवसाय बढ़ा रहे हैं। इसके लिये अयात गैसोलीन पर आयात-ड्यूटी तथा कर लगा दिये हैं। यह निम्न तालिका (संख्या ४) में—यूरोपीय देशोंका केवल)—दिखलाया गया हैः—

देश	नगर	एक गैलन गैसोलीनका मूल्य आनोंमें	एक गैलन गैसोलीनपर आपात आनोंमें	आयात ड्यूटी और टैक्स प्रति गैलन आनेसे
इटली	रोम	३९ ०	२६·२	२७·२
जर्मनी	बर्लिन	३१ ८	१६·६	१९·२
लिथूनिया	काडनास	३३ ७	१२·४	१२·४
बलगेरिया	सोफिया	२६ ७	१५·०	२०·८
चेकोस्लोवाकिया	प्राग	२२·६	२·७	८·६
युगोस्लेबिया	बेलग्रेड	२१·८	३·६	१२·५
स्विटजरलैण्ड	सूरिच	२०·४	१०·३	१०·३
हंगेरी	बुडापेस्ट	२०·४	४·३	१३·९
इस्टोटिनया	तालीन	२०·३	४·३	११·३
लटेविया	रीगा	२०·२	७·७	११·५
यूनान	एथेन्स	२०·०	१०·६	११·३
संयुक्त राज्य	लन्दन	१९·३	८·०	८·०
बेल्जियम	अन्टवर्प	१९·२	१०·७	१०·७
फ्रांस	पेरिस	१७·०	९·९	१०·४
नार्वे	ओसलो	१४·७	कुछ नहीं	५·१
डेनमार्क	कोपिनहेगिन	१४·१	” ”	५·९

संख्या ४

कोयले-से-तेल बनानेका व्यवसाय—भारतमें इस व्यवसायकी सफलताकी प्रचुर सम्भावना है। यद्यपि भारत में पेट्रोलका मूल्य लन्दनसे अधिक है, परन्तु भारतवर्षमें खान पर कोयलेका मूल्य इंगलैण्डमें जो मूल्य है उससे कम है। इंगलैण्डमें एक टन कोयलेका दाम १३ शिलिंग ४ पेन्स (८ रुपये १४ आने), पर भारतवर्षमें ३ रुपये ही है, क्योंकि कोयले-से-तेलके संयोगिक व्यवसायमें ३३ प्रतिशत मूल्य तो कोयलेके व्ययके कारण पड़ जाता है। अतः भारतवर्षमें संयोगिक तेलका मूल्य कम ही पड़ेगा। यही नहीं, हम यूरोपके प्लाण्टोंके अनुभवसे भी लाभ उठा सकते हैं। परन्तु पाठक कह सकते हैं कि भारतमें उत्तम श्रेणीका कोयला अधिक मात्रामें कहाँ पैदा होता है? बिना कोक और निम्न श्रेणीका कोयला यहाँ का कोयला ही यहाँ होता है। हमारे देशमें ५८,३०,००,००,००० टन कोयलेका विशाल भंडार है और उसके लिये लगभग कोई अच्छा बाज़ार ही नहीं मिलता। यह सबका सब कोयला फ़िशर-ट्रोप्ष विधि या संयुक्त बर्जियस और फिशर-ट्रोप्ष विधिमें काममें लाया जा सकता है। आसाम के कोयलेमें ८० प्रतिशत कार्बन होता है और जो गरम करने पर वाष्प रूपमें परिवर्तित हो जाता है। परन्तु उसमें गंधककी अधिक मात्रा होना उसको अनुपयोगी बना देती है। यही कोयला जो अन्य कामोंके लिये अनुपयोगी है, बर्जियस विधिके हाइड्रोजिनेशनके सर्वथा उपयुक्त है। अनुमान है कि आसाममे ६०,००,००,००० टन ऐसा कोयला है।

बिलिंघम प्लाण्ट कोयलेसे १,००,००० टन और न्यून-ताप वाले टारसे ५०,००० टन लाइट स्प्रिट प्रतिवर्ष तैयार करनेके लिये लगाया था। इसका लागत-व्यय लगभग ५५ लाख पौण्ड था। इम्पीरियल केमिकल इनडस्ट्रीज लिमिटेड के अनुसार हाइड्रोजिनेशन प्लाण्टका जो केवल कोयलेसे तेल तैयार करना हो, डीलडौल उस प्लाण्ट जैसा होगा जो प्रतिवर्ष १,५०,००० टन मोटर इंधन निकाले। इसके लिये कुल व्यय ८० लाख पौण्ड या १० करोड़ ६४ लाख रुपया होगा। इस व्ययका व्योरा इस प्रकार है :—

	पौंड
प्लाण्ट, सामान, कार्यालय आदि	१०,३५,०००
ब्वायलर और पावर-प्लाण्ट	१५,७०,०००
गैसका बनाना, साफ़ करना व दबाना	१७,६२,०००
हाइड्रोजिनेशन प्लाण्ट और रिफ़ाइनर	२८,८०,०००
	७२,४७,०००
फुटकर व्यय निर्माणके बीच गवेषणात्मक कार्य, सूद, अंतर्राष्ट्रीय हाइड्रोजिनेशन पेटण्ट्स फी आदि	७,५०,०००
योग	७९,९७,०००

नीचे विभिन्न प्लाण्टोंके परिमाण मय लागत मूल्य दिये हुए हैं। ये फिशर-ट्राप्ष वाली विधि पर काम करने वाले प्लाण्ट हैं। यह ग्रेट ब्रिटेनकी इम्पीरियल डिफ़ेन्स कमेटीके रिपोर्टमें दिये आकड़े हैं—

२०,००० टन प्लाट (कोक ओविन्सको मिला कर)
१०,००,००० पौण्डसे १५,००,००० पौण्ड तक

३५,००० टन प्लाण्ट (,,)
१९,०१,००० पौण्ड

३५,००० टन प्लाण्ट (पानीके गैस प्लान्टमें कोयले का सीधा गैसमें परिवर्तन) १७,१७,००० पौंड

६०,००० टन प्लाण्ट (कोक ओविन्स तथा स्रवन प्लाण्ट मिला कर) ६१,००,००० पौन्ड

यह तख़मीने बाजार भाव पर निर्भर रहते हैं। निम्न लिखित आंकड़े अंग्रेज़ी मज़दूर दल की फ़िशर-ट्रोप्ष प्लाण्ट पर जो रिपोर्ट है उससे लिये गये हैं :—

३५,००० टन प्लाण्ट	१९,००.००० पौंड
१०,०००टन प्लाण्ट	२,२५०० पौन्ड

उपर्युक्तसे प्रकट है कि फ़िशर-ट्रोप्ष-विधि पर लगाया प्लाइण्ट बर्जियस वालेसे सस्ता पड़ेगा। हमारे देश पूँजी पतियों तथा सरकारको हाथ बढ़ा कर इस व्यापारिक व्यवसाय को आरम्भ करना चाहिये। आजकल यह सर्व विदित है कि हम भारतवासी स्वरक्षाकी सामग्रीमें सबसे गिरे हैं, न हम बे हथियार न सामान और न उनका प्रयोग करना जानने वाले व्यक्ति इसमें यथेष्ट दोष हमारे शासकोंका है। ठीक भी है, शासकको अपने शोषणके अतिरिक्त अन्य बातोंसे क्या प्रयोजन है? परन्तु जब डंडे की चोट पर यही शोषक शासक जनतंत्र विस्तारके लिये कह रहा हो तो उसकी कहनी तो जभी सही है जब वह

जनतंत्र भारत पर लागू कर दे। यह न राजनैतिक लेख है और न विज्ञान राजनैतिक इत्र। पम पेट्रोलको डिफेन्स का अनुपम और विशेष साधन मानते हैं। अतएव उसकी उपज अनिवार्य है।

इस व्यवसायमें प्लाण्ट तो लगाना होगा ही, परन्तु साथही साथ खोज अथवा रिसर्च कार्यका सुभीता होना चाहिये। इंगलैण्डमें हो खोज पर सन् १९२७ से १९३३ई० तक एक करोड़ तैंतीस लाख रुपया व्यय किया गया। बात तो यह है कि इस संयोगिक तेलकी उपज सम्बन्धी संसारमें सभी जगह चल रही है। और इन खोजोंसे काफी लाभ पहुँचता है। इटलीमें ही इन खोजों द्वारा उपज ४० प्रति शतसे ८० प्रतिशत बढ़ा दी गई है। यही नहीं, रूस और अमेरिकामें भी गवेषणात्मक कार्य बड़ी तेज़ीसे हो रहा है। यह वह देश हैं जहाँ मिट्टीका तेल प्राकृतिक रूपसे भी बहुत निकलता है। इस विषय पर बहुतसे गवेषणात्मक निबन्ध प्रकाशमें आ रहे हैं।

अब जब यह व्यवसाय भारतमें आरंम्भ किया जावेगा तब एक दम तो आयात मोटर स्प्रिट नहीं रोका जा सकता। न जब तक संयोगिक तेल प्राकृतिक उपजका मुक़ाबला कर पायेंगे। परन्तु कार्य सरलतासे हो सकता है। वह यह कि लाइट मोटर स्प्रिट देशमें क्यों मँगाया जावे, अपक्व तथा अजीर्ण मोटर स्प्रिट आयात को जा सकता है। फिर इसे भारत स्थित रिफाइनरी में साफ़ कर सकते हैं। शोक कि भारतमें सम्प्रति कोई रिफ़ाइनरी नहीं है। लंकामें एक रिफ़ाईनरी खुलनेका समाचार सुना गया है। क्या ही अच्छा हो भारतीय सरकार इस ओर शीघ्र ध्यान दे और न्यूनतम शीघ्रातिशीघ्र रिफ़ाइनरीही खुलवा दें।

इस व्यवसायको कार्यान्वित करनेके लिये सरकारको एक कमेटी नियत करनी चाहिये जिसमें सरकारके प्रतिनिधि, पूँजोपति तथा देशके विशेषज्ञ वैज्ञानिक हों। केवल वैज्ञानिकोंका एक रिसर्च-मंडलभी अवश्य खोलना पड़ेगा। साथही साथ सरकारको आयात मोटर स्प्रिट पर भारी कर लगाना पड़ेगा, जभी तो भारतमें तैयारकी हुई मोटर स्प्रिट सफलता प्राप्त कर सकेगी। अंतमें हम नेशनल प्लानिंग कमेटीकी ट्रान्सपोर्ट उपसमितिसे भी इस ओर ध्यान देनेके लिये निवेदन करेंगे।

इत्र बनाना

[ले—श्री छेदीलाल, मालिक फर्म, बेनी प्रसाद छेदी लाल, इत्र, गुलाबजल, और तेलके निर्माता तथा विक्रेता जौनपुर]

आपको अगर चमेलीका इत्र १ सेर बनाना हो तो आप चन्दनका इत्र सवा सेर लीजिए और उसको भपके में छोड़ दीजिए और भपकेके मुँहमें पाइपका एक सिरा डालकर उसको सना हुआ आटा लगाकर अच्छी तरह बन्द कर दीजिए और पाइपका दूसरा मुँह खुला रहे (जो कि बादको देगके ढक्कनमें लगाकर बन्द किया जावेगा)।

इसके बाद डेगमें पहले रोज़ आठ सेर या दस सेर चमेलीका फूल छोड़कर उसमें १½ भपका पानी छोड़िए और उसका मुह आटेसे बन्द कर दीजए और देगके ढक्कनमें जो सूराख़ होता है उसमें पाइपका (जो कि भपके में लगा हुआ है) दूसरा मुँह लगाकर आटेसे बन्दकर दीजिए।

अब चूल्हेमें आग लगा दीजिए और चूल्हेके बगलमें भपका रखनेके लिए मिट्टीका एक बरतन रखिए जो कि नादका सा बना होता है। उसमें ठंढा पानी भर दीजिए और भपके को बड़े पत्थरसे दबा दीजिए ताकि भपका एक जगहपर रहे। डेगके ढक्कनको भी वज़नी पत्थरसे दबा दिया जावे।

जब देगमें आँच लगेगी तो भाप पाइपसे होकर भपके में जायगी और भपका ठंढे पानीमें रहनेकी वजहसे भापको पानीमें परिवर्तित कर देगा जब नादका पानी जिसमें भपका रक्खा हुआ है गर्म हो जाय तो आगको कम करके पानी बदल दीजिए। इसी तरह एक रोजके काममें दो या तीन दफे पानी बदला जाता है (कुल काम होनेमें करीब चार पाँच घण्टेके लगते हैं)।

जब यह अन्दाज हो जाय कि भपका करीब भर गया है तो आँच बुझाकर या आग बुझा करके डेगसे पाइप निकाल दीजिए और भपके के पाइपका मुँह बन्द करके अलग रख दीजिए (रात भरके लिए)।

अब उस भपकेमें पानी और चन्दनका इत्र मिला हुआ है। ठंडा होनेपर चन्दनका इत्र महकको खींच लेगा।

सुबह एक पतीलीको जो कि भपकेके नापकी होती है और उसके पेंदेके बीचमें एक छोटा सूराख होता है एक तिपाईपर रख दीजिए (उस तिपाईकी सीटमें एक बड़ा सूराख होता है)। पतीलीका सूराख कार्कसे बन्द कर दीजिए। अब उसमें भपकेका पानी और चन्दनक इत्र उड़ेल दीजिए। थोड़ी देरमें चन्दनका इत्र ऊपर हो जायगा और पानी नीचे रह जायगा। सूराख वाली पतीलीके नीचे एक और बर्तन रख दीजिए, और पतीलीका कार्क खोल दीजिए तो उसमेंसे पानी निकलना शुरू हो जायगा जब यह समझिए कि पानी करीब-करीब खतम हो रहा है तब उसका सूराख बन्द कर दीजिए, अब एक रोज़का काम खतम हो गया।

अब दूसरे रोज़ डेगमें दस या पन्द्रह सेर फूल और उतना ही पानी छोड़कर देगको उसी तरहसे बन्द कर दीजिए और उसी भपकेमें वही चन्दनका इत्र जो आपने अलग किया है फिर छोड़िये और आँच लगाकर पहले दिनकी तरह इत्र बनाइये।

अब आपको जितना कीमती इत्र बनाना हो उतनी ही दफा बराबर इसी तरह खींचते रहिए। फूलका वजन भी बढ़ाकर आप बीस-पचीस सेर तक कर सकते हैं। मगर यह याद रखिए कि कम दाम वाला भी इत्र चार पाँच रोज़से कममें तैयार नहीं होता।

कीमतके लिए जितना फूल कुल दिया गया है उसका दाम चंदनके इत्रका दाम, मेहनत, व नफ़ा सब जोड़ कर दाम रखा लिया जाता है।

जैसे आपने चमेलीका इत्र निकाला है उसी तरह गुलाब, केवड़ा, जूही, मौलसिरी, खस, मेंहदी या मोतिया इत्यादिका भी इत्र बनता है।

समालोचना

त्रिधातु सर्वस्व—अनुभूत योग माला, परालोकपुर इटावा का विशेषांक। पृष्ठ संख्या २६६, मूल्य २ रु०। दोष-वात पित्त और कफ़। धातु रस, रक्त, मांस, आदि सात, तथा मलमूत्र प्रस्वेदादि यह सब शरीरके मूल पदार्थ हैं अर्थात् शरीर इनसे उत्पन्न होता, बनता है। ऐसा जो आयुर्वेदका सिद्धान्त है उस पुष्टिमें यह विशेषांक निकाला गया है। किन्तु दोष, धातु और मल क्या पदार्थ हैं? इसको शास्त्र सम्मत प्रमाणोंसे ही सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है। जिन बातोंको शास्त्र हजारों वर्षोंसे एक स्वर होकर कह रहे हैं उन्हीं बातोंको दोहरा कर पुनः वैद्योंके सामने रखनेसे वह वस्तु अब नई नहीं बन सकती। न उसमें कोई विशेषता आ जाती है।

इस समय आवश्यकता इस बात की है कि जिस सिद्धान्त पर जिस अंशको लेकर आक्षेप किये जाते हैं उसके उस अंशका समाधान होना चाहिये। यदि वह समाधान विद्वानों द्वारा आदर पा जाय तो फिर उस शास्त्र-सम्मत सिद्धान्तको हर कोई मान लेगा। जब तक यह शैलीका अनुकरण नहीं किया जाता इस प्रकारके विशेषांक सिवाय पिष्ट पेषणके कोई महत्त्व नहीं।

—हरिशरणानन्द

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।
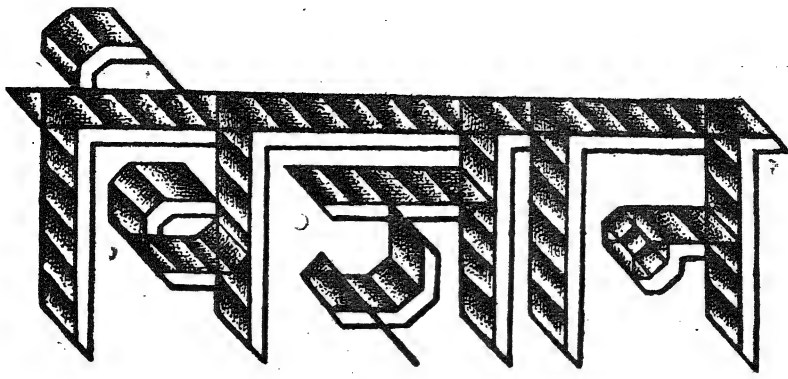
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५०	प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी	फरवरी, सन् १९४० ई०	संख्या ५

आधुनिक बहुमूल्य धातु

प्राचीनकालसे सोना, चाँदी और प्लैटिनम बहुमूल्य धातुयें गिनी जाती हैं, परन्तु अब चित्र बदल रहा है। सोनाके, जो आज क़रीब ४१॥) तोले बिक रहा है, खानोंसे निकलते ही उसे बड़ी-बड़ी सरकारें हड़प लेती हैं। यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिकाके खज़ानेमें ४२,००,००,००,००० रुपयेका सोना बन्द है। भला कौन कह सकता है कि यह बहु-मूल्य धातु है।

चाँदी इस समय ६०) को १०० तोलेके भावसे बिकती है। नई चाँदीका भाव कृत्रिम रीतिसे तय कर दिया गया है और इसीलिए इसके भावमें अधिक परिवर्तन नहीं होता है।

प्लैटिनम ५००) छटाँकके भावसे बिकता था, परन्तु अब इसका दाम आधेसे भी कम हो गया है। तो भी इसकी माँग अधिक नहीं है। केवल थोड़ेसे उद्योग-धंधोंमें ही इसकी खपत है, परन्तु इसकी १,००,००० छटाँक वार्षिक खपतमेंसे आधेसे ज़्यादा अमेरिका ख़र्च करता है। वहाँ भी इसका अधिकांश खर्च आभूषणोंके बनानेमें होता है। अमेरिका एक धनी देश है और वहाँके रहने वाले तरहतरहके फैशनमें पैसा खर्च करते हैं। चाँदी, सोना और प्लैटिनम एक प्रकारसे शौकके लिए ही बरता जाता है, परन्तु कुछ ऐसी भी बहुमूल्य धातुएँ हैं जो अपने विशेष गुणोंके कारण ही काममें आती हैं। इनमें अल्युमिनियम, बेरिलियम, क्रोमियम, निकेल, मॉलिबडेनम, टङ्गस्टन और वैनेडियम हैं। ये और दो-चार अन्य धातुएँ ही विशेष रूप से बहुमूल्य धातु हैं।

तीन धातुएँ बहुत हलकी होती हैं। अल्युमिनियम, बेरिलियम और मैगनीसियम। बेरिलियमका प्रचार हुए अभी ५० वर्षसे अधिक नहीं हुए, परन्तु इसके मिश्रणसे बनी हुई संकर धातु इतनी आश्चर्यजनक गुण वाली होती है कि धातुका काम बनाने वालोंके लिए यह बहुत-ही बहुमूल्य सिद्ध हुई है। यह अल्युमिनियमसे भी हल्की है। यदि निकेलमें २ प्रतिशत बेरिलियम छोड़ दी जाय तो जो इस मिश्रणसे संकर धातु बनती है वह स्टेनलेस स्टील (मोरचा न लगने वाला इस्पात) से तिगुना मज़बूत होती है। ताँबामें ३ प्रतिशत बेरिलियम मिलानेसे एक ऐसी धातु बनती है जो स्टेनलेस-स्टीलसे दो गुनी मज़बूत होती है।

इन दोनों संकर धातुओंकी बनी हुई एक घड़ी हवाई जहाज़ परसे जो तीन हज़ार फ़ीट की ऊँचाईपर उड़ रहा था, गिराई गई। उठानेपर पता लगा कि घड़ी ज्योंकि त्यों चल रही है, सिर्फ उसका कोंच टूट गया है।

फास्फ़ोरस ब्राञ्जकी बनी कमानी ३,००,००० बार चलनेसे इतनी कड़ी पड़ जाती है कि चटख़ जाती है, पर स्टेनलेस स्टीलकी बनी कमानी २०,००,००० बार तक लचक सकती है और टूटनेका नाम नहीं लेती। बेरेलियम और निकेलकी संकर धातुकी बनी कमानीको इंजीनियरोंने १५०,००,००,००,००० बार उल्टा-सीधा लपाया और फिर जब मशीनको रोका तो देखा कि कमानी पहले जैसी ही मज़बूत है, इसके हलकेपनके कारण एयरोप्लेन और इंजन बनाने तथा अन्य तरहकी गाड़ियोंके बनानेमें भी महान् परिवर्तन होगा। औज़ार तथा बिजलीकी मशीन बनानेमें भी यह धातु काम आयेगी। तीन भाग बेरेलियम और एक भाग अल्युमिनियमके मिलावटसे बनी धातु बहुत तेज़ आँचपर भी नहीं पिघलती और आसानीसे घिसी नहीं जा सकती। इसलिए इससे इञ्जनका पिस्टन बनाया जाता है। इस धातुसे बना पिस्टन बहुत हलका होता है। वजन की कमीसे पैसा बचता है। अनुमान किया जाता है कि एक सेर वज़न कम होनेसे हवाई जहाज़वालोंका १५०) बचता है, क्योंकि हलके इंजन चलानेमें पेट्रोल कम खर्च करना पड़ता है और ज़्यादा सामान भी लादा जा सकता है।

दस वर्ष हुए जब बेरिलियम ६००) रु० सेरके भावसे बिकता था। अब थोड़े ही समयसे यह ३००) सेरके भाव से बिकने लगा है, मँहगा होनेके कारण इसे कोई कारखाने वाले पूछते न थे। यों तो रासायनिकोंको बेरेलियमका पता १०० वर्षोंके ऊपरसे है पर थोड़े-ही दिनोंसे यह अधिक मात्रामें बनने लगा है। बेरिलियमकी खान अभी तक कहीं नहीं पाई गई है जहाँसे इसके बनानेका कच्चा माल अधिक मात्रामें निकाला जा सके। परन्तु स्फटिककी खानोंमें कुछ ऐसे भी पत्थर निकलते हैं जिसमें बेरिलियम पाया जाता है। कुछ ही वर्ष हुए कोलेरैडोमें एक ऐसा पत्थर मिला था जिसका व्यास ४ फ़ीट था और वह १२ फ़ीट लम्बा था। उसकी तौल ८ टन थी। ऐसा पत्थर पारदर्शक होता है और इसका रंग नीला या हरा होता है। यह काफ़ी साफ़ रहता है तो लोग इसे आभूषणोंमें मणिकी तरह जड़ने के काममें लाते हैं।

क्रोमियम एक दूसरी बहुमूल्य धातु है जिसका इस्तेमाल अभी हालमें ही होने लगा है। सन् १९३७ में १०,००,००० टन कच्चा माल जिसमें ४५ प्रतिशत क्रोमियम थी खानसे मिला था। इसका आधा धातु बनानेके लिए और आधेसे कुछ कम अग्निजित् पत्थर बनानेके काममें आया। इससे ऐसी ईंटें बनाई गईं जो इस्पात गलानेकी भट्टीके काममें आती है। केवल १० प्रतिशत क़लई करने और रंग बनाने आदिके काममें खर्च हुई।

क्रोमियम स्टेनलेस स्टीलका एक महत्वपूर्ण अवयव है। स्टेनलेस स्टीलकी ताकत, उसका हलकापन और मोरचा न लगनेका गुण आदि सभी क्रोमियमके कारण ही उत्पन्न होते हैं।

स्टेनलेस स्टील नई रेलगाड़ी, खाना खानेके चाकू मकान बनानेकी चादर आदिके लिए इस्तेमाल होता है। सन् १९३१में ५,५०,००० टन क्रोमियम-प्रद कच्चा माल खानसे निकलने पर कुल पाँच ही हज़ार टन धातु बनाया गया।

हम लोग चमकती हुई एकन्नी, दुअन्नी और चवन्नी देख कर खुश होते हैं और हमने शायद यह भी सुन रक्खा है कि इसमें निकेल पड़ता है। बाइसिकिलके कई पुर्ज़ेमें निकेलकी कलई रहती है। बातोंको छोड़ कर साधारण व्यक्ति शायद ही और कुछ निकेलके बारेमें जानता हो, पर निकेल तरह-तरहके कामोंमें आता है। सन् १९१४-१८ महायुद्धके समय निकेल कई तरहके मनुष्यनाशक यंत्रोंमें लगा और जहाजोंके लिए चादर बनानेके कामोंमें आता था। इस तरह निकेल रक्षा और नाश दोनों काममें उपयोगी सिद्ध हुआ था।

जब आप किसी मोटर गाड़ीको ५० मीलकी तेज़ीसे दौड़ाते हैं और एक दूसरी गाड़ी तेज़ीसे आपके पीछे आती है तो कभी-कभी आप अवश्य ही सोच बैठते होंगे कि यदि कहीं ब्रेकने काम न दिया तो क्या परिणाम होगा। सच बात तो यह है कि यदि ब्रेकके इस्पातमें निकेल और क्रोमियम न पड़ा रहे तो इतनी तेज़ीसे चलाने वाली

मोटर रोकी नहीं जा सकती। ब्रेक लगानेसे जो गर्मी पैदा होती है उससे साधारण इस्पात बहुत नरम हो जाता है और जल्दी ही घिस कर खराब हो जाता है।

अमेरिकाके प्रसिद्ध फ्रेंसिस्को वाले पुलमें कई हज़ार टन निकेल पड़े इस्पातसे बनी रिपिट करनेकी कीलें प्रयोग की गई हैं। ऐसा इसलिए किया गया था कि इस्पातको किसी प्रकार कभी मोरचा न खाय और पुल अधिक वज़न या भूकम्पसे झटका लगनेके कारण कभी टूट न जाय। धीरे-धीरे निकेल पड़ा कामती लोहेका प्रयोग बढ़ता जा रहा है और फ़्लाई-व्हील, बड़े-बड़े चाकों, बड़ी-बड़ी मशीनोंमें प्रयोग होने वाले ड्रमों आदिके बनानेके लिये निकेल पड़ा कामती लोहा बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

मैगनीशियमको लोगोंने आश्चर्यजनक धातु माना है। थोड़े दिन हुए यह केवल रसायनज्ञोंके कामके लिए तथा आतशबाज़ीमें इस्तेमाल होता था। मैगनीशियम धातुके तार तथा पत्तियोंमें आग लगानेसे बहुत ही सफेद रोशनी निकलती है और इसका चूर छोड़ कर अच्छी फुलझड़ी बनाई जाती है।

यह धातु अन्य कामोंमें लाई जाती है। अब ऐसी-ऐसी संकर धातुएँ बन रही हैं जिनमें दो प्रतिशत मैगनीशियम और ९८ प्रतिशत अल्युमिनियमसे लेकर ९८ प्रतिशत मैगनीशियम और दो प्रतिशत अल्युमिनियम पड़ता है। इन संकर धातुओंमें मैंगनीज़ भी कभी-कभी डाली जाती है। इस प्रकारकी बनी धातु आसानीसे ढाली जा सकती है और बहुत ही चिमड़ी और मज़बूत होती है। साथ ही यह अल्युमिनियमकी अपेक्षा केवल दो-तिहाई ही भारी होती है। कामती (ढलुआँ) लोहेकी अपेक्षा यह केवल चौथाई ही भारी होती है। इसलिए अल्युमिनियम और कामती लोहेके बदले यह संकर धातु अक्सर ढलाईके काम में इस्तेमाल की जाती है विशेषकर वहाँ जहाँ हलकेपनकी अधिक आवश्यकता होती है,जैसे—मोटरकार, हवाई जहाज़, उठाऊ बिजलीकी मशीन, आदि इस नवीन संकर धातुकी आदिसे अन्त तक बनी लॉरी दूसरी लॉरियोंकी अपेक्षा वैसी ही टिकाऊ परन्तु कम-से-कम चार टन हलकी ठहरती है।

मॉलिबडेनियम एक बहुत ही चिमड़ी धातु है। यदि इसको इस्पात या कामती लोहेमें थोड़ी मात्रामें डाल दी जाय तो यह लोहा इतना कड़ा हो जाता है कि आसानीसे घिसा नहीं जा सकता। कोयले आदि ढोनेके लिए जो फावड़े इस्तेमाल किए जाते हैं वे जैसा कि सब लोग जानते हैं बहुत जल्द घिस जाते हैं। इसलिए मॉलिबडेनियमका इस्पात फावड़ा बनानेके काममें आता है। यह छोटेसे छोटा फावड़ेसे लेकर स्टीमसे चालू किये गये मशीनके फावड़ेके लिए काममें लाया आता है। तोप, बन्दूक आदिमें भी और लोहे काटनेके यन्त्रोंमें भी ऐसी धातुओंकी आवश्यकता होती है जो ख़ूब मज़बूत हों और गरम होने पर भी कमज़ोर न पड़ें। इसलिए वहाँ भी मॉलिबडेनियमके इस्पातका इस्तेमाल होता है। क्रोमियम, निकेल, टंग्स्टन और मैंगनीज़के साथ भी मॉलिबडेनियम इस्पातमें डाला जा सकता है और इस प्रकार तरह-तरहके इस्पात बनते हैं जिनमें विशेष गुण होते हैं। थोड़ा-सा मॉलिबडेनियम पड़नेसे इस्पातमें जल्दी मोरचा नहीं लगता।

यह धातु सन् १९१६ में कुल मिला कर दुनिया भरमें केवल ३७६ टन बना था, पर सन् १९३८ में १४ हज़ार टनसे भी अधिक मॉलिबडेनियम बना। अमेरिकामें मॉलिबडेनियम अधिक मात्रामें पाया जाता है। सन् १९३७ में जितना भी मॉलिबडेनियम दुनिया भरमें निकला था उसका ९२ प्रतिशत अमेरिकामें निकला था और इसका ७७ प्रतिशत माल तो केवल उन खानोंसे निकला जो कोलोराडोमें हैं। इन खानोंसे इन दिनों प्रति दिन १२ हज़ार टन कच्चा माल निकल रहा है। इन खानोंमें कमसे कम १०,००,००,००० टन कच्चा माल अवश्य ही है और शायद इससे कहीं अधिक माल होगा जिसका अभी तक पता नहीं है।

टंग्स्टनके क्षारोंका इस्तेमाल पहले रंग और चमकके सिझानेके काममें थोड़ा-बहुत किया जाता था और कुछ वर्षोंसे बिजली-बत्तियाँ, रेडियो ट्यूब और तार आदि बनानेके काममें आने लगा है। टंग्स्टन अब तक इन्हीं कामोंके लिए प्रयुक्त होता था पर अब इसका अधिकांश भाग इस्पात बनानेके काममें आता है। इसके मिला देनेसे जो इस्पात बनता है वह बहुत चिमड़ा होता है और इसलिए इससे लड़ाईके जहाज़ मिट जाते हैं। जो टंग्स्टन

के पत्र कवचकी तरह काम देते हैं। १० से १४ प्रतिशत टंग्स्टन पड़ा इस्पात आँचसे लाल करने पर भी साधारण इस्पातको काट सकता है। टंग्स्टन और कारबनके योगसे बनी धातु हीरासे भी कुछ कड़ी होती है और यह सभी जानते हैं कि हीरा दुनिया भरके सब पत्थरोंसे कड़ा होता है।

टंग्स्टन, क्रोमियम और कोबाल्टसे बनी संकर धातु स्टेलाइट नामसे बिकती है। पहले जहाँ पत्थरमें छेद करने के लिए हीरा काममें लाया जाता था वहाँ अब स्टेलाइट काममें लाया जाता है। मिट्टीके तेलके कुएँ खोदने और पुलकी नींव देनेमें अक्सर पत्थर छेदना पड़ता है और हीरेके प्रयोगमें बहुत पैसा लगा करता था।

वनेडियम भी टंग्स्टन और मॉलिबडेनियमकी तरह केवल थोड़ी मात्रामें रासायनिक कामों में खर्च होता था लेकिन अब पता चला है कि बहुत ज़रा-सा वनेडियम डाल कर इस्पात बनानेसे यह बहुत अधिक लचीला और मज़बूत होता है। इसलिए अब मोटरकार और रेलगाड़ीकी कम्पनियोंमें वनेडियम डाला हुआ इस्पात इस्तेमाल किया जाता है। २० वर्ष हुए मोटरकारकी कमानियाँ झटका खानेसे टूट जाती थीं, पर इन दिनों टूटी मोटरकारें देखनेमें आती हैं, टूटी कमानी देखनेमें नहीं आती।

वनेडियमसे तेज़ काटनेवाले औज़ार तथा दाँतीदार पहिए, धुरी और अन्य ऐसे सामान बनते हैं जहाँ मज़बूत इस्पातकी आवश्यकता होती है। वनेडियम ज़्यादातर पेरु देशमें पाया जाता है। अब कोलोरैडो और ऊटामें भी कुछ खानोंका पता लगा है जहाँ वनेडियम निकल सकता है।

कोलोरैडोकी खानसे जो माल निकलता था वह सन् १६१२ से १६२१ तक केवल रेडियम निकालनेके काममें आता था, पर अब पता लगा है कि इसमें थोड़ा-सा वनेडियम भी है। वनेडियम निकालनेमें ही शायद अधिक पैसा होगा, रेडियम आदि दूसरी धातुएँ घेलुयेमें रहेंगी।

वायुकी गति तथा दिशा नापनेके यन्त्र

[लेखक—श्रीयुत बाबूरामजी पालीवाल]

आमतौर पर हवा पृथ्वीके समानान्तर बहती है। यद्यपि स्थानीय सर्दी-गर्मीके प्रभावसे, तथा पृथ्वीके ऊँचे-नीचे होनेके कारण और वायुके पृथ्वीके समानान्तर बहनेके कारण, वायुमें काफ़ी मात्रामें ऊर्ध्व-गति भी होती है; परंतु वायुमंडल-विज्ञानमें जिस वस्तुकी हवा (विण्ड) नामसे मापकी जाती है वह यही वायुका पृथ्वीके समानान्तर बहना है। वायुकी मापमें दो बातोंकी आवश्यकता होती है—यानी दिशा और गति। कभी-कभी बल या दबाव भी इसमें सम्मिलित कर लिया जाता है। परन्तु बलका सम्बन्ध सीधा गतिसे होता है जो इस समीकरण द्वारा व्यक्ति किया जा सकता हैः—

$$द = क. ग^2$$

यहाँ पर द = वायु-भार, ग = वायुकी गति और क स्थिर संख्या है जो वायुकी गति तथा घनत्वके साथ-साथ थोड़ी-सी घटती-बढ़ती रहती है।

दिशा

हवाका नाम उसके आने वाली दिशाके नाम पर रक्खा जाता है—अर्थात् यदि हवा पूर्वसे पश्चिमको बहती है तो हम उसे पूर्वी हवा और अगर पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती है तो हम उसे पश्चिमी हवा कहते हैं। जिस दिशासे हवा आती है उसे अभिमुख (विण्ड-वर्ड) और जिस दिशा-को वायु जाती है उसे विमुख (ली-वर्ड) कहते हैं। हवाके आनेकी दिशाको प्रगट करने के दो तरीके हैं—(१) अंशोंमें (२) कुतुबनुमाके अंकोंमे। दिशायें चुम्बकीय आधारों पर नहीं, प्रत्युत भौगोलिक आधारों पर निश्चित की जाती हैं।

जब दिशा अंशोंमें प्रगटकी जाती है तब ०° भौगोलिक उत्तर होता है और माप एक वृत्तके चारों ओर होती है जो ३६० भागोंमें विभाजित की जाती है—अर्थात् ०° या ३६०° = उत्तर; ६०° = पूर्व; १८०° = दक्षिण और

२७०° = पश्चिम, क्योंकि वायुके आनेकी दिशा कभी स्थिर नहीं रहती; प्रति पल थोड़ी-बहुत इधर-उधर होती रहती है। इसलिए उसे ठीक-ठीक अंशोंमें नापना कुछ कठिन ही होता है। इसी कारण उसकी माप यदि कुतुबनुमाके सोलह अंकोंमें कर ली जाय तो बहुत काफी होती है। इस प्रकार कुतुबनुमाका एक अंक $\frac{३६०}{१६}$ = २२½ अंशका होता है।

जब वायुके आनेकी दिशा धीरे-धीरे अनुकूलघटिक (क्लॉक-वाइज़) दिशामें परिवर्तित होती है तो उसे 'वीयर' या 'हॉल' कहते हैं; परन्तु यदि वह विपरीत दिशामें परिवर्तित होती है तो उसे 'बैक' कहते हैं।

जिस यन्त्रसे वायुकी दिशा नापते हैं उसे दिग्मापक या विण्ड-वेन कहते हैं। दिग्मापक (विण्ड-वेन) (चित्र १) यह एक समतुलित लीवर होता है जो एक खड़ी हुई धुरी पर उसके चारों ओर बिना किसी रुकावटके
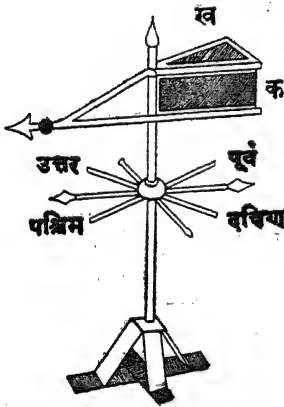
चित्र नं० १—दिग्मापक

घूमता है। लीवरका एक हिस्सा चौड़ा होता है और दूसरा पतला तीरकी तरहका। तीरकी तरह वाला हिस्सा जिस ओरसे हवा आती है उस ओर रहता है, और चौड़ा वाला जिस ओर हवा जाती है, उस ओर रहता है। यह इस प्रकार बना होता है कि सदैव तीर उसी ओर रहता है जिस ओरसे हवा आती है। साधारण दिग्मापकमें चौड़ी सतह जस्ते या ताँबेकी दो चद्दरों 'क' और 'ख' को एक ऊर्ध्व गड़ारी (वर्टिकल स्पिंडल) पर इस तरह ज़ोड़ कर बनाते हैं कि दोनों चद्दरोंके बीच ३०° का कोण बने। इस प्रकार यह घूमने वाली वस्तु एक खड़ी हुई इस्पातकी धुरी पर या छर्रों पर घूमती है और इसके ठीक नीचे लोहेके डंडे लगे होते हैं जो उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम दिशाओंकी ओर संकेत करते हैं और उन पर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम लिखा भी होता है। यह यन्त्र इतना सुकुमार होता है कि थोड़ी सी भी वायुकी गति इसे इधर-उधर घुमानेके लिये काफी होती है और तीर सर्वदा उसी तरफ रहता है जिस तरफसे हवा आती है। अर्थात् तीर अभिमुख दिशा (विण्ड-वर्ड) में और चौड़ी सतह विमुख दिशा (ली-वर्ड) में रहती है। किन्हीं-किन्हीं दिग्मापकोंमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम दिशाओंके अलावा उनके बीचमें ईशाण वायव्य आदि दिशाओंकी तरफ संकेत करते हुए डंडे लगे होते हैं।

गति

इससे पहिले कि हवाकी गति जाननेके यन्त्रोंका आविष्कार हुआ, हवाकी ताकत उसके असर द्वारा जाँची जाती थी। सन् १८०५ ई० में बृटिश नेवीके एडमीरल ब्यूफोर्टने भिन्न-भिन्न ताकतकी हवाओंको १२ भागोंमें विभाजित किया और उनकी ताक़तके अनुसार उनके १२ नाम रक्खे जो ब्यूफोर्ट पैमानेके नामसे प्रसिद्ध हुये। यद्यपि इसके बाद और भी बहुतसे पैमाने इस कामके लिए प्रस्तावित किये गये; परन्तु थोड़े-बहुत संशोधनके बाद ब्यूफोर्टका पैमाना ही हवाकी ताक़त नापनेके लिए सबसे उपयोगी सिद्ध हुआ।

नीचे ब्यूफोर्टके पैमानेका एक नक़शा दिया जाता है जिसमें हवाकी प्रकृति, हवाकी गति (मीटर प्रति सेकण्ड, मील प्रति घंटे और फुट प्रति सेकण्डमें), हवा द्वारा डाला गया दबाव और उसका जो असर हो वह दिया गया है। ब्यूफोर्ट पैमानेके नम्बरको मीटर प्रति सेकण्डमें परिवर्तन करनेका एक सीधा-सा नियम है जो ब्यूफोर्ट पैमानेके नम्बर ८ तक सही उतरता है अर्थात्:—

२ × ब्यूफोर्ट नम्बर—१ = वायु गति (मीटर प्रति सेकण्डमें)।

ब्यूफोर्ट नम्बर	ब्यूफोर्ट पैमानेका विवरण जो भूमि-स्थित प्रयोग-शालाओंके निरीक्षणों के आधार पर निश्चित किया गया है।		औसत दबाव※		३३ फिट ऊँचाई पर गति (मील प्रति घण्टे)	गतिकी सीमा १० मीटर (३३ फीट) ऊँचे		
			मिली-वार में†	पौंन प्रति वर्गफुट में		मील प्रति घण्टा	मीटर प्रति सेकेण्ड	फीट प्रति सेकेण्ड
०	गतिहीन	धुआँ सीधा ऊपर उठे।	०	०	०	१ से कम	०·३ से कम	२ से कम
१	मन्दवायु	केवल धुआँ ही दिशा को प्रकट करे परन्तु दिग्मापक न घूमे।	·००५	·०१	२	१ से ३	०·३ से १·५	२ से ५
२	मन्द समीर	चेहरे पर वायुका स्पर्श मालूम पड़े; पत्तियाँ हिलें; साधारण दिग्मापक हवासे घूमे	·०४	·०८	५	४ से ७	१·६ से ३·३	६ से ११
३	मध्यम समीर	पत्तियाँ तथा छोटी मोटी झाड़ियाँ बराबर हिलती रहें; हलके झंडे उड़े।	१·३	०·२८	१०	८ से १२	३·४ से ५·४	१२ से १८
४	साधारण समीर	धूल तथा रद्दी काग़जोंके टुकड़े इधर-उधर उड़ें, छोटी छोटी टहनियाँ भी हिलें।	·३२	·६७	१५	१३ से १८	५·५ से ७·७	१९ से २७
५	तीव्र समीर	दरख्तोंकी छोटी छोटी पत्तियाँ गिरने लगें, तालाबोंमें लहरें उठने लगें	·६२	१·३१	२१	१९ से २४	८·० से १०·७	२८ से ३६
६	उग्र समीर	दरख्तकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हिलें, बिजलीके तारोंमें सन-सनाहट सुनाई पड़े। छाते मुश्किलसे व्यवहारमें लाये जा सकें।	१·१	२·३	२७	२५ से ३१	१०·८ से १३·८	३७ से ४६
७	साधारण आँधी	दरख्त हिलें, हवाकी तरफ चलने में असुविधा हो।	१·७	३·६	३५	३२ से ३८	१३·६ से १७·१	४७ से ५६
८	तीव्र आँधी	वृक्षोंकी टहनियाँ टूटें, काम बन्द हो जाय।	२·६	५·४	४२	३९ से ४६	१७·२ से २०·७	५७ से ६८
९	उग्र आँधी	इमारतोंको मामूली नुकसान हो, छप्पर आदि उड़ जायँ।	३·७	७·७	५०	४७ से ५४	२०·८ से २४·४	६९ से ८०
१०	बवंडर	कभी ही ऐसी हवा चलती है, दरख्त जड़से उखड़ जाँय। इमारतोंको काफी हानि हो।	५·०	१०·५	५९	५५ से ६३	२४·५ से २८·४	८१ से ९३
११	तूफान	बहुत ही कम ऐसी हवा चलती हैं। इमारतों आदिको बहुत ही अधिक हानि हो।	६·७	१४·०	६८	६४ से ७५	२८·५ से ३३·५	९४ से ११०
१२	प्रलयंकारी तूफान		८·१ से अधिक	१७·० से अधिक	७५ से अधिक	७५ से अधिक	३३·५ से अधिक	११० से अधिक

※एक मिलीवार = $१०^३$ डाइन प्रतिवर्ग सेण्टीमिटर = लगभग १० किलोग्राम प्रतिवर्ग मीटर

†यह प्रसिद्ध नीर-गत्यर्थक नियम $द = \frac{१}{२} द' ग^२$ के अनुसार बहुत शीघ्र ही निकाला जा सकता है, अर्थात् यदि ग = २ मील प्रति घण्टे हो तो $द_२ = \frac{१}{२} \cdot \frac{\cdot००१२१३}{१०३} \left(\frac{२ \times १७६० \times ३६ \times २\cdot५४}{६० \times ६०}\right)^२ = \cdot००५$ मिलीवार होगा।

गति मापक या एनीमोमीटर—उस यन्त्रको जो वायु-की गति नापनेके काममें लाया जाता है गतिमापक (एनीमोमीटर) कहते हैं। गतिमापक (एनीमोमीटर) कई प्रकारके होते हैं (१) दबाव-पट गतिमापक या प्रेशर-प्लेट एनीमोमीटर (२) भ्रामक गतिमापक या रोटेशन एनीमोमीटर ही मुख्य हैं—

(१) दबाव-पट गतिमापक या प्रेशर-प्लेट एनीमोमीटर यह एक अल्यूमीनियमके कब्ज़ेदार प्लेटका बना होता है जिसके दिग्मापकसे जोड़ देते हैं जिससे दिग्मापकके साथ-साथ यह प्लेट भी घूमता है। इस प्रकार इस प्लेट पर हवाका दबाव हमेशा सामनेसे पड़ता रहता है। कब्ज़े लगे होनेके कारण यह प्लेट जितना हवाका दबाव होता है उतना ही कम ज्यादा एक गोल चापके ऊपर जिस पर पैमाना लगा होता है भीतर बाहरको होता रहता है। इसी पैमाने पर पढ़ कर वायुकी गति मालूम कर ली जाती है। यह यन्त्र अधिक सही नहीं होता, इसी कारण इसका व्यवहार भी अधिक नहीं किया जाता। इस प्रकारका यन्त्र छोटे-छोटे हवाई जहाज़ोंमें साधारणतया लगा रहता है।
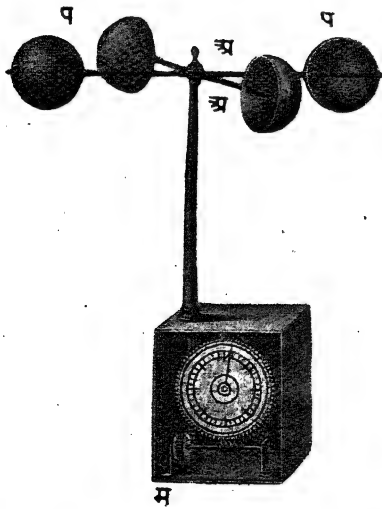
चित्र नं० २—रौबिन्सन-कप गतिमापक

(२) भ्रामक गतिमापक या रोटेशन एनीमोमीटर—(चित्र नं०२) इस प्रकारके गतिमापककी रॉबिनसन-कप-एनीमोमीटर सबसे अच्छी मिसाल है। इसमें चार अर्ध-गोलाकार पतली अल्यूमीनियम या ताँबेके बने हुए प्याले होते हैं (प) जो इस्पातका दो दैर्घ्य छड़ों (अ) के सिरों पर लगे होते हैं। ये दोनों छड़ें एक खड़ी हुई गड़ारीसे जुड़ी होतीं हैं और जोड़ पर एक दूसरेको समकोण पर काटती हैं। खड़ी हुई गड़ारी एक खोलमें होकर नीचे जाती है। जब हवा चलती है तब प्यालोंके खोखले वाली तरफका वायु-भार प्यालीके उभरी हुई तरफकी अपेक्षा अधिक होता है इसलिए प्याले उभरी हुई तरफको घूमते हैं जिससे खड़ी हुई गड़ारी भी घूमती है। इस गड़ारीके नीचे एक पेचदार पहिया लगा होता है जो इस गतिको एक पुर्ज़े पर ले जाता है जो मील प्रति घंटेकी वायु-गतिके हिसाबसे अंकित किया होता है। इस अंकका सिद्धान्त यह होता है कि प्यालेके केन्द्रकी दैर्घ्य-गतिको अपेक्षा वायुकी गति जो प्यालोंको घुमाती है, तिगुनी होती है। यह तिगुनेका हिसाब हर एक नापके प्यालों और वायुकी गतिके लिए ठीक नहीं होता इसलिये प्रत्येक यत्रके साथ एक शोधन-सारिणी भी दी होती है। नये प्रकारके भ्रामक-गतिमापकों या रोटेशन एनेमोमीटरोंमें अब कुछ परिवर्तन हो गया है, यानी डायलकी जगह अब सीधे हरुफोंका प्रबन्ध कर दिया गया है जिससे यन्त्र पढ़नेमें काफ़ी सुविधा हो गई है। नये प्रकारके भ्रामक गतिमापकका भी एक चित्र यहाँ दिया जाता है जिसे साइक्लोमीटर पैटर्न गतिमापक कहते हैं। (चित्र नं० ३) इसमें और सब बातें तो रॉबिनसन-कप-गतिमापक ही की तरह हैं, इसमें केवल डायल न होकर मीटर हरुफोंमें बना है।

भ्रामक गतिमापकका मुख्य दोष यह होता है कि जब वायु चलते-चलते एक साथ कम हो जाती है तब भी इसके प्याले कुछ देर अपने आप ही घूमते रहते हैं अथवा जब वायु एक साथ तेज़ हो जाती है तब प्यालोंको तेज़ होनेमें कुछ समय लगता है। इसलिए आकस्मिक झोंकेका ठीक-ठीक व्यक्तीकरण नहीं हो पाता। फिर भी यह यन्त्र काफ़ी सरल होता है और इसी कारण वायु-मंडल निरीक्षणालयोंमें काफ़ी मात्रामें इसका प्रयोग होता है।

स्वलेखक यन्त्र

वायुकी दिशा एवं जाति नापनेका एक स्वलेखक यन्त्र भी होता है जिसे दिग्गति लेखक या प्रेशर-ट्यूब एनोमोग्राफ कहते हैं। (चित्र नं० ४)

प्रेशर-ट्यूब एनोमो-ग्राफ—(चित्र नं० ४) यह यन्त्र प्रति पल वायुकी गति तथा दिशा एक चार्ट पर जो कि एक पीतलके ढोलके ऊपर लगा होता है और जो घड़ी द्वारा चलाया जाता है, लिखता जाता है। वास्तवमें ये दो
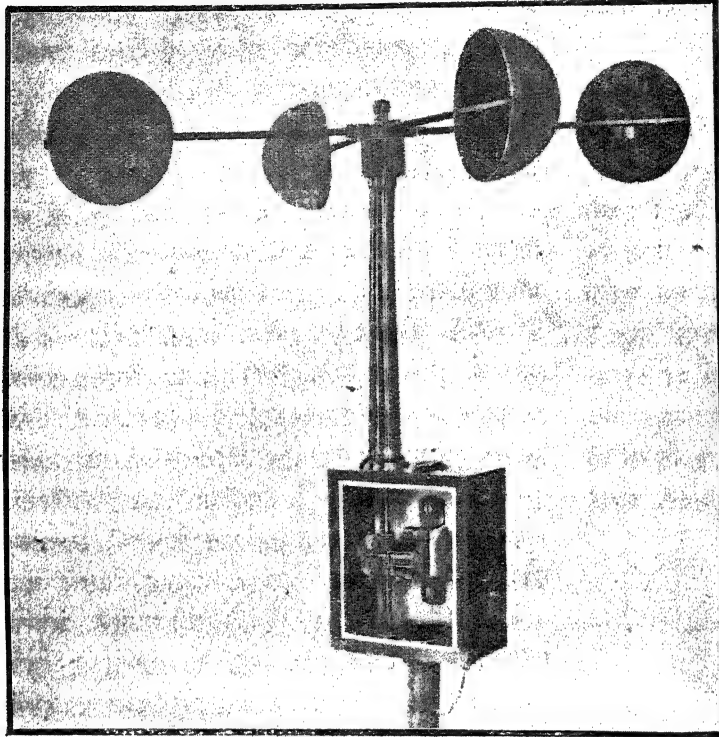
चित्र नं० ३—स्राइक्को मीटर पैटर्न गतिमापक

यन्त्र हैं जिनको एक ही में जोड़ दिया गया है, अर्थात् (क) गति बताने वाला यन्त्र (ख) दिशा बताने वाला यंत्र

(क) गति लेखक—इसके तीन भाग किये जा सकते हैं।

(१) सिरा तथा वान—चित्र नं० ४ में अ।

(२) दोनों भागोंको जोड़ने वाले नल।

(३) नीचेका लिखने वाला भाग चित्र नं० ४ में ब।

(१) सिरा तथा वान (चित्र नं० ४ में अ):—वान एक दैर्घ्य नली$_1$ का बना होता है जो एक खड़ी हुई धुरी पर बे-रोक-टोक घूमता है। इस ट्यूबके एक सिरेमें छोटे-छोटे छेद होते हैं और दूसरे में वान लगा होता है। दिग्मापककी तरहसे यह वान भी जिस तरफसे हवा आती है उस तरफको और छेद जिस तरफसे हवा आती है उस तरफ को रहते हैं। थोड़े ही नीचे यह ट्यूब समकोण पर मोड़ दिया जाता है और इस मुड़े हुए ट्यूबको एक बड़े घेरेके दूसरे ट्यूब से ढक देते हैं। इस बड़े ट्यूबमें छेदकी चार पंक्तियाँ होती हैं जो निश्चित व्यासकी होती हैं और जिनकी दूरी भी निश्चित होती हैं। भीतर वाले ट्यूब और दोनों ट्यूबोंके बीचकी घेरेदार जगहके नीचे लिखने वाले हिस्सेसे जोड़नेके लिए दो कोहनियाँ (elbows) तथा जोड़ (unions) लगे होते हैं।

(२) दोनों भागोंको जोड़ने वाले नल—इन्हीं कोहनियाँ और जोड़के बाद नल जिन्हें सक्शनट्यूब तथा प्रेशर-ट्यूब कहते हैं, नीचे लिखने वाले यन्त्र तक जाते हैं।

(३) नीचे लिखने वाला हिस्सा—(चित्र नं० ४ में ब) इस हिस्सेमें एक बेलनदार पानीसे भरी हुई टंकी होती है जिसमें एक तैरने वाली चीज़$_2$ होती है जिसकी शक्ल उलटी हुई बाल्टीके समान होती है और जो कि ताँबेकी चद्दरकी बनी हुई होती है। यह तैरने वाली चीज़ एक छड़के ऊपर-नीचे बेरोक घूमती है। एक ऊर्ध्व-छड़$_3$ इस तैरने वाली चीज़के ऊपर उसकी धुरीके पास जुड़ी होती है और वह टंकीके ढक्कनके ऊपर कॉलर$_4$ में होकर गुज़रती हुई ऊपर आती है। इस छड़के सिरे पर एक बाँह-सी लगी होती है जिसमें लिखने वाला कलम लगा होता है। यह कलम एक घड़ीसे चलने वाले ड्रम५ के ऊपर लपेटे हुए चार्टके ऊपर स्वतः लिखता जाता है और घड़ीके चलनेसे ड्रम २४ घण्टेमें पूरा घूम जाता है।

ऊपर वाली दैर्घ्य नलीको १″ गैस-ट्यूब (प्रेशर-ट्यूब) द्वारा टंकीके नीचे डाट६ से जोड़ देते हैं जो वहाँ होकर तैरने वाली चीज़के अन्दर जहाँ हवा भरी रहती है वहाँ तक जाता है। इसी तरहसे दोनों ट्यूबोंके बीचकी

घेरेदार जगहको डाट७ में होकर एक दूसरे १" गैस-ट्यूब (सकशन-ट्यूब) द्वारा टंकीके भीतर तैरने वाली चीज़ के ऊपरकी जगहसे जोड़ देते हैं।
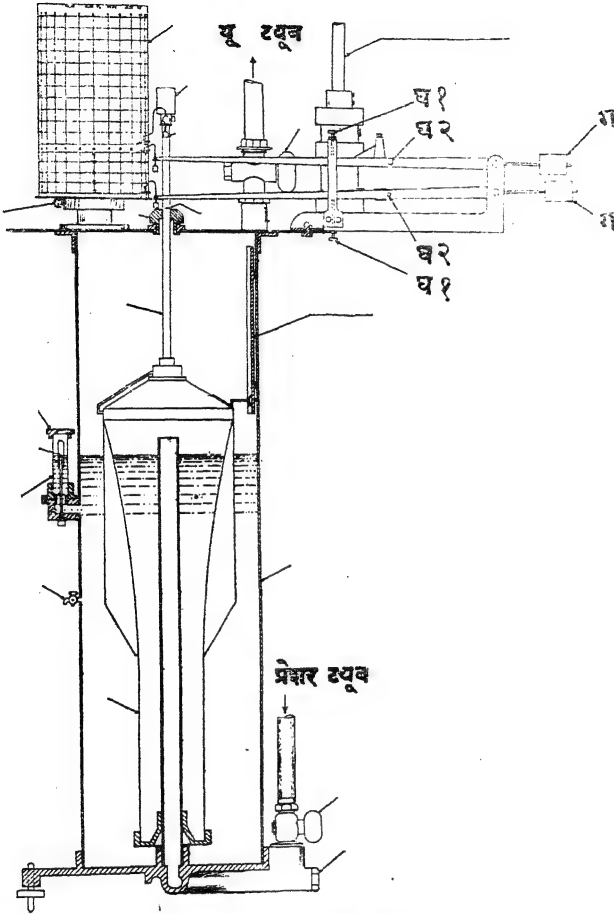
चित्र नं० ४—दिग्गति लेखक

जब वायु अचल होती है तब प्रेशर-ट्यूब और सकशन-ट्यूब दोनोंमें वायुभार केवल इन ट्यूबोंके ऊपर वायु-स्तंभके भारके कारण ही होता है और वह दोनों ट्यूबोंमें समान होता है। तैरने वाली चीज़का समतुलन इन दोनों ट्यूबोंके वायु-भारके ऊपर होता है (अर्थात् नीचेसे प्रेशर-ट्यूबके वायु-भार पर और ऊपरसे सकशन ट्यूबके वायु-भार-पर) इस स्थितिमें तैरने वाली चीज़ शून्य (०) पर रहेगी।

जब हवा चलती है तब प्रेशर-ट्यूबका मुँह सर्वदा जिधरसे हवा आती है उधर रहता है। इसलिए इसके अन्दरका वायु-भार बढ़ जाता है जो वायुकी गतिके वर्गका समानुपाती होता है। साथ-ही-साथ यह भी मालूम किया गया है कि सकशन-ट्यूबसे वायु-भार कम होता है और वह भी वायुकी गतिके वर्गका समानुपाती होता है। इस तरह इसका जो आखिरी नतीजा होता है वह यह है कि तैरने वाली वस्तु ऊपर उठ जाती है और कितनी ऊपर उठती है यह बात वायुकी गति पर निर्भर होती है। डबल्यू० एच० डाइनूसने अपने प्रयोगों द्वारा निम्न-लिखित अनुपात प्राप्त किया था :—

$$अ = ०\cdot००० ७३१ ग^{२}$$

यहाँ पर अ = प्रेशर-ट्यूब और सकशन ट्यूबके भीतर के वायु-भारका अन्तर (जल-इञ्चोंमें) और ग वायुकी गति है।

तैरने वाली चीज़की भीतरी सतह ऐसी बनाई गई है कि इसका अपने ० से हिलनेका वायुकी गतिसे जो इसे हिलाती है जो अनुपात होता है वह मील प्रति घण्टेके बराबर होता है और क्योंकि गति लिखने वाला कलम इस तैरने वाली चीज़के ऊपर जुड़ी हुई छड़में लगा होता है इसलिए इस तैरने वाली चीज़की प्रत्येक हरकत चार्टके ऊपर सही-सही लिखता जाता है।

(ख) दिग्लेखक:—ऊपर जिक्र किया हुआ वान बहुत-सी ऊर्ध्व छड़ों द्वारा एक 'कम' से खूब कस कर जोड़ दिया जाता है। इस 'कम' में एक बेलन होता है जिसमें सर्पिलाकार एक अटक खुदी होती है। इस अटकके ऊपर लिखने वाले कलमको ले जाने वाले लीवरका एक सिरा रक्खा रहता है। इस प्रकार खड़ी हुई धुरीके इर्द-गिर्द वानके घूमनेकी गति सीधी सर्पिल पर आ जाती है और फिर कलम द्वारा ऊर्ध्व दिशायें एक नक़शे पर लिख दी जाती हैं।

आम तौर पर दिशा लिखनेके लिए दो क़लम लगाए जाते हैं और वे इस प्रकार लगाए जाते हैं—एक चार्टके ऊपर या नीचे सदैव चार्टमें उत्तर वाली रेखा पर रहता है

और दूसरा वानके साथ-साथ घूमता और जिस दिशासे वायु आती है उस दिशाको लिखता जाता है। और सुविधाके अनुसार कभी ऊपर वाला और कभी नीचे वाला कलम वायुके आनेकी दिशा लिखता जाता है।

३० या ४० फीटकी ऊँचाई पर लगा देते हैं और नलों द्वारा जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इसे लिखने वाले हिस्सेसे जो इमारतके अन्दर होता है जोड़ देते हैं।
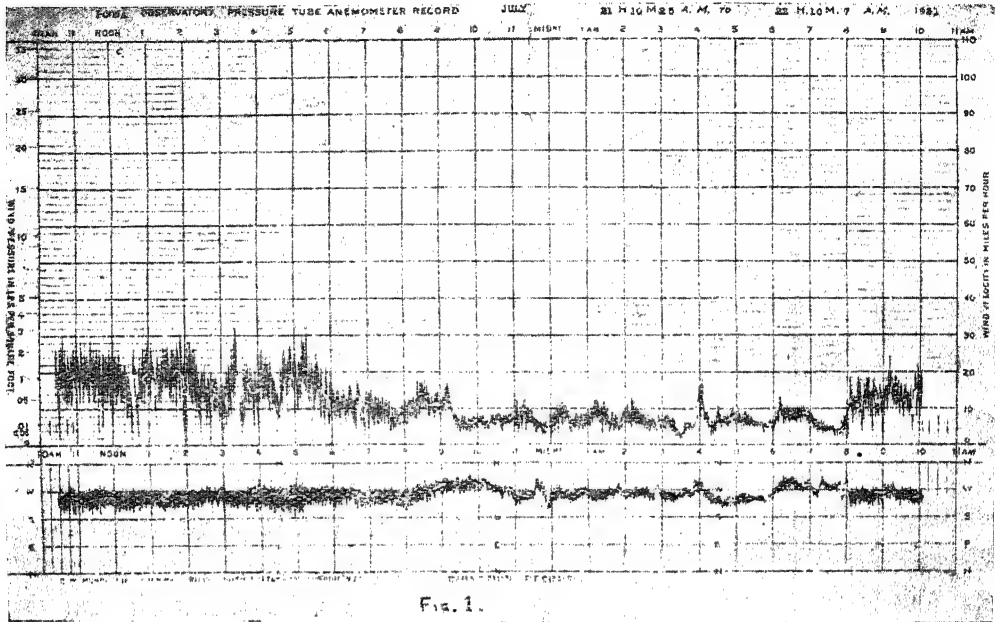
चित्र नं० ५—दिग्गति लेखक यंत्रद्वारा लिखित चार्ट

यहाँ पर इस प्रकारके यन्त्र द्वारा लिखित चार्टका एक चित्र दिया जाता है (चित्र नं० ५) ऊपर वाली वक्र रेखायें वायुकी गति मील प्रति घण्टेसे और नीचे वाली वायुके आनेकी दिशा बतलाती है।

इस यन्त्रके सिरेको किसी इमारतके ऊपर ज़मीनसे

यह यन्त्र वायुकी गति तथा दिशा बताने वाले सब प्रकारके यन्त्रोंसे अधिक सही और उपयोगी होता है। और यह स्वलेखक यन्त्र होनेके कारण प्रति पलकी वायुकी गति और दिशा लिखता जाता है जो भविष्यके अन्वेषणके कार्यके लिए बड़ी लाभदायक होती हैं।

भोजन और अनभिज्ञता

(लेखक—सुदर्शनदेव एम० ए०, बी० एस-सी० (एग्रीकल्चर) गवर्नमेंट नॉर्मल स्कूल, फैज़ाबाद)

भोजन और उसके पौष्टिक पदार्थोंके ऊपर अनेकों लेखकों द्वारा काफ़ी प्रकाश डाला गया है और जनताका ध्यान भी इस विषयकी ओर बढ़ता जा रहा है। लेकिन तो भी बहुत लोग खाद्य पदार्थोंकी उपयोगितासे अनभिज्ञ रह कर अपने दैनिक जीवनमें भोजनके बहुमूल्य पदार्थोंको (जाने या अनजाने) नष्ट करते रहते हैं। इस लेखमें पहले भोजनके मुख्य खाद्य-पदार्थों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा, फिर कतिपय उदाहरणों द्वारा भोजन संबंधी त्रुटि-पूर्ण व्यवहारिक बातोंका उल्लेख किया जायगा।

भोजन

उपयोगः—हमारे शरीरमें भोजनके निम्नलिखित उपयोग हैं।

(१) शरीरके तन्तुओंकी वृद्धि तथा उनकी मरम्मत करना।

(२) शरीरको गर्मी प्रदान करके उचित तापक्रम बनाए रखना।

(३) काम करनेके लिए शक्ति प्रदान करना।

(४) शरीरकी आन्तरिक क्रियाओंको स्वस्थ अवस्थामें बनाए रखना, जैसे—भोजन पचानेके लिए पाचक रसोंका बनाना।

भोजनके आवश्यकीय अंगः—पानीको छोड़ कर हमारे भोजनमें साधारणतया निम्नलिखित पदार्थ वर्तमान होते हैं।

१—प्रोटीन २—वसा, चिकनाई या चरबी ३—कारबो-हाइड्रेटस (माड़ी शक्कर) ४—नमक या खनिज लवण और ५—विटामिन्स

प्रोटीनः—हमारे भोजनका एक मुख्य अंग है। अधिकतर प्रोटीनें नत्रजनके योगिक पदार्थ होते हैं जिनके बिना शरीरके तन्तुओंकी वृद्धि और मरम्मत नहीं हो सकती। शरीरके अन्दर जलने पर इनसे चर्बी, गर्मी और शक्ति प्राप्त होती है और ये चीज़ें यूरिया (urea) अर्थात् पेशाबके पदार्थके रूपमें बाहर निकलती हैं। बाल, नाखून (ऊन और सींग वाले जानवरोंमें) प्रोटीनसे बनते हैं। दूध, दही पनीर, गोश्त, मछली, दालों, बादाम और मूँगफली इत्यादिमें प्रोटीनकी अधिक मात्रा होती है।

वसा या चिकनाईः—चिकनाई वाले पदार्थ या तो जल कर शरीरको गर्मी तथा शक्ति प्रदान करते हैं या शरीरके अन्दर इकट्ठे हो जाते हैं। गर्मी व शक्ति प्रदान करनेमें ये अद्वितीय हैं। इसी कारण सर्द देशोंके लोग इनका अधिक प्रयोग करते हैं। चिकनाई हमको दूध, घी मक्खन, मलाई, तेल और मांसकी चर्बी इत्यादिसे प्राप्त होती है।

कारबो हाइड्रेटसः—शारीरिक प्रणालीमें जलने पर इन पदार्थोंसे भी गर्मी तथा शक्ति मिलती है। इनसे शरीरके नत्रजन सम्बन्धी भागोंमें कुछ वृद्धि नहीं होती, लेकिन प्रोटीनको जलनेसे बचानेके लिए ये स्वयं जल जाते हैं। ये पदार्थ हमारे (विशेषकर शाकाहारियोंके) भोजनके मुख्य भाग हैं। गेंहूँ (आटा) चावल, आलू और सागूदानामें अधिकतर माड़ी अर्थात् (कारबो हाइड्रेटस जो पानीमें नहीं घुलता) होती है। घुलनशील भागमें शर्करा सम्मिलित है जो गन्ने तथा चुकंदरके अतिरिक्त दूध और फलोंमें भी पाई जाती है। पाचक रसों द्वारा भोजनकी माड़ी भी घुलनशील शर्करामें परिवर्तित हो जाती है।

खनिज लवण (नमक):—शरीर-रचनामें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हड्डी व दाँत इत्यादि कठोर भागोंके बननेमें फौसफेट (फॉसफोरसके यौगिक) और कारबोनेट्स (कारबनके यौगिक) कैलशियम और मैगनेशियमके नमकोंकी आवश्यकता पड़ती है। मामूली नमक (सोडियम क्लोराइड) की आवश्यकता पेटके पाचक रसके बननेमें पड़ती है। रक्तमें लोहेका नमक होता है। पाचक रसोंमें पोटेशियमका भाग होता है। गलेकी गिल्टीमें आयोडीन रहता है। इसकी कमी होने पर यह गिल्टी फूल जाती है और गर्दन फूली ज्ञात होती है, क्योंकि अधिक रक्तसे आयोडीनकी कमी पूरी करनेका प्रयत्न किया जाता है।

हमारे भोजनके अनेकों पदार्थोंमें ये खनिज लवण मिलते हैं विशेष कर दूध, दही, शाक, भाजी, फल, दालों गोश्त तथा अंडोंमें। बहुतसे फलोंमें खनिज लवणोंका स्थान त्वचाके ठीक नीचे होता है।

विटामिन्सः—विटामिन्सके विषयमें अभी हमारा ज्ञान अपूर्ण है, क्योंकि अन्य पदार्थोंकी भाँति विटामिन्सका रासायनिक संगठन अभी तक ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो सका है। इतना अवश्य है कि विटामिन्स हमारे भोजनके शक्तिदायक अंग हैं। जिनकी कमीसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और रोगीको विटामिन मिलने पर वे रोग दूर हो जाते हैं। विटामिन्सके नाम विटामिन ए, बी, सी, डी इत्यादि रखे गए हैं।

विटामिन्स ए चिकनाईमें घुलनशील है। इससे शरीरके पट्ठे बलिष्ट बनते हैं। इसके प्रभावसे बाढ़ मारी जाती है। आँख व त्वचाकी बीमारी हो जाती है, जैसे रतौंधी आना, फुंसियाँ निकलना। हरी पत्तियों (शाक) अंडा, दूध, मक्खन, जानवरोंकी चरबी और मछलियोंके तेलमें विटामिन ए की

मात्रा अधिक पाई जाती है। मैदानमें चरने वाली गाय और भैंसोंके दूधमें इसकी मात्रा अधिक होती है, और खूँटे पर चारा खाने वाले जानवरोंके दूधमें कम। अधिक गर्मीसे तथा खुले रहने पर विटामिन नष्ट हो जाता है।

विटामिन B^1 या F:—पानीमें घुलनशील है। "बेरी-बेरी" की बीमारी इस विटामिनके अभावके कारण हो जाती है, ऐसा समझा जाता है। इसके बिना पेटकी खराबियाँ उत्पन्न हो जाती है, जैसे—हाज़माका कमज़ोर पड़ जाना, भूख न लगना, इत्यादि। यह विटामिन अनाजों तथा दालों जैसे—गेहूँ, जौ, मक्का, चना, मटरके अँखुए तथा भूसीके नीचेके भागमें पाया जाता है। मशीनके चावलोंमें नहीं रहता। यह विटामिन उबलते हुए पानीका ताप सहन कर सकता है। नष्ट नहीं होता।

विटामिन B^2 या G:—यह लगभग विटामिन B, के ही साथ-साथ पाया जाता है। दूध व दालोंमें इसकी अधिकता (B_1 की अपेक्षा) होती है। यह उससे अधिक ऊँचा ताप सहन कर सकता है। इससे एक कोढ़की तरहकी बीमारी (Pellagra) अच्छी हो जाती है।

विटामिन सी:—यह पानीमें घुलनशील है। इसके अभावसे मसूड़े सूज आते हैं। खून बहने लगता है। बदन में दर्द होता है। नाक व मुँहसे भी खून गिरता है। (scurvy) यह सभी ताज़े फल या तरकारियोंमें पाया जाता है। अनाज व दालोंमें बीमारी नहीं होती, लेकिन भिगोकर अँखुए निकालने पर विटामिन डी काफ़ी मात्रामें पैदा हो जाता है। गर्म करने (पकाने) पर वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। ठंडक व खटाईसे इसकी रक्षा होती है। यह नारंगी, नीबू और टमाटरमें अधिक मात्रामें होता है।

विटामिन डी:—यह चिकनाईमें घुलनशील है और विटामिन ए के साथ मिलता है। सूर्यके प्रकाशमें चरने वाले जानवरोंके दूधमें उसकी मात्रा अधिक होती है। इसके अभावसे दाँत व हड्डियाँ कमज़ोर रहती हैं। तापका प्रभाव इस पर कम होता है। मैदानकी धूप व धूलमें खेलने वाले बच्चे इसीके प्रभावसे स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट होते हैं। धूपमें रक्खे हुए तेलका शरीरमें मलना व धूपमें तेल लगवाना भी लाभदायक होता है।

इनके अतिरिक्त और भी विटामिन्स ज्ञात किए गए हैं। उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता क्योंकि खाद्य पदार्थोंमें उनका विशेष महत्व नहीं ज्ञात होता है।

ऊपर लिखे हुए खाद्य पदार्थोंके अतिरिक्त हमको यह न भूलना चाहिए कि पानीका स्थान भी कुछ कम महत्व नहीं रखता। शरीरमें लगभग ६०% प्रतिशत पानीका वज़न है। पानी शक्ति प्रदान नहीं करता, लेकिन इसके बिना शरीरके अन्दर भोजनकी शोषण-क्रिया नहीं हो सकती, रक्तका परिमाण नहीं हो सकता, शरीरके अन्य द्रव पदार्थ नहीं बन सकते और शरीरके निकृष्ट पदार्थ पाखाने, पेशाब और पसीनेके द्वारा बाहर नहीं निकल सकते।

एक और पदार्थ भी भोजनमें पाया जाता है जिसको सेल्यूलोज़ कहते हैं। यह रेशेदार पदार्थ होता है। जो भूसी, सेब और नासपाती इत्यादि फलोंकी त्वचामें पाया जाता है। वास्तवमें सेल्यूलोज़ खाद्य पदार्थ नहीं है। क्योंकि यह हज़म नहीं होता और ज्यों का त्यों ही निकल जाता है। तो भी यह आँतोंके कामको उत्तेजित करता है। पेटकी पोलको भरता है। (as a roughage) और कुछ दस्तावर असर रखता है जिससे कब्ज़ नहीं होने पाता।

अनभिज्ञता

हमारे दैनिक भोजनके खाद्य पदार्थोंका उल्लेख करनेके पश्चात् अब कुछ उदाहरणों द्वारा यह बताया जायगा कि हममेंसे अधिकतर मनुष्य समझे या बेसमझे खाद्य पदार्थों-के बहुमूल्य अंशको नष्ट करनेमें सहायक होते हैं। मुझे आशा है कि पाठक-वृंद इससे अवश्य लाभ उठायेंगे।

गेहूँ या आटा—यह बताया जा चुका है कि नाजके दानोंमें अधिकतर माड़ी होती है और केवल ऊपरी त्वचाके पास लवण, विटामिन और प्रोटीन इत्यादि बहुमूल्य पदार्थोंका अंश होता है। गेहूँके मोल लेते समय साधारणतः लोग मोटा और फूला हुआ गेहूँ पसंद करते हैं और छोटे व सिकुड़े दानोंका गेहूँ सस्ता बिकने पर भी नहीं खरीदते। परन्तु खाद्यांशकी दृष्टि-कोणसे छोटे तथा सिकुड़े हुये दानोंमें उसी वज़नके फूले हुये दानोंकी अपेक्षा प्रोटीन इत्यादि बहुमूल्य पदार्थोंका भाग अधिक होगा और माड़ीका कम। इस कारण सिकुड़े हुये दानोंका खरीदार सस्ता अनाज ही नहीं लेता बल्कि अधिक मूल्यवान खाद्य-पदार्थ भी साथ ले जाता है।

दाने देखनेमें आकर्षक भले ही न हों, लेकिन खाद्यांश में मालदार होते हैं।

गेहूँके आटेमें भी लोग दिखावटी बात पसंद करते हैं, अर्थात् महीन पिसा व छना हुआ आटा जो लगभग मैदाके समान होता है, और जो रोटी और पूड़ी इत्यादि बनानेके लिये अधिक अच्छा समझा जाता है। लेकिन यदि उसके खाद्यांशपर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि उसमें माड़ीके अतिरिक्त लगभग कुछ नहीं है। प्रोटीन, विटामिन और लवण इत्यादि महीन पिसाई व छनाईमें निकल गये। मोटे पिसे तथा छने हुये आटेका प्रयोग नवीन सभ्यता तथा फैशनके विरुद्ध भले ही समझा जाय, लेकिन खाद्यांश तथा पाचक शक्तिकी दृष्टि-कोणसे यह पतले आटे या मैदासे कई गुना मूल्यवान तथा उपयोगी है।

चावलः—फैशनका भूत इसमें भी शामिल है। मिल का चिकना तथा चमकीला (polished) चावल अधिक सुन्दर तथा आकर्षक होता है। लेकिन ऊपरी बहु-मूल्य तह छिल जानेके कारण दानेमें केवल माड़ी ही रह जाती है। जो लोग दूसरा अच्छा चावल खरीदते हैं वे पके हुये चावल का माड़ निकाल कर उसका दुरुपयोग करते हैं। माड़के साथ चावलकी ऊपरी तहके बहुमूल्य अंश निकल जाते हैं। माड़ सहित पकाये हुये चावल खिलते नहीं, बिखरते नहीं लिबलिबेसे नज़र आते हैं। फिर भला खाद्यांशसे अनभिज्ञ लोग किस प्रकार उनको पसन्द करें।

आलूः—पहले छील कर उबाले हुये आलूके भी ऊपरी बहुमूल्य अंश निकल जाते हैं। चाकूसे छीलनेमें ऊपरी त्वचाके साथ-साथ गूदेके ऊपरी तहका भाग जो प्रोटीन, विटामिन व लवण लिये होता है, प्रायः बहुत कुछ निकल जाता है और अधिकतर माड़ी ही रह जाती है। इसलिये जहाँ तक हो सके आलूको छिलके सहित ही पकाना चाहिये।

दालेंः—लोगोंको साधारणतया धोई दाल (जिसके छिलके अलग कर दिये गये हों) अधिक रुचिकर होती है, लेकिन इसका भी वही हाल होता है। छिलकेके साथ उत्तम पदार्थ निकल जाते हैं। उर्द, और मूँगकी काली दाल आँखको पसन्द न आवे, लेकिन प्रभावमें यही लाभदायक होती है।

फलः—सेव, नासपाती, और अमरूद आदि फलोंको खाने के प्रथम चाकूसे छीलनेकी प्रथा सी प्रचलित है। इसमें भी वही नियम काम करता है। इस कारण ऐसे फलोंको ठीक तरह धोकर छिलके सहित ही खाना उत्तम होता है।

दूधः—इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि खुले मैदानमें (धूपमें) चरने वाले जानवरोंका दूध घरमें खिलाये गये जानवरोंकी अपेक्षा अधिकतर पौष्टिक होता है, क्योंकि उसमें विटामिन का अंश अधिक होता है। कच्चा और ताज़ा दूध यदि स्वच्छ हो तो पीनेके लिये सर्वोत्तम है। लेकिन स्वच्छता आँखसे नहीं देखी जा सकती। हानिकारक कीटाणुके भयसे दूधको उबाल कर पीनेकी प्रथा बुरी नहीं है, हालाँकि तापके प्रभावसे कुछ विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

गुड़ तथा शक्करः—भारतवर्षमें शक्कर तथा मीठा अन्य देशोंसे अधिक खाया जाता है। गुड़ बनानेकी प्रथा बहुत प्राचीन है। मिलकी शक्कर तैयार करनेके प्रचारसे गुड़का प्रचार बहुत कम होता जाता है, क्योंकि दानेदार शक्कर अधिक साफ तथा सुन्दर प्रतीत होती है और गुड़ केवल देहातियोंका खाद्य पदार्थ समझा जाता है. लेकिन यदि गुड़ और शक्कर दोनोंके खाद्यांशोंकी तुलनाकी जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि गुड़में शक्करके अतिरिक्त लवण इत्यादि उपयोगी पदार्थ भी रहते हैं। अतः जहाँ तक पौष्टिक खाद्यांशका सम्बन्ध है गुड़ निस्संदेह दाने और रवेदार शक्कर-से अधिक उपयुक्त होता है, यदि सफ़ाईके साथ बनाया जाय।

हरे शाक, भाजीः—बहुतसे नवीन सभ्यताके लोगों-के विचारसे पत्तियों वाले सागोंका खाना केवल घास-फूस-का खाना समझा जाता है, लेकिन ध्यान देनेकी बात है कि ये ही साग हमारे भोजन के अधिकतर बहुमूल्य पदार्थोंको हमारे शरीरमें पहुँचाते हैं। एक वैज्ञानिकने ज्ञात किया है कि हरी पत्तीके अन्दरके द्रव्य पदार्थोंका मसाला रक्तके द्रव्य पदार्थोंके मसालेके ही समान है। यह समानता इतनी समीप है कि रक्त बननेके लिये हरी पत्तियोंके साग बहुत अंश तक सहायक होते हैं। इस कारण जहाँ तक हो सके पालक, सोआ, मेथी और सलाद इत्यादि हरे सागोंका प्रयोग प्रति दिन भोजनके साथ करना आवश्यक है।

ऊपरके उदाहरणसे पता चलता है कि हम लोग अपने दैनिक व्यवहारके खाद्य पदार्थोंके सदुपयोगमें कितनी त्रुटियाँ करते हैं। उसके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। पहला, पदार्थोंके खाद्यांशसे अनभिज्ञता (महरूमियत) और दूसरा, फैशन तथा रुचि। हम लोगोंके जीवनमें फैशन भी अपने सुन्दर नृत्यसे हम लोगोंको बहका कर वास्तविकता से दूर ले जाती है। पोशाकमें फैशनके सन्मुख शारीरिक असुविधाओंका भी ध्यान हमको नहीं रहता। फिर भोजनके फैशनमें पौष्टिक पदार्थोंका ध्यान क्यों रहने लगा? मैदाकी पूड़ी दृष्टिको अच्छी लगती है, तो भूसी मिले हुये मोटे आटेकी रोटीसे क्या प्रयोजन? छिलके सहित काली दाल भी तो देखने में अच्छी प्रतीत नहीं होती, इसलिये धोई दाल ही क्यों न खाई जाय। यह सब फैशनका भुलावा नहीं तो क्या है?

यह समझना चाहिये कि भोजनका सम्बन्ध हमारे शरीर तथा मस्तिष्ककी वृद्धिसे है। ऐसे महत्वपूर्ण विषयको फैशनके हवाले करना उचित नहीं है। आज कल जब कि संसारके अन्य देश महायुद्धके कारण भोजन सम्बन्धी मित-व्ययिताके प्रश्न पर गम्भीरतासे विचार कर रहे हैं तब यह विषय और भी महत्वपूर्ण है। ऐसी अवस्थामें अपने बहुमूल्य खाद्य पदार्थोंको नष्ट करना कहाँ तक उचित तथा माननीय है? पाठक स्वयं विचार करें।

"जीवन, जनन-क्रिया और मृत्यु"

[लेखक—श्री करुणाशङ्कर पण्डया, नागपुर]

प्रकृतिकी वैभव-सम्पन्न सृष्टिमें जड़ और चेतन इन दो पदार्थों का संयोग है। जड़ पदार्थोंमें भूमण्डलपर बिखरे हुए आजीवन परिवर्तनके सहारे मनुष्यके उपार्जित एवं अनुपार्जित दोनों प्रकारके सामान्य वे पदार्थ हैं जिनकी वस्तु-स्थितिका विवरण रसायनका विषय है। चेतन-पदार्थ प्राणी-जगतकी एकमात्र अपनी वस्तु है जिसमें पौधों तथा जीवोंका समावेश किया जाता है। इन दोनों पदार्थोंके बीचमें शक्तिका आधार है जो भौतिक-प्रणालियोंका उद्गम-रूप है। चेतन पदार्थ सृष्टि साधनोंकी विभक्तियोंमें सबसे उन्नत अथवा विकसित देखे गये हैं; और दार्शनिक तथा नैतिक-विज्ञान ने उन्हें शक्ति-संचालन-क्रियासे जड़ और फिर चेतन बनाया है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। चेतन-पदार्थोंका मुख्य अस्तित्व उसका जीवन है। हम जिसे जीवन कहते हैं वह विभिन्न-क्रियाओंके मेलका आदि कारण कहा जा सकता है। वैज्ञानिकों ने 'जीवन' पर जो विचार प्रकट किये हैं वे समझने योग्य हैं। ऐसा कहा जाता है कि जीवन असलमें प्रोटोप्लाज्म या जीवन-रसका ही गुण है। जीवनके साथ इस जीवन-रसका (protoplasm) जुड़ा रहना अनिवार्य ही नहीं किन्तु मूल-पहिचान है। इसी प्रोटोप्लाज्म या जीवन-रसके संगठन पर जीवन-क्रिया अवलम्बित है।

जीवित या चेतन पदार्थोंमें निम्नलिखित गुण अथवा क्रियायें होना ही चाहिये। १—भोजन-क्रिया—जिसमें भोजन ग्रहण करना, उसको पचाकर चेतन-पदार्थोंके विभागोंका बनाना तथा अन्तमें गुण-रहित तत्वोंको चेतन शरीरसे बाहर निकाल देना, आदि सबही समझना चाहिये। यह क्रिया उत्पादक-शक्ति-संयम (anabolism) के अन्तर्गत आती है। इसके विपरीत शक्ति-उपयोगमें हम (katabolism) सांस लेना, श्रम करना, हिल-चाल, मस्तिष्क-कार्य एवं बिगड़े हुये अवयवोंके सुधार तथा नवीन कार्य सभीको ले सकते हैं। बाढ़ अथवा बढ़नेकी क्रिया भी इसीका एक गुण है जो चेतन-पदार्थोंमें आवश्यकीय और सर्व प्रथम गिना जा सकता है।

एक-कोष-मय प्राणियोंसे लेकर बहु-कोष-मय प्राणियों तक इन क्रियात्मक प्रेरणाओंका बोल-बाला है, चाहे वे आदि रूप (primitive) में हो, अथवा गहन-रूपमें (advanced) इन्हीं क्रियाओंकी विवेचनासे हमें पौधों और जीवोंका अन्तर समझमें आता है। प्राणियोंमें हिल-चाल, मस्तिष्क-शक्ति एवं भोजन-उत्पादक क्रियायोंमें विशेष विभिन्नता है। ऐसे तो अन्य भी क्रियायोंसे दोनोंका अन्तर स्पष्ट होता है, परन्तु भोजन-उत्पादक-क्रिया ही मुख्य समझनी चाहिए। जीव-पौधों द्वारा अथवा यों कहिए

अपने अन्य गति-बन्धुओं पर ही अपने पेटकी समस्त अकांक्षामें रखता है, किन्तु पौधे और बड़े-बड़े वृक्ष भी वातावरणके साधारण तत्व, एवं भूमिकी सामान्य वस्तुओंके समीकरणसे अपना स्वतःका संयुक्त (complex) भोजन तैयार करते हैं। पत्तोंका हरित-पदार्थ (Chloro phyll) एवं सूर्य-रश्मियोंकी अस्पष्ट (latent) शक्ति इस संयुक्त बनाव (complexities) के कारण है। यह प्रणाली ही जीवनका मूल आधार है। पौधोंसे हमें जो जीवनी-शक्ति मिलती है उसी पर हमारा जीवन टिका हुआ है, यह निर्विवाद ही नहीं परन्तु पूर्ण सत्यका प्रकाशक है। अतः पानी, हवा और कर्बन-द्विऔषिद्-वायु तथा तरह-तरहके उत्प्रेरक (catalytic agents) ही हमारे आदि भोजन-यौगिक (compound) हैं।

यह समझ लेना चाहिए कि हमारा जीवन क्रियात्मक है उसमें चेतनताका भाव भरा हुआ है, एवं उत्पादनसे लेकर विनिमय तथा कुशलताकी सभी प्रणालियाँ जीवनका आदर्श, ध्येय और महात्वाकांक्षाओंका रूपात्मक-प्रकृतिजन्य-संस्कार है। जीवन चेतन-पदार्थोंकी क्रीड़ाका केंद्र-स्थल कहा जा सकता है और उसी को बनाए रखनेके लिए विभिन्न क्रियाओं तथा प्रणालियोंका समावेश प्रकृतिने अपनी मौलिक अनुपमतासे सफलताके दर्शनके लिए निर्मित और नियमित किया है। यही प्राणी-जगतका सर्वतोमुखी मूल-सिद्धान्त है।

जीवनको प्रकृतिने परिवर्तन-हेतुसे अमर बनानेकी कोशिश नहीं की। ऐसा शायद ही कोई सूत्र नैसर्गिक-सृष्टि पर दिखलाई पड़े जिसमें परिवर्तनके लिए कोई मार्ग खुला न हो। इसी तरह जीवनकी भी एक सीमा बाँधी गई है जिसके आगे उसे कायम कर सकना असम्भव है। जब उत्पादक-शक्ति (anabolic activity) विनियम-शक्ति (katabolic activity) से कम हो जाती है तब जीवनके बन्धन भी शिथिल होने लगते हैं, क्योंकि फिर उन बन्धनोंमें उतनी परिपक्वता और पुष्टि नहीं रह जाती। इसी चरम-सीमा पर पहुँच कर परिवर्तन-आलिंग का नाम मृत्यु है। वैज्ञानिक और मनो-वैज्ञानिक दोनोंके सूत्रोंकी दृढ़तासे मृत्युकी क्रिया समझी जा सकती है। यौगिक-परिमाणु जब शक्ति-ह्राससे संगठनमें ढिलाई लाते हैं तो ये परिमाणु शून्य-रूप तत्व-परिमाणुओंमें विभक्त हो चेतन-शरीरसे निकलनेकी चेष्टा प्रारम्भ कर देते हैं। शरीर की आन्तर-क्रियायें एक दम बन्द हो जाती हैं, एवं प्रत्येक अवयव अपना कार्य (function) भूल कर इसी विभक्तीकरणकी राह लेता है। कभी-कभी इसी क्रियाकी समानतामें निद्राको भी स्थान दिया गया है, परन्तु यह गलतफ़हमी है। निद्रा और मृत्यु दो भिन्न क्रियायें हैं। निद्रामें तो केवल कुछ ही अवयवोंको विश्राम मिलता है। हम विश्राम (rest) इसलिए कहते हैं कि उन अवयवोंके कार्य एक दम निश्चल नहीं होते, अपितु कुछ समयके लिए अपनी प्रणाली त्याग देनेमें विरोध नहीं करते। इन अवयवोंमें ज्ञानेन्द्रियाँ, कुछ वाह्य-उपकरण या कर्मेन्द्रियाँ ही आती हैं विशेष आन्तर-कार्य तो धीरे-धीरे उस शक्ति-बचाव का लाभ लेकर अपना कार्य और भी सुगमता, दृढ़ता एवं सफलतासे करने लगते हैं। उदाहरणार्थ, ज्ञान-तन्तुओंका शिथिल होकर भोजन-प्रणालीके अवयवोंकी क्रियाके लिए अपनी शक्ति विसर्जित करना, निद्राके संयोगमें याद रखने योग्य है।

उपरोक्त जीवन और मृत्युके संघर्षको लाभ पहुँचाने वाली, एवं जीवनको अमर करने वाली जनन-क्रिया है। इसका झुकाव जीवनकी ओर मृत्युकी अपेक्षा अधिक है, यह मानना ही पड़ेगा। जिस तरह प्राणियोंकी कृमि-जातिमें (insects) कोई-कोई जीव अपने शत्रुसे रक्षाके हेतु अपने वातावरणका रंग शरीरपर ढालता है उसी तरह इस मृत्यु-रूपी-शत्रुसे बचावके हेतु जीवन जनन-क्रियाका रूप अपनी क्रियात्मक शैलीमें ग्रहण करता है। हम जनन-क्रियाको इस तरह समझते हुए उसकी प्रत्येक कलाका प्रकाश पूर्णतया यहाँ नहीं डाल सकते और उसको किसी अन्य समयके लिए वर्णन-हेतु समझ कर केवल उसके मूल-भूत-सिद्धान्तों और प्रणालियोंका विश्लेषण तथा विवेचन करेंगे।

जनन-क्रिया (reproduction) मुख्यतः दो तरहकी कही जा सकती है और उसका विभक्तीकरण छपों (sexes) पर निर्भर है। जिस प्रणालीमें इन छपोंका कोई स्थान नहीं वह छप-हीन जनन-क्रिया कहला सकती है (asexual reproduction) इसके तीन

मुख्य रूप हैं। पहिला तो साधारण विभाजित होना देखा गया है। इस विभाजनमें (fission) एक ही प्राणी सामान्यतः दो में विभाजित हो जाता है। इस प्रणालीके उदाहरणमें एक-कोषमय प्राणियोंकी विशेषता है। दूसरा रूप स्फूर्ति-अवयव-उद्घाटन (bud formation) के नामसे पुकारा जा सकता है। किसी भी प्राणीके वाह्य-भाग पर एक विशेष कलिका-स्वरूप अवयवकी रचना होती है और वही बढ़ कर अपना सम्बन्ध आदि-प्राणीसे विच्छेदित करके अपना स्वतःका अस्तित्व कायम कर अपनी जीवन-क्रिया आप ही सम्पादन करने लगती है। हाइड्रा नामक समुद्रके एक दो-पर्तवाले प्राणीमें एवं काइयोंकी जातिके कुछेक पौधोंमें इसका विशिष्ट महत्व है। इसके पश्चात् तीसरा रूप आता है जिसमें विशेषतायें अपनी ही सृष्टिका निर्माण कर शोभा पाती हैं। स्वभावतः इस रूपके उत्पादक साधनोंमें चेतनाका पूर्ण विकास होता है जिसका कारण उनके अग्रभाग पर एक-दो या बहु सींकुर-सदृश झीने तागोंका होना है। इसे हम प्राणी-कोष (spore) कह सकते हैं। ये कोष बाढ़के सहारे, परिवर्तनके मार्ग पर दौड़ लगाते हुए अन्तमें अपने पितृ-तुल्य स्वाभाविक प्राणियोंका रूप एवं स्वभाव धारण कर लेते हैं। यह प्राणी-कोष-रूप (spore-formation) प्राणी-शरीरके किसी अवयव-विशेषकी अपनी विभिन्न प्रकृतिका परिचायक है और पूर्णतया प्राणी जगतमें अपना स्थान स्थायी नहीं तो कम-कमसे भावी-प्रणालियोंकी छाया निर्देश अवश्य करता है।

छप-हीन-जनन-क्रियाकी विरोधक छप-युक्त-जनन-क्रिया (sexual reproduction) इनमें छपों (sexes) का पूर्ण उपयोग होता है और दोनों तरहके छपों (स्त्री एवं पुरुष) के सम्मिश्रणसे अण्डेकी घोषणा करता है। भाव-विभावों पर दो भिन्न जातिके छपोंका अपना अलग-अलग प्रभाव है और ऊँची जातिके प्राणियों (पौधे और जीव) में इसकी परिपक्वता अपनी सानी नहीं रखती। प्रथम तो उपरोक्त प्राणी-कोषके ही सदृश दोनों तरहके उत्पादक-साधनोंका आविर्भाव होता है और कभी-कभी ये समानसे दिखने वाले उत्पादक ही सम्मिलित (fertilize) कर लेते हैं। परन्तु जैसे-जैसे उच्च जाति की सीढ़ियों पर चढ़ते जाइए उसी तरह इस समानतामें

[शेष पृष्ठ २०० पर देखो]

विज्ञान परिषद्‌की नवीन योजना

हिन्दीमें आधुनिक डाक्टरीके विषय पर इनी-गिनी ही पुस्तकें हैं, परन्तु इनमेंसे कोई भी ब्योरेवार नहीं है। इसीलिए विज्ञान-परिषद्‌की ओरसे एक वृहद् पुस्तक तैयार करनेकी योजनाकी गई है। इस पुस्तकके संपादक डाक्टर जी० घोष एम० बी०, बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रयाग, कैप्टेन डाक्टर उमाशंकर प्रसाद, एम० बी०, बी० एस० (अजमेर), डाक्टर गोरख प्रसाद, और डाक्टर सत्यप्रकाश रहेंगे। इसके अतिरिक्त पटना मेडिकल कालेजके प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (एडिनबरा); एम० बी०; डी० टी० एम०, एफ० आर० एस० (एडिनबरा) और मेयो-हास्पिटल, नागपुर, के डाक्टर चन्द्रभानु राय, एम० बी०, बी०एस० का सहयोग भी हमें इस कामके लिए प्राप्त हुआ है। इसलिए पुस्तक सब प्रकारसे प्रमाणिक होगी। इसमें आवश्यक चित्र भी रहेंगे। इसके दो भाग होंगे जिनमेंसे एकमें तो स्वस्थ रहनेके नियम, व्यायाम, बच्चोंके पालन-पोषण आदि विषयों पर विचार किया जायगा और दूसरे भागमें रोगोंका अकारादि क्रमसे विवरण कोषके रूपमें रहेगा। इसी कोषमें औषधियोंका भी विवरण दे दिया जायगा। हम इस कोष ही की छपाईसे कार्य आरम्भ करते हैं और प्रथम ८ पृष्ठ इस अंकमें छाप रहे हैं। विचार है कि इसी प्रकार ग्रंथ विज्ञानमें छपता चले। साथ-ही-साथ हम इसे पुस्तकके रूपमें भी छापते चलेंगे। आशा है, विज्ञानके पाठकगण इस प्रबन्धको पसन्द करेंगे।

पाठकोंको यह बतलानेके लिए कि कोषके आगामी पृष्ठोंमें किन-किन विषयों पर विचार किया जायगा यहाँ पर उन सब शब्दोंकी सूची दे दी जाती है जिनका कोषमें समावेश रहेगा।

—मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

घरेलू डाक्टर

अंकुर (granulation tissue)—शब्द-सागरके अनुसार मांसके बहुत छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं अंकुर कहलाते हैं। परन्तु वस्तुतः दाने मांसके दाने नहीं होते। जब घाव अच्छा होने लगता है तो रक्तवाहिनियोंसे भरे, नरम, तनाव पड़नेसे शीघ्र टूटने वाले तंतु (tissue) बनते हैं जो खूब लाल होते हैं। छूनेसे इनसे रक्त निकल पड़ता है। इन्हींको अंकुर कहते हैं। बड़े घाव इन्हीं अंकुरोंके बननेसे भरते हैं (पूज जाते हैं)। जब कहीं मांस कट कर निकल जाता है या नष्ट हो जाता है तो प्रकृति उसकी मरम्मतका कार्य आरम्भ कर देती है; उस घावके आस-पासकी रक्तवाहिनियाँ बढ़ने लगती हैं और उनसे नए गोल अंकुर बन जाते हैं। स्वस्थ दशामें अंकुर गहरे लाल रंगके होते हैं, और जैसे-जैसे घाव भरता जाता है वैसे-वैसे उसकी सतह भी छोटी होती जाती है। अंतमें छोटा-सा चिह्न रह जाता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अंकुर आवश्यकतासे अधिक उत्पन्न होते हैं। इसे साधारणतः बदगोश्त कहा जाता है। इसे काट कर निकालना पड़ता है।

अंकुरावस्था-काल (incubation period)—छूतके रोग वे होते हैं जो रोगीके संसर्गसे होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि रोगीको वस्तुतः छू दिया जाय। वायु, जल, और कीड़े-मकोड़ोंसे भी छूतकी बीमारियाँ फैलती हैं। कुछ रोग कीटाणुओंसे उत्पन्न होते हैं। परन्तु छूत लगने पर या कीटाणुओंके आक्रमण होने पर रोग तुरन्त नहीं उभड़ आता। छूत लगने या कीटाणुओंके आक्रमण होने और रोग उभड़नेके बीचके कालको अंकुरावस्था-काल कहते हैं, और इस काल तक रोग अंकुरावस्थामें रहता है। कीटाणु वस्तुतः कीट या कीड़े नहीं होते। साधारणतः वे वनस्पति जातिके होते हैं और प्रथम आक्रमणके पश्चात् उनकी संख्याके इतना बढ़नेमें कि उनसे रोगके लक्षण उत्पन्न हों समय लगता है। यही रोगकी अंकुरावस्था है।

अधिकांश रोगोंका अंकुरावस्था-काल प्रायः सदा एक-सा रहता है। उदाहरणार्थ छोटी माता (खसरा या रोमांतिका) में यह काल तेरह-चौदह दिनका होता है, विसर्प (सुर्खबादा या एरिसिपेलस) में केवल दो-तीन दिनका ही। रोग-संचारको वशमें करनेके लिए अंकुरावस्था-कालका ज्ञान आवश्यक है। महत्वपूर्ण रोगोंका अंकुरावस्था-काल नीचे दिया जाता है। (देखो संसर्ग-निषेध भी।)

रोग	अंकुरावस्था-काल
आंत्रिक ज्वर (टाइफ़ॉयड फ़ीवर)	१०-२१ दिन
आमातिसार (डिसेंटरी) शलाकाणुजनित	२-७ दिन
,, अमीबिया जनित	३-१२ सप्ताह
इनफ़्लुयंज़ा	१-५ दिन
काला आज़ार	२-३ सप्ताहसे लेकर कई महीने
कुकुर खाँसी (व्हूपिंग कफ़)	१०-१४ दिन
गरदनतोड़ बुखार	ठीक पता नहीं; लगभग ७-१० दिन
गलसूहा (मम्प्स)	१८-२१ दिन
जल-संत्रास (पागल कुत्ता काटना)	१ दिनसे लेकर २ वर्ष, साधारणतः ६ सप्ताह
डिफ़्थीरिया	२-१० दिन
डेंगू (हड्डीतोड़ बुखार)	२-५ दिन
प्लेग (गिल्टीवाला)	२-८ दिन
मलेरिया	८-२१ दिन
मोतिया (पनसाहा या चिकेनपॉक्स)	१०-१९ दिन
रोमांतिका (खसरा या मीज़ल्स)	१०-१४ दिन
विसर्प (एरिसिपलस)	१-३ दिन
शीतला (चेचक)	१२-१४ दिन
हैज़ा (विसूचिका)	दो चार घण्टेसे लेकर १० दिन; साधारणतः ३-६ दिन

अंकुशा (hookworm)—अंकुशा एक कीड़ा है जो लगभग ½ या ¾ इञ्च लम्बा और पेचकके धागेके

बराबर मोटा होता है। उसका अगला सिरा मुड़ा रहता है। इसीके कारण उसका नाम अंकुशा रक्खा गया है। इसे अंग्रेज़ीमें हुक-वर्म कहते हैं। शरीरके अंदर इन कृमियोंके पहुँचनेसे जो रोग उत्पन्न होता है उसे अंकुशा-रोग—हुकवर्म डिज़ीज़ या ऐनकाईलॉसटोमिएसिस (ankylostomiasis)—कहते हैं।

ये कीड़े आँतोंमें, विशेषकर क्षुद्रांत और द्वादशांगुलांत्रमें, रहते हैं। वे श्लैष्मिक कलाको अपने मुँहसे पकड़े रहते हैं और वहाँका खून पीते हैं। इससे वहाँ घाव हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन कीड़ोंसे उत्पन्न हुआ विशाक्त पदार्थ (विष्ठा आदि) खूनमें पहुँच कर मनुष्यको अत्यन्त हानि पहुँचाता है। कीड़े अकसर अपना स्थान बदला करते हैं। इसलिए आँतोंमें बराबर नये-नये घाव हुआ करते हैं। पुराने घावसे खून बहा करता है और ये घाव रोगीके उदरके भीतर भोजनके साथ पहुँचे कीटाणुओं से पक भी जाया करते हैं।
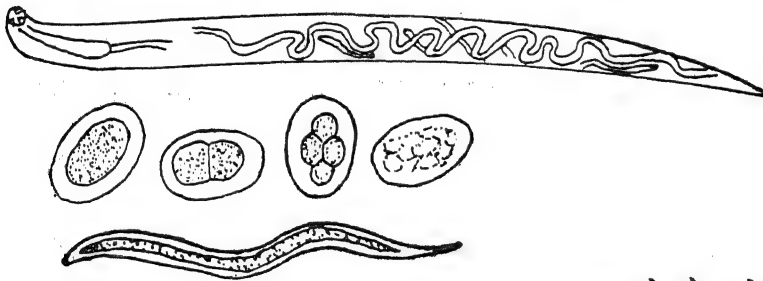
अंकुशा, अंडे और लहर्वा।
सबसे ऊपर एक प्रौढ़ अंकुशा दिखलाया गया है। बीचमें अंडे है। नीचे लहर्वा है। चित्र बहुत बड़े पैमाने पर है। वस्तुतः अंकुशा केवल १/२ इंच लंबा होता है और इसके अंडे केवल १/४०० इञ्च व्यासके होते हैं।

इन कीड़ोंसे प्रतिदिन हज़ारों अंडे उत्पन्न होते हैं जो रोगीके मलके साथ बाहर निकल आते हैं। नम मिट्टी या पानीमें पहुँच कर पचीस-तीस घण्टेमें इन अंडोंसे लहर्वे (बच्चे) निकलते हैं। डेढ़ सप्ताहमें दो चोला बदलनेके बाद ये लहर्वे इस योग्य हो जाते हैं कि मौका मिले तो मनुष्यकी त्वचाको छेद कर उसके शरीरमें घुस जायँ। जिस व्यक्तिकी त्वचामें वे घुसते हैं उसके हृदयमें वे रक्तवाहिनियोंद्वारा पहुँचते हैं। वहाँसे वे फुफ्फुस (फेंफड़े) में पहुँचते हैं। अन्तमें वे अँतड़ियोंमें पहुँचते हैं और वहाँ जाकर बस जाते हैं। लहर्वे पृथ्वी पर ६ से १२ महीना तक जीवित रह सकते हैं और त्वचामें घुसनेकी इनमें ऐसी प्रबल शक्ति होती है कि वे ऐसे मनुष्योंके तलवोंको भी छेद सकते हैं जो कभी जूता नहीं पहनते और इसलिए जिनका तलवा चमड़ेकी तरह कड़ा हो जाता है। ज़मीनके पूर्णतया सूख जानेसे, या धूपमें पड़ जानेसे, लहर्वे मर जाते हैं।

एक लहर्वेसे एक ही जवान कीड़ा बनता है। अंडोंसे आँतके भीतर कीड़े नहीं बनते। इसलिए जितने लहर्वे शरीरमें घुसते हैं उतने हो कीड़े वहाँ बनते हैं। ५० कीड़ोंसे कमसे मनुष्यको कोई हानि पहुँचता नहीं दिखलाई पड़ता। १०० से अधिक कीड़ोंसे रोग उत्पन्न होता है। किसी एक व्यक्तिके पेटमें दो-चारसे लेकर पाँच हज़ार तक ये कीड़े हो सकते हैं। कम कीड़ोंके रहनेसे रोगके लक्षण इतने हलके रूपमें उत्पन्न होते हैं कि अकसर लोग उस पर ध्यान नहीं देते, परन्तु अधिक कीड़ोंके रहने पर रोगके लक्षण स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। ये कीड़े केवल दो ही काम करते हैं—खून चूसना और अंडे देना। ये वर्षों तक जीवित रहते हैं और प्रत्येक मादा कीड़ा अपनी आयु भरमें करोड़ों अंडे देती है। लहर्वा मनुष्यके शरीरमें साधारणतः पैरके तलवोंद्वारा घुसता है और अधिकतर वह चमड़ेके कोमल स्थानको ही चुनता है, जैसे अँगुली या अँगूठोंकी जड़।

यह रोग गरम देशोंमें विशेष रूपसे होता है, जैसे भारतवर्ष, सीलोन, मिश्र देश, मध्य अमरीका और चीनमें।

लक्षण—जब लहर्वे पैरमें घुसते हैं तो उस समय वहाँ खुजली मालूम देती है। पीछे वहाँ कुछ सूज आता है या कभी-कभी घाव भी हो जाता है। परन्तु यह कुछ ही दिनोंमें अच्छा हो जाता है और लोग अकसर इस बातको भूल जाते हैं। लगभग सात सप्ताह बाद मलमें अंकुशाके अंडे आने लगते हैं।

रोगके असली लक्षण पैरमें खुजली मचनेके कुछ महीने बाद ही दिखलाई पड़ते हैं। कम कीड़ोंके रहनेसे थोड़ी-बहुत सुस्ती ही रहती है, परन्तु अधिक कीड़ोंके होने पर रक्ताल्पता (anæmia), सुस्ती, कमज़ोरी, दिलका धड़कना, शीघ्र हाँफना आदि प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अजीर्ण, वायु, कोष्ठबद्धता (कब्ज़ियत) या इसके बदले अतिसार (पेटझरी) की भी शिकायत रहती है। अकसर सरमें दर्द रहता है और चक्कर आता है। थकावट जल्द जान पड़ती है। रक्ताल्पताके कारण चेहरा पीला पड़ जाता है और स्त्रियोंका मासिक-धर्म रुक जा सकता है। शरीरका ताप-क्रम कुछ बढ़ जाता है (हलका बुखार रहता है)। पाखाना में थोड़ा-बहुत ख़ून रहता है। साधारणतः भूख अच्छी लगती है। मिट्टी खानेकी भी इच्छा होती है। जब यह रोग बच्चोंको होता है तो उनकी वृद्धि रुक जाती है। पढ़ने-लिखने और खेल-कूदमें मन नहीं लगता। रोगकी पक्की पहचान मलकी परीक्षा सूक्ष्मदर्शक यंत्रद्वारा करनेसे की जा सकती है। इस यंत्रसे अंकुशाके अंडे देखे जा सकते हैं। यदि दवा न की जाय तो रोग महीनों तक चलता है, परंतु यदि दवा की जाय तो रोग शीघ्र दूर हो सकता है।

चिकित्सा—इस रोगकी चिकित्सामें कार्बन टेट्राक्लोराइड, चीनोपोडियमका तेल, अजवायनका सत (थाइमॉल) हेक्सिल रिसॉरसिनल, या टेट्राक्लोर एथिलीन खानेको दिया जाता है। ये सब दवाएँ शक्तिशाली कृमिनाशक हैं, परन्तु बिना डाक्टरकी रायसे इनमें से कोई दवा स्वयं न खानी चाहिए।

बचनेके उपाय—(१) व्यक्तिगत—खेतोंमें या जहाँ भी कहीं किसी ने मल त्याग किया हो नङ्गे पैर न जाओ, और न दूषित मिट्टीको हाथसे छुओ। बच्चों पर विशेष ध्यान रक्खो कि वे उपरोक्त जगहोंमें न जा सकें। ऐसे कुएँ या तालाबका पानी न इस्तेमाल करो जिसके आस-पासमें लोग मल त्याग करते हों या जहाँ लोग पानी छूते हों (आबदस्त लेते हों), क्योंकि अंकुशाके लहर्वे जलमें बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं और वे ज़मीनके भीतर कुछ दूर तक चल सकते हैं। यदि कभी ऐसा पानी पीना पड़े जिसके बारेमें कोई शंका हो तो उसे पहले उबाल लेना चाहिए। मूली आदि कच्चा खाए जानेवाले और मिट्टीके भीतर उगनेवाले कंद-मूलका इस्तेमाल बन्द कर देना चाहिए। रोग-ग्रसित व्यक्तिके मलको जला डालना चाहिए क्योंकि लहर्वे चार फुट मिट्टीमेंसे रेंग कर ऊपर चले आते हैं। रोगीका इलाज करना चाहिए जिसमें औरोंको हानि न पहुँचे।

(२) सामूहिक—डाक्टर राइस अपनी पुस्तक "दि कॉनक्वेस्ट ऑफ़ डिज़ीज़" में अनुमान करते हैं कि भारतीय लोगोंमेंसे ६० से ८० प्रतिशत लोगोंके आँतोंमें थोड़े-बहुत अंकुश कीड़े अपना घर बनाए रहते हैं। पोर्टोरिको, डच गायना और कोलम्बिया नामक अमेरिकाके प्रदेशोंमें समुद्र-तटके आस-पास रहने वालोंमेंसे ९० प्रतिशत इस रोगसे ग्रसित रहते हैं (यह १९२७ की बात है)। अन्य गरम देशोंमें भी ५० प्रतिशत लोगोंको यह रोग रहता है। इस रोगसे बचनेका उपाय तो ज्ञात है, परन्तु सरकारके लिए कुछ करना आसान नहीं है। इतने लाखों लोगोंको यह रोग है और इतनी विस्तृत भूमिमें इसका कीड़ा फैला हुआ है और इसके अतिरिक्त लोगोंमें इतनी अज्ञानता, अंध-परंपरा, अविश्वास, काहिली, ग़रीबी और गंदगी फैली हुई है कि इस रोगका समूल नाश करना असंभव-सा ही है। परन्तु काफ़ी रुपया खर्च करनेसे रोग मिटाया जा सकता है। लोगोंको सच्ची बातोंका विश्वास दिलाया जा सकता है। उनके लिए दोष-रहित पाखाने बनवाए जा सकते हैं और उनको इन्हींको इस्तेमाल करनेके लिए राज़ी किया जा सकता है। उनको जूते पहननेकी भी आदत डलवाई जा सकती है। सिनेमा-चित्रोंके प्रयोगसे इन सबमें बड़ी सहायता मिलती है। लोगोंके मलोंकी बराबर जाँचकी जा सकती है और उन लोगोंकी दवा की जा सकती है जिनके मलमें अंकुशाके अंडे मिलें। अमरीकाके कई ज़िलोंमें यह सब किया गया है और वहाँ आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। लोगोंमें नवीन स्फूर्ति आ गई है, वे अधिक परिश्रम कर सकते हैं और उनके दिलोंमें नवीन हौसला भर गया है। अंकुशाके नाशसे इन स्थानोंमें टाइफ़ॉयड, अतिसार और मलेरिया आदि रोगभी कम हो गये हैं, क्योंकि स्वस्थ मनुष्योंको ये रोग कम होते हैं।

•

अंगछेद (amputation)—शरीरके किसी अंगको काटकर निकाल देनेको अंगछेद कहते हैं। सरजन

(डाक्टर) के लिए अंगछेद अंतिम उपाय है। जब रोग किसी भी रीतिसे अच्छा नहीं हो सकता तभी अंग छेदका उपयोग किया जाता है। इसकी आवश्यकता विशेष रूपसे तब पड़ती है जब अंग सड़ जाता है (उसमें गैंग्रीन हो जाता है; देखो गैंग्रीन)। यदि सड़ा अंग काटकर शीघ्र निकाल न दिया जाय तो समूचा शरीर सड़ जायगा और व्यक्ति मर जायगा। आधुनिक शल्य-शास्त्रमें बड़ी उन्नति हुई है और यदि चिकित्सा काफ़ी पहलेसे आरंभ की जाय तो अंगछेदकी आवश्यकता बहुत ही कम पड़ती है। जब अंगछेदकी आवश्यकता पड़े तो सड़े अंगको यथासंभव शीघ्र ही कटा डालना चाहिए। ऐसा करनेसे अकसर उस अंगका कुछ भाग बचा रह सकता है जिसमें कृत्रिम अंग पीछे जोड़े जा सकते हैं (देखो कृत्रिम अंग)।

अंगविकृति—मिरगी रोगका एक नाम अंग-विकृति भी है क्योंकि इस रोगमें मूर्च्छाके साथ-साथ अंग भी ऐंठ जाता है। (देखो मिरगी।)

अंगशोष—एक रोग जिसमें शरीर सूखता है; सुखंडी रोग (शब्दसागर)। देखो सुखंडी।

अंगुलित्राण (finger-stall)—शब्दसागर-के अनुसार अंगुलित्राण उस गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने-को कहते हैं जिसे बाण चलाते समय अँगुलियोंमें पहनते हैं। अब रबड़के बने अंगुलित्राण अन्य कामोंके लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। यह अकसर केवल अँगुलियों पर चढ़ानेके लिए अलग-अलग थैलियोंके रूपमें बनता है। जब कभी कहीं अँगुली कटी हो या घाव हुआ हो और ऐसा काम करना पड़े जिससे घावमें गंदगी घुस जानेका डर हो तो घाव पर दवा और पतली पट्टी लगा कर उस पर (रबड़, चमड़े या कपड़ेका) अंगुलित्राण पहनना चाहिए। फोटोग्राफ़ीके कुछ घोलोंसे, विशेष कर मेटल नामक डेवेलपरसे उकवत हो जाता है। ऐसे लोगोंको भी रबड़का अंगुलित्राण पहन कर काम करना चाहिए। जब किसीको कोई मोटा काम हाथसे करना पड़े और उस कामके करनेका अभ्यास न हो तो अँगुलियोंकी रक्षाके लिए कपड़े या चमड़ेका पुराना दस्ताना पहन लेना अच्छा है। चीड़-फाड़ करते समय स्वच्छता और अपनी रक्षाके ख्यालसे डाक्टर लोग रबड़के दस्ताने पहनते हैं।

अंगुलिप्रदाह (dactylitis)—खैंच, काँटा आदि चुभनेसे अँगुलियोंमें जो जलन पैदा होती है और अँगुलियाँ पकती हैं उसका वर्णन 'अँगुलियाँ' नामक लेखमें
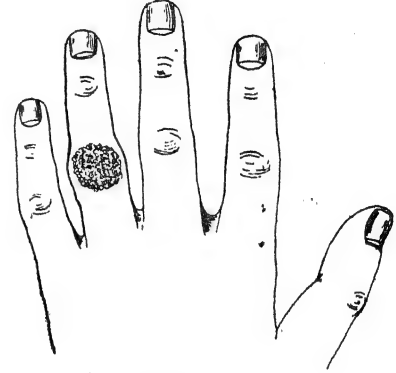
अंगुलिप्रदाह।
यह रोग क्षयके कीटाणुओंके कारण होता है।

दिया गया है। अँगुलिप्रदाह या डैकटिलाइटिज़ उस रोग-का नाम है जो वस्तुतः अँगुलीकी किसी हड्डीके खराब हो जानेसे प्रारम्भ होता है और इसलिए अँगुली फूल आती है। इसका कारण प्रायः सदा क्षय-रोग ही होता है। अंगुलि-प्रदाहसे पीड़ित रोगीको अन्यत्र भी क्षय-रोगके लक्षण रहते हैं। कभी-कभी बच्चोंको यह रोग उपदंश (आतशक) के कारण होता है जो उनको माँ-बापके उपदंशके कारण हो जाता है।

चिकित्सा—यह ऑपरेशन (चीड़-फाड़ और मरहम-पट्टी) से ही अच्छा हो सकता है। यदि रोग क्षयके कारण हुआ हो तो क्षयको मिटानेका भी उपाय करना चाहिए। (देखो क्षय-रोग।)

अँगुलियाँ (fingers) – हाथसे ही काम करके अधिकांश मनुष्य अपनी जीविका-निर्वाह करते हैं। इसलिए अँगुलियों पर लगी ज़रा-सी भी चोटकी दवा सावधानीसे करनी चाहिए।

इस पुस्तकमें दिये गये वर्णनोंको समझनेके लिए हाथ की बनावट और इसके मुख्य अंगोंका नाम जानना आवश्यक है। इसलिए इस विषयका संक्षिप्त ब्योरा यहाँ दिया जाता है।

हथेलीके छोरोंसे निकले हुए फलियोंके आकारके पाँच अवयव जो वस्तुओंको ग्रहण करते हैं अँगुली कहलाते हैं। अँगुलियोंकी गणना अंगुष्ठ (अँगूठे) से आरम्भ करते हैं। अंगुष्ठके उपरान्त तर्जनी, फिर मध्यमा (बिचली अँगुली), फिर अनामिका, अन्तमें कनिष्ठिका (कानी अँगुली) है। अँग्रेज़ीमें अँगूठेको अँगुली नहीं मानते। अँग्रेज़ी भाषाके अनुसार प्रत्येक हाथमें एक अँगूठा और चार अँगुलियाँ होती हैं।
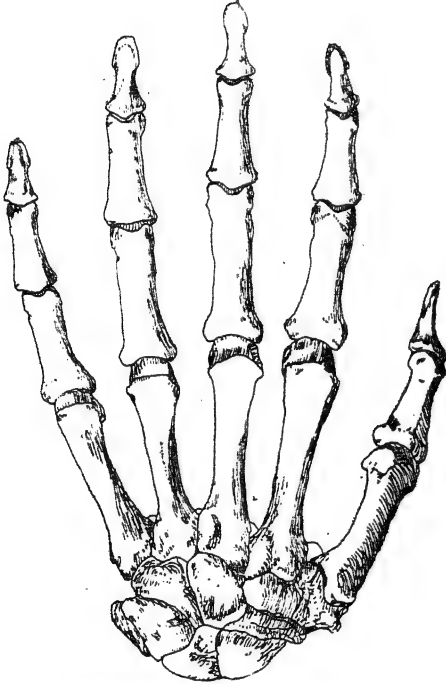
अँगुलियों और हथेलीकी हड्डियाँ।
प्रत्येक अँगुलीमें तीन पोर्व होते हैं।

अँगूठेमें दो, और अन्य अँगुलियोंमें तीन, पोर होते हैं। प्रत्येक पोरकी हड्डी अलग होती है (चित्र देखो)। ये हड्डियाँ पोर्वे (phalanges) कहलाती हैं। अँगुलियाँ प्रत्येक अंगुलि-संधि (joints) से मुड़ सकती हैं। अँगुलियोंमें कोई मांसपेशियाँ (muscles) तो नहीं होतीं, परन्तु हथेलीकी मांसपेशियाँ मज़बूत कंडराओं (tendons) के रूपमें अँगुलियोंमें जाती हैं। दूसरी मज़बूत कंडराएँ बाँह-से आती हैं और हाथकी पीठसे होती हुई अँगुलियों

अँगुलियोंकी प्रसारिणी कंडराएँ।
प्रत्येक अँगुलीमें एक प्रसारिणी कंडरा होती है।
बंद मुट्ठी इन्हींके संचालन (संकोच) से खुलती है।

तक पहुँचती हैं (चित्र देखो)। प्रत्येक अँगुलीमें एक कंडरा अँगुलीको मोड़नेके लिए होती है (संकोचिनी कंडरा, flexor tendon) और एक उसे सीधी करनेके लिए होती है (प्रसारिणी कंडरा, extensor tendon)। प्रत्येक अँगुलीमें बहुत-सी नाड़ियाँ (nerves) और धमनियाँ (arteries) होती हैं। इसीसे अँगुलियोंमें स्पर्शज्ञान अधिक मात्रामें रहता है, विशेष कर अँगूठे और तर्जनीमें।

अभ्याससे अँगुलियोंमें अत्यन्त सूक्ष्म काम करनेकी शक्ति आ जाती है; उदाहरणार्थ बूटा-कसीदा काढ़नेवाली किसी स्त्रीकी अँगुलियाँ जो काम कर सकती हैं उसे ईंट ढोने वाला मजदूरकी अंगुलियाँ कभी भी न कर सकेंगी।

अँगुली शब्दसे पैरकी अँगुलियाँ भी सूचितकी जाती हैं। उनके लिए आगामी लेख देखो।

अँगुलियोंके रोग—अँगुलियोंमें कई तरहके रोग हो सकते हैं। इनमेंसे अंगुलिप्रदाह, गठिया (विशेषकर कुरूपक गठिया), लेखकोंका अँगुली-चिंगुरन, बिसहरी, रेनॉड रोग, और खुजली विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। ये सब रोग यथास्थान अलग-अलग मिलेंगे। नीचे अँगुलियोंके कुछ अन्य रोगोंके कारण और चिकित्सा बतलायी गयी है।

पकी अँगुलियाँ—कुछ लोगोंकी अँगुलियाँ ज़रा-सा भी कटने या चोट खानेसे पक जाती हैं, परन्तु कुछ लोगों की अँगुलियाँ तरह-तरहके आघात खाने पर भी शीघ्र अच्छी हो जाती हैं। तो भी प्रत्येकको चाहिए कि अँगुलीमें किसी प्रकारके घाव होने पर वह पूरी सावधानी रक्खे (देखो आकस्मिक दुर्घटना, कटना, कुचल जाना और घृष्ठ)। कुछ लोगोंको विशेष रूपसे सावधान रहना पड़ता है, जैसे डाक्टरों और नर्सोंको। बात यह है कि इनको अकसर तरह-तरहके रोगियोंको छूना पड़ता है और घाव आदि पर मरहम-पट्टी करनी पड़ती है जिससे कटे स्थान पर कीटाणुओं-द्वारा शरीरमें विष घुसनेका बड़ा डर रहता है। कई डाक्टर ज़रा-सी भूल-चूकके कारण अपना प्राण तक गँवा चुके हैं। मिट्टीके काम करनेवालोंको भी हाथके घावोंको विशेष रूप से बचाना चाहिए, क्योंकि मिट्टीमें टिटेनस (धनुषटंकार या हनुस्तंभ) नामक भयंकर रोगके कीटाणु रहते हैं (देखो टिटेनस)।

साधारणतः कीटाणुओंके किसी प्रकार भीतर घुस जानेसे अँगुलियाँ पकती हैं। यदि खैंच (नुकीली लकड़ी), काँटा, या कील त्वचामें घुस जाय तो कोई इसकी परवाह नहीं करता, परन्तु इतनेमें ही कीटाणु भीतर पहुँच जाते हैं। यदि घाव बड़ा होता है और खून जोरसे निकल पड़ता है तो पकनेकी संभावना कम हो जाती है क्योंकि तब कीटाणु रक्तके साथ बह जाते हैं।

पकी अँगुलियोंके लक्षण वे ही हैं जो फोड़ेके, अर्थात् लाली, सूजन, गरम हो जाना, पीड़ा, जलन, फिर फूटना और पीब निकलना।

चिकित्सा—यदि अँगुलीमें खैंच या इसका कोई अंश दिखलाई पड़े तो इसे शुद्ध (कीटाणुरहित) की गई सुईसे खोद कर निकाल लेना चाहिए। परन्तु खोदनेके पहले उस स्थान पर कारबोलिक लोशन (१ भाग कारबोलिक ऐसिड, २० भाग पानी) से धो लेना चाहिए। (सुईको कीटाणुरहित करनेके लिए इसकी नोंकको दिये की लौमें गरम कर लेना चाहिए और इसे हवामें ही ठंढा हो जाने देना चाहिए)। यदि नखके नीचे मिट्टी या मैल घुस जानेके कारण अँगुलियाँ पकी हों तो उसे भी इसी तरह निकाल देना चाहिए। फिर अँगुलीको अच्छी तरह सेंकना चाहिए। इसके लिए उसे थोड़ा-सा बोरिक ऐसिड (लगभग ५ प्रतिशत बोरिक ऐसिड) पड़े गरम पानीमें या नीमकी पत्तीको पानीमें उबाल कर बनाये गये नीमके गरम पानीमें, अँगुलीको कुछ समय तक डुबाये रखना चाहिए। जहाँ तक सहा जा सके पानी खूब गरम रहे और बराबर गरम रक्खा जाय। पानीको समय-समय पर बदल भी दिया जाय। गरम पानीमें हाथ डुबाए रखनेके बदले अलसी और बोरिक ऐसिडकी पुलटिस बाँधी जा सकती है (एक छटाँक अलसीमें २० ग्रेन बोरिक ऐसिड रहे), या अँगुलीको बार-बार फ़ोमेंट किया जा सकता है। यदि सेंकसे फोड़ा फूट जाय तो अच्छा है। परन्तु यदि पीड़ा अधिक हो और फूटनेमें समय लगे तो उसे डाक्टरसे चिरवा लेना चाहिए क्योंकि यदि यह चीरा न जायगा और इसके फूटनेकी प्रतीक्षा देर तक की जायगी तो संभव है कि उतने समयमें घाव भीतर-ही-भीतर दूर तक बढ़ जाय। फिर, यदि अँगुली चीरी न जायगी, या किसी अनाड़ीसे चिराया जायगा तो पीछे आवश्यकतासे बड़ा क्षत-चिह्न बन जायगा। क्षत-चिह्नमें स्पर्श-शक्ति कम होती है। इसलिए अँगुलीसे फिर बहुत बारीक काम न हो सकेगा। इस सम्बन्धमें 'बिसहरी' का भी वर्णन देखना चाहिए। अँगुलियों पर पट्टी बाँधनेकी रीति 'पट्टी' शीर्षक लेखमें मिलेगी।

अंगुलि संकोच (Dupuytren's contracture)—इस रोगमें कानी अँगुली और उसकी बगल-

वाली अँगुली (अनामिका) की त्वचा और त्वचाके नीचेकी तंतुएँ मोटी हो जाती हैं और सिकुड़ जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ये दोनों अँगुलियाँ हथेलीकी ओर मुड़ जाती हैं और कभी-कभी हथेलीमें चिपक जाती हैं। पता नहीं कि यह रोग क्यों होता है, क्योंकि यह गठिया-ग्रस्त लोगोंको भी होता है और बिना गठियावालोंको भी, हाथसे बहुत काम करनेवालोंको भी होता है और उनको भी जो हाथसे काम नहीं करते।

चिकित्सा—रोगके आरम्भमें मालिशसे अकसर लाभ होता है और कभी-कभी रोग इससे दूर भी हो जाता है, परन्तु जब रोग पुराना पड़ जाता है तब चीड़-फाड़ (ऑपरेशन) के बिना काम नहीं चलता। कुछ लोगोंकी अँगुली
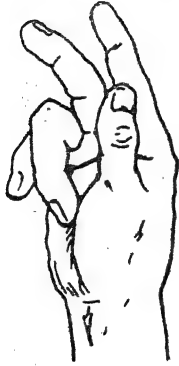
अँगुलि संकोच।
इस रोगमें कानी और उसकी बगलवाली अँगुलियाँ मुड़ जाती हैं।

तो इतनी टेढ़ी और बेकाम हो जाती है कि कानी अँगुलीको काट ही देना पड़ता है।

जुड़ी अँगुलियाँ—कभी-कभी जन्मसे ही दो या अधिक अँगुलियाँ जुड़ी रहती हैं। कभी-कभी वे सटी रहती हैं, परन्तु अकसर वे फैल भी सकती हैं, जैसा चित्रमें दिखलाया गया है। यह दोष पैरकी अँगुलियोंमें भी हो सकता है। पैरकी अँगुलियोंके जुड़े रहनेसे कोई हानि नहीं होती, परंतु हाथकी अँगुलियोंके जुड़े रहनेसे अवश्य असुविधा होती है। डाक्टर चीरकर अँगुलियोंको ठीक कर सकता है (चित्रमें बिंदुमय रेखा देखो)। जल जानेके बाद यदि अँगुलियोंपर ठीकसे पट्टी न बाँधी जाय तो भी अँगुलियाँ जुड़ जाती हैं; इस पर ध्यान रखना चाहिए।
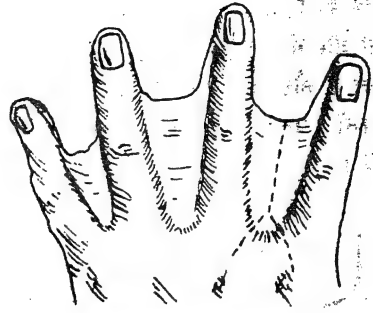
जुड़ी अँगुलियाँ।
चीरकर जुड़ी अँगुलियाँ ठीककी जा सकती हैं।

अँगुलियाँ, पैरकी (toes)—हाथकी अँगुलियोंकी तरह पैरकी अँगुलियों (toes) में भी तीन-तीन पोर होते हैं, केवल अँगूठे (great toe) में दो पोर होते हैं। पैरकी अँगुलियोंमें भी वे रोग हो सकते हैं जो हाथकी अँगुलियोंमें होते हैं, परन्तु जूतोंसे सुरक्षित रहनेके कारण कम होते हैं। जूते कसे न हों, नहीं तो अनेक अन्य रोग उत्पन्न हो जा सकते हैं। कसे जूतोंसे अँगुलियाँ टेढ़ी हो जाती हैं या एकके ऊपर एक चढ़ जाती हैं, विशेष कर जब सँकरे पंजेका या नुकीला जूता पहना जाता है। जब ऊँची एड़ीके जूते पहने जाते हैं (जैसा आधुनिक फ़ैशनकी स्त्रियाँ करती हैं) तब तो ये रोग अकसर होते हैं। इस सम्बन्धमें नीचेके रोगोंके अतिरिक्त सपाट पैर, संधिशोथ (bunion) भी देखो।

कुबड़ी अँगुलियाँ (hammer toes)—कभी-कभी पैरकी एक या अधिक अँगुलियाँ इस प्रकार मुड़ जाती हैं कि एक गाँठ नुकीला होकर ऊपर उठ आता है। अँगुलीकी शकल ∧ की तरह हो जाती है और ऊपरका भाग जूतेसे रगड़ खाने लगता है, जिससे बड़ी तकलीफ़ होती है। कुछ समयमें इस स्थानपर और अँगुलीके सिरे पर घट्ठे बन जाते हैं।

चिकित्सा—कुबड़ी अँगुलियाँ साधारणतः तंग जूतोंके कारण उत्पन्न होती हैं। इसलिए यदि रोगके आरम्भमें ढीले जूते पहने जायँ और अँगुलियोंमें खूब मालिश की

जाय और उनमें रात भर लकड़ी बाँध दी जाया करे तो अँगुलियाँ सीधी हो जा सकती हैं। यदि जूतोंका इस्तेमाल एक-दम बन्द कर दिया जाय और लकड़ी प्रायः दिन-रात बँधी रहे तो और भी अच्छा है। इस प्रकारकी चिकित्सामें समय लगता है और बहुत टेढ़ी अँगुलियाँ इस प्रकार सीधी नहीं हो सकतीं। उनके लिए केवल चीर-फाड़ (ऑपरेशन) ही उपाय है।
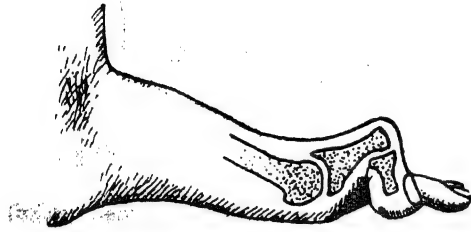
कुबड़ी अँगुलियाँ।

तंग जूता पहननेसे अकसर अँगूठा या पैरकी अन्य अँगुलियाँ चित्रमें प्रदर्शित रीतिसे कुबड़ी हो जाती हैं।

टेढ़ा अँगूठा (hallux valgus)—लड़कोंके तंग जूता पहननेका परिणाम अकसर यह होता है कि उनके पैरका अँगूठा टेढ़ा हो जाता है और वह पास वाली अँगुलीके ऊपर चढ़ जाता है या उसके नीचे चला जाता है। लड़कोंकी हड्डियाँ नरम होती हैं और इसलिए तंग जूतेका प्रभाव उन पर शीघ्र पड़ता है। अँगूठा टेढ़ा हो जानेके अतिरिक्त अन्य कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो जाती हैं। अँगूठेकी गाँठें सूज आती हैं; उनके नीचे पानी आ जाता है (बनियन बन जाता है) और घट्टे बन जाते हैं।

चिकित्सा—लड़कोंको चौड़े पंजेका और कुछ ढीला ही जूता पहनाना चाहिए। गरमीके दिनोंमें चप्पल पहनाना चाहिए। इससे अँगुलियाँ कभी टेढ़ी होंगी ही नहीं। परन्तु यदि कभी ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाय तो जूतोंका प्रयोग छोड़ देना चाहिए। ऐसा चप्पल पहनना चाहिए जिसमें अँगूठे और पासवाली अँगुलीके बीच चमड़ा रहता है। जाड़ेके दिनोंमें भी ढीला मोजा पहन कर ऐसा चप्पल पहना जा सकता है। अँगुलियोंकी बराबर मालिश करनी चाहिए और पंजेके बल बैठकी लगानी चाहिए (उठने-बैठनेका व्यायाम करना चाहिए)।

यदि आयु अधिक हो गई हो और इसलिए अस्थियाँ इतनी कड़ी हो गई हों कि उपरोक्त रीतियोंसे कोई लाभ न हो तो हड्डियोंको सीधा करनेके लिए चीड़-फाड़ के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है।

अंगूर (grapes—यह प्रसिद्ध फल भारतके उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत, बिलोचिस्तान और पंजाब तथा काश्मीर आदि प्रदेशोंमें बहुत होता है। संयुक्त प्राँतमें कमायूँ, देहरादून आदि स्थानोंमें भी इसकी उपज होती है। संयुक्त प्रांतके अन्य स्थानोंमें भी यह उत्पन्न किया जा सकता है, परन्तु फलमें तब थोड़ी-बहुत खटास रहती है।

अंगूरकी मिठास प्रसिद्ध है। भारतवासी इसे 'द्राक्षा' और 'मृद्वीका' के नामसे बहुत दिनोंसे जानते थे। चरक और सुश्रुतमें इनका उल्लेख है। अंगूर फारसी शब्द है। मुसलमान बादशाहोंके समयमें अंगूरकी खेतीकी ओर भारतवर्षमें अधिक ध्यान दिया गया। आजकल हिन्दुस्तानमें सबसे अधिक अंगूर काश्मीरमें होता है। मुनक्का, जो दवाके काममें आता है, सुखाया हुआ अंगूर है। किशमिश भी सुखाया हुआ छोटे जातिका अंगूर है।

अंगूरमें द्राक्षोज (ग्लूकोज़) अधिक मात्रामें होती है। यह चीनीकी अपेक्षा शीघ्र पचती है। ईखसे निकली चीनी जब पेटमें पहुँचती है तो यह तुरन्त नहीं पचती। इसमें पहले एक रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे द्राक्षोज बनता है। इसलिए अंगूर उन लोगोंके लिए विशेष उपयोगी है जिनकी पाचन-शक्ति क्षीण होती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि शरीर केवल एक नियत मात्रा तक द्राक्षोज पचा सकता है। इसलिए कोई केवल अंगूर खाकर स्वस्थ नहीं रह सकता। नियत मात्रासे अधिक अंगूर खानेसे फालतू द्राक्षोज मूत्रमें मिल कर बाहर निकल आता है। द्राक्षोज पचानेकी शक्ति मधुमेह (डायबिटीज़) रोगमें बहुत कम हो जाती है। ऐसे रोगीको अंगूर भी न खाना चाहिए।

अंगूरमें खाद्योज २ (विटामिन बी) भी थोड़ी मात्रामें रहता है।

घरेलू डाक्टरमें आगामी लेख निम्न विषयों पर रहेंगे :—

अंडकोशप्रदाह epididymitis
अंडकोशशिरावृद्धि varicocele
अंडधारक रज्जु spermatic cord
अंडवृद्धि hydrocele
अंडा egg
अँतड़ी intestine
अँतड़ी दुबरना intussusception
अँतरिया intermittent fever
अंत्रच्युति enteroptosis, visceroptosis
अंत्रवृद्धि (आँत उतरना) rupture, hernia
अंत्रांकुर प्रदाह diverticulitis
अंधता blindness, amplyopia
अँभौरी prickly heat
अक्षर-अंधता word-blindness
अजीर्ण (बदहज़मी) indigestion
अति-आहार overfeeding
अतिचैतन्य anaphylaxis, allergy
अतिचैतन्य, त्वचाका hyperæsthesia
अतिनिद्रा रोग encephalitis lethargica, trypanosoma
अतिपरिश्रम strain
अतिरक्त plethora
अतिवृद्धि hypertrophy
अतिसार (प्रवाहिका) diarrhœa, lienteric diarrhœa
अतिसार, बच्चोंका infantile diarrhœa
अतिस्वेदन hyperidrosis
अदरक ginger
अधकपारी hemicrania
अध्यात्मविद्या-चिकित्सा psychotherapy, psychoneurosis
अनमनी depression
अनाज cereal
अनुकूलन accommodation (of eye)
अपेण्डिसाइटिज़ appendicitis
अपस्मार epilepsy; —ग्रस्तके लिए भोजन, ketogenic diet
अफ़ीम opium, laudanum, morphia
अभिघात ज्वर traumatic fever
अमृत elixir
अमोनिया ammonia
अम्ल acid
अम्लपित्त acidity
अरगट ergot
अरारोट arrowroot
अर्क tisane
अलकतरा tar
अलसी (तीसी) linseed
अवरोध embolism
अस्थि (हड्डी) bones
अस्थि-दौर्बल्य tetany, osteitis osteomalacia
अस्थि-दौर्बल्य, बच्चोंका rickets
अस्थि-भंग fracture
अस्थि-मरण necrosis
अस्थि-रोग acromegaly
अस्थि-संधि joints
अस्थ्यावरण-प्रदाह periostitis
अस्पताल hospital
अव्यायामी जीवन sedentary habit
आँख eye
आँख उठना conjunctivitis, spring catarrh
आँख रंग जाना argyria
आँसू tears
ऑक्ज़ैलिक ऐसिड oxalic acid
आकस्मिक घटना accident
आक्षेप convulsion
ऑक्सिजन oxygen
आतशक (उपदंश) syphlis
आत्मीकरण metabolism
आमातिसार (आँव) dysentry
आमाशय stomach
आमाशयकला-प्रदाह gastritis
आमाशय-व्रण gastric ulcer
आयोडीन iodine
आयोडोफ़ार्म iodoform
आयोनाइज़ेशन ionisation
आरक्त ज्वर scarlet fever
आरजिरॉल argyrol
आरनिका arnica
ऑलिव ऑयल olive oil
आवेग emotion
आहार food, diet, eating
इनजेक्शन injection, hypodermic injection

इनफ्लुएंजा influenza
इनसुलिन insulin
इमलशन emulsion
इमली tamarind
इलायची cardamom
ईस्टंस सिरप Easton's syrup
उकवत eczema
उखड़ना dislocation
उड़नशील तैल essential oil
उत्तेजक stimulant
उदरकला-प्रदाह peritonitis
उदासी mental depression, melancholia
उपजिह्वा ranula
उपवास fasting
उरःशूल mastodynia
ऊरुसंधि groin
एक्स रश्मि X-rays
एड़ी heel
एथिल क्लोराइड ethyl chloride
एनेमा enema
एपसम साल्ट epsom salt
ऐंचा-ताना squint
ऐंटिमनी antimony
ऐंटिफ़ेबरिन antifebrin
ऐंटिफ़्लॉजिस्टिन antiphlogistine
ऐंठन spasm
ऐंठन, बच्चोंका infantile convulsions
ऐक्रिफ़्लेविन acriflavine
ऐट्रोपिन atropine
ऐडिनॉयड्स adenoids
ऐडिसन-रोग Addison's disease
ऐड्रीनैलीन adrenaline
ऐनथ्रैक्स anthrax
ऐनिलीन aniline
ऐनोफ़िलीज़ anopheles
ऐपोमॉरफ़िन apomorphine
ऐमिल नाइट्राइट amyl nitrite
ऐम्पूल ampoule
ऐम्ब्रीन ambrine
ऐलकलॉयड alkaloid
ऐलब्यूमिन albumin
ऐसपिरिन asprin
ऐसिटैनिलाइड acetanilide
ओष्ठ रोग, lips, disease &;
—, फटा हुआ hare lips
ओज़ोन ozone
औंधा फोड़ा cellulitis
औषध-पेटिका medicine chest
औषधें drugs, hebts;—देशी indigenous drugs
कंठप्रदाह pharyngitis
कंडेंस्ड मिल्क (डिब्बाबंद दूध) condensed milk
कंधा shoulder
कंप (कांपना) tremor
कँपकँपी rigour
कचक bruises
कटना cuts
कटिप्रदेश (कमर) lumbar region
कटिशूल lumbago
कठुआना, धमनीका arteriosclerosis
कठुआना, नसोंका fibrosis
क़द height
कपूर camphor
कफ़ cough
कबाबचीनी cubebs
कब्ज़ (कोष्ठबद्धता) constipation
कमरकस girdle
कर्णनाद tinnitus
कर्णशूल earache
कलाई wrist
कलोडियन collodion
कशेरुका vertebra
कषाय astringent
कसौली Kasauli
काँख armpits
काटना और डसना bites and stings
काठी constitution
कॉड लिवर ऑयल cod liver oil
काढ़ा decoction
कान ear
कारखाने factories, industrial hygiene
कारबन मॉनोक्साइड carbon monoxide
कारबोनिक ऐसिड गैस carbonic acid
कारबोलिक ऐसिड carbolic acid
कारबोहाइड्रेट carbohydrate
काला अज़ार kala-azar
कॉस्टिक caustic
किलनी tick, harvest mite
कीटाणु germs
कीटाणु जनितविष virus
कीटाणुनाशक antiseptic, disinfectant
कीटाणुहीनता asepsis

clergyman's throat, relaxed throat
गलसूहा mumps
गाँजा hashis
गांठ छोड़ना, बच्चोंका growing pains
गॉज़ gauze
गिनी वर्म guinea-worm
गुदा anus
गुदा, बंद imperforate anus
गुर्दा kidneys
गुर्दा, ढीला floating kidneys
गुर्देकी बीमारियाँ Bright's disease, nephritis, uræmia
गुल्म abdominal tumour
गूँगापन dumbness
गैंग्रीन gangrene
गैस मास्क gas mask, respirator
गैस, विषैला gas poisoning
गोदना tattooing
गोली pill
ग्रंथियाँ glands
ग्रंथियाँ, प्रणाली विहीन ductless glands
ग्रंथिल ज्वर glandular fever
ग्रंथि-सत्त glandular extracts
ग्रहणी sprue
ग्रीवा (गरदन) neck
ग्रीवाशूल crick
ग्रे पाउडर gray powder
ग्लॉकोमा glaucoma
ग्लिसरिन glycerine
ग्लूकोज़ glucose
घट्टा callus, corn
घर्षण intertrigo
घातक रक्ताल्पता pernicious anæmia
घाव ulcer, rodent ulcer, phagedæna, Bazin's disease, Madura foot
घुटना knee
घुट्टी (गुल्फ) ankle
घुलना emaciation
घृष्ट abrasion
घेघा (गलगंड) goitre
घोड़नस Achille's tendon
घ्राणशक्ति smell
चंद्रचर्म epicanthus
चकत्ता purpura
चक्कर dizziness, Meniere's disease
चक्षु-प्रलम्ब exophthalmic goitre
चरक leucoderma
चरस hashis
चर्बी lard
चर्म (त्वचा) skin
चर्म रोग skin diseases, ecthymia, lichen planus, lupus, prurigo, pruritus, psoriasis
चश्मा (ऐनक) spectacles
चाँदी silver
चाय tea
चाल gait
चालमुगरा तैल chalmoogra
चिंगुरा cramp
चिंता anxiety, nervousness
चिकनी त्वचा glossy skin
चिपकाऊँ पट्टी adhesive plaster
चिल्लड़ (चीलर) flea
चीड़-फाड़ surgery
चीनी sugar
चीनी मिट्टी kaolin
चुसकी comforter (baby's)
चूना lime, quicklime
चेचक, गायका cow-pox
चोकर bran
चोट, सरका concussion
छनना filters
छांगुर polydactylism
छाती chest
छींकना sneezing
छूत contagion
छोटी-माता, नीरमय (पनासाहा) chicken-pox
जंघास्थि tibia, fibula
जड़ता, चर्मका anæsthesia of the skin
जननेंद्रिय सम्बन्धी ज्ञान sex hygiene; कामोद्दीपक औषधें aphrosiacs; नपुंसकता impotence; लिंगप्रदाह balanitis; वीर्यपात spermatorrhœa; स्वप्नदोष nocturnal emission; हस्तमैथुन masturbation; जननेंद्रिय-सम्बन्धी रोग venereal diseases
जबड़ा jaw

थाइरॉयड एक्सट्रैक्ट thyroid extract
थाइरॉयड ग्रंथि thyroid gland
थूक sputum
दंतकृमि caries
दंतशर्करा tartar
दमघुटना choking, asphyxia
दम लगाना inhalation
दही curd, junket, koumiss, lactic acid
दाँत teeth
दाँत बैठना trismus
दाई midwife
दागना cautery, therm-o cautery
दाढ़ी beard
दाद (दद्रु) ringworm, favus
दारचीनी cinnamon
दारुण alopecia areata
दिनौंधी day-blindness
दुर्गंधनाशक deoderant
दुर्बलता debility
दुर्बल बच्चे ailing children
दूध milk
दूधसे मिचली milk sickness
दूषित दृष्टि defective vision, errors is sight
दृष्टि vision
दृष्टिक्षेत्र field of vision
धड़कन palpitation
धनुषाकार टाँगे bow legs
धमनी artery
धमनी शोथ aneurysm
धुन्नाई lowage
धूनी fumigation

धोबिया खुजली dhobi itch
नख (नहँ) nails
नशा drunkenness, intoxication
नाक बनाना rhinoplasty
नाड़ी pulsation, pulse
नाड़ीकी विकृत गति arrhythmia
नाड़ी-ग्रंथि varicose vein
नाड़ीतंतु-क्षय disseminated seclorosis
नाड़ीमंडल nervous system; —,जबड़ेकी trigeminal nerves
नाड़ीशोष trophic
नारंगी (संतरा) orange
नासांकुर polypus
नासिका nose
नासूर fistula, sinus
नितंब hips
निदान diagnosis
निद्रा sleep
निद्रानाश insomnia
निद्राभ्रमण sleeping sickness
निनावा herpes, leukoplakia
नींबू lemon
नील black eye, telangiectasis
नीला मरहम blue ointment
नीलिमा cyanosis
नुसखा (योग) prescription
नेत्र रोग pterygium (श्रर्म)
नोवोकेन novocaine
नौश्रा खुजली barber's itch

न्यूनताजनित रोग deficiency diseases
न्यूनाहार underfeeding
न्यूमोथोरैक्स pneumothorax
न्यूमोनिया pneumonia, broncho-pneumonia
पंगुल claw foot, clubfoot
पक्वाशयक्षत duodenal ulcer
पक्षाघात apoplexy
पक्ष्मकोप (बरौनी गड़ना) trichiasis
पट्टी bandages, compress
पथराना, यकृतका cirrhosis of the liver
पथरी calculus, gall stones, gravel
पनडुब्बियोंका रोग caisson disease
पपड़ी sordes
पबलिक हेल्थ public health
पररक्त-संचार transfusion of blood
परोपजीवी parasite
पलँग-कुर्सी bedrest
पलकें eyelids
पलकें, उलटी ectropion
पलकें, भीतर धँसी entropion
पलकें, लटकी हुई drooping eyelids
परमैंगनेट permanganate
परिचर्या sickroom nursing
परीक्षार्थ भोजन test meal, barium test meal
पशु और छूतके रोग animals as disease carriers
पसली ribs

पसीना, बदबूदार disagreeable sweating
पहाड़ hill stations
पांडु रोग (कमल, कामला) icterus, jaundice
पाचक carminative, dinner pills
पाचन digestion (chyle, chyme, etc.)
पागल कुत्तेका काटना (जल-संत्रास) hydrophobia
पागलपन insanity
पादशूल Morton's disease
पान betel
पायोरिया pyorrhœa
पारा mercury
पाला मारना frost-bite
पावदान footrest
पाव रोटी bread
पाव रोटीके कारखाने bake-houses
पिंजड़ा bed-cradle
पिचकारी syringe
पिट्युइटरी ग्रंथि pituitary gland
पित्त bile
पित्तकोप biliousness
पित्त नलिका bile duct
पित्ताशय gall-bladder
पित्ताशय शूल biliary colic
पिपरमिंट peppermint
पीड़ा pain
पीतज्वर yellow fever
पीनस ozæna
पीब (मवाद) pus
पीलापन pallor
पुतली pupil
पुनर्यौवन-प्राप्ति (कायाकल्प) rejuvination
पुलटिस poultice
पृष्ठशूल back-ache
पेट (उदर) abdomen
पेट फूलना tympanitis
पेटी abdominal belt binders,corset,truss; —, बिजलीकी galvanic belt
पेटेंट दवाएँ patent medicines
पेपटोन peptone
पेपटोनाइज़ किया भोजन peptonised food
पेपसिन pepsin
पेय beverages
पेवंद grafting
पैतृक रोग heredity
पैदाइशी कुरूपता congenital deformities
पैर foot
पैर और मुँहका रोग foot and mouth disease
पैराफिन paraffin
पैस्चुराइज़ करना pasteurisation
पोटैसियम potassium
प्यास thirst
प्रकाश light
प्रति-उत्तेजक counter-irritant
प्रतिरोध prophylaxis
प्रतिविष antibodies
प्रदाह inflammation
प्रदाह, हाथ और पैरका erythromelalgia
प्रमेह albuminuria
प्रलाप delirium
प्रारम्भिक चिकित्सा first aid
प्रुसिक एसिड prussic acid
प्रोटारगल protargol
प्लीहा (तिल्ली) spleen, status lymphaticus Hodgkin's disease
प्लेग (ताऊन) plague
प्लैस्टर plaster
प्लैस्टर ऑफ पेरिस plaster of Paris
प्ल्युरिज़ी (उरस्तोय) pleurisy
फटना craking, fissure
फटना, हाथ, और ओंठका chapped hands and lips
फटी रीढ spina bifida
फफदना (खमीर उठना) fermentation
फफोले shingles
फरकना throbbing, twitching
फल, कुछ विशेष fruits
फलाहार fruit diet, vegetarianism
फ़स्द venesection
फ़ाइलेरिया filaria, filariasis
फ़ॉरमैलडिहाइड formaldehyde
फालिज paralysis
फ़ॉसफोरस phosphorus
फिटकरी alum
फिरंग रोग yaws
फीलपाँव elephantiasis

फुदकी jigger
फुफ्फुस (फेफड़ा) lungs
फुफ्फुसमें गुड़गुड़ाहट rale
फुफ्फुसावरण पूय empyemia
फूलना distension
फोड़ा (व्रण, स्फोट) abscess, Aleppo button, boil, glanders
फ्रॉयडवाद Freudism
बच्चा baby
बच्चोंकी हड्डी epiphysis
बच्छनाग (मीठा तेलिया, सिंगिया) aconite
बत्ती suppository
बधिरता (बहरापन) deafness
बफारा fomentation
बरगोनी विधि, मोटापा दूर करनेकी Bergonie treament
बर्फ ice
बवासीर (अर्श) piles
बहरा-गूँगा deaf and mute
बहुमूत्र diabetes, glycosuria, pobyuria
बाइकारबोनेट ऑफ सोडा bicarbonate of soda
बादाम almonds
बादाम, कड़ुआ almonds, bitter
बाधा (रुकावट) obstruction
बान habit
बारबिटोन barbitone
बारली barley
बाल hair
बाल उड़ानेका साबुन depilatory
बालसम balsam
बालिग adult
बाहरी वस्तु foreign body
बाहु arm
बिच्छू scorpion
बिजली electricity, electrolysis, lightning, radio-therapy, radio activity
बिडाल-चक्षु amaurotic eye
बियर bear
बिलनी stye
बिसमथ bismuth
बिसहरी whitlow
बिस्तर bed
बिस्फोटक impetigo
बी० पी० B.P.
बीफ़ (गो-माँस) beef
बीमा, स्वास्थ्यका national health insurance act
बुदबुदप्रद effervescent
बुद्धि-परीक्षा intelligence, tests for
बुद्धिहीनता mental deficiency
बेंजर्स फ़ुड Benger's food
बेचैनी restlessness
बेड-पैन bed-pan
बेनज़ोइक एसिड benzoic acid
बेनज़ोल benzol
बे रम bay rum
बेरी-बेरी beri-beri
बेलाडोना belladona
बेहोश करना anæsthesia
बैंटिंग विधि, दुबला होनेका Banting treatment
बैबिंस्की-प्रयोग Babinski's reflex
बैसाखी crutch
बोरिक एसिड boric acid
बौना achondroplasia
ब्रह्मरंध्र fontanelle
ब्रैंडी brandy
ब्रोमाइड bromide
ब्लीचिंग पाउडर chloride of lime
भय phobia
भयानक स्वप्न nightmare
भवाली Bhowali sanatorium
भविष्य-कथन prognosis
भाँग cannabis, Indian hemp
भूत लगना
भौंह eye-brows
भ्रंश prolapse
भ्रम hallucination, illusion,
मंगोली लड़के Mongolism
मंदाग्नि (अग्निमांद्य) liverish feeling
मकान housing
मक्खन butter
मक्खी flies
मक्खीमार insecticides
मच्छड़ mosquito
मज्जाप्रदाह (हड्फूटन) osteomyelitis
मठ्ठा buttermilk, whey
मतिभ्रम delusion
मदिरा (शराब) alcohol
मन mind
मन्यास्तंभ (गरदन अँकड़ना) wry neck

मोम, मधुमक्षीका beeswax
यकृत (जिगर) liver
यूकालिप्टस eucalyptus
यू-डि-कलोन eue-de Cologne
यूरिक ऐसिड uric acid
यूरेमिया uræmia
यूसॉल eusol
यौवनारंभ adolescence
रक्त blood
रक्तचाप blood-pressure
रक्त जमना thrombosis
रक्त थूकना blood-spitting, hæmoptysis
रक्त-परिभ्रमण circulation of blood
रक्तमेह hæmaturia
रक्तवमन hæmatemesis
रक्तसंचय congestion
रक्तस्राव bleeding, hæmorrhage
रक्तस्रावी bleeders
रक्ताधिक्य hyperæmia
रक्तामलता acidosis
रक्ताल्पता anæmia
रक्तावरोध infarction
रगड़ friction
रतौंधी night-blindness
रसौली (अर्बुद) cysts, hydatid cysts, hæmatoma, melanotic carcinoma, teratoma, tumour, wen
रसौली, बच्चोंकी meningocele
राँगा tin
रिपोर्ट लिखाना notification of diseases
रिसोर्सिन resorcin
रीढ backbone
रुई cotton-wool
रूसी dandruff
रेंडी (एरंड) का तेल castor oil
रेक्टिफ़ायड स्पिरिट rectified spirit
रेचक (जुलाब) aperient, cathartic, purgative
रेडियम radium
रेनॉड-रोग Raynaud's disease
रेनेट rennet
रोग disease
रोगवाहक carrier
लँगड़ाना lameness
लँगोट suspensory bandage
लकवा facial paralysis
लकवा, बच्चोंका infantile paralysis
लक्षण birthmark, mole
लड़कपन infantilism
लड़खड़ाना ataxia, Friedrich's ataxia, locomotor ataxia
ललाट forehead
ललाटकोटर-प्रदाह sinus inflammation
लवण salts
लाइसोल lysol
लॉज़ेंज lozenge
लार saliva
लाल हो जाना, गालका blushing
लालाग्रंथि salivary glands
लाली, त्वचाकी erythema
लिंट lint
लिकरिस (यष्टिमधु, मुलहठी) liquorice
लिथियम lithium
लू sunstroke
लेखकोंका अँगुलिसंकोच writer's cramp
लैनोलिन lanolin
लोबान benzoin
लोशन lotion
लोह iron
वमन vomiting,—काला black vomit
वमनकारक औषध emetic
वर्णहीनता albinism
वर्णान्धता colour-blindness
वसा (चर्बी) fat
वस्तिगह्वर pelvis
वस्त्र clothing
वहम obsession
वाणी speech
वायु (हवा) air
वायु-आवागमन ventilation
वायुप्रणाली bronchi
वायु-प्रणाली क्षत bronchiectasis
वायु-विकार flatulence
वासरमैन-प्रक्रिया Wasserman's reaction
विकासवाद evolution
विकृत मूढ cretin
विक्षिप्तता neurosis
विटामिन vitamines
विश्राम rest
विश्राम-चिकित्सा Weir-Mitchell treatment

सुखंडी marasmus
सुन्न numbness, intermittent claudication
सुपाड़ी areca
सुषुप्ति trance
सुषुप्तिजनक hypnotic
सुषुम्ना spinal chord
सुषुम्ना-विनाश syringomylea
सुस्ती langour, lassitude, torpor
सूक्ष्मदर्शक यंत्र microscope
सूज़ाक gonorrhœa
सेंक hot applications
सेड्लिट्ज़ पाउडर Seidlitz powder
सेब apple
सेल cell
सैकरिन saccharin
सैनटोनिन santonin
सैलवरसन salvarsan
सैलिसिलिक ऐसिड salycilic acid
सोडा soda
सोडियम sodium
सोहागा borax
स्कर्वी scurvy
स्कर्वी, बच्चोंकी Barlow's disease
स्टार्च starch
स्टेथसकोप stethoscope
स्ट्रिकनीन strychnine
स्त्रियोंका स्वास्थ्य और रोग; ऋतु (मासिक धर्म) menses; खेरी after-birth; गर्भ pregnancy; गर्भवती-रक्षा antenatal care; गर्भ-स्राव abortion; गर्भाशय womb; गर्भाशयकला-प्रदाह perimetritis, गर्भाशय-कला-शोथ endometritis, गर्भाशय-क्षत cervix; गर्भाशय-प्रदाह parametritis, metritis; गुल्म, गर्भाशय का fibroids; चोली tight lacing; जननेन्द्रिय vulva, etc.; दब जाना, बच्चोंका overlying; प्रदर whites; प्रसव birth, labour; बहिर्गर्भाधान ectopic gestation, tubal pregnancy; बाँझपन sterility; भ्रूण embryo; मिचली, सबेरे की morning sickness; मोटापा, स्त्रियोंका adiposis dolorosa, myxodema; योनि vagina; योनिशूल vaginismus; योनिस्राव lochia; रजोनिवृत्ति menopause, change of life; रक्तस्राव flooding; श्वेत प्रदर leucorrhœa; सिज़ेरियन सेक्शन Cæsarean section; सूतिका ज्वर sapræmia, septicæmia; सौरी (सूतिका-गृह) preparation for child-birth; सौरी-निवास puerperium स्तन breast; स्तन-रोग nipples, diseases of; स्तन्योथ ज्वर milk fever
स्थानच्युति displacement
स्थानीय रक्ताल्पता ischæmia
स्नान bath
स्नायुदौर्बल्य neurasthania
स्नायुप्रदाह neuritis
स्नायुरोग (पैतृक) Huntington's chorea
स्नायुविकार nervous breakdown
स्नायुशूल pleurodynia, neuralgia
स्निग्ध चर्म seborrhœa
स्पंज sponge
स्पिरिट spirit
स्मरण-शक्ति memory
स्मेलिंग साल्ट smelling salt
स्रवित जल distilled water
स्वच्छता, निजी personal cleanliness
स्वप्न dreams
स्वयंप्रेरित क्रिया reflex action
स्वयंमादकता auto-intoxication
स्वयं-व्यंजन auto-suggestion
स्वर-भंग (गला बैठना) hoarseness
स्वर-यंत्र larynx
स्वाद taste
स्वास्थ्य health, tone
स्वास्थ्यप्रद देश health resorts
स्वास्थ्य-लाभ convalescence
स्वेदक diaphoretic
हकलाना stammering
हलीमक chlorosis
हल्दी turmeric
हवाका तकिया air-cushion
हर्षोन्माद ecstasy

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

एक सेकन्डमें १,२०,००० फ़ोटो

अमरीकाकी जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी ने एक ऐसा कैमरा बनाया है जिससे एक सेकण्डमें १२०००० फ़ोटो लिए जाते हैं। इसमें लेंज़के बदले सुई-छिद्र (पिन-होल) रहते हैं। कैमरा वस्तुतः एक चक्र है जिसमें एक हज़ार सुई-छिद्र रहते हैं, परन्तु प्रत्येक सुई-छिद्रका व्यास $\frac{१}{१००}$″ होता है। यह चक्र एक बेंड़े छेदके सामने नाचता है और यह छेद इस स्थितिमें रहता है कि एकसे अधिक पिन-होल एक साथ ही इस छेदके सामने नहीं पड़ते। आधे अश्वबलके मोटरसे यह चक्र ७२००० चक्कर प्रति मिनटके हिसाबसे नचाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक सुई-छिद्र बेंड़े छिद्रके सामने केवल $\frac{१}{१२००००}$ सेकण्ड तक ही रहता है। चक्र कटोरी के आकारका रहता है जिसकी दीवालमें सुई-छिद्र रहते हैं। इस दीवालसे सटकर फिल्म रहती है और इस प्रकार सुई-छिद्रोंसे एक-एक चित्र उतर आता है। इसलिये कैमरे से अत्यंत चमकीली वस्तुओंका ही चित्र खींचा जा सकता है। वस्तुतः यह कैमरा बिजलीकी चिनगारीकी परीक्षा करनेके लिये बनाया गया है जो बिजलीकी करेण्ट काटने पर उत्पन्न होता है।

मोजेकी मरम्मत

एक आविष्कारक ने ऐसी चकती बनाई है जो फटे मोजे पर रखकर इस्त्रीकर देनेसे ही मोजेमें चिपक जाती है और मोज़ा मजबूत तथा चिकना हो जाता है। इस-लिये फटे भागकी सिलाई या बुनाई करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

एक्सरश्मिके कैमरे से धड़कते हुये हृदय का फ़ोटो

एक ऐसा शक्तिशाली कैमरा अमरीकामें हालमें बना है जिसके खटकेको दबाते ही लाखों वोल्टकी बिजली चलती है। इससे इतनी बलिष्ठ एक्सरश्मियाँ उत्पन्न होतीं हैं कि $\frac{१}{६०}$ सेकण्डमें ही अच्छा चित्र उतर आता है। इसलिए इस कैमरेसे धकड़ते हुये हृदयका भी स्पष्ट फ़ोटो आता है। इस कैमरेसे चित्र खींचने पर रोगीको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। इस कैमरेसे वस्तुतः दो चित्र एक साथ ही खींचते हैं जिसे सैरबीनमें रखकर देखनेसे हृदय वास्तविक अवस्थामें दिखलाई पड़ता है।

कुम्हड़ा

[पृष्ठ १९८ के आगे]

चाहे गर्मीवाली फसलके बीज हों, चाहे बरसात-वालीके, दोनों तरहके बीज दोनों ऋतुओंमें बोये जा सकते हैं और वे अच्छे उगते हैं।

पहाड़ों पर मध्य मार्चसे जूनके अन्त तक बीज बोया जाता है। वहाँ पौधोंको छत पर चढ़ानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। तीन हज़ारसे चार हज़ार तक ऊँचे स्थानमें कुम्हड़े को उसी प्रकार बोना चाहिये जैसे ऊपर साधारण स्थानों-के लिए बतलाया गया है। परन्तु पाँच छः हज़ारकी ऊँचाईवाले स्थानों में पहाड़ पर बोनेके लिये बतलाई गई रीतिसे कुम्हड़ा बोना चाहिये।
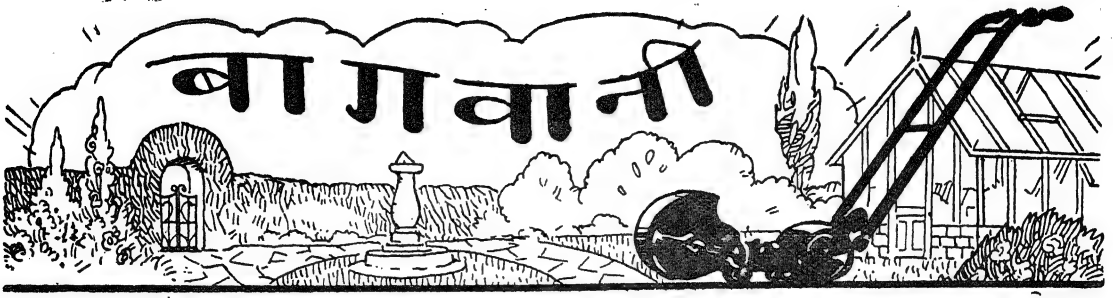
कुम्हड़ा

अंग्रेजी नाम पम्पकिन। लैटिन नाम कुकुरबिटा मुशाटा। अन्य देशी नाम कद्दू, सीताफल।

फरवरीसे लेकर मध्य जूलाई तक इसका बीज बोया जाता है। पहाड़ पर मध्य मार्चसे जूनके अन्त तक बोना चाहिए। एक औंस बीजसे चालीस-पचास अच्छे पौधे उगते हैं। बोनेके बाद २ से ३ महीनेमें फल तैयार होता है।

यह एक वार्षिक लता है जो भारतवर्षके बहुत स्थानोंमें उत्पन्न किया जाता है। इसके फलकी तरकारी बनती है। कच्ची और पक्की दोनों दशाओंमें इसकी तरकारी बनाई जाती है। कहीं-कहीं पेठेकी तरह साधारण कुम्हड़ाका पाग बनाया जाता है। कुम्हड़ेकी कई एक जातियाँ हैं। सबके फल स्वादमें एक-से होते हैं; परन्तु इनके आकार और रंगमें बहुत अंतर होता है। किसी जातिका फल चिपटा होता है और उसमें गहरी धारियाँ होती हैं। कुछ कुम्हड़े खरबूज़ेके आकारके होते हैं और धारियाँ बहुत छिछली होती हैं। कुछ लम्बे होते हैं। कुछके फल ३ सेरसे अधिकके नहीं होते, कुछके फल ४० सेरसे भी भारी होते हैं। फलके ऊपरवाले छिलकेका रंग बाज़में हल्का हरा होता है; यह रंग अन्य फलोंमें कुछ दूसरी ही तरहका होता है, यहाँ तक कि कत्थई या लाल रंग तकके फल होते हैं। परन्तु जब फल खूब पक जाते हैं तब इन सब फलोंका गूदा नारंगी लाल रंगका होता है। अच्छे बीज बेंचनेवालोंके सूचीपत्रमें पूरा ब्योरा और जातियोंके नाम मिलेंगे, परंतु नाम अकसर मनमाने होते हैं।

ऋतुके हिसाबसे कुम्हड़ेकी दो जातियाँ होती हैं। एक जातिका फल गर्मीकी ऋतुमें तैयार होता है और दूसरेका बरसातकी ऋतुमें। पहली जातिके कुम्हड़े जमीन में ही फैलते हैं, लेकिन दूसरी जातिके कुम्हड़े मकानके पास लगाये जाते हैं और उन्हें छत या छप्पर पर चढ़ा देते हैं।

कुम्हड़ा किसी भी ज़मीनमें बोया जा सकता है; लेकिन यदि ज़मीनमें खूब खाद दिया जाय तो फल खूब बड़े होंगे। गर्मीमें तैयार होनेवाले कुम्हड़ेको फरवरीसे लेकर अप्रैलके अन्त तक बोना चाहिये और बरसातमें तैयार होनेवाले कुम्हड़ेको जूनसे लेकर मध्य जुलाई तक बोना चाहिए। कहीं-कहीं पर कुम्हड़ेका बीज पहले क्यारियोंमें बोया जाता है और जब इसमें प्रारम्भिक पत्तियोंके अतिरिक्त दो-तीन नवीन पत्तियाँ निकल आती हैं तब पौधोंको उखाड़कर दूसरे स्थानोंमें पाँच-पाँच या छः-छः फुटकी दूरीपर लगा दिया जाता है। परन्तु अक्सर क्यारियोंमें बोनेके बदले बीज उसी स्थानमें बोया जाता है जहाँ पौधोंको अंत तक रखना रहता है और प्रत्येक स्थान पर केवल एक-एक बीज बोनेके बदले तीन-चार बीज बोया जाता है। यदि किसी स्थान पर दो चार पौधे उगते हैं तो केवल सबसे मजबूत पौधे को बढ़ने दिया जाता है। बीज बोनेके पहले, या यदि छोटे पौधोंको क्यारियोंसे उखाड़ कर रोपा जाता हो तो पौधा रोपनेके पहले, उस स्थानमें सड़ी हुई खाद अच्छी तरहसे देना चाहिए। विशेष कर उन पौधोंमें खाद खूब देनी चाहिए जो गरमीके दिनों में उत्पन्न किए जाते हैं। निराई भी अच्छी तरहसे करनी चाहिए, परन्तु जब ज़मीन कुम्हड़ेकी पत्तियोंसे ढक जाय तो निराईकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

जून और जूलाईमें बोये पौधोंको किसी ऊँची वस्तु पर चढ़नेका प्रबन्ध कर देना चाहिये, अन्यथा वे सड़ जायँगे। परन्तु कुम्हड़ेकी लताएँ इतनी भारी होती हैं कि यदि उन्हें काफी मजबूत चीज़ पर न चढ़ाया जाय तो अवश्य ही वे भहरा पड़ेंगी। इसलिये उन्हें अक्सर झोपड़ीके छप्पर या मकान की छत पर चढ़ाते हैं।

[शेष पृष्ठ १९७ पर]

अधिक नमक खाना हानिकारक है

[लेखक—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०, बीकानेर]

नमक दो तत्वोंका बना हुआ है, एक सैन्धकम् (sodium) और दूसरा हरिन् (chlorine) इन दोनोंमेंसे सैन्धकम् हमारे शरीरके पुट्ठे व तन्तुओंको बनानेमें काम आता है, लेकिन हरिन् हमारे पुट्ठे और तन्तुओं आदि किसीके काममें नहीं आता। बहुत थोड़ी-सी मात्रामें हरिन् हमारे आमाशयिक रसके बनानेके काममें आता है।

नमकका कार्य

हमारे शरीरके तन्तुओं और रुधिरमें जो तरल पदार्थ एक दूसरेसे आते-जाते रहते हैं, उनकी मात्राको नमक ही निर्धारित करता है। हमारे शरीरके सब कोष एक झिल्लीसे ढके रहते हैं। इस झिल्लीमें होकर रुधिरके पोषक तत्वकोषमें पहुँच जाते हैं और खराब मादा कोषमेंसे रुधिरमें आ जाता है। इस आने-जानेकी क्रियाका रहस्य क्या है? झिल्लीके दोनों ओरके दबाव घट-बढ़ कर इस आने-जाने को जारी रखते हैं। यदि रुधिरमें नमककी मात्रा बढ़ जाती है तो कोषमेंसे तरल पदार्थ अधिक मात्रामें निकलते हैं और वह सिकुड़ जाता है। लेकिन कुछ ही देर बाद रुधिरमें से कुछ नमक निकल कर कोषमें चला जाता है। यदि कोषके अन्दर नमक अधिक मात्रामें पहुँच जाता है तो वह अधिक पानी रखनेका प्रयत्न करता है और फूल जाता है।

अधिक नमक खाना

रुधिरके अन्दर एक स्वाभाविक गुण यह है कि वह सदैव क्षारीय रखनेका प्रयत्न करता है। इसलिए जब रुधिरमें नमककी मात्रा (अधिक नमक खानेके कारण) बढ़ जाती है तो रुधिरको अपनी क्षारीय प्रतिक्रिया बनाए रखनेके लिए नमकको शरीरके भिन्न-भिन्न तन्तुओंमें छोड़ना आवश्यक हो जाता है। एक तोला नमकके घुलनेके लिए ७० तोला पानी चाहिए। इसलिए हमारे शरीरमें नमककी मात्राके बढ़नेके फलस्वरूप हमारा शरीर बहुत आसानीसे ४ सेर या ६ सेर पानी अपने अन्दर रख सकता है। बहुत से मनुष्य इसीके कारण मोटे दिखलाई देते हैं।

अधिक नमक खानेकी हानियाँ

गुर्दे और स्वेद (sweat) ग्रंथियोंको इस नमकको शरीरसे निकालनेका भी काम करना पड़ता है। यही कारण है कि गुर्देकी बीमारीवाले मनुष्योंका शरीर भारी होता जाता है, क्योंकि गुर्दे नमक निकालनेका काम भली प्रकार नहीं कर पाते। कभी-कभी शरीर नाककी रतूबत, थूक व बलग़म द्वारा अधिक नमकको बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है, यह उस समय अकसर होता है जब कि नमक इतनी अधिक मात्रामें होता है कि गुर्दे निकालनेमें असमर्थ हो जाते हैं।

पहिले यह कहा जा चुका है कि नमकका एक काम यह भी है कि यह आमाशयिक रस बनाता है। इसके साथ-ही-साथ इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड (hydrochloric acid) जो कि आमाशयिक रसमें होता है, प्रायः सब शरीरके अन्दर ही रह जाता है, बहुत ही थोड़ा-सा अंश बाहर जाता है। इसलिए अधिक नमक खानेसे अधिक हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड बनेगा, जिसके फलस्वरूप आमाशयमें अम्लकी मात्रा बढ़ जायगी।

आमाशयकी बढ़ी हुई अम्ल-प्रतिक्रियाको रोकनेके लिए अधिक नमकके साथ अधिक सोडा बाई-कार्ब खाना हारिकारक है। हमारे शरीरको कैलसियमकी बहुत आवश्यकता है, इसके कम होने पर शरीरमें भिन्न-भिन्न रोग हो जाते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि हमारे शरीरके तन्तुओंको कैलसियमके मुक़ाबलेमें सैन्धकम् (sodium) से अधिक प्रेम है। इसलिए जो मनुष्य नमक अथवा सोडा बाई-कार्बके रूपमें सैन्धकम् काफ़ी लेते हैं, वे अपने शरीरमें कैलसियम अधिक मात्रामें नहीं रोक सकते।

ऐसे मनुष्योंकी संख्या, जो अधिक नमक खानेके कारण रोगके पंजेमें फँसे हुए हैं, उन मनुष्योंके मुक़ाबलेमें कहीं अधिक है जो कम नमक खानेके कारण रोगग्रसित हैं।

जीवन, जनन-क्रिया और मृत्यु

[पृष्ठ १७६ के आगे]

भी विभिन्नताके दृष्टि-पट खुलते जाते हैं और अन्तमें बिलकुल ही भिन्न हो उत्पादक साधनोंका खुलासा होता है। पौरुषीय-उत्पादक (spermatozoon) छोटा, पर सुईके समान लम्बा अपनी नोकसे स्त्री-उत्पादक (ovum) या कच्चे अण्डेको छेदनेमें प्रस्तुत-सा चेतनताका अवतार दिखलाई पड़ता है। परन्तु स्त्री-उत्पादक बड़ा होते हुए भी गोलासा भारी और निश्चल रहता है। जब दोनों परिपक्व होते हैं तो आप ही आप अथवा वाह्य उपकरणों (reproductive organ) द्वारा एक दूसरेसे मिलनेके उत्सुक होते हैं। दोनोंका यदि मिलाप संयोगवश हो जाता है तो पुरुष-उत्पादक अपनी नोकके जरिये स्त्री-उत्पादकमें सशरीर जानेकी चेष्टा करता है और असंख्यमें-से एक ही विरला वीर सफल होता है, परंतु उसे भी अपना पिछला-भाग या पूँछ बाहर ही छोड़ देनी पड़ती है। इन दोनोंके संयुक्तीकरणसे एक विशेष यौगिक-रूप बनता है जिसे अण्डेके नामसे हम पुकारते हैं। यही अण्डा दिन प्रति दिनकी वृद्धिमें अपने परिवर्तनोंको लेकर आप-ही आप अन्त:-भाग में विभाजित होता रहता है और फिर अपने नियमित कालमें शिशु-शरीरका रूप हो अण्डेकी पर्तोंसे बाहर निकल कर वाह्य-जगतका दर्शन करता है। यही शिशु बढ़ कर आगे युवक होता है और फिर अपने पिता-तुल्य प्राणीके समान ही जनन-क्रियामें अपने उत्पादक द्रव्योंको धारण करता है।

इस सम्बन्धमें दोनों छतोंका एक ही शरीर पर होना अथवा दो विभिन्न छतोंका दो शरीर प्राप्त करना जीवन-शास्त्र की महत्वपूर्ण कसौटीकी खरी परख है। एक ही शरीर पर दो छत होना यह मध्यम श्रेणी है और इसे द्विछत-अवस्था (hermaphroditism or bisexuality) कह सकते हैं। पौधोंके फूलोंमें भी यह छत-वाद मनोहरता, सुन्दरता और सुरभि-पूर्णताका आदेशक है।

जनन-क्रियाकी इन दो अवस्थाओंके अतिरिक्त एक और अद्भुत-अवस्था कृमि-जातिमें शासन करती है। जैसे हम इन दोनों विभक्तियोंसे परे देखते हुये संभावनाओंको पूर्ति का सफल-साधन है, समझ सकते हैं। इसे हम अव्यक्त-जनन-क्रिया के नामसे पुकारेंगे। छतों के होते हुये भी अपनी स्वार्थ-परताके हेतु कृमिगणों ने इस क्रियाका सहारा लिया, यही कहना उचित होगा। विरुद्ध-छत-शरीरकी कमी भी इसके प्रचारका कारण मानी जा सकती है। स्त्री-वर्गके कीड़ोंने जब अपने उत्पादकोंको जन्म दिया तब उन्हें बिना पुरुष-वर्गके उत्पादकोंकी सहायताके बाद एवं नवीन प्राणीमें परिवर्तित देखना चाहा और यही अव्यक्त जनन-क्रियाकी विशेषता है। इस क्रियाके विषयमें आधुनिक प्राणी-शास्त्रज्ञों ने काफी खोज-खाज और अन्वेषण किया है जिसके हरेक पहलू पर हम न जाकर उसकी वर्तमान युगकी उपयोगिता पर अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करेंगे। प्राणी-शास्त्रमें आधुनिक जानकारीसे क्या लाभ उठाया जा सकता है, यह बतलाना आवश्यक नहीं, किन्तु मानवताके उद्घाटनमें, सृष्टिकी महिमामयी-रचनामें इस रहस्य-पूर्ण प्राकृतिक-सूत्रोंका अपना निराला ही स्थान है। प्राणी जिसमें प्राण है और जो प्राणको भागने नहीं देना चाहता, किन्तु ज़िन्दादिलीसे अपने जड़ शरीरमें रखना चाहता है, अपने अन्तिम शत्रु निधनसे जिसको स्वाभाविक घृणा होती है, तथा धर्मके सिद्धान्तोंने जिस जनन-क्रिया पर अपनी टाँग अड़ा कर सभ्यताका नृत्य किया है वह सब जगतके जीवन-जनन और निधनके भय-आवरणमें छिपा है। यही जीवन-उद्गम जनन-रूपी सहायक सरिताओंके बल पर अपने प्रकट दम्भको लेकर मृत्यु-सागरमें विलीन होगा। यही प्रकृति-दर्शनकी अनोखा रस और भावोंकी मूक-भाषासे प्रतीत होता है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

क
१
२ ख
३
४
ग
घ

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५० | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | मार्च, सन् १९४० ई० | संख्या ६

रश्मिचित्रकी रूप-रेखा

[ले० श्री रमाशंकरसिंह, बी० एस-सी०]

न्यूटनने मरते समय कहा था कि "मैं जीवन भर समुद्रके किनारेकी सीपियाँ इकट्ठा करता रहा और भीतर पड़े हुये असंख्य रत्नोंकी मुझे कुछ खबर नहीं।" उसकी यह बात एक दृष्टिसे बिल्कुल सत्य जान पड़ती है। जब वह सफेद प्रकाशको सात रंगोंमें तोड़नेमें सफल हुआ था तब उसे क्या पता था कि प्रकाशकी सीमा केवल उन सात रंगों तक ही समाप्त नहीं हो जाती। आज हम जानते हैं कि प्रकाशकी किरणें लाल और बैंगनी किरणोंके परे भी हैं और जिन्हें न्यूटन प्रकाशकी इति-श्री समझे था वह इस घरानेका एक छोटा सा अंग था।

किरण-घरानेका पूरा चित्र जाननेके लिये हमें इस बातकी आवश्यकता है कि हम भिन्न-भिन्न किरणोंको अलग-अलग पहचान सकें। इसके लिये हम उनके किरणों-की लहरोंकी लम्बाई नापते हैं। बात तो कुछ अजीब-सी जान पड़ती है, किन्तु बहुत कुछ अंशोंमें ठीक है। जिस प्रकार नदीमें पानीकी लहरें किसी स्थानसे पैदा होकर चारों ओर फैलती हैं उसी प्रकार प्रकाशकी लहरें भी प्रकाशित वस्तुसे निकलकर चारों ओर फैलती हैं, अन्तर केवल यह है कि यहाँ लहरें चाहे छोटी हों या बड़ी हों, उनकी गति एक है। इससे यह स्पष्ट है कि यदि लहरें बड़ी हैं और केन्द्रसे किसी स्थान तक पहुँचनेमें उतना ही समय लेतीं हैं जितना छोटी लहरें, तो बड़ी लहरोंकी संख्या छोटी लहरोंकी संख्यासे उस निश्चित समयमें कम होंगी। वैज्ञानिक परिभाषामें इसे यों कहते हैं:—बड़ी लहरोंकी झूलन-संख्या (frequency) छोटी लहरोंकी झूलन-संख्यासे अधिक होती है। रश्मिचित्र मापक यंत्र द्वारा इन लहरोंकी लंबाई नापी जा सकती है। नीचेके चित्रमें भिन्न लहरोंकी लंबाई दी गई है।

	लहरें	लम्बाई
दृश्य	लाल किरणें	०·००००६ सेंटीमीटर
	बैंगनी किरणें	०·००००४ "
	पराकासनी किरणें	०·००००४सें० से·००००२ सें० तक।
	अन्तिम पराकासनी किरणें	·००००२ सें० से

	·००००0१ सें० तक।
एक्स-किरणें	१०·८ सें० मी०।
परालाल किरणें	·०००0७ सें० से ·०३ सें० तक
रौञन किरणें	२० सें० से १००० तक मी०

इससे यह स्पष्ट है कि जिन्हें हम प्रकाश कहते हैं वह प्रकाशका पूरा अंग नहीं। प्रश्न यह है कि इस घराने का नाम क्या हो। प्रकाश शब्दसे हम इसे प्रकट नहीं कर सकते, क्योंकि वायरलेस की लहरोंमें और प्रकाश में कोई सामंजस्य नहीं देख पड़ता। पूरे घरानेका नाम माँ-बापके नाम पर रखना ठीक होगा और इसीलिये उन्हें विद्युत-चुम्बकीय (electromagnetic) लहरें कहते हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं रहा कि इस परिवारके लोगोंमें इतनी भिन्नता है कि सहजमें यह पता चलाना कठिन हो जाता है कि सभी एक ही माँ-बापसे हैं, किन्तु अपने माँ-बापकी उपस्थितिमें इनके व्यवहार ऐसे होते हैं जिससे इस संबंधका जोड़ना सहज हो जाता है।

आइये, इस संबंधपर हम एक बार विचार करें। इसके लिये इस परिवारमें प्रकाशको ही लेना ठीक है क्योंकि इससे हम औरोंकी अपेक्षा अधिक परिचित हैं। प्रकाश पैदा कहाँसे होता है? बहुत कुछ छान-बीनके पश्चात् यह निश्चित है कि छोटे अणु जब बाहरसे अधिक शक्ति पाते हैं तो उन्हें प्रकाशके रूपमें निकाल बाहर करते हैं। प्रत्येक अणु दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। एक तो केन्द्रीय भाग और दूसरा बाह्य भाग। जिस प्रकार सूर्यको केन्द्र मानकर सौर-मंडलके सभी नक्षत्र और तारे उसके चारों ओर अपने-अपने मार्गपर घूमा करते हैं उसी प्रकार केन्द्रीय भागके चारों ओर एलेक्ट्रन चक्कर लगाया करते हैं। एलेक्ट्रन एक पदार्थ है जिसका भार बहुत ही कम है और विद्युतकी एक ऋण इकाईसे चार्ज किया गया है। इस विद्युतकी इकाईके चक्कर लगानेका परिणाम यह होता है कि केन्द्र पर चुम्बकके गुण आ जाते हैं। इस प्रकार विद्युत और चुम्बक दोनों वहाँ एक दूसरेके साथ सर्वदा विद्यमान हैं। बाहरसे जब उन्हें किसी प्रकारकी शक्ति प्राप्त होती है तो एलेक्ट्रन अपने मार्गको छोड़कर एक दूसरे बड़े मार्गका अनुसरण करने लगता है, किन्तु वह केन्द्रीय चुम्बकके निकट रहना चाहता है, अस्तु, इस अधिक शक्तिको प्रकाशके रूपमें निकालकर फिर अपने वास्तविक मार्ग पर आ जाता है। इस प्रकार प्रकाशके जन्मदाता हुये विद्युत और चुम्बक।

यदि उपरोक्त बात ठीक है तो विद्युत और चुम्बकके सामंजस्यसे हम भी इन लहरोंके पैदा करनेमें समर्थ हो सकते हैं। यह बात बिल्कुल सत्य है। वायरलेसकी लहरें भी इन्हीं दोनोंके सामंजस्यसे बनती हैं और वे भी उसी निश्चित चालसे चारों ओर को फैलती हैं। केवल अन्तर यह है कि लहरें इस दशामें बड़ी-बड़ी होती हैं और होना स्वाभाविक भी है। प्रकाशकी लहरोंका उद्गम अणु-के भीतर है। इसलिये उनकी लम्बाई भी बहुत छोटी होनी चाहिये।

अब हम प्रकाश-लहरों पर विचार करेंगे क्योंकि वे अणु द्वारा पैदाकी गई हैं। अस्तु, उस अणुके विषयमें जहाँ उनके माँ-बापका निवास है, कुछ पता अवश्य देंगी। सच पूछिये तो हम इन लहरोंको देखकर बता सकते हैं कि ये किस घरसे संबंध रखती हैं और इस प्रकार इस घरके विषयमें—भिन्न-भिन्न तत्वोंकी आन्तरिक रचनाके विषयमें—पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सारे तत्वों-का रश्मि-चित्र इस प्रकार जाँचा गया है और उससे यह पता चलता है कि इन्हीं एलेक्ट्रन के घटने-बढ़नेसे भिन्न-भिन्न तत्व मिलते हैं, किन्तु यह केवल बाह्य भागके विषयमें है, आन्तरिक भागमें भी कुछ परिवर्तन होता है। जिसका ज्ञान अन्य उपायोंसे होता है।

आप जानते हैं कि आकाशके तारे और नक्षत्र हमसे बहुत दूर हैं, किन्तु उनकी किरणें यहाँ आती हैं और उन किरणोंकी लहरोंकी लम्बाई जानकर हम पता लगा सकते हैं कि अमुक नक्षत्रमें अमुक तत्व विद्यमान हैं। आकाशमें नीहारिकायें हैं, इसका भी पता इसीसे लगा है। उदाहरणके लिये अग्रहायण (मृगशिरा) को जिसे अंग्रेजीमें ओरियन कहते हैं, लीजिये। ओरियन-ड में ओषजन और नोषजन-की रेखायें मिलती हैं। ये रेखाय तीन दिनों तक पृथ्वीसे दूर जाती जान पड़ती हैं और फिर तीन दिनों तक पृथ्वीकी ओर आती हुई जान पड़ती हैं। इससे पता चलता है कि

यह तारा अपनी धुरी पर चक्कर लगा रहा है। वहींपर सैंधकम् और कैलसियमकी रेखायें भी मिलती हैं किन्तु उनमें कोई हरकत नहीं देख पड़ती। ये रेखायें नीहारिकाकी हैं।

प्रकाशकी लहरों पर विद्युत-क्षेत्र अथवा चौम्बकीय क्षेत्र-का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रभावको समझनेके लिए जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि अणुका जैसा चित्र ऊपर दिया गया है उसपर इन क्षेत्रोंका क्या प्रभाव पड़ता है तो परिणाम बिलकुल ठीक निकलता है। संक्षेपमें हम इन्हें नीचे देते हैं।

ज़ीमन-प्रभाव :—प्रत्येक रेखा जो एक विशेष लहरकी द्योतक मात्र है, कई एक रेखाओंमें बँट जाती है जब प्रकाश करने वाली वस्तुको एक चौम्बकीय क्षेत्रमें रखते हैं।

स्टार्क-प्रभावः-जब प्रकाश करनेवाली वस्तुको एक विद्युत क्षेत्रमें रखने हैं तो प्रत्येक रेखा कई रेखाओंमें देख पड़ती है।

उपरोक्त दोनों प्रभाव इस बातके साक्षी हैं कि प्रकाश-को हम एक प्रकारकी लहर मान लें तो काम चल जाता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी प्रयोग हैं जिनका समझना लहरकी दृष्टिसे असंभव हो जाता है। वे इस बातकी ओर इंगित करते हैं कि प्रकाशकी किरणें पदार्थके टुकड़ोंकी तरह व्यवहार करती हैं। रमन-प्रभाव और कॉम्प्टन-प्रभाव इसी श्रेणीमें आते हैं। सन् १९२५में वैज्ञानिकोंने दोनों प्रकारके विरुद्ध विचारोंका सामंजस्य करते हुए एक नये सिद्धान्तका जन्म दिया जिसके द्वारा प्रत्येक प्रकारकी लहरका संबन्ध पदार्थसे और प्रत्येक पदार्थका सम्बन्ध लहरसे संस्थापित हुआ। इस प्रकारकी लहरें पदार्थ-लहर कहलाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दृश्य-प्रकाशका सम्बन्ध इस परिवारकी अन्य लहरोंके साथ 'पदार्थ-लहर' की दृष्टिसे सर्वथा उचित है। प्रकाशका भी पूरा भाग हम नहीं देखते, किन्तु उसे भी हम प्रकाश क्यों कहते हैं?

छोटी-से-छोटी एक्स-किरणकी लहर-लंबाई $१०^{-११}$ सें० के लगभग है और बड़ी वायरलेस लहरोंको लम्बाई दो-तीन हज़ार मीटर है। इसमें हम केवल दृश्य-प्रकाशको जिसकी लहर-लम्बाई ६×१०^{-५}सें० से ४×१०^{-५} सें० है, देख सकते हैं। कारण इसका यह है कि हमारी आँखकी सम्वे-दनता (sensitivity) केवल इस छोटे भाग तक ही सीमित है। प्रकाशकी भी पूरी सीमा नापनेके लिए इसके अन्य गुणोंका उपयोग करना पड़ा है। इसमें एक तो इन किरणों-की गर्मी है। यदि आप सफेद प्रकाशका रश्मि-चित्र एक पट पर डालें तो जहाँ पर लाल रंग समाप्त हो जाता है उसके बाहर भी गर्मीकी शक्ति नापी जा सकती है। इस प्रकार अदृश्य परालालका ज्ञान होता है। दूसरी ओर जहाँ बैंगनी रंग समाप्त हो जाता है उसके बाहर भी फ़ोटोग्राफी-का प्लेट रखने पर उसपर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार इन पराकासनी किरणोंका ज्ञान फ़ोटोग्राफ़ी-प्लेटके द्वारा हुआ है। इस पराकासनी भागमें हम वहाँ तक नीचे चले जाते हैं जहाँ पर इन पराकासनी किरणोंकी लम्बाई और एक्स-रे की लम्बाई लगभग समाप्त हो जाती है। इस प्रकार प्रकाश और एक्स-रे के बीच कोई खाली स्थान नहीं रह जाता। इसी प्रकार ऊपरके भी परालालका वृत्त वायर-लेस लहरोंके बहुत कुछ निकट पहुँच जाता है।

रश्मि-जगत यहीं तक समाप्त नहीं हो जाता। नित्य नई-नई रश्मियोंका पता चलता जा रहा है और उनके गुण जानने तथा उसका सामंजस्य अन्य प्रकारकी रश्मियोंके साथ स्थापित करनेमें ही वैज्ञानिक विफल हैं। अभी हालमें ही एक रश्मिका पता लगा है जिसे अन्तरिक्ष-रश्मि (cosmicray) कहते हैं। (radio active) पदार्थोंसे तीन प्रकारकी रश्मियाँ निकलती हैं जिन्हें अल्फ़ा, बीटा और गामा किरणें कहते हैं। अन्तिम गामा-किरण तो विद्युत चुम्बक लहरके परिवारसे सम्बन्ध रखती है किन्तु अन्य दो किरणें अन्य प्रकारकी हैं। ये किरणें अणुके केन्द्रीय भागसे आती हैं। इस समय तो ये किरणें अप्राकृतिक रूप-में भी बनायी जा रही हैं और भिन्न-भिन्न अणुओं पर इन तेज़ किरणोंके आक्रमणोंसे अणुका केन्द्रीय भाग जिसे धनाणु कहते हैं, टूट कर अन्य वस्तु बन जाता है। उसके भीतर से कई प्रकारकी रश्मियाँ भी निकलती हैं जो उपरोक्त रश्मियोंके समान भी हैं और कुछ भिन्न भी हैं। इस प्रकार रश्मियोंकी सीमा नहीं देख पड़ती है और निकट भविष्यमें क्या होगा, इसके लिए हमें न्यूटनकी बात याद रखनी चाहिए कि 'समुद्रकी मुझे खबर नहीं' रश्मि-चित्रकी रूप-रेखा पूर्णतया हमारे सामने नहीं आई है।

फ़ासफ़ोरस

[ले०—श्री रामचन्द्रजी तिवारी]

अभी उस दिन समाजमें भूतोंके अस्तित्वके विषयमें एक मनोरञ्जक चर्चा हुई। एक नव-युवाने उनका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए मोटी-मोटी पुस्तकों तथा भारी-भारी नामोंका प्रमाण दिया। उनके भाषणमें ऐसी तरलता और योग्यता थी कि कुछ लोगोंको सभी-स्थानमें ही भूतोंके विराजमान होनेका भ्रम हो गया।

विरोधी युवाने कहा कि हम केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं, किसीके कहे-सुने पर विश्वास नहीं करते।

बात तेज़ थी। भूतवादी सज्जनको लग गई। वे तमक कर उठे और चैलेंज स्वीकार किया। उन्होंने कहा आज रातको मैं श्मशानमें भूतोंके विद्यमान होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकता हूँ। कितने लोग मेरे साथ चलनेको तैयार हैं। किसीके मरने-गिरनेकी जिम्मेदारी मैं नहीं लेता।

यह खोजका युग है। पुराने लोगोंकी बातोंको ज्योंका त्यों मान लेनेकी वृत्ति धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। लोगोंने सोचा भूत मिले या न मिले चख ही सही और एक दर्जन मनुष्योंकी टोली श्मशान जानेको तैयार हो गई।

लोग श्मशान पहुँचे। चारों ओर घोर अँधेरा छा रहा था। नेताने कहा, "ठहरो" और एक अँगुलीसे संकेत किया। कोई चीज़ बार-बार चमक जाती थी। वह अग्नि न थी।

उन्होंने बताया कि यह मौन हँसीमें भूतोंके दाँतोंकी चमक है। सूक्ष्म शरीर होनेके कारण उनका स्वर हमें सुनाई नहीं देता। भूतोंके अस्तित्वका इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिए? डर हुआ कि वह कहीं हमारा अनिष्ट न कर बैठे। हमने पीछे फिर कर जो देखा तो केवल अपने दोनोंको ही वहाँ पाया। भूतवादी भाईको विश्वास हो गया कि शेष साथी हो न हो भूत-चक्रमें पड़ गए। वे डरे कि कदाचित उनकी बारी है। उन्होंने भागना चाहा। पकड़ने तथा बहुत कहने-सुनने पर वे उस चमकती वस्तुके पास जानेको राज़ी हुए।

हमने पास जाकर देखा कि एक हड्डीका टुकड़ा बुझी चिताके पास पड़ा है और रह-रह कर उसमेंसे चमक मार जाती है। मैंने उसे हाथमें उठाया, वह गर्म था। मैंने कहा, "कहिए, महाशय, अब आपका भूत हमारे हाथमें है या नहीं।" वे सकमकाये पर मौन रहे। मैं हड्डीको नीचे डालना ही चाहता था कि चमकते हुए भागमेंसे किसीने कहा।

"तुम कौन हो?"

"मनुष्य"

"यहाँ क्या कर रहे हो?"

"कुछ विशेष नहीं, भूतोंके अस्तित्वका निर्णय कर रहे थे।"

"मूर्ख, मनुष्यके बराबर मूर्ख जोव मैंने अपने खरबों वर्षके जीवनमें कोई नहीं देखा। भले लोगो! क्या तुमने मुझे भूत समझ लिया था?"

"हाँ" हमने दबी ज़बान से कहा।

आवाज़ आई "मैं भूत नहीं, प्रत्यक्ष वर्तमान हूँ। मैं अनन्त कालसे ऐसा ही चला आता हूँ। मेरी महानताका तुम्हें क्या पता। तुम चार दिनके जीवनमें जितना फूल जाते हो उसी हिसाबसे यदि मैं फूलने लगता तो जानते हो क्या होता?"

"क्या होता?"

"यही कि संसार में, ब्रह्माण्डमें आज मेरे अतिरिक्त और कुछ भी न होता।"

हमें इसे कथनसे कुछ रुचि हुई। हमने पूछा "क्या आप कृपा कर बतायेंगे कि आप कौन है?"

"मैं फ़ासफोरस हूँ"

"तुम यहाँ कैसे आये?"

हड्डीमेंसे हँसनेकी आवाज़ आई।

"तुम्हें सुनानेसे मेरी कहानीका मूल्य कुछ घटता ही है, बढ़ता नहीं। परन्तु अँधेरा है, अकेला हूँ। इससे चलो तुम्हारे साथ ही मन बहलेगा। लो सुनो।

"यदि कल्पना कर सकते हो तो सोचो कि आजसे खरबों वर्ष पहिले इस ब्रह्माण्डके स्थानमें मैं गैस-रूपमें उड़ा फिरता था। चारों ओर असंख्य चमकते ग्रह उपग्रह धुएँ जैसे आवरणोंमेंसे बन-बन कर निकल रहे थे। वे लट्टूकी भाँति इधर-उधर आकाशमें तेज़ीसे घूम रहे थे। मुझे ऐसा

जान पड़ता था कि ब्रह्माण्ड निरा लपटोंसे भरा है। उन दिनों लपटोंकी चोटी पर मुझे इधर-उधर घूमनेमें बड़ा आनन्द आता था। वैसा झूलना मुझे फिर कभी प्राप्त न हुआ। लपटोंसे दूर स्थानमें घोर अंधकार छाया हुआ था। उस भयावह अँधेरेको देख कर मेरा हृदय काँप उठता था और मैं मनाता था कि हे ईश्वर ! मुझे कभी वहाँ न ले जाना।

"जिस महान पिण्डकी धरातल पर मैं किलोलें करता था वह सूर्य था। एक दिन मैंने चाहा कि सूर्यके भीतरी भाग को चल कर देखना चाहिए। मैंने अन्दर जाना प्रारम्भ किया। मुझे अनुभव हुआ कि सूर्यके गर्भमें असाधारण उथल-पुथल हो रही है। बड़े ज़ोरोंके विस्फोटन तथा धमाकेकी आवाज़ सुनाई दी। सारा पिण्ड मानों काँप उठा और मैं एक प्रकार मूर्छित-सा हो गया। जब होशमें आया तो मुझे अनुभव हुआ कि सूर्यका एक भाग टूट गया है और मैं उसी पर चला आया हूँ। यह हमारी पृथ्वी है।

"पृथ्वी जैसा कि आजकल तुम सब जानते हो सूर्यके चारों ओर चक्कर लगा रही है। जिन दिनोंकी बात मैं कह रहा हूँ उन दिनों यह सूर्यके समान आगका गोला था। मैं इसके गर्भमें बन्द था। वहाँ बड़ा घोट था। बाहर निकलनेका मैं बराबर प्रयत्न कर रहा था। ज्यों-ज्यों मैं भीतरसे भूमि-की धरातलकी ओर बढ़ता आया गर्मी कम होती गई मानों पृथ्वी ठण्डी हो रही हो। यकायक मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि मैं एक विचित्र तरल पदार्थमें आ फँसा। यह तुम्हारा समुद्र था। अबसे पहिले मैंने अपने जीवनमें पानी का कभी नाम भी न सुना था। मेरे जीमें आया कि इसको मल पदार्थमें इधर-उधर घूम कर आनन्द उठाऊँ। मैं भूमिसे निकलकर इधर-उधर घूमने लगा। परन्तु जो कुछ हम लोग सोचते हैं वह पूरा उतरेगा ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैं एक दिन समुद्रके गर्भमें टहल रहा था कि एक भद्दे छोटे पेड़की जड़ मेरे ऊपर टूट पड़ी और मुझे चट कर गई। मैं कुछ दिनों तक उस पेड़के शरीरमें बन्दी बना रहा। वृक्षके शरीरमें अन्य बन्दी तत्वोंसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और हमने अपना गृह बना लिया। हम सोचते थे कि संघ-शक्ति है परन्तु हमारा संघ इतना शक्ति-शाली न था कि अपनी रक्षा कर सके। हम बन्दी होने पर भी आनन्दसे थे। एक दिन हम जब मस्तीमें झूम रहे थे पानीमें एक ओर खलबलाहट सुनाई दी और देखते ही देखते सहस्रों छोटे-छोटे कीड़े आकर पेड़से लिपट गये और निर्दयतापूर्वक उसे चबाने लगे। उनके पेटमें पहुँच कर मुझे तीखे विषैले रसोंका सामना करना पड़ा। इनके शरीरकी बनावट चक्रव्यूहसे कम न थी। मैं उसमें ऐसा फँसा कि निकलना ही दूभर हो गया। हाँ, इतना लाभ अवश्य हुआ कि उसके साथ-साथ मैं समुद्रमें घूम-फिर सका। इसके बाद मेरी यात्रा तेज़ीसे प्रारम्भ हुई। जिस कीड़ेके शरीरका मैं भाग था उसे एक मछली खा गई। यह मछली भी बहुत दिनों तक जीवित न रह सकी और उसके साथ मुझे मच्छके उदरस्थ होना पड़ा। यह मच्छ बहुत बड़ा था। एक दिन वह समुद्रके किनारेके जलमें घूम रहा था कि अचानक पृथ्वी हिली और समुद्रका गर्भ ऊँचा उठ गया। पानी बह जानेसे वह मच्छ भूमि पर तड़प-तड़प कर मर गया। उसके सड़ जाने पर वहाँ पर घास उगी और उन्होंने मुझे अपनी जेबमें डाल लिया। शीतल वायुमें हरी-हरी घासोंका लहलहाना मुझे बड़ा अच्छा लगता था। हम एक दिन बड़े ध्यानसे अपने पिता सूर्यके दर्शन कर रहे थे कि एक हरिण आकर हमें चर गया। दो दिन बाद जब वह एक नदीके तट पर पानी पी रहा था तो पास ही लम्बी-लम्बी घासोंमें छिपा चीता कुछ सोच रहा था।

"हरिणने सिर ऊपर उठाया ही था कि उसकी गर्दन चीतेके भारसे टूट गई और मुझे हरिणके मांसके साथ चीते के शरीरमें स्थान मिला। मैं इस समय सर्वव्यापी हूँ। वृक्षोंके बीज और फल मेरे बिना नहीं हो सकते। मनुष्य और पक्षियोंका अस्तित्व मेरे बिना न हो पाता। मैं ही तो उनके शरीरका ढाँचा बनाता हूँ। हड्डियाँ क्या मेरे बिना बन सकती थीं ? जब मूर्ख मनुष्य मेरा निरादर करता है तो उसके शरीरमें मेरी यात्रा कम हो जाती है और फेफड़े, हड्डी और रक्त आदिके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तब वे अपनी मूर्खता पर पछताते हैं और उन औषधियोंका सेवन करते हैं जिनमें मैं विराजमान हूँ। फ़ासफ़ोरसके तेलकी पूजा बड़ी धूम-धामसे होती है।" इसके पश्चात् हड्डीमेंसे आवाज़ आनी बन्द हो गई। मैंने पूछा, "फ़ासफ़ोरस महाशय ! आपका शरीर इस प्रकार चमकता क्यों है ?"

आवाज़ आई "सुनो ।

"मैं साधारण अवस्थामें कभी अकेला रहना पसन्द नहीं करता । मध्य यूरोपमें ब्लांड नामक एक कीमियागर था । उसने एक दिन मूत्रको लेकर आगपर चढ़ा दिया । जब उसमेंसे लगभग सब पानी उड़ गया तो उसने शेषको ऐसे बन्द गर्म स्थानमें रक्खा जहाँ वह सड़ने लगा । इस दुर्गंधि से मेरी नाक फट चली । फिर उसने इस सड़े पदार्थमें रेत मिलाकर गर्म किया और जो कुछ भाप उसमेंसे निकली उसे एक पानीके बर्तनमें लिया । मैं अवसर पाकर भापके साथ भागा और पानीमें आकर जम गया । मेरी प्रकृतिमें अकेलापन नहीं । मैं ओषजनसे स्पर्श करते ही उससे रासायनिक रीतिसे मिल जाता हूँ । इस मिलनसे एक प्रकाश उत्पन्न होता है । जिसे तुम अँधेरेमें देख सकते हो, इसी चमकको तुम भूत समझते थे ।

"अब मैं अकेला अपने वास्तविक रूपमें अवतीर्ण हुआ । जिन लोगोंने मेरा पता लगाया उन लोगोंने मेरे बुढ़ापेका ध्यान न रख कर मुझे तमाशा समझ लिया और बाजीगरों-की भाँति मेरे गुणोंको दिखा-दिखा कर पैसे पैदा करने लगे । मैं एक पानीसे भरी बोतलमें बन्द कर दिया गया । मैं अब तक स्वतंत्र था, अब मनुष्यका दास बना । मैंने मनुष्यकी सदा सेवाकी, परन्तु उसने मुझे अपने मित्रोंसे पृथक कर सदा दुःख पहुँचाया । मैं बड़े-बड़े कारखानोंमें बनाया जाता हूँ और लाखों मन हड्डियाँ जो पहिले खेतोंमें खादका काम देती थीं रेलों और जहाजोंपर लदी इन कारखानोंको चली जाती हैं । मूर्ख मनुष्योंको पता नहीं कि वे मेरे साथ-साथ अपने जीवनसे भी हाथ धो रहा है ।

"मैं साधारण, बहुत शांत स्वभाव तथा प्रेमी जीव हूँ । पर मनुष्यने मुझे छेड़ कर अच्छा नहीं किया । उसने मेरे स्वभावको चिड़चिड़ा और प्रतिहिंसक बना दिया है । इसीसे मैं अपने कारखानोंमें काम करनेवालोंसे रुष्ट रहता हूँ और अवसर पाते ही उनके जबड़ेकी हड्डियाँ गला देता हूँ । अबोध मनुष्यपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वह मुझे गर्म करता है और मेरे श्वेत शरीरको लाल रंगमें परि-वर्तित कर देता है । मैं उस दशामें खण्ड-खण्ड हो जाता हूँ । इस कष्टसे मैं कितना दुःखित होता हूँ यह मैं नहीं कह सकता ।

"परन्तु यहीं बस नहीं है । मनुष्य मुझे और भी तंग करते हैं । वे बड़े-बड़े पेड़ोंकी छोटी-छोटी तीलियाँ बनाते हैं और फिर ऐसे पदार्थों के साथ जिनमें मेरी सखी ओषजन अधिकतासे विराजती है, मुझे मिला कर उनके सिरोंपर लगाते हैं । इस प्रकार आग लगाई (दियासलाई) बनाते हैं । दियासलाईके प्रारम्भिक दिनोंमें मनुष्य मुझे पूर्णतया समझ न पाया था । यह मेरे श्वेत शरीरको ही उनके सिरों पर लगा देता था । उन दिनों दियासलाई साधारण घिसनेसे अथवा थोड़ी भी गर्मी पानेसे जल उठती थी । मैं भी इस प्रकार उसके घरोंमें आग लगा कर बड़ा प्रसन्न होता था ।

"अब वह मेरी दुर्बलता समझ गया है, सेफटी मैचज़ (आजकलकी दियासलाई) में मेरा लाल शरीर, जो श्वेत शरीरकी भाँति जलनशील नहीं है, केवल दियासलाईके बक्सपर लगाता है । तीलियोंके सिर पर नहीं । इसलिए जब तक वह बक्सपर दियासलाई न घिसे अग्नि उत्पन्न नहीं होती ।"

उसकी यह बात सुन कर मुझे अपने मनुष्य होनेपर गर्व हुआ । मनुष्य भला न सही बुरा ही करता है लेकिन जो कुछ करता है उसमें अपनी बुद्धि लगाता है और बड़े विचार तथा परिश्रमसे तौल-तौलकर कदम उठाता है । क्यों, यह कम गर्वकी बात है ? ईसाकी हथेलियोंमें जिस मनुष्यने कील ठोंकी होगी वह क्या कोई साधारण कारीगर हो सकता है । झूठ बोलने और ठगनेमें प्रस्तुत बुद्धिकी आवश्यकता है इसे क्या कोई दुनियादार इनकार कर सकता है ? मैं इस प्रकार मनुष्यकी महानतापर विचार कर रहा था कि वह हड्डी एक बार हिली और आवाज़ आई ।

"मैंने अपना सारा जीवन रचने और सहायता देनेमें बिताया । परमात्माकी सभी सृष्टि विकासके लिए है । स्वार्थी विनाशकी योजना इसमें नहीं । मनुष्यने मुझे चूहों तथा अन्य छोटे-छोटे कीड़े मारनेके लिए विषकी भाँति प्रयुक्त किया है । मेरे निरपराध शीशपर बरबस हत्या लादी गई है । मानव शरीर जिसके बिना खड़ा नहीं रह सकता उसीको जलन-शील विस्फोटक, विष आदि नामोंसे सम्बोधित किया जाता है । यह मानवी कृतज्ञताकी पराकाष्ठा है ।"

मुझे उसकी बात कुछ लगी, परन्तु वह सही थी ।

मेरे भूतवादी मित्र जो अब तक अपने भूतकी वाणी सुन रहे थे, बोले।

"तुम फ़ासफ़ोरस ही सही। परन्तु जड़ हो, मूर्ख हो, बुद्धि तुम्हें छू नहीं गई है। तुमने प्राणीशास्त्र नहीं पढ़ा। परमात्माने मनुष्यको इतना बड़ा मस्तिष्क व्यर्थ नहीं दिया। उसने उसे अपना वायसराय बनाकर सृष्टिपर शासन करनेको भेजा है। तुम जो हड्डीमें छिपे बातें बना रहे हो उसकी इच्छा मात्रसे खींचकर बाहर निकाल लिये जाओगे।

"हाँ, यह तुम कर सकते हो। परन्तु क्या तुम्हारे ईश्वर ने तुम्हें अपने ऊपर शासनका अधिकार नहीं दिया है।"

वह हड्डी इसके बाद न जाने कैसे नीचे गिर गई। बहुत देर तक आँखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी उसमें चमक दिखाई न पड़ी। वह अब हड्डी हो चुकी थी।

फ़ासफ़ोरसके अन्तिम वाक्य पर विचार करते हम लौट पड़े।

जीवनोपयुक्त-परिस्थितियाँ

(ले० श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, ट्रेनिंग कालेज, आगरा)

पिछले लेखोंमें हमने देखा था कि किस प्रकार ब्रह्माण्ड कैथ फलकी भाँति एकसे बिखर कर अनेक हुआ। फिर उस अनेकके प्रत्येकमेंसे पुनः अनेक प्रस्फुटित हुए। इस प्रकार होते-होते आज असंख्य प्रकाश-पिण्ड दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं पिण्डोंमेंसे हमारा ग्रह पृथ्वी भी एक है। यह ग्रह अन्योंकी भाँति प्रारम्भमें गैस अवस्था वाला था। शनैः-शनैः तरल हुआ, फिर कड़ा हुआ वायु-मण्डल, चन्द्र; समुद्र, खड्ड, जल-वृष्टि, पर्वत-शृंखला, प्रायद्वीप-माला आदिकी अभिव्यक्ति हुई। भूजन्मके समय चन्द्रमा पृथ्वीके अति निकट था, दो-दो मील ऊँचे ज्वारभाटे उठा करते। धरातल उत्ताल तरंगोंमें फँसी हुई नौकाकी भाँति दोलित हुआ करता। ज्वालामुखी-पर्वत अहर्निशि रक्तोष्ण लावा उगला करते, समस्त वायु-मण्डल तिमिड़ धूम्र और तीव्र गंधक की चिरायँधसे ओत-प्रोत रहते। पृथ्वीकी परिक्रमण-गति द्रुततर होनेके कारण दो घंटेका दिन और दो घंटेकी रात होती। धीरे-धीरे जैसे चन्द्रमा पृथ्वीसे दूर हटता गया रात्रि-दिवस-परिमाण बढ़ता गया। हम देखना चाहते थे कि धरा-निर्माणके पश्चात् कितने समय पीछे व कहाँ जीवन प्रारम्भ हुआ, किन्तु इसे देखनेके पूर्व यह समझना अनिवार्य-सा हो गया कि जीवन-विकास निरीक्षण करने जा रहे है उसके पहले जीवन क्या है और उसके टिके रहनेके लिए उचित परिस्थितियाँ कौन-कौन हैं अध्ययन कर लिया जाय। जीवन क्या है? इसके विषयमें पिछले माह हम लोगोंने देखा था कि समस्त जीवोंका आधार प्रोटोप्लाज़्म नामक जीवित तरल पदार्थ है। यह पदार्थ चार तत्वोंके योगसे बनता है—नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा कारबन। जब ये तत्व उचित अनुपात में सम्मिलित होते हैं तभी जीव-मात्रका उद्भव सम्भव होता है। किन-किन परिस्थितियोंके होने पर वे तत्व उचित अनुपातमें सम्मिलित होते हैं यही उपस्थित लेखका ध्येय है।

डाक्टर वैलेसके मतानुसार उचित परिस्थितियाँ निम्नांकित हैं।

(१) उष्णता-वितरण व्यवस्थित हो।

(२) सूर्य-प्राकाशकी मात्रा समुचित हो।

(३) जल-परिमाण विपुल किन्तु अखिल ग्रहमें समरूप से वितरित हो।

(४) आवश्यकीय गैसों तथा यथेष्ठ घनत्वयुक्त वायु-मंडलका पाया जाना।

(५) रात्रि-दिवसके आवागमनकी नियमित व्यवस्था।

इनमेंसे प्रत्येकका सूक्ष्म दिग्दर्शन अनुपयुक्त न होगा। अतः स्वतंत्र विधिसे देखा जाय। पहली परिस्थिति है:—

तापक्रमकी सीमित अवधि

इससे ऊपर उठने या नीचे गिरने पर जीवन-अस्तित्व असम्भव है। इसका कारण यह है कि केवल इन्हीं अंशोंके तापमानमें नाइट्रोजन इत्यादिके पदार्थ उन तत्वोंको उचित

मानव-विकास नामक अप्रकाशित पुस्तकके तृतीय सोपानका उत्तरार्द्ध।

अनुपातमें बनाये रख पाते हैं जिनका होना जीवनके लिए अत्यावश्यक है। प्रोटोप्लाज्मके चारों तत्वोंकी उपयुक्त मात्रा इन्हीं अंशोंमें एकत्रित रह पाती है। कम अधिक होने पर बैलेन्स नहीं रहता।

निश्चित मात्राके तापक्रमकी महत्ता इसी एक बातसे आँकी जा सकती है कि उसे बनाये रखनेके लिए अगणित गुप्त व प्रकट साधन जुटाने पड़ते हैं। स्वस्थ मानव रुधिर-का साधारण ताप-क्रम ९८° डिग्री है, वाह्य जगतका ताप-मान फ्रीज़िंग प्वाइंटसे चाहे कितना ही कम क्यों न हो जाय, किन्तु मानव अपने भीतरका तापक्रम घटने नहीं देता। अग्नि, ऊनी वस्त्र, धूप, भोजन आदिकी सहायतासे महा शीतके क्षणोंमें भी शरीरका ताप उतना ही बनाये रखता है। पशु-पक्षियोंके लिये केश रचना, वृक्षोंके लिये मोटी छाल अथवा बक्कल ही शीतको शरीरके भीतर प्रविष्ट नहीं होने देते। रुधिर तथा रसका ताप अविकल्प रहता है। तात्पर्य यह है कि वाह्य वातावरणका ताप चाहे जितना कम हो जाय, किन्तु रुधिर व रसका तापमान कम नहीं होता। यदि कहीं वह भी सीमासे नीचे गिर जाय तो जीवन समाप्त हो जाय। आस्ट्रेलिया व मध्य-भारतका तापक्रम जिन दिनों ११५° या १२०° रहता है उस समय भी मनुष्य तथा अन्य जीव अपने रुधिर-तापको जीवन-सीमासे आगे नहीं बढ़ने देते।

हम देखा करते हैं कि यदि किसी व्यक्तिका तापक्रम १०६° तक पहुँच जाय तो उसका जीवित रहना संदिग्ध हो जाता है। साधारण तापक्रमसे छः या सात डिग्री ताप बढ़ते ही भयंकर परिणाम उपस्थित होने लगते हैं; कितनी नाज़ुक परिस्थिति है। हम सब केवल आठ डिग्रीके भीतर रहते हैं।

ऊपर हमने देखा था कि वाह्य ताप चाहे जो बना रहे पर रुधिर-ताप ९७ से कम और १०७ या अधिकसे अधिक १०८ से ऊपर न होना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि बाहरका तापक्रम चाहे जितने समय तक, चाहे जितना कम या अधिक बना रहे भीतरी तापपर प्रभाव ही नहीं डालता। बाहरी तापका भीतरी ताप पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह असम्भव है कि बाहरका तापमान फ्रीज़िग प्वाइंटसे नीचे उतर आवे पर भीतरी तापमान अप्रभावित और अछूता बच जाय। एवरिस्टकी चढ़ाई पर जिस ऊँचाई तक भीतरी ताप बाहरी तापसे मेल खाता रहा कोई हानि न हुई, पर अधिक ऊँचाईमें जाते ही भीतरी तापमान अपनी पूर्वावस्थाको स्थिर न रख सका जीवन समाप्त हो गया।

विषम सीमाओंका ताप अधिक देर तक बना रहना जीवनके लिये अहितकर है। पृथ्वी का कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ बारहों मास एक ही मात्राका टेम्परेचर रहता हो और एक ही ऋतु रहती हो। यह सत्य है कि शीत प्रधान ध्रुव-प्रदेशों में ताप बहुधा फ्रीजिंग प्वाइंटसे नीचे रहा करता है, किन्तु सदैव नहीं। यदि सदैव रहता है तो वहाँ किसी प्रकारका पौधा या पशु विकसित नहीं हो सकता।

यदि सम्पूर्ण धरातलका ताप सदा वही रहा करता जो ध्रुव-प्रदेशोंका है, अथवा इसके ठीक विपरीत हुआ होता तो यह भी निर्जीव ग्रह हुआ होता। यह कल्पना भ्रममूलक है कि इस समय और भाँतिके जीव हुये होते—ऐसे जीव जो उस तापमें ही जीवित बने रहते। यह प्रमाणित हो चुका है कि तापमानकी निश्चित सीमाओंसे नीचे अथवा ऊपर जानेसे प्रोटोप्लाज्मके तत्व पारस्परिक अनुपातमें रह ही नहीं सकते। जीवाणु निर्जीव हो जाते हैं। तापका उत्पादक

सूर्य-प्रकाश

है। अन्य परिस्थितियोंके होते हुये भी इसके अभावमें जीवन सम्भव था, संदिग्ध है। हमने देखा था कि पशु-पक्षियोंका जीवन वनस्पति पर निर्भर है। वनस्पतिका जीवन अन्य बातोंके साथ ही साथ सूर्य-रश्मि पर निर्भर है। इसीकी सहायतासे पत्तियाँ वायुमण्डलकी कारबोनिक ऐसिड गैस खींचा व पचाया करती है।

सूर्यसे दूरी भी कम महत्वकी नहीं। अत्यन्त निकट अथवा अत्यन्त दूर होनेपर तापक्रमके बढ़ने-घटनेकी गड़-बड़ियाँ हो सकती थीं। गणित द्वारा देखा गया है कि यदि हमसे सूर्यकी दूरी वर्तमान समयसे आधी हुई होती तो तापमान वर्तमान समयसे चौगुना हुआ होता, यदि दूरी दूनी होती तो ताप आधा मिलता होता। दोनों ही दशाओंमें जीवन असम्भव था।

सौर-मण्डलके मध्य हमारे ग्रहकी स्थिति बड़े अच्छे

स्थान पर है। न तो सूर्य-ताप अत्यधिक आता है और न अत्यल्प। कहा जाता है कि हम लोग सौर-मण्डलके शीतोष्ण कटिबन्धमें हैं। जीवनोपयोगी परिस्थितियोंमें ताप व प्रकाशके पश्चात् तीसरा स्थान

जल

का है। समस्त भूमण्डल पर कोई प्राणी जलशून्य नहीं है। यदि पृथ्वीसे वृक्षोंकी जड़ें जल न सोखतीं तो पत्तियाँ सूख जातीं और प्रोटोप्लाज़्म न बन पाता। तरलता लानेका श्रेय इसे ही है। हमारे शरीरमें कई पदार्थ सम्मिलित हैं। इनमें अकेले जलका भाग कुलका तीन चौथाई है। शेष एक चौथाईमें अन्य पदार्थ हैं।

जलका अस्तित्व मात्र पर्याप्त नहीं है, अपितु समस्त धरातल पर समान वितरण भी आवश्यक है। प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होना आवश्यक है। जलको कोने-कोने तक पहुँचाना समुद्रका काम है। समुद्री गड्ढोंमें जलराशि संचित रहती है, वाष्प बनकर उड़ती, दूर-दूरके स्थानोंको जहाँ जलकी कोई सम्भावना नहीं, पहुँचा करती और पानी का रूप धारण किया करता है।

जलराशिका सबसे बड़ा काम तापक्रमको वांछित अवधिसे आगे पीछे न जाने देना है। यदि जलराशियोंके संचित कोश और वायुमण्डल न हुये होते तो सूर्य-रश्मियाँ जहाँ पड़तीं वहीं उष्णता होती, शेष स्थानों पर अत्यधिक शीत पड़ा करता। सूर्यकी अनुपस्थितिमें समुद्र व वायु-मण्डल ही धरातलको उष्ण बनाये रखते हैं।

समुद्रका प्रभाव दो रूपमें पड़ता है। एक तो निकट-वर्ती वायुमण्डलको ताप देते समय और दूसरे दूरवर्ती स्थानोंको प्रभावित करते समय। समुद्रका गुण है—शनैः शनैः उष्ण होना, पर्याप्त मात्रामें सूर्यताप संचितकर लेना, ताकि सूर्यास्तके समय तक कई फीटकी गहराई तक उष्ण हो जाय। जलके विपरीत वायुमण्डल शीघ्र उष्ण हो जाता है और शीघ्र शीतल भी हो जाता है। सूर्यास्त होते ही वायु मण्डल तो शनैः-शनैः शीतल हो जाता है, किन्तु जलनिधि फिर भी कई फीटकी गहराई तक महोष्ण बना रहता है। समुद्र उष्णता बिखेरना प्रारम्भ करता है, निकटवर्ती निचले वायु-सागर को गर्म बनाने लगता है। वैज्ञानिकों ने अनु-सन्धान करके देखा है कि एक घनफीट पानीकी उष्णता ३,००० घन फीट वायुको उतने ही अंशोंमें उष्ण कर देता है जितने अंशोंमें अपनेको शीतल ? अर्थात् इधर वातावरण जितना उष्ण होता जाता है, उतना उधर समुद्र शीतल। एक घन फीट पानीकी उष्णतासे तीन हज़ार घनफीट वायु उष्ण बन जाती है। यही कारण है कि सागरों और महा-सागरोंकी जल-सतह धरामण्डल भरके निचले वातावरणको पर्याप्त उष्ण बनानेमें सफल हो जाती है। प्रकृतिमें क्या ही विचित्र क्रीड़ायें हुआ करती हैं। सायंकाल हुआ नहीं कि वायुमण्डल शीतल होने लगा, किन्तु गम्भीर जलधि कब पीछा छोड़ सकता था। सूर्य गया तो वह सही। बेचारे वायु-मण्डलको चैन नहीं लेने देते। एक न एक उष्ण बनाये ही रखता है। एक ऊपरसे दूसरा नीचेकी ओरसे।

इतना दिया जाने पर भी बेचारा वायु-मण्डल अकिञ्चनका अकिञ्चन ही रहता है। समुद्र-द्वारा रात्रिके प्रथम प्रहरमें प्राप्त होने वाले तापको स्थलगामिनी पवन-धारायें ले जाती हैं, उस समस्त क्षेत्रमें जहाँ सूर्याभाव होता है उष्णता वितरित कर देती हैं और स्वयं रिक्तहस्त और निर्धन की निर्धन बन जाती हैं।

यदि समुद्र न होते तो रात्रि होते ही वायुमण्डलकी उष्णता निकल जाया करती। अर्द्ध रात्रिके पहले तापमान फ्रीज़िंग प्वाइंट से भी नीचे गिर जाया करता। सूर्यके न होने पर जलधि ही वायुमण्डल और स्थलको उष्ण रखता है।

समुद्रका दूसरा गुण दूरवर्ती स्थानोंको प्रभावित करना है। यह कार्य जलवृष्टिकी सहायतासे सम्पादित होता है। इन्हीं आकाशीय नहरों द्वारा तृषित धराका सिञ्चन होता है। शुष्क वातावरणका पारा उतरता व धन-धान्यका प्रादुर्भाव होता है जिससे उष्णताकी भीषणता कम हो जाती है। समुद्रके पश्चात्

वायु-मण्डलका घनत्व

विशेष उल्लेख्य है। हममेंसे प्रत्येक जानता है कि जीव अथवा प्राणि अन्य सब अभावोंकी अवहेलना कर सकता है, किन्तु वायु-अभावकी नहीं। केवल वायु-राशि ही वाञ्छनीय नहीं है, अपितु उसमें पर्याप्त घनत्व होना भी आवश्यक है। साधारणतया अन्य ग्रहों-उपग्रहों आदिमें

किसी न किसी प्रकारका वायुमण्डल है, किन्तु वह नाम मात्रका है, उसमें घनत्व अधिक नहीं।

सूर्यताप रोक रखनेके लिये घनत्वका होना मञ्जूषाका काम देता है। सूर्यास्तके पश्चात् भी उष्णता इसी कारागार में बंदिनी बनी रहती है। घनत्वसे दूसरा लाभ यह है कि उसमें विभिन्न गैसों यथा आक्सीजन, कारबोनिक ऐसिड और सामुद्रिक वाष्प आदिकी उपस्थिति सम्भव हो जाती है।

सूर्य तथा समुद्रसे ताप लेकर दूर-दूर स्थलों तक पहुँचानेका उत्तरदायित्व इसीके ऊपर है। यदि पर्याप्त घनत्व न होता तो ताप-वितरणका कार्य सम्भव न हो सकता था। ध्रुव-प्रदेशों अथवा अधिक ऊँचाई पर घनत्वके न होनेसे ही ताप उपस्थित नहीं रहता। और तो और विषुवत रेखा पर भी १८,००० फीटकी ऊँचाई पर हिमपात प्रारम्भ हो जाता है। इसका कारण यह है कि ऊँचाई पर घनत्व समुद्र-तलके घनत्वसे आधा रह जाता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमारे धरातल-के निकटवाला वायुमण्डल वर्तमान समयसे आधे घनत्व-का हुआ होता तो बर्फ-ही-बर्फ जमी होती। जीवन असम्भव था।

घनत्वके अतिरिक्त वायु-मण्डलमें गैसोंका होना अत्या-वश्यक है। इनका होना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि ताप अथवा घनत्वका होना। वृक्षोंका प्रथम भोज्य नाइट्रो-जन है। किन्तु शुद्ध नाइट्रोजन पचा जाना वृक्षोंकी शक्तिसे परे है। यह कार्य अमोनियाकी सहायतासे हो पाता है। यद्यपि वायुमें अमोनियाका दसवाँ भाग ही होता है, किन्तु इसी अल्प मात्रासे सब काम चल जाते हैं।

वायु-मण्डलकी अन्य आवश्यक गैस कारबोनिक ऐसिड है। इसका वायुसे अनुपात ४ और १०,००० का होता है। प्रोटोप्लाज्म बनानेके लिए यह उतना ही आवश्यक है जितना कि पशुओंके लिए वायु। साथ-ही-साथ यह पशु-पक्षियोंके लिए विष है। बहुत अच्छा हुआ जो इसकी मात्रा वायुके दस सहस्र पीछे चार ही है। दुगुनी-चौगुनी हुई तो सारा वायु-मण्डल विषाक्त नज़र आता। सृष्टि-प्रारम्भमें इसको मात्रा वायुमण्डलमें अत्यधिक थी। वृक्षोंने विकसित होकर उसे हड़प लिया। तब कहीं जाकर जलचरोंने धराको उपसर्पण किया। तात्पर्य यह है कि जब वनस्पति-संस्थाओंने वायुका विष हर लिया तब पशु-जगतका श्रीगणेश हुआ। विष हरनेकी प्रणाली पहले कही जा चुकी है—आक्सीजन उत्पन्न करके वायुमें बिखेरना। अतः अन्य गैसोंके साथ आक्सीजन भी वायु-मण्डलकी प्रधान गैसोंमेंसे है। गैसोंके अतिरिक्त वायु-मण्डलमें और भी कई पदार्थ हैं जो हितकर सिद्ध हुए हैं। वे पदार्थ हैं— वाष्प, मेघ और रजकण। आइये, एक-एक को देखा जाय

वाष्प

किसी भी स्थानका वायुमण्डल जाँचा जाय तो जल-वाष्पकी झीनी-झीनी चादर तनी हुई अवश्य मिलेगी। गिलासमें बर्फ घोलकर रक्खें तो बाहरी सतह पर नन्हीं-नन्हीं बूँदें घिरने लगती हैं। यदि वायुमें जल वाष्प व्याप्त न होती तो इतने शीघ्र पानीकी बूँदें कहाँसे आ जातीं।

पत्तियाँ सूर्यसे झुलसने लगती है उस समय जल-वाष्प ही उन्हें आर्द्र रखता और निर्जीव होनेसे बचाता है।

इस वाष्पका सबसे महत्वपूर्ण कार्य अमोनिया उत्पन्न करना है। जल-वाष्पमें हाइड्रोजन उपस्थित रहता है। यह हाइड्रोजन जिस क्षण ही वायु-मंडलके व्याप्त रहने वाले नाइट्रोजनके सम्पर्कमें आता है उसी क्षण अमोनिया बन जाता है। अमोनियाका जन्म हाइड्रोजन व नाइट्रोजनके सम्पर्कसे होता है। जल-वाष्प न होता तो अमोनियाका उत्पन्न होना असम्भव था, प्रोटोप्लाज्म भी तैयार न हो पाता। जब तक जल-वाष्प उष्ण रहती है तब तक अदृश्य और रूपरहित रहती है, किन्तु शीतल होते ही

मेघ

केरूपमें आ जाती है। यही मेघ पानी बरसाते हैं, समुद्र-तल पर स्थलकी अपेक्षा अल्प-वृष्टि होती है। इसका कारण यह है कि सूर्य-तापके प्रभावसे पानी वाष्प बन कर ऊपर उठता तो अवश्य है, ऊँचाई पर जाकर जलमें परिवर्तित भी होता है किन्तु नीचे आकर जल समीपका उष्ण ताप पाकर फिर सूक्ष्म हो जाता है। समुद्रकी अपेक्षा धराखण्डका ताप कम होता है। निचले वातावरणमें शीतलता समुद्र-सतहकी अपेक्षा अधिक होती है। अतः नीचे आने वाली जल-वृष्टि सूखने नहीं पाती।

मेघों द्वारा दिये गये जलसे असंख्य निर्झर झरने लगते

हैं। सरिताओंका झुण्ड अठखेलियाँ व रंगरेलियाँ करता हुआ प्रियतम सागरकी ओर द्रुतगतिसे भागने लगता है। वे जहाँ-जहाँ जातीं शुष्क व तृषित धरा-कण्ठको शीतल करतीं। उद्यान, उपवन, शस्य आदिकी निद्रा भंग करतीं चलतीं। छोटे-छोटे पेड़ पौधोंसे लेकर बड़े-बड़े वृक्ष तक सब अँगड़ाइयाँ लेकर उठ खड़े होते। वे सब शोभा व शीतलता तो बढ़ाते ही हैं, वायु शुद्ध करनेमें भी हाथ बढ़ाते हैं। इनके प्रयोगसे बचा हुआ जल फिर वहीं समुद्रमें पहुँच जाता है जहाँसे चला था, इस चक्रकी गति एक क्षणको भी नहीं रुकती। पहिया निरन्तर घूमता ही रहता है। हमें तब और भी अधिक आश्चर्य होता है जब देखते हैं कि इस दुर्वह चक्रका भार

रज-कण

के दुर्बल कंधों पर अवलम्बित होता है।

मेघ बननेका एक मात्र आधार-स्तम्भ वायु-मंडलान्तर्गत चक्कर लगाने वाले अगणित धूल-कण हैं। पचास-साठ वर्ष वैज्ञानिकोंको इस कथन पर संदेह था कि धूल-कणों पर ही शीतलीभूत वाष्प आसन जमाती है। उन्होंने प्रयोग किये और सत्यताके प्रमाण पाये। यहाँ कुछ प्रयोग दे देना असङ्गत न होगा। दो काँचके पात्रोंमें अलग-अलग प्रकारकी वायु भर दी। एकमें साधारण वायु थी दूसरेमें रुईसे छनी हुई—इसमें रजकणादि किसी प्रकारके परिमाणु न थे। दोनों पात्रोंकी तहमें थोड़ा-थोड़ा पानी भी था। पानी इतना गर्म किया गया कि वाष्प बनने लगे। जब तक भाप बनती रही दोनों बर्तन अविकृत बने रहे किन्तु जैसे ही उनमें शीतलता पहुँचाई गई कि बिना छनी वायुवाले पात्रमें धूम्र-रेखायें लहराने लगीं। किन्तु छनी हुई वायुवाला पात्र वैसाका वैसा ही बना रहा। उसमें कुहरा, धुआँ कुछ न उठा। रजकण थे ही, शीतलोन्मुख वाष्प बैठती तो किसकी पीठ पर। इसी प्रकारके और कई प्रयोगों द्वारा देखा गया कि निराकार वाष्प इन रज-कणोंके सहयोगसे ही साकार रूप धारण कर पाती है। प्रचुर वर्षाके लिए यह आवश्यक है कि वायु-मण्डलमें रज-कण विपुल मात्रामें उपस्थित रहते हों।

धरातलके निकटवर्ती अखिल वायु-मण्डलमें रजकण पाये जाते हैं। यदि ऊँचे-से-ऊँचे पहाड़ोंकी चोटियों पर न होते तो वहाँ मेघ उठते प्रतीत न होते। अनुमानतः पैंतीस मीलकी ऊँचाई तक इनकी पहुँच है।

देखनेमें तो धूल-कण नगण्य विदित होते हैं, पर हैं बड़े कामके। अभी मेघ-रचना वाली महत्वपूर्ण उत्पत्ति कही जा चुकी है। दूसरा आश्चर्यकारी तथ्य यह है प्रकाश व ताप भी इन्हींके कंधों पर बैठ कर दूर-दूर घूमा करता है। अर्थ अभी पूर्ण स्पष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार कहना ठीक होगा कि ऊषाकाल, सन्ध्याकाल, सूर्यग्रहण आदि अवसरों पर जब सूर्य उपस्थित नहीं होता इन्हींके कारण प्रकाश छिटक जाता है। यदि यह न होते तो मध्यान्हमें भी आकाश कृष्ण-वर्णका प्रतीत होता। नक्षत्र आदि दृष्टिगोचर हुआ करते। जिस ओर सूर्य-किरणोंका लक्ष्य होता उस ओर तो अवश्य प्रकाश रहता। कमरेके भीतर अथवा जहाँ भी सूर्य-रश्मिकी पहुँच न होती वहाँ सूचीभेद्य अन्धकार और महाशीत हुआ होता। वायु, प्रकाशको प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता क्योंकि स्वयं रूपहीन है। धूलकण सूर्य-किरण द्वारा प्रकाशित होते और प्रकाश मञ्जूषाके सहारे अप्रकाशित स्थानोंकी ओर भागते, वहाँके कणोंको प्रतिबिम्बित करते, ताप लुटाते और महा अन्धकार होनेसे बचाते हैं। लाखों कण यह क्रिया अनवरत रूपसे किया करते हैं। अतः बड़े-से-बड़े विस्तारमें प्रकाश फैला करता है। सूर्यास्त होनेके कई मिनट पीछे पूर्ण प्रकाश छाया रहता है उसका भी कारण उपर्युक्त ही है।

रज-द्वारा ताप व प्रकाश होनेकी बात भी पचास-साठ वर्ष पूर्वके वैज्ञानिक न मानते थे, किन्तु कई प्रकारके प्रयोग करने पर मान गये। उसी प्रकारके दो खोखले बेलननुमा-पात्र—एकमें छनी हुई रज-रहित वायु दूसरेमें बिना छनी रज-युक्त वायु वाले—लेकर उनसे प्रकाश फेंका गया। छनी वायु वाले बेलनमें पूर्ण अन्धकार था, किन्तु बिना छनी वायु वालेमें प्रकाश था, उजेला था।

कहा जा चुका है कि वायु-मण्डल रात्रि होते ही शीतल हो चलता है तब समुद्र द्वारा उष्ण किया जाता है। "समुद्र, वायु-मण्डलको उष्ण कर देता है" का क्या अर्थ हुआ? वायु-मण्डलके किसी पदार्थको उष्ण कर देता है? इसी रज-संसारको। समस्त निचला वायु-मण्डल धूल-कणोंसे ओत-प्रोत है एक-एक कणके तापित होते ही सारा

वायु-मण्डल तमतमा उठता है। मरुभूमिमें अधिक उष्णता व अधिक शीत पड़नेके प्रधान कारण वहाँके रजकण ही होते हैं। सारांश यह कि ताप-वितरणका कार्य रजकणोंके अगणित सूक्ष्म सदस्यों-द्वारा सम्पादित होता है।

दूसरा पहलू उष्णता रोकनेका है। यह कार्य उष्णता वितरणसे भी अधिक महत्त्व रखता है। यदि वायु-मण्डलमें धूलकण न होते तो भीषण सूर्य-ताप सारा-का-सारा पृथ्वीपर आ जाया करता, उसे मार्गमें रोकने वाला कोई न मिलता। धूलकण ही मार्गमें खड़े होकर उनकी तीव्रता विभाजितकर देते हैं। वर्षा होनेके पश्चात् सूर्य-किरण अधिक प्रखर प्रतीत होती है, क्योंकि उनका मार्ग रोकने वाला कोई नहीं होता। वायु-मण्डलमें यदि एक भी धूलकण न होता तो अपरिमित सूर्यताप बेधड़क पृथ्वी तक चला आता। सारा जल वाष्प बन जाता, और वनस्पति जल जाती।

प्रथम तो धूलकण सूर्य-तापकी पूर्ण मात्राको पृथ्वी तक आने नहीं देते, पर जब एक बार नीचे तक आ जाता है तो सघन जालमें इस प्रकार उलझा लेते हैं कि सरलता-पूर्वक शीघ्र निकल भागना कठिन हो जाता है। रात्रिमें तापको पृथ्वी पर रोके रहनेका श्रेय इन्हें ही है। यदि यह न होते तो उधर सूर्य ओझल हुये इधर ताप कफ़ूर हुआ देख पड़ता।

वायु-मण्डलमें पाये जाने मुख्य पदार्थोंमें

विद्युत-धारायें

भी हैं। सारा वातावरण इनकी अदृश्य रेखाओं और तरंगोंसे ओत-प्रोत है। इन्हीं तरंग-मालाओंके सहारे आजका मनुष्य सहस्रों मील दूरकी बात सुन सकता, पदार्थ देख सकता और सुगन्धि सूँघ सकता है। पिछले प्रकरणमें देखा था कि यही विद्युत-धारायें वृक्षकी पत्तियोंकी जालीमें उलझ जाती हैं और तब प्रोटोप्लाज्म बनानेकी प्रेरणा करती हैं। जीवनोपयोगी परिस्थितियोंमें अन्तिम परिस्थिति

रात्रि-दिवस

का क्रमिक आवागमन है। दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ग्रह-पिण्ड अपनी धुरी पर घूमता रहता हो, चन्द्रमा अथवा बुधकी भाँति अचल न हो। यदि दिन-ही-दिन हुआ होता, रात्रि न होती तो दिन-भरका सूर्य ताप बढ़ता ही रहता, कम न होता। रात्रिकी शीतलता तापकी अधिकताको हर लिया करती है वह उस समय न हो पाता।

रात्रि-दिवस सम्बन्धी दूसरी समस्या दिनमानकी है। यदि रात्रि-दिवस होता भी किन्तु सौ-सौ घंटेका होता तो दिनमें पृथ्वी इतनी उष्ण हो जाया करती कि पानी खौलने लगता, लेकिन रात्रिके प्रारम्भिक दस-बारह घण्टोंमें सारा ताप निकल जाता। शेष घण्टोंमें वायु-मण्डल इतना शीतल हो जाया करता कि सम्पूर्ण धरातल हिमाच्छादित रहा करती। जल तरलावस्थामें न रह पाता। वनस्पतिकी पत्तियाँ प्रत्येक रात्रि इतनी झुलस जाया करतीं कि दिनके सौ घण्टोंमें पुनः पूर्ववत् न हो पातीं। हमारा वर्तमान रात्रि-दिवस सम्बन्धी विधान बारह घण्टेका दिन और बारह घण्टेकी रात्रि अत्यन्त सुविधाजनक है। ध्रुव-प्रदेशोंमें छः माहका दिन और उतनी ही की रात होती है। फिर भी वहाँ जीवन है, इसका कारण यह है कि जिन-जीव तथा पौधोंको हम आज वहाँ देखते है वे वहीं विकसित न हुए थे, अपितु मध्य-भूमण्डलसे जाकर बस गये हैं। प्रश्न तो यह है कि समस्त भूमण्डल पर यदि छः माहका दिन और छः की रात हुई तो क्या दशा होती? तब तो निश्चय है कि जीवन न हुआ होता

यह है जीवनोपयोगी परिस्थितियाँ

मानव-प्रादुर्भावसे लेकर आज तक अनुमान व खोजकी जा रही है कि पृथ्वीके अतिरिक्त और किस पिण्डमें जीव-रचना पाई जाती है, किन्तु ठीक-ठीक प्रमाण नहीं मिल सके। ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि अगणित नक्षत्रों वाले ब्रह्माण्डमें उपयुक्त परिस्थितियाँ कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं। क्या हमारे ग्रहके अतिरिक्त एक भी ग्रहमें जीव-सृष्टि नहीं पाई जाती? क्या कोई और भी ग्रह है जिसमें उपरोक्त नाजुक अवस्थायें ठीक उसी मात्रामें पाई जाती हों जिसमें हमारे ग्रहमें? आदि-आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका सप्रमाण उत्तर अभी तक भूमण्डलके ज्योतिर्विशारदोंके पास नहीं है। इस दिशामें अनवरत खोज जारी है। देखें कब तक हम लोग अपना प्रतिद्वन्द्वी ढूँढ़ पाते हैं?

निकट होनेके कारण सौर-मण्डलान्तर्गत ग्रह तथा उपग्रहोंका अध्ययन हमने कुछ-कुछ कर लिया है। अन्य सौर-प्रणालियों तथा 'विश्व-द्वीप' प्रणालियोंका कम हो

पाया है। हमारे सबसे निकट चन्द्रमा है। जान्स्टन स्टोनी इसके विशेषज्ञ हैं। उनका कहना है कि चन्द्रमाकी गुरुत्वशक्ति इतनी कम है कि अपने वायु-मण्डलमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, जल-वाष्पकी कौन कहे कारवोनिक ऐसिड गैस जैसी बोझिल गैसको भी नहीं रोक पाता। इसने अपनी धुरी पर घूमना छोड़ दिया है। एक भाग सदैव सूर्य-सम्मुख रहनेके कारण तपता रहता है, गैसें गर्म हो होकर उड़ जाया करती हैं। उस भागमें शीतलता नाम मात्रको नहीं। अतः गैसें नहीं ठहरतीं। कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकोंका अनुमान था कि चन्द्रमा अतीतमें जीवित ग्रह था, किन्तु अब इस अनुमान पर भी संदेह हो चला है। अन्य उपग्रहोंमें भी जीवन अस्तित्वका न होना निश्चित है।

ग्रहोंमें सूर्यके सबसे निकट ग्रह बुध है। इसका आकार अत्यन्त छोटा है। सब भाइयोंमें छोटा यही है। अतः आकर्षण-शक्ति कम है जिसके फलस्वरूप वायु तथा गैसें नहीं रुकतीं, निश्चित हो चुका है कि इसके पास वातावरण नहीं। रात्रि-दिवसको शृङ्खला भी नहीं। इन्हीं कारणोंसे वहाँ जीवनकी आशा नहीं। दूसरा ग्रह शुक्र है। इसमें दिन रातका क्रमिक आवागमन तो है, पर बहुत लम्बा—हमारे बीस दिनोंके बराबर वहाँका एक दिन। इसके पास वातावरण होनेके पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। ऊपरी वायु-मण्डलमें ऑक्सीजन नहीं है सम्भवतः निचले भागमें है। किन्तु वह शुद्ध नहीं है, शायद वनस्पतिका अभाव है। जब वनस्पति ही नहीं तब पशु-पक्षी कैसे पाये जा सकते हैं। तीसरा ग्रह हमारी पृथ्वी है। इसकी परिस्थितियाँ कही जा चुकी हैं।

चौथा ग्रह मंगल है। बस यही अकेला ग्रह है जहाँ जीवन-अस्तित्वके अधिक लक्षण पाये जाते हैं। जीवनोपयोगी परिस्थितियाँ भी अधिक पाई जाती हैं। इसका वातावरण हमारेसे मिलता-जुलता है। घनत्वमें कुछ ही कम है। उसमें कई बार मेघ उठते देखे गये हैं। सूर्यताप भी लगभग उतना ही पहुँचता है। हमारे वातावरणमें पाई जानेवाली गैसें यथा शुद्ध ऑक्सीजन, जलवाष्प, कारवोनिक इत्यादि वहाँके वातावरणमें भी हैं। रात्रि-दिवसका क्रमिक-आवागमन है और वह भी इतनी आश्चर्यजनक समानतामें कि जिसकी सीमा नहीं। वहाँका रात-दिन मिला कर २४ घण्टे ३७ मिनट ५१ से० का होता है, किन्तु एक बात नहीं मिलती। मंगलकी मात्रा पृथ्वीसे बहुत कम है। उसका व्यास केवल ४२१५ मील है जब कि पृथ्वीका ८,००० मील। इसी कारण वहाँकी गुरुत्वशक्ति पृथ्वीसे कम है। कितनी कम है, इसका अनुमान इस उदाहरणसे लग जायगा कि पृथ्वी पर जिस वस्तुका तौल १०० पौं० होता है वह मंगल पर २८ पौं० की होगी। मंगलमें काले धब्बे देख पड़ते हैं। कहा जाता है कि ये सघन वनस्पति के उपवन हैं। नहरें होनेकी किम्वदन्ती भी कम विख्यात नहीं है। इतना सब होने पर भी जीवन है या नहीं, विवादास्पद है।

मंगलके पश्चात् बृहस्पति है। आकारमें इससे बड़ा कोई ग्रह नहीं। दिन रात ६ घण्टे ५३ मिनटके हैं। जैफ़्रेका कहना है कि यह लौह धातुका है। इसकी सतह बर्फ़से ढकी रहती है। वातावरण महाशीतल गैसका है। उष्णता नाम मात्रकी है। जीवन न तो भूत-कालमें था और न कभी होगा।

शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो, सूर्यसे बहुत दूर होनेके कारण सर्वदा हिमाच्छादित रहते हैं। यहाँ के वातावरणमें जीवनोपयोगी गैसोंकी गन्ध मात्र नहीं पाई जाती।

यह था हमारे सौर-मण्डलमें पाये जाने वाले भ्रातृ-ग्रहोंका विवरण। असीम अन्तरिक्षमें हमारे जैसे न जाने कितने सौर-मण्डल हैं। हमारे सूर्यकी उत्पत्ति जिस नीहारिकासे हुई थी उससे इसी जैसे साठ या सत्तर लाख (जेम्स जीन्सके मतानुसार) अन्य सूर्योंकी भी सृष्टि हुई थी। हमारे सूर्यसे तो नवग्रहोंकी उत्पत्ति हो गई, किन्तु इन अन्य साठ-सत्तर लाख सहोदरोंमेंसे कितनोंके सन्तान हुईं कितनोंके नहीं, उनमेंसे कौन-कौन जीवित हैं, कौन-कौन मृत, आदि अज्ञात है। इन साठ-सत्तर लाख सूर्योंके योगसे हमारा स्थानीय विश्व-द्वीप बना है। जे० जी० क्राउथरका कहना है कि हमारे जैसे २०००,००० विश्व-द्वीप देखे गये हैं और भी न जाने कितने तो यंत्र-चक्षुसे परे है। दूरातिदूर चमकने वाले विश्व-द्वीपकी दूरी हमसे १४०,०००,००० प्रकाश वर्ष है। एक सेकंडमें १८६००० मील चलकर प्रकाश एक वर्षमें जितनी दूरी तय करता है उसे १ प्रकाश वर्ष कहते हैं।

"भारतवर्षके घरेलू नौकरों की समस्या"

[लेखक—श्री राजेश्वरी प्रसाद भाषक बी० एस-सी०]

भारतवर्षकी नौकरी करने वाली जनताको हम दो बड़े भागमें विभाजित कर सकते हैं।

(१) सरकारी नौकरोंकी श्रेणी (२) गैरसरकारी नौकरोंकी श्रेणी।

गैरसरकारी नौकरोंको हम तीन श्रेणीमें विभाजित कर सकते हैं :—

(१) कारखाने और तिजारती कम्पनियोंमें काम करने वाले नौकर।

(२) द्वितीय श्रेणी ऐसे नौकरोंसे परिपूर्ण है जो कि साक्षर या किसी विशेष कार्यमें निपुण होते हैं और जो कि या तो एक ही आदमीकी नौकरी करते हैं या थोड़ी-थोड़ी देर कई आदमियोंके यहाँ काम करते हैं। इस श्रेणी में टाइपिस्ट, ट्यूटर, मुहर्रिर इत्यादि आते हैं।

(३) तृतीय श्रेणी घरेलू नौकरोंकी है। इस श्रेणीमें यदि प्रथम श्रेणी अर्थात् कारखानों और तिजारती कम्पनियोंमें काम करने वाले नौकरोंसे अधिक मनुष्य नहीं है तो न्यून तो किसी प्रकार नहीं हैं।

हमे आज इन्हीं घरेलू नौकरोंकी समस्या पर विचार करना है। हमे प्राचीन भारतके इतिहाससे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालमें आर्यों ने भारतवर्षकी सम्पूर्ण जनताको चार वर्णोंमें विभाजित किया था। इन्हीं वर्णोंके अनुसार उनके उद्यम भी नियुक्त किये थे। इन्हीं वर्ण चतुष्टयको हिन्दू अब भी मानते हैं। परन्तु अन्तर केवल यह है कि वर्ण जो कि भिन्न-भिन्न कार्य-विभाजनके लिये बनाये गये थे उनको अब प्रत्येक कार्यके करनेकी स्वतन्त्रता है। समाज अब किसी मनुष्यको किसी प्रकार भी अपने वर्णके कामको छोड़ कर दूसरे वर्णके काम करनेसे नहीं रोक सकता।

अब वर्ण केवल अंतर्जतीय विवाह या अंतर्जातीय खानपानमें एक निर्बल बाधा सी है तथापि ध्यान देने पर यह विदित होगा कि चतुर्थ वर्ण जो कि शूद्रोंका है वह भी अध्यवसायपूर्वक अपने वर्णके कार्यको करता चला आ रहा है। यह एक सन्तोषजनक बात है। क्योंकि यदि हम अपने देशके कला-कौशल या मस्तिष्कको शक्तियों को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाना चाहें तो यह आवश्यक है कि हम गुणीजनोंको घरेलू झंझटसे मुक्त करदें।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है और जन-संख्याके बाहुल्यसे हमारे समक्ष विभिन्न प्रकारके प्रश्न उठते हैं। उनमें दो प्रश्न सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है :—

(१) जन-संख्या बढ़ रही है और ज़मीन नहीं बढ़ती इसलिये हम प्रत्येक मनुष्यके लिये खेत कहाँसे लावें।

(२) जैसे-जैसे विभाजन बढ़ते जाते हैं खेतीमें आय न्यून होती जाती है। इस दशामें कृषक लगान कैसे दे सकते हैं।

अल्प मात्रामें खेती करने वाले कृषकोंको कर देनेके लिए रुपया नहीं बचता। वे बेचारे सहस्रों कठिनाइयोंका सामना करके तथा चूनी-चोकर खाकर भी लगान न दे सकनेसे अपने कुटुम्बियोंको एक-एक करके शहरोंमें घरेलू नौकरियाँ करनेके लिए भेजते हैं। जहाँ पर वे भर-पेट भोजन पहिननेके लिए वस्त्र और वेतन भी पाते हैं, जिसे वे घरके लिए भेजते हैं। जिससे उसके कुटुम्बी बैल और बीज खरीदते हैं और लगान देते हैं और जिनको घरको रुपया नहीं भेजना पड़ता वे पर्याप्त धन संचित कर लेते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि घरेलू नौकरी कमसे-कम छोटी मात्राकी कृषिसे अवश्य अधिक लाभदायक है। बहुधा यह देखा जाता है कि एक सम्पूर्ण कुटुम्बका कुटुम्ब शहरमें आकर रहने लगता है और घरेलू नौकरी उसका विशेष उद्यम हो जाता है।

इस प्रकार नाई, कहार, बारी इत्यादि जातियोंके अतिरिक्त जो कि घरेलू नौकरी को अपना मुख्य उद्यम समझते हैं, अन्य जातियोके मनुष्य जैसे कुरमी, कुम्हार, काछी इत्यादि घरेलू नौकरी करने लगते हैं। यहाँ तक कि उच्चवर्णों के लोग भी शहरोंमें आकर रसोइया, पुजारी और मुनीम इत्यादिका काम करने लगते हैं।

इससे विदित होता है कि भारतवर्षमें घरेलू नौकरोंकी समस्या कारखानोंमें काम करने वाले मज़दूरोंकी समस्यासे

कम ध्यान देने योग्य नहीं है। हम घरेलू नौकरोंको चार मुख्य श्रेणीमें विभाजित कर सकते हैं।

(क) मुनीम या मैनेजर, चौकीदार, कारिन्दा चपरासी इत्यादि।

(ख) रसोइया।

(ग) खिदमतगार, बर्तन माँजने वाला, पनिहार इत्यादि।

(घ) मेहतर और धोबी इत्यादि

इनके अतिरिक्त कुछ और भी घरेलू नौकर होते हैं। टाइपिस्ट या क्लार्क जब तक कि वे घरेलू काम-काज पर लिखा पढ़ी करते हैं। बहुधा धार्मिक पुरुषोंके यहाँ पुजारी भी पूजा करनेके लिए वेतन पाते हैं।

इनमेंसे पहिली श्रेणीके नौकर तो प्रायः एक ही घरमें काम करते हैं और साधारण कुटुम्बोंमें तो इनका काम परिजनों या अन्य नौकरों पर सौंप दिया जाता है।

रसोइया साधारण आय वाले कुटुम्बोंमें वे ही रखते हैं जो कि दूसरी जातिके मनुष्यके पकाये हुये भोजनको ग्रहण करनेमें धर्म भ्रष्ट नहीं समझते। जो रसोइया नहीं रखते उनके यहाँ खाना पकानेका काम स्त्रियाँ करती हैं।

"खिदमतगार" दो प्रकारके होते हैं (१) वे जो दिन रात घरमें रहते हैं (२) जो थोड़ी-थोड़ी देर कई घरोंमें काम करते हैं। जैसे—बर्तन माँजने वाला और पनिहार।

मेहतर तो साधारण घरोंमें थोड़ी-थोड़ी देर काम करके चला जाता है। धोबीको नौकरों और व्यवसायियोंके बीच में समझना चाहिये। यदि वह हातेमें रहता है या बँधी तनख्वाह पाता है तो उसकी गणना नौकरोंमें होनी चाहिये। परन्तु यदि कपड़ोंके हिसाबसे धुलाई पाता है और यदि अपनी दूकान खोल रक्खी है तो वह व्यवसायी आदमीकी गणनामें आ सकता है।

"घरेलू नौकरी व घरेलू नौकर" भारतवर्षकी महान् आवश्यकताओंमेंसे एक तथा सर्वोत्कृष्ट है। अतएव अब यह प्रश्न उठता है कि ऐसा कौनसा उपाय करें कि जिन्हें उपयुक्त नौकरोंकी आवश्यकता है उन्हें सरलतासे सुशील और कार्य-कुशल नौकर प्राप्त हो सकें और सरकार कौन से नियम बना सकती है कि नौकर सामान लेकर भागने न पाये व सुन्दर रूपसे कार्य-संपादन करे और पुरानी नौकरी को छोड़कर नई नौकरीकी खोज न करे। और यदि स्वामी को सेवक पसन्द नहीं है तो उसके बदलेमें दूसरेके नौकर को बुला ले और अपने नौकरको ऐसे काममें भेज दें जहाँ वह काम कर सकता है।

उधर नौकरोंकी ओरसे हमें यह विचार करना पड़ता है कि उनके बुढ़ापेके लिये व स्थायी रोगोंके लिये क्या प्रबन्ध किया जाय और यदि वे अपने स्वामीसे सन्तुष्ट न हों तो बिना नौकरीके त्यागके ही दूसरे घरमें भेज दिये जायँ।

सारांश यह है कि हमें ऐसी योजनायें बनानी चाहिये जिससे स्वामी और सेवक दोनोंकी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ और पारस्परिक सम्बन्धमें उन्नति हो। इसके पूर्व कि हम योजनाओंका आविष्कार करें हमें घरेलू नौकरों और दूसरी श्रेणीके सेवकोंका मिलान करना आवश्यक है।

सादृश्य पर विचार करते हुये हमारे समक्ष घरेलू नौकरोंके विषयमें अनेकानेक बातें आती हैं। उनमेंसे निम्नांङ्कित तीन मुख्य हैं:—

(१) घरेलू नौकरियाँ सरलतासे मिल जाती हैं और पढ़े-लिखे लोगोंको उद्यम कठिनतासे मिलता है। इसीके फलस्वरूप घरेलू नौकर पढ़े-लिखे नौकरोंको अपेक्षा अधिक नौकरीका त्याग करते हैं।

(२) घरेलू नौकरोंके रहन-सहनका उपक्रम निम्न है और इसलिये कृषकोंके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी वाले घरेलू नौकर अधिक धन-संचय कर लेने पर या तो दुरुपयोग करने लगते हैं या नौकरी छोड़ देते हैं और जब तक धन व्यय नहीं हो जाता तब तक दूसरी नौकरी नहीं करते। यदि अल्प समय तक कई स्थानोंमें सेवा करते हैं तो अल्प स्थानोंमें ही काम करने लगते हैं। आशय यह है कि उनकी कार्यक्षमता कुछ ही दूर तक वेतनके साथ बढ़ती है और तत्पश्चात् रुक जाती है। परन्तु यदि वेतन और भी बढ़ा दिया जाय तो उनकी कार्यक्षमता घटने लगती है।

(३) तृतीय विचारणीय विषय यह है कि घरेलू नौकरोंके कुटुम्बमें लगभग प्रत्येक प्राणी धनोपार्जन करता है और केवल आठ-नौ वर्षकी आयुसे ही कमाता है।

इन तीनों बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है:—

(१) इनको यह लोभ देना चाहिये कि पुरानी नौकरियाँ बिना किसी विशेष कारण के न छोड़ें।

(२) इनके वेतनके लिये एक न्यूनतम सीमा और एक अधिकतम सीमा रक्खें। न्यूनतम वेतन इतना होना चाहिये जिससे उनकी साधारण आवश्यकतायें पूरी हो जायँ और उनका वेतन इतना अधिक न हो कि वे अपव्यय करने लगें। स्वामीका कर्तव्य है कि सेवकके अपव्ययोंको वेतन न बढ़ाकर रोके और उस धनको जो कि वह सेवकको देना चाहता है ऐसी योजनाओंमें लगावें जिनसे सेवकोंकी सच्ची भलाई हो सकती है और जिस भलाई सेवक स्वयं उस धनको पाकर वंचित रह जाता।

यह कार्य गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा भी पूर्ण हो सकता है, परन्तु इसका भार यदि सरकार ले ले तो अत्यन्त शीघ्र इस विषयमें सुधार हो सकता है। निम्नांकित योजनाके आधार पर भारत सरकारको काम करना चाहिये।

भारतीय सरकारको चाहिये कि एक "अखिल भारतीय घरेलू नौकरोंका कर्मीशन" बनावे जिसके नीचे प्रान्तीय व ज़िला कर्मीशनें भी हों जो अखिल भारतीय कमीशनके निर्मित नियमोंको अपने प्रान्त व ज़िलेकी दशाके अनुसार अल्पाधिक परिवर्तन करके काममें लावें।

घरेलू नौकरोंके कमीशनके चार मुख्य विभाग होने चाहिये :—

(१) आर्थिक विभाग
(२) स्याहा-विभाग (रेकार्ड विभाग)
(३) पत्र-व्यवहार-विभाग
(४) न्याय-विभाग

आर्थिक विभागका काम यह होगा कि नौकरोंके वेतन (खुराकका दाम लगाकर) से कुछ प्रति शत काटे और जितना रुपया नौकरोंकी तनख्वाहसे काटा जाय उतना ही रुपया उनके स्वामीसे भी लिया जाय। ऊँची तनख्वाहवाले नौकरोंसे अधिक प्रति शत काटा जाय। इस धनको चार विषयों पर व्यय किया जाय :—

(१) वृद्धावस्था या रोगग्रसित रहने पर या नितान्त अपंग हो जाने पर सेवकोंके जीवन-निर्वाह के हेतु प्रत्येक सेवकके भागके धनका कुछ अंश उसीकी वृद्धावस्थाके लिये उसके नामसे जमा हो जाना चाहिये और उसकी आयका और स्वामीकी देनका कुछ अंश "सम्मिलित अपंगता-धन" के रूपमें जमा होना चाहिये।

(२) चिकित्सालयोंके व्ययके लिये:—जहाँ पर चिकित्सालय नहीं है वहाँ पर चिकित्सालय खोले जाने चाहिये। और जहाँ पर निःशुल्क चिकित्सालय म्युनिस्पैलिटी और सरकार ने खोल रक्खे हैं वहाँ पर बहुमूल्य औषधियोंकी आवश्यकता होने पर इस पूँजीसे काम लिया जा सकता है। इस पूंजीके कुछ भागको सेवादलों के निर्माणमें व्यय किया जाय जो कि घरेलू नौकरोंको एकत्रित करके यह बतलावें कि वे रोगोंसे कैसे मुक्त हो सकते हैं और घायलोंकी सहायता कैसे कर सकते हैं।

(३) ऐसी संस्थायें प्रत्येक नगरमें में बनें जिनके समक्ष घरेलू नौकर अपनी आपत्तियाँ रक्खें जो कि कतिपय निर्वाचित पुरुषोंके द्वारा कर्मीशन तक पहुँचाई जावें। इस संस्थाका काम यह भी होगा कि उन नौकरोंके लिये खेल-कूद और आरामका प्रबन्ध करें।

(४) एक शिक्षा-विभाग खोला जाय जो नवीन सेवकों को या सेवकों के पुत्रों को शिक्षा दे तथा उन्हें साक्षर भी बनावे।

सारांश यह है कि आर्थिक विभाग यह निर्णय करेगा कि कितना रुपया किसके वेतनसे काटा जाय और कितना-कितना किन-किन कामोंमें व्यय हो। धन-संचय-कार्य भी इसीके हाथमें होगा।

(२) स्याहा-विभाग :—

दूसरा स्याहा-विभाग है। यह विभाग यह समाचार रक्खेगा कि अमुक सेवक कैसे आचरणका है, कहाँका रहने वाला है, कैसे कुलका है, उसकी जाति क्या है, कैसी नौकरियाँ पहिले कर चुका है और उसके विषयमें स्वामी ने क्या लिखा है। इसी प्रकारको सम्पूर्ण सूचनायें इस विभागमें रक्खी जायँगी।

(३) पत्र-व्यवहार विभाग:—

इस विभागका कार्य यह होगा कि जो कोई इससे नौकर माँगे उसका पता व वेतन जो कि वह नौकरको देना चाहता है और जिस कामके लिये नौकरको आवश्यकता

हो पूरी-पूरी खबर रक्खे और ऐसे आदमियोंका रजिस्टर रक्खे जो कि घरेलू नौकरी चाहते हैं और जो काम वे कर सकते हैं। नौकरोका निर्णय कर देने पर वह नौकरसे और उसके स्वामीसे पत्र-व्यवहार शुल्क ले और आवश्यकताके अनुसार बयाना भी ले।

न्याय-विभाग

न्याय-विभागका कार्य यह होगा कि स्वामी-सेवक कलहोंका निर्णय करे। यदि सेवक बिना पर्याप्त समय दिये हुये नौकरी छोड़ दे और अनायास ही घरसे स्वामीके बिना बतलाये हुये चला जाय तो उसे दण्ड दे और इसी प्रकार स्वामीकी असावधानी पर उसे भी दण्ड दिया जाय। यदि स्वामी सेवकके साथ दुर्व्यहार करता है तो स्वामीको भी आर्थिक दण्ड दिया जाय जिससे आर्थिक विभागको भी लाभ हो। यदि स्वामी स्याहा-विभागको नौकरीके अपराधकी बिना सूचना दिये हुये उसको निकाल दे तो कितने दिवसोंका वेतन उस नौकरको देना होगा इसका निर्णय न्याय-विभाग ही करेगा।

जीवाणु

(ले०—श्री जगमोहन)

मनुष्यका मस्तिष्क स्वाभाविक ऐसा बना हुआ है कि वह सहज ही किसी नई बातके माननेके लिए तैयार नहीं होता। इसी चीज़को रूढ़िवाद कहते हैं। आधुनिक युगमें जो प्रगति दिखाई देती है उसका प्रभाव समाज पर पड़े बिना नहीं रह सकता। क्या हम इन नये-नये आविष्कारों और अन्वेषणोंको माननेके लिए तैयार नहीं है, अथवा हम इन सबको यह कह कर टाल देना ही अच्छा समझते हैं कि इनमें नई बात ही क्या है? यह सब तो हमारे पूर्वजों-को भली-भाँति विदित थी। इस क्रान्तिकारी युगमें जब जीवन इतना कृत्रिम हो गया है हमें अपने पूर्वजोंसे अधिक ज्ञान-संपादन करना है। अब केवल क्षुधा-निवृत्तिका प्रश्न नहीं है। अब तो हमें अपने स्वास्थ्यको सम्हालनेका ज्ञान भी प्राप्त करना अनिवार्य है।

हमारे पूर्वजोंका प्राकृतिक वातावरण स्वच्छ और उनका भोजन सादा था। अतएव उनकी आयु दीर्घ हुआ करती थी और वह रोगसे कदाचित ही पीड़ित होते होंगे। कहाँ वह प्राचीन ग्रामोंका निवास और कहाँ आजकलके शहरोंका रहना जहाँ अगणित रोग फैले रहते हैं। हो सकता है कि अपनी झोपड़ी और खेत पर अपने जीवनको निछावर कर देने वाले किसानको इन नई-नई चीज़ोंके जाननेकी आवश्यकता न पड़े, परन्तु शहरका प्रत्येक मनुष्य अथवा ग्रामका भी ऐसा मनुष्य जिसे शहरसे सरोकार है इन नई-नई चीज़ों के जाने बिना भारी विपत्तिमें पड़ सकता है। आजकल हमारे साहित्यमें भी नये-नये शब्द बढ़ते चले जा रहे हैं। इसका कारण यही है कि इनके बिना हमारा काम सुचारु रूपसे नहीं चल सकता। मैं इन नये शब्दोंमें से केवल 'जीवाणु' पर विचार करूँगा।

जीवाणु क्या वस्तु है?

इस संसारमें असंख्य जीव हैं जिनमेंसे बहुतोंको तो हम अपनी आँखसे देख सकते हैं, परन्तु बहुतसे हमारी आँखसे परे हैं। ऐसे ही जीव जो अदृश्य हैं 'जीवाणु' कहलाते हैं (जीव = जीवित पदार्थ + अणु = बहुत छोटा टुकड़ा)। जिस तरह मिट्टीका एक बहुत ही छोटा टुकड़ा दिखाई नहीं पड़ता उसी तरह ये जीव दिखाई नहीं पड़ते। अतएव इन्हें जीवाणु कहते हैं। चूँकि इनमेंसे कुछ प्राणी-वर्गमें हैं इसलिए 'कीटाणु' शब्दका प्रयोग भी किया जाता है। अंग्रेजीमें इन दोनोंको माइक्रोआरगेनिज्म (micro = सूक्ष्म + organism = जीव) कहते हैं, जिनके दो भेद किये गये हैं। एकको बेक्टीरियम (bac teria) और दूसरेको जर्म (germ) कहते हैं और

इन्हीं दो के लिए जीवाणु और कीटाणु शब्द क्रमशः व्यवहृत हुये हैं।

प्रत्येक जीवाणु एक बहुत ही छोटा कोष्ठ है जिसका जीवन-रस निरंगी होता है जिसके केन्द्रका भाग कुछ दानेदार होता है। इसी जीवित पिंडके चारों तरफ़ एक नाज़ुक दीवार होती है जिस पर लसदार पदार्थ होता है। जीवाणु इतने छोटे होते हैं कि लगभग २५००० की लम्बाई एक इंच होगी।

क्या सब जीवाणु एक ही प्रकारके होते हैं?

सब जीवाणु एक ही प्रकारके नहीं होते। इनमेंसे कुछ उपकारी, कुछ हानिकारक और कुछ उदासीन होते हैं।
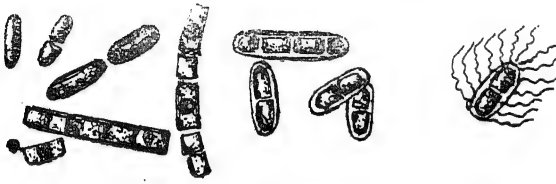
शलाकाकार

गोलाकार पेचदार

चित्र नं० १—(कीटाणुओंके आकार)

जीवाणु गंदगीको दूर करने और अच्छे पदार्थोंके बनानेमें सहायक होते हैं। दूधको जमाना, मृत चीज़ोंको सड़ाना, आसव, मदिरा इत्यादि बनाना इनका काम है। हानिकारक जीवाणु जानवरों, मनुष्यों और पौधोंमें तरह-तरहके रोग उत्पन्न करते हैं। हानिकारक जीवाणुओंकी तरफ़ ही पहले-पहल मनुष्यका ध्यान आकर्षित हुआ, क्योंकि वह इन्हीं द्वारा रोगग्रसित और पीड़ित हुआ। आकारानुसार जीवाणुओंके तीन भेद हैं—शलाकाकार, गोलाकार और वक्राकार (पेचदार)

इन जीवाणुओंका ज्ञान मनुष्यको किस तरह प्राप्त हुआ?

लगभग दो सौ वर्ष व्यतीत हुए एण्टनवान ल्यूवनहाक (Anton Von Leeuwenhock) ने जीवाणुओंको देखा, परन्तु वह केवल बड़ी-बड़ी क़िस्मके जीवाणुओंको ही देख सका। शक्ति-शाली सूक्ष्मदर्शी यन्त्रके आविष्कार तक जीवाणुओंकी बहुत-सी जातियाँ अदृश्य बनी रहीं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्रके आविष्कारके उपरान्त भी मनुष्य जीवाणुओंके संबन्धमें अधिक प्रयोग न कर सके, और न उनके जीवनकी घटनाओंका ही परीक्षण कर सके। परन्तु जब प्रयोगशालामें इनके पोषण और वर्द्धन (पालने और बढ़ाने) के उपाय मालूम हुये तो परख नलियोंमें शोरबा रख कर अधिक सख्यामें इनकी खेती (काश्त) अथवा वृद्धिकी जाने लगी। जीवाणुओंकी खेती अब भी इस विधिसे की जाती है और शोरबाको जिस पर इनका पोषण होता है पोषक अथवा वर्द्धक माध्यम कहते हैं। जब पोषक-माध्यमकी जीवाणु वर्द्धक यन्त्रमें ऐसे उपयुक्त तापक्रम पर रखा जाता है जो जीवाणुओंके लिए अनुकूल हो तो जीवाणु ख़ूब खाते हैं, बढ़ते हैं और शीघ्रतासे वंश-वृद्धि करते हैं। पोषक-माध्यम-खोजके पश्चात् जीवाणु-विद्यामें अधिक उन्नति हुई।

सूक्ष्मदर्शी यन्त्रकी सूक्ष्मदर्शता और पोषक-माध्यमकी उन्नतिके साथ-साथ बहुतसे वैज्ञानिकोंका ध्यान जीवाणु विद्याकी ओर आकर्षित हुआ। संसार भरके अन्वेषक जीवाणुओंके निरीक्षणके लिए उत्तरोत्तर प्रगतिशील प्रणालियोंकी खोजमें निमग्न हो गये। राबर्ट कोख (Robert Koch, १८४३-१९१०) ने इस सम्बन्धमें सबसे अधिक छान-बीन की। यह जर्मनीका एक ग्राम चिकित्सक था। रोगियोंको देखते-देखते और नुसखे लिखते-लिखते उसे विस्मय हुआ करता था कि उन गुह्य रोगोंका क्या कारण है जिनका वह निराकरण करना चाहता है। जब कभी उसे अपने कामसे अवकाश मिलता वह अपने सूक्ष्मदर्शी यन्त्र अथवा जीवाणुओंकी परख-नलियोंसे काम करता हुआ दिखाई पड़ता। उसे शीघ्र ही अनुभव हुआ कि रोगोंके भेदको जाननेके लिए यह जरूरी है कि जीवाणुओंके निरीक्षणके जो तरीके मौजूद थे उनमें उन्नतिकी जाय।

जीवाणुओंके निरीक्षणमें उसके सामने जो कठिनाइयाँ थीं उनमें एक यह थी कि जब कभी वह किसी मृत प्राणीके कोष्ठ-पुंजोंका सूक्ष्मदर्शी यन्त्रसे परीक्षण करता तो उसे रोगके कीटाणु दिखलाई न देते। परन्तु उसे इस बातका

फिर भी संदेह रहता कि जिस स्लाइडका मैं परीक्षण कर रहा हूँ उसमें अधिक संख्यामें यह कीटाणु मौजूद हैं। काख और अन्य जीवाणु-विद्या-विशारदोंने यह निश्चय कर लिया कि यदि जीवाणुओंको रङ्गा जा सके तो वह सहज ही दिखाई पड़ सकेंगे। काखने इस विषय पर बहुतसे प्रयोग किये और निदान रँगनेके बहुतसे तरीके निकाले। रंगनेके यह तरीके अब भी प्रचलित हैं, यद्यपि उनमें बहुत परिवर्तन और उन्नति हो चुकी है।

काखने जीवाणुओंकी खेती (काश्त) के तरीकों में क्या उन्नतिकी ?

काखको अपने काममें एक और असुविधा मालूम हुई। रोगके कीटाणु जिनसे उसे दिलचस्पी थी और जिन्हें वह रोगग्रस्त जानवरोंके शरीरसे निकालता था, प्रयोगशालामें व्यवहृत शोरबामें वंश-वृद्धि नहीं करते थे। परन्तु प्रयोग करनेके पश्चात् उसे मालूम हुआ कि यदि वह अपने पोषक माध्यममें रक्त-रस अथवा चक्षु-रस मिला दे तो यह इन कीटाणुओंके लिए उपयुक्त भोजन बन जाता है। यह ज्ञान बड़े ही महत्वकी घटना थी, क्योंकि अब इस ज्ञानके आधार पर वैज्ञानिक जानवरोंके शरीरके बाहर भी रोगके कीटाणुओंको पैदा कर सकते हैं। इसका मतलब यह है कि कीटाणु इच्छित संख्या और समय पर निरीक्षणके लिए सदा प्राप्त हो सकते हैं।

किन्तु जब कीटाणुओंको किसी जानवरके शरीरसे बाहर निकाला जाता और द्रव पोषक-माध्यममें पैदा किया जाता तो उनके साथ बहुतसे अन्य कीटाणु भी पाये जाते हैं। एक ही स्थान पर बहुतसे किस्मके कीटाणुओंके होनेके कारण कीटाणु-विशारदको किसी एक किस्मके कीटाणुसे प्रयोग करना संभव न था। यह बड़ी भारी रुकावट थी, मगर काखने एक ऐसा तरीका निकाला जिसमें शोरबेके साथ जिलेटीन मिला दी जाती है। द्रवकी हालत ही में वह इस मिश्रणमें कीटाणु डाल देता और द्रवको चपटी शीशेकी रकाबियोंमें उँडेल देता। ठंडे होने पर यह एक पारदर्शक कठोर चीज बन जाती है।

जो कीटाणु प्रवेश किये जाते एक बड़ी सतह पर फैल जाते और प्रत्येक कीटाणु दूसरेसे अलग बैठ जाता। प्रत्येक कीटाणुके भोजन करने, बढ़ने और वंश-वृद्धि करनेसे जो नये कीटाणु उत्पन्न होते अपने जनकके निकट इकट्ठे होनेके लिए विवश थे। वह तर मगर ठोस मिश्रणमें जकड़ जाते और चालक अंग रखते हुये भी चल न सकते थे। कुछ घंटोंके उपरान्त कीटाणुओंकी बस्तियाँ जिलेटीन पर अलग-अलग छिटकी हुई खाली आँखसे दिखाई देने लगतीं। इसके बाद के जमानेमें वैज्ञानिक जिलेटीनकी जगह सूखा हुआ अगर काममें लाने लगा। यह एक पदार्थ है जो समुद्री घाससे तैयार होता है। यह घास जापानके तटसे कुछ दूर पर पाई जाती है। जिलेटीनकी तरह यह भी गरम पानीमें घुल जाती है और ठंडे होने पर जम जाती है। अब काखके तरीकोंमें थोड़े और भी परिवर्तन हुये हैं।

काखने कीटाणुकी शुद्ध वंश-वृद्धि किस तरहकी ?

भिन्न-भिन्न कीटाणुओंको अलग-अलग करनेके बाद और उनके वंशजोंको एक ही स्थान पर सीमित कर देनेसे काखके लिए यह सहज था कि हर एक किस्मके कीटाणुकी उत्पत्ति अलग-अलग कर सके। सुईकी मददसे वह कुछ कीटाणुओं-को एक बस्तीसे अलग करता। चूँकि यह सब एक ही बस्ती से लिये जाते, अतएव वह सब एक ही किस्मके होते थे। इन कीटाणुओंको फिर दूसरी अगर-तख्ती अथवा शोरबा वाली परख-नलीमें डाल दिया जाता। यहाँ इनकी शुद्ध वंश-वृद्धि होती, यानी उनसे एक ही क़िस्मके कीटाणु पैदा होते। कीटाणुओंकी शुद्ध वंश-वृद्धिकी यह एक साधारण विधि है जो सब प्रयोगशालाओंमें व्यवहृत है। कीटाणुओंका स्थानान्तर करते समय इस बातका ध्यान रखा जाता है कि यह हवामें उड़ने वाले अथवा सुई पर मौजूदा कीटाणुओंसे न मिलने पायँ। स्थानान्तर करनेके समय अगरतख्ती अथवा शोरबेको परख-नली कीटाणु रहित रहनी चाहिये। कीटाणुओंको दूसरी जगह बदलनेके बाद अन्य भूले-भटके कीटाणुओंसे उन्हें सुरक्षित रक्खा जाय। शुद्ध वंश-वृद्धि के लिये जरूरत इस बातकी है कि हर एक चीज़ जो काममें लाई जाय कीटाणु-मुक्त हो।

जीव-शास्त्रज्ञोंको यह विश्वास क्यों हुआ कि रोग कीटाणु-जन्य हो सकते हैं ?

भारतवर्षके लोग बड़े भोले-भाले हैं। वे अपनी आपत्तियोंको ग्रह-दशा पर अवलम्बित समझते हैं। अतएव सब रोगोंको ग्रह-दशाका चक्कर समझ कर अपने जीको

ठंडा कर लेते हैं। कुछ रोगोंको तो वह विशेष देवी या देवताका प्रकोप ही समझते हैं और इन्हीं देवी या देवताकी एक मात्र आराधना, सेवा-सुश्रूषा इन रोगोंसे मुक्त करनेके अद्वितीय साधन समझे जाते हैं। ग्रह-दशाका चक्कर हो अथवा देवी-देवताका प्रकोप प्रत्यक्षमें बहुतसे रोगोंके संबंधमें अब यह मालूम हुआ है कि यह कीटाणु-जन्य हैं। रोगोंके कीटाणुवाद जन्मदाता इटलीका एक वैज्ञानिक था। इस सिद्धान्तके अनुसार यह माना जाता है कि संक्रामक (छूतके) रोगोंका मूल कारण कीटाणु है। उसने देखा कि रेशमके सब कीड़े जो रोगग्रसित थे एक पर-जीवी (परोपजीवी) फँफूदीके आश्रयदाता और पालक थे। इस फँफूदीसे कोई मुक्त न था। अतएव वह इस नतीजे पर पहुँचा कि फँफूदी इस रोगकी जड़ है। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया इसी क़िस्मकी अन्य खोजें हुईं, परन्तु लगभग पचास वर्ष और लगे जब कि वैज्ञानिकोंको इस बातके विश्वास दिलानेके लिये पर्याप्त सामग्री इकट्ठी हो सकी कि प्रत्येक संक्रामक रोग विशेष जीवाणु-जन्य है। मगर कीटाणुवादके स्थापन करनेमें यशके अधिक पात्र राबर्ट काख़ ही हैं। सन् १८७५ ई० में रोगको कीटाणु-जन्य अनुमान कर काख़ एन्थ्रेक्स (anthrax) के कारणकी खोजमें निमग्न हो गया। यद्यपि इस रोगसे मनुष्य बहुधा पीड़ित न होते थे तथापि यह भेड़-मवेशियोंका साधारण रोग था जिससे बहुत धन-की हानि होती थी। काख़के पहले सन् १८५४ ई० में फ्रांस निवासी कीटाणु-विद्या-विशारद डेवेनने भी बताया था कि एक विशेष कीटाणु इस रोगका कारण है, परन्तु वह अपने दावेके प्रमाणमें विश्वसनीय साक्षी प्रस्तुत न कर सका। इस बातकी जाँच करनेके लिए काख़ और अन्य कीटाणु-विद्या-विशारदोंने वर्षों अपने-अपने देशोंकी प्रयोगशालाओंमें खोजकी। काख़की संलग्नता अंतमें फलीभूत हुई और अन्य भी वैज्ञानिकोंने इस बातका सबूत पेश किया कि एक विशेष शलाकाकार कीटाणु एन्थ्रेक्स रोग पैदा करता है। कुछ वर्षोंके बाद काख़ने यह भी सिद्ध कर दिया कि राजयक्ष्माका कारण भी एक विशेष शलाकाकार कीटाणु हैं। काख ने इस तरह पर न केवल राजयक्ष्माको नष्ट करनेका उपाय ढूँढ़ निकाला वरन्, कीटाणुवादकी नींव दृढ़ की और संसारके सभी प्रदेशोंमें कीटाणु-विद्या-विशारदोंने काखकी मुक्तकंठसे प्रशंसाकी है।

काखको इस बातका विश्वास किस तरह हुआ कि राजयक्ष्मा शरीरमें बिना किसी कीटाणु-के प्रवेश किये नहीं हो सकती।

राजयक्ष्मा द्वारा मृत जानवरोंके शरीरका परीक्षण करनेसे काखको बहुतसे क़िस्मके कीटाणु दिखाई दिये, परन्तु इन सबमें एक क़िस्मके कीटाणु तो सदा मौजूद पाये गये। अभाग्यवश उसे इस बातका विश्वास न था कि ऐसे कीटाणु जो एक ही क़िस्मके मालूम होते हैं वास्तवमें एक ही जातिके प्राणी हैं। संभव है वह कई क़िस्मके कीटाणु हों जो आपसमें इतने मिलते जुलते हों कि सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा भी अलग अलग न पहचाने जा सकते हों। काख़ने इस मसलेको हल करनेके लिये रंगनेका एक नया तरीका ढूँढ़ निकाला। उसने एक ऐसा तरीक़ा मालूम किया जिससे एक ही जातिके कीटाणु रंग पकड़ते थे और उसी आकारके अन्य जातिके कीटाणु इस रंगको अंगीकार न करते थे। जिस कीटाणुको वह राजयक्ष्माका कीटाणु अनुमान करता था उसीको रंगनेके लिये एक नया रंग तैयार किया गया। काख़ने राजयक्ष्मा ग्रसित जानवरोंमें इन कीटाणुओंको लाखों की संख्यामें पाया। इस नये रंगके व्यवहृत होनेके पश्चात् उसे विश्वास हो गया कि वह आकारकी समतासे धोखा नहीं खा रहा था।

यद्यपि इस क़िस्मके कीटाणु राजयक्ष्माग्रसित सब जानवरोंमें पाये जाते थे फिर भी काख़को इस बातका यक़ीन न था कि इन कीटाणु-द्वारा रोग उत्पन्न होता है। शायद यह कीटाणु रोगके कारण न होते हों, पर रोगीके शरीरमें पाये जाते हों। इस बातके तै करनेके लिये काख़ने ठोस वर्द्धक माध्यम पर इन कीटाणुओंको पैदा किया था। उसने इनकी बहुतसी शुद्ध बस्तियाँ तैयारकी। फिर उसने इन कीटाणुओंमेंसे कुछको सुई-द्वारा एक स्वस्थ जानवरोंके शरीरमें प्रवेश किया जो उसके निरीक्षणमें था। कीटाणु प्रवेश करनेके उपरान्त यह जानवर रोग-ग्रस्त हुआ। उसमें राजयक्ष्माके लक्षण पाये गये और वह इसी रोगसे मर गया।

इतने पर भी काख़को पूर्ण विश्वास न हुआ। इसलिये उसने इन कीटाणुओंको, जो प्रयोगकृत मृत जानवरमें मौजूद थे, रंगा। इस प्रयोगसे उसे मालूम हुआ कि ये

वही कीटाणु थे जिनको उसने वर्द्धक माध्यम पर पैदा किया था। काख़ने अपने प्रयोगोंको बहुत मर्तबा किया तब कहीं वह यह कहनेके लिये तैयार हुआ कि राजयक्ष्माका रोग कीटाणु-द्वारा होता है। उसने अपने प्रयोगोंके इस नतीजेको संसारके सामने उपस्थित किया। कीटाणुवादका यह विश्वसनीय प्रमाण था। काख़ ने ज़मानेके बादसे इतनी शहादत इकट्ठी हो गई है कि कोई मनुष्य इस बयानकी सत्यता पर आक्षेप नहीं करता कि ऐसे रोग भी हैं जो कीटाणु-जन्य हैं।

लूई पाश्चर कीटाणुवाद पर किस तरह पहुँचा ?

कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायताके बिना किसी मसलेके प्रत्येक अंशको हल कर सके। अगर काख़ने अपने ज़मानेके वैज्ञानिक पत्र इस बातके जाननेके लिये न पढ़े होते कि अन्य वैज्ञानिक क्या काम कर रहें हैं अथवा अन्य जीवाणु-विद्या-विशारदोंने उसके काममें कोई दिलचस्पी न ली होती और इस विषय पर उसके साथ वाद-विवाद न किया होता तो वह कीटाणुवादका प्रतिपादन कभी न कर सकता। उस समय बहुतसे मनुष्य इसी मार्ग पर काम कर रहे थे। उनमें लूई पाश्चर (१८२२-१८९५) भी एक था जो काख़के बराबर ही यशका पात्र है, क्योंकि उसने भी यह सिद्ध कर दिखाया है कि कुछ रोग शरीरके अन्दर ख़ास क़िस्मके कीटाणुके बढ़नेसे पैदा होते हैं।

लूई पाश्चर फ्रांसके एक चमड़ा रंगने वालेका लड़का था। उसने अपना काम रसायनज्ञकी हैसियतसे आरम्भ किया। वह अपनी रसायन-प्रयोगशालामें प्रति दिन बहुत देर तक इस धुनमें प्रयत्नशील रहता कि दूध खट्टा क्यों हो जाता है। और मदिरामें ख़मीर उठने (ferment) से क्या परिवर्तन होते हैं। अपने प्रयोगोंके नतीजोंके आधार पर उसे यक़ीन हो गया था कि परिवर्तन करने वाले जीवाणुओंके बिना न तो दूध खट्टा हो सकता है और न अंगूरमें ही ख़मीर उठता है और मदिराके खट्टे हो जाने और बिगड़ जानेका कारण यह है कि उसमें भिन्न जातिके जीवाणु पहुँच जाते हैं। अतएव पाश्चर जो वास्तवमें एक रसायनज्ञ था, कीटाणु-विद्या और जीवाणुओंकी जीवनचर्य्यासे भली भाँति परिचित हो गया था उसे अब यह अनुमान होने लगा कि शरीरके रोग उन परिवर्तनोंके समान हैं जो उसकी शराब-नलियोंमें होते हैं। पस वह जानवरोंके रोगोंके निरीक्षणकी ओर झुका। उसे यह भी संदेह हुआ कि जिन कीटाणुओंको उसने अभी तक प्रयोगशालामें पैदा किया उनसे भिन्न जातिके कीटाणु ही रोगके कारण हो सकते हैं। पाश्चर अभी रोगके इस मसलेको हल भी न कर पाया था कि काख़ ने अपने अन्वेषणोंको छाप दिया।

मनुष्य स्वाभाविक ही इन अदृश्य कीटाणुओंसे किस तरह सुरक्षित रहता है ?

स्रष्टाकी विचित्र लीला है कि वह इतने घोर और भयंकर जीवोंको उत्पन्न करता है और फिर इसका भी प्रबन्ध करता है कि सब अपने-अपने स्वाभाविक चातुर्यसे जीवन-निर्वाह कर सकें। ऐसे वैरियोंसे बचनेके लिये जिनको मनुष्य देख सकता है वह चेष्टा और प्रयत्न कर सकता है, परन्तु अदृश्य वैरियोंसे बचना एक कठिन सी समस्या है। परमात्माकी असीम कृपा है कि उसने हमारे शरीर ही में ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि हम इन अदृश्य कीटाणुओंसे सुरक्षित रह सकें। पहले तो हमारा शरीर ही ऐसा बना हुआ है कि इनकी वाह्य त्वचा हमें इन कीटाणुओंके आक्रमणसे सुरक्षित रखती है। मगर हमारे शरीरमें मुख और नाक ऐसे द्वार हैं जिनमें होकर छोटे-छोटे जीव अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। फिर भी इन अंगोंकी रचना ऐसी होती है कि यह बहु संख्यामें जीवाणुओंको अन्दर जाने नहीं देते। जो मेदेमें पहुँच जाते हैं उनमेंसे बहुतसे पाचक अम्ल रसमें मर जाते हैं। इसी तरह नाक द्वारा भी जो जीवाणु अन्दर प्रवेश होना चाहते हैं उन्हें भी शरीर बाहरकी तरफ निकालनेमें प्रयत्न रहता है। परन्तु इस सब चौकसीके होते हुये भी जीवाणु इस संख्यामें होते हैं कि शरीरके अन्दर प्रवेश कर ही जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी वस्तुके छिदने या किसी जानवरके काटनेसे त्वचा टूट जाती है। ऐसी अवस्थामें कीटाणु कोष्ठ-पुंजोंमें सीधे प्रवेशकर जाते हैं जहाँ उनके लिये उपयुक्त स्थान मिल जाता है, क्योंकि इन कीटाणुओंके पोषणके लिये जिन चीजोंकी ज़रूरत होती है, मसलन भोजन, नमी और ताप तीनों ही मौजूद होते हैं। किन्तु शरीरकेस्वयं सेवक फिर भी इनका पीछा नहीं छोड़ते।

जो कीटाणु शरीरमें प्रवेशकर जाते हैं उन्हें स्वयं-सेवक किस प्रकार नष्ट करते है ?

वास्तवमें मनुष्य अथवा किसी अन्य प्राणीके शरीरमें सब ही जीवाणु तो पलनेकी क्षमता नहीं रखते, परन्तु रोगोत्पादक कीटाणु शरीरमें प्रवेश करते ही तेज़ीसे वंश, वृद्धि करने लगते हैं। यदि पालकमें इन कीटाणुओंका
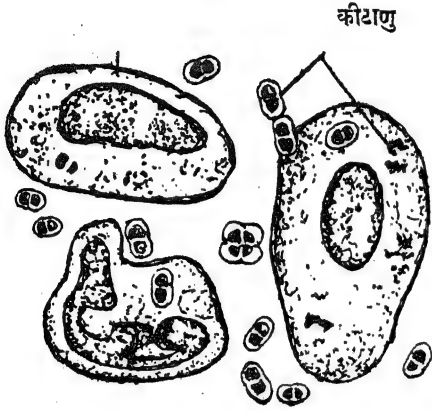
चित्र नं० २—श्वेत कोष्ठ (भोजी कोठ)

सामना करनेकी कोई शक्ति पहलेसे न हो तो वह फौरन ही पराजय हो जाता है। पालक दो किस्मकी संरक्षक शक्तियोंसे सुसज्जित रहता है। इन शक्तियोंको रोग रोकने वाली (प्रतिबंधक) शक्ति कहते हैं। एक किस्मकी प्रतिबंधक शक्तिको एली मेचनी काफ (१८४५-१९१६) रूसी जीव-शास्त्रज्ञ और जीवाणु-विद्या-विशारद ने दरयाफ्त किया। अपने सहकारियोंकी सहायतासे पेरिसकी पाश्चर संस्थामें मेचनीकाफ ने मालूम कर लिया कि त्वचा फूट जानेके बाद जब कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं तो क्या परिवर्तन होता है। ज्योंही रक्त इस फटे हुये स्थानमे बहता है श्वेत कोष्ठ केश नलियोंकी दीवारोंसे बह निकलते हैं और निकटके कोष्ठ-पुंजोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं। यहाँ वह कीटाणुओंको खाकर नष्ट कर देते हैं। चूँकि वह एमीबाकी भाँति असत-पद धारी हैं श्वेत कोष्ठोंमें यह शक्ति है कि वह कोष्ठ पुंजोंमें स्वच्छन्द विचर सकते हैं और कीटाणुओंको खाते रहते हैं। यदि कीटाणुओंकी संख्या अधिक न हुई तो श्वेत कोष्ठ-पुंजको उनसे मुक्तकर देते हैं। मेचनीकाफ ने इन श्वेत कोष्ठोंका नाम भोजी-कोष्ठ रक्खा, क्योंकि ये कीटाणुओंको खाते हैं।

कभी-कभी भोजी कोष्ठ कुभाग्यवश कीटाणुओंका शिकार बन जाते हैं। ऐसी अवस्थामें अधिक श्वेत कोष इस स्थान पर आ जाते हैं। यदि ये भी मर जायँ तो मृत भोजी-कोष्ठ इकट्ठे होते रहते हैं और रक्त-संचालन का मार्ग रोक देते हैं। जब व्रणमें पीव पड़ जाता है तो यह हालत पैदा होती है। पीवको जब सूक्ष्मदर्शी यंत्रसे देखा जाता है तो यह मृत भोजी-कोष्ठोंसे समुदाय साबित होते हैं जिनमें अधिक संख्यामें जीवित कीटाणु मौजूद होते हैं। रक्तके श्वेत कोष्ठ इस तरहसे न सिर्फ कीटाणुओं को ही निगल और पचा डालते हैं वरन् अन्य पर-जीवी और सब प्रकारके वाह्य कणोंको भी निगल जाते हैं। भोजी कोष्ठ बड़े लाभदायक हैं। इन कोष्ठोंकी पराजय होने पर भी शरीरमें संरक्षणके और भी तरीके हैं। यदि कोई प्राणी संरक्षणके लिये केवल भोजी-कोष्ठों पर ही निर्भर होता तो यह थोड़े ही किस्मके रोगोत्पादक कीटाणुओंपर विजय प्राप्त कर सकता।

भोजी-कोष्ठोंके सिवाय और कौन-सी तरकीबें हैं जिनके द्वारा कोई प्राणी कीटाणुओंसे सुरक्षित रह सकता है।

ऐसा ख्याल किया जाता था कि रोगोत्पादक कीटाणु इस कदर वंश-वृद्धि करके आघात करते हैं कि रक्त-संचालन रुक कर शरीरके भिन्न-भिन्न अंग अपने-अपने कामको ठीक-ठीक संपादन नहीं कर सकते। यह हालत कुछ रोगों में घटित होती है। नियम यह है कि पर-जीवी कीटाणु आश्रयदाताके शरीरमें विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनके कारण उसे क्षति पहुँचती है। कुछ किस्मके कीटाणु विषैले पदार्थ पैदा करके बाहर छोड़ते हैं और अन्य विषैले पदार्थोंको अपने कोष्ठोंके अन्दर ही रखते हैं, परन्तु अन्तमें यह विष भी उतनी ही क्षति पहुँचाता है क्योंकि कीटाणुओं के मर जाने और टूटने-फूटनेके बाद विष बाहर निकल पड़ता है। तुम इससे भली भाँति समझ सकते हो कि मनुष्यके शरीरमें भोजी-कोष्ठोंके सिवाय कुछ अन्य पदार्थों को भी ज़रूरत है ताकि वह कीटाणुओंका मुकाबिला कर

सके। शरीरको आवश्यकता इस बातकी है कि विष और कीटाणु दोनोंसे मुक्त रह सके।

विषैले पदार्थों को दूर करनेके लिए कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो रक्त रसमें मौजूद होते हैं। रक्त-रसमें मौजूदा यह पदार्थ विषैले पदार्थोंसे मिलकर उन्हें नष्ट कर देते हैं। इन पदार्थों को विरोधी-विष कहते हैं। विरोधी-विष योजक-कोष्ठ-पुंजके कोष्ठोंसे तैयार होते हैं। साँपका विष कुछ उच्च श्रेणीके पौधोंके घातक विष कीटाणुओं द्वारा पैदा किये हुये विषके समान है। इन विषोंके ख़िलाफ़ भी जानवर विरोधी-विष तैयार कर सकते हैं।

रक्त-रसमें और कौनसे संरक्षक पदार्थ पाये जाते हैं?

विरोधी-विषके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी रक्त-रसमें घुले रहते हैं जो किसी प्राणीको शरीरमें प्रविष्ट कीटाणुओंसे युद्ध करनेमें सहायक होते हैं। यह अन्य पदार्थ कीटाणुओं पर असर करते हैं न कि उनके विषों पर जैसे न रक्तमें कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जो कीटाणुओं पर इस तरह असर करती हैं कि भोजी-कोष्ठोंको कीटाणुओंके खानेमें सुविधा हो जाती है। इस किस्मके पदार्थोंको भोजन-विधायक कहते हैं। जब रक्त-रसमें भोजन-विधायककी मात्रा अधिक होती है भोजी-कोष्ठों द्वारा निगले हुये कीटाणुओंमेंसे पचाये हुये कीटाणुओंको प्रति शत संख्या बढ़ जाती है। कुछ भोजन-विधायक ऐसे होते हैं कि उनकी मददसे प्रत्येक प्रकारका कीटाणु निगला जा सकता है और अन्य केवल एक ही जातिके कीटाणुओं पर असर करते हैं। इस क़िस्मके भोजन-विधायक विशेष हुआ कहते हैं।

रक्तके अन्य रासायनिक पदार्थ भोजी-कोष्ठोंको सहायता नहीं देते, परन्तु कीटाणुओं पर दूसरी ही तरहसे असर करते हैं। इनमें ऐसी चीज़ें हैं जो कीटाणुओंको घोल लेती हैं और इन चीज़ोंको कीटाणु-विलेयक कहते हैं। वास्तवमें कीटाणु ही नहीं, वरन् सब प्रकारके आगंतुक कोष्ठ, चाहे रक्त-कोष्ठ हों अथवा अन्य कोष्ठ, यदि किसी जानवरसे निकाल कर दूसरे जानवरके रक्तमें टीकाके ज़रिये प्रवेश कर दिये जायँ तो कीटाणु विलेयकमें घुल जाते हैं। जो हालत भोजन-विधायक की है वही कीटाणु-विलेयककी है, यानी यह कि भिन्न-भिन्न आगंतुक कोष्ठके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके कीटाणु-विलेयक होते हैं। कीटाणु-विलेयकके सिवाय रक्तमें ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो कीटाणुओंके झुंडके-झुण्ड इकट्ठे कर देते हैं। इन पदार्थोंको कीटाणु-ग्राहक कहते हैं। कीटाणु गति-शील होते हैं। उन्हें कीटाणु-ग्राहक गति-हीन कर देते हैं। यह क्रिया ठीक किस तरह शरीरको मदद देती है, साफ़-साफ़ समझनेमें नहीं आती। शायद जब कीटाणुओंकी ढेरियाँ बन जाती हैं तो भोजी कोष्ठ सहज ही इन पर आक्रमण कर सकते हैं।

ग्रहण-विज्ञान

(ले०—श्रीस्वामी सुदर्शनाचार्य शास्त्री, ज्योतिर्वित्, प्रबन्धक कर्त्ता, श्रीरामानुज आयुर्वैदिक प्रयोगशाला, मुख्याधिष्ठाता, ज्योतिष महाकार्यालय, अमरोहा, यू० पी०)

प्राचीन इतिहासोंके पर्यवेक्षणसे यह बात सर्वथा सिद्ध है कि संसार भरमें वेदसे प्राचीन कोई धर्मग्रन्थ नहीं है। यह वेद अपौरुषेय है तथा ईश्वरीय अनुग्रहसे ऋषियोंके द्वारा प्रत्येक सृष्टिकी आदिमें मानव-हितार्थ प्रकटित होता है।

वेदकी वाङ्मयी मूर्त्तिके छः अंग हैं। उनमें ज्योतिष शास्त्र नेत्र है। यह ज्योतिष-शास्त्र संसारमें प्रत्यक्ष और विलक्षण होनेके कारण सर्वमान्य हो रहा है।

ज्योतिष-शास्त्रके वेदाङ्गत्वका कारण सिद्धान्त-शिरोमणिमें यह लिखा है कि वेदोंमें बहुधा यज्ञका विधान है और यज्ञ करनेके लिये समयको निर्दिष्ट करना पड़ता है, अर्थात् अमुक समय यज्ञ करना चाहिये। यज्ञवेदी इतनी लम्बी और इतनी चौड़ी होनी चाहिये अथवा यज्ञकुण्ड अष्टकोण, चतुष्कोण आदि आकारका होना चाहिये, और यज्ञशाला इस-इस प्रकारकी होनी चाहिये, इत्यादि, यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान ज्योतिष-शास्त्रके बिना नहीं हो सकता।

अतएव ज्योतिष-शास्त्रको वेदाङ्गत्व है।

ज्योतिष-शास्त्रके प्रमुख तीन भाग माने जाते हैं:—

१—सिद्धान्त। २—संहिता। ३—होरा।

हमें यहाँ सिद्धान्त भागको प्रसङ्गोपात्त होनेसे ग्रहण करना है। इस सिद्धान्त भागको ही सिद्धान्त ज्योतिष या (Astronomy) कहते हैं।

सिद्धान्त ज्योतिषकी परिभाषा :—

कालका सबसे छोटा भाग "त्रुटि" कहलाता है। त्रुटिसे लेकर कल्पतककी कालगणना, सौरमान, सावनमान, नाक्ष-आदि कालमान, प्रत्यनुकलासे भगण पर्यन्त क्षेत्र परिमाण, ग्रह और नक्षत्रादिकोंकी गति, व्यक्त तथा अव्यक्त गणित (Mathematics) उत्तरोंके सहित प्रश्न, पृथ्वी, तथा ग्रहोंकी संस्थिति, और यंत्र आदिकोंका वर्णन जिसमें हो उसे सिद्धान्त ज्योतिष कहते हैं।

सिद्धान्त ज्योतिषका संक्षिप्त परिचय—

सिद्धान्तोंमें तीन सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। १—सौर। २—आर्य। ३—ब्राह्म। कालके अंतरसे ग्रहगणितमें अंतर सर्वदा पड़ता ही रहता है। अतएव इसी अंतरके संशोधनार्थ आचार्योंने समय-समय पर सिद्धान्त ग्रंथोंकी रचनाकी थी। इसी बातको श्रीगणेश दैवज्ञने भी लिखा है कि—

ब्रह्मा, बृहस्पति, वसिष्ठ, कश्यप आदि महर्षियोंने ग्रहगणित शास्त्रोंकी रचनाकी थी, किंतु वे उसी समय दृकतुल्य थे। फिर पीछे अधिक समय व्यतीत हो जाने पर उनमें सान्तर देख कर मयासुर नामके दैत्यने श्री सूर्यनारायणसे प्रार्थना की तब उन्होंने श्री सिद्धान्तकी रचनाकी। फिर पाराशर ग्रंथ बना। इसके बाद आर्यभट्टने आर्य-सिद्धान्त और दुर्गसिंह, बराहमिहिर आदिने अपने-अपने सिद्धान्त बनायें। तदनन्तर जिष्णुके पुत्र ब्रह्मगुप्तने ब्रह्म सिद्धान्त बनाया। इसके पीछे भास्कराचार्यने सिद्धान्त-शिरोमणि करण कुतूहल आदि सिद्धान्त ग्रंथोंका प्रणयन किया। फिर केशवाचार्यने अपने नामका ग्रंथ और उसके बाद गणेश दैवज्ञने ग्रहलाघव बनाया। सिद्धान्त ज्योतिषके अनेक प्रामाणिक ग्रंथ हैं। इस देशमें प्रायः तीन उपरिलिखित सिद्धान्तोंका ही प्रचार दृष्टिगोचर होता है।

(१) सौर सिद्धान्तः—इस सिद्धान्तमें सूर्य सिद्धान्त या सूर्य सिद्धान्तके अनुसार करण ग्रंथ मान्य हैं। इस सिद्धांतका प्रचार बंगालसे पंजाब तक है।

(२) आर्यसिद्धान्तः—इसका प्रचार दक्षिण भारतमें है।

(३) ब्राह्मसिद्धान्तः—इसका प्रचार बम्बई तथा राजपूताना प्रान्तमें है।

सिद्धान्तों पर संक्षिप्त विचार—

उपरिलिखित तीनों सिद्धान्तोंमें सर्वमान्य निर्भ्रान्त तथा वास्तव दृश्य सिद्धान्त हैं। इसे अनेक विशिष्ट विद्वान् मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। सौर सिद्धान्तका प्रधान ग्रंथ सूर्य-सिद्धान्त परम प्राचीन तथा परम आर्ष है। इसका निर्माणकाल अबसे २१ लाख ६५ हजार वर्षोंसे अधिक है। सूर्य-सिद्धान्तके अतिरिक्त अब दो सिद्धान्त शेष रहते हैं। आर्य-सिद्धान्त और ब्रह्म-सिद्धान्त। सो आर्य सिद्धान्त सूर्य-सिद्धान्तसे प्रायः मिलता-जुलता-सा ही है। अतः आर्य सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्तमें तुल्यता-सी ही है। अब रहा ब्रह्म सिद्धान्त। उसके विषयमें आचार्य बराहमिहिरने कहा है कि ब्रह्म सिद्धान्त और वसिष्ठ सिद्धान्त अस्फुट है। और सौर सिद्धान्त स्पष्टतर है। कमलाकर भट्ट तथा ज्योतिर्विदाभरणकारके मतमें भी ब्रह्म सिद्धान्त स्थूल और सौर सिद्धान्त सूक्ष्म है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सौर सिद्धान्त ही विशेष तथा सर्वमान्य है।

[शेष पृष्ठ २३३ पर देखो]

घरेलू डाक्टर

विज्ञान-परिषद् की ओर से "घरेलू डाक्टर" नामक पुस्तक तैयार करनेकी योजना की गई है। इस पुस्तकके सम्पादक डा० जी० घोष एम० बी०, बी० एस०, डी० टी० एम० प्रयाग, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी०, बी० एस० (अजमेर) डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश हैं। इस पुस्तकके प्रथम आठ पृष्ठ विज्ञान, फरवरी १६४०, में छपे थे। आगामी आठ पृष्ठ इस अंकमें दिये जा रहे हैं।

अँगोछना (sponging)—गीले कपड़ेसे देह पोंछनेको अँगोछना कहते हैं (शब्दसागर)। यूरोपीय लोग अकसर इस कामके लिए स्पंजका प्रयोग करते हैं। जब किसी रोगमें कमज़ोरीके कारण स्नान करना अनुचित समझा जाता है और अँगोछनेसे कोई हानि होनेकी संभावना नहीं रहती है तो शरीर अँगोछ दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब बुखार (ज्वर) तेज़ रहता है और प्रतीत होता है कि तापक्रम तुरन्त कम न करनेसे हानि होगी तब औषधियोंके परिणाम की प्रतीक्षा न करके शरीरको ठंढे गीले कपड़ेसे अँगोछ दिया जाता है। विशेष ब्योरा परिचर्याके सम्बन्धमें दिया जायगा।

अंजन—श्यामता लाने या रोग दूर करनेके निमित्त आँखकी पलकोंके किनारे पर लगानेकी वस्तुको अंजन कहते हैं। अंजन लगाना स्त्रियोंके सोलहों शृङ्गारोंमेंसे है (शब्द सागर)। अंजनका मुख्य अवयव काजल होता है, इसीलिए काजलको भी अंजन कहते हैं। आँखोंमें सुरमा (उ० दे०) भी ठीक अंजनकी ही तरह और उसी अभिप्रायसे लगाया जाता है। इसलिए कभी-कभी सुरमेको भी अंजन कहते हैं।

अंजन लगाना देशी प्रथा है। पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणालीमें पलकों पर रोग दूर करनेके अभिप्रायसे मरहम अवश्य लगाते हैं, परन्तु उसमें काजल नहीं डाला जाता। स्वभावतः बहुतसे लोग जानना चाहते हैं कि अंजन लगाने की पुरानी भारतीय प्रथामें, जो अब भी प्रायः घर-घर प्रचलित है, आधुनिक विज्ञानका क्या मत है। इसमें संदेह नहीं कि सादे अंजनके लगानेसे किसी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती; इतना ही नहीं, इससे आँखोंमें रोग शीघ्र नहीं होने पाता। कारण यह है कि काजल बनानेके लिए तेल (साधारणतः कड़ुआ अर्थात् सरसोंका तेल) इस प्रकार जलाया जाता है कि इनसे कालिख खूब बने। कालिख तभी खूब बनती है जब ऑक्सिजनकी कमी रहती है और तेल पूर्णतया जल नहीं पाता। गरमीके कारण तेलका कुछ अंश टूट कर नवीन रासायनिक वस्तुओंमें परिवर्तित हो जाता है और ऑक्सिजनकी कमीके कारण ये नवीन वस्तुएँ पूर्णतया जल नहीं जातीं। उनका कुछ अंश बचा रह जाता है। इन नवीन वस्तुओंमेंसे एक अलकतरा भी है। जैसा अब सभी जानते हैं, अलकतरामें अनेक कीटाणुनाशक पदार्थ (क्रियोज़ोट आदि) होते हैं। वस्तुतः ये पदार्थ अलकतरेसे ही निकालकर बाज़ारमें बेंचे जाते हैं)। इससे स्पष्ट है कि काजलमें कीटाणुनाशक पदार्थ थोड़ी-बहुत मात्रामें अवश्य रहते हैं। इन्हींके कारण आँखोंकी, विशेषकर पलकोंकी, रक्षा होती है।

कोरा काजल (बिना घी या तेल मिला काजल) ही अक्सर पलकों पर लगाया जाता है। यह भी अच्छा है, परंतु साधारणतया इसमें थोड़ा-सा शुद्ध गायका घी मिला लेते हैं और यही अंजन है। इसके सेवनसे कीटाणुनाशक द्रव्योंके गुणके अतिरिक्त एक लाभ यह भी होता है कि पलकें उस समयभी नहीं चिपकतीं जब आँखमेंसे (अस्वस्थताके कारण) ऐसा पदार्थ निकलता है जो सूखने पर बिना अंजन लगे पलकोंको चिपका देता है। फिर काजलकी अपेक्षा अंजन-में यह गुण है कि इसकी बहुत सूक्ष्म रेखा लगाई जा सकती है जो सौंदर्यकी दृष्टिकोणसे आवश्यक है।

प्रत्येक बार उपयोग करते समय काजल या अंजनके बरतनको दियेकी लौ पर औंधा रख कर कुछ नवीन काजल बना लेनेकी प्रथा प्रचलित है। यह सर्वथा सराहनीय है, क्योंकि लौकी आँचसे कीटाणु मर जाते हैं और इस प्रकार अंजन सदा कीटाणु-रहित रहता है।

कुछ लोग अंजनमें काजल और घीके अतिरिक्त तरह-तरहका बहुत-सी दूसरी चीज़ें भी डालते हैं। नाम-मात्र (लगभग १ प्रतिशत) कपूर डाल देनेमें तो कोई हरज़ नहीं है, परन्तु तीक्ष्ण वस्तुओंका डालना बहुत हानिकारक हो सकता है, विशेषकर ऐसी वस्तुएँ जैसे मिरचा। कुछ लोग अनाड़ियोंके बने अंजन लगा-लगा कर अपनी आँख ही खो बैठते हैं। जब आँखोंमें कोई रोग हो तब किसी विशेषज्ञ-की राय लेनी चाहिए और अंट-संट अंजन न लगाना चाहिए।

अंजीर (fig)—अंजीर एक प्रसिद्ध फल है जो गूलरके समान होता है। खानेमें यह मीठा होता है। यह भारतवर्षमें बहुत जगह होता है, पर अफ़ग़ानिस्तान, बिलो-चिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं। मालामें गुथे

हुए इसके सुखाए फल अफ़गानिस्तान आदिसे हिन्दुस्तानमें बहुत आते हैं और मेवावालोंकी दूकानों पर बिकते हैं।

अंजोर कुछ रेचक (दस्तावर) होता है। इसलिए उनको विशेष रूपसे अंजीर खाना चाहिए जिनका पेट साफ़ नहीं रहता (अर्थात् कोष्ठ-बद्धता-कब्ज़-की शिकायत रहती है)। सिरप ऑफ़ फ़िग्स (syrup of figs) के नामसे जो दवा प्रसिद्ध है और जिसके नामका अर्थ है 'अंजीरका शरबत' उसमें वस्तुतः सनाय (senna) पड़ा रहता है और इसलिए वह अधिक रेचक होता है।

ताज़ा अंजीर तो सबको अच्छा लगेगा, परन्तु वह सब जगह नहीं मिलता है। सूखे अंजीरको बहुतसे लोग कच्चा ही खाते हैं। यह भी अच्छा है, परंतु अंजीरको पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए। अंजीरसे स्वादिष्ट पकवान भी बन सकते हैं। इनके बनानेकी विधि बहुतोंको ज्ञात नहीं है। इसलिए नीचे एक रीति दी गई है जिससे रुचिकर वस्तु तैयार होती है।

उबाले अंजीर—आध सेर अंजीरके लिए दो छटाँक चीनी, एक नीबू और आठ या दस छटाँक पानी चाहिए, पहले अंजीरको अच्छी तरह धो लो। यदि धोनेके बाद इसे खँखरे कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें १ मिनट तक लटका दिया जाए तो और भी अच्छा होगा, क्योंकि तब अंजीरकी ऊपरी सतह और भी अच्छी तरह साफ़ हो जायगी। इस सतहमें तरह-तरहकी मैल लगी रहती है क्योंकि हमारे बाज़ारोंमें अंजीर खुला ही बिकता है और खुला ही आता है, और इसके अतिरिक्त मालको सुन्दर और अच्छे रंगका बनानेके ख्यालसे उसपर अकसर कुछ विशेष लेप चढ़ा दिया जाता है।

अब अंजीर, चीनी और नीबूके रसको चीनी मिट्टी, तामचीनी या जबलपुरी मिट्टीके बरतनमें रक्खो और नपे पानीको अलग बरतनमें खौला कर अंजीर पर छोड़ दो। अंजीरको तुरन्त अच्छी तरह ढक दो और तब अंजीरके बरतनको आँच पर चढ़ी कड़ाहीमें रक्खो जिसमें थोड़ा पानी हो। कड़ाहीके पानीको उबलने दो। इस प्रकार अंजीर लगभग १½ घण्टे में पक जायगा। इतना तीन चार आदमियोंके लिए काफी होगा।

सरल विधि—यदि ऊपरकी रीतिमें असुविधा जान पड़े तो अंजीर, चीनी, नीबूके रस और पानीको तामचीनीके बरतनमें डाल कर बरतनको आँच पर चढ़ाना चाहिए। जब उबलने लगे तब आँच बहुत मंद कर दिया जाए। इस विधिसे बनाने पर चीज़ उतनी अच्छी तो नहीं बनती तो भी काफ़ी अच्छी बनती है। इस रीतिमें पानी कुछ अधिक डालना चाहिए क्योंकि कुछ पानी जल जायगा।

अंड—अंडकोशके भीतर जो दो कड़ी गुठलियाँ होती हैं उन्हें अंड या शुक्र-ग्रंथि कहते हैं। देखो जननेंद्रिय।

अंडकोश (फ़ोता; scrotum)—लिंगेंद्रियके नीचे वह चमड़ेकी दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनों गुठलियाँ रहती हैं अंडकोश कहलाता है (शब्द-सागर)। अंडकोशके भीतर जो दो गुठलियाँ होती हैं उनको अंड या शुक्र-ग्रंथि (testes या testicles) कहते हैं। अंडकोशमें दो खाने होते हैं और बीचके परदेकी संधि ऊपर सीवनकी तरह दिखलाई पड़ती है। अंडकोशकी त्वचाके नीचे मांस-सूत्रोंकी एक तह रहती है। जब यह मांस सिकुड़ा रहता है, तो अंडकोशकी त्वचामें चिंगुरन या झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। शीतके प्रभावसे यह मांस अकसर सिकुड़ा रहता है जिसके कारण अंडकोश मोटा और छोटा मालूम पड़ता है। गरमीके प्रभावसे मांस फैल जाता है और थैली पतली और बड़ी दिखलाई पड़ती है। वृद्धावस्थामें मांसके कमज़ोर हो जानेसे थैली ढीली हो जाती है और नीचेकी ओर अधिक लटकी रहती है।

अंडकोशके फूलनेका कारण या तो अंडप्रदाह, या अंत्रवृद्धि (हरनिया) या अंडकोश वृद्धि (हाइड्रोसील) या अंडकोश-शिरा-वृद्धि, या फाइलेरिया होता है। ये रोग अपने-अपने स्थानमें मिलेंगे। उन लोगोंके अंडकोशकी त्वचा पर अकसर उकवत (एकज़ेमा) हो जाता है जिन्हें तीव्र रासायनिक पदार्थोंसे काम करना पड़ता है, जैसे मिट्टीके तेल या अलकतराके कारखानोंके मजदूरोंको। अंडकोशको त्वचामें कैंसर भी हो जा सकता है। इन रोगोंसे बचनेके लिए ऐसे लोगोंको सफ़ाई पर बहुत ख़्याल रखना चाहिए और गंदे हाथसे अंडकोशको कभी न छूना चाहिए।

अंडकोशवृद्धि (hydrocele)—अंडकोशवृद्धि

में अंडकोश या फ़ोता फूल कर बहुत बढ़ जाता है। इस रोगमें जल अंडकोशमें जा पहुँचता है और उसको बढ़ाता है। इस रोगको कभी-कभी अंडवृद्धि भी कहते हैं, परन्तु उचित नाम अंडकोश-वृद्धि है, क्योंकि इस रोगमें अंड नहीं बढ़ता, अंडकोश बढ़ता है।
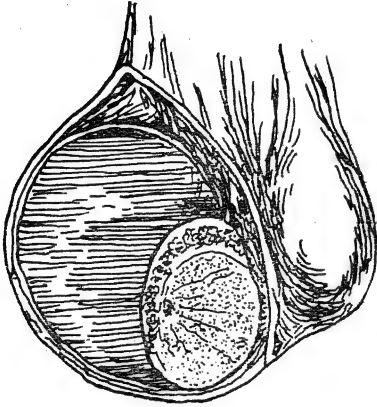
अंडकोशवृद्धि

इस रोगमें अंडकोशमें जल उतर आता है।

यह रोग जन्मके समय बच्चोंको भी हो सकता है, परन्तु साधारणतः अधेड़ आदमियोंको ही होता है। अधिकांश लोगोंमें जलके एकत्रित होनेका कोई कारण नहीं जान पड़ता। केवल थोड़ेसे लोगोंमें यह रोग चोटके कारण या अंडके किसी रोगके कारण होता है।

लक्षण—अंडकोशके दो भागोंमेंसे एक धीरे-धीरे फूलने लगता है। फूला हुआ अंडकोश या तो गोल या कद्दूकी शकलका होता है। कम या अधिक जल उतरे रहनेके अनुसार यह छोटा-बड़ा होता है। छूनेमें लचीला होता है और इसको छूनेसे इसमें लहरें पैदा होती हैं। यदि अँधेरेमें इसकी एक ओर प्रकाश रक्खा जाय (बिजली बत्ती रखना अच्छा होगा) तो दूसरी ओरसे देखने पर फूला हुआ अंडकोश अर्धपारदर्शक दिखलाई पड़ता है। इस प्रकारसे जाँच करनेसे असली अंडकोशवृद्धिका पता चल जाता है, क्योंकि यदि अंडकोश जल उतरनेके बदले किसी दूसरे कारणसे फूला होगा तो वह अर्धपारदर्शकके बदले अपारदर्शक जान पड़ेगा। परंतु स्मरण रखना चाहिए कि अंडकोशवृद्धिके पुराने रोगियोंमें अंडकोशकी दीवार इतनी मोटी हो जाती है कि इसकी अर्धपारदर्शकता मिट जाती है। अंडकोशवृद्धिमें पीड़ा नहीं होती, परन्तु बढ़ जाने पर भारी जान पड़ता है।

चिकित्सा—दवा देकर अंडकोशवृद्धि अच्छा करने या रोकने की विधि ज्ञात नहीं है। या तो अंडकोशमें एकत्रित जलको खोखली सुई चुभाकर निकाल लिया जाता है या चीर-फाड़की एक विशेष क्रियासे जल का उतरना बंद कर दिया जाता है। यदि जल निकाला जाता है तो अंडकोशके भीतर इनजेकशन द्वारा दवा भी डाल दी जाती है तो भी कुछ महीनोंमें अंडकोश धीरे-धीरे फिर जलसे भर जाता है। और इस प्रकार जल निकालनेकी क्रियासे रोग जड़से नहीं मिटता। उपरोक्त चीर-फाड़ वाली विशेष क्रियासे जलका उतरना सदाके लिए बंद हो जाता है। इस क्रियामें कोई जोखिम नहीं है और न विशेष पीड़ा होती है। इसलिए संभव हो तो यही उपचार कराना चाहिए।

जिन लोगोंको अंडकोश-वृद्धि होनेका संदेह हो उन्हें लँगोट पहनना चाहिए, या ससपेंडर (suspender) अर्थात् विशेष पेटी बाँधनी चाहिए, जिसमें अंडकोशको उठाये रखनेके लिए एक थैली लगी रहती है। ऐसी पेटी या लँगोटके व्यवहारसे जल उतरना बहुत कुछ रुक जाता है।

अंडकोश-शिरा-वृद्धि (varicocele)

—अंडधारक रज्जु (उ० दे०) के शिराके फूल जाने और बढ़ जानेके कारण यह रोग उत्पन्न होता है (शिरा उस नलीको कहते हैं जिसके द्वारा रक्त हृदयकी ओर जाता है)। इस रोगमें अंडकोश कुछ सूज आता है। जब रोगी लेटता है जो सूजन मिट जाती है। टटोलने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे अंडकोशमें केंचुए भरे हों, क्योंकि शिरा बढ़ जाती है और स्थान उतना ही रहनेके कारण कई बार उलटी-सीधी मुड़ जाती है। यह रोग जवानोंको अधिक होता है, विशेषकर उनको जिन्हें कोष्ठबद्धता (कब्ज़) की शिकायत रहती है। अकसर इससे कोई तकलीफ नहीं होती, परंतु कभी-कभी अंडकोश भारी जान पड़ता है और नसोंमें

पीड़ा जान पड़ती है। व्यायाम या परिश्रम करने पर और गरमीमें पीड़ा बढ़ जाती है।

चिकित्सा—यदि रोग हलका हो तो कुछ उपचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। लँगोट या ससपेंडर पहनने से आराम मिलता है (ससपेंडरके लिए देखो अंडकोश वृद्धि)। ठंढे पानीसे स्नान करना चाहिए और अंडकोश को ठंढे पानीसे धोना चाहिए। भोजन ऐसा खाना चाहिए जिससे पेट साफ रहा करे। यदि पीड़ा अधिक हो तो चीर-फाड़ की आवश्यकता होगी। डाक्टर शिराका एक अंश काटकर निकाल देगा। इससे शिरा फिर छोटी हो जायगी।

अंडधारक रज्जु (spermatic cord)—यदि आप अंडकोशके ऊपरी भागको टटोलें तो उसमें
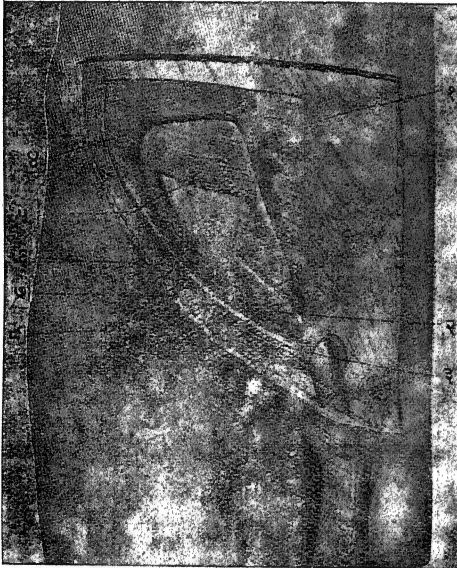
अंडधारक रज्जु

इस चित्रमें २ अंडधारक रज्जु है।

एक रस्सी या डोरी जैसी चीज मालूम होगी। अंड इसी डोरी-द्वारा अंडकोशमें लटकता रहता है। इस डोरीको अंडधारक रज्जु कहते हैं। इस डोरीमें अंडकी रक्त-वाहिनियाँ, लसीका-वाहिनियाँ और नाड़ियाँ तथा शुक्र-प्रणाली एकत्रित रहती हैं। कभी-कभी यह रज्जु ऐंठ (घूम) जाती है और इससे रक्तका प्रवाह रुक जाता है। ऐसी दशामें तुरंत डाक्टरसे उपचार कराना चाहिए, अन्यथा वहाँके अवयव शीघ्र सड़ जाते हैं और तब बिना चीरकर अंड और अंडधारक रज्जुको निकाले प्राण नहीं बच सकता।

कभी-कभी अंडधारक रज्जुकी शिराएँ गँठीली हो जाती हैं। (देखो अंडकोश-शिरा-वृद्धि)।

अंडप्रदाह (orchitis)—अंड (शुक्र-ग्रंथि) के प्रदाह (सूजन) को अंडप्रदाह कहते हैं। अंडके ऊपरी भाग पर एक चिपटा पिंड रहता है उसे उपांड (epididymis) कहते हैं। इसके प्रदाहको यदि अलग नाम देना हो तो उसे उपांडप्रदाह (epididymitis) कहते हैं। साधारण व्यक्तियोंको इन दोनों रोगोंमें कुछ अंतर नहीं जान पड़ता और चूँकि लक्षण और चिकित्सा एक-सी ही हैं दोनों पर अलग-अलग विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अंडप्रदाह साधारणतः कीटाणुओंके कारण होता है और प्रॉस्टेट ग्रंथियोंके रोगोंमें अकसर अंड या उपांड भी सूज आता है, परंतु सबसे अधिक संख्यामें यह रोग सूज़ाकके कारण होता है। क्षय रोगके कारण भी अकसर यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—पहले ऊरुसंधिके पास पीड़ा होती है (ऊरु अर्थात् जंघा और पेटकी संधिको ऊरुसंधि कहते हैं, देखो ऊरुसंधि, (groin)। अकसर लोगोंको धोखा हो जाता है और इसे पेटकी बीमारी या अपेंडिसाइटिज़ (उपांत्रप्रदाह) समझ लेते हैं। अकसर थोड़ा-बहुत ज्वर भी चढ़ आता है; और अंड या उपांड शीघ्र फूल आता है और छूनेसे बड़ी पीड़ा होती है। अंडकोश भी लाल हो जाता है और सूज आता है। पीड़ाके कारण मचली भी आने लगती है।

चिकित्सा—सबसे अधिक लाभप्रद उपचार विश्राम है। जाँघोंके बीच अंडकोशके नीचे छोटीसी तकिया रख देना चाहिए और अंडकोशको सेंकना चाहिए। रोगके असली कारणकी दवा करनी चाहिए।

अंडा (egg)—अधिकांश हिंदुओंको अंडा खानेमें धार्मिक आपत्ति होती है। परन्तु इससे हमको कुछ प्रयोजन नहीं। वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे निस्संदेह अंडा अत्यन्त बहुमूल्य भोज्य पदार्थ है। यह शीघ्र पचता है। इसमें बसा, प्रोटीन और बहुमूल्य लवण अधिक मात्रामें रहते हैं। कारबोहाइड्रेटकी मात्रा कम होती है जिसके कारण बहुमूत्र (मधुमेह) के रोगमें भी यह खाया जा सकता है।

घी या अन्य वसा (चरबी, तेल आदि) में पकाया या बहुत देर तक उबाला अंडा उतना शीघ्र नहीं पचता जितना कि कच्चा या बहुत कम समय तक उबाला अंडा। इसलिए क्षीण पाचन-शक्ति वालोंको, रिकेट्स रोगसे ग्रस्त लड़कोंको और क्षय या रक्ताल्पता (अनीमिया) से पीड़ित व्यक्तियोंको कच्चा अंडा, गरम दूधमें मिलाया अंडा, या बहुत कम समय तक उबाला अंडा देना चाहिए।

रक्खे रहनेसे अंडा खराब हो जाता है। इसलिए ताज़े अंडेका ही इस्तेमाल करना चाहिए। यह जाननेके लिए कि अंडा अच्छा है या नहीं १० छटाँक पानीमें एक छटाँक नमक तौलकर घोलना चाहिए। इस पानीमें अंडा को डालने पर यदि वह डूब जाय तो समझो कि अंडा ठीक है। यदि उतराने लगे तो समझो कि अंडा बिगड़ गया है।

अँतड़ी (intestine)—जैसा शरीर-रचना वाले लेखमें बतलाया जायगा, शरीरके उस भागके भीतर जिसे मोटे हिसाबसे पेट कहा जाता है, कई अवयव रहते हैं जिनमेंसे एक अंत्र, अँतड़ी या आँत है। यह एक नली है जो आमाशयसे निकल कर गुदा तक जाती है और पचीस फुट लंबी होती है। पेटके भीतर अंत्र कई तहोंमें मुड़ कर पड़ा रहता है—वस्तुतः पड़ा नहीं रहता, यह माँसके पतले परतके भीतर गठरीकी तरह बँधकर लटका रहता है (इस परतको अंत्रधारक कला (mesentry) कहते हैं। अंत्रके दो भाग माने जाते हैं, एक क्षुद्रांत्र (छोटी आँत) दूसरी बृहदंत्र (बड़ी आँत)। जहाँ दोनों जुड़ते हैं वहाँसे आमाशय तक क्षुद्रांत्र रहता है और गुदा तक बृहदंत्र। संधि पर दो पल्लों वाला एक कपाट (वाल्व) होता है जिससे आहार रस बृहदंत्रमें तो जा सकता है, परन्तु यह उलटा क्षुद्रांत्रमें

अँतड़ी।

इस चित्रमें अँतड़ी ६, ८, ७, १५, १६, १७ से सूचित की गई है। अन्य अवयवों तथा अँतड़ीके भागोंके नाम ये हैं—१—मुँह; २—टेंटुआ; ३—अन्नप्रणाली; ४—पित्ताशय; ५—यकृत; ६—पक्वाशय; ७—उदगामी बृहदंत्र; ८—क्षुद्रांत्र तथा बृहदंत्रकी संधि; ९—अंत्र पुट; १०—उपांत्र या अपेंडिक्स; ११—कंठ; १२—वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी; १३—आमाशय; १४—क्लोम; १५—अनुप्रस्थ बृहदंत्र; १६—अधोगामी बृहदंत्र; १७—क्षुद्रांत्र, १८—श्रोणिगा बृहदंत्र; १९—मलाशय; २०—गुदा; २१—मलद्वार।

लौट नहीं सकता। संधिके पास ही बृहदंत्रमें दो-तीन इंच लंबी एक नली लगी रहती है जिससे उपांत्र (या अँग्रेजीमें

अपेंडिक्स, appendix) कहते हैं। इसीके सूज आनेसे या सड़ जानेसे वह भयंकर रोग होता है जिसे अपेण्डि-साइटिज़ (उपांत्रप्रदाह) कहते हैं।

क्षुद्रांत्रके तीन भाग माने गये हैं। प्रथम दस-बारह इंचको द्वादशांगुल अंत्र (duodenum) कहते हैं। क्लोम और यकृत (जिगर) से आई हुई नलियाँ आँतमें यहीं मिलती हैं। इसके बाद ऊर्ध्व क्षुद्रांत्र (jejunum) है जो आठ-नौ फुट लम्बा होता है और अंतमें अधर क्षुद्रांत्र (ileum) है जो बृहदंत्रमें जा मिलता है। कुल क्षुद्रांत्र लगभग २२ फुट लम्बा और डेढ़ इञ्च व्यासका होता है। क्षुद्रांत्र चार परतोंसे बना रहता है। बाहरी परत चिकनी
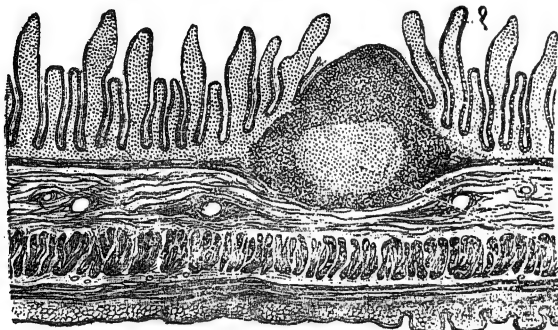
क्षुद्रांत्रकी सूक्ष्म रचना।
क्षुद्रांत्रकी दीवालकी काटका यह बड़े पैमाने पर चित्र है। १ से अंकित अंग ग्राहकांकुर है।

और चमकदार होती है। इसके भीतर मांसकी परत रहती है, फिर तीसरी परत रहती है जिसमें रक्त-वाहनियाँ रहती है, और सबसे भीतर श्लैषमिक कला रहती है। श्लैषमिक कला चिकनी नहीं होती। इसमें परतें पड़ी रहती हैं और इसमें छोटे-छोटे और बाल जैसे पतले अंकुर निकले रहते हैं जो आहार-रसको सोखते हैं और इसलिए ग्राहकांकुर (villi) कहलाते हैं। यहाँ कुछ ग्रंथियाँ भी रहती हैं जिससे आंत्रिक-रस निकलता है जो आहारको पचाता है। अंत्र भरमें बीस-पचीस विशेष ग्रंथि-समूह भी बिखरे हैं। इनको पायरके ग्रंथि-समूह (Peyer's patches) कहते हैं। इनमें विशेष महत्व यह है कि टाइफ़ायड (मंथर ज्वर) में ये सूज आते हैं और इन पर घाव हो जाता है।

बृहदंत्र लगभग छः फुट लम्बा होता है और इसका व्यास क्षुद्रांत्रके पाससे चल कर उत्तरोत्तर कम होता जाता है। गुदाके पास इसका व्यास फिर बढ़ जाता है और वहां यह मलाशय (rectum) कहलाता है। क्षुद्रांत्रकी तरह बृहदंत्रमें भी चार परतें होती हैं, परन्तु इसमें ग्राहकांकुर और पाचक ग्रंथियाँ नहीं रहतीं।

आँतोंमें आहार किस प्रकार पचता है इसके लिए देखो पाचन।

अँतड़ी दुबरना (intususception)—अँतड़ीका एक भाग कभी-कभी पास वाले भागके भीतर घुस जाता है। इसीको अँतड़ी दुबरना कहते हैं। यदि अँतड़ी देखी जा सकती तो दिखलाई पड़ता कि अँतड़ीका एक भाग दूसरे के भीतर उसी प्रकार घुस गया है (या दूसरा भाग पहले भागके ऊपर उसी प्रकार चढ़ गया है) जिस प्रकार कुरतेकी बाँहको छोटा करनेके लिए उसके बीचमें प्लेट डाल देते हैं। जहाँ अँतड़ी घुसी रहती है वहाँ एकके बदले इसकी तीन तहें हो जाती हैं। ऐसा अकसर बृहदंत्र और क्षुद्रांत्रकी संधि पर होता है।
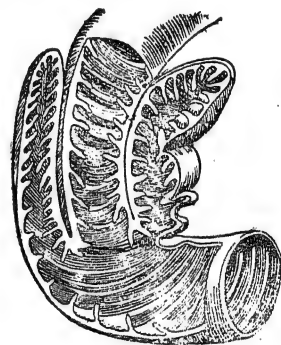
अँतड़ी दुबरना।
अँतड़ीका एक भाग पासके भागमें घुस गया है।

साधारणतः बारह महीनेसे कम आयु वाले बच्चोंको ही यह रोग होता है। अनुमान किया जाता है कि भोजनमें किसी तीव्र या कड़े अंशके कारण अँतड़ी दुबर जाती है। कारण यह है कि अँतड़ी ऐसी वस्तुको निकाल बाहर करनेमें इतनी शक्ति लगती है कि स्वयं पासके भागके भीतर घुस जाती है।

अँतड़ी दुबरनेके लक्षण हैं—वमन, कमज़ोरी, और आँव गिरना। पेटमें खूब पीड़ा होती है। मल त्याग करनेके लिये बच्चा बार-बार चेष्टा करता है, परंतु आँवकी तरह ही ज़रा-ज़रा कुछ निकल पाता है।

चिकित्सा—बच्चेकी जान बचानेके लिए ऑपरेशन शीघ्र कराना चाहिए, परन्तु डाक्टर तुरन्त न मिल सके तो गरम पानीका एनेमा (उ० दे०) देना चाहिए। कभी-कभी गरम एनेमासे आँत सीधी भी हो जाती है और ऑपरेशनकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

स्थायी रोग—प्रौढ़ व्यक्तियोंमें कभी-कभी स्थायी रूपसे भी आँतें दुबर जाती हैं और यह अकसर अँतड़ीमें फोड़ा (ट्यूमर) के कारण होता है। इसका उपाय केवल ऑपरेशन है, परन्तु साधारणतः यह आवश्यक नहीं होता कि ऑपरेशन तुरन्त ही किया जाय। हाँ, इसका भय रहता है कि किसी दिन अँतड़ीका भीतरी रास्ता बन्द हो जायगा और तब तुरन्त ऑपरेशन न करनेसे प्राण जानेकी शङ्का रहेगी।

अँतरिया (intermittent fever)—कई रोगोंमें ज्वर बराबर नहीं बना रहता; वह नियमित रूपसे घटा-बढ़ा करता है। यदि कुछ समयके लिए ज्वर प्रायः पूर्णतया उतर जाय तो ज्वरको अँतरिया (अर्थात् अंतर देकर आने वाला ज्वर) कहते हैं। प्रति तीसरे दिन आने वाले ज्वरको तृतीयक ज्वर (tertian fever) या तिजरिया और प्रति चौथे दिन आने वाले ज्वरको चतुर्थक ज्वर (quartan fever) या चौथिया कहते हैं। देखो मलेरिया।

अंत्राणिच्युति (visceroptosis)—उन मांसपेशियोंके ढीली हो जानेके कारण जिनके सहारे अँतड़ी आदि भीतरी अवयव अपने स्थान पर टिके रहते हैं ये अवयव नीचे लटक आते हैं। इसीको अंत्राणिच्युति कहते हैं। केवल अँतड़ीके नीचे लटक आनेको अंत्रच्युति (enteroptosis) कहते हैं, वृक्कके लटक आनेको वृक्कच्युति (nephroptosis) कहते हैं, इत्यादि।

यह रोग अधिकतर स्त्रियोंको होता है और साधारणतः पचीस और पचास वर्ष के आयुके भीतर होता है।

अंत्राणिच्युति।
अँतड़ी नीचे खिसक आती है और पेट फूल आता है।

अँतड़ी आदिके लटक आनेके कई कारण हो सकते हैं, पेटकी दीवारकी मांसपेशियोंका कमज़ोर हो जाना, बोझ और कमज़ोरीके कारण बंधनियों (ligaments) का लम्बा हो जाना, तंग चोली पहनेके कारण छाती और पेटके ऊपरी भागका दब जाना (जिसके कारण भीतरी अवयव नीचे उतर आते हैं) इत्यादि। मांसपेशियोंकी कमज़ोरीका कारण साधारणतः यही होता है कि लड़कपन और यौवनारंभमें लड़कियाँ काफ़ी कसरत (व्यायाम) नहीं करतीं, या पीछे बार-बार बच्चा जननेके कारण ये मांसपेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। बच्चा होते समय श्रोणि-आधार (pelvic floor) के बहुत तन जाने या फट जानेसे भी अँतड़ी आदि अवयव लटक आते हैं। किसी अन्य रोगके कारण जब व्यक्ति बहुत दुबला हो जाता है और चर्बी घट जाती है तो भी अंत्राणिच्युतिका डर रहता है, क्योंकि स्वस्थ व्यक्तियोंमें पेटके भीतरी अंगोंको चर्बीकी गद्दियोंका सहारा मिलता है। अधिक आयुके मर्दोंको जब यह रोग होता है तब साधारणतः यही कारण रहता है कि उनकी चर्बी तब कम हो जाती है। बराबर अधिक भोजन करते रहनेसे भी यह रोग हो जा सकता है।

लक्षण—अधिकांश व्यक्तियोंको यह पता भी नहीं चलता है कि उनको यह रोग है। जिनको कोई कष्ट होता

है उनकी शिकायत साधारणतः यही होती है कि पेट भारी-सा जान पड़ता है और पेटके नीचे वाले भागमें मीठा-मीठा दर्द जान पड़ता है। अँतड़ीके कुछ भागोंके लटक आनेके कारण कहीं-कहीं उसका भीतरी मार्ग संकुचित हो जाता है। इससे कुछ बदहज़मी, कोष्ठबद्धता आदिकी शिकायत रहती है। पेट भी वायुके कारण फूल आ सकता है। सरमें मीठा दर्द भी रहता है। लेटने पर पेटका भारीपन कम हो जाता है।

यकृत (जिगर) के लटक आनेसे पित्त-प्रणालियाँ तन या ऐंठ जाती हैं जिससे पांडु रोगके लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। तिल्ली (प्लीहा) या गुर्दा (वृक्क) के लटक आनेसे शूल उत्पन्न होता है। कभी-कभी अँतड़ीके कुछ अंशोंके लटकने और कुछके टँगे रहनेके कारण अँतड़ीमें ऐसी गाँठें पड़ जाती हैं कि अपेंडिसाइटिज़ (उपांत्रप्रदाह) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

जब रोग कुछ पुराना पड़ जाता है तब रोगीमें शारीरिक शिथिलताके साथ मानसिक शिथिलता भी आ जाती है और उसका किसी भी काममें जी नहीं लगता। वह हतोत्साह हो जाता है। इससे रोगीका अच्छा होना और भी कठिन हो जाता है।

यदि संदेह हो कि किसीको अंत्राणिच्युति है तो उसके पेटकी परीक्षा उसे खड़ा करके और लेटा कर दोनों अवस्थाओंमें करनी चाहिए। टटोलनेसे पता चल जायगा कि कौन-से अंग कितने लटक पड़े हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखनेमें आयगा कि लेटने पर पेट सपाट रहता है, परन्तु खड़े होने पर पेटका नीचे वाला भाग फूल आता है। रोगका सबसे सच्ची पहचान एक्सरश्मियोंसे होता है। इन रश्मियोंसे जाँच करनेके पहले रोगीको बिसमथ मिश्रित भोजन खानेको देते हैं। एक्सरश्मिके लिए बिसमथ अपारदर्शक होता है। इसलिए अँतड़ियोंकी स्थितिका ठीक पता तुरन्त चल जाता है।

चिकित्सा—यदि आरम्भमें ही रोगका पता चल जाय तो विश्राम और उचित व्यायामसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। व्यायाम ऐसा हो जिससे पेटकी मांसपेशियाँ मज़बूत हो जायँ। व्यायामकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय। मालिशसे भी लाभ होता है। विशेष पेटी पहने या पेटको कपड़ेसे बाँधे रखनेसे भी सहायता मिलती है। हलका भोजन करना चाहिए। हरी तरकारी (विशेष कर साग आदि) और फल भी काफी मात्रामें खाना चाहिए जिसमें कोष्ठ-बद्धताको शिकायत न रहे। मानसिक शिथिलताको दूर करनेके लिए किसी अध्यात्मविद्याविशारद (साइकॉलॉजिस्ट) की सहायता ली जा सकती है। यदि रोगी ठान ले कि वह स्वस्थ हो जायगा और वह मन लगाकर उपचार करे तो अवश्य ही वह बहुत-कुछ स्वस्थ हो जायगा।

यदि इन सब रीतियोंसे लाभ न हो तो पेट चीर कर डाक्टर भीतरी अवयवोंको उचित स्थान पर बाँध सकता है, परन्तु अकसर इससे स्थायी लाभ नहीं होता। कुछ ही समयमें पुराने लक्षण फिर लौट आते हैं।

पेट, पेटी और अँतड़ी शीर्षक लेखोंको भी देखो।

अंत्रवृद्धि (hernia, rupture)—आँत उतरनेके रोगको अंत्रवृद्धि कहते हैं। इसे अँग्रेज़ीमें रपचर (rupture) कहते हैं जिसका अर्थ है फटना। अंत्रवृद्धिमें अँतड़ी पेट 'फाड़कर' (साधारण छिद्रको बड़ा करके) बाहर निकल पड़ती है और इसलिए रपचर नाम भी उपयुक्त है। डाक्टर लोग इसे हर्निया (hernia) कहते हैं। परन्तु हर्निया शब्दसे केवल अँतड़ीके ही बाहर निकल पड़नेका बोध नहीं होता। शरीरका कोई अवयव जब अपने आवेष्ठनके बाहर निकल पड़ता है—चाहे प्राकृतिक छिद्र द्वारा, चाहे आकस्मिक बन गये छिद्र द्वारा—तो कहा जाता है कि रोग हर्निया है। अँतड़ीका निकल पड़ना ही अधिक देखनेमें आता है, परन्तु खोपड़ीके फट पड़ने पर जब भेजा निकल पड़ता है तो उसे भी डाक्टर लोग हर्निया कहते हैं; यदि छाती कट जाए और फेफड़ा निकल पड़े तो वह भी हर्निया होगा, इत्यादि।

अंत्रवृद्धिसे हम केवल अंत्रका अपने आवेष्ठन से बाहर निकल पड़ना सूचित करेंगे। पेटके सामने वाली दीवारमें तीन स्वभावतः निर्बल स्थान हैं और इन्हींमेंसे किसी एक स्थान द्वारा अँतड़ी निकल पड़ती है। ये तीन स्थान हैं (१) नाभि, (२) मर्दोंमें वह स्थान जहाँसे अंडधारक रज्जु पेटके बाहर निकलती है (देखो अंडधारक रज्जु और वहाँ दिया गया चित्र) और स्त्रियोंमें अंडधारक रज्जुके बदले गर्भाशयकी बंधनीके निकलनेका स्थान; और (३) वह स्थान जहाँसे रक्तवाहिनियाँ पेटसे निकल कर जाँघमें जाती हैं।

ग्रहण-विज्ञान

[शेष २२४ के आगे]

सूर्य सिद्धान्तसे ग्रहणका स्वरूप—

छादकोभास्करस्येन्दु रधः स्थोघनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

सूर्य-सिद्धान्त ४ । ६

सूर्यग्रहणमें सूर्यग्रहणका कारण चन्द्रमा है और चन्द्रग्रहणमें चन्द्रग्रहणका कारण पृथ्वीकी छाया है। जब चन्द्रमा भ्रमण करता हुआ सूर्यमंडलके नीचे मेघके सदृश आकर सूर्यके बिम्बको आच्छादित करता है तब सूर्यग्रहण होता है। जब चन्द्रमा अपनी शीघ्र गतिसे पश्चिमसे पूर्वकी ओरको चलता हुआ भूमिकी छायामें प्रवेश करता है तब चन्द्रग्रहण होता है।

तात्पर्य यह है कि सूर्यग्रहणमें सूर्यबिम्बको आच्छादन करने वाला चन्द्रमा और चन्द्रग्रहणमें चन्द्रबिम्बको आच्छादित करने वाली भूमिकी छाया है। जैसे यदि सूर्य ऊर्ध्व स्थित है तब भी जैसे बादल सूर्यके नीचे भागमें आकर उसे ढक लेता है तब मेघ उसका आच्छादक हो जाता है। अतः हमें सूर्य उस समय नहीं देख पड़ता। ठीक इसी तरह चन्द्रमा भी मेघके सदृश सूर्यके नीचे आकर उसे ढक लेता है, तब सूर्य-बिम्बका जितना हिस्सा चन्द्रमासे ढक जाता है तो वह भाग अंधकारसे आच्छन्न होनेके कारण हम लोगोंको दिखाई नहीं देता है।

शंका—यहाँ यदि कोई यह शंका करें कि सूर्यके नीचे (mercury) बुधकी संस्था है और बुधकी संस्थाके नीचे शुक्रकी संस्था है तब फिर कहीं शुक्र (venus) की संस्थाके नीचे चन्द्रमाकी संस्था है। जब चन्द्रमाके आच्छादक होनेसे सूर्यग्रहण होता है तो इससे ऊपर जो बुध और शुक्र हैं उनके आच्छादक होनेसे सूर्यग्रहण क्यों नहीं होता?

समाधान—इस शंकाका उत्तर यह है कि बुधका मंडल और शुक्रका मंडल चन्द्रमंडलकी अपेक्षा अत्यन्त छोटा है। अतः इन दोनोंके मंडल सूर्यमंडलको आच्छादित नहीं कर सकते। इससे बुधकृत और शुक्रकृत सूर्यग्रहण नहीं होता हैं।

योगकालमें जब तक सूर्य-बिम्ब या चन्द्र-बिम्बको राहु (चन्द्रपात) की समीपता नहीं होती तब तक ग्रहण लगता ही नहीं है। राहु ही छायाको उत्पन्न करता है। अतएव ग्रहणका कारण राहु माना गया है।

पश्चिमसे पूर्वको गमन करता हुआ चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है। इसीसे चन्द्रग्रहणमें चन्द्र-बिम्बके पूर्वभागसे स्पर्श और पश्चिम भागमें मोक्ष होती है। सूर्यग्रहणमें चन्द्रमा पश्चिमसे पूर्वकी ओर गमन करता हुआ सूर्यमंडलको आच्छादित करता है। अतः सूर्य-बिम्बके पश्चिम भागसे स्पर्श और पूर्व भागमें मोक्ष होती है।

किसी भी स्थानसे चन्द्रग्रहण एक साथ बराबर देखा जा सकता है, किन्तु सूर्यग्रहणमें यह बात नहीं हैं। सूर्यग्रहणके प्रत्येक स्थानका समय पृथक्-पृथक् रहता है। क्योंकि सूर्यग्रहणमें पृथ्वीकी छाया तो कारण होती नहीं। अमावस्याके दिन जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक सूत्रमें ओत-प्रोत होते हैं तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वीके मध्यमें रहता है। इधर चन्द्रमाका निस्तेज मंडल सूर्यके बिम्बको आच्छादित करता है, तब भूपृष्ठ पर चन्द्रमाकी छाया पड़ती है। चंद्र-बिम्बकी जितने भूपृष्ठ भाग पर छाया पड़ती है उसमें जितने स्थान आ जाते हैं, उन्हीं स्थानोंसे सूर्यग्रहण दृष्टिगोचर होता है, और जो स्थान छायासे बाहर रह जाते हैं उनसे नहीं।

सिद्धान्त-ग्रंथोंमें ग्रहणका प्रकरण आया है। अतः हमने यह ग्रहणका स्वरूप सूर्य-सिद्धान्तके आधार पर लिखा है।

ग्रहणके इस स्वरूपमें प्रायः सभी ज्योतिषके आचार्य एक मत रखते हैं।

ग्रहणके सम्बन्धमें पौराणिक संक्षिप्त कथा :—

पुराणोंमें समुद्र-मथनकी कथामें ग्रहणका प्रसङ्ग आया है। वह संक्षिप्त कथा इस प्रकार है कि जब समुद्र मथा गया तो उससे १४ रत्न निकले। उन रत्नोंमें एक रत्न अमृत भी था। अमृतपान करनेके लिये देवता और दैत्य लालायित थे। भगवान् विष्णुने मोहिनी रूप धारण करके दोनों ही को एक ओर देवताओंकी पंक्ति और दूसरी ओर दैत्योंकी पंक्ति बैठायी। जब भगवान मोहिनी-रूपमें देवताओंकी पंक्तिमें अमृत बाँट रहे थे तब राहु नामका एक मायावी राक्षस देव-वेष धारण करके देवताओंको पंक्तिमें आ बैठा और उसने भी यथाक्रम अमृत लेकर पान किया। सूर्य और चन्द्रमा

उस छद्म-वेषधारी राहुको पहिचान गये। अतः इन दोनोंने भगवान्‌से यह निवेदन किया कि भगवन्! यह देवता नहीं है किन्तु राहु नामक राक्षस है। इसपर भगवान्‌ने क्रुद्ध होकर सुदर्शनचक्र ले उसका सिर काट डाला। तभीसे वह अपने वैर-शोधनके निमित्त सूर्य और चन्द्रमाको जहाँ पाता है वहीं ग्रस लेता है। किन्तु ये उसकी गर्दनके छिद्रसे बाहरसे निकल जाते हैं। इस पौराणिक कथामें ग्रहणका कारण राहु माना गया है।

समन्वय

ज्योतिष-शास्त्रने ग्रहणकी पौराणिक कथाको अपनाया है, क्योंकि ज्योतिष-शास्त्रका यह अटल सिद्धान्त है कि जब तक योगकालमें राहु (चन्द्रपात) की समीपता सूर्यबिम्ब या चन्द्रबिम्बको नहीं होती तब तक ग्रहण लगता ही नहीं है। छायाका उत्पन्न करने वाला राहु ही है। अतएव ग्रहण का कारण राहु है।

सिद्धान्त-शिरोमणिके प्रणेता भास्कराचार्य लिखते हैं :—

दिग्देश कालावरणादि भेदान्नाच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवल गोलविद्यास्तत्संहिता वेद पुराणबाह्मम्॥
राहुः कुभा मण्डलगः शशाङ्कं शशांकगच्छादयति न बिम्बम्।
तमोमयः शंभुवर प्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥
सिद्धान्त-शिरोमणि-गोलाध्याय।

केवल गोल-वेत्ता लोग जो यह कहते हैं और मानते हैं कि दिशा, देश, काल और आवरणके प्रभेद वशात् राहु आच्छादक नहीं है। सो उनका यह सिद्धान्त संहिता, वेद, और पुराणोंके सर्वथा प्रतिकूल है।

पुराणान्तरमें यह भी कथा है कि शिवजीके वर-प्रदानसे राहु सूर्य और चन्द्रको ग्रहण-कालमें ग्रसता है। अतएव भगवान् शंकरके प्रदत्त वरके बलसे तमोमय राहु, पृथ्वीके छाया-मण्डलमें प्रवेश करके चन्द्र-बिम्बको आच्छादित करता है और चन्द्रमण्डल प्रवेशपूर्वक राहु, सूर्य-बिम्बको आच्छादित करता है। किन्तु केवल बिम्ब आच्छादन नहीं करता। यही ग्रहण होनेका सिद्धान्त है। और ऐसा सिद्धान्त माननेमें सब आगमोंका अविरोध रहेगा।

वक्तव्य यह है कि पुराणोंमें ग्रहणका कारण राहु है और ज्योतिष-शास्त्रमें भी ग्रहणका कारण राहु ही है। अतएव ग्रहणके सम्बन्धमें ज्योतिष तथा पुराण इन दोनोंका ही ऐकमत्य है।

ग्रहण जाननेकी सरल रीति

चन्द्रग्रहण:—यह ग्रहण पूर्णिमाको और रात्रिमें होता है। इसके जाननेका प्रकार यह है कि प्रत्येक ग्रह किसी न किसी नक्षत्र पर अवश्य रहता हैं। नक्षत्र २७ हैं और राशियाँ १२ हैं। प्रत्येक नक्षत्रके ४ चरण होते हैं और नौ चरणोंकी एक राशि होती है। अतएव प्रत्येक ग्रह यथा समय नियत नक्षत्र और तदनुकूल निर्दिष्ट राशि पर रहता है।

जिस पूर्णिमाको जानना चाहो कि इस पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होगा या नहीं, तब वहाँ दो बातें देखनी चाहिये।

१-सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उसके पन्द्रहवें नक्षत्रमें चन्द्रमा हो।

२-रात्रिमें पूर्णिमा और प्रतिपदाकी संधि हो।

बस ये दोनों ही बातें जिस पूर्णिमामें मिलेंगी वहीं चन्द्रग्रहण होगा।

सूर्यग्रहण :—

हिन्दुस्तानी महीनोंके जो नाम हैं वे सब सार्थक तथा साधार हैं। ज्योतिष-शास्त्रमें उल्लेख है कि पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र होनेसे उस महीनेका नाम चैत्र है, इत्यादि। निम्न लिखित नक्शेसे समझना चाहिये।

तिथि	नक्षत्र	महीनेका नाम
पूर्णिमा १५	चित्रा	चैत्र
,,	विशाखा	वैशाख
,,	ज्येष्ठा	ज्येष्ठ
,,	पूर्वाषाढ़	आषाढ़
,,	श्रवण	श्रावण
,,	पूर्वाभाद्रपद	भाद्रपद
,,	अश्विनी	आश्विन
,,	कृत्तिक	कार्त्तिक
,,	मृगशिर	मार्गशीर्ष
,,	पुष्य	पौष
,,	मघा	माघ
,,	उत्तराफाल्गुनी	फाल्गुन

चन्द्रमासकी पूर्णिमाको निर्दिष्ट नक्षत्र होनेसे उस-

उस मासका नाम नियत किया गया है जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है।

जिस अमावस्याको सूर्यग्रहणका होना या न होना जानना चाहो वहाँ भी निम्नलिखित दो बातें देखनी चाहिये।

१—जिस महीनेमें ग्रह जानना चाहो उससे पूर्व मास-के नक्षत्रसे १६ वाँ सूर्य-नक्षत्र होना चाहिये। अथवा राहु या केतुसे आगे या पीछे थोड़े ही अन्तरमें सूर्य अवश्य होना चाहिये।

२—सूर्यग्रहण दिनमें ही होता है। अतः दिनमें अमावस्या और प्रतिपदाकी संधि होनी चाहिये।

बस ये दोनों ही बातें जिस अमावस्यामें मिलेंगी वहीं सूर्यग्रहण होगा। अब हम इन नियमोंके अनुसार १० वर्षों के ग्रहणके उदाहरण लिखते हैं:—

उदाहरण

सं० १९९१—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा वृहस्पतिवार; श्रवण—नक्षत्र, मकर राशि, २६ जुलाई सन् १९३४। पूर्णिमा—२९ घड़ी ५२ पल। पुष्य नक्षत्र पर सूर्य।

यहाँ सूर्यके पुष्य-नक्षत्रसे श्रवण तक गिना १५ हुये। और यहाँ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाकी रात्रिको संधि भी है। अतः यहाँ खण्ड चन्द्रग्रहण हुआ था।

सं० १९९१—पौष शुक्ल पूर्णिमा, शनिवार, पुष्य नक्षत्र, कर्कराशि १९ जनवरी सन् १९३५। पूर्णिमा ३२ घड़ी २४ पल। उत्तराषाढ़ नक्षत्र पर सूर्य।

यहाँ सूर्यके उत्तराषाढ़-नक्षत्रसे पुष्य तक गिना। १५ हुये और यहाँ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाकी रात्रिको संधिभी थी। अतः इस दिन पूर्ण चन्द्रग्रहण हुआ था। अब विस्तार न लिख कर केवल ग्रहणोंकी सूची लिखते हैं।

सं० १९९२—पौषशुक्ल पूर्णिमा, बुधवार, पुनर्वसु नक्षत्र, मिथुनराशि, ८ जनवरी सन् १९३६ को पूर्ण चन्द्र-ग्रहण हुआ था।

सं० १९९३—आषाढ़ कृष्ण अमावास्या, शुक्रवार, मृगशिर नक्षत्र, मिथुनराशि, १९ जून सन् १९३६ को खण्ड सूर्यग्रहण हुआ था।

सं० १९९३—आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, शनिवार मूल नक्षत्र धनराशि, ४ जुलाई सन् १९३६ को खण्ड चन्द्रग्रहण हुआ था।

सं० १९९४—में अर्थात् १२ अप्रैल सन् १९३७ से ३१ मार्च सन् १९३८ तक कोई ग्रहण नहीं हुआ।

सं० १९९५—कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमा सोमवार भरणी नक्षत्र, मेषराशि, ७ नवम्बर सन् १९३८ को खण्ड चन्द्र-ग्रहण हुआ था।

सं० १९९६—वैशाख शुक्ला पूर्णिमा, बुधवार, स्वाति नक्षत्र, तुलाराशि, ३ मई सन् १९३९ को पूर्ण चन्द्रग्रहण हुआ था।

सं० १९९७—फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा वृहस्पतिवार उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, सिंहराशि, १३ मार्च सन् १९४१ को ग्रस्तोदय खण्ड चन्द्रग्रहण होगा।

यह ग्रहण भारतसे पूर्वके देशोंमें दृष्टिगोचर होगा और भारतमें भी जहाँ ग्रस्तोदय कुछ थोड़ा निर्मल होनेमें शेष रहेगा वहाँ उदय होते समय ग्रहण दिखाई दे जायगा किन्तु पश्चिमके देशोंमें वह भी दिखाई न देगा।

सं० १९९८—आश्विन कृष्ण अमावस्या, रविवार उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, कन्याराशि, २१ सितम्बर सन् १९४१ को खण्ड सूर्यग्रहण होगा।

सं० १९९८—फाल्गुन शुक्ला १५, सोमवार पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र, सिंहराशि २। ३ मार्च सन् १९४२ को पूर्ण चन्द्रग्रहण होगा।

सं० १९९९—अर्थात् १७ मार्च सन् १९४२ से ४ अप्रैल सन् १९४३ तक कोई ग्रहण नहीं होगा।

सं० २०००—श्रावण शुक्ला पूर्णिमा, रविवार धनिष्ठा नक्षत्र, मकरराशि १५ अगस्त सन् १९४३ ई० को पूर्ण चन्द्रग्रहण होगा।

यहाँ हमने १० वर्षोंके ग्रहण लिखे हैं जिससे पाठक-गण अनुभव कर सकते हैं।

बहेड़ा

[ले०—श्री० रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

नाम

हिन्दी—बहेड़ा।

संस्कृत* —उत्पत्ति बोधक नामः—विंध्याजात (विन्ध्या पर्वतमें उगने वाला)

परिचयज्ञापकनाम :—

कलिक, कलिक वृक्ष, कलिद्रुम (कलिका वृक्ष, नलके सारथी बाहुकके शरीरसे उत्पन्न कलिको जब नल शाप देने लगा तब वह भयातुर होकर बहेड़ेके पेड़में छिप गया†। कलियुगालय (कलियुग ने इसे अपना घर बना लिया है); भूतवास (कलि रूप भूतका घर); विभीतक (विभेत्यस्मात्, भूत-कलिका डेरा होनेसे लोग इससे डरते हैं); धर्मद्वेषी, धर्मघ्न (जूआ खेलनेसे धर्म नाश हो जाता है, और क्योंकि जूएमें बहेड़ेके बने पासोंसे खेल होता था इसलिए जूएके साधन-पासोंके उत्पादिक वृक्षका नाम भी धर्मद्वेषी या धर्मघ्न पड़ गया); तिलपुष्प (तिल सदृश-छोटे फूलों वाला); वासन्त (वसन्तसे दुखित ?); रोमहर्षण (फल के ऊपर मखमली मुलायम और चिकने रोएँ होते हैं); अक्ष (फल वज़नमें एक अक्ष अर्थात् तोला भर होता है, या इसकी लकड़ीसे जूएकी खेल पासे—अक्ष—बनाये जाते हैं); कर्षफल (फल तोलमें एक एक कर्ष-तोला होते हैं); मधुबीज (मीठे बीजों वाला फल); तैलफल (बीज मज्जांसे तेल निकलता है); बहेड़क (बहेड़ा)।

गुण प्रकाशक संज्ञा—विभीतक (विभातं भीतं रोग-भयमस्मात्; इसके सेवनसे रोग होनेका भय जाता रहता है); तुष (तुष्यति; रोग निवारण करके जीवोंको प्रसन्न करता है); मल (मलकारक अनुलोमक फल);

*संस्कृत लेखकोंके शब्दोंमें बहेड़ेके नाम हैं—

विभीतकः कर्षफलो वासन्तोऽक्षः कलिद्रुमः।
संवर्तको भूतवासः कल्कोहार्यो बहेडकः॥
—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

विभीतकस्तैलफलो भूतवासः कलिद्रुमः।
संवर्तकस्तु वासन्तः कलिकवृक्षो बहेडकः॥
हार्यः कर्षफलः कलिकधर्मघ्नोऽक्षोऽनिलघ्नकः।
विभीतकश्च कासघ्नः स प्रोक्तः षोडक्षाह्वयः॥
—राजनिघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग।

विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यादक्षः कर्षफलस्तथा।
कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः॥
—भावप्रकाश; हरितक्यादि वर्ग; श्लोक ३४।

विभीतकः कर्षफलो भूतवासः कलिद्रुमः।
वासन्तोऽक्षो विन्ध्यजातः संवर्तस्तिलपुष्पकः॥
—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग; श्लोक ३१।

विभीतको भूतवासो मधुबीजो बहेडकः।
धर्मद्वेषी वसन्तार्त्तो हर्मक्षो कुशिकस्तुषः॥
वासन्तोऽक्षोविन्ध्याजातस्तिलपुष्पः कलिद्रुमः।
कल्पद्रुमः कर्षफलस्तु मलो रोमहर्षणः॥
—कैयदेवनिघण्टु; औषधिवर्ग श्लोक २२५, २२६।

कैयदेवके 'कलिद्रुम' और 'कल्पद्रुम' दोनों पर्याय विपरीत अर्थवाची मालूम होते हैं। एक वृक्षकी हीनता प्रदर्शित करता है और दूसरा उसके महत्वको दिखाता है। 'वसन्तार्त्त' और 'वासन्त' भी इसी तरह विपरीत अर्थवाची नाम हैं।

† एवमुक्त्वा ददौ विद्यामृतुपर्णो नलाय वै।
तस्याक्षहृदयज्ञस्य शरीरान्निःसृतः कलिः।
तं शप्तुमैच्छत् कुपितो निषधाधिपतिर्नलः।
तमुवाच कलिर्भीतो वेपमानः कृताञ्जलिः॥
मे च त्वां मनुजा लोके कीर्त्तयिस्यन्त्यतन्द्रिताः।
यत्प्रसूतं भयं तेषां न कदाचिद्भविष्यति॥
भयार्त्तं शरणं यातं यदि मां त्वं न शप्स्यसे।
एवमुक्तो नलो राजा न्ययच्छत् कोपमात्मनः॥
ततो भीतः कलिः क्षिप्रं प्रविवेश विभीतकम्।
—महाभारत; वनपर्व; अध्याय ७२; श्लोक ३०, ३३, ३७, ३८।

वामन पुराणके सत्रह अध्यायमें भी 'कलिद्रुम' के सम्बन्धमें एक कथा है।

कासघ्न (खाँसीको नाश करने वाला); विषघ्न (विष नाशक); अनिलघ्नक (वायुनाशक)।

बंगाली—बहेरा।

गुजराती—बहेड़ा।

मराठी—बेहड़ा, वहेला।

कर्णाटकी—हरि।

तामिल—अक्कदम्, तांन्रिक-काय।

तेलगु—ताडि, तान्द्रक-काय।

काश्मीर—बहेर।

बर्मा—थित्सिन, टिस् सिन्।

आसामी—हुलूम, बौरी।

सिंहाली—बलू, बुलगाह।

कोंकण—गोटिंग।

मलाया—तान्नि।

तुर्की—दादि।

अरबी—बतिलूज, बेलेयलुज, वलिलाज्।

फारसी—बलेले, बेलायलेह्।

अंग्रेजी—बेलेरिक माइरोबैलन (beleric myrobalon)।

लैटिन—टर्मिनेलिया बेलेरिक, रौक्सवर्घ (terminalia belerica, roxb)

नैसर्गिक वर्ग—कोम्ब्रिटेसी (combretaceœ)

प्राप्ति-स्थान

भारत, बर्मा और लंकाके जंगलोंमें सर्वत्र, मैदानोंमें और कम ऊँचे पहाड़ों पर लगभग तीन हज़ार फ़ीटकी समतासे नीचे मिलता है। सिन्ध-पश्चिमीय राजपूताना और दक्षिणीय पञ्जाबके शुष्क और बंझड़ स्थानों पर नहीं होता। हिमालयकी तराईमें और अवधके साल-जंगलोंमें प्रायः मिलता है। शिवालिक शैल पर, पेशावरमें, सिन्धु नदके किनारेकी भूमिमें, कोयम्बटूर और बलियाके जंगलमें, ग्वालपाड़ा, सुखनगर, गोरखपुर, धन्यतोला, और मौङ्ग शैलमालामें बहेड़ेके वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते हैं। भारतीय प्रायद्वीपमें यह बहुधा आर्द्र घाटियोंमें पाया जाता है। मलका, जावा और मलायामें यह वृक्ष होता है। लङ्कामें दो हज़ार फ़ीट ऊँचे स्थलों पर बहुत मिल जाता है।

वर्णन

जंगलोंमें बहेड़ा साधारण वृक्ष है। इसका वृक्ष दूरसे ही पहचाना जा सकता है और पूर्णतया बढ़ा हुआ वृक्ष सुन्दर दिखाई देता है। स्वभावमें यह झुण्डोंमें रहने वाला वृक्ष है और इधर-उधर बिखरे हुये भी इसके वृक्ष उगते हैं। सागौन, साल और अक्षन आदिके जंगलोंमें पाया जाता है।

बहेड़ेका वृक्ष अस्सीसे एक सौ बीस फ़ीट तक ऊँचा चला जाता है। ऊँचे सीधे, नियमित आकृतिके तनेकी ऊँचाई छःसे दस और कभी-कभी सोलहसे बीस फ़ीट तक पहुँच जाती है। गहराई दस फ़ीट या इससे अधिक होती है।

त्वक् नीलाभ या राखके ऐसे रंगकी भूरी, एक तिहाई इंच मोटी अनेक सूक्ष्म लम्बाईके रुखमें दरारों वाली और अन्दरसे पीले रंगकी होती है। लकड़ी सख्त, पीताभ, धूसर और अन्तःकाष्ठ (heart wood) अविद्यमान होती है। वार्षिक चक्र (annual rings) अस्पष्ट, छिद्र बहुत कम, बड़े और बहुधा अर्ध-विभक्त होते हैं। पौधेकी वृद्धि साधारण होती है। प्रति इंच अर्ध व्यासमें तीनसे सात वृत्त (rings) होते हैं।

छोटी शाखाओं, डिम्बाशय और पुष्पछत्र (calyx) के वाह्यपार्श्व पर जंगारके रंगके रूई जैसे मुलायम और सूक्ष्म रोम होते हैं। छोटी शाखाओंके सिरों पर पत्ते गुच्छोंमें होते हैं। प्रारम्भावस्थामें पत्ते बहुत थोड़े बारीक रोमोंसे ढके होते हैं। पूर्णवृद्धि पर स्निग्ध (glabrous) नीचेसे पीले, अण्डाकृति-लट्वाकार (ebonate-elliptic); आधार प्रायः असमान होता है। फलक (blade) चार से नौ इञ्चः पत्रवृन्त (petiole) पत्ते की एक-तिहाई लम्बाईसे बड़ा, डेढ़से तीन इंच लम्बा होता है। पत्तेमें मुख्य वाह्य नाड़ियाँ मध्य पसलीके दोनों पार्श्वों में पाँचसे आठ होती हैं। फरवरी–मार्चमें पत्ते गिर जाते हैं और ताम्र या भर्मपर्णके नये पत्ते अप्रैलमें निकलते हैं) हरी आभा लिए हुए सफेद या पीले फूलोंके स्तवक अप्रैलमें नवीन पत्तोंके साथ प्रकट होते हैं। विवृन्तक स्तवक (spikes) कोमल, तीनसे छः इंच लम्बे, चलने वाले सालका नवीन शाखाओं (shoots) पर, लगे हुए या गिरे हुए पत्तोंके अक्षोंमें

निकलते हैं। इनमें मधु सदृश तीव्र गन्ध आती है जो प्रायः समय-समय पर अत्यधिक उग्र हो जाती है, और तेज़ बदबू मालूम होने लगती है। पुरुष और मादा फूल मिले हुए होते हैं। पुष्पछद (calyx) के अन्दर के पार्श्वमें ऊन जैसे लम्बे पूरे बाल होते हैं।

फल नवम्बरसे फरवरी तक पकते हैं और शीत तथा ग्रीष्म ऋतुमें गिर जाते हैं। फल शुष्क, गूदेवाला, एकसे डेढ़ इंच लम्बा, अण्डाकार, फाचराकृति (pyriform), भूरे मखमली, मुलायम और चिकने रोमसे ढका हुआ और पाँच अस्पष्ट रेखाओं वाला होता है। इसके अन्दर एक सख्त, मोटी दीवारवाली काष्ठमय (woody) हलकी मीली ०·७ से १·१ इंच लम्बी, पाँच रेखाओं वाली (pentagonal) गुठली होती है। इसके अन्दर मीठी तैलीय गिरी होती है, जिस पर आधारसे सिरे पर जाती हुई तीन स्पष्ट रेखाएँ होती हैं।

वृक्ष पर लगे हुये अपक्व फलोंमें बरसातमें कीड़े लग जाते हैं और ये ज़मीन पर गिर जाते हैं। ज़मीन पर पड़े हुये फलोंकी कठोर गुठली कीड़ोंसे बहुत अधिक छिदी हुई होती है और इस तरह सारी फसल चौपट हो जाती है। गुठलियाँ भी बहुधा अन्दरकी गिरीकी चाहसे गिलहरी, सुअर और दूसरे प्राणियोंसे फोड़ी हुई होती है और कुछ स्थानों पर वर्षा-ऋतु के प्रारम्भमें एक भी अच्छा बीज पाना मुश्किल होता है। फलके गूदेवाले भागका और सख्त गुठलीका प्रकृतिमें जहाँ यह उपयोग नहीं होता वहाँ ज़मीन पर पड़ा-पड़ा यह सड़ जाता है, या दीमकोंसे खाया जाता है। गुठली इस तरह प्रायः सम्पूर्णतया या आंशिक रूपमें मिट्टीसे ढाकी जाती है।

इतिहास

बहेड़ेका सबसे प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेदमें* मिलता है। आज कल और चरक सुश्रुतके समयमें भी इसका स्वतन्त्र रूपसे व्यवहार प्रायः नहीं होता था।

ऋक्कालमें यह बहुत महत्वपूर्ण द्रव्य समझा जाता था। ऋक्कालीन लोग सबसे श्रेष्ठ औषधि सोमके समान इसको लाभकारी समझते थे। इसकी लकड़ीका भी उपयोग किया जाता था और मालूम होता है कि जूयेके खेलमें बहेड़ेके बने पासोंसे खेलना अधिक पसन्द किया जाता था।

महाभारत† और पुराण‡ में भी बहेड़ेका वर्णन मिलता है।

भेद

विभिन्न वृक्षोंसे मुख्यतया दो किस्मोंके फल मिलते हैं। एक अकृतिमें लगभग मण्डलाकार (globular) और आधेसे पौन इंच व्यासके होते हैं। दूसरे अण्डाकार (ovoid) और आकारमें पहलीकी अपेक्षा दुगुने बड़े होते हैं।

कृषि

बीजकी उगनेकी शक्ति अच्छी है और हरड़ (टर्मिनेलिया चिबुला) से तो बहुत अच्छी है। परीक्षा करने पर ताज़े बीजोंमें छियासीसे सौ प्रतिशतक और एक साल तक रक्खे हुए बीजोंमें पाँचसे चालीस प्रतिशतक उगनेकी शक्ति मौजूद थी।

बीज या सारा फल नर्सरीमें मार्च या अप्रेलमें बोया जाना चाहिए। मिट्टीसे ढाक कर नियमित पानी देनेसे सामान्यतया बोनेसे एक या दो मासमें अंकुरोत्पत्ति हो जाती है। पहली बरसातमें गीली मौसममें पौधोंका पृथक्करण होना चाहिए।

वृद्धिकी गति सामान्य है। अनुकूल अवस्थाओंमें वृद्धि शीघ्र होती है। पहली मौसममें साधारणतया पाँचसे आठ इंच ऊँचाई पहुँच जाती है। धीरे-धीरे वृद्धि अधिक शीघ्र होने लगती है। विशेषकर तब जब कि पौधोंकी निलाई नियमितकी जाती हो। यद्यपि विजातीय घास-पातमेंसे वे अपना रास्ता बना लेते हैं, परन्तु इसमें उनकी वृद्धिमें बहुत बाधा पहुँचती है। छोटे पौधे सीधा बढ़ते हैं और दूसरे सालसे वे मज़बूत पार्श्वीय शाखायें उत्पन्न करने लगते हैं। जड़ बहुत शीघ्रतासे बढ़ती है। केवल एक साल पुराने

---

*प्रावे पा मां बृहतो मादयन्ति प्रवातेजाइरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षमे विभीदकोजागृविमह्यमच्छान् ॥
—ऋग्वेद; मण्डल १०; सूक्त ३४।

† देखिये—महाभारत; वनपर्व; अध्याय ६४३१७२

‡ देखिए—वामन पुराण; अध्याय १७।

अर्थात् दूसरी मौसममें खोदे गये पौधोंकी मुख्य मूल (tap root) साढ़े तीन फ़ीट लम्बी थी।

पहले एक-दो साल तक पौधे छायामें अच्छे रहते हैं परन्तु सघन छाया बादमें इन्हें दबा देती है और मार डालती है। आँधी प्रायः पत्तोंको हानि पहुँचाती है, परन्तु सामान्यतया आंधी शिशु-पौधोंको मार नहीं डालती। पौधे घासमें हों तो पाला बड़े पत्तोंके टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

उत्तरी भारतमें वृद्धि नवम्बर-दिसम्बरमें रुकती है और नई वृद्धि मार्चमें आरम्भ होती हैं। लगभग नवम्बर-दिसम्बरमें पत्ते पीले पड़ने लगते हैं और दिसम्बर-जनवरी में गिरना आरम्भ कर देते हैं। मार्च तक प्रायः सब गिर जाते हैं। उत्तरी भारतमें कुछ उदाहरणोंमें नवम्बरसे पत्ते गिरना आरम्भ होते हैं। इस मासके अन्त तक कई वृक्ष लगभग सर्वथा पत्र-विहीन हो जाते हैं जब कि दूसरे वृक्ष जनवरीके अन्त तक पूर्णतया पत्रयुक्त होते हैं। मार्चसे मई तक वृक्ष पत्र-विहीन रहता है और तब नये पत्ते निकलते हैं।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें वर्षा-ऋतुमें अङ्कुरोत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयोंमें होती है। वर्षा या दीमकोंसे या किसी दूसरी प्रक्रियासे यदि बीज पृथ्वीमें गड़ जाय तो सफल अङ्कुरोत्पत्ति-में बहुत सहायता मिलती है, अन्यथा कठोर छिलकेको फोड़ कर निकला हुआ कोमल अंकुर पक्षियों और कीड़ोंसे खा लिया जाता है या धूप लगनेसे सूख जाता है। अंकुरोत्पत्तिमें नमी बहुत अधिक अंशमें आवश्यक सहायक होती है। यह देखा गया है कि छायाके नीचे आर्द्र स्थानोंमें अंकुरोत्पत्ति अधिक जल्दी होती है, विशेषकर तब जब कि बीज ज़मीनमें गड़े हुए हों। धूपमें खुले स्थानोंमें देरमें अंकुरोत्पत्ति होती है।

बीजसे बोया गया एक वृक्ष सोलह सालमें उनतालीस फ़ीट ऊँचा और गहराईमें दो फ़ीट सवा इंच तक पहुँच गया था।

प्राकृतिक निवास-स्थानमें इसका अधिकतम छाया तापमान ९६° से ११५° फारनहाइट तक और निम्नतम ३०° से ६०° फारनहाइट तक भिन्न-भिन्न होता है। सामान्य वर्षाका माप ४० से १२० इंच या अधिक है।

उपयोगी भाग

फलका छिलका, फलका गूदा, बीजकी गिरी-सम्पूर्ण फल उपयोगी होते हैं।

संग्रह

नवम्बरसे फरवरी तक फल पकते हैं। पूर्ण पक्व होने पर फलोंको वृक्ष पर से उतार लें और सुखा कर ठंडे शुष्क स्थान पर रखें। बोरियोंमें भर कर या कनस्तरों और ड्रमों-में बन्द करके रखे जा सकते हैं।

मात्रा

फल त्वक्पूर्ण—बीससे तीस ग्रेन।

फलका गूदा—बीससे चालीस ग्रेन।

गुण*

*विभीतकः कटुः पाके लघुर्वैस्वर्यजित् सरः।
कासास्निवक्ररोगघ्नः केश वृद्धि करः परः॥
विभीतक कशायं च कृमिवैस्वर्य जित्सरम्।
अक्षुस्यं कटुरूक्षोष्णं पाके स्वादु कफासजित्।

—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

विभीतक कटुस्तिक्तः कषायोष्णाः कफावहः
अक्षुस्यः पलितघ्नश्च विपाके मधुरो मधुः॥

—राजनिघण्टु, आम्रादि एकादश वर्ग।

विभीतकः स्वादु पाकः कषायः कफपित्तनुत्।
उष्णवीर्यो हिमस्पर्शो भेदनः कासनाशनः।
रूक्षो नेत्रहितः केश्यो भज्जातो मदकारकः।

—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग।

विभीतकं; स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम्॥
रूक्ष नेत्रहित केश्य कृमिवैस्वर्यनाशनम्।
विभीतमज्जातृड्छर्दि कफवातहरी लघुः॥
कषाया मदकृच्चाथ धात्रीमज्जपि तद्गुण।

—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतकादि वर्ग;
श्लोक ३५ से ३७ तक

विभीतं भेदि तीक्ष्णोष्णं वैस्वर्यं कृमिनाशनम्।
अक्षुस्य स्वादुपाकञ्च कषायं कफपित्तनुत्॥

—राजवल्लभ

अक्षं कषायं मधुरं पाके पित्तकफापहम्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं केश्यं वैस्वर्यं जन्तुजित्।

संस्कृत निघण्टुकारोंने बहेड़ेके गुणोंके निदर्शक जो श्लोक लिखे हैं उनकी विवेचनासे मालूम होता है कि खांसी और नेत्र-रोगोंको दूर करनेके लिए तथा बालोंके लिए उपयोगी रूपमें बहेड़ेकी उपयोगिता राजवल्लभको छोड़ कर सब लेखकोंने स्वीकार की है। राजवल्लभ भी इसका पशुस्य गुण तो स्वीकार करता है। मदनपाल और नरहरिने इसके कृमिनाशक गुणकी ओर संकेत नहीं किया। इन दोनोंके अतिरिक्त और सब लेखक बहेड़ेको स्वरयन्त्रमें लाभकारी समझते हैं। नरहरिने इसका अनुलोमक गुण भी नहीं लिखा। बहेड़ेके मदकारक गुणका उल्लेख भावमिश्र, मदनपाल और कैयदेवने ही किया।

रासायनिक विश्लेषण

फलोंमें दो भाग होते हैं—अन्तः और वाह्य। सौ भागों में वाह्य ७५·४ भाग और अन्तः २४·६ भाग होता है। अन्तः भागमें केवल १·२५ प्रतिशतक टैनिक ऐसिड होता है। वाह्य भागमें ६·७० प्रतिशतक गैलोटैनिक ऐसिड होता है।

छोटे क़िस्मके बहेड़ेकी छिलके और गुठलीकी पृथक्-पृथक् परीक्षा करनेसे निम्न परिणाम प्राप्त हुए—

चक्षुस्यं भेदनं रूक्षं लघु कासविनाशनम् ॥
अक्षमज्जा मदकरः कफमारुतनाशनः ॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधिवर्ग;
श्लोक २२५ से २२८ तक

	छिलका	गुठली
आर्द्रता	·८००	११·३८
राख	४·२८	४·३८
पेट्रोलियम ईथर सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	·१२	२६·८२
ईथर सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	·४१	·६१
एल्कोहलिक सत्व (एक्स्ट्रैक्ट)	६·४२	·६१
जलीय सत्व (एक्सट्रैक्ट)	३८·५६	२५·३६

छिलकेके पेट्रोलियम ईथर-एक्स्ट्रैक्टमें एक हरासा पीला तेल था। इथीरियल एक्स्ट्रैक्टमें रञ्जक पदार्थ रेजिन्स, अयल्प, गैलिक ऐसिड और तेल थे, परन्तु क्षारीय तत्व कोई नहीं था। एल्कॉहलिक एक्स्ट्रैक्ट पीला, भंभुर, बहुत अधिक ग्राही और अंशतः गरम जलमें विलेय था। जलीय एक्स्ट्रैक्ट ने विभिन्न टैनिक प्रतिक्रियायें दीं।

गुठलीके पेट्रोलियम ईथर-एक्स्ट्रैक्टमें एक पीला पतला फलकेसे स्वादका तेल था। यह तेल न सूखने वाला और एलकॉहलमें अविलेय था। इथीरियल-एक्स्ट्रैक्ट भी तैलीय था। एलकॉहलिक एक्स्ट्रैक्ट अंशतः गरम जलमें विलेय स्वादरहित तथा प्रतिक्रियामें अम्ल था। जलीय सत्वमें शर्करा और सैथोनीन दोनों नहीं थे। कोई क्षारीय तत्व नहीं खोजा गया।

बीजोंमें ३०-४४ प्रतिशतक तेल होता है। रक्खा रहने पर यह दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। एक पीले और हरे रंगका द्रव और दूसरा गाढ़ा सफ़ेद, घी सदृश घनताका अर्ध ठोस होता है। तेल दवामें काम आता है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश कला प्रेस, प्रयाग।

कार्टून

अर्थात् परिहासचित्र

खींचना सीखकर

रुपया भी कमाओ

और

आनन्द भी उठाओ

इस मनोरंजक और लाभदायक कला को घर-बैठे

सीखने के लिये विज्ञान-परिषद्

की नवीन पुस्तक

पढ़िये

१७५ पृष्ठ; २९ पूरे पेज के चित्र-पट (एक-एक चित्र-पट में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह चित्र हैं); कपड़े की सुन्दर जिल्द

मूल्य १)

लेखक — एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका, श्री रत्नकुमारी, एम० ए०

फल-संरक्षण

ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

मूल्य १)

फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जैली आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक १७५ पृष्ठ।

१७ चित्र, सुन्दर जिल्द

मिट्टीके बर्तन

ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा मूल्य १)

पहला भाग शीघ्र प्रकाशित हो रहा है इसमें अचार, मुरब्बे, जेली, आकस्मिक चिकित्सा, कृषि, चमड़ा, कला कौशल, इत्र, तैल, आदिके कई हज़ार नुसख़े हैं। अभी

आर्डर दीजिये

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

चित्र ३—सिरस

चित्र ४—सिरोक्यूम्युलस

चित्र ५—सिरोस्ट्रेटस

चित्र ६—ऐल्टाक्यूम्युलस

चित्र ७—ऐल्टोस्ट्रेटस

चित्र ८—स्ट्रेटोक्यूम्युलस

चित्र ९—स्ट्रेटस
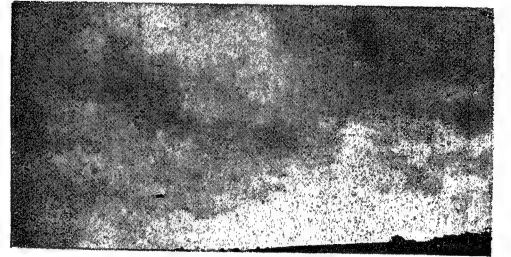
चित्र १०—निम्बोस्ट्रेटस
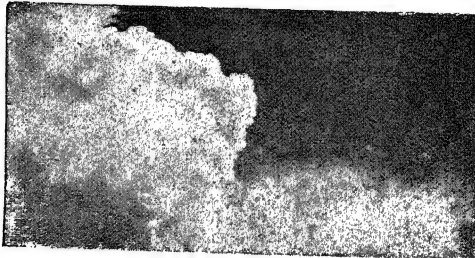
चित्र ११—क्यूम्युलस
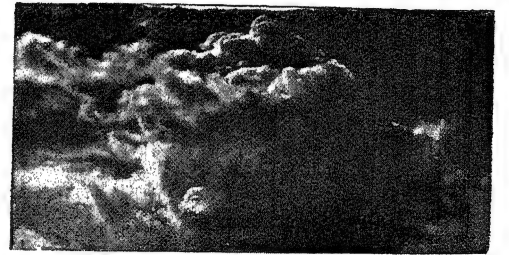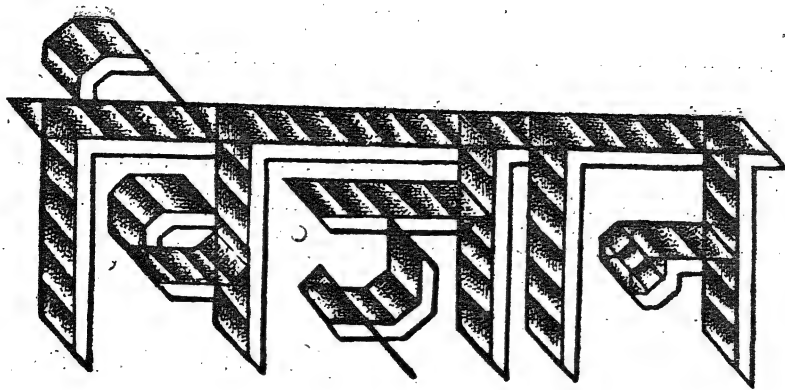
चित्र १२—क्यूम्युलोनिम्बस

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१ | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | अप्रैल, सन् १९४० ई० | संख्या १

बादल

[लेखक—श्री बाबूरामजी पालीवाल]

वायुमें उपस्थित नमी कई शक्लोंमें, जो कि जमनेकी हालतोंपर निर्भर होती हैं, जम जाती है। इनमेंसे मामूली शक्लें ओस, पाला, कुहरा, बादल, वर्षा, बर्फ़, तथा ओला हैं। इस लेखमें हम बादलोंके विषयमें विवेचना करेंगे और वायुमंडल-विज्ञानमें बादलोंका क्या तथा कैसे अध्ययन किया जाता है इसपर विचार करेंगे साथही-साथ उन यंत्रोंका विवरण भी इस लेखमें दिया जायगा जिनका बादलोंके अध्ययनमें प्रयोग किया जाता है।

बादलोंके अध्ययनमें हमे विशेषकर दो बातें देखनी पड़ती हैं—बादलोंकी ऊँचाई और बादलोंके आनेकी दिशा तथा उनकी गति।

ऊँचाई

ऊँचाई दो स्थानोंसे जिनकी दूरी लगभग एक मील हो एक हो साथ कोणीय-ऊर्ध्वता और दिगंश (azimuth) के निरीक्षणोंसे मालूमकी जा सकती है। ऐसे दो स्थानोंमें आपसमें टेलीफोन होना चाहिये जिससे वे एक ही साथ और एक ही बादलके टुकड़ेका निरीक्षण कर सकें। इस प्रकारके निरीक्षणके लिए सर्वदा दो निरीक्षकों तथा दो स्थानोंकी आवश्यकता होती है। फिर भी यदि निरीक्षकके पास अपने आस-पासके स्थानका सविवरण नकशा हो तो एक जगहके निरीक्षणसे भी काम चल सकता है। इस प्रकारके निरीक्षणमें यह बात भी देखनी पड़ती है कि बादलकी परछाईं किस स्थान पर पड़ती है। कभी-कभी नेफसकोप द्वारा भी दो स्थानोंपर साथ-साथ बादलोंका निरीक्षण करके ऊँचाई मालूम की जा सकती है। सर्चलाइट लगा कर रातमें भी बादलकी ऊँचाईके निरीक्षण किये जाते हैं। बादलोंकी ऊँचाई जाननेका एक और भी सबसे सरल तथा सही तरीका है, वह यह कि हाईड्रोजन गैससे भर कर गुब्बारे हवामें छोड़ दिये जाते हैं और उन गुब्बारोंको दूरबीनसे देखते रहते हैं। जितना समय उन्हें बादल की सतह तक पहुँचनेमें लगता है उससे और गुब्बारेकी उठने की गतिसे हिसाब लगा कर ऊँचाई मालूम कर ली जाती है। परन्तु इस प्रकारका प्रयोग अधिक खर्चीला होता है और कभी-कभी गुब्बारा बादलोंकी ओर न जाकर आकाश-

में दूसरी तरफ चला जाता है बेकार तब सब खर्च । व्यर्थ जाता है ।

आनेकी दिशा तथा गति

ऊपर लिखी विधियों द्वारा जब बादलोंकी ऊँचाई जान ली जाती है तो नेफसकोप द्वारा निरीक्षण करके उनके आनेकी दिशा तथा गति भी जानी जा सकती है। इस
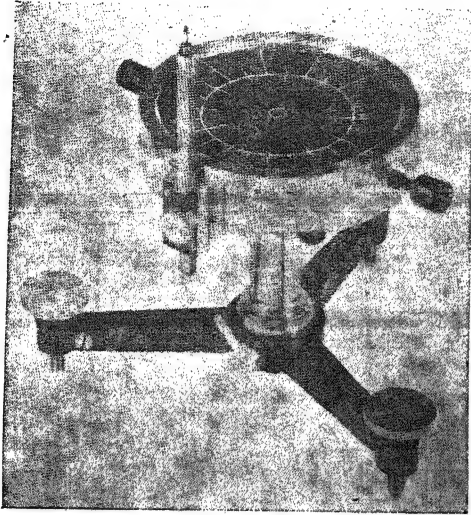
चित्र १—परावर्तक नेफसकोप ।
इस यंत्रसे बादलोंका निरीक्षण किया जाता है ।

प्रकार बादलोंका निरीक्षण करके हम इस सतहकी जिसपर बादल हैं वायुकी गति तथा दिशा जान सकते हैं क्योंकि हवा ही के कारण बादल चलते हैं ।

यंत्र

जिस यन्त्रका व्यवहार बादलके निरीक्षणमें करनेके लिये होता है उसे नेफसकोप या मेघदर्शक कहते हैं। नेफसकोप दो प्रकारके होते हैं ।

(१) परावर्तक आमेघ दर्शकनेफसकोप (रिफ्लेक्टिङ्ग)

(२) प्रत्यक्ष नेफसकोप (डायरेक्ट विज़न)

(१) परावर्तक नेफसकोप (चित्र १)—इस यन्त्रमें एक काला वृत्ताकार दर्पण होता है जो एक वृत्ताकार पीतलके फ्रेममें जिस पर अंशोंके निशान लगे होते हैं जड़ा रहता है । यह फ्रेम एक दूसरे पीतल के छल्लेसे जुड़ा रहता है जिस पर उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिमके निशान लगे होते हैं। यह खुद एक तिपाईके ऊपर रक्खा रहता है । इस तिपाईमें तीन पेंच लगे होते हैं जिससे यंत्रको ठीक-ठीक समतल किया जा सकता है । दर्पणके चारों ओर एक पीतलका घूम सकने वाला छल्ला होता है जिसमें एक खड़ा प्वाइण्टर लगा होता है। इस प्वाइटर पर मिलीमीटरके निशान बने होते हैं। यह पेंच द्वारा ऊपर-नीचे किया जा सकता है और पीतलके छल्लेके साथ-साथ घुमाया भी जा सकता है । दर्पण पर दर्पणके केन्द्रको ही केंद्र मानकर तीन वृत्त खिंचे रहते हैं और इन वृत्तोंके चार अर्ध-व्यास एक दूसरेको समकोण पर काटते हुये बने रहते हैं । दर्पणके नीचे यन्त्रमें एक कुतुबनुमा लगा होता है जो हमेशा उत्तर दक्षिणकी ओर सकेत करता रहता है ।

जब किसी बादलका निरीक्षण किया जाता है तब पीतलके फ्रेमके शून्य को ठीक उत्तरसे (जो कुतुबनुमासे जाना जा सकता है) मिला देते हैं और फिर प्वाइण्टरको इस प्रकार ठीक कर लेते हैं कि बादलकी परछाईं जो कि दर्पणमें दीखती है, दर्पणके वृत्तोंका केंद्र, तथा प्वाइण्टरकी नोककी परछाईं ये तीनों एक ही जगह पर हों । तब फिर निरीक्षक बादलकी परछाईंकी गतिका, बिना अपना सिर हिलाये हुये ही, परिधिकी ओर पीछा करता है और अंतमें उस दिगंशको जिधरसे बादलकी परछाईं आती हुई मालूम पड़ती है लिख लेता है । इस प्रकार बादलके आनेकी दिशा मालूम हो जाती है ।

गति मालूम करनेके लिये बादलकी परछाईंको सदैव प्वाइण्टरकी नोककी परछाईंसे मिला रखते हैं और इस प्रकार इस परछाईंको छोटे वृत्त तक जानेमें जो समय लगता है वह लिख लिया जाता है । तब निम्न लिखित समीकरण द्वारा बादलकी गति जानी जा सकती है ।

$$\text{गति} = \frac{\text{द} \times \text{उ}}{\text{स} \times \text{ऊ}}$$

यहाँ पर

द = छोटे वृत्त और बड़े वृत्तकी परिधियोंके बीचकी दूरी

उ = बादलकी ऊँचाई

स = समय सेकिन्डमें जो परछाईंको छोटे वृत्तसे बड़े वृत्त तक जानेमें लगे

ऊ = प्वाइंटरकी दर्पणसे ऊँचाई मिलीमीटरसे

इस प्रकार नेफसकोप द्वारा केवल गति और ऊँचाईकी निष्पत्ति मालूमकी जा सकती है ।

नेफसकोपके व्यवहारका सिद्धान्त चित्र २ द्वारा स्पष्ट किया जाता है। यहाँ पर 'ज' 'ह' बादलोंका वास्तविक चलना है और 'ष' 'ड' बादलोंकी परछाई जो कि
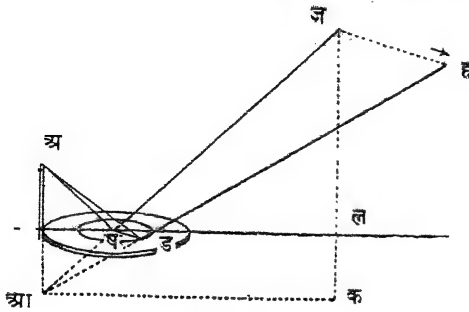
चित्र २ नेफसकोपके व्यवहारका सिद्धांत समझानेके लिए नकशा।

नेफसकोपमें देखी गई है उसका चलना है। 'अ' प्वाइण्टरका सिरा है, 'आ' प्वाइण्टरकी दर्पणमें परछाईं है और 'ज क' दर्पणको सतह को 'ल' पर काटता है जहाँ 'जक' खड़ी रेखा है। इस प्रकार यह बड़ी आसानीसे देखा जा सकता है कि—

$$\frac{षड}{जह} = \frac{आष}{आज} = \frac{कल}{कज} = \frac{ऊ}{उ}$$

$$\therefore गति = \frac{जह}{स} = \frac{उ}{ऊ} \times \frac{षड}{स}$$

$$= \frac{उ}{ऊ} \times \frac{द}{स}$$

इस प्रकार वास्तविक गति मालूम करनेके लिये बादलोंकी ऊँचाई अवश्य निश्चय कर ली जानी चाहिए। यह जैसा, ऊपर बताया जा चुका है, दो स्थानोंपर एक ही साथ एक ही बादल के टुकड़े का निरीक्षण करके जानी जा सकती है। इसका भी सिद्धान्त नीचे दिया जाता है:—

यदि हम क्षैतिज धरातलमें किन्हीं दो लम्ब अक्षोंकी दिशामें दूरियाँ नापें और परछाईं की स्थिति को य, र से व्यक्त करें तथा बादलकी स्थितिको या, रा से व्यक्त करें तो

$$उ: य_1 : र_1 = ऊ: या_1 : रा_1$$

इसी प्रकार दूसरी जगह से

$$उ: य_2 : र_2 = ऊ: या_2 : रा_2$$

$$\therefore उ: य_1 - य_2 = ऊ: या_1 - या_2$$

यदि य-अक्षकी दिशा वही हो जो उन दोनों स्थानोंको संयुक्त करने वाली रेखाकी दिशा है तो $य_1 - य_2 =$ उन दो स्टेशनोंके बीचकी दूरी और

$$उ = \frac{ऊ}{या_1 - या_2} \times \text{ दोनों जगहों के बीचकी दूरी}$$

(२) प्रत्यक्ष नेफसकोप—यह यंत्र भी उसी सिद्धांत पर काम करता है जिस पर कि परावर्तकनेफसकोप करता है। इसमें बादलोंकी परछाईं के बदले सीधे बादलों ही का निरीक्षण किया जाता है। इसमें चक्षुताल, बादल तथा प्वाइण्टरकी नोक एक रेखामें रक्खी जाती है।

भारतवर्षके वायुमंडल-निरीक्षणालयोंमें तो परावर्तक नेफसकोपका अधिक प्रयोग होता है।

बादलोंके नाम तथा भेद

इसके अलावा बादलोंकी शक्लको देखकर भी ऊँचाई का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय वायुमंडल-वैज्ञानिक कमीशन ने बादलोंकी ऊँचाई, उनके रूप, आकार-प्रकार आदिके अनुसार बादलोंको कई भागों में विभाजित किया है। उनका विस्तृत विवरण तो कभी फिर आगामी लेखमें दिया जायगा; यहाँ केवल भिन्न-भिन्न प्रमुख बादलों के नाम, उनका थोड़ा सा परिचय तथा उनके कुछ चित्र दिये जाते हैं।

बादलोंको आम तौर पर चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—

(१) ऊँचे बादल [ऊँचाई लगभग १०००० मीटर]

(२) मध्यम बादल [ऊँचाई लगभग २००० मीटरसे लगभग ६००० मीटर तक]

(३) नीचे बादल [ज़मीनकी सतहसे लगभग २००० मीटर तक]

(४) ऊर्ध्वीय विस्तारके बादल [५०० मीटरसे ऊपर के बादल]

इन चार भेदोंके निम्नलिखित १० प्रभेद हैं—

(१) ऊँचे बादल
- (१) सिरस
- (२) सिरोक्यूम्युलस
- (३) सिरो स्ट्रेटस

(२) मध्यम बादल { (४) ओल्टो-क्यूम्युलस
(५) ऐल्टो स्ट्रेटस

(३) नीचे बादल { (६) स्ट्रेटो क्यूम्युलस
(७) स्ट्रेटस
(८) निम्बो स्ट्रेटस

(४) ऊर्ध्वीय विस्तारके { (९) क्यूम्युलस
(१०) क्यूम्यूलो निम्बस

ऊँचे बादल

(१) सिरस—ये बादल बहुत कोमल, पृथक्-पृथक् और रुईके गालेकी शक्लके होते हैं और इनको परछाईं नहीं पड़ती। अधिकतर इनका रंग सफेद तथा रेशमी होता है (चित्र ३)।

(२) सिरो क्यूम्युलस—कोमल छोटे-छोटे टुकड़े, तथा एक सतह जो सफेद छोटी-छोटी पपड़ोंकी सी शक्लकी बनी हो, तथा बहुत छोटे-छोटे गोल टुकड़े जिनकी परछाईं न पड़े, जो अधिकतर एक समूह तथा लाइनमें सजेसे होते हैं, और अधिकतर समुद्रके किनारे परकी बालूके ऊपर बनी हुई हिलकोरोंसे मिलती-जुलती शकलके होता हैं (चित्र नम्बर ४)।

(३) सिरो स्ट्रेटस—ये एक पतली सफेद जालीके मानिन्द होते हैं और इनके कारण सूर्य और चन्द्रमामें कोई विशेष धुँधलापन नहीं आता परन्तु इनके कारण उनके चारों ओर एक कुण्डल सा बन जाता है जिसे परिमण्डल कहते हैं। कभी-कभी ये बहुत ही छितरे हुये होते हैं और इससे आसमानका रंग केवल दूधिया बना देते हैं। परन्तु कभी-कभी इनकी साफ रेशेदार शक्ल होती है जिसके रेशे बेतरतीबदार होते हैं (चित्र ५)।

मध्यम बादल

(४) ऐल्टो क्यूम्युलस—बादलोंकी सतह तथा टुकड़े जो पपड़ीकी तरहके हों या गोल-गोल टुकड़े एक दूसरेसे मिले हुये सजे-से हों। कभी-कभी इनकी परछाईं भी पड़े और कभी-कभी न भी पड़े। ये एक समूहमें, लाइनमें अथवा लहरोंकी तरह सजे होते हैं और कभी-कभी इतने एक दूसरेसे मिले होते हैं कि इनके सिरे एक दूसरेसे बिलकुल सटे होते हैं (चित्र ६)।

(५) ऐल्टो स्ट्रेटस—ये बादल फैली हुई अथवा रेशेदार जालीकी शक्लके होते हैं इनका भकभूसरा या कुछ निलाई लिये हुये रंग होता है। ये बादल गहरे सिरो स्ट्रेटसकी तरहके होते हैं परन्तु इनमें सूर्य तथा चन्द्रमाके चारों ओर परिमण्डल नहीं पड़ता और इनके उस पार रहकर सूर्य तथा चन्द्रमा कुछ धुँधला दीखता है। कभी-कभी ये काफी हलके होते हैं और कभी-कभी इतने गहरे होते हैं कि इनके कारण सूर्य और चन्द्रमा काफी धुँधला दीखता है। कभी-कभी ये पूरे आसमानको ढके होते हैं और कभी आसमानके एक हिस्सेमें ही होते हैं (चित्र ७)।

नीचे बादल

(६) स्ट्रेटो-क्यूम्युलस—पपड़ीदार अथवा गोल-गोल बादलोंके टुकड़ेकी बनी हुई एक सतह। इनके छोटे-छोटे टुकड़े भी काफी बड़े होते हैं। इनका रंग कुछ काला लिये हुये भकभूसरा होता है—ये एक समूहमें तथा लाइनमें या लहरोंकी शक्लमें होते हैं। अधिकांश इनकी लहरें इतनी निकट होती हैं कि वे एक दूसरेसे करीब-करीब मिलकर एक ही हो जाती हैं, और खास तौरसे जब वे पूरे आकाश को ढकती हैं तब तो बिलकुल ही मिल जाती हैं। ये जाड़ेके दिनोंमें अधिकांश दिखाई देते हैं (चित्र ८)।

(७) स्ट्रेटस—बादलोंकी एक ऐसी सतह जो कि कुहरे से मिलती जुलती होती है परन्तु पृथ्वीसे कुछ ऊँची होती है। यदि स्ट्रेटस बादल जमीनसे मिल जायँ तो कुहरा हो जाता है (चित्र ९)।

(८) निम्बो स्ट्रेटस—एक नीची पानी बरसाने वाले बादलोंकी सतह जिनका रंग काला भकभूसरा सा होता है और जो करीब करीब सब जगह एकसे होते हैं। लगातार वर्षा तथा बर्फ इन्हीं बादलोंसे पड़ती है (चित्र १०)।

ऊर्ध्वीय विस्तार वाले बादल

(९) क्यूमलस—गहरे बादल जिनका बढ़ाव ऊर्ध्व दिशा में हो, जिनका ऊपरी भाग गुम्मदकी शक्लका हो, नीचेका भाग करीब-करीब समतल हो (चित्र ११)।

(१०) क्यूम्युलोनिम्बस—भारी-भारी बादलके समूह जिनका खूब ऊर्ध्व विस्तार हो अर्थात् क्यूम्युलस बादल निम्बोस्ट्रेटसकी सी शक्लके हों, जिनका ऊपरी हिस्सा रेशेदार सा हो और अधिकांश निहाईकी-सी शक्लमें फैले हों (चित्र १२)।

मेढक

[ले०—श्री रमेशचन्द्र शर्मा]

बरसातके दिनों में चारों तरफ "टर्र टर्र" ही सुनाई पड़ती है, यहाँ तक कि कभी-कभी तो नींद तक हराम हो जाती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह आवाज़ किसकी है। यह हमारे वही मेढक महाशय हैं, जिनका हमारे कवियोंने जगह-जगह वर्णन किया है, तथा साधारणतः मनुष्य सोचते हैं कि यह तो एक बहुत मामूली जानवर है जिसे कि हर एक जानता है। परन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमारे अधिकांश भाई मेढक की पहचान भी नहीं सकते, जानना तो दूर रहा।

साधारणतः मनुष्य "स्थल-मेढक" (toad) और "जल-मेढक" (frog) में अन्तर नहीं कर पाते। वे दोनोंको एक-सा ही समझते हैं। उनका ख़्याल है कि जलमें रहने वाले मेढक (जिन पर प्रायः पीली-पीली धारियाँ पड़ी है) ज़हरीले होते हैं। अगर वास्तवमें देखा जाय तो मालूम होगा कि उनका ख़्याल करीब-करीब उलटा ही है। उनके लिए उनमें उतना ही फ़र्क़ है, जितना कि एक साधारण कुत्ते तथा एक पागल कुत्ते में। बचपनमें मुझे स्थल-मेढकको पकड़ कर (चूँकि वे आसानीसे पकड़में आते हैं) लोगों को तङ्ग करनेमें बड़ा मज़ा आया करता था। इस पर लोग मुझे बताया करते थे कि "अरे म्याँ, अगर कहीं तुम्हारी अँगुली पकड़ ली तो छुटाना आफत हो जायगा।" अब सुनिये, "एक रात संयोगवश मेरा हाथ चारपाईके नीचे लटक रहा था। एक मेढक साहब ने मेरी अँगुलीको देख कर समझा कि क्या बढ़िया भोजन है, और मेरी अँगुली उसने मुँहमें गप्पसे रख तो ली ही। मगर अब उसे पेट में पहुँचाना उनके बाप-दादाओं के बस की भी नहीं थी। एकाएक मैंने हाथ ऊपर खींचा। मेरी अँगुली तो खैर फौरन छूट ही गई, परन्तु उस झटकेके साथ मेढक भी मेरे बिस्तरे पर आ पड़ा। अब आप ही बतलाइये लोगों को मेढकके बारेमें कितना ज्ञान है। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़े हुये हैं। कहीं-कहीं गाँवोंमें यह कथा प्रचलित है कि यदि किसी जल-स्थानमें एक सूखे मेढकको चूर करके डाल दिया जाय तो बरसात आने पर वहाँ असंख्य मेढक उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि मेढक जाड़े तथा गर्मियोंमें मर जाते हैं तथा बरसात आने पर फिर जिन्दा हो उठते हैं। पूरा लेख पढ़नेके बाद पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि इन सबमें कितना सत्यांश है, तथा हमें मेढकोंके बारेमें कितना ज्ञान है।

आइये, पहले हम मेढकको पहचाननेकी कोशिश करें। यहाँ हमें उस जन्तुसे तात्पर्य्य है, जो साधारणतः जलमें रहता है और जिसे कि अंग्रेज़ीमें frog कहते हैं। इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा जानवर है जिसे कि अंग्रेज़ीमें toad कहते हैं। जहाँ तक मेरा ख़्याल है हमारी भाषामें इनके लिए कोई अलग प्रचलित नाम नहीं है। कुछ शब्द-कोशोंने इनके लिए क्रमशः 'जल-मेढक' तथा 'स्थल-मेढक नाम दिये हैं। परन्तु यहाँ पर हम सरलताके लिए मेढक और टोड शब्द ही प्रयोगमें लायेंगे।

टोड और मेढकोंमें कितने ही वाह्य और आन्तरिक अन्तर होते हैं, परन्तु इनमें वाह्य अन्तर अधिक महत्वके हैं, क्योंकि एक साधारण पाठकके वे ही काममें आ सकते हैं।

मेढक और टोडमें सबसे बड़ा अन्तर उनकी खालमें है। मेढकको खाल चिकनी तथा तर होती है। यदि उसको खाल तर न रहे तो कुछ ही समयके बाद वह मर जाता है। यही कारण है कि मेढक ज़्यादातर पानीके पास रहते हैं। इनकी खालमें पसीनेकी भाँति एक लसदार पदार्थ (mucous) निकलता रहता है जो कि खालको चिकना बनाये रखता है। इसी चिकनाईके कारण वह आसानीसे पकड़में नहीं आता। अगर पकड़ भी जाय तो मौका पाते ही हाथमेंसे फिसल कर निकल भागता है। साधारणतः इसकी खाल कुछ पीलापन लिये हरे रंगकी होती है, जिस पर अनेक छोटे-बड़े काले-काले धब्बे पड़े होते हैं। परन्तु मेढककी खालका रङ्ग कभी एक-सा नहीं रहता। समय तथा परिस्थितिके अनुसार अपने दुश्मनोंसे बचनेके लिये उसका रंग सदा बदलता रहता है। अँधेरे तथा कम रोशनीमें वह काला पड़ जाता है, परन्तु रोशनीमें आते ही वह

फिर पीला-सा होने लगता है। कहीं-कहीं पर, विशेषतः जाँघोंपर, खाल ज़हरीली होती है। कहीं-कहीं आदिम-निवासी इसकी खालमेंसे ज़हर निकालते हैं। दूसरी जगह टोडकी खाल सूखी खुरदुरी तथा मेढकके मुकाबलेमें अधिक ज़हरीली होती है। टोड बाल्यावस्था (tadpole stage) तथा सन्तानोत्पत्ति-कालको छोड़ कर वह जलसे दूर ही रहता है।

मेढककी पिछली टाँगें तथा अँगुलियाँ बहुत लम्बी होती हैं। इसी लम्बाईके कारण, वह आसानीसे लम्बी-लम्बी छलाँगें ले सकता है। बत्तखकी तरह इनके पैरोंकी अँगुलियोंके बीच एक पतली-सी खालकी झिल्ली होती है, जिससे उसे तैरनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

दूसरी तरफ टोडकी टाँगोंमें न तो वह लम्बाई है, और न वह झिल्ली, जिसके कारण न तो वह लम्बी-लम्बी छलाँगें ले सकता है, न वह अच्छी तरहसे तैर सकता है।

अब हम इनके मुँह और सर पर आते हैं। मेढकका सिर टोडकी अपेक्षाकृत सामनेकी ओर अधिक नुकीला होता है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो टोडके मुकाबलेमें मेढक अधिक सुन्दर मालूम पड़ता है। मेढकके केवल ऊपरी जबड़े पर छोटे-छोटे घने दाँतोंकी एक कतार होती है। दूसरी तरफ टोड बिलकुल दन्त-विहीन है। मेढकों और टोडकी जीभमें एक बहुत बड़ी विशेषता है। मनुष्य तथा अन्य सब जन्तुओंमें जीभ पीछेकी ओर मुँहसे जुड़ी होती है और आगेकी तरफ बिलकुल स्वतन्त्र होती है। परन्तु मेढक तथा टोडमें बिलकुल इसका उलटा है।

मेढककी आँखें और कान भी विशेष ध्यान देने योग्य अंग हैं। आँखें बड़ी, गोल, ऊँची उठी हुई तथा सुन्दर नीले रङ्गकी होती हैं। कुछ प्राणीशास्त्रवेत्ताओंके अनुसार मेढककी आँखें प्राणी-जगतमें सबसे सुन्दर होती हैं। ऊँची उठी होनेके कारण वह जलसे केवल सरका केवल थोड़ा-सा हिस्सा निकाल कर अपने चारों ओर देख सकता है।

इसके कान भी मनुष्यके समान नहीं होते, वरन् आँखोंके पीछे एक काली-सी तनी हुई खाल (lymphatic membrane) होती है, यह कानके भीतरी अंगोंसे सम्बन्धित होती है।

जानवरोंके जीवनके ढंगका उनके अस्थिपंजर तथा अंगों पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, यह मेढकमें साफ़ दिखलाई पड़ता है। तैरने तथा छलाँगें मारनेमें मुख्यतः उसके पिछले ही पैर काममें आते हैं। इसलिये वे बढ़कर खूब लम्बे हो गये हैं। इसके विपरीत अगली टाँगें ज्यादा काम न आनेके कारण छोटी रह गई हैं।

यद्यपि देखनेमें मेढककी खोपड़ी काफी बड़ी होती है परन्तु उसका मस्तिष्क बहुत छोटा होता है। यह करीब ½" से कुछ अधिक लम्बा और करीब ⅛" मोटा होता है। इसकी बुद्धि बहुत ही साधारण होती है, यहाँ तक कि उसमें अनेक छोटे-मोटे कीड़ोंके बराबर भी अक्ल नहीं होती है। वह अपनी साधारण जीवनचर्य्याके अलावा और कोई कार्य नहीं कर सकता है।

मेढकोंमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनमें मल-द्वार मूत्रद्वार, तथा जननेन्द्रियद्वार अलग-अलग नहीं होते बल्कि वे सब कार्य एक ही छिद्र द्वारा होते हैं, जिसे कि अंग्रेजीमें clocal aperture कहते हैं।

आहारके विषयमें मेढक पूरा माँस-भोजी है। साधारणतः इसका भोजन अनेक प्रकारके कीड़े-मकोड़े तथा केंचुये होते हैं। भोजनको यह एक दम निगल जाता है तथा पाचन-क्रिया पेटमें पहुँचने पर शुरू होती है।

मेढक अधिक सर्दी या गर्मी नहीं सह सकते हैं। इसीलिये वे ज्यादातर बरसातमें ही दिखलाई पड़ते हैं। जाड़ेके दिनोंमें सर्दीसे बचनेके लिये, किसी दलदल तथा किसी अन्य सुरक्षित स्थानमें पड़े रहते हैं। इस अवस्थामें न तो यह कुछ खाता है, न पीता है, न कुछ कार्य करता है, बल्कि घोर निद्रामें पड़ा रहता है। इसे कुम्भकर्णी नींद (hibernation) कहते हैं। इस समय इसका कार्य 'पूर्व संचित चर्बी' से चलता रहता है। इसके बाद जब ये वसन्तऋतु में निकलते हैं, तो दुबले-पतले होते हैं। गर्मीमें किसी ठंडे स्थानमें पड़े रहते हैं।

मेढकोंमें भी नर तथा मादा अलग-अलग होते हैं, परंतु वे आसानीसे पहचाने नहीं जा सकते हैं। साधारणतः हम इन्हें इनकी बोली ही के कारण पहचान सकते हैं। मादा

मेढक कभी नहीं बोलती है, और अगर कभी बोलती भी है तो बहुत धीरे। बरसातमें जो शोर सुनाई पड़ता है वह नर मेढकों के कारण होता है। इस शोरका भी एक विशेष तात्पर्य होता है। प्रत्येक नर ज़ोर-ज़ोरसे बोल कर मादाओं को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है, और इसलिये प्रायः उनमें होड़ लग जाती है और तब फिर हमें घंटों तक "टर टर" सुनाई पड़ता है।

अब हमें मेढककी शरीर-रचनाके बारेमें साधारण ज्ञान-प्राप्त हो चुका है। अब संक्षेपमें हमें इनका जीवन-इतिहास और देखना है। जीवन-इतिहास (life history) से यह मतलब है कि कब और कैसे इनके बच्चे पैदा होते हैं, तथा किन, अवस्थाओंमेंसे होकर पूर्ण वयको प्राप्त होते हैं।

मेढकोंके बच्चे मेढकोंके समान नहीं होते, वरन् शुरूमें मछलीकेसे आकारके होते हैं, जो कि लगभग तीन महीनोंके बाद अनेक बड़े-बड़े परिवर्तनों के अनन्तर मेढकका रूप धारण करता है।

मेढक अपने अंडे बरसातके शुरूमें देते हैं। एक बार एक मेढकी हज़ारों अंडे देती है, परन्तु उनमेंसे बहुत कम पूर्ण वयको पहुँच पाते हैं। ये अंडे करीब एक विन्दु (०) के बराबर होते हैं और पानीके ऊपर तैरते रहते हैं। आपसमें ये एक दूसरे से एक चिपचिपे पदार्थसे चिपके रहते हैं। बरसातके शुरूके दिनोंमें ज्यादातर तालाबों तथा अन्य जलस्थानोंमें ये मिल सकते हैं। यदि इच्छा हो तो कोई भी इन्हें किसी बड़े बरतनमें रखकर खुद इसके जीवन-इतिहासकी सब अवस्थायें देख सकता है। हाँ, हर दूसरे दिन पानी बदलना होगा तथा खानेके लिये पानीमें कुछ घास-पात तथा कोई इत्यादि डालनी होगी। इसमें कुछ मेहनत ज़रूर है, परन्तु जिसे कुछ भी उत्कंठा होगी उसके लिये कुछ नहीं है।

गर्भित होनेके बाद अंडे बढ़ना शुरू कर देते हैं। लगभग एक सप्ताहमें अंडा एक छोटीसी मछलीके आकारमें परिवर्तित हो जाता है जिसे कि टैडपाल कहते हैं। कुछ ही समयमें इसके आँख, मुँह और सिरके दोनों तरफ तीन जोड़े बाहरी गलफड़े (external gills) निकल आते हैं। जिस तरह हम लोगोंमें हवा लेनेके लिये फेफड़े होते हैं, उसी प्रकार मछलियोंमें जलमें घुली हुई हवा लेनेके लिये सिरके दोनों तरफ गलफड़े होते हैं। भीतर ही भीतर इस समय लीवर, पेट, अँतड़ियाँ, हृदय आदि अंगोंकी रचना होती रहती है। इन सब अवस्थाओंमें टैडपाल भोजनके लिये वनस्पति ही पर आश्रित रहता है।

लगभग एक महीने बाद बाहरी गलफड़े भीतरी गलफड़ोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। दुम लम्बी होती जाती है, जिससे उसे तैरनेमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके बाद पहले पिछले पैर और फिर अगले पैर धीरे निकलते और बढ़ते हैं। यद्यपि अगले और पिछले पैर साथ-साथ निकलते हैं, परन्तु शुरूमें अगले पैर खालसे ढके रहते हैं, और इसलिये वे दिखलाई नहीं पड़ते।

लगभग दो महीनेकी उम्र पर फेफड़े भी बन कर तैयार हो जाते हैं। इस अवस्था पर इसके फेफड़े भी होते हैं और गलफड़े भी, और एक तरहसे वह दो तरहका जीवन व्यतीत करता है। फेफड़ों तथा पैरोंके कारण स्थलवासियों जैसा और गलफड़ोंके कारण मछलियों जैसा। इस अवस्था पर इसके पैर भी होते हैं और दुम भी। फेफड़ोंके कारण अब वह पानीकी सतहके ऊपर हवा लेनेके लिये आने लगता है। परन्तु कुछ ही समयके बाद टैडपालकी काया-पलट हो जाती है, और वह एक पूर्ण मेढकके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

इस महान परिवर्तनके अन्तर्गत टैडपालका मुँह चौड़ा हो जाता है, दुम घटने लगती है और अन्तमें वह बिल्कुल लुप्त हो जाती है। आँखें बड़ी हो जाती हैं। शाकाहारीसे माँसहारी हो जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप अँतड़ियाँ छोटी हो जाती हैं, क्योंकि शाकाहारी भोजनमें 'भोजन तत्व' कम होता है, इसलिये उसे ज़्यादा खाना खाना पड़ता है और ज़्यादा खानेके लिये ज़्यादा जगह (पेट) चाहिये। इन सब परिवर्तनोंके उपरान्त टैडपाल एक छोटेसे मेढकके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, जो बरसातके दिनोंमें इधर-उधर उछलते फिरते हैं।

ऊपर हम देख चुके हैं कि बाल्यकालमें मेढक कितनी अवस्थाओंमें होकर गुजरता है। कभी तो ज़रासा अंडा है, तो कभी मछलीके समान, कभी मेढक और मछलीके बीच और कभी मेढक। आखिर इन सब परिवर्तनोंकी क्या ज़रूरत थी। यदि वास्तवमें देखा जाय तो इस तरहके परि-

वर्तन सभी उन्नत जीवोंमें मिलते हैं। चिड़ियोंमें उनके अंडे-के अन्दर स्तन-पोषित जीवोंमें, उनके गर्भमें, कीड़ों-मकोड़ोंमें उनके कुकून, लार्वा, तथा प्यूपामें। अगर कहीं समानता देखी जाती है, तो इन सबके बिलकुल शुरूमें जब कि नर और मादाके शुक्र-कीटाणु और रजकीटाणुके संयोगसे एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणीकी रचना होती है। बस समानताके नाते हम केवल इस नव निर्मित प्राणीमें समानता देख सकते हैं और कहीं नहीं। यह सब देखते हुये पाठक स्वयं निष्कर्ष निकाल सकते हैं—अर्थात्, संसारके समस्त प्राणियों का विकाश एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणीसे हुआ, जिनमें परि-स्थिति और समयके अनुसार अनेक अन्तर आ गये। यही कारण है कि संसारमें इतने प्रकारके पशु-पक्षी मिलते हैं। ये अन्तर दो-चार सालमें नहीं, वरन हजारों-लाखों सालमें जाकर धीरे-धीरे होते हैं। इस "विकाशवाद" से हमारी समस्या (अर्थात् टैडपोलमें इतने परिवर्तन क्यों होते हैं) हल हो जाती है। इसीको प्रसिद्ध जर्मन प्राणीशास्त्रवेत्ता हैकेलने संक्षेपमें निम्न ढंगसे कहा है—

"Autogeny repeats phylogeny"

इसका तात्पर्य यह है कि अपने इतिहासमें एक विशेष प्रकारके जन्तु जिन-जिन अवस्थाओंमेंसे होकर गुजरते हैं उन सब अवस्थाओंको उस जातिके समस्त प्राणी अपने बाल्य-कालमें दुहराते हैं। मेढकोंका विकाश भी एक प्रोटोजोआ से हुआ जो कि धीरे-धीरे एक मछलीके समान जीवमें तथा फिर मेढकके रूपमें परिवर्तित हो गया। यही कारण है कि मेढक तथा अन्य सब जीवोंके बाल्यकालमें इतने परिवर्तन दिखलाई पड़ते हैं।

स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य-रक्षा

भारतमें पोषणका प्रश्न

[ले०—श्री राधानाथ टण्डन बी० एस-सी० एल०, टी०]

इस बातसे साधारणतया सभी लोग सहमत हैं कि भारतमें साधारण जनताके स्वास्थ्यका आदर्श बहुत गिरा हुआ है। भारतीयोंकी औसत जीवन पुरुषोंके लिए ३८ वर्ष है तथा स्त्रियोंके लिए ३६, तथा मृत्यु प्रति सहस्र ३४ के ऊपर होती है। केवल मलेरियासे ही एक सालमें लगभग १० लाख मनुष्यकी मृत्यु होती है। सभी रोगकी वृद्धि हो रही है तथा आबादीकी अधिकांश जनताकी छूतके रोगोंके विरुद्ध बाधकता निम्न श्रेणीकी ओर उन्नति कर रही है। भारतमें और जगहोंके सदृश अनेक प्रमाणोंसे यह बात अब सिद्ध हो गई है कि कुपोषण विशेषकर रक्षार्थी भोजनों का विशेष न्यून मात्रामें भक्षण ही बाधक शक्तिके घटावमें मुख्य कारण है। निस्सन्देह सभी रोगके मृत्युकी संख्यासे हम अपने देशकी निर्धनताकी मापन गणितरूपसे कर सकते हैं, और निस्सन्देह निर्धनता ही हमारे कुपोषण तथा न्यून पोषणका कारण है। सामाजिक तुलाकी दूसरी ओर उच्च तथा मध्य श्रेणियाँ भी साधारण अस्वस्थतासे पीड़ित हो रही हैं विशेषकर मध्य आयुमें ही। यहाँ इसका मूल कारण या तो अत्यधिक भक्षणका कुस्वभाव है अथवा कुमापित भोजनका अधिक दिनों तक भक्षण।

भारतमें बच्चोंकी मृत्यु-संख्या प्रति सहस्र जन्मे हुओंमें १८७ अङ्क तक पहुँच गई है जब कि न्यूज़ीलैंड, कैनेडा तथा जापानमें केवल पृथक्-पृथक् ३४, ८४ तथा १४० ही है। अनेक सामाजिक कुरीतियाँ, जैसे शिशु-विवाह, इन अबोध बच्चोंकी मृत्युकी कारण है ही अपितु अपर्याप्त मात्रा का भोजन तथा दोषपूर्ण भोजन जो माताओं तथा बच्चों दोनोंको प्राप्त होता है, निस्सन्देह बड़ी महत्वशील बातें हैं।

उन बच्चोंमें जो स्कूल जानेकी आयु तक जीवित रह जाते हैं उन जाँचोंसे जो उनके सम्बन्धमें की गई हैं निम्न श्रेणीके पोषणके भयानक परिणामोंका स्पष्ट पता चलता है। सन् १९२२ में बिहार तथा उड़ीसाके उच्च श्रेणीके स्कूलके छात्रगणोंकी वैद्यक परीक्षासे प्रकट है कि प्रति सैकड़ा ६० से अधिक संख्याके छात्रगणोंमें स्पष्ट शारीरिक दोष पाये गये जिनका कारण कुपोषण तथा निम्न श्रेणीका पोषण ही कहा जा सकता था। वास्तविक भोजनों की

परीक्षा ने इस बातकी पुष्टिकी कि भारतीय बच्चोंमें अधिकांश अस्वस्थता तथा बीमारीका कारण अपर्याप्त तथा अनुपयुक्त भोजन ही है।

भोजनमें आवश्यकीय पदार्थोंकी न्यूनतासे पैदा हुए रोग

भारतीय जन-गणनाका अधिकांश भाग ऐसे अनेक रोगोंसे ग्रसित हैं जो भोजनमें मुख्य पदार्थकी कमीसे पैदा हो जाते हैं। उन ज़िलोंमें जहाँ पनचक्कीका पॉलिश चावल ही अधिक खाया जाता है, बेरी-बेरी रोग साधारणतया हो जाता है। सन् १९२१ में उष्ण प्रदेशीय औषधिके अतिपूर्वीय संघ ने सरकारसे बाज़ारोंमें चक्कीके अधिक पिसे हुए चावलकी बिक्रीको रोक देनेकी सिफ़ारिश की। सरकार ने इस परामर्श को न माना तथा अपने कारणोंमें यह बात कही कि बेरी-बेरी के कारणका पता अभी ठीक-ठीक नहीं चला है तथा यह कि बेपिसे हुए चावलमें स्वाद नहीं होता तथा खराब हो जाता है—उनका अन्तिम कारण औरोंसे स्पष्टतया अधिक मूल्य रखता है। अर्थात् यह कि अधिक पिसे हुए चावलके निषेधको चावल-व्यापारके घोर विरोधका सामना करना पड़ेगा कि चावल-व्यापार साधारणतया ऐसे पदार्थके उत्पन्न करनेके लिए ही बनाया गया है।

बच्चोंका हड्डी-रोग (रिकेट) तथा ओस्टियोमलेसिया दोनों विटेमन डीकी कमीसे होने वाले रोग भारतके अल्प भागोंमें पाये जाते हैं, तथा दन्त-रोग भी जिसकी वर्तमानता यद्यपि पूर्णतया विटेमिनोंकी कमी नहीं कही जा सकती तथापि जिसका निश्चय रूपसे उससे सम्बन्ध है, फैला हुआ है।

यद्यपि ठीक-ठीक अङ्कोंका पता नहीं है तथापि भारतमें अन्धोंकी संख्या निम्नसे निम्न गणनानुसार एक लाखमें ४५० के लगभग है (विलायत तथा वेल्सके अनुपातका लगभग चौगुना) और कारण कि यह अवस्था ज़िले व ज़िले पोषणकी श्रेणीके अनुसार भिन्न है। यह अधिक संभव है कि इसका संबन्ध भोजनमें मूल्य पदार्थोंकी कमीसे हो। पूर्ण अन्धेपनके अतिरिक्त भिन्न चक्षु-रोग जैसे केरैटोमलेसिया तथा रात्रि-अन्धापन भी साधारणतया पाये जाते हैं। यह रोग यदि न रोके जायँ तो आँखको सदाके लिए हानि पहुँचा सकते हैं तथा अन्धी भी बना सकते हैं।

भारतमें और फैले हुए पदार्थकी न्यूनतासे पैदा हुए रोगोंमें ऐसे रोग भी हैं जैसे पेलैग्रार (एक प्रकारकी रोग) टोड चाम (फीनोडमी) गुर्दोंमें पत्थरका प्रादुर्भाव तथा जलन्धर ड्राप्सीके अल्प उदाहरण।

भोजन-सम्बन्धी न्यूनताके अतिरिक्त भारतके सर्वसाधारण स्वास्थ्यकी गिरी हुई अवस्थाके कारण और भी भिन्न प्रभाव हैं। एक पर्याप्त मात्राका जलदेन भी एक स्वस्थ समुदायके लिये वास्तवमें आवश्यकीय है और भारतके ग्रामीण भागोंमें इसकी अवर्तमानता अस्वस्थताका एक महत्वशील कारण है। समस्त कार्योंके लिए जल बहुधा उन नदियों व धाराओंसे लिया जाता है जिनमें मनुष्योंका मल फेंका जाता है। स्वास्थ्यके सीधे प्रभावोंके अतिरिक्त उदर तथा आंतोंमें छूतके रोगसे रोगित तथा परोपवासी (पैरासाइट) पौधोंसे भरे हुए जलके पीनेसे पैदा होने वाली गड़बड़ियाँ भी कुपोषणके मुख्य कारण हैं। बड़े-बड़े शहरोंमें भी स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रबन्ध उस उच्चतम श्रेणीसे जिसका सर्वसाधारण स्वास्थ्य-इच्छुक, है विशेष गिरा हुआ है।

सरकारी कार्य-कर्त्ताओंकी उपेक्षा, जनताकी अज्ञानता तथा स्वार्थी प्रभावोंके कारण भोज्य पदार्थोंकी पवित्रताके कोई प्रभावयुक्त आदर्श नहीं हैं जिसका परिणाम यह है कि भारतीय बाज़ारोंमें बेमिलौनियाँ भोज्य पदार्थोंकी प्राप्ति दुर्लभ है।

न्यूनमात्रामें विटेमिनकी वर्तमानता

दूध तथा दुग्ध पदार्थ भारतमें सर्वप्रिय हैं, परन्तु उनकी लघु मात्रामें प्राप्ति तथा ऐसे दूधमें जैसा कि प्राप्त हो विटेमिनकी लघु मात्रामें वर्तमानता बहुधा न्यून आधारिक अवयवोंके पूर्ण करनेके लिए इसे अपर्याप्त बनाते हैं। कदाचित रोगित जलसे दूषित किये जानेके कारण ही दूधसे रोग उत्पन्न हो जानेका भी एक बहुत बड़ा भय है। भारतमें दूधके गुणकी निकृष्टताका कारण मवेशियोंके चारेकी

अपर्याप्त मात्रा है तथा अपर्याप्त मात्रामें दूधकी प्राप्ति भी मवेशियोंके चुनिन्दा जिन्सोंके कम दूध देनेके कारण हैं।

दूधके पदार्थोंमें घी सम्मिलित है जो बहुधा भैंसके दूधसे निकाला जाता है, परन्तु यह अब इतना मूल्यवान हो गया है कि सर्वसाधारण अब इसके खानेसे वंचित हो गए हैं। दहीका व्यवहार सब वर्गोंमें अधिक है। व्यवहारमें आने वाली भिन्न-भिन्न मिठाइयोंका आधारिक अव्यक्त केसीन है।

उष्णीय समुद्रों तथा भारतीय नदियोंमें मछलियाँ अधिकतासे प्राप्त होती हैं और इनको अभी तक लोग काममें नहीं लाये हैं। मीन-व्यापारका अभी वैज्ञानिक रूपसे संगठन नहीं हुआ है, अस्तु इससे अधिक हानि हो रही है विशेषकर संरक्षण रीतियोंके अभावसे। मटन, बीफ, बकरोंका मांस, मुर्गियाँ इत्यादि ही मांसके विशेष प्राप्ति-द्वार हैं, परन्तु खिलानेकी तथा उनके स्टाकको वृद्धिकी निकृष्ट रीतियोंके कारण मांस बहुधा दुर्बल तथा कड़ा होता है।

स्पैनिक तथा उसी प्रकारकी साग-भाजियोंका व्यवहार अधिक है, परन्तु यहाँ भी इनकी मांग देनसे अधिक बढ़ी हुई है, यद्यपि अन्तिमको कृषिकी उन्नतिशील रीतियों द्वारा बढ़ाया जा सकता है। फलोंके देनके सम्बन्धमें बात यह है कि अब तो यह भिन्न प्रकारके उगाए जाते हैं; परन्तु न तो उनकी वृद्धि ही और न तो उनका वितरण ही संगठित रूपसे है।

कुछ सूबोंमें जहाँ कि लोगोंकी शारीरिक अवस्था तथा उनका स्वास्थ्य निकृष्टतम है चावल ही मुख्य करके खाया जाता है। उपर्युक्त अवस्थाका कारण प्रोटीन तथा विटेमिन की न्यूनताको जो चावलमें स्वभावतः विशेषकर चक्कीमें पीसे जानेके पश्चात् पैदा हो जाती है, अपूर्ण रूपसे पूर्ण करना है। उत्कृष्ट श्रेणीका गेहूँ साधारणतया व्यवहार करनेके हेतु अधिक मूल्यवान् है। मिलेट भी अधिकांश भारतीयोंका भोजन है, परन्तु इसमें खटिकम धातु विख्यात रीतिसे न्यून है।

दाल (मटरें, मसूड़, बीन, उड़द तथा पार्थिवनटें) हमारे अन्न-सम्बन्धी भोज्य पदार्थोंके लिए मूल्यवान भोग हैं। इसका कारण यह है कि इसमें प्रोटीन तथा खनिज पदार्थोंको प्राप्ति आपेक्षिक रूपसे अधिक है, यद्यपि भिन्नता सहित। पार्थिव नट (ग्राउण्डनट) की खेती आधुनिक वर्षोंमें अधिक वेगतासे बढ़ गई है, परन्तु बाहर इतना भेज दिया जाता है कि यहाँका व्यवहार निम्न श्रेणीका ही बना रहता है यद्यपि भारतीय भोजनोंमें इसके अधिक उपयोगसे अनेक पोषक न्यूनताएँ दूर की जा सकती हैं। वास्तवमें बात यह है कि भारत एक ऋणी देश है और पदार्थोंके बाहर भेजनेके परिणामस्वरूप आवश्यकतासे उसको एक अधिक मात्राका भोज्य पदार्थ जो कि जनताके पोषणके लिए आवश्यकीय है बाहर भेजनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। इस प्रकार बाहर भेजनेकी आवश्यकतासे वह उस ज़मीन पर जिसपर वह अपने घरके खर्चके लिए भोजन पैदा कर सकता था उन बाहर भेजने योग्य फसलोंकी वृद्धि करनेमें बाध्य हुआ जो खानेके काममें नहीं आतीं।

अधिकांश भारतीय शाकाहारी होते हैं। शाकाहारी होनेका कारण अधिकतर उनके इस मज़हबी विश्वास पर निर्भर है कि जानवरोंकी हिंसा करना पाप है। कुछ अंशमें एक और कारण उनके ऐसे मज़हबी विश्वासका यह हो सकता है कि मांस ग्रीष्म वायुजलमें सरलता-पूर्वक सड़ जाता है तथा रोगित मांसके खानेसे रोग-ग्रस्त हो जानेकी सम्भावना है।

यद्यपि सावधानीसे चुना गया शाकभाजीय भोजन प्रोटीन पदार्थसे पर्याप्त मात्रामें पूर्ण हो, तथापि अनेक भाँतिका भोजन या तो आवश्यकीय पदार्थोंसे रहित अथवा केवल पर्याप्तताके तट पर ही पाया जाता है। टेराएनने अपने खोजोंसे इस बातको सिद्ध कर दिया है कि प्रोटीनोंके मिश्रण का जीवशास्त्रिक मूल्य उनके पृथक् पृथक् मूल्यसे अधिक हो सकता है। अस्तु, भारतीय भोजन उत्तम श्रेणीके अल्प मात्राके प्रोटीन अथवा जन्तु-प्रोटीनके संभोगसे पूर्णतया पर्याप्त बनाया जा सकता है। इस के हेतु मीन तथा मांस अधिक उपयुक्त हैं और उनके सम्मेलनको जहाँ कोई आर्थिक अथवा मज़हबी उज्र न हो प्रोत्साहन देना उचित है और नहीं तो अंडों तथा दूधसे भी वैसी ही प्रभाव युक्त प्रोटीन प्राप्त हो सकती है।

मूल कारण

इन जाँचोंसे जो इस सम्बन्धमें की गई हैं पता चलता है कि किसानों तथा बे-ज़मीन वाले खेतिहरोंका भोजन पदार्थ

वैसा ही असंतोषजनक है जैसा कि क़ौमके और भागोंका। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है विशेषकर जब कि हमको इस बातका ज्ञान है कि पंजाब जैसे आपेक्षिक रूपसे फूलने फलने सूबेमें भी ग्रामीण भागोंमें औसत मज़दूरी प्रति दिन ।≈) तथा ।।।≈) के मध्य पड़ती है। खान-सम्बन्धी व्यवसायमें औसत मज़दूरी साधारण काम करने वालोंकी (औरतों की काट कर) ।≈) प्रतिदिन तथा खानवालोंके लिये १।-) प्रतिदिनके मध्य घटती-बढ़ती रहती है।

भारतके भिन्न भागोंके लगभग २,००० काम करने वाली श्रेणियोंके बजटोंकी जाँचोंने यह प्रकट कर दिया कि उनमेंसे लगभग ६० प्रति सैकड़ाका व्यय अपने भोजन पर एक ऐसी मात्रा थी जो उस न्यूनतमसे भी कम थी जो बाम्बे टेक्सटाइल लेबर यूनियनकी ओरसे विचारी गई थी, परन्तु इस जाँचमें सबसे कम मज़दूरी पाने वाले सम्मिलित नहीं थे। यद्यपि इस जाँचने भोजनके गुणोंपर कोई सूचना नहीं दी, तथापि खाद्य पदार्थका साधारण नमूना जो इस रुपयेके व्ययसे खरीदा जा सकता था दूध, दूध-पदार्थों तथा उपयुक्त शाक भाजियोंकी न्यूनता रखता हुआ होगा। प्रोटीन सम्मेलन तथा विशेषकर चर्बी (तथा ए और डी विटेमिनें) विशेषतया निम्न होंगी।

ऐसे निम्न प्रकारके भोजनका उपयोग ही निस्सन्देह भारतीय परिश्रमकी निकृष्टताके मुख्य कारणोंमेंसे एक है, अस्तु मजदूरोंकी एक पर्याप्त न्यूनतम मजदूरी निश्चित देनेसे, इसके मानुषीय मूल्यके अतिरिक्त, हमको परिणाममें एक उन्नति शील पैदावारी प्राप्त होगी। यदि मजदूरी शनैः-शनैः बढ़ाई जाय तो संगठनमें न्यून व्ययके सिद्धान्तको कार्य रूपमें लाने तथा मूल्यको बढ़ा देनेसे उनकी बढ़ी हुई मजदूरीके काटनेके विचारको दूर रखना सम्भव होगा।

भारतमें और जगहोंके सदृश कुपोषणका मूल कारण निर्धनता ही है, अस्तु पूर्व इसके कि कोई वास्तविक उन्नति इसका दूर होना आवश्यक है। कुछ भी हो शिक्षा तथा आन्दोलनके महत्वको उपेक्षा हम कदापि नहीं कर सकते। कुपोषण तथा अस्वस्थताके विरुद्ध एक विस्तार-रूपसे राष्ट्रीय युद्ध आरम्भ करनेके पूर्व हमको इन त्रुटियोंकी वर्तमानता तथा भली प्रकारसे रहनेकी आकांक्षाका जिसका कि इस समय अभावसा जान पड़ता है ज्ञान कर लेना होगा। भारतीय कर्मचारियोंके दार्शनिक विचारों ने उन्हें सामाजिक तथा आर्थिक निर्बलताओंके नम्रता पूर्वक सहन को एक आत्मिक मूल्य प्रदान करनेमें बाध्य किया है तथा पूर्व इसके कि कुपोषणके विरुद्ध आन्दोलनका कोई संयोग रूपसे उत्तर मिले उपर्युक्त भावनाओंके परिवर्तनकी आवश्यकता है।

मानने योग्य बातें

पोषणीय विज्ञानके ज्ञानको कार्यरूपमें लानेके प्रश्न पर लिखते हुए डाक्टर गंगोली ने कई मानने योग्य बातें बताई हैं।

हमको शिक्षालयके बच्चोंकी निकृष्ट पोषणीय अवस्था का ज्ञान पूर्व ही हो चुका है। इसका एक उपाय यह है कि प्रत्येक स्थानीय पद्धति पर काम करने वाले शिक्षालयके साथ एक फल तथा शाक-भाजी वाली वाटिका हो जो अल्प मूल्यवान भोज्य पदार्थोंके प्रदान करनेके अतिरिक्त बाग़बानी-शिक्षाके लिए भी काममें लाई जा सके। उन शिक्षालयोंके लिए जो स्थानीय पद्धति पर काम न करें 'ओसलो नाश्ता' स्कीम काममें लाई जाय—अर्थात् श्रेणियों की पढ़ाई आरम्भ होनेके आध घण्टा पूर्व विद्यार्थियोंको ऊँचे अनुपातमें मिले हुये रक्षार्थी भोज्य पदार्थोंके मुफ्त व सस्ते खाने खिलाये जायँ।

औद्योगिक कार्य करने वालोंके भोजनके सम्बन्धमें भोजनका स्टैण्डर्ड, खाना बेचने वालों तथा भोज्य-गृहोंमें जिनमें आजकल निम्न प्रकार तथा मिलौनिया भोजनका विक्रय बहुधा देखा जाता है, अधिकार-विधि उपयोग द्वारा बढ़ा देना चाहिए। कारखानोंमें केन्टीनोंकी स्थापनासे काम करने वालोंके पोषण पर लाभदायक प्रभाव पड़ेगा, परन्तु भारतमें मज़हबी तथा सामाजिक पद्धतिमें कठिनाइयाँ स्वभाविक हैं। तथापि यह प्रतीत होता है कि व्यवहार संस्थाओं द्वारा केन्टीनके रूपमें परिवर्तन किये जानेके लिए अभी स्थान है।

परन्तु जनताके भोजनमें उन्नति करनेकी यह सब विधियाँ केवल उपाय मात्र हैं। विस्तार-रूपसे फैले हुए कुपोषण तथा अल्प पोषणकी जड़से उखाड़ने वाली चिकित्साके लिए हमें समस्त सामाजिक और आर्थिक रचनाको फिरसे संगठित तथा ठीक करना पड़ेगा।

भारतमें एक खाका रूपसे खेती करनेके लिए प्रथम उपाय यह होगा कि ऐसा विचार पूर्ण प्रयत्न किया जाय जिससे खाद्य पदार्थोंके फस्लकी वृद्धि तथा विस्तार हो तथा इस बातका निश्चय रहे कि वह आवश्य पदार्थोंकी अपेक्षा उत्तम समझ कर उगाएँ जायं। फस्लोंके मूल्यकी वृद्धि करनेके लिए मिट्टीका नए सिरेसे भरा जाना दूसरी पद्धति है जो काममें लाई जा सकती है।

सोयाबीनका व्यवहार; जो अधिक पोषणीय पदार्थ है तथा कई प्रकारसे काममें लाई जा सकती है, विशेष लाभदायक होगा। सोएका आटा चावल व गेहूँ जैसे अन्नोंसे मिश्रित होकर बहुधा खाए जाने वाले शाक भाजीय भोजनके विद्यमान प्रोटीन, खनिज, तथा विटेमिनकी और अधिक वृद्धि कर देगा। इसमें एक और लाभ यह है कि यह एक बलिष्ठ पौधा है जिसकी सरलता सहित खेतीकी जा सकती है। उसी प्रकारके लाभोंसे युक्त दूसरा पौधा ऐल्फ़ैल्फ़ा है। इसकी खेती भी विस्तार रूपसे की जा सकती है।

कृषि-वृद्धिकी किसी साधारण स्कीममें बाग़बानी (हार्टीकल्चर) का अभी तक प्रवेश नहीं हुआ है, परन्तु फलों तथा शाक भाजियोंकी कृषिके लिए वाटिकाके भागोंका संगठन रूपसे व्यवहार करनेसे रक्षार्थी भोजनोंके देनकी उत्तम वृद्धि की जा सकती है।

दुग्ध-उत्पादनकी वृद्धिकी आवश्यकता प्रत्यक्ष है और इसके लिए पशु-पालनमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है। अनेक कठिनाइयाँ हैं जिसको दूर करना होगा। सबसे बड़ी चरागाहके गुणोंका अध:पतन है। चक्र-पद्धतिसे जिसमें मटर फली इत्यादि चारेको फस्ल सम्मिलित है उत्तम सहायता मिल सकती है। कदाचित संगठनके आधार पर डेयरी उद्योगकी स्थापना भी उत्तम होगी तथा ग्वालोंके लिए ज़मीनका निर्धारित समय अबकी अपेक्षा और सुरक्षित कर दिया जाय तथा अन्तमें उच्च गुणवाले पदार्थकी उपजके लिए विधियोंको अधिक वैज्ञानिक रूप दिया जाय।

भारतीय पोषण पर अन्वेषणका अधिकांश भाग कूनूरमें सर राबर्ट मैक्कैरीसन तथा डाक्टर डबल्यू० आर० ऐकरायडके अध्यक्षतामें तथा जीव-रसायन-विभागमें कलकत्तेके पब्लिक हेल्थके अखिल भारतीय आलयमें किया गया। ये प्रयोग-शालाएँ अब लगभग ३०० भारतीय भोज्य पदार्थोंकी पोषणीय मूल्यकी खोजमें मिलकर तत्पर हैं। भोज्य-सम्बन्धी दौरे किये जा रहे हैं जिनसे खाये गये भोजनकी पर्याप्त तथा उसकी उन्नति पर दिए गए परामर्शका शुद्धता सहित अनुमान किया जाना संभव है। आशा की जाती है कि इस प्रकारकी खोज विस्तार-रूपसे की जाय तथा भोज्य सम्बन्धी स्वभावों, आर्थिक दशा, स्थानीय कृषि अवस्थाओं तथा उसी प्रकारको और बातों पर सूचनायें प्राप्तकी जायँ। १,६८ ७५० रु० के आधुनिक मुश्त ग्रैंटके अतिरिक्त कूनूर प्रयोगशालाके पास पोषणीय अन्वेषण कार्यके लिए ९०,००० रु० तथा १,१२,५०० रु० के मध्य एक वार्षिक धन और है।

(एक बुलेटीनके लेखके आधार पर)

जीवन क्या है ?

(श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, ट्रेनिंग कालेज, आगरा)

(लेखककी 'मानव-विकास' नामक अप्रकाशित पुस्तकके तृतीय पुष्पसे)

पिछले दो लेखों 'ब्रह्मांड और पृथ्वी" तथा 'भू-रचना' में विज्ञानके पाठकोंने देखा था कि किस प्रकार सौर-मण्डलकी सृष्टि हुई, कब, कैसे सूर्यसे पृथ्वी प्रकट हुई, किस क्रमसे वसुन्धरा शीतल, तरल व कड़ी हुई तथा किन-किन घटनाओंके परिणाम-स्वरूप वायुमण्डल, जल, चन्द्रमा, समुद्र पर्वतश्रृङ्खला, प्रायद्वीप-पुञ्ज इत्यादिका अभिसृजन हुआ। अब हमें जीवन-यात्रा, जीवन-विकास देखना अभीष्ट है। सर्वप्रथम जीवन-विकास भूमि, गगन, सागरमेंसे कहाँ हुआ ? वृक्ष तथा प्राणी-प्रादुर्भाव किससे हुआ ? वर्तमान समयमें दृष्टिगोचर होने वाले जीव-समुदाय इस रूप तक

कैसे व किस क्रमसे पहुँचे ? आदि-आदि महत्वपूर्ण गम्भीर प्रश्नोंका विवेचन करना है। परन्तु अच्छा हो कि जीवन-विकास पर विचार करनेके पूर्व इस समस्या पर पर्याप्त चिन्तन कर लें कि जीवन क्या है, किन-किन अवस्थाओं पर टिका है तथा वे अवस्थायें इस असीम ब्रह्माण्डमें कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं। आइये, इन तीनों प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् दृष्टिसे विचार करें।

दार्शनिकों व शरीर-शास्त्र-वेत्ताओंने 'जीवन' की परिभाषा अंकित करनेके लिये कतिपय प्रयत्न किये हैं। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि कौन कहाँ तक ठीक है। दार्शनिकोंने 'जीवन' पर विचार करते समय बहिर्जगतको लक्ष्य बनाकर कल्पनायें दौड़ाई हैं। जीवन पर विचार करते समय 'जीवन-मरण' की ओर संकेत किया है—अदृश्य, सूक्ष्म सत्ता इत्यादिके ढाँचेमें ढाला है। कोई कहता है जीवन संग्राम है जिसमें कभी हारते हैं, कभी जीतते, इत्यादि। हरबर्ट स्पेन्सरका कहना है कि "आन्तरिक परिस्थितियोंको वाह्य परिस्थितियोंके अनुकूल बनाये रखनेका सतत उद्योग ही जीवन है।" इसी प्रकार और भी कई विद्वानोंने परिभाषायें दी हैं, किन्तु उनसे विषय यथोचित स्पष्ट नहीं होता। अरस्तूकी जीवन-सम्बन्धी व्याख्या लक्ष्यके समीप पहुँचती हुई प्रतीत होती है। उसका कहना है कि "life is the assemblage of the operations of nutrition growth and destruction" अर्थात् पौष्ट पदार्थ, वृद्धि तथा ह्रास सम्बन्धी क्रिया-कलाओंका समुच्चय ही जीवन है।" यह परिभाषा ठीक तो है, किन्तु इतने सूत्र-रूपमें कही गई है कि पूर्ण स्पष्ट होना दुरूह है। वर्तमान समयके शरीर-विज्ञान-विशारदों व चिकित्सा-शास्त्र-वेत्ताओंकी सहायतासे इसकी विशद मीमांसाकी जाना अनुपयुक्त न होगा।

दार्शनिक, धर्माचार्य, मनोवैज्ञानिक आदि व्यक्ति जीवन अथवा जीवित-प्राणी' की विवेचना करते समय एक महत्व पूर्ण पदार्थको सर्वथा भूल जाते हैं—शरीर। शरीर ही जीवनका केन्द्र है। चाहे वह रुधिर-मांस निर्मित हो अथवा काष्ठ निर्मित। चाहे मानव, पशु पक्षी, जलचर इत्यादि का शरीर हो चाहे आम्र, निम्ब, लता आदिका। सब जीवित प्राणियोंके किसी न किसी प्रकारका शरीर अवश्य होता है उस शरीरके भीतर विकास व ह्रास-सम्बन्धी क्रियायें अवश्य हुआ करती हैं। इनकी उपेक्षा करते हुये 'जीवन-परिभाषा' के वर्णन कर सकनेमें सफल हो जाना असम्भव है। दूरकी बात जाने दीजिये। साधारण जीवनकी ही बात ले लीजिये। हम सब व्यक्ति नित्य ही सजीव व निर्जीव पदार्थ देखा करते हैं। किसीसे पूँछ लीजिये कि दोनोंमें क्या अन्तर है ? प्रश्न साधारण है और बाहरसे देखनेमें लड़कपन लिये हुये प्रतीत होता है। पर उत्तर इतना सरल नहीं जितना दिखलाई पड़ता है। मैंने इसी प्रकारका प्रश्न अपने एक मित्रसे किया था जिसका उत्तर देते हुये उन्होंने कहा "चेतन पदार्थ अर्थात् सजीव प्राणी बोल सकता है, चल फिर सकता है, उठ बैठ सकता है। पत्थर जहाँका तहाँ पड़ा रहता है अतः वह निर्जीव है, आदि।" इस पर मैंने आपत्ति करते हुये कहा "ग्रामोफोन बोल सकता है। वैज्ञानिक ढंगसे निर्मित व्यक्ति चल फिर सकता है, आवश्यक सूचनायें दे सकता है, तापमान, घनत्व आदि अंकित कर सकता है आदि, क्या यह सब जीवित पदार्थ कहे जा सकते हैं ?" आगे चल कर फिर मैंने पूछा "वृक्षोंको तो आप निर्जीव सृष्टिमें रखेंगे, क्योंकि न तो वे बोल ही सकते हैं और न चल फिर ही सकते हैं"। अपनी बात कटती देखकर उन्होंने जीवित प्राणीकी एक और व्याख्या की। बोले "जीवन-युक्त प्राणी सोच-विचार सकता है, किन्तु यन्त्र-सृष्टि (अर्थात् निर्जीव पदार्थ) नहीं।" बात कुछ-कुछ ठीक थी, किन्तु सर्वथा सत्य न थी, क्योंकि कई निम्न श्रेणीके जीव इस प्रकारके भी होते हैं जो मस्तिष्क-हीन होते हैं। अतः सोच नहीं सकते। फिर भी उन्हें निर्जीव नहीं कहा जा सकता। अगले सोपानसे हम लोग देखेंगे कि मस्तिष्कका प्रादुर्भाव तब तक न हुआ था जब तक रुधिर व रक्त, वह्नि, स्नायु आदिका विकास न हो गया। अमीबा, और स्पंज इसी प्रकारके जन्तु हैं। जिन कीट-पतंगोंके तुच्छ मस्तिष्क हैं भी, क्या पता उसमें विचार उठते होंगे। मनोविज्ञानका नियम है कि विचारका उठना तब प्रारम्भ होता है जब स्मृति पुष्ट हो चुकी हो, सांसारिक पदार्थोंसे परिचय हो गया हो, आदि। सात माहका गर्भस्थ बालक कुछ विचार सकता है, इसका प्रमाण मिलना असम्भव है। फिर भी बालक जीवित नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इससे पता चलता है कि यह

युक्ति-युक्त नहीं कि जो सोच-विचार सकते हैं वही सजीव हैं, शेष निर्जीव। वृक्ष भी सोच सकते हैं इसका कोई लक्षण ही नहीं मिलता, यद्यपि उनका सजीव होना, कीट, पतंग वायु आदि पुरोहितों द्वारा परिणय संस्कार किया जाना पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिंग सौरभ-कणोंके योगसे सन्तानोत्पत्ति करना प्रमाणित हो चुका है। यदि सोच सकनेकी कसौटी पर ही जीवनको कसा जायगा तब तो वृक्ष निर्जीव उतरते हैं, पर निर्जीव नहीं हैं, क्रियाशील हैं, जीवित हैं। अतः वह उपपत्ति असंगत है। तब सच्ची कसौटी क्या है?

सजीव प्राणीकी सच्ची पहचान यह है कि वह सजीव अथवा निर्जीव पदार्थोंको खा सकता है, उन्हें पाचन कर सकता है, सारतत्व अपनी शरीर-वृद्धिमें लगाकर सार-हीन पदार्थको बाहर निकाल सकता है। यह काम स्वयं करता है, किसीकी प्रेरणासे नहीं। मशीन कपड़ा बुनकर निकाल देती है, किन्तु इसकी सब क्रियायें किसी दूसरी सत्ता द्वारा नियन्त्रितकी जाती हैं, स्वयं नहीं। सजीव होनेका द्वितीय लक्षण यह है कि उसका शरीर एक ही अवस्थामें नहीं रहता, प्रति वर्ष, प्रति माह, प्रति दिवस, प्रति घंटा या तो बढ़ता रहता है या घटता। लोहेकी मशीनें सहस्त्रों मन कपास ओट, कात, व बुन कर कपड़ोंके थानपर थान उगला करती हैं, किन्तु लौह-शरीर न तो स्थूल होता है और न पीन। इनका अपेक्षा जीवधारियोंमें अमीबासे लेकर ह्वेल मछली तक, जलचरसे लेकर नभचर तक, उद्भिजसे लेकर पिंडज तक किसीको ले लीजिये। अतिरिक्त रासायनिक क्रियाओंके कारण घटते या बढ़ते, पल्लवित या पतझड़ित प्रौढ़ या जर्जरित होते रहते हैं। परिवर्तनकी गति क्षण भरके लिये भी नहीं रुकती। पौष्टिक पदार्थ पाचन-शालामें पहुँचते, उनपर रासायनिक क्रियायें होती, सार-हीन व हानिकारक भाग किसी न किसी रूपमें निकल बाहर होते, शेष द्वारा शरीरके प्रत्येक कणको पुनर्नूतन शक्ति मिलती, और साथ ही साथ अंगका जीर्ण, शीर्ण, मृत अवयव च्युत होता जाता है। यह सब क्रियायें कर सकनेके लिये जीवित प्राणीके अंतर्जगतमें रस-वाहिनी नसोंका जाल बिछा रहता है, ताकि प्रत्येक कोनेमें पौष्टिक पदार्थ पहुँच जाय।

प्रोफेसर बरडन संडरसन का कहना है कि "निर्जीव व सजीव पदार्थोंमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि सजीव पदार्थ निरन्तर परिवर्तनशील होने पर भी सर्वथा वही रहता है।" कुछ ही दिन हुये किसी अन्य लेखकने कहा था "जीवनके सर्व प्रधान और मूल-भूत लक्षणको यह कह कर वर्णित कर सकते हैं कि यह एक शक्ति-व्यापार है, अर्थात् शक्तिका यातायात है। जीवित पदार्थोंका मुख्य शारीरिक कार्य यही प्रतीत होता है कि शक्तिका निर्माण व संग्रह किया फिर उसे रचनात्मक कार्योंमें व्यय किया जाय।" प्रोफेसर एफ० जे० एलन रचित 'जीवन क्या है' (what is life)

तृतीय, सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जीवितों, देह-धारियोंमें जनन-शक्ति पाई जाती है। जनन-शक्ति सहस्त्रों रूपोंमें प्रदर्शित होती है। कहीं पिण्ड द्वारा, कहीं अण्ड द्वारा, कहीं-कहीं कीट-पतंगोंके माध्यम द्वारा आदि सब स्थानों पर दो के सम्पर्कसे तृतीयका प्रादुर्भाव हो जाता है। किन्तु सबसे विचित्र जनन-विधि अमीबा नामक सूक्ष्म जन्तुमें होती है। इसमें नर-मादा आदिका भेद कुछ नहीं होता और न सहयोगसे ही सन्तानोत्पत्ति होती है। अमीबा शनैः-शनैः जब बड़ा हो जाता है तब दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। इन दो में से आगे चलकर फिर प्रत्येकके दो हो जाते हैं, आदि। इस विधिको 'आत्म-विभाजन' कहते हैं। तात्पर्य यह कि किसी न किसी रूपमें यही प्रजनन-शक्ति सब जीवितोंमें पाई जाती है। जिनमें मैथुन द्वारा सृष्टि होती है उनमें कोष्ठ (cell) का विकसित होते जाना सन्तान-उत्पत्तिका कारण होता है। डाक्टर वैलेस ने कितना ठीक कहा था "The organism, howover, is not built, but it grows" (अर्थात् शरीर निर्मित नहीं होता, अपितु विकसित होता है, प्रस्फुटित होता है और बढ़ता है। एक बीज खेतमें डाल दिया; मिट्टी, जल, ताप और वायुके मिश्रित योगसे बीजके भीतरी क्रियायें हो चलीं, भीतरी पदार्थ अंकुरित होकर बाहर निकल आया और ऊपरकी ओर वायु व प्रकाश खोजने उमड़ चला। कभी अंकुर अधोमुख होकर पातालगामी नहीं होता क्योंकि उस ओर ताप, प्रकाश, वायु कुछ नहीं, उनका आकर्षण नहीं। यहाँ देखने योग्य बात यह है कि जीवन-

आधार (शरीर) निर्मित नहीं किया गया—वह तो पहले से ही उपस्थित था। उसे रासायनिक तत्वोंके सम्पर्कसे जागृत कर दिया गया। बस वह बढ़ता गया। इसी प्रकार पक्षियोंका उदाहरण लीजिये। नरका रासायनिक पदार्थ मादाके गर्भमें पहुँचकर अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पुष्ट होता रहा। आकारमें कुछ बड़ा हो जाने पर मादा ने अण्डाके रूपमें बाहर निकाला। अण्डेका वाह्य खोल कड़ा अवश्य है, पर भीतर पानी जैसे तरल किन्तु गाढ़ा द्रव भरा होता है। आश्चर्य है कि यह तरल द्रव जीवित द्रव होता है। यदि निर्जीव रहा करता तो आगे चलकर इसके अधिक गाढ़ा होते जाने पर पक्षी-शिशु कैसे बन जाया करता। यहाँ भी शरीर पैदा नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा-उस नगण्य विन्दु से बढ़ा जिसमें असंख्य अद्भुत गुणोंके परिमाणु निहित थे। पक्षी बड़ा होने पर अपने पिताके समान आकार प्रकार, रङ्ग, रूप, पङ्ख, नख, चञ्चु वाला हो जाता है, उसके भी गलेमें लाल धारियाँ हो जाती हैं, चोंचका रङ्ग पीत वर्ण तथा पखोंका हरित हो जाता है। कितने आश्चर्यकी बात है कि इन सब विशेषताओंके प्रतीक प्रतिनिधि उस नगण्य विन्दु अलर विन्दुमें छिपे थे जो दूरसे देखनेमें एक दीखता था। वस्तुतः वह विन्दु एक तत्वका नहीं, अपितु अगणित रासायनिक परिमाणुओंके योगसे बना होता है। वनस्पतिके बीजमें भी असीम विभिन्न परिमाणु निहित रहते हैं। समय पाकर सबका यथासाध्य अस्फुटित होते जाना ही जीवन-व्यापार है। वृक्षोंमें विकसित होने पर उसी रङ्ग आकार, काटकी पत्तियाँ निकलती है जिसकी पितामें थी। एक डण्ठलमें उतनी ही पत्तियाँ, पुष्प व फलोंका रङ्ग, गंध, आकार, स्वाद इत्यादि उसी प्रकारके होते हैं जिस प्रकार पिता वृक्षमें थे। उस छोटेसे जादूके बीजमें यह सब लक्षण किस सूक्ष्म वेषमें छिपे रहते हैं कहा नहीं जा सकता। तात्पर्य यह है कि जीवितोंमें अपने जैसी संतान उत्पन्न कर देनेकी शक्ति होती है। निर्जीव पदार्थोंमें यह शक्ति नहीं होती। शर्करा यन्त्रोंमें गल्ला डाला जाता है; यन्त्र कुछ न कुछ उत्पन्न करता है, किंतु वह उत्पन्नकी हुई वस्तु यन्त्रसे सर्वथा भिन्न होगी। लोहेकी मशीन वस्त्र उत्पन्न करती है। वस्त्रमें व लोहेकी मशीनमें कोई तद्रूपता नहीं मिलती। इसके विपरीत जीवित पशुओंका एक कोश (cell) भी जातिके गर्भमें बढ़ता रहता है बड़ा होने पर हूबहू उसी रङ्ग, रूप, केश, नेत्र दन्त, नख वाला होता है कि पहचानना कठिन हो जाता है। अपनी ही प्रतिमूर्ति छोड़ जाता है।

उपर्युक्त रासायनिक क्रियायें (क्रियाओंसे तात्पर्य यह है कि वाह्य रूप परिवर्तित न हो) अभ्यन्तरमें अनवरत गति चालू रहे ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब कि वे अणु-परिमाणु जिनसे कोष्ठ निर्मित होता है इस प्रवृत्ति वाले हों जो सरलता पूर्वक भिन्न किये जा सकें। यह तभी हो सकता है जब वे सर्वदा प्रवाहित अवस्थामें रहा करें। इस प्रवाहित, सजीवतरल द्रवको 'प्रोटोप्लाज्म' कहते हैं। एक प्रकारका 'प्रोटोप्लाज्म' (सजीव तरल पदार्थ) हम अभी देख आये हैं (अण्डेके भीतर वाला जल सदृश तरल किंतु घना व गाढ़ा पदार्थ)।

हक्सलेका कहना है कि जीवनका भौतिक आधार प्रोटोप्लाज़्म है। समस्त भूमण्डल पर जितने भी जीव दृष्टि-गोचर हो रहे हैं सबके सब इसी प्रोटोप्लाज्मके विकसित व समुन्नत रूप हैं। प्रोटोप्लाज़्ममें द्विगुणित, चतुर्गुणित आदि बहुगुणित होनेकी अपूर्वशक्ति होती है। इसीके परिणाम स्वरूप विन्दु मात्रसे बढ़कर बड़ा शरीर प्राप्त कर लेता है जैसे जैसे शरीर बढ़ता जाता है उसके अंग-प्रत्यंग मुकुलित होते जाते हैं। प्रोटोप्लाज्म देखनेमें तो एक ही तत्व वाला प्रतीत होता है; किन्तु वस्तुतः इसमें कई रासायनिक तत्व मिले रहते हैं। उनमें चार विशेष रूपसे प्रधान है; तीन प्रकारकी गैसें (नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और आक्सीजन) तथा धातु रहित ठोस तरल तत्व कारबन। कारबनमें रासायनिक मिश्रणोंकी संख्या शेष तीन तत्वोंके रासायनिक मिश्रणोंसे कहीं अधिक है। इसीकी आश्चर्यजनक विभिन्नताओंके फलस्वरूप हम देखते हैं कि समस्त पशुओंके विभिन्न अवयवों चर्म, शृङ्ग, केश, नख, मांस पिण्ड, स्नायु, में वही चार तत्व पाये जाते हैं। हाँ, किसी किसीमें गन्धक तेजाब चूना, लवण इत्यादिका अस्तित्व भी निखर पड़ता है। कितने आचरयकी बात है कि विपरीत भोजन करने वाले प्राणियोंमें भी उपर्युक्त चार पदार्थ उसी प्रधानतामें पाये जाते हैं जिस प्रधानतासे समान भोजन करने वालोंके शरीरमें—शाकाहारियोंके शरीरमें भी तथा मांस-भक्षियोंके शरी-

रमें भी, हरित तृण, पत्र, पुष्प, चुगने वाले शशक-शिशुकी देहमें भी पाये जाते हैं व निरन्तर रक्त-मांस खाने वाले सिंहके शरीरमें भी। आश्चर्यकी सीमा तब और नहीं रहती जब हम देखते हैं कि वनस्पति जगतसे मिलने वाले जितने भी पदार्थ हम प्रयोगमें लाते हैं, जैसे नाना प्रकारके फल, शर्करायें, तैल, मोम, तम्बाकू, अफ़ीम, कुनैन, पेय पदार्थ यथा चाय, काफी, कोको, आदि-आदि सब (पदार्थों) में यही चार तत्व व्याप्त है। हम लोग (मनुष्य) या तो शाकाहारी होते हैं या मांसाहारी—शाक और मांस दोनोंसे प्रोटोप्लाज्म (चार तत्वोंका समुच्चय) रमा रहता है अतः हमारा शरीर भी इन्हीं पर आश्रित रहा करता है। इससे पता चलता है कि कुछ रहस्य अवश्य है तब तो विपरीत देख पड़ने वाले जीवोंका आधार एक ही वस्तु है। आइये, देखें वह रहस्य क्या है? पशु-पक्षी, वृक्ष आदि किस नियमसे संचालित हुआ करते हैं? आदि।

निरन्तर मांसाहारी हिंसक पशुओंका जीवन कोमल अङ्गवाले अन्य पशुओं पर निर्भर है और इन निम्न कोटिके पशुओंका जीवन वनस्पति तृण इत्यादि पर। मनुष्यका जीवन भी मूलतः वनस्पति नर निर्भर है। यदि वनस्पति न होती तो, न तो कोमल शरीर वाले जीव-समुदाय ही होते और न विशालकाय क्रूर हिंसक पशु ही। सबका आधार वयस्पति-जगत ही है। पशुओंके बिना वनस्पति बनी रह सकती थी, किन्तु वनस्पतिके बिना पशु जीवन होना सर्वथा असम्भव था। यदि हम वृक्ष-विकास और वृक्ष-निर्माणके लिये होने वाली क्रियाओंको देख लें तो जीवनकी गूढ़तम पहेली समझमें आ जाय।

प्रोफेसर एफ० जे० एलनका मत है कि प्रोटोप्लाज्मका अत्यन्त आवश्यक पदार्थ नाइट्रोजन है। शेष तीन उतने महत्वके नहीं होते जितना यह अकेला। नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजनके योगसे एक नवीन वस्तुका सृजन हो जाता है जिसे 'अमोनिया' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति प्रथम तो वायु-मण्डलान्तर्गत-व्याप्त-विद्युत्त-रंगोंके संघर्षण व नाइट्रोजन हाइड्रोजनके सम्मिश्रणसे वायु मण्डलमें होती है, फिर वह वर्षाके साथ पृथ्वी तक आता है, तब जड़ोंसे होकर वृक्ष-शरीरमें पहुँचता है।

यद्यपि वृक्ष-समूह निरन्तर वायु-मण्डलके सम्पर्कमें रहते हैं, पर उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वातावरणकी स्वतन्त्र नाइट्रोजनका शोषण कर ले। यह काम अगणित नन्हीं-नन्हीं पत्तियाँ करती हैं। पत्तियाँ न होती तो केवल यह हानि ही न होती कि वृक्ष-जगत आवश्यक गैस संचित न कर सकता, बल्कि यह भी होता कि पशु-जगतकी आधार-भूता शुद्ध वायु उत्पन्न हो न हो पाती। वृक्षों में भी कैसा निरन्तर कार्य-चक्र चला करता है। इधर असंख्य छोटी-छोटी पत्तियाँ वातावरणसे आक्सीजन, और कारबन डाय ऑक्साइड शोषित करनेमें लगी रहती हैं उधर निम्न भाग, जड़ें पृथ्वीसे रासायनिक घोल—जिसमें नाइट्रोजन आक्साइड्ज़ और अमोनिया (नाइट्रोजन+ हाइड्रोजन) मिश्रित रहते हैं, सोखा करती हैं। पत्तियों व जड़ों द्वारा शोषित गैस, घोलके सम्मिश्रणसे सजीव द्रव उत्पन्न हो जाता है। यही मिश्रण प्रोटोप्लाज्म है जो कि सबका आधार है।

वृक्ष-जगतका क्रिया-कलाप इतना सरल और सुलझा हुआ नहीं है जितना ऊपर दिखाया गया है। यह अत्यन्त गुम्फित है। वृक्षोंकी पत्तियाँ वायु-मण्डलसे कारबोनिक एसिड गैस तो खींचती ही है साथ ही साथ क्लोरोफाइल भी खींचती हैं जिसके कारण उन्हें हरितवर्ण प्राप्त होता है। पत्तियोंमें क्लोरोफाइल तथा कारबोनिक एसिड गैस संग्रहीत रहती है ही, प्रातःकालीन सूर्य-किरण प्रवेश करके निद्रा-भङ्ग कर देती है। निश्चेष्ट पड़ी रहने वाली वस्तुओंकी गति पूर्ण कर देती है—घड़ीमें चाबी देनेका काम करती है—सब पुर्जे यथास्थान सुसज्जित थे ही केवल चाबी भरनेकी देर थी कि पेण्डुलम हिल चला, टिक-टिक सूर्य किरण पाते ही जो कार्यवाही प्रातःकाल तकके लिये स्थगित कर दी गई थी फिर आरम्भ हो जाती है। पत्तियोंमें तो क्रियारम्भ होता ही है जड़ोंमें होता है। वह इस प्रकार कि ताप पाते ही पत्तियोंकी आर्द्रता हवा हो जाती है उष्णता बाध्य करती है कि जड़ें धरातलसे तरल पदार्थ सोखे।

सूर्य-किरण पाते ही कार्यारम्भ हो जाता है इसका यह तात्पर्य नहीं रात्रिमें क्रिया-कलाप बन्द रहता है। रात्रिमें भी चन्द्र-प्रकाश, ग्रह-प्रकाश व नक्षत्र-प्रकाश आदि मिलते रहते हैं। आजकल अमेरिकाकी माउण्ट विलसनकी वेधशालामें इस दिशामें पर्याप्त छान-बीन हो रही है। शोध

करके देखा गया है तो पता चला है कि चन्द्र, शुक्र, शनि-की तो कौन कहे दूर टिमटिमाने वाले नक्षत्र-पुञ्जोंके प्रकाश-का भी प्रभाव पड़ता है। यहाँ उसे विस्तारपूर्वक वर्णन करनेका समय नहीं है केवल इतना कहना अभीष्ट था कि रात्रिमें भी कुछ न कुछ क्रिया चालू रहती है—रात्रिकी शीतलता, अनावश्यक संचित सूर्य-तापको शांत कर देती है। यदि यह शीतलता अत्यधिक बढ़ जाती है तो पत्तियोंको निर्जीव बना देती है जैसा कभी हेमन्त या शिशिरमें हो जाया करता है। सूर्य-किरण जीवन-दान करती है। पत्तियोंमें पहलेसे ही संचित क्लोरोफाइल, कारबोनिक एसिडमें गति उत्पन्न कर देती है। कार्य अधिक स्फूर्तिसे सम्पादित होने लगता है। क्लोरोफाइल; कारबोनिक एसिड और सूर्य-किरण तीनों मिलकर एक उपयोगी तत्वकी रचना करते हैं—ऑक्सीजन। यही वह शुद्ध वायु है जिसे हम सब प्राणी प्रतिक्षण श्वास-द्वारा फेफड़ोंमें पहुँचकर रक्त शुद्ध किया करते हैं जिसकी सहायतासे जीवन धारण कर सकने योग्य बने रहते हैं। ऑक्सीजन पत्तियों द्वारा बहिष्कृत वायु है। जो वायु हमारे सबके लिये हानिकारक है वही वृक्षोंके लिये जीवनदायिनी है, तथा जो वायु उनके लिये सारहीन है हमारे लिये जीवन-आश्रय है। केवल ऑक्सीजनके प्रति ही नहीं बल्कि मधु (शहद) के लिये भी यही बात कही जा सकती है। वृक्ष पत्तियाँ कारबनको अपने निजी शरीर-पोषणके लिये बचा रखती हैं तथा आक्सीजनको अगणित तुच्छ छिद्र-कूपोंके मार्गसे निकाल बाहर करती हैं—वायु इसे पुरा पड़ोस व दूर-दूर तक बिखेर देता है। आक्सीजनका पत्र-कोष्टसे निष्कासित करनेका काम भी सूर्य-ताप और वायुमण्डलमें क्लोरोफाइलकी उपयुक्त मात्राकी उपस्थितिके कारण होता है।

कई बार कहा गया है कि पत्तियाँ वायु-मण्डलसे आवश्यक गैस खींचा करती हैं। प्रश्न है, क्यों, किसकी सहायतासे ? उनमें क्या शक्ति है कि गैसोंको खींच सके ? उत्तरमें कहा जा सकता है कि यह कार्य विशेष प्रकारकी ईथर लहरों (ether waves) की सहायतासे किया जाता है पत्तियोंकी बनावट इस प्रकारकी होती है कि हलकी बारीक जालीसी तनी रहती है ईथर-कम्प स्वयं इन जालियोंमें आ फँसते हैं—जिस प्रकार मकानमें लगी हुई वैज्ञानिक जालियोंमें रेडियो-वेव आ फँसा करते हैं। इन लहरोंकी कमी नहीं। यह सम्पूर्ण वातावरणमें सदैव चला करती हैं—पत्तियोंकी जाली उन्हें उलझा लेती है। यही उलझी हुई ईथर लहर वायु-मण्डलसे उपयोगी गैसें आकर्षित करती हैं। जल, क्षार, अमोनिया, नाइट्रोजन आक्साइड्ज आदि तत्वोंको गतिपूर्ण सजीव तरल पदार्थके रूपमें कर देता है। इस प्रोटोप्लाज़्ममें जब तक क्लोरोफाइल नहीं मिलता तब तक सब वर्णको सूर्य-किरणों द्वारा प्रभावित होता रहता है, किन्तु जिस क्षण क्लोरोफाइल मिल जाता है उसी क्षण सब प्रकारकी किरणोंका प्रभाव पड़ना रुक जाता है। केवल विशेष प्रकारकी लाल बैंजनी रंगकी किरणोंका ही प्रभाव पड़ता है। यही लाल किरणें कारबोनिक ऐसिडके तत्वोंका संग-विच्छेद करती है। कारबन व ऑक्सीजनका विभाजन करती है—कारबनको बचा रखतीं और आक्सीजनको बाहर निकाल देती हैं।

वृक्षोंको यही क्रिया अहर्निशि पत्तियों, जड़ों और तनोंमें होती रहती है। कली, पल्लव, पुष्प, फल आदिमें भी यही व्यापार हुआ करता है। इन्हींके परिणामस्वरूप सौरभ, परिमल, गन्ध, वर्ण, काष्ठ, मूल, तैल इत्यादिकी उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि प्रत्येक अंगमें चारों तत्व पाये जाते हैं। इन्हें खाने वाले पशुओंका शरीर भी चार प्रधान तत्वोंसे युक्त होता है। मांसाहारियों तकमें यही चक्र चलता जाता है।

यह है सूक्ष्म रूपमें जीवनकी वैज्ञानिक मीमांसा। जिन पत्तियोंको हम लोग कभी ध्यानसे नहीं देखते उनमें कितने आश्चर्यजनक क्रिया-चक्र घूमा करते हैं, वह भी स्वयं। हम कितने आश्चर्यमय जगत्‌में रहते हैं। चारों ओर वायुका समुद्र लहराया करता है जिसमें कई प्रकारके तत्व, गैसें व विद्युत्-प्रवाह व्याप्त हैं। यदि यह वस्तुएँ न होतीं तो वृक्ष-जीवन असम्भव था। वृक्षोंके न होने पर पशु और मानव-जीवन असम्भव था आज कुछका कुछ हुआ होता। जिस प्रकार हमारा व पशुओंका जीवन-आधार वृक्ष-जगत् है उसी प्रकार वृक्ष-जीवनका आधार आस-पास फैली रहने वाली विभिन्न परिस्थितियाँ हैं। अगले लेखमें देखेंगे कि वे सूक्ष्म परिस्थितियाँ क्या हैं जिन पर वृक्ष-सृष्टि अवलम्बित है।

हम एक शताब्दी कैसे जीवित रहें ?

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ, बी० एस-सी०]

आप और हम बहुत ही सरलताके साथ डेढ़ शताब्दीके लगभग जीवित रह सकते हैं, क्योंकि बुढ़ापेको बीमारी अब दूर-की जा सकती है। अब विज्ञान ही मनुष्यके बूढ़ा हो जानेके कार्यको भली-भाँति अध्ययन किया है। सबसे अधिक कार्य और यों कहिये कि सबसे प्रथम इस बुढ़ापेके रोग पर अनेकों प्रकारके अभ्यास और अध्ययन यूरोपके प्रोफेसर श्रीयुत अलेकजे-द्रऐ वाग्मोलतज़ने किये हैं जो कि कीव विद्यालयमें जन्तु-शास्त्रके विभागके डाइरेक्टर हैं। यह महोदय ३५ वर्षसे इसी रोगके ऊपर अपना कार्य करते चले आये हैं।

एक जन्तुके बढ़नेके समयको उसके वृन्दके higher mamals से मुक़ाबला करनेसे यह मालूम होता है कि जितना समय एक जन्तु अपनी यौवन-अवस्था तक पहुँचनेमें लेता है उससे ५ या ६ गुना अधिक वह और जीवित रह सकता है। 'इसको सही मानते हुये' प्रोफेसर महोदयका कथन है कि मनुष्यको युवावस्थाकी अवधि २५ वर्ष तक लेते हुये उसको १२५ या १५० वर्ष तक जीवित रहना चाहिये। प्रोफेसर साहब तो १५० वर्षको मनुष्यके जीवनकी अवधि नहीं मानते। उनके विचारमें मनुष्यको इससे भी अधिक जीना चाहिये।

प्रोफेसर महोदयने उन सब मनुष्योंके जिनकी एक शताब्दी जीवनकी पूरी होनेके बाद मृत्यु हुई है जीवनके वर्णन एकत्रित किये हैं। उन वर्णनोंमें एक वर्णन एक कृषकका है जिसका नाम शेपर्कोवसका था और जो लार्ता नामक गाँव शुखमीके पास रहता था। यह कृषक अपनी १४० वर्षकी अवस्था पर भी बहुत बलवान् और पूर्ण यौवन-युक्त था। उसकी वाणी बहुत तेज, यौवनके मधुर-रससे परिपूर्ण थी। उसकी तीसरी स्त्री ८२ वर्षकी अवस्थाकी थी। उसकी सबसे छोटी पुत्री २६ वर्ष की थी। जब कि वह ११० वर्षमें था उस समय तक वह अपने गृहस्थ जीवनके ऐश्वर्य और सुखोंको अच्छी प्रकारसे भोगता था।

वाइटरूसमें बोवीबोसिसोव नामक नगरमें मरतिज़लया मलयारिविच नामक स्त्री रहती थी। १३० वर्ष की अवस्था पर वह बहुत तेज़ीके साथ चला फिरा करती थी। उसके गाँवमें और सबसे पासके मर्दुमशुमारीके दफ़्तरमें ३० किलोमीटर अर्थात् ३४ गज़का फासला था। उसको वह बहुत तेज़ी और चपलताके साथ तै किया करती थीं। ऐसे ही एक उदाहरण पीक जारतन हंगेरीके निवासी का है। इनका १८५ वर्ष की अवस्था पर १७२४ ई० में देह त्याग हुआ। उस समय उनके पुत्रकी अवस्था ९५ वर्ष-की थी।

एक कृषकका जीवन व्यतीत करते हुये सुप्रसिद्ध थामसपार ने जिसने अंग्रेज़ी बादशाहतके तख़्त पर ९ बादशाहोंको बैठते देखा, इसी पृथ्वी पर अपना समय व्यतीत किया है। उसने अपने १५२ वर्षके जीवनमें १२० वर्षकी अवस्था पर द्वितीय विवाह किया और १२ वर्ष तक अपनी उस स्त्री के साथ सुखपूर्वक ऐश्वर्य और भोग-विलासका आनन्द उठाया। उसको बादशाह साहबने निमन्त्रित किया। वहाँ जाकर उसने मात्रासे अधिक भोजन और मदिराका सेवन करनेसे अपने प्राणोंको खो दिया। सुप्रसिद्ध डाक्टर हारवेने अपने आप पारकी परीक्षाकी थी और उसके शरीरका कोई भी भाग बुढ़ापेकी बीमारीसे पीड़ित नहीं था। हर एक भाग अपना-अपना कार्य पूर्णरूपसे कर रहे थे।

सन् १०९७ में नारवेमें जोसेफ सरिंगटनकी १६० वर्षकी अवस्थामें मृत्यु हुई। उसने कई बार विवाह किये। उनकी मृत्युके समय सबसे बड़ा लड़का १०३ वर्ष का और सबसे छोटा पुत्र ९ वर्ष का था।

नारवेकी सामुद्रिक जातिमें ड्रेकनवर्ग ने १४३ वर्ष-की अवस्था पर देह-त्याग किया। ६८ वर्षकी अवस्था पर उसको अरब लोगों ने क़ैद कर लिया और उसको ८३ वर्षकी अवस्था तक अपना गुलाम बनाये रक्खा। ९० वर्षकी अवस्था तक उसने अपने सामुद्रिक जीवनका भोग किया। १११ वर्षमें उसने विवाह किया। क्रमर चिलकने ड्रेकनवर्गकी १३९ वर्षको अवस्था पर चित्र खींचा उसमें वह एक बलवान और सामुद्रिक मनुष्य जैसा मालूम होता है। १४६

वर्षकी अवस्था पर उसने अधिक मदिरापानके कारण देह-त्याग दिया।

रूसके अमंखसिया नामक एक कोणको क्यों सबसे अधिक बूढ़े मनुष्योंका स्थान बोलते हैं क्योंकि वहाँ बहुतसे अधिक अवस्था वाले मनुष्योंका वर्णन मिलता है। खुपार-खुट नामक एक मनुष्यकी सन् १६३५ ई० में १५५ वर्ष-की अवस्था पर मृत्यु हुई थी। वह संसारका सबसे अधिक अवस्था वाला मनुष्य प्रसिद्ध है। उसके बाद १५० वर्षको अवस्था वाला अदल्यबा मजकवा नामक मनुष्य उसी स्थानका रहने वाला प्रसिद्ध है। यह मनुष्य समाचार-पत्र अधिक मात्रामें पढ़ा करता था और उसकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी।

वैज्ञानिक उकरेनियन एकेडेमीने उसी विषय पर बहुत खोजकी और १६३७ ई० के अन्तमें उसने अपने थोड़ेसे सदस्योंके एक समूहको सुखमी स्थान पर भेजा। वहाँ पर उनको १० दिनके अन्दर ही १०७ से १३५ वर्ष तककी अवस्थाके १२ मनुष्य मिल गये। यह सबके सब मनुष्य बहुत बलवान और पूर्ण युवक मालूम होते थे। उन सबने अपने अतिथियोंकी बहुत सेवा और सत्कार किया। उनमेंसे बहुतसे तो अपने अतिथियोंके लिये फल लानेके लिये पेड़ों पर चढ़ गये।

अब इन सब मनुष्योंके वर्णनके बाद इस प्रश्नका हम उत्तर देना चाहेंगे कि मनुष्य अधिक मात्रामें एक शताब्दी अवस्थाको पूर्ण नहीं कर पाते इसका क्या मुख्य कारण है ?

सबसे मुख्य कारण तो सामाजिक विषयोंका हैं। उसके बाद शरीरके लिये अच्छा उपयोगी खाना न मिलना, तीसरे, ठंडमें शरीरको अधिक समय तक कष्ट देना, ऐसे मकानोंमें रहना जहाँ गर्मी और अधिक मनुष्योंके एक मकानमें रहनेसे खुली स्वच्छ वायुका न मिलना, दैनिक कार्य-क्रममें अधिक मात्रामें परिश्रम करना; और अन्तमें सब संसारमें फैली हुई ग़रीबीकी दशा, बेकारीका रोग, यह कुछ बातें ऐसी हैं जो मनुष्यको तन-मनसे दुखदायी हैं और इन्हींके कारण मनुष्य बहुत जल्द मृत्युके मुखमें पड़ जाता है।

उसके बाद शारीरिक भागोंका पुराना पड़ जाना और फिर अपने कार्यको पूर्णरूपसे ठीक-ठीक न करना। यह जन्तु-शास्त्रकी बहुत टेढ़ी और कठिन समस्या है। प्रोफेसर बोगमोल्तज इसके विषयमें यह कहते हैं कि आम तौर पर कहीं जाने वाली बातकि बूढ़े मनुष्यका शरीर सूख जाता है बिलकुल ठीक है। यह वैज्ञानिक दृष्टि-कोणसे भी ठीक है मनुष्यके शरीरमें पानीका भाग निम्नलिखित होता है।

एक मासके बच्चेमें ६७ प्रति सैकड़ा पानी ही पानी शरीरमें होता है। युवा लड़केमें ७० प्रतिसैकड़ा और उससे आगे युवा पुरुषके ६४·५ प्रति सैकड़ा पानी होता है। इस कारण बुड्ढे मनुष्यके शरीरमें पानीकी मात्रा ठीक करना कठिन और अनुचित होगा। पुराने शरीरमें पानीकी मात्रामें कमी इस कारणसे होती है कि पानी उसके शारीरिक भाग जैसे नसें, खाल, आन्तरिक इन्द्रियाँ और माँसके पेशे ग्रहण करनेमें बहुत अयोग्य हो जाते हैं। इसलिये अधिक अवस्थाका पानी कम कर देना तो एक उसका प्रभाव है न कि उसका एक कारण।

श्री महोदय बोगमोल्तज़ साहबने बुड्ढे मनुष्यको युवक बनानेमें दो मुख्य बातों पर प्रकाश डाला है। एक तो मनुष्यके विषय-कामना-इन्द्रियोंके ग्लान्डसको युवक जानवरोंकी उन्हीं इन्द्रियोंसे तबदील कर देना। इसी प्रकार और भी दूसरे शारीरिक भागोंको पशुओंके भागसे तबदील करना। इस प्रकार बुड्ढे मनुष्यके शरीरके भाग फिरसे पुष्ट और युवक अवस्था जैसे बन जाते हैं। इससे पानीकी मात्रा भी युवक अवस्थाके समान हो जाती है क्योंकि उन शारीरिक भागोंको कार्य-क्रम कमज़ोर हो गया था और इसलिये नये भागोंके आ जानेसे कार्य-क्रम फिर ठीक हो जाता है। दूसरा प्रभाव प्रोफेसर साहबने रक्तके ऊपर किया है। बुड्ढे मनुष्यके शरीरमें रक्तको इन्जेकशन द्वारा वह बार-बार पहुँचाते हैं। उससे मनुष्य यौवन जैसा आनन्द मालूम करने लगता है।

उसके उपरान्त युवक पुरुष बुड्ढा होनेसे और ऐसे अपनी अवस्था बढ़ाने में बहुत आसानीके साथ उत्तीर्णता पा सकता है। प्रोफेसर महोदय कहते हैं कि सबसे मुख्य बात कार्यशीलता है। शरीरके सब भागोंको कार्य अवश्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त किसी भागको दुरुपयोग जैसे मात्रा-

से अधिक खाना, विषय-भोग मात्रासे अधिक करना, दैनिक कार्य में मात्रासे अधिक परिश्रम करना भी अवश्य बूढ़ी अवस्थाओंको जल्द बुलाता है। परिश्रम करनेके बाद आराम करना बहुत आवश्यक है और इससे थकान रुक जाती है। किसी प्रकार कसरत और अपने पेट और इन्द्रियोंकी सफ़ाई रक्तको साफ़ और पूरी चालन अवस्थामें रखनेके लिये बहुत आवश्यक है। प्रातः और शामको उनको अवश्य करना चाहिये।

मनुष्यको सात या आठ घण्टे २४ घंटे के अन्दर अवश्य सो लेना चाहिये। मनुष्यके नाड़ीमंडलको मात्रासे अधिक परिश्रम करते थक जाना बहुत हानिकारक होता है। सिगरेट या किसी प्रकारका तम्बाकू पीना और मदिरा सेवन करना बहुत ही हानिकारक है, क्योंकि इनसे नाड़ीमंडल पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

प्रोफेसर साहब इसके बाद यह बहुत ज़ोरके साथ कहते हैं कि उन दो प्रकारके मनुष्योंमें जिसमेंसे एक तो अपने मस्तिष्कके उपयोगसे ही बैठे-बैठे अपनी जीविका कमाते हैं और दूसरे जो समस्त दिन अपने शारीरिक परिश्रम करके अपना पेट भरते हैं ? उनके दैनिक कार्यक्रममें बिलकुल अन्तर नहीं होना चाहिये अगर वे अपना जीवन बढ़ाना चाहते हैं। मस्तिष्क उपयोगी पुरुषोंको अपने मांस पेशियों और रक्त-संचालनको बहुत आवश्यक समझना चाहिये। इसी प्रकार शारीरिक परिश्रमी मनुष्यकी इन्द्रियाँ बेकार और हानिकारक हो जावेंगी अगर वह विज्ञान, शिल्प, और शिक्षा-सम्बन्धी विषयोंमें अपना थोड़ा-बहुत समय न देगा। इसलिये अवस्थाको बढ़ानेकी सबसे कुञ्जी यह है कि शरीरके हर एक भागको पूरा-पूरा और बराबर कार्य करता रहना चाहिये।

इसके ऊपरान्त जन्तु-शास्त्र और मनुष्य शारीरिक शास्त्र के प्रयोगात्मक केन्द्र इस बात पर बहुत ज़ोर देता है कि बीमारियाँ भी मनुष्यको बहुत जल्द बुड्ढा बना देती हैं। वास्तवमें मनुष्यमें उन बीमारियोंको रोकनेकी शक्ति होती है, फिर भी किसी-किसी अवसर पर बाहरसे भी सहायता ले लेनी चाहिए।

प्रोफेसर साहबने अपने एक शिष्यके साथ इन रोगों पर यह खोज करके बतलाया था कि सबसे मुख्य तो रक्तके इञ्जेक्शन मनुष्यके शरीरके लिये लाभदायक हैं और फिर एक मुख्य प्रकारका रस जो एक औषधिके समान कार्य करता है। यह रस इन्द्रियों और शारीरिक भागोंको पुष्ट बनानेमें बहुत मदद करता है।

इन सब बातोंको पाठकोंको बहुत गौरसे पढ़ना और विचार करना चाहिये और फिर उनको अपने दैनिक कार्यक्रममें भी लाना चाहिए।

ज्वरका वैज्ञानिक स्वरूप

(लेखक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, आयुर्वेदालंकार)

परमात्मा ने साधारण आत्म-रक्षाके साधन सभीको प्रदान कर रक्खे हैं। दृश्य शत्रुओंसे तो हम अपनी बुद्धि और शक्ति-अनुसार निपट ही लेते हैं, परन्तु अदृश्य और सूक्ष्म रोगजनक कारणोंसे बचावके उपाय भी हैं। स्थूल रिपुओंसे लड़नेके लिए स्थूल उपाय हैं तो सूक्ष्मके प्रति सूक्ष्म हैं और यह उपाय रासायनिक हैं।

विज्ञानने अभी इतनी उन्नति नहीं की कि इन रासायनिक क्रियाओंका ज्ञान प्राप्त करे। परन्तु शरीरमें वाह्य या आन्तरिक विषोंके प्रति जो क्रियायें होती हैं उनका काम लायक ज्ञान तो हुआ ही है। इन क्रियाओंको हम 'विषके प्रति रासायनिक क्रिया' या संक्षेपमें 'प्रतिशक्ति' कहेंगे।

रसायन-विज्ञानके अध्ययन करने वाले जानते हैं कि रासायनिक क्रियाओंमें ऊष्मा या गर्मी उत्पन्न होती है और यह क्रियायें गर्मीसे अधिक हो जाती हैं और हम यह जान ही गये कि 'प्रतिशक्ति' एक रासायनिक क्रिया है। अतः इसमें गर्मीका उत्पन्न होना अनिवार्य है। परन्तु यह भी हो सकता है कि यह गर्मी 'प्रतिशक्ति' को पर्याप्त मात्रामें पैदा करनेके लिए काफ़ी न हो; तब केमिस्टकी तरह शरीर भी अपनी परख-नलीको गरम करता है। स्पष्ट है कि यह काम तभी हो सकता है जब कि

(क) शरीरके पास जलनेका सामान हो।

(ख) उस सामानको जलाने वाली कोई गैस हो।

और (ग) इस क्रियाको नियंत्रित करनेका प्रबन्ध हो।

इन तीनों बातोंको विस्तारमें तो हम आगे देखेंगे लेकिन यहाँ पाठकगण बिना प्रमाण माँगे ही विश्वास करते हुए इतना समझ लें कि

१—जलनेके लिए शरीरके पास भोजन या दूसरे अभावमें मोम पर्याप्त है। यही कारण है कि ज्वरयुक्त रोगोंमें रोगी क्षीण हो जाता है।

२—इस ईंधनको जलानेके लिए ओषजन (O_2) फेफड़ों द्वारा सामग्री और रक्तके द्वारा मांस तक पहुँचती है। इसीलिए तो ज्वरमें हृदय और फेफड़ोंकी गतियाँ तेज़ हो जाती हैं।

३—इन जलने और जलानेकी क्रियाओंको नियन्त्रित करनेके लिए मस्तिष्कमें तापनियन्त्रक केन्द्र है।

सारांश यह है कि

(क) रासायनिक क्रियामें जो उष्णता उत्पन्न होती है, इसके अतिरिक्त

(ख) शरीरमें अपने तौर पर भी गर्मी उत्पन्न करनेका प्रबन्ध है।

चाहे यह गर्मी किसी प्रकार पैदा हो, इससे शरीरका तापमान बढ़ जाता है और इस ऊष्माकी उत्पत्ति-वृद्धिको 'ज्वर' कहते हैं।

ताप या ऊष्माकी उत्पत्ति

ऊष्मा या गर्मी जीवित शरीरका धर्म है। कोई भी जीवित पदार्थ ऊष्मा-रहित नहीं हो सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि 'अग्नि' जीवनका सूचक है, क्योंकि ऐसा सम्भव नहीं कि किसी पदार्थमें जीवन हो और ऊष्मा या अग्नि न हो। इसीलिए इसे 'जीवनकी अग्नि' भी कहते हैं। प्राणीको जीनेके लिए प्राण चाहिये और अन्न ही प्राणीका प्राण है (अन्नं वै प्राणः)। चाहे प्राणी एक सैलका ही क्यों न हो वह भी भोजनकी खोजमें प्रवृत्त रहता है क्योंकि यह तो हमारे लिये एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। प्राणीमें इस भोजनके जानेसे ही ऊष्माकी उत्पत्ति होती है क्योंकि जब पदार्थ अन्दर जायगा तो उसका दमन अवश्य होगा क्योंकि पचनके बिना हमारा आहार रसरूप होकर हमारे शरीरका पोषण नहीं कर सकेगा। इसी तरह जब तक भोजनका परिपाक न हो तब तक प्राण नहीं और इस परिपाक या पचनका परिणाम ऊष्मा है। ऊष्मा और पचन दोनों ही समानार्थक हैं।

ऊष्माकी उत्पत्ति उन अंगोंमें मुख्यतः होती है जिन अंगोंमें रासायनिक क्रियायें बहुत होती हैं। रासायनिक क्रियायें प्रायः पचनके परिणामरूपमें होती हैं। शरीरमें पचनका मुख्य स्थान पाचक ग्रन्थियाँ (आमाशय, पक्वाशय, यकृत अग्न्याशय आदि) तथा मांसपेशियाँ हैं। ये ग्रन्थियाँ शरीरके मध्य प्रदेशमें स्थित हैं। इसलिए प्राचीन ग्रन्थोंमें मध्य प्रदेशको ही पित्तका अधिष्ठान माना गया है। माधव निदानमें ज्वरकी सम्प्राप्तिमें लिखा है।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यु रसानुगाः।

अर्थात् आमाशय या पक्वाशय आदि जहाँ अन्नका परिपाक होता है वहाँ अग्निके मुख्य स्थान हैं। यहाँसे ही अग्नि फैलकर जब हमारे शरीरमें फैल जाती है तो उसे 'ज्वर' कह देते हैं।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसी मध्य प्रदेशमें ही हमारे शरीरकी ऊष्माकी उत्पति होती है, किन्तु शरीरके अन्य अवयव भी इस ऊष्माकी उत्पत्तिमें भाग लेते हैं क्योंकि जब आहार इस रूपमें परिणत होकर अन्य अवयवोंमें जाता है और अन्य अवयव जीवित रहनेके लिए इसका ग्रहण करते हैं और इसे अवयवोंमें परिणत करते हैं तो इसके परिणाम स्वरूप भी शरीरमें ऊष्माकी उत्पति होती है।

आमाशय आदिमें होने वाले आहारके पाकको 'अन्न पाक' कहते हैं और अन्यान्य अवयवोंमें होने वाले पाकको 'धातुपाक' कहते हैं। इस प्रकार पाककी दृष्टिमें तो इन दोनों पाकोंमें कोई भेद नहीं है लेकिन वैसे इनमें थोड़ा भेद है अवश्य। यह भी ठीक है कि धातुपाककी अपेक्षा अन्नपाकमें अधिक ऊष्माकी उत्पत्ति होती है।

इनके अतिरिक्त जब हम कोई गति करते हैं तो इसमें मांसपेशियोंकी रक्त-वाहिनियोंको उत्तेजना मिलनेसे वे विस्तृत हो जाती हैं और उनमें रक्त ज्यादा आता है जिसमें वे अधिक कार्य करती हैं। इसमें भी गर्मी पैदा होती है।

इस प्रकार वैसे तो शरीरके प्रत्येक अवयवमें ऊष्मा की उत्पत्ति होती है किन्तु मध्य प्रदेशमें स्थित पाचक ग्रन्थियाँ ऊष्माके प्रधान स्थान हैं और इस पचनके कार्यको शरीर-

की पाचकाग्नि करती है इसलिए यह पित्तका कार्य है। "न पित्ताद् व्यतिरिक्तोऽग्निः।" अर्थात् पचन पित्तका ही प्रतीक है।

ऊष्माका विनाश

ऊष्माका विनाश या तापनाश शरीरके अधिकतर उन स्थानोंमें होता है जिन स्थानोंके द्वारा शरीरमें श्वास और मलमूत्रद्रव आदि पदार्थ बाहर निकलते हैं। वे निकलते हुए शरीरमें गर्मी भी लेकर जाते हैं जिसमें त्वचाका तापमान कुछ अंशोंमें घटता है। त्वचा-द्वारा स्वेद, अँतड़ी द्वारा मल तथा श्वास-द्वारा जल-वाष्प गरम होकर निकलते हैं। इसीलिए यह सब स्थान तापनाशक हैं।

इनके अतिरिक्त त्वचा भी तापनाशमें मुख्य स्थान लेती है। त्वचामें उत्पन्न स्वेद तो शरीरका ताप बाहर लाता ही है ? साथ-साथ जब यह शरीरसे उड़ता है तो शरीरकी गर्मीको घटानेमें दोहरा कार्य करता है। जिस प्रकार हम किसी गरम चीज़को छूते हैं तो उसकी गर्मी हमारेमें आती है ठीक इसी प्रकार त्वचा भी ठण्डी वस्तुओं से छूती रहती है जिसमें शरीरकी गर्मी उन चीज़ोंमें चली जाती है अर्थात् नष्ट होती रहती है।

इस प्रकार तापोत्पत्तिका मुख्य साधन पाचक ग्रन्थियाँ व मांसपेशियाँ तथा तापनाशका मुख्य साधन त्वचा है।

ऊष्माका नियन्त्रण

शरीरके ताप-परिमाण नियत रखनेके लिए शरीरमें एक स्वभाविक वातिक शक्ति है जो इसका नियन्त्रण करती है। इसका केन्द्र लघु मस्तिष्कमें है जिसे 'तापनियन्त्रक केन्द्र' कहते हैं। इस शक्तिका कार्य मुख्यतया त्वचाके द्वारा होता है। साधारणतया लोग त्वचाको साधारणसी चीज़ समझते हैं। लेकिन त्वचा न हो तो अन्धा भी कार्य नहीं कर सकता। त्वचाका मस्तिष्क पर और मस्तिष्कका त्वचा पर प्रभाव है। त्वचाके द्वारा सर्दी या गर्मीका अनुभव होने पर इसकी सूचना मस्तिष्कको मिलती है। प्रान्तस्थ नाड़ियाँ द्वारा और उनके अनुसार रक्त-वाहिनियाँ फैल व सिकुड़ जाती हैं।

ज्वरकी सम्प्राप्ति

ज्वरमें मुख्यतया दो विकार होते हैं। (क) तापमान वृद्धि (२) मलोंकी निकासीका कम होना।

इन विकारोंको समझनेके लिए हम रोजिनका उदाहरण ले सकते हैं कि कोयला जले पर राख न निकले। वही अवस्था यहाँ होती है कि विष-पदार्थोंके पचनके लिए शरीरमें पाककी प्रक्रिया तीव्र हो आनेमें ऊष्माकी उत्पत्ति भी अधिक होती है, लेकिन उसके अनुपातमें तापनाश या heat loss कम हो जाता है। 'ज्वरो पित्ताहतो नास्ति' अर्थात् जब इस प्रकार शरीरमें 'पित्तकी प्रक्रिया' बढ़ जाती है तो ज्वर हो जाता है।

वस्तुतः ज्वर रोग नहीं है; यह केवल किसी गुप्त रोग का बाह्य निर्देश है।

पचनमें वृद्धिके परिणामस्वरूप ही शरीरमें आक्सीजनका ख़र्च बढ़ जाता है और कार्बन डाइ-ऑक्साइड ज़्यादा पैदा होती है। इसलिए ज्वरके रोगीकी श्वास तीव्र हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रोटीन आदिके अधिक पचनके के कारण मूत्रमें यूरिया आदि पदार्थ भी अधिक मात्रामें निकलते हैं।

ऊष्मा-विनाशका प्रभाव यह है कि ज्वरके रोगीकी त्वचाकी रक्त-वाहिनियोंके संकुचित होनेसे त्वचाका रंग फीका पड़ जाता है और रोगीको सर्दी व कम्पनका अनुभव होता है। लेकिन शरीरके अन्दरका ताप-परिमाण पर्याप्त उच्च होता है। सुश्रुतमें लिखा है—

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे च सज्वरो व्यपदिश्यते ॥

अर्थात् संताप या अग्निका अवरोध हो जाता है और वह अन्दर ही रहता है और बाहर त्वचाकी रक्त-वाहिनियां के संकुचित होनेके कारण स्वेद न आनेसे ऊष्माका विनाश नहीं होता।

ज्वरका मूल कारण

ज्वरका मूल कारण शरीरमें कोई विष ही होता है। यह विष एक तो कीटाणुओंके कारण उत्पन्न हो सकता है। अतः जितने भी कीटाणुओंके कारण संक्रामक ज्वर हैं उनमें ज्वर मिलता है। इसी प्रकार विष शरीरमें ही मिथ्याहार विहारसे उत्पन्न हो जा सकता है। इसके सिवाय यदि तापनियन्त्रक केन्द्र पर बोझ आ पड़े तो भी ज्वर हो जाता है जैसे अंशुघातमें। मुख्यतः ज्वरका कारण विष-संचार है चाहे वह आभ्यन्त हो यामें लिखा है—

'देहिनं नहि निर्दोषं ज्वरः'

प्राचीन लोग कहा करते थे कि शरीरमें जब तक कोई दोष या मल न हो तो ज्वर नहीं हो सकता। लेकिन आज कल कहते हैं कि बिना जीवाणुके रोग नहीं हो सकता। वस्तुतः बात एक ही है। इस प्रकार उष्ण तीक्ष्ण-गुण (विष आदि) पित्त प्रकोपक पदार्थोंके कारणोंमें पित्त-प्रकोप हो 'ज्वर' हो जाता है।

ज्वरके लाभ

शरीरमें स्थित विषको बाहर करनेकी क्रियाका नाम ज्वर है। शरीरमें इस विषके प्रतिविरोध की क्रिया बड़ी तीव्रतासे होती हैं। मानव निदानमें लिखा है—

'दक्षापमान संक्रुद्धा रुद्रनिश्वास संभवः'

अर्थात् जिस प्रकार कोई अपमानका बदला लेनेके लिए उतारू हो जाता है उसी तरह शरीरमें प्रतिक्रिया होती है। इसे प्रतिक्रिया इसलिये कहते हैं क्योंकि शरीरकी प्रसुप्त शक्तियाँ प्रतिकूलावस्थामें उत्तेजना मिलनेसे जागृत हो जाती हैं। शरीरके बाहरकी अवस्थाओंके विरोधमें प्रतिक्रिया शरीरका धर्म है।

अब प्रश्न होता है कि यह तो माना कि 'ज्वर'में रासायनिक क्रिया या प्रतिशक्तिसे शरीरमें ऐसे नवीन रासायनिक पदार्थ या प्रति-पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जो शरीरस्थ विषका प्रशमन करते हैं लेकिन इस अधिक गर्मी या ज्वरका क्या लाभ है?

एक बात तो स्पष्ट ही है। प्रति पदार्थकी उत्पत्तिमें (रासायनिक क्रिया होनेके कारण) गर्मीका पैदा होना अनिवार्य है और उस क्रिया को उत्तेजित करनेके लिये शरीर स्वयं गर्मी उत्पन्न करनेका प्रयत्न करता है। उत्तरको स्पष्ट करनेके लिये यह उदाहरण उत्तम रहेगा कि यदि शत्रुको रासायनिक पदार्थसे मारनेके साथ-साथ उसे रासायनिक क्रियामें उत्पन्न गर्मीसे झुलस भी सकें तो क्या यह लाभदायक नहीं कि एक ही चोटमें हम शत्रुको दोहरी मार मारते हैं। यह गर्मी कृमियोंको मूर्छित कर देती है, ठीक उसी प्रकार जैसे हम धूपमें कभी-कभी हो जाते हैं (विशेषतः लू लगने पर) उस समय हमें कोई लूट भी ले तो हमें पता नहीं चलता और हम अपना बचाव भी नहीं कर सकते। ऐसे ही शरीर उस गर्मीसे कृमियोंको निस्तेज और मूर्छित कर देते हैं और उसी अवस्थामें उन पर अपने प्रतिपदार्थोंमें आक्रमण करता है। मूर्छित करनेका बड़ा भारी लाभ यह है कि कृमियोंके शरीरमें हमारे प्रतिपदार्थोंको नष्ट करने वाले पदार्थ उत्पन्न नहीं होने पाते।

परमात्माकी कितनी अपार दया है कि जब हमारे ऊपर दोष-रूपी या कृमि-रूपी शत्रुका आक्रमण होता है तो हमें 'ज्वर' हो जाता है। यदि 'विष' के प्रति यह 'प्रतिक्रिया' या 'ज्वर' न हो तो निम्न कारण समझने चाहिए।

१—आक्रमण इतना साधारण है कि शरीरको अपनी भरसक शक्ति लगानेकी आवश्यकता ही नहीं। प्रतिदिनकी साधारण क्रियायें भी कृमियोंको मारनेमें समर्थ हैं।

२—आक्रमण इतना सहसा और तीव्र हुआ है कि शरीरमें प्रतिशक्ति उत्पन्न करने की न तो शक्ति ही है और न समय।

३—शरीरमें ज्वर उत्पन्न करनेकी शक्ति ही नहीं जैसे वृद्धावस्थामें या पहले ही किसी रोगसे ग्रसित होनेके कारण निर्बल होनेसे।

इन नं० २ और ३ अवस्थाओंमें रोगी बच नहीं सकता। मृत्यु निश्चित है। यही कारण है कि बलवान् और युवकोंको जब रोग होता है तो ज्वर पर्याप्त होता है। अर्थात् ज्वरकी मात्रा

(क) रोगीको शक्ति पर निर्भर है—जितनी शक्ति अधिक होगी, ज्वर भी उतना ही अधिक होगा।

(ख) कीटाणुओंके स्वभाव पर निर्भर है। कीटाणुओंको मारनेके लिये उतनी गर्मी पैदा होती है जिसमें वे सुगमतासे मर सकते हैं। यही कारण है कि कीटाणुओंके स्वभावके कारण भिन्न-भिन्न रोगोंमें ज्वरका माप भी भिन्न-भिन्न होता है।

इस युक्तिसे स्पष्ट है कि ज्वर शरीरके लिए विष-संहारकी दृष्टिसे लाभदायक है। परन्तु यह भी न भूलना चाहिये कि शरीर भी कृमियोंकी नाईं जीवित पदार्थों (प्रोटोप्लाज्म) का बना है। इसलिए यह भी अधिक गर्मीमें जल सकता है। शरीर यत्न तो यह करता है कि गर्मी कहीं इतनी पैदा न हो कि तन्तु भी अपनी गर्मीसे आपही जल जाय परन्तु कभी-कभी यह अवस्था भी पहुँच ही जाती है। यह केवल अत्यधिक उष्णता (हाइ-

पर-पाइक्सिया) की अवस्था है जिसे हम हानिकारक कह सकते हैं।

अतः चिकित्सकका कर्तव्य है कि ज्वरके इस वैज्ञानिक स्वरूपको ही ध्यानमें रखते हुए ज्वरनाशक औषधियों या जल-चिकित्सासे ज्वरको घटानेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके विपरीत अधिक दोषयुक्त रोगोंमें जब कि ज्वर लाभ-दायक है और शरीरमें इसे उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं तो इसे बढ़ानेका भी यत्न करना चाहिये।

ताज़े समाचार

तोपोंको ठंडा रखना

मशीनगनोंमेंसे जब गोला दाग़ा जाता है तो ये गरम हो उठती हैं। अभी हालमें एक विधि निकाली गयी है जिससे यह तोपें बराबर ठंडी रक्खी जा सकती हैं। इस विधिका विशेष उपयोग हवाई जहाज़ोंमें गोला-मारी करनेमें है, और इस यूरोपीय युद्धमें वह लाभ-प्रद सिद्ध होगी। तोपोंको ठंडा करनेके लिये "शुष्क बरफ" अर्थात् ठोस कार्बन डाइ-ऑक्साइडका उपयोग किया जाता है।

रेशमका प्रतिद्वन्द्वी

अभी एक नये रेज़िनका पता चला है जो नमक, कोयला, चूना और वायुका मिश्रण है। इसका नाम है "पॉलीबिनाइल एमोटाज़" इसमें असली रेशम जैसी चमक है, और इससे बनाये गये तन्तुओंमें असली रेशमके तन्तुओंसे अधिक स्थितिस्थापकता होती है, और ये पानी और आग असली रेशमकी अपेक्षा अधिक सह सकते हैं।

यदि यह रेज़िन अधिक व्यापारिक मात्रामें बनाया जा सका, तो वस्त्रोंके अतिरिक्त अन्य कार्योंमें भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इसमें वाटर-प्रूफ कपड़े (जल-अभेद्य वस्त्र), मछली पकड़नेके जाल, अदाह्य वस्त्र, बिजलीके सामान आदि बनाये जा सकते हैं। विशेष बात तो यह है कि जिन वस्तुओंसे यह रेज़िन बनता है, वह कच्चा माल सस्ता और बहुतायतसे प्राप्त होता है।

१० वर्षोंमें बिजलीकी प्रगति

सन् १९३९ में समस्त संसारमें ४६०,०००० लाख किलोवाट-पॉवरके लगभग बिजली पैदाकी गयी। १९२९ में २८००००० लाख कि० वा० बिजली बनी थी। प्रति मनुष्यके हिसाबसे वह कौनसा देश है जिसमें सबसे अधिक बिजली बनती हो? स्पष्ट उत्तर है—स्विट्ज़रलैण्ड, इस देशमें प्रति मनुष्य १६७० किलो वा० पॉ० बिजली बनी। अन्य देशोंमें यह संख्या इस प्रकार है—संयुक्तराज्य अमरीका--११४०, जर्मनी--८१०, बृटेन--६१०। भारतवर्ष-की संख्या कठिनतासे ४०-५० होगी।

गत दस वर्षोंमें लगभग सभी देशोंमें बिजलीकी उप-जमें वृद्धि हुई, पर संयुक्तराज्य अमरीकामें सबसे अधिक। इस वर्ष पहले १२००००० लाख कि० वा० पा० थी, गत वर्ष १४८०००० लाख हुई। जर्मनीमें यह वृद्धि ३०६००० लाखमें ५५२००० लाख हुई।

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरखप्रसाद आदि]

अंत्रवृद्धि—आँत उतरनेके रोगको अंत्रवृद्धि या हर्निया (hernia) कहते हैं। पेटके सामने वाली दीवार में तीन स्वभावतः निर्बल स्थान हैं और इन्हींमेंसे किसी एक स्थान द्वारा अँतड़ी निकल पड़ती है। ये तीन स्थान हैं (१) नाभि, (२) मर्दोंमें वह स्थान जहाँसे अंडधारक रज्जु पेटके बाहर निकलती है (देखो अंडधारक रज्जु और वहाँ दिया गया चित्र) और स्त्रियोंमें अंडधारक रज्जुके बदले गर्भाशयकी बंधनीके निकलनेका स्थान; और (३) वह स्थान जहाँसे रक्तवाहिनियाँ पेटसे निकलकर जाँघमें जाती है।

कभी-कभी जब अपेंडिसाइटिज़ (उपांत्रप्रदाह) आदि किसी रोगके लिए पेट चीरा जाता है तो क्षतचिन्ह (घावके भरनेका स्थान) कुछ निर्बल रह जाता है। इसे तोड़ कर भी आँत बाहर निकल आ सकती है।

ऊपर बतलाये गये पेटके तीन निर्बल स्थान पेटकी सामने वाली दीवारमें हैं। पेटकी पीछे वाली दीवारमें भी कुछ निर्बल स्थान हैं जिन्हें तोड़ कर अँतड़ी पीछे चली जा सकती है, परन्तु पीठकी हड्डियोंके कारण अंत्रवृद्धि रहने पर भी वहाँ टटोलने पर कुछ पता नहीं चलेगा। इसलिए ऐसे अंत्रवृद्धिको अंतरंग अंत्रवृद्धि (internal hernia) कहते हैं।

ऊपर कहा गया है कि अँतड़ी पेट 'फाड़' कर बाहर निकल पड़ती है; परंतु स्मरण रखना चाहिये कि पेटकी दीवारकी भीतरी परत ही फटती है। पेटकी बाहरी परत और त्वचा नहीं फटती। इसलिये अँतड़ी खुद आँखसे दिखलाई नहीं पड़ती। केवल एक गुलथी या गांठ दिखलाई पड़ती है जो पेटकी बाहरी परतके नीचे अँतड़ीके आ जाने से बनती है।

पेटकी दीवारपर भीतरकी ओर एक पतली झिल्ली होती है जिसे उदरक कला (पेरिटोनियम) कहते हैं। यह रबड़की तरह लचीली होती है। जब अँतड़ी पेटके बाहर निकलती है तो इसपर उदरक-कलाकी खोल चढ़ी रहती है। यह कला भीतरकी ओर चिकनी होती है। इसलिये यदि उचित उपचार शीघ्र किया जाय तो अँतड़ी फिर आसानीसे पेटके भीतर फिसल जा सकती है।

परंतु उदरक-कला बाहरसे खुरदरी होती है और अन्य अंगोंमें शीघ्र चिपक जाती है। इसलिए हर्नियाके बाद जब अँतड़ी अपनी पुरानी जगहपर चली जाती है तब अकसर उदरक-कला फँसी हो रह जाती है और इसकी थैली-सी बनी रह जाती है। यही कारण है कि एक बार हर्निया हो जानेपर बार-बार हर्निया होनेका डर रहता है।

लक्षण—जब प्रौढ़ व्यक्तिमें हर्निया पहली बार होती है तो यह साधारणतः किसी काममें बहुत बल लगानेके कारण होती है, विशेषकर जब ऐसा करनेमें पेटकी मांस-पेशियाँ कस जाती हैं और साँस रोक लिया जाता है, उदाहरणतः जब कोई भारी बोझ उठाया जाता है। उस व्यक्तिको तब एकाएक ऊरुसंधिमें पीड़ा जान पड़ती है और उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई वस्तु फट गई हो। उसे अकसर मिचली आती है; वह बेहोश हो जा सकता है या वमन कर सकता है। तबीयत कुछ ठीक होनेपर उसे पता चलता है कि ऊरुसंधिमें (चित्र देखो) गुलथी या गांठ सी

वंक्षणीय अंत्रवृद्धि।

इस चित्रमें गुलथी, जो तीरसे दिखलाई गई है, बहुत छोटी बनी है। ऐसी छोटी गुलथीको अकसर ब्युबोनोसील (bubonocele) कहते हैं। साधारणतः गुलथी बहुत बड़ी होती है। जांघिक अंत्रवृद्धिमें गुलथी और नीचे बनती है।

उभर आई है जो दबानेसे दर्द करती है और कड़ी होती है। रोगी बिस्तरपर पैर सिकोड़कर लेटना चाहता है। अकसर कुछ घंटों में गुलथी मिट जाती है और रोगी अच्छा हो जाता है, परंतु ऐसा व्यक्ति पीछे जब कभी किसी काममें अधिक बल लगाता है तो रोग लौट आता है। प्रत्येक बार रोगके लौटनेपर गुलथी बड़ी बनती है और तब एक बार ऐसा होता है कि अँतड़ी अपने आप ही भीतर नहीं लौटती, परंतु हाथसे धीरे-धीरे मालिश करनेपर और पेटकी ओर धीरेसे दबाकर हाथ बढ़ानेपर अकसर इस अवस्थामें भी गुलथी मिट जाती है। जब गुलथीका अंतिम अंश पेटके भीतर घुसता है तो अकसर हलकी गुड़-गुड़ाहट भी सुनाई पड़ती है।

ऊपर कहा गया है कि एक बार हर्निया हो जानेसे दोबारा हर्निया होनेका डर अधिक रहता है। कभी-कभी

तो यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि खाँसनेसे या कोष्ठ-बद्धता (कब्ज़) रहने पर हर्निया हो जाती है।

साधारणतः अंडधारक रज्जु या गर्भाशय-बंधनीके निकलनेके मार्गसे ही अँतड़ी पेटके बाहर निकलती है। इसे वंक्षणीय अंत्रवृद्धि (inguinal hernia) कहते हैं। ऐसी हर्नियासे अकसर ऊरु-संधि तक ही अँतड़ी पहुँचती है और वहाँ गुलथी पड़ जाती है, परंतु कभी-कभी अँतड़ी और आगे चली जाती है और अंडकोशमें उतर आती है। तब इसे अंत्रांडवृद्धि (scrotal hernia) कहते हैं।

पेटसे निकल कर रक्त-वाहिनियाँ जिस मार्गसे जाँघमें जाती हैं उस मार्गसे जब अँतड़ी उतरती है तब हर्निया-को जांघिक अंत्रवृद्धि (femoral hernia) कहा जाता है। इससे भी ऊरुसंधिमें गुलथी बनती है, परन्तु वंक्षणीय अंत्रवृद्धि (inguinal hernia) की गुलथीसे यह नीचे बनती है।

नाभेय (नाभि वाली) अंत्रवृद्धि (umbilical hernia) अधिकतर छोटे बच्चोंको होती है। बच्चोंकी नाभि ऐसी हर्नियाके कारण अकसर फूलकर अखरोटके बराबर हो जाती है। नाभेय अंत्रवृद्धि अधेड़ स्त्रियोंको भी होती है, विशेषकर उनको जो कई बच्चे जन चुकी रहती हैं और बहुत मोटी हो जाती हैं। किसी भी प्रकारकी हर्नियामें यदि अपने-आप, या हाथसे सहायता देने पर, अँतड़ी अपने स्थान पर लौट न जाय तो ऐसी अंत्रवृद्धिको अमिट अंत्रवृद्धि (irreducible hernia) कहते हैं। कभी-कभी उदरक-कलाकी थैली और उसके भीतरकी अँतड़ी सूज आती है और यह डर रहता है कि ये अंग एक दूसरेसे चिपक जायँगे जिसके कारण अँतड़ी अपने स्थानमें नहीं लौट जा सकेगी। परन्तु सबसे अधिक डर इस बातका रहता है कि अँतड़ीका गला घुँट (दब) जायगा और यह दुर्घटना कभी भी हो सकती है—हर्नियाके पहली बार होने पर, या बादमें होने पर। जिस छेदसे अँतड़ी बाहर निकलती है वह कभी-कभी इतना छोटा रहता है कि अँतड़ी दब जाती है और उसका भीतरी रास्ता रुक जाता है, परन्तु इससे भी अधिक भयानक बात यह हो सकती है कि छेद इतना छोटा हो और वहाँ अँतड़ी इतनी ज़ोरसे दबे कि अँतड़ीकी दीवारका रक्त-संचार बन्द हो जाय। यदि ऐसा हो जाय और शीघ्र कोई उपाय न किया जाय तो वहाँकी अँतड़ी सड़ने लग जायगी। सड़ने पर अँतड़ी फट जाती है और सड़ी चीज़ें पेटके अन्दर बिखर जाती हैं। फिर उदरक-कला भी सड़ने लगती है और मृत्यु शीघ्र होती है।

जब अँतड़ीका गला पहली बार उपरोक्त विधिसे घुटता है तो रोगीके ऊरु-संधिमें तीव्र पीड़ा होती है। उसे मिचली
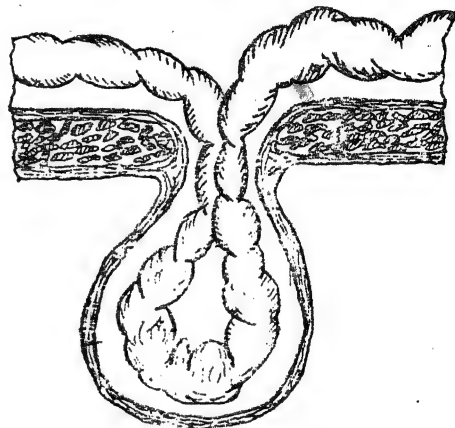
अंत्रवृद्धिकी गुलथी।
इस चित्रमें अंत्रवृद्धिकी गुलथीकी भीतरी बनावट दिखलाई गई है। उदरकी दीवारके छेदसे अँतड़ी दोहरी होकर निकल पड़ी है। देखिये, न तो उदरक कला फटी है और न त्वचा।

आती है और वह वमन कर सकता है। वमनमें केवल पेट-के भीतरकी चीज़ें निकल पड़ती हैं जो केवल ज़रा-सा पित्त मिले श्लेष्मा (mucous) से लेकर पूरा भोजन तक हो सकती हैं। रोगीको मल-त्यागकी इच्छा होती है और यदि अँतड़ीके नीचे वाले भागमें कुछ रहता है तो पाखाना हो भी जाता है। इसके बाद पाखाना होना एक दम रुक जाता है; जल या वायु भी नहीं निकल पाता। पहले सदमेके बाद खास शिकायत सिर्फ़ यही रहती है कि पेटमें बार-बार मरोड़ और दर्द होता है। यदि दर्द दूर करनेके लिये कोई उपाय न किया जाय तो वमन होने लगता है और यह बहुत बुरा लक्षण है। वमनमें पित्त मिला रहता है और वह बहुत दुर्गंधमय होता है। जैसे-जैसे समय बीतता है तैसे-तैसे वमन जल्द-जल्द होता है

और उसका रङ्ग गाढ़ा होता जाता है। पेटका दर्द धीरे-धीरे मिट जाता है। रोगीकी आँखें चमकीली और गाल धँसे रहते हैं। उसकी आकृति विशेष चिंतायुक्त-सी जान पड़ती है। नाड़ी क्षीण और शीघ्र-गामी हो जाती है। ताप-क्रम नॉर्मल (साधारण) से कम रहता है। वमन बहुत जल्द-जल्द आता है और इसमें रोगीको ज़ोर नहीं लगाना पड़ता। अधिक-अधिक मात्रामें अत्यन्त दुर्गंधमय मलके समान वस्तु मुँहसे निकलती है। मृत्यु अब बहुत निकट है।

चिकित्सा—साधारणतः हर्नियाका सबसे अच्छा इलाज यही है कि योग्य डाक्टरसे ऑपरेशन कराया जाय। परन्तु दो वर्षसे छोटे बच्चे और बूढ़े लोगोंके लिये यह नियम लागू नहीं है। कारण यह है कि छोटे बच्चोंकी हर्निया विशेष पेटीके पहननेसे अच्छा हो जा सकता है और बूढ़े लोगोंमें साधारणतः इतनी शक्ति नहीं रहती कि उनपर ऑपरेशन किया जा सके।

बच्चोंकी हर्नियाको दूर करनेमें विशेष पेटीके इस्तेमालसे बुद्धिमती माता आसानीसे सफलता प्राप्त कर सकती है। हर्नियाके लिए बनी पेटाको ट्रूस (truss) कहते हैं (चाहे यह बच्चेके लिये हो चाहे बड़ोंके लिए)। रबड़की बनी पेटी बच्चोंके लिए अच्छी होती है क्योंकि इसे आसानीसे साफ़ रक्खा जा सकता है। जब कभी ट्रूस बदलना हो तो माताको चाहिए कि हर्नियाके स्थानको अँगुलीसे ज़रा दबा रक्खे और जब दूसरी पेटी पहना दी जाय तभी अँगुली हटाई जाय। ऐसी पेटा तभी पहनायी जाती है जब अँतड़ी अपने स्थान पर लौट जाती है। पेटी पहनाये रखनेसे दुबारा वहाँ हर्निया होनेका डर कम हो जाता है। छः-सात महीने तक इसी प्रकार सावधानी रखनेसे वहाँके भागोंको इतना समय मिल जाता है कि वे मज़बूत हो जायँ और फिर वहाँ पेटी उतारने पर भी हर्निया न हो।

तरुणों और जवानोंमें यदि हर्निया होनेके थोड़े बहुत लक्षण हों, जैसे पीड़ा और गुल्थीका ज़रा-ज़रा उभड़ना, परन्तु वस्तुतः हर्निया न हो पाई हो, तो ऐसा व्यायाम करनेसे कि पेट मज़बूत हो जाय लाभ होता है। व्यायाम धीरे-धीरे बढ़ाया जाय और कभी भी बहुत अधिक बल एक-बारगी ही न लगाया जाय।

यदि किसीको हर्निया कभी हो जाय और कुछ कारणोंसे ऑपरेशन न कराया जा सके तो बराबर ट्रूस पहने रहनेसे यह लाभ होता है कि जब तक वे ट्रूस पहने रहते हैं तब तक दुबारा हर्निया होनेका डर कम रहता है। अवश्य ही ट्रूस तब पहनना चाहिये जब अँतड़ी अपने जगह पर लौट जाय, अन्यथा बाहर निकली अँतड़ी ट्रूससे और दबेगी और लाभके बदले बहुत हानि हो जानेकी संभावना रहेगी।

वंक्षणीय, जांघिक और नाभेय अंत्रवृद्धियोंके लिए अलग-अलग मेलके ट्रूस बिकते हैं। अच्छी दूकानसे और
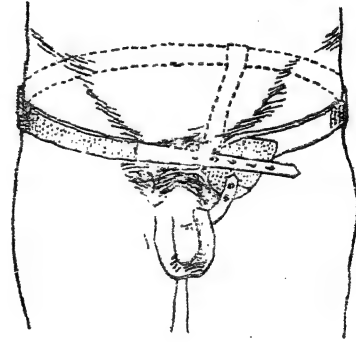
वंक्षणीय अंत्रवृद्धिके लिये पेटी।

पेटीका आकार और उसके पहनेकी रीति इस चित्रसे स्पष्ट है। पेटीमें लगी गद्दी उस स्थानको दबाये रखती है जहाँसे अँतड़ी उतर सकती है। अँतड़ीके अपने पुराने स्थान पर लौट जानेके बाद ऐसी पेटी पहननी चाहिए।

यथासंभव डाक्टरकी सलाहसे उचित आकार और नापका ट्रूस लेना चाहिए। ट्रूस साधारणतः एक कमानीदार पेटी होती है जिसमें उचित स्थान पर एक गद्दी लगी रहती है। यह गद्दी उस स्थानको दबाये रखती है जहाँसे पहले अँतड़ी उतर पड़ी थी।

बच्चोंकी नाभेय अंत्रवृद्धिके लिये विशेष पेटीके अभावमें निम्नसे भी काम चल सकता है। नाभि पर रुईकी गद्दी या चिपटे काग (cork) को कपड़ेमें लपेट कर रक्खो और इसे कपड़ेकी चौड़ी पट्टीसे बाँध रक्खो।

बराबर ट्रस पहननेसे अकसर ऐसा भी होता है कि सदा दबे रहनेके कारण वहाँकी मांस-पेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं और इसलिये जब फिर कभी वहाँ हर्निया होती है तो बहुत बड़ी और बुरी होती है। इसलिये ऑपरेशन करा लेना ही अच्छा होता है। आधुनिक सरजरी ने इतनी उन्नति की है कि कमज़ोर व्यक्तियों पर भी ऑपरेशन सफल रहता है और उनको पीड़ा नहीं होती। जवान व्यक्तियों को निस्संकोच ऑपरेशन करा लेना चाहिए, क्योंकि एक बार आँत उतरने पर पीछे फिर आँत उतरनेका हमेशा डर रहता है और यदि कभी अँतड़ी घुट गई तो प्राण जानेका भय रहता है।

यदि कभी अँतड़ीके घुटनेके लक्षण दिखलाई पड़ें तो रोगीको तुरन्त चारपाई पर लिटाना चाहिए, पैताना दस-बारह इंच सिरहानेके हिसाबसे ऊँचा रहे। रोगी या तो चित लेटे और घुटनेके नीचे कई एक तकिए रख दिये जायँ, या वह उस करवट लेटे जिधर हर्निया नहीं है और पैरोंको सिकोड़ ले। डाक्टरके बुलानेका तुरन्त प्रबन्ध किया जाय। डाक्टरके आनेमें देर होने वाली हो तो पीड़ा कम करनेके लिये निम्न दवा दे—

पोटैसियम ब्रोमाइड	३० ग्रेन
ऐसपिरिन	१० ग्रेन

हर्नियापर बरफ़से भरा रबड़का बोतल रखना चाहिए। भूलसे भी हर्नियाकी गुल्थी पर इस अभिप्रायसे ज़ोर न लगाना चाहिये कि अँतड़ी भीतर घुस जाय। ज़ोर लगानेका भयानक परिणाम हो सकता है। वस्तुतः उसके छूनेकी आवश्यकता ही नहीं है। ६० प्रतिशत व्यक्तियोंमें उपरोक्त सरल उपचारसे ही अँतड़ी अपने स्थान पर लौट जाती है। यदि वह न लौटे तो समझना चाहिये कि थैलीका मुँह ज़ोरसे अँतड़ीको दबा रहा है और ऑपरेशनकी आवश्यकता है।

अंत्रांकुर प्रदाह (diverticulitis)—अँतड़ीकी दीवार में, विशेषकर इसके उस भागकी दीवारमें जिसे बृहदंत्र कहते हैं, कभी-कभी थैलीके समान एक भाग बन आता है जिसे अंत्रांकुर (diverticulum) कहते हैं। अकसर अंत्रांकुरोंके बन जानेसे कोई असुविधा नहीं होती, परंतु कभी-कभी इनमें मल एकत्रित हो जाता है और ये सूज आते हैं। ऐसा विशेषकर तब होता है जब कोष्ठबद्धता (कब्ज़) रहती है। किसी अंत्रांकुरके सूजने पर वे ही लक्षण उत्पन्न होते हैं जो उपांत्र (appendix) के सूजनेसे होते हैं। इस प्रकार अंत्रांकुर प्रदाह-

अंत्रांकुर प्रदाह
अँतड़ीके भीतर कहीं थैलीकी तरह अंकुर उग आता है। अंकुर तीरसे सूचित किया गया है। ऐसे अंकुरके सूजनसे अंत्रांकुर प्रदाह उत्पन्न होता है।
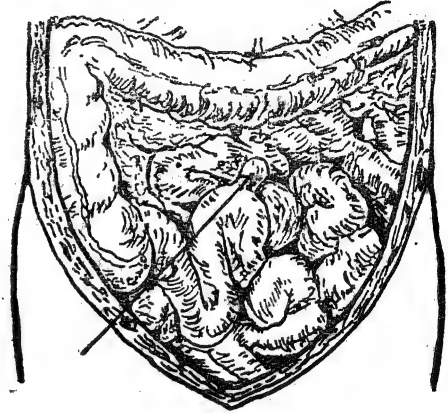
का रोग उपांत्र प्रदाह (appendicitis) से मिलता-जुलता है, परंतु साधारणतः अंत्रांकुर प्रदाह इतना तीव्र नहीं होता। तो भी कभी-कभी किसी अंत्रांकुरमें फोड़ा हो जा सकता है और तब ऑपरेशन कराने की आवश्यकता पड़ती है।

अंत्रांकुर प्रदाहका डर हो तो कोष्ठबद्धतासे बचने की चेष्टा करनी चाहिए। देखो कोष्ठबद्धता।

अंधता (blindness)—देखनेकी शक्तिके पूरा या प्रायः पूरा मिट जानेको अंधता कहते हैं। अंधता अत्यंत दुखदायी विपत्ति है। खेदकी बात तो यह है कि अधिकांश अंधे व्यक्तियोंकी दृष्टि जाती ही नहीं यदि उनकी चिकित्सा उचित समयपर की जाती। अंधता अधिकतर आँखके साधारण रोगोंका परिणाम होता है। यदि इन रोगोंकी चिकित्सा ठीकसे कराई जाती तो रोगी अंधा न होने पाता।

अंधे व्यक्तियोंमें से २० प्रतिशतसे अधिक अपने बचपनके प्रथम वर्षमें हुए रोगोंके कारण अंधे होते हैं, १० प्रतिशत एकसे दस वर्षकी आयुमें अंधे होते हैं और १० प्रतिशत दससे बीस वर्षकी आयुमें अंधे होते हैं। इस प्रकार बचपनमें आँखोंकी रक्षा की विशेष आवश्यकता रहती है और इसपर प्रत्येक माता-पिताको उचित ध्यान देना चाहिए।

अंधताके कई कारण हैं। कुछ व्यक्ति तो जन्मके अंधे होते हैं, कोई आँखके रोगोंके कारण अंधे हो जाते हैं, कुछ अन्य रोगोंके कारण जिनका प्रभाव आँखोंपर भी पड़ता है और कुछ आँखोंको आघात (चोट आदि) लगनेके कारण।

जन्मके अंधे—सौभाग्यकी बात है कि बहुत कम व्यक्ति जन्मके अन्धे होते हैं। आँखोंके सर्वांगपूर्ण न बन पानेके कारण ऐसी अंधता उत्पन्न होती है।

बहुतसे बच्चे जन्मके बाद शीघ्र ही अंधे इसलिए हो जाते हैं कि पैदा होते समय उनकी आँखोंमें योनि मार्ग से छूत लग जाती है, विशेषकर यदि माताको सूजाक नामक रोग (gonorrhoea) रहता है। इससे बच्चेकी आँखें उठ आती हैं और यदि उचित उपचार शीघ्र न किया जाय तो बच्चा अंधा हो जाता है, परंतु यदि चिकित्सा ठीकसे की जाय (देखो आँख उठना) तो बच्चेकी आँख अवश्य अच्छी हो जायगी।

नेत्रके रोग—अंधता आँख उठने, रोहे (trachoma) या ग्लॉकोमासे भी हो सकती है। इन रोगोंका वर्णन यथास्थान मिलेगा। आतशक रोग (syphlis) के कारण भी बहुतसे लोग अंधे होते हैं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि एक तिहाई अंधता इसीके कारण उत्पन्न होती है। चेचक (शीतला) के निकलने पर भी कभी-कभी अंधता आ जाती है और यही परिणाम कभी-कभी छोटी माता (खसरा) निकलनेका भी होता है। मोतियाबिन्दमें भी अंधता हो जाती है। नेत्रपटल तक रक्त पहुँचाने वाली धमनीमें रुकावट पैदा हो जानेसे अंधता एकाएक पैदा होती है और कोई चिकित्सा लाभदायक नहीं होती। मस्तिष्कमें अर्बुद (ट्यूमर) या व्रण (abcess) होनेसे, गरदनतोड़ बुखारमें, गुरदेकी बीमारी, डायाबिटीज़ (बहुमूत्र), रक्ताल्पता, और आतशक आदि रोगोंमें दृष्टिनाड़ी (optic nerve) सूख (atrophied हो) जा सकती है और इससे भी अंधता उत्पन्न हो सकती है।

पाश्चात्य देशोंमें अंधता दिनों-दिन कम होती जा रही है। इसका मुख्य कारण शिक्षा-प्रसार है। लोग आँख के रोगोंके और आतशक तथा सूजाकके भयानक परिणाम को जानते हैं और इसलिए शीघ्र उचित चिकित्सा कराते हैं। फिर, स्कूली लड़कोंकी आँखोंकी जाँच सरकारकी ओरसे हुआ करती है और आवश्यकतानुसार उनका इलाज होता है (वहाँ प्रत्येक लड़के या लड़कीको स्कूलमें पढ़ना पड़ता है)। इसके अतिरिक्त चेचकके टीकेके कारण चेचक का रोग वहाँ प्रायः मिट गया है; इसलिए चेचकसे अंधे होने वालोंकी संख्या वहाँ अब शून्यके बराबर हो गई है।

तमाखूसे अंधता—बहुत तमाखू पीनेसे या सुरती खानेसे भी अंधता उत्पन्न होती है। तमाखू शब्दके अंतर्गत यहाँ बीड़ी, सिगरेट, सिगार आदि भी समझना चाहिये। साधारणतः चालीस वर्षसे अधिक आयुमें ही अंधता आती है, चाहे वह व्यक्ति वर्षों पहलेसे तमाखू पीता और सुरती खाता रहे। तमाखूका विष शरीरमें धीरे-धीरे एकत्रित होता चलता है। यदि स्त्रियाँ भी काफ़ी मात्रा में तमाखू या सुरती का सेवन करें तो उनमें भी अंधता आ सकती है। कुछ व्यक्तियों पर तमाखू आदिका असर कम और कुछ पर अधिक होता है। साधारणतः, तमाखूजनित अंधता डेढ़ छटाँकसे कम सुरती प्रति सप्ताह खाने से या इतनी सुरती पड़े तमाखूसे कम तमाखू पीनेसे नहीं होती।

तमाखू-जनित अंधता आरंभमें पूर्ण अंधता नहीं होती। पहले केवल वस्तुएँ धुँधली दिखलाई पड़ती हैं। कुछ समय बाद आँखें इतनी खराब हो जाती हैं कि लोग पहचाने नहीं जा सकते। इतना होनेपर भी कुछ समय तक वह व्यक्ति पढ़-लिख सकता है, क्योंकि सफ़ेद काग़ज़ और काले अक्षरोंमें इतना स्पष्ट अंतर रहता है कि आँखोंके काफ़ी खराब हो जानेपर भी अक्षर दिखलाई पड़ते हैं। रोगके अधिक बढ़नेपर अक्षर भी नहीं दि-

खलाई पड़ते। इस रोगके आरंभमें ही अकसर लाल और हरे रंगोंमें भेद नहीं दिखलाई पड़ता।

तमाखू-जनित "अंधता" या दृष्टिमांद्यका पहचानना सरल है। पहले तो रोगीके अधिक सुरती या तमाखू के सेवनसे ही अंदाज़ लग जाता है। फिर, इस रोगमें दोनों आँखोंकी रोशनी प्रायः बराबर मात्रामें मिटती है। आँखोंमें कोई पीड़ा नहीं होती है। अन्य कोई रोग न हो तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अकसर इस रोगसे ग्रस्त व्यक्ति डाक्टरके यहाँ तभी जाता है जब उसकी दृष्टि प्रायः बिलकुल मिट जाती है। इस रोगमें चश्मा लगानेसे दृष्टिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

चिकित्सा—तमाखू और सुरतीका सेवन एकदम बंद कर देना चाहिए। तब दो-तीन महीनेमें दृष्टि सुधरने लगेगी। सुधार आरम्भ होनेके बाद दृष्टि साधारणतः बहुत शीघ्र ठीक हो जाती है—हाँ, यदि रोग पुराना पड़ गया हो तो सम्भवतः कुछ त्रुटि रह ही जायगी।

यदि रोगीको बहुमूत्र (डायाबिटीज़) की बीमारी भी हो तो दृष्टिमांद्य शीघ्र नहीं मिटता और अन्त तक कुछ-न-कुछ खराबी रह ही जाती है।

यदि तमाखू छोड़नेमें कठिनाई पड़े तो डाक्टरकी सलाह लेनी चाहिए। स्ट्रिकनीन (strychnine) नामक दवा (यह विष है) सूक्ष्म मात्रामें खानेसे तमाखू पीने या सुरती खानेकी इच्छा कम हो जाती है। तमाखू छोड़नेके बाद लोहा (iron) पड़े शक्तिवर्द्धक औषधों (tonics, टॉनिकोंसे) लाभ होता है।

प्रचंड ज्योतिसे अंधता—तेज रोशनीसे भी अंधता उत्पन्न हो सकती है। ग्रहणके अवसरों पर कुछ लोग सूर्य-को कोरी आँखोंसे देखनेकी मूर्खता कर बैठते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आँखके भीतरके कुछ सुकुमार अवयव नष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तिको पीछे पलक बन्द करने पर घंटों तक सूर्य-बिम्ब दिखलाई पड़ता है। यदि आँखोंको बहुत हानि न पहुँची हो तो कुछ दिनों तक आराम करनेसे (अँधेरी की गई कोठरीमें पड़े रहनेसे) आँखें ठीक हो जाती हैं।

यदि आँखोंको अधिक हानि पहुँची होगी तो वस्तुएँ स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ेंगी, । दृष्टि-क्षेत्रके बीचमें थोड़ा स्थान ऐसा रहेगा जहाँ कुछ नहीं दिखलाई पड़ेगा। ऐसी दशामें डाक्टरसे चिकित्सा करानी चाहिए। परन्तु सब कुछ करनेपर भी अकसर आँखें पहलेकी तरह ठीक नहीं हो पाती हैं।

सूर्य-ग्रहणमें जब सूर्यको देखना हो तो कालिख लगे शीशेके द्वारा देखना चाहिये, या फोटोग्राफी खींचने पर बने किसी गाढ़े नेगेटिव द्वारा देखना चाहिए, या ठंढा चश्मा (गाढ़े रंगका चश्मा) लगाकर पानीमें सूर्यके प्रतिबिम्बको देखना चाहिए।

तेज़ बिजलीकी रोशनी या बरसातमें प्राकृतिक बिजली की चमकसे भी आँखोंको हानि पहुँच सकती है। तेज प्रकाशसे, जैसे प्राकृतिक बिजलीसे, या सिनेमाकी मशीनों में तथा अन्य स्थानोंमें लगे बिजलीके आर्क लैम्प (arc lamp) की ओर देखनेसे, या अल्ट्रावॉयलेट लाइट (ultraviolet light) देने वाले लैम्पकी ओर देखनेसे, आँखोंको पहले तो चकाचौंध मालूम पड़ती है। फिर वस्तुएँ धुँधली और पीली दिखलाई पड़ती है। कुछ घंटे बाद आँखें गड़ने लगती हैं, जैसे उनमें धूल पड़ गई हो। आँखोंसे पानी निकलता है और वे लाल हो जाती हैं। पलकें सूज आती हैं।

चिकित्सा—आँखों पर बरफ़ रक्खो। डाक्टरकी दवा करो। कोकेन और ऐट्रोपीनके लोशन आँखमें डाले जाते हैं। चिकित्सा करनेसे आँखें साधारणतः पूर्णतया अच्छी हो जाती हैं।

दृष्टिमांद्य (amblyopia)—दृष्टिमांद्य या ऐम्ब्लिग्रोपियामें एक या दोनों आँखोंकी दृष्टि मिट जाती है, यद्यपि आँखोंमें या नाड़ी-मण्डलमें कोई दोष नहीं दिखलाई पड़ता।

ऐंचा-ताना (squint-eyed) लोगोंमें अकसर एक आँखकी दृष्टि धीरे-धीरे मर जाती है। जान पड़ता है कि प्रकृतिकी कृपासे ऐंचा-ताना लड़कोंमें एक आँखके भीतर बने चित्रको दबा देनेकी शक्ति आ जाती है। यदि ऐसा न होता तो ऐंचा-ताना आँख वाले लड़केको सब वस्तुएँ दोहरी दिखलाई पड़तीं। धीरे-धीरे निरन्तर बेकार रहनेके कारण इस आँखकी दृष्टि जाती रहती है।

दृष्टिमांद्य कई एक नशेकी चीज़ोंसे भी उत्पन्न हो सकता है। तमाखू इनमेंसे मुख्य वस्तु है। इससे जो हानि होती है उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सीसा (lead), कुनैन (quinine), सोडियम सैलिसिलेट, अफ़ीम, मदिरा आदिसे भी दृष्टिमांद्य उत्पन्न हो सकता है। कुछ ज्वरोंसे (जैसे मलेरियासे) या अन्य रोगोंसे भी दृष्टिमांद्य कभी-कभी होता है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है।

हिस्टीरिया-जनित अंधता—यदि किसी व्यक्तिमें हिस्टीरिया रोग (उ० दे०) के लक्षण हों और उसमें एकाएक अंधता उत्पन्न हो तो संभवतः यह अंधता हिस्टीरियाके ही कारण उत्पन्न हुई होगी। यह अंधता वास्तविक भी हो सकती है और बनावटी भी। जैसे पागलपनमें कोई अपनेको बादशाह समझता है और कोई लाट साहब, इसी प्रकार हिस्टीरियामें भी रोगी तरह-तरहके मिथ्या भ्रमोंमें पड़ जाता है। संभवतः रोगी समझता है कि उसकी आँखोंकी दृष्टि मिट गई है और इस कारण वह देख नहीं पा रहा है। परन्तु यदि ऐसे रोगीके रहन-सहन को सूक्ष्म जाँचकी जायगी तो पता चलेगा कि वह बहुत सा काम ऐसा कर रहा है जो कोई अंधा व्यक्ति नहीं कर सकता।

ब्रेल अक्षर

ये अक्षर उभड़ी हुई बिन्दियोंके समूहोंसे बनते हैं और काग़ज़ को सूजेसे गोद कर बनाये जाते हैं। अँगुलियोंसे टटोल कर अन्धे इन्हें पढ़ सकते हैं।

हिस्टीरिया और हिस्टीरिया-जनित अंधता अधिकतर स्त्रियोंमें ही होता है। ऐसी अंधताकी पृथक् चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं। हिस्टीरियाका इलाज करना चाहिये।

अंधे व्यक्तियोंकी शिक्षा—अंधे लड़कोंको मिथ्या प्रेमके वश दूसरोंका आश्रित नहीं बनाये रखना चाहिये। उनको अपना काम स्वयं करनेकी शिक्षा दी जानी चाहिए। इससे उनका जीवन अधिक सुखमय रहेगा। चाहे किसी भी आयुमें अंधता उत्पन्न हो, उनको विशेष शिक्षा यथासंभव शीघ्र मिलनी चाहिए। छोटे बच्चे अंधे रहने पर भी अपने हाथ नहाना-धोना, कपड़ा पहनना, खाना आदि शीघ्र सीख सकते हैं। व्यायामसे और दूसरोंके साथ पैदल टहलनेसे उनका स्वास्थ्य अच्छा बना रह सकता है। वे दौड़ना, तैरना आदि स्वास्थ्यप्रद खेल भी सीख सकते हैं। अन्धे लड़केको अन्धोंके स्कूलमें भरती कर देनेसे लड़का अधिक आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है क्योंकि उसे अन्य अन्धे लड़कोंका साथ मिलता है और उसका समय पढ़ने-लिखने तथा मनोरंजक खेल आदिमें कटता है। घर पर बेकार पड़े रहनेसे स्वभावतः उसकी तबीयत घबड़ाती है। अंधोंके पढ़ानेके लिए ब्रेल (Braille) पद्धतिका उपयोग किया जाता है। इसमें अक्षरोंके बदले उभरी हुई बिंदियाँ, काग़ज़को सूजेसे गोदकर, बनाई जाती हैं। इन्हींको अँगुलियोंसे टटोल कर पढ़ते हैं (चित्र देखो)। अभ्यासके बाद अन्धे काफ़ी तेज़ीसे पढ़ सकते हैं। इस प्रकारकी पढ़ाई सीखना आसान भी है। लिखनेके लिये

विशेष तख़्ती पर रक्खे काग़ज़को सूजेसे गोदा जाता है। अंधे इसे भी शीघ्र सीख लेते हैं। इंगलैंडमें प्रत्येक बड़े शहरमें अन्धोंके लिए पाठशाला है। भारतवर्षमें भी स्थान-स्थान पर इस प्रकारकी पाठशालाएँ हैं। एक इलाहाबादमें है।

अंधोंके लिए कई एक व्यवसाय ऐसे हैं जिनसे वे पैसा कमा सकते हैं। गाने-बजानेमें अंधे अकसर बड़े होशियार निकलते हैं। अन्धोंके विद्यामें निपुण होनेकी भी बात कभी-कभी सुननेमें आती है। परन्तु दौरी बनाना, दरी या गलीचा बिनना, ब्रश बनाना आदि भी वे अभ्याससे सीख सकते हैं। कुछ समयके बाद उनकी अँगुलियोंमें अद्भुत शक्ति आ जाती है और बहुत-सा काम वे अँगुलियोंसे टटोलकर कर सकते हैं जो साधारण व्यक्ति आँख बन्द करके नहीं कर सकता।

अंधतासे बचनेके उपाय—यदि गर्भवती स्त्री को आतशक या सुज़ाकका रोग हो तो अच्छे डाक्टरसे उसका इलाज कराना चाहिए जिसमें नवजात शिशुकी आँखोंमें छूत न लगे। यदि कुछ भी संदेह हो तो बच्चाके जनमते ही उसकी पलकोंको बोरिक लोशन (१० ग्रेन बोरिक ऐसिड, १ आउंस पानी) से धो देना चाहिये। इसके लिए शुद्ध (डाक्टरी) रुईका इस्तेमाल अच्छा होगा। फिर प्रत्येक आँखमें दो-तीन बूँद सिलवर नाइट्रेट लोशन डालना चाहिए। लोशनका नुसख़ा यह है—

सिलवर नाइट्रेट ... ४ ग्रेन
स्रवित जल (distilled water) १ आउंस

सिलवर नाइट्रेट लोशन डालनेके बाद आउंस पीछे ४ ग्रेन सोडियम क्लोराइड (शुद्ध नमक) पड़े पानीसे आँख धोना अच्छा है। अन्यथा बचा हुआ सिलवर नाइट्रेट लोशन सूख कर गाढ़ा होने पर पलकोंको हानि पहुँचा सकता है। नमकसे सिलवर नाइट्रेट नष्ट हो जाता है।

कुछ डाक्टरोंकी राय है कि चाहे कोई सन्देह हो, चाहे न हो, सब बच्चोंकी आँखोंमें जन्मके बाद शीघ्र ही सिलवर नाइट्रेट लोशन डालना चाहिए।

यदि जन्मके प्रथम तीन-चार सप्ताहके भीतर आँखोंमेंसे कीचड़ निकलना आरम्भ हो तो डाक्टरकी राय अवश्य लेनी चाहिए।

किसीकी आँख उठे तो उचित चिकित्सा करानी चाहिए (देखो आँख उठना)। रोहोंका भी उचित उपचार कराना चाहिए।

स्वच्छता बहुमूल्य उपाय है। आँखकी बीमारियाँ अधिकांश छूतसे होती हैं। इसलिये दूसरेके इस्तेमाल किये तौलियेसे मुँह न पोंछना चाहिये। आँख उठे लड़कोंसे अन्य लड़कोंको दूर रखना चाहिए।

लड़कोंके हाथोंमें छुरी, कैंची, सूजा, सुई इत्यादि नुकीली और धारदार वस्तुओंको न पड़ने देना चाहिए। कई बच्चे दुर्घटनाओंके कारण अन्धे हो जाते हैं। यदि कभी आँखमें चोट लग जाय तो होशियार डाक्टरको तुरन्त दिखलाना चाहिए। ढीलवाही करनेसे घाव पक जा सकता है और बच्चा काना हो जा सकता है। अकसर केवल एक आँखमें ही चोट लगने पर दूसरी आँख समवेदनाके कारण सूज आती है और थोड़े समयमें बच्चा दोनों आँखका अन्धा हो जा सकता है।

खराद तथा अन्य मशीनोंसे काम करने वालोंको ऐसा चश्मा (गॉगल goggles) पहनना चाहिये जो छिटकने वाले कणों और टुकड़ोंसे आँखोंकी अच्छी तरह रक्षा कर सकें।

सबको संयमसे रहना चाहिए जिससे आतशक और सुज़ाकसे वे बचे रहें।

अन्धताके सम्बन्धमें वर्णअंधता, रतौंधी और दिनौंधी भी देखो।

अँभौरी (prickly heat or miliary)—गरमी और बरसातके दिनोंमें, विशेषकर बरसातके दिनोंमें, अधिक पसीनेके कारण इसकी शिकायत होती है। शरीरमें लाल नन्हें-नन्हें दाने निकल आते हैं जिनमें पीछे जल भर आता है। इनमेंसे कुछका जल पीछे दूधिया भी हो जाता है। इनके कारण बड़ी खुजली और चुनचुनाहट मचती है। इससे असुविधाके अतिरिक्त अन्य कोई हानि नहीं होती, परन्तु खुजलानेके कारण कहीं-कहीं फोड़े निकल आ सकते हैं या घाव हो जा सकता है। यदि खुजली और चुनचुनाहट इतनी हो कि रातको नींद न आये तो स्वास्थ्य को भारी धक्का लग सकता है।

जंगलके हानिकारक कीड़े

[ले०—श्री फणीन्द्रनाथ चैटरजी, एम० एस-सी०]

विज्ञानके फ़रवरी, अप्रैल और अक्टूबर १९३१ के अंकोंमें मैंने सागौन पेड़के दो एक पत्र-भक्षकोंके बारेमें लेख लिखे हैं और उनके पैरासाइटोंका वर्णन किया है। इस अंकमें अब मैं सागौनके बी होल बोररके बारेमें लेख दे रहा हूँ। इस बोररका नाम डूओमाइट्स सिरामिकस है और बर्मा देशमें ही इसका घर है। इस बोररकी ओर हमारा ध्यान अधिक बढ़ता जाता है क्योंकि यह हिसाब करके देखा गया है कि सरकारको सागौनकी लकड़ियोंमें हर प्रान्तसे सालाना प्रायः दस लाख रुपयोंका नुकसान होता है। यदि कारखानोंका नुकसान इसमें जोड़ा जाय तो प्रायः १० लाखके चार गुना और अधिकका नुकसान इस बोररसे पहुँचता है। इससे हम भली-भाँति यह देख सकते हैं कि सागौनके पेड़का प्रभाव उन्नति पर अधिक पड़ता है। यह विषय अत्यन्त खेदका है और ज़रूरी भी है कि इस दुश्मनको किसी प्रकार वशमें कर सकें, क्योंकि इस पर देशकी उन्नति और व्यापार बहुत कुछ निर्भर रहता है।

यह बोरर हरे पेड़ोंमें ही लगती है, इसलिये बोररकी जीवन-कहानीका अनुसन्धान करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। केवल जंगलमें ही अत्यन्त कठिनतासे कोई काम कर सकता है। मार्चसे जून तक विशेषकर अधिक यह पाया जाता है। इस कीड़ेसे जो नुकसान बर्माके सागौनके व्यापारको मिला है वह बहुत अधिक समयसे ज्ञात है। इसके नामकी कहानी यह है कि लक-ड़ियोंका भौंरा या गुनगुन करने वाली बिटल पेड़ोंपर छेद बनाये, क्योंकि यही कीड़े बांस और नर्म लकड़ियोंके अन्दर छेद करते रहे। इसका असर यह मान लिया गया है कि यह प्राकृतिक है और अन्य कोई बात इस कीड़ेके ध्यानसे नहीं मालूम की गयी। सबसे प्रथम १८४१ और १८५१ में मालूम किया गया कि यह कीड़ा नुकसान पहुँचाता है। बहुत सारे छोटे-छोटे पेड़ इन कीड़ोंसे मर गये जो टहनियों और पेड़के गूदे (पिथ्) को खाते हैं। इन पेड़ोंमें छेद भी मिले। लकड़ियोंके, जो बहुत अच्छी दिखाई देती हैं, काटनेसे केवल छोटे-छोटे छेद भरे मिलते हैं। इससे लकड़ियाँ नहीं बिकती हैं। परन्तु इस कीड़ेका पूरा ब्योरा केवल १९०४-१९०५ में ही मालूम हुआ कि एक तितलीके लार्वा (डूओमाइट्स) का यह सारा कार्य है। यह देखा गया कि १०० से ४०० तक इन कीड़ोंके छेद पेड़ काटनेसे मिले हैं। छेद छोटे-छोटे पेड़ोंमें भी हो जाते हैं, जैसे पेड़के गूदाकी ओर पहुँचते हैं, छेदोंकी तायदाद बढ़ती जाती है। १९१८ के जून महीनेमें सरकारको सागौनके जङ्गलसे ६१½ लाख रुपये मिले और यदि यह कीड़ा नुकसान न पहुँचाता तब प्रायः एक करोड़ रुपये मिलते। ये कीड़े अधिक जगहोंमें पाये जाते हैं—सिकम, बर्मा, सिंगापूर, जावा, सियाम, सिराम इत्यादि।

भूगोलके अनुसार इस बोररका विस्तार बर्मा देशके सागौनके पेड़के विस्तारसे मिलता-जुलता है। जहाँ सागौनके जङ्गलमें लकड़ियोंका ढेर लगा हो, जहाँ केवल सागौनके पेड़ उग रहे हैं और कुछ नम जङ्गलोंमें पाये जाते हैं। यह उन जगहोंमें पाया जाता है जहाँ कि वर्षा ५० और १५० इञ्च होती है और जो समुद्र-सतह से २५०-२००० फुट ऊँची है।

अब मैं संक्षेपमें इस कीड़ेका (तितली) वर्णन करता हूँ। यह तितली देखनेमें कुछ हलके भूरे रंगकी होती है, ऐनटनी भूरा, साधारण धागेके प्रकारका मादा तितलीमें होता है। मादा-तितलीकी लम्बाई ४०-८० मिली-मीटर और नर तितली की लम्बाई ४०-६० मिली-मीटर है। इस तितलीका रंग कुछ सागौनके पेड़की छालसे मिलता-जुलता है और कभी-कभी धोका हो जाता है। इस तितलीका पेट लम्बा और भारी होता है, हलका भूरा रंग होता है। पेटके नीचे एक काली लाइन बीचमें होती है। इसके ताज़े अंडे गंधकके समान पीले और लम्बे होते हैं, प्रायः $\frac{1}{24}$ इंच लम्बे। अंडे एक झुण्डमें दिये जाते हैं। इस अंडेसे बच्चा लार्वा निकलता है। लार्वा खूब तगड़ा होता है, लम्बा, दोनों ओर झुकता है, बहुत चमकीला, बराबर सतह और शरीरपर केवल बहुत थोड़ेसे भूरे बाल होते हैं। लार्वाका सिर बहुत अच्छी तरह दिखाई देता है

और अखरोटके रङ्गका है। इस लार्वाका जबड़ा काला होता है। बदनमें सफ़ेद और हलका तरबूज़के अन्दरका रङ्गकासा, हर एक बदनके भागमें सांस लेनेके छेद होते हैं। इस लार्वाकी पीठ पर एक खुरदुरा प्लेट है जिसकी सहायतासे यह लार्वा सागौनके पेड़के अन्दर छेद करता है। लार्वाकी, लम्बाई २½ इंच है। यह लार्वा प्यूपा बन जाता है, जो लम्बा, सख़्त, चमकीला होता है। प्यूपा पीले और हलके भूरे रंगका होता है परन्तु पुराना होने पर काला हो जाता है। मादा प्यूपा ९६ मिलीमीटरसे ५३ मिलीमीटर लम्बा होता है। और नर प्यूपा ७६ के ४५ मिलीमीटर होता है।

कीड़ेकी जीवन-कहानीऔर रहनेकी आदत:—पालतू मादा तितलियाँ प्यूपासे दूसरे दिन निकलने पर ही लगातार अंडा देना आरम्भ कर देती हैं और एक मादा ४-६ दिनके अन्दर ३००-६०० अंडे देती है। ये अंडे झुंडमें दिया करती हैं और पेड़के वल्कलकी फटी जगहों पर अधिक अंडे देती हैं। यह सन्देह किया जाता है कि अंडेसे बच्चा लार्वा-निकल आता है तब वह सीधा पेड़के वल्कलमें चला जाता है। यह धीरे-धीरे बिलकुल गूदा तक पहुँच जाता है और यह देखा गया है जहाँसे लार्वा रास्ता बना कर पेड़के अन्दर तक गया है, सारा रास्ता बुरादासे भरा रहता है। केवल पेड़के वल्कलके बाहर थोड़ी काली सतह दिखाई देती है। दूसरी अवस्था वाली लार्वा कुछ दिन इसीमें रहती है और इस समय साँस लेनेका यन्त्र बदलता है। इस अवस्था पर बहुत मर भी जाते हैं। जब लार्वा बढ़ता है। तब पेड़के वल्कलकी नाप और नर्म लकड़ीका घर भी लम्बाई और आस-पासमें लकड़ीके गूदा तक छेद करना आरम्भ कर देता है। इस छेद किये हुए घरोंको नापनेसे उनकी नाप १-२ इंच लम्बा और ¼ इंच गोलाई है। यह जो गैलेरीके नाप है इससे यह पता चलता है कि लार्वा बहुत अल्प अवस्थामें ही पैरासाइटके द्वारा मर गये हैं। और प्रायः इन गैलेरीमें पैरासाइट (हाइमिनपटरा) का कोवा मिलता है, जिसके साथ मरा हुआ लार्वा (सिरामिकस) का चमड़ा लगा रहता है। लार्वाको दूसरे अवस्थाओं पर लकड़ीकी गूदाकी गैलेरी प्रायः पूरी लम्बाई तक हो जाती है। गैलेरी सर्वथा ऊपरकी ओर बढ़ती है और सीधी होती है। परन्तु कभी-कभी चक्करदार गैलेरी भी हो जाती है। इस गैलेरीको चौड़ाई लार्वाके बदनेके साथ यह भी गोलाईमें बढ़ जाती है और उसकी गोलाई काफ़ी चौड़ी होती है जिसमें लार्वा-घूम फिर सके।

लार्वाका खाना क्या है—केवल पेड़का रस (सैप) जो बहता है और कुछ कैलसटिस् भी। पेड़के अन्दरके वल्कलकी जगह पर सैकेंडरीटिसकी बढ़ती शीघ्र होती है और यह बहुतसे पालने वाले सैलससे भरा रहता है। पेड़के अन्दर जो छोटे बड़े गैलेरी हैं, और पेड़के बाहर जो छेद-छेद दिखाई देते हैं, उन सबमें कैलसमें भरा होता है जिससे सर्वदाके लिये खाना जमा रहता है। लकड़का बुरादा लार्वा खानेमें नहीं इस्तेमाल करता है। और कभी-कभी यह छेदोंसे बाहर निकाल दिया जाता है।

पेड़को बढ़तीके समय बड़े लार्वा बहुत खाते रहते हैं और जाड़ेके मौसमके अन्त तक जब पत्तियाँ झड़ती हैं, यह लार्वा प्यूपा बननेके लिये तैयारी करता है। प्यूपा बनानेके घरकी नाप २-३ इंच है। लार्वा प्यूपा बननेके पहिले गैलेरीको बिलकुल साफ़ बना देती है जिससे कि निकलनेमें आसानी रहे। पेड़के बाहर जो छेद है वह भी रेशमसे एक टोपीकी तरह बन्द हो जाता है। बस, अब लार्वा प्यूपाके घरमें बन्द हो गया। प्यूपा अपने घरमें सिर नीचे छेदकी ओर रहती है और अपना मोल्ट पीछे छोड़ देती है। यह प्यूपा बड़ा हो जाता है, तब वह छेदकी ओर चलता है। प्यूपाका कुछ भाग छेदसे बाहर निकल आता है और उसमेंसे फिर तितली निकल आती है। जब तितली प्यूपासे निकल आती है, तब वह थोड़े समय तक टहलती है। पेड़के ऊपर और फिर किसी अच्छी जगह पर तितली मज़बूतीसे ठहर जाती है। प्रायः २५ मिनटके बाद तितली के पर फैलते हैं परन्तु तितली इसी जगह पर शाम तक रहती है।

यह देखा गया है कि तितली दिनको निकलती है, विशेषकर दोपहरको जब बहुत धूप हो और वर्षा भी हो। ये तितलियाँ रोशनीके पास चली आती हैं। वह रातको उड़ती हैं और मिलती हैं।

प्रकृतिमें इस हानिकारक कीड़ेके दुश्मन भी पाये जाते हैं। पहिले तो एक चिड़िया है जो कि पेड़ों पर चढ़ती है और लकड़ियोंको ठोंक-ठोंक करके कीड़े निकाल कर खाती है। इसको वुडपेकर कहते हैं। यह चिड़िया दो प्रकारकी पाई गई है—एक काली-हरी और दूसरी कुछ मटीली हरी। एक चिड़िया टाईगा जावानेनसिस लार्वा और प्यूपा सागौनसे बोररको खाती हुई मिली है। अप्रैल-जूनमें बहुत-सी चिड़ियाँ इनको खाती हुई मिली हैं। इनके पेट चीरनेसे सिरामिकसके लार्वे मिले। इनके पेटमें और भी बहुतसे कीड़े इत्यादि मिले। अब यह चिड़िया अवश्य बोररको मार डालती है जिससे सागौनके पेड़को फायदा है, परन्तु इसके ऊपर चिड़िया जो कि पेड़ोंको ठोंक-ठोंक करके लकड़ियोंका नुकसान कर देती है। यह अत्यन्त खेदकी बात है वुडपेकर चिड़ियोंके किये हुए छेदको बन्द होनेमें प्रायः दो-तीन वर्ष लग जाते हैं और इससे पेड़की अत्यन्त हानि हो जाती है।

इन कीड़ोंके पैरासाइटका अभी भली-भाँतिसे पता नहीं है। केवल कुछ टेकानीडी, हाइमिनपटरके पैरासाइट मिले हैं, परन्तु उनके विषयमें हम कुछ भी अधिक नहीं जानते हैं। इस कीड़ेको एक फफूँदी भी लग जाती है।

सागौनके ऊपरके बोररके सिवाय और भी बोरर पाये गये हैं।

बहेड़ा

[ले०—श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालङ्कार]

(गतांकसे आगे)

सामान्य उपयोग

बन्दर, गिलहरी, सूअर, हिरण, बकरी, भेड़ें और दूसरे जानवर फलोंको बहुत चावसे खाते हैं और इसलिये मांसल आवरणसे युक्त फल कभी भी ज़मीन पर बहुत देर तक नहीं पड़े रहते। शीत और ग्रीष्म ऋतुओंमें इनके पीलेसे रंगके बहेड़ेकी गुठलीके छोटे-छोटे ढेर जंगलमें इधर-उधर पड़े हुये प्रायः मिल जाते हैं। ये गुठलियाँ हिरणोंसे चबा कर फेंकी गई होती हैं। शीत ऋतुमें पेड़ पर बहुतसी मुरझाई हुई शाखाएँ देखनेमें आती हैं जो फलोंकी प्राप्तिके लिये बन्दरों द्वारा तोड़ी गई होती हैं। पके हुये फलोंके लिये प्राणियोंका झुकाव बीजोंको दूर-दूर फैलानेमें सहायता पहुँचाता है। इसके अलावा फलोंकी फ़सलका एक बड़ा हिस्सा कीड़ों और जानवरोंसे काम आये बिना ऐसे ही पड़ा रह जाता है।

कांगड़ामें दुधारू गौओंके लिये पत्ते अच्छा चारा होते हैं।

फल भारतीय वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध त्रिफलाका एक अंश है। कपड़ेको रँगने और चमड़ेको कमाने तथा रँगनेमें काम आता है। इस दृष्टिसे यह हरड़से बहुत घटिया है। जावामें फलसे चमड़ा कमाया जाता है और थोड़ासा लोह गन्धित मिला कर चमड़ा काला रँगा जाता है।

भारत और जावामें फलसे देशी स्याही बनाई जाती है। इसके लिए ताज़े फल इस्तेमाल किये जाते हैं। फलके रसमें कसीस लोह गन्धित मिलानेसे लिखनेकी अच्छी स्याही तैयार हो जाती है।

गिरीमेंसे अल्प मात्रामें तेल निकलता है। यह बालों पर लगाया जाता है और औषधि-प्रयोगमें काम आता है।

बहेड़ेका रंग, कहते हैं, बहुत अच्छा नहीं आता है। इसलिये जावामें सस्ते धागोंको रँगनेके काममें आता है।

भारतमें बहेड़ा रँगने और कमानेके लिए बहुत प्रयुक्त होता है। यह अकेला प्रयुक्त किया जा सकता है, तब यह कपड़े पर पीलासा या भूरासा पीला रंग देता है। अन्य रँगने वाले पदार्थोंके साथ मिला देनेसे गहरा भूरा या काला रंग देता है। अकेले बहेड़ेसे रँगनेकी विधि इस प्रकार है—प्रतिघन गज़ कपड़ेके लिए एक पाव बहेड़ा लें। गुठली निकाल कर फेंक दें और छिलकेको कूटकर बारीक कर लें। इसे एक सेर पानीमें डालें और साथ ही एक तोला अनार

के छिलके डाल दें। रात भर पड़ा रहने दें। फिर उबालें और तीन उबाल आने पर उतार लें। ठण्डा होने पर मोटे कपड़ेमें छान लें। रँगे जाने वाले कपड़ेको अच्छी तरह धोकर सूखनेके लिये डाल दें। जब आधा सूख जाय तो एक तोला फिटकरी घुले हुए पानीमें भिगो लें फिर रंगके घोलमें कपड़ेको डालकर हिलाते रहें जिससे सारे कपड़े पर एकसा रंग आ जाय। जब कपड़े पर रंग काफ़ी गहरा आ जाय तो धूपमें सुखा दें और बादमें पानीसे धो डालें जिससे रंगकी गन्ध निकल जाय। इस विधिसे (muffy yellow) रंग प्राप्त होता है।

मजीठ आदिके साथ कपड़ा रंगनेमें हरड़के स्थान पर बहेड़ा भी इस्तेमाल होता है। कई स्थानों पर हरड़की तरह बहेड़ा चर्म-कर्ममें प्रयुक्त होता है। बीरभूमिमें पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते है। छाल भी काममें आती हैं पर इसमें ग्राहीगुण कम है। इसलिए रंगने वाले अन्य पौधोंकी छाल-की अपेक्षा यह कम उपयोगी है।

वृक्षकी छालके क्षतोंमेंसे प्रचुर निर्यास निकलता है जो विशेष उपयोगी नहीं मालूम देता क्योंकि यह जलमें विलेय नहीं है। यह गोंद स्वाद-रहित होता है और देखनेमें कीकर के गोंदसे बहुत मिलती-जुलती है। कोल और मूर इसे खानेमें काम लाते हैं। मिदनापुरके जंगलोंमें यह बहुत होता है।

गोंद लगभग अँगुलीके बराबर मोटी और गोल लम्बोतरे खण्डोंमें छाल पर इकट्ठी हो जाती है। रंगमें घटिया कीकर की गोंदके रंगकी होती है। इसमें डम्बल (dumb-bell) सदृश कैलसियम औक्ज़ेलेटके स्फटिक, स्फोरोक्रिस्टल्स और सूक्ष्म स्फटिक पदार्थोंके समूह होते हैं। पानीमें भिगोनेसे फूल जाती है पर घुलती नहीं। दूसरी घुलनशील गोंदोंके साथ मिलाकर इसे बेचा जाता है। आग जलानेसे और जऊ पड़ती है।

लकड़ी हलकी होती है और अच्छी नहीं समझी जाती। लेकिन आमतौर पर जितनी बुरी समझी जाती है उससे अच्छी ही होती है। कई स्थानों पर तो यह इतनी निकम्मी ख्यालकी जाती है कि वृक्षोंको सर्वथा काटा ही नहीं जाता। कई स्थानों पर इसे काट कर इमारती लकड़ोंकी तरह इस्तेमाल करते हैं। एक प्रकारका कीड़ा लकड़ीमें छेद करके इसे हानि पहुँचाता है। लकड़ी बहुत टिकाऊ नहीं है और कीड़ोंसे भी शीघ्र आक्रान्त हो जाती है। ईंधनके लिए यह लकड़ी अच्छी है। जलाकर इसके कोयले भी बनाये जाते हैं। सावन्तवाड़ी ज़िलेके लोग चीनी साफ़ करनेमें इसकी लकड़ीकी राख व्यवहार करते हैं।

हरी लकड़ीका प्रति घन फुट भार अट्ठावनसे साठ पौण्ड और सूखीका उनतालीससे तैंतालीस पौण्ड होता है।

पानीमें भिगोनेके बाद लकड़ीके तख्ते बनाने, पैकिंग केस, कॉफी बक्स, नौकाएँ और उत्तर-पश्चिम प्रान्तोंमें गृह-निर्माणमें प्रयुक्त होती है। पानीमें डुबोनेसे यह अधिक टिकाऊ हो जाती है। मध्य प्रान्तमें यह हल और गाड़ियोंके बनानेमें इस्तेमाल होती है। दक्षिणीय भारतमें पैकिंग केस, किश्तीके तख्तों और अनाजके मापनेके पात्र आदिके बनानेमें काम लाई जाती है।

पथ-वृक्षके लिए यह अत्युत्तम वृक्ष है, परन्तु इसके साथ कई अन्धविश्वास जुड़े रहनेके कारण इसका उपयोग नहीं किया जाता। दक्षिणी भारतके हिन्दुओंका विश्वास है कि इसमें दैत्योंका निवास होता है। इसलिए वे इससे बचते हैं और इसकी छायामें कभी नहीं बैठते। मध्य और दक्षिणीय भारतके लोग लकड़ीको इस ख्यालसे गृह-निर्माणमें उपयोग नहीं करते कि जिस घरमें इसकी लकड़ी होगी वह अनिष्टकर होता है और उसमें कोई व्यक्ति देर तक जीवित नहीं रह सकता। इसी अन्ध विश्वासके कारण अनेक स्थानों पर यह वृक्ष जंगलोंमें बिना काटे हुए छोड़ दिया जाता है।

निर्यात

भारतमें जंगलोंमें बहेड़के फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं। जंगल-विभाग इसे नीलाम कर देता है। कातिकसे पौष तक इसका फल अच्छी तरह पक जाता है और तोड़ कर बाज़ारमें बिकने आ जाता है। मान भूमि; हज़ारीबाग आदि प्रदेशोंमें इसका मूल्य एक रुपया मन और तथा चटगाँवमें पाँच रुपये मन होता है। हरड़का मूल्य इसकी अपेक्षा अधिक है। रँगने तथा चर्म-कर्मके लिए बहेड़ा भारतसे बाहर बहुत जाते हैं। नजीबाबाद और गढ़वालके जंगलोंमें फल बहुत इकट्ठे किये जाते हैं और विदेश भेजे जाते हैं।

प्रभाव

कच्चा फल अनुलोमक होता है। पूर्ण पक्व फल भारी, बल्य और लघु होता है।

मुसलमान लेखक फलको भारी, बल्य, पाचक, लघु और सारक तथा आँखोंकी शोथयुक्त अवस्थाओंमें लेप-रूपमें उपयोगी समझते हैं।

गोंद लेपक और रेचक विश्वास की जाती है।

लोगोंमें यह विश्वास बहुत अधिक प्रचलित है कि बहेड़ेकी गिरी विषैली होती है। कई लोग केवल बड़े फल-वाली क़िस्मको विषैला मानते हैं। दूसरे कहते हैं कि उन्होंने दोनों क़िस्मोंको बिना किसी प्रकारका विषैला प्रभाव अनुभव किये अच्छी तादादमें खाया है, परन्तु इन्हें खानेके बाद पानी पी लिया जाय तो शिरोभ्रम तथा नशाका अनुभव होने लगता है। सब-असिस्टेण्ट सर्जन श्रीयुत रैडक (Raddock) पाँचसे नौ सालके तीन लड़कों पर बहेड़े के विष-प्रभावका उल्लेख करते हैं। बीज खाने पर उनमेंसे दो लड़के नशेमें चूर हो गये। दोनों सिर-दर्दकी शिकायत करते थे और उलटी कर रहे थे। तीसरा लड़का कमज़ोर था और इसने सबसे अधिक बीज खाये थे— बीस या तीस। इस लड़केमें दिनमें कुछ लक्षण प्रकट नहीं हुए, परन्तु अगले दिन सुबह वह अचेत पाया गया और उसमें शिथिलताके सब लक्षण नज़र आते थे। वामक द्रव्य थोड़ी-थोड़ी मात्रामें तेज़ भाप देनेसे लक्षणोंमें कुछ कमी हुई। धीरे-धीरे वह होशमें आ गया परन्तु रहा, सिर घूमनेकी शिकायत करता था और अगले दिन तक उसकी नाड़ी तेज़ चलती रही। बादमें वह ठीक हो गया। श्रीयुत रैडकका विचार है कि यह लड़का एक हलके नशीले विषसे आक्रान्त था और इसका परिणाम भी घातक हो सकता था यदि स्टमक पम्पका प्रयोग न किया गया होता।

फलके विषैले प्रभावके सम्बन्धमें बहुत अधिक भिन्न और विरोधी सम्मतियाँ हैं। डिमक, वार्डन और हूपरकी परीक्षाओंके अनुसार इनमें कोई विषैला प्रभाव नहीं है। दूसरोंको खिला कर तथा स्वयं अधिक मात्रामें खाकर इन लोगोंने कोई बुरे प्रभाव नहीं देखे। बीजके विषैले प्रभावको जाननेके लिए छोटे जीवों पर भी परीक्षण किये गये हैं। एक बिल्लीके पेटमें गिरीका नौ ग्रेन एल्कोहलिक सत्व सूचिविद्ध किया गया। एक दूसरी भूखी बिल्लीके पेटमें १३.२ ग्रेन (लगभग पैंतीससे चालीस गिरियोंके बराबर) एल्कोहलिक सत्व डाला गया। दोनों अवस्थाओंमें परिणाम नकारात्मक थे। इसलिए इन लेखकों ने यह परिणाम निकाला कि गिरीमें कोई विषैला गुण नहीं है।

चिकित्सोपयोग

त्रिफलाके रङ्ग-रूपमें यह लगभग प्रत्येक रोगमें विभिन्न प्रकारसे दिया जाता है। स्वतन्त्र रूपसे इसका प्रयोग बहुत अधिक नहीं होता।

पञ्जाबमें पका हुआ फल मुख्यतया श्वमश्रु, अर्श, अतिसार, कुष्ट और कभी-कभी ज्वरमें इस्तेमाल होता है।

मुख और श्वास-संस्थानके रोगोंमें बहेड़ा उपयोगी औषधि सिद्ध हुई है। आगमें डालकर भूने हुए फलको मुखमें रखकर धीरे-धीरे चूसते रहनेसे कण्ठ-व्रणमें लाभ होता है। बहेड़ा, अनारका छिलका, यवक्षार और पिप्पली समान भागमें मिला कर गुड़के साथ गोली बना लें। गल-शोथ और कण्ठ-शोथमें यह गोली चूसनेके लिए दी जाती है। उसी प्रकार नमक और पिप्पलीके साथ फलके गूदेकी गोलियाँ बना ली जाती हैं। खाँसी, कण्ठ-व्रण, गलेका बैठ जाना आदिमें मुखमें रखकर उन्हें चूसनेसे आराम आ जाता है। सैंधव लवण, पिप्पली और बहेड़ेके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर चाटनेसे भी यही लाभ होता है। बहेड़ेके फलके ऊपर घी चुपड़ कर ऊपर घास लपेट दें और इसे गायके गोबरसे ढक कर आगमें पकाएँ। एक बहेड़ेको मुखमें रख कर धीरे-धीरे चूसनेसे खाँसी दूर होती है।* आधेसे एक तोला बहेड़ेके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे खांसी, दमा और तीव्र हिचकी भी नष्ट होती है।† बहेड़ा, अतीस, पिपपली, भारंगी और सोंठ सबका समान भाग सूक्ष्म चूर्ण

---

* बिभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत् परिवेष्टितम्।
स्विन्नमग्नौ हरेत् कासं ध्रुवमास्य विधारितम्॥
—चक्रदत्त; कास चिकित्सा; श्लोक २१।

† कर्ष कलिफल चूर्णं लीढम्वात्यन्तमधुमिश्रम्।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलायुद्धंसिकाञ्चैव॥
—चक्रदत्त; हिक्का श्वास चिकित्सा; श्लोक १८।

बनाएँ । इस विभीतकादि चूर्णको गरम जल या मद्यके साथ सेवन करते रहनेसे खाँसी, दमा अपतानक अच्छे हो जाते हैं।* सब प्रकारके दमे और खाँसीमें अकेले बहेड़े के प्रयोगसे भी लाभ होता देखा गया है।†

बहेड़े और असगन्धके समान भाग चूर्णमें गुड़ मिलाकर गरम जलसे खानेसे हृदय गति वायु नष्ट होती है।‡ मुनक्का, इलायचीका चूर्ण और बहेड़े की गिरीकी बनाई गई गोलियाँ वमनमें बहुत लाभकारी होती हैं। जलाये हुये बहेड़े के फलको चूर्णमें नमक मिला कर खानेसे यह आँतोंपर ग्राही प्रभाव करता और इसलिए तीव्र अतिसारमें भी लाभदायक होता है।¶ सुश्रुतने बहेड़े को मूत्र रोगोंमें भी उपयोगी पाया है। वह लिखता है—बहेड़े की गिरीको मद्यमें पीस कर पिलानेसे मूत्राश्मरी दूर होती है और मूत्रके विकार हटते है।*

ग्राही द्रव्यके रूपमें बहेड़ा आँखोंके रोगोंमें व्यवहार किया जाता है। इसके शीत कषायसे प्रातःकाल आँख धोनेसे आँखें निर्मल रहती हैं। आँख दुख आने पर या नेत्र-शोथ पर पके हुए शुष्क फलका चूर्ण मधुमें मिलाकर आँखों पर लेप किया जाता है। बहेड़ेकी मींगी, काली मिर्च, आँवले-का गूदा, नीला थोथा और मुलहठीको जलसे पीसकर वर्ति बनाएँ। इसे छायामें सुखाना चाहिए। तिमिर रोगोंमें यह जल्दी ही लाभ पहुँचाती है। पानीमें घिस कर इस वर्तिको आँजना चाहिए।† बहेड़ेकी गिरीको भी दुग्धमें घिसकर प्रतिदिन रातको आञ्जनेसे आँखके रोगोंमें लाभ होता है।‡

विविध शोथयुक्त अवस्थाओंमें बहेड़ेका बाह्य प्रयोग लेप-रूपमें होता है। बहेड़ेको गिरीको पीस कर शोथ वाले भागों पर लेप किया जाता है बहेड़ेको मींगीका तेल बाह्य प्रयोगमें आमवातमें वेदना वाले स्थानों पर मालिश कर-नेसे वेदना और शोथ दोनों शान्त होते हैं। सब प्रकार की शोथोंमें बहेड़ेके फलकी मज्जाके लेपसे दाह और और वेदना शान्त होती है।* ग्रन्थि विसर्पमें बहेड़ेके कल्कको गरम कर ग्रन्थि पर लेप किया जाता है।† जले हुए स्थान पर बीजकी गिरी या फलका गूदा पीसकर लगानेसे दाह शान्त होता है।

बहेड़े की गिरीके निष्पीडनसे प्राप्त तेल केश्य है। मध्य प्रान्तमें ग़रीब लोग इस तेलको घीके स्थान पर खाते हैं। वहाँ यह आठ आने सेर मिल जाता है।

बहेड़ा, वच, कुष्ठ, हरताल और मनःशिलासे पकाये तेलको बच्चोंके कान बहनेमें डालनेसे पूय आनी बन्द हो

* विभीतकं सातिविषं अद्रपुस्तञ्च पिप्पली।
भार्गी श्रृङ्गवेरञ्च सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत् ॥
चूर्णान्येतानि मद्येन पीतान्युष्णोदकेन वा।
नाशयन्ति नृणां शीघ्रं कास श्वासपतानकत् ॥
—बंगसेन संहिता; वातव्याध्यधिकार।

† सर्वेषु श्वास कासेषु केवलं विभीतकम्।
—अष्टाङ्ग हृदय; चिकित्सा स्थान; अध्याय ४; श्लोक १६३।

‡ पिवेदुष्णाम्भस पिष्टं साश्वगन्ध विभीतकम्।
गुड युक्तं प्रयलेन हृदयाग्निनिलनाशनम् ॥
—वङ्ग सेन संहिता; वातव्यधिकार; श्लोक ६०।

¶ विभीतक फलं दुग्धं हन्याल्लवणा संयुतम्।
महान्तमरयतीसारं चक्रपाणीरिवाऽसुरान् ॥
—वङ्गसेन संहिता; अतिसाराधिकार; श्लोक ९२।

*अक्षबीजम् सुरया कल्की कृत्य पिबेन्नरः।
मूत्रदोष विशुद्धयर्थं तथैवाश्मरीनाशनम्।
—सुश्रुत; उत्तर तन्त्र; अध्याय ५८; श्लोक ३४।

† अक्षबीज मरिचामलकत्वक् तुत्थयष्टिमधुकैर्जलपिष्टैः।
छाययैव गुटिकाः परिशुष्का नाशयन्ति तिमिराण्यचिरे ॥
अष्टांग हृदय; उत्तर स्थान; अध्याय १३; श्लोक ४३।

‡ अक्षयज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ॥
—भैषज्य रत्नावली, नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ६७।

* विभीतकानां फल मज्जलेपः सर्वेषि दाहार्तिहरः प्रलेपः।
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय १२, श्लोक ६६

† विभीतकस्या वा ग्रन्थि कल्केनोष्णेन लेपयेत्।
चरक, चिकित्सित स्थान; अध्याय २१; श्लोक ११४।
वाग्भट्ट भी बहेड़े को ग्रन्थि विसर्पमें लेप करता है
विजयाच नाग बलाग्निमन्थमूलं ग्रन्थिवंश पत्राणं वा।
—अष्टांग संग्रह; चिकित्सा स्थान; अध्याय २०।

जाती है। ‡

कोंकणमें बहेड़ेकी गिरी ताम्बूलमें रख कर खाई जाती है।

साधु लोग कहते हैं कि रोज़ एक गिरी खानेसे विषय-वासना बढ़ती है।

सहायक पुस्तकें

१—ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकोनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ इण्डिया; वाट (१८९३)।

२—ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकोनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आर० एच० बुर्किल (१९३५)

३—फ़ॉरेस्ट फ्लोरा; डा० ब्रैण्डिस (१८७४)।

४—इण्डियन ट्रीज़; ब्रैण्डिस

५—ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन टिम्बर्स; गैम्बल (१९०२)

६—सिल्विकल्चर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; ट्रूप

७—इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ़ इण्डिया; के० एल० दे० (१८९६)।

८—फार्माकोपिया इण्डिका; कार्तिकचन्द्र बोस (१९३२)

९—चरक; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३२)

१०—सुश्रुत, मोतीलाल बनारसीदास (१९३३)।

११—अष्टांग हृदय; निर्णय सागर (१९३३)।

१२—चक्रदत्त, शिवदास।

१३—भैषज्य रत्नावली; जयदेव विद्यालङ्कार (१९३०)।

१४—वङ्गसेन संहिता, नवलकिशोर प्रेस (१९०४)।

१५—कैयदेव निघंटु; मेहरचन्द्र लछमणदास (१९२८)।

१६—भावप्रकाश निघंटु; नाथूराम मौद्गल्य।

१७—मदनविनोद निघंटु त्र्यम्बक शास्त्री (१९७८)।

---

‡ विभीतकं वचा कुष्ठं हरितालं मनः शिला।
एभिस्तैलं विपक्वन्तु बालानां मूति कर्णके।
—वङ्गसेन संहिता; बालरोगाधिकार; श्लोक ९२।

विषय-सूची

टिपारी या मकोय

बोनेका समय—मध्य अप्रैलसे जूनके अंत तक।

यह तरकारी नहीं है। इसका फल खाया जाता है और इससे बहुत बढ़िया जैम भी बनता है। किसी भी ज़मीनमें टिपारीका पौधा आसानीसे उग सकता है। परन्तु खाद पड़ी भुरभुरी ज़मीनमें यह अधिक अच्छी तरहसे होता है। उसे ऐसी ज़मीनमें बोना चाहिये जहाँ बरसात का पानी इकट्ठा न होने पावे। क्यारियोंमें बीज छोट देनेसे यह पौधा उत्पन्न किया जा सकता है। मईमें बीज बोया जाय तो अच्छा है। जब पौधे तीन-चार इंचके हो जायँ तो उन्हें ३½ फुट पर लम्बी पंक्तियोंमें ढाई-ढाई तीन-तीन फुट पर बोना चाहिए। जब तक बरसात शुरू न हो पौधोंको सींचना चाहिए और ज़मीनको अकसर खुरपियाना चाहिए। जब पौधा एक फुट ऊँचा हो जाय तो पासके ज़मीनको तनेके चारों तरफ़ खींच कर ढूहा बना देना चाहिए जिसमें तनेके पासकी मिट्टी ऊँची हो जाय और वहाँ पर पानी न लगने पावे। फ़रवरीके क़रीब फल पकने लगता है और मार्चमें फल अधिक मात्रामें तैयार होता है।

भाँटा (बैंगन)

बीज एक बार अक्टूबरमें, फिर फ़रवरी और मार्चमें, और तब बरसातके आरम्भमें बोया जा सकता है। चार हज़ार फुटसे अधिक ऊँचाई पर भाँटा नहीं पैदा होता। यद्यपि भाँटाका पौधा एक वर्षसे अधिक समय तक चल सकता है तो भी उसे प्रतिवर्ष बीजसे पैदा करना अच्छा है। भाँटाकी कई एक जातियाँ हैं, जिनमें फल विभिन्न आकार और रंगके लगते हैं।

साधारणतः फल बैंगनी रंगका होता है, परन्तु लाल, सफ़ेद और हरे रंगके भी भाँटे होते हैं। भाँटा छोटा और अंडेके आकारसे लेकर लम्बा या गोल और तौलमें सेर-सेर भरका होता है।

उत्तरीय भारतमें बीज अकसर तीन बार बोया जाता है। पहली बोआई लगभग अक्टूबरके अंतमेंकी जाती है। इस समय उन्हें क्यारियोंमें बीज छोट कर बोया जाता है। पौधोंको सर्दीसे बचानेके लिए अकसर रातके समय उनपर छप्पर डाल दिया जाता है जो ज़मीनसे एक-दो फुट ऊँचा रहता है। जब पाला पड़नेका कोई डर न रहे, अर्थात् लगभग मध्य फ़रवरीके बाद, तो इस प्रकार छप्परसे उनकी रक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। पौधोंको तब अपने स्थानमें अट्ठारह-अट्ठारह इञ्चकी दूरी पर स्थित पंक्तियोंमें पन्द्रह-पन्द्रह इञ्च पर लगाया जा सकता है। प्रत्येक सप्ताहमें इन्हें सींचना चाहिए। लगभग मार्चके अन्त तक ये पौधे फल देते रहेंगे।

दूसरी बोआई मध्य फरवरीसे मार्चके अंत तककी जाती है। जब पौधा बड़ा हो जाता है तो उन्हें पहले बतलाई गई रीतिसे और उतनी ही दूरियों पर लगा देना चाहिए। इस बोआईका फल लगभग मईके अंतमें तैयार होता है और बरसात भर तक फल लगता रहता है।

तीसरी बोआई बरसातके आरम्भमें की जाती है। इससे बरसातके बाद फल तैयार होता है। जहाँ पानी बहुत अधिक बरसता है वहाँ, विशेषकर यदि ज़मीनकी मिट्टी ऐसी हो कि पानी पड़नेमें बँध जाती हो और सूखने पर कड़ी हो जाती है तो पौधा अकसर फूल लगनेके पहले ही मर जाता है।

सबसे अधिक फल उन पौधोंमें लगता है जिनका बीज अक्टूबरमें बोया जाता है।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

कार्टून

अर्थात् परिहासचित्र

खींचना सीखकर

रुपया भी कमाओ

और

आनन्द भी उठाओ

इस मनोरंजक और लाभदायक कला को घर-बैठे

सीखने के लिये विज्ञान-परिषद्

की नवीन पुस्तक

क

१ २ ख ३ ४

ग

घ

व्यंग्य चित्रण

पढ़िये

१७५ पृष्ठ; २१ पूरे पेज के चित्र-पट (एक-एक चित्र-पट में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह चित्र हैं); कपड़े की सुन्दर जिल्द

मूल्य

लेखक एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका, श्री रत्नकुमारी, एम० ए०

फल-संरक्षण

ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

मूल्य १)

फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जैली आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक १७५ पृष्ठ।

१७ चित्र, सुन्दर जिल्द

मिट्टीके बर्तन
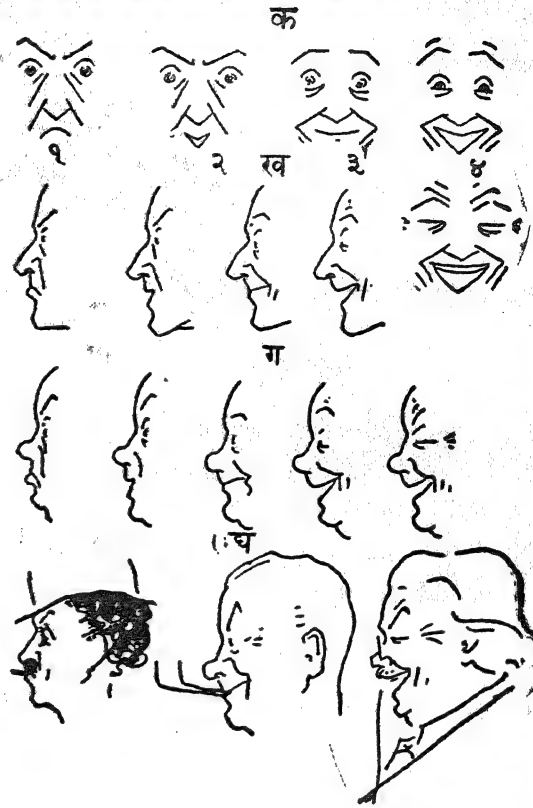
ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा मूल्य १)

दस हज़ार नुसख़े

पहला भाग शीघ्र प्रकाशित हो रहा है इसमें अचार, मुरब्बे, जेली, आकस्मिक चिकित्सा, कृषि, चमड़ा, कला कौशल, इत्र, तैल, आदिके कई हज़ार नुसख़े हैं। अभी

आर्डर दीजिये

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान Reg. No. A. 372.

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१ | प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी | मई, सन् १९४० ई० | संख्या २

अव्यक्त जीवन

[लेखक—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, बिलग्राम, हरदोई]

यदि किसी व्यक्तिसे यह पूछा जाय कि ज़िंदा और मुर्दामें क्या अन्तर है तो संभवतः उसका उत्तर यही होगा कि यदि कोई पदार्थ साँस लेता है, हिलता-डुलता है, खाता-पीता है और बढ़ता है तो वह जीवित है, नहीं तो मरा हुआ है। यदि पौधोंके सम्बन्धमें भी यही प्रश्न किया जाय तो उसका उत्तर देनेमें कदाचित् वह आगा-पीछा करेगा क्योंकि उनमें बढ़नेके अतिरिक्त जीवनकी और कोई क्रिया प्रत्यक्ष रूपसे नहीं दिखाई पड़ती है। वास्तवमें सजीवताके जो-जो लक्षण जीवधारियोंमें होते हैं वे ही लक्षण पौधोंमें भी विद्यमान होते हैं। हाँ, उन्हें ध्यान-पूर्वक देखनेकी आवश्यकता होती है।

शीत-प्रधान देशोंमें पाये जाने वाले कुछ जीव-जन्तुओंके जीवनमें भी हमें एक ऐसी अवस्थाका दर्शन होता है जिसे देखकर यह बताना कठिन होता है कि अमुक प्राणी जीवित है अथवा मृत। इस अवस्थामें उनमें चेतन पदार्थके प्रायः समस्त लक्षणोंका गोपन हो जाता है। अतएव प्राणियोंके इस प्रकारके आचरणको 'स्थगित जीवन' (suspended animation) अथवा अव्यक्त जीवन (latent life) कहते हैं। कड़ी सर्दीकी ऋतुमें ये प्राणी आलसी और अकर्मण्य तो हो ही जाते हैं, खाना-पीना, हिलना-डुलना, और पाखाना-पेशाब तक बन्द कर देते हैं। इस दशामें वे साँस लेना या तो बहुत ही कम कर देते हैं या बहुधा त्याग देते हैं। इस उपायसे वे कड़ी-सी-कड़ी सर्दीको सहनकर अपने जीवनको भयंकर परिस्थितियोंमें भी निरापद रखनेमें समर्थ होते हैं। अनुकूल परिस्थितियोंके आते ही वे पुनः चैतन्य हो जाते हैं और जीवनकी समस्त क्रियायें पहलेकी तरह होने लगती हैं।

सजीवताके प्रधान लक्षण तीन होते हैं, अर्थात् (१) उच्छ्वास वायुसे प्राण-प्रद वायुका ग्रहण करना, (२) प्रश्वास वायुके साथ कर्बन-द्विओषित गैस और जल-वाष्पकी निष्काशन और (३) जान्तविक उष्णताका निरंतर उत्पादन। सभी सजीव पदार्थोंमें ये तीनों क्रियायें थोड़ी-बहुत मात्रामें अबाध रूपसे होती रहती हैं। प्राण-प्रद वायु द्वारा मांस-पेशियोंके कर्बन और उद्जनका ओषदीकरण या दहन

क्रिया होती है जिसके कारण कर्बन-द्विओषित गैस और जल-वाष्प तो उत्पन्न होता ही है साथ ही शरीरमें उष्णताका आविर्भाव भी होता है।

सौभाग्यसे हमारे पास ऐसे साधन मौजूद हैं जिनके द्वारा हम सजीवताके इन तीनों प्रमाणों (लक्षणों) के परिमाणको नाप सकते हैं। उन साधनोंसे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अमुक प्राणीने इतने समयमें कितनी प्राणप्रद वायुका शोषण किया; कितने कर्बन-द्विओषित गैस और जल-वाष्पका उत्सर्ग किया और उष्णताकी कितनी मात्राका संचार हुआ।

सजीवताका एक और भी आवश्यक लक्षण होता है। जीवधारी वैद्युत धाराको उत्पन्न करता है। हृदयकी प्रत्येक धड़कनमें बिजलीकी एक अत्यन्त निर्बल धारा उत्पन्न होती है। इस धाराकी मात्रा भी एक अतीव नाजुक और बहुमूल्य यन्त्र-दर्पण-धारा-मापक यंत्र (mirror galvanometer) से नापी जा सकती है। इनके अतिरिक्त सजीवताके और भी कई लक्षण होते हैं जो प्रस्तुत विषय-हेतु अनावश्यक होनेके कारण छोड़ दिये गये हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि जब तक शरीरमें प्राण रहता है तब तक वह निरंतर प्राण-प्रद वायुका शोषण करता रहता है, कर्बन-द्विओषित और जल-वाष्पका निष्क्रमण करता रहता है और ताप तथा बिजलीका उत्पादन क्रिया करता रहता है। जब कोई प्राणी इन समस्त आचरणोंका करना त्याग देता है तो बस समझ लो कि वह निर्जीव हो गया है।

महाकवि शेक्सपिअरने अपने "किंगलिअर" में जानदार और बेजानकी परखके सम्बन्धमें अधोलिखित भाव किया प्रकट है। राजा कहता है—

"I know when one is dead and when one lives;
She's dead as earth. Lend me a looking-glass;
If that her breadth will mist or stain the stone
why, then she lives"

जिंदा और मुर्दाकी जाँचके लिये महाकवि-द्वारा उल्लिखित यह युक्ति हमारी आधुनिक जानकारीकी दृष्टिसे पर्याप्त नहीं है। इसका कारण यह है कि जीवनकी कुछ ऐसी अवस्थायें भी पायी जाती हैं जिनमें वैद्युत लक्षणोंके अतिरिक्त सजीवताके शेष लक्षणोंका प्रायः लोप-सा हो जाता है, उदाहरणार्थ जब हम डिबियामें रक्खे हुए कुछ सूखे बीजों (seeds) का निरीक्षण-परीक्षण करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि वे जीवितावस्थाके उपरोक्त आचरणोंका प्रदर्शन नहीं करते हैं, किन्तु इतने पर भी हम उन्हें निर्जीव नहीं कह सकते क्योंकि हम यह बात भली-भाँति जानते हैं कि अनुकूल परिस्थिति-मिट्टीमें रख कर जल, वायु, प्रकाश और गर्मीके पाते ही उनमेंसे पौधे उग आते हैं। बीजोंमें यह उगनेकी शक्ति कहाँसे आ जाती है? जल, वायु, प्रकाश और गर्मीसे उनमें यह शक्ति उत्पन्न हुई हो सो यह तो असम्भव है। अतः यह शक्ति जो प्रत्येक जीवधारीमें पाई जाती है बीजोंमें उस समयकी उपस्थिति थी जब वे मिट्टीमें बोये न गये थे।

यह सच है कि बीजोंको देखकर साधारण व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि वे जीवित हैं अथवा मृत। परन्तु जब उनमें उगकर पौधे बननेकी शक्ति प्रच्छन्न रूपसे उपस्थित है तो उन्हें निर्जीव समझ बैठना भ्रमपूर्ण है। वे अवश्य जीवित हैं। किन्तु हाँ, जब वे ओषजन (प्राण-प्रद वायु) का शोषण और कर्बन-द्विओषित और जल-वाष्पका उत्सर्ग नहीं करते तो उन्हें पूर्णतया सजीव भी नहीं कह सकते। अतएव हमें मानना पड़ेगा कि वे सजीवताकी एक प्रकारकी मध्यवर्ती अवस्थामें है जिसे हम प्रच्छन्न या अव्यक्त जीवन कहते हैं। प्राणी-शास्त्रकी दृष्टिसे अव्यक्त-जीवन एक ऐसी संकट-मोचन अवस्था होती है जिसे धारण कर जीवधारी भीषण परिस्थितियोंमें अपनी रक्षा कर सकता है।

अब यदि इन निर्जीव जान पड़ने वाले बीजोंको बिजलीका प्रबल धक्का दिया जाय तो ये उससे प्रतिस्पंदन (respond) करेंगे और धारामापक यन्त्रमें तरङ्गका अस्तित्व प्रकट करेंगे। हालका खोजा हुआ जीवनका लक्षण इतना अभ्रांत है कि वह अपनी सत्ताको उस समय तक कायम रखता है जब जीवनके शेष चिन्होंका सर्वथा लोप हो जाता है। बीजोंमें उगनेकी सामर्थ्य तो कई वर्षों तक बनी रहती है परन्तु मिश्रकी ३० हज़ार वर्ष पुरानी कब्रों और

शव-समाधीमें मिले हुये अनाजके दानोंके उगनेकी बात निराधार और भ्रमपूर्ण-सी प्रतीत होती है।

प्राणियोंमें अव्यक्त जीवनकी अवस्था अत्यन्त मनोहर और उपयोगी होती है। कुछ तुच्छ प्राणी जलाशयके सूखने पर इस अवस्थाको धारण कर कीचड़के साथ-साथ सूख जाते हैं। सन् १७१६ ई० में जबसे डच प्रकृतिवेत्ता श्री ल्यूवेनहोकने पंकके साथ सूखे हुए व्हील-प्राणियोंका अनुसन्धान किया है तबसे हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ तुच्छ प्राणी ऐसे भी होते हैं जो दीर्घकाल तक 'स्थगित जीवन' की अवस्थामें रह सकते हैं। उनकी गवेषणासे यह ज्ञात हुआ कि ये प्राणी सूखे कीचड़में दीर्घकाल तक निष्क्रिय पड़े रहते हैं और उपयुक्त वातावरण (जल) के संसर्गमें आते ही जागृत होकर पुन: तेजीसे तैरने लगते हैं। इन प्राणियोंके अतिरिक्त 'बिअर एनीमलक्यूल' 'पेस्ट ईल्स' और इन्फ्यूसोरिया जातिके कुछ सादे जीवाणु इस उपायसे दीर्घकालीन सूखासे आत्म-रक्षा करते हैं।

शीतरक्त प्राणियोंमें अव्यक्त जीवनकी अवस्था अत्यन्त व्यापक है। घोंघा, जल-बीटिल, मेढक, मछलियाँ प्रभृति प्राणी शीतकालमें बर्फ़से जम (freeze) जाते हैं। ऐसी अवस्थामें वे कभी-कभी महीनों निश्चेष्ट पड़े रहते हैं और उनकी मृत्यु नहीं होती। तदुपरांत बर्फके गलते ही घोंघे रेंगने लगते हैं, मेढक कूदने लगते हैं और मछलियाँ तैरने लगती हैं।

यह सच है कि जब वातावरणका तापक्रम ह्रासकी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो जीवधारियोंकी रासायनिक क्रिया-शीलता भी अत्यधिक मन्द पड़ जाती है, यहाँ तक कि एक सीमाके अनन्तर जीवनके प्राय: सभी वाह्य लक्षण अंतर्धान हो जाते हैं। तिसपर भी उन प्राणियोंकी जीवन-लीला समाप्त नहीं होती।

श्री फ्रैंकलिन महोदयने सन् १८२० ई० में ध्रुव-यात्रा करते समय देखा कि कुछ कार्प मछलियाँ बर्फमें जम कर इतनी ठोस और कठोर हो गई थीं उनमेंसे कुछकी अँतड़ियाँ सांगोपांग निकाली जा सकती थीं। इतने पर भी उनमेंसे कुछ जब आँचसे सेंकी गईं तो उनमें फिर चेतनता आ गई और इधर-उधर तेज़ीसे तैरने लगीं।—१५°श० ठंडी बर्फ़में जमी हुई कुछ मछलियाँ आँच दिखाने पर फिर जागृत हो उठीं यद्यपि बर्फ़में जमकर उनके शरीर इतने कड़े हो गये थे कि वे बर्फके साथ-साथ बुकनीके रूपमें पीसी जा सकती थीं एक मछली बर्फ़की सिलमें जमाई गई, तदुपरांत आरीसे बर्फके साथ-साथ अर्धांशीमें चीरी गई। बर्फ गल जाने पर उसके दोनों अर्द्धांश मृत्युसे पूर्व देर तक छटपटाते रहे।

श्री शैकल्टन महोदय (Sir Ernest Shackleton) का कथन है कि दक्षिणी ध्रुवके समुद्रोंमें कुछ जीवधारी सालमें दस मास बर्फमें जमे निश्चेष्ट पड़े रहते हैं और केवल दो मास ही स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं। वास्तवमें प्राणीकी ऐसी ही अवस्थाको हम अव्यक्त जीवन (latent life) कहते हैं।

बर्फमें जमकर मेढक इतना कड़ा और ठोस हो जाता है कि पढ़ाते समय उसे अंगूठेके सहारे उठाकर विद्यार्थियों-को दिखाया जा सकता है और यदि बर्फ गला दी जाय तो उसी समय मेढक उसी भाँति उछलने-कूदने लगता है मानों कोई बात ही न थी। प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि ऐसी परिस्थितिमें जब तक बर्फ प्राणीके हृदयके आस-पास नहीं जम जाती तब तक उसके मरनेकी संभावना नहीं होती।

कुछ प्राणियोंमें अव्यक्त जीवनसे मिलती-जुलती एक प्रकारकी और भी दशा पाई जाती है जिसे दीर्घ-निद्रा या शीत-निद्रा (hibernation) कहते हैं। यह अवस्था भी शीतकालमें उन प्राणियोंकी रक्षा करती है।

अधिक शीतके कारण मंडूक और उरग (सर्पकच्छप प्रभृति) श्रेणीके प्राणियोंकी जीवन-गति बहुत समय तक बड़े मन्द रूपसे व्यतीत होती है। जलाशयों और झीलोंके कीचड़में मेढक आदि प्राणी अपनेको तो (दफ़न कर) लेते हैं और इसी अवस्थामें जाड़ेकी सारी अवधि बिता देते हैं। यह बात नहीं कि वे इतने समय तक बर्फमें जमें पड़े रहते हैं। असलमें वे वहाँ निद्रा या सुषुप्तावस्थामें निष्क्रिय पड़े रहते हैं।

उष्ण रक्त प्राणियोंकी सुषुप्तावस्था भी असली 'अव्यक्त जीवन' से बहुत कुछ मिलती-जुलती अवस्था होती है।

डारमाउस, कछुए, भालू, साही प्रभृति प्राणी जाड़ा आते ही 'दीर्घ-निद्रा' में पदार्पण करनेकी तैयारीमें लग

जाते हैं। जिस प्रकार कोई यात्री यात्रासे पूर्व कंबल आदि एकत्रित करता है उसी प्रकार ये प्राणी भी अपने शरीरमें बहुत-सी वसा (चर्बी) का संचय कर लेते हैं। संचित वसाके कारण वे ख़ूब मोटे-ताज़े हो जाते हैं। शीतकालके आते ही वे प्राणी किसी अँतरे कोने गुह्य स्थान खोजकर उसमें विलीन हो जाते हैं और वसंतके आगमन तक वहीं निराहार, निकम्मे और निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। सुषुप्तावस्थामें यद्यपि ये प्राणी साँस नहीं लेते हैं तथापि उनके हृदय फड़का करते हैं। इसके सिवा गैसोंको आदान-प्रदान क्रिया भी अत्यन्त क्षीण पड़ जाती है। ऐसी दशामें उनके पालन-पोषणार्थ बहुत कम सामग्रीकी आवश्यकता होती है क्योंकि सोते समय वे बिलकुल हिलते-डुलते नहीं हैं। शरीरमें संग्रहीत वसासे वे आवश्यकता भर खाद्य-सामग्री पाते रहते हैं। यही नहीं, वसाके ओषदीकरण द्वारा उन्हें आवश्यक गर्मी भी प्राप्त होती रहती है। इसी कारण जागृत होने पर वे अत्यन्त कृश और शीतल हो जाते हैं।

जब हम मनुष्योंके विषयमें विचार करते हैं तो हमें उनमें भी कभी-कभी इस प्रकारके आचरणोंके दर्शन होते हैं। उनमें पाई जाने वाली इस भाँतिकी अवस्थाको 'मूर्च्छावस्था' (narcolepsy) कहते हैं। कभी-कभी वे घोर निद्रा अथवा ऊँघनेकी अचेतावस्था (coma) में कई दिनों—नहीं हफ़्तों तक पड़े रहते हैं। ऐसी दशामें वे मुश्किलसे साँस लेते हैं और हृदयकी गति मन्द हो जाते ही उनकी नब्ज़का कहीं पता तक नहीं लगता है और न हृदयकी धड़कन ही सुनाई देती है।

श्री कर्नल टासेंडकी घटना अत्यन्त प्रसिद्ध है। उनके सम्बन्धमें विशेषता तो यह थी कि 'स्थगित जीवन' की अवस्थाका आवाहन उन्होंने स्वतः किया था और इस अवस्थामें वे घंटों पड़े रहे। उस समय न वे साँस ले रहे थे और न उनकी नब्ज़ ही चलती थी।

यही दशा हमारे देशके उन साधुओंकी होती है जो समाधिके रूपमें इस साधनाका स्वतः आवाहन करते हैं। इन साधनाओंको कपट और छल-पूर्ण समझ बैठना भूल है। अधिकांश घटनाएँ सत्य ही होती हैं। एक व्यक्तिने तो अपने कानों और नथुनोंमें रुई भर कर ऊपरसे थैलीनुमा वस्त्र सिलवा लिया। तदुपरांत उसे पिटारेमें बन्दकर उसमें ताला लगा दिया गया। फिर पिटारा ज़मीनमें गाड़ दिया गया। छः सप्ताहके अनन्तर जब वह पिटारा खोला गया तो डाक्टरने बताया कि वह जीवित है। महाराज रणजीत सिंह ने भी इसी भाँति एक साधुको बन्द कर उसकी परीक्षा की थी।

प्रसिद्ध दर्शनाचार्य एपीमेनिडस एक बार निरन्तर ७५ वर्ष तक सोता रहा; माइनीस्टाके पास होम्स नामक एक व्यक्ति ३० वर्ष तक सोता रहा; सोनेसे पूर्व उसकी तोल १८ सेर थी और जागने पर वह केवल ४२ सेर ही रह गया। ड्रेसेडनमें रेलगाड़ीकी झंडी दिखाने वाला एक दुर्घटना हो जानेके पश्चात् १८ वर्ष तक ऐसी ही बेहोशीकी अवस्थामें पड़ा रहा। कहीं-कहीं तो मनुष्यको मरा समझ उसके सम्बन्धी शव-दाहके हेतु उसे मरघट तक ले गये। बादको मालूम हुआ कि वह मरा न था, वरन् मूर्च्छावस्थामें था।

कैसी विचित्र है ईश्वरकी यह सृष्टि !

फ़ोटोग्राफ़ीका व्यवसाय

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद]

फ़ोटोग्राफ़ीसे धनोपार्जनके लिये या तो मनुष्य-चित्रण, या रोज़गारियोंके लिये फ़ोटो खींचना, या समाचार पत्रोंके लिये फ़ोटो खींचना, अमेचरोंके निगेटिव डेवेलप करना और छापना, या फ़ोटोग्राफ़ीका सामान बेंचना, ये कई एक साधन हैं। यूरोपमें इन सबका व्यवसाय पृथक्-पृथक चलता है। परन्तु भारतवर्षमें अभी फ़ोटोग्राफ़ीसे धनोपार्जनने इतनी उन्नति नहीं की है कि इन भिन्न-भिन्न साधनों का अवलम्ब केवल भिन्न-भिन्न व्यक्ति ही ले सकें। यहाँ तो अकसर एक ही व्यक्ति उपरोक्त समस्त कार्योंको थोड़ी बहुत मात्रामें स्वयं अकेले करता है। तो भी इस लेखमें मनुष्य-चित्रण पर विशेष रूपसे विचार किया जायगा।

क्या जानना चाहिये—फ़ोटोग्राफ़ीके व्यवसाय करने

वालेको फ़ोटोग्राफ़ी अच्छी तरह पहले ही सीख लेनी चाहिये। क्रियात्मक फ़ोटोग्राफ़ीमें सिद्ध-हस्त होनेके अतिरिक्त कुछ सिद्धान्तका भी ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि इस व्यवसायमें तरह-तरहके लोगोंसे सामना होता है और सब पर अपना सिक्का जमा रहनेके लिये यह आवश्यक है कि काम भी अच्छा हो और फ़ोटोग्राफ़रको सिद्धान्तका भी ज्ञान हो। किसी अच्छी पुस्तकके आद्योपान्त अध्ययनसे आवश्यक ज्ञान शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है।

सिद्धान्त और वैज्ञानिक फ़ोटोग्राफ़ी जाननेके अतिरिक्त कलाका भी ज्ञान होना चाहिये। वस्तुतः यदि फ़ोटोग्राफ़र किसी कला-पाठशालामें कुछ वर्षों तक रह कर अच्छी पच्चीकारी सीख ले तो वह अधिक सफल व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़र हो सकता है। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक फ़ोटोग्राफ़ीसे कैमरेके सामनेकी वस्तुका सच्चा चित्रअवश्य खींचा जा सकता है। परन्तु यह कलाका ही काम है कि फ़ोटोग्राफ़रको बतलाये कि विषय पर प्रकाश किधरसे पड़ना चाहिये, बैठने वाला किस ओर मुँह करके और किस प्रकार बैठे कि सुन्दर और भावपूर्ण चित्र उतरे, इत्यादि। यों तो सभी व्यक्ति न्यूनाधिक मात्रामें कलाकार होते हैं, सभीको सुन्दर और भद्दे चित्रोंकी कुछ-न-कुछ पहचान होती है और इसी स्वाभाविक प्रेरणाके बल पर बिना कलाका अध्ययन किये ही बहुतसे फ़ोटोग्राफ़र काफ़ी अच्छा काम कर लेते हैं, परन्तु कलाके विशेष अध्ययनसे अवश्य ही फ़ोटोग्राफ़रका काम अधिक उच्च श्रेणीका होगा।

यदि फ़ोटोग्राफ़रके शहरमें बिजली हो तो उसे बिजलीका भी ज्ञान होना चाहिये। फ़ोटोग्राफ़रकी स्टूडियो (कार्य-कक्ष) में अनेक प्रकारकी बिजलीकी बत्तियाँ तथा अन्य यंत्र लगाने पड़ते हैं। स्वयं इन सब बातोंको न समझे फ़ोटोग्राफ़रको बात-बातमें दूसरोंका मुँह जोहना पड़ेगा।

इन सब बातोंके ज्ञानके अतिरिक्त एक बहुत ही आवश्यक गुण है जो सब व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़रोंमें होना चाहिये। वह यह कि उसे बहुत मिलनसार होना चाहिये। उसे आदमी पहचानना चाहिये। उसकी बात-चीत उसका आचार-विचार, उसकी वेश-भूषा ऐसी हो कि कुछ ही मिनटोंमें ग्राहकोंसे उससे मैत्री हो जाय। बिना इसके फ़ोटोग्राफ़ोंमें फ़ोटो खिंचाने वालेका सच्चा भाव आ ही नहीं पाता। अजनबीके सामने उनका भाव कुछ तनासा रहता है। फ़ोटोग्राफ़रमें उपरोक्त गुणोंके रहने पर और साथ ही अच्छा काम करने पर एक बार जो ग्राहक उसकी दूकान पर आयगा वह फिर कहीं भटक कर दूसरी दूकान पर नहीं जायगा और अकसर जो ग्राहक दो रुपयेका सस्ता फ़ोटोग्राफ़ खिंचवानेके लिये आएँगे वे प्रसन्न होकर बीस रुपयेका फ़ोटोग्राफ़ या एनलार्जमेंटका आर्डर दे जायँगे।

परन्तु इसका भी ध्यान रहे कि धृष्टतासे सदा दूर रहना चाहिये। कोमल स्वभाव वालोंको धृष्ट व्यक्तियोंसे तुरन्त चिढ़ हो जाती है। ठीकसे बात करनेके लिये फ़ोटोग्राफ़रको अच्छी संस्कृति चाहिये। वह हमेशा अच्छी सोहबतमें रहे; अच्छी पुस्तकें पढ़ा करे: नित्य समाचार पढ़े; राजनीति, साहित्य, संगीत, धर्म, शिक्षा, खेल, शिकार, आदि, आदि दरजनों विषयोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान उसे होना चाहिये, जिसमें यदि कोई ऐसी बात छिड़ जाय तो उसे मूर्खकी तरह हाँ और हूँ करके ही समय न बिताना पड़े। उसे सदा प्रसन्न चित्त रहना चाहिये। खराब-से-खराब ग्राहकोंसे भी झुँझलाना न चाहिये।

यह सब बातें उन फ़ोटोग्राफ़रोंके लिये विशेष आवश्यक है जिन्हें एक दिन प्रथम श्रेणी तक पहुँचनेका हौसला है क्योंकि उन्हें बड़े-बड़े व्यक्तियोंके फ़ोटो खींचनेका अवसर प्राप्त होगा। फ़ोटोग्राफ़र समाजके जिस श्रेणीका होगा उसी श्रेणीसे उसके अधिकांश ग्राहक आयँगे।

उपरोक्त गुणोंके अतिरिक्त फ़ोटोग्राफ़रमें बही-खाता और व्यवसायी पत्र-व्यवहार लिखनेकी भी योग्यता होनी चाहिये। यों तो टेढ़ा-मेढ़ा हिसाब या काम-चलाऊ पत्र-व्यवहार सभी कर सकते हैं, परन्तु इसे विशेष रूपसे सीखनेसे ग्राहक-संख्या बराबर बढ़ती जायगी और विरला ही कोई असंतुष्ट होकर फ़ोटोग्राफ़रकी दूकान पर आना छोड़ देगा। बहुतसे फ़ोटोग्राफ़र अन्य सब काम तो कर लेते हैं, परन्तु उनसे बही-खाता लिखना, उचित समय पर तक़ाज़ा भेजना, पत्रोंका ठीक संक्षिप्त और प्रभावशाली उत्तर तुरन्त देना, विज्ञापनका प्रबन्ध करना आदि आवश्यक कार्य नहीं निभते। ऐसे लोग यदि कोई साझीदार रख लें जो इन सब बातोंको सँभाले तो अधिक अच्छा होगा।

पूँजी—कितनी पूँजी चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि उद्देश्य क्या है। एक ओर तो वे लोग हैं जो ख़ूब सस्ता काम देकर सस्ता माल खोजने वालोंको आकर्षित करते हैं। इस काममें मेहनत अधिक और नफ़ा थोड़ा है। दूसरी ओर वे लोग हैं जो बढ़िया-से-बढ़िया काम ही बनाना चाहते हैं। इनको अपने स्टूडियो भी सजा कर रखना पड़ता है और उन्हें स्वयं भी अच्छे ठाटसे रहना पड़ता है। ये लोग बहुत सस्ता काम करें तो परता ही नहीं पड़ेगा। अवश्य ही, यहाँ काम कम रहता है और प्रति फ़ोटो नफ़ा अधिक रहता है। यदि ऐसे लोगोंमें ऊपर के प्रकरणमें बतलाये हुए गुण हों और दूकान काफ़ी बड़े शहरमें हो तो धीरे-धीरे ग्राहक-संख्या काफ़ी बढ़ जाती है और कुल मिला कर इतना नफ़ा होता है जितना सस्ता काम करने वालोंके यहाँ प्रतिदिन १६ घंटे काम करने पर भी नहीं हो सकता।

सस्ते और बहुत मँहगे कामोंके बीचमें कई श्रेणियाँ हो सकती हैं।

किसी विशेष व्यक्तिके लिये किस कामकी ओर झुकना चाहिये यह उसकी रुचि और योग्यता पर निर्भर है, परन्तु इतना सस्तेमें काम लेनेमें कि अच्छा काम बन न पड़े या यदि दो-चार छाप या निगेटिव खराब हो जायँ तो उनके बदले मुफ़्तमें दूसरा चित्र खींच लेनेकी गुंजाइश न हो अंत में घाटा ही रहता है।

कुछ भी हो सस्ती फ़ोटोग्राफ़ीमें कम-से-कम एक साल और मँहगी फ़ोटोग्राफ़ीमें दो-तीन साल तक घरसे निकाल कर खर्च करना पड़ेगा ऐसा समझ कर व्यवसाय आरंभ करना चाहिए। फ़ोटोग्राफ़ीका काम नाम पर चलता है। अच्छा काम करने पर भी नाम धीरे-धीरे पैदा होता है। इसीलिये काफ़ी दिनों तक बिना नफ़ा हुए दूकान चला लेनेकी पूँजी रखकर दूकान खोलनी चाहिये। चाहे अपना घाटा भी क्यों न हो जाय, काम बराबर यथासंभव सर्वोत्तम ही बनाकर देना चाहिये।

यदि व्यवसायमें किसी स्त्रीका भी सहयोग मिल सके तो अधिक लाभ हो सकेगा। बहुत सी परदानशीन स्त्रियाँ अब भी पुरुषों से फ़ोटो नहीं खिंचवाना चाहतीं।

अपने खानेके ख़र्चके ऊपर दूकान का ख़र्च भी रखना चाहिये। शहर की हैसियत और अपना उद्देश्य देखकर दूकान लेनी चाहिये। बीच बाज़ार की दूकानें एक दृष्टि से बहुत अच्छी भी हैं विशेषकर सस्ती फ़ोटोग्राफ़ीके लिये, परंतु एक दृष्टि से वे बुरी भी हैं। बीच बाज़ार में मकान बड़े मँहगे मिलते हैं इसलिये या तो बहुत कम स्थानमें काम करना पड़ेगा या बहुत किराया देना पड़ेगा। बहुत किराया देनेसे हो सकता है दूकानमें बराबर घाटा ही लगा करे। बहुत कम स्थान के कारण अच्छे व्यक्तियों को आकर्षित करने की शक्ति दूकानमें नहीं रहेगी। इसलिये अच्छे कामके लिये बाज़ारके पास ही यथासंभव चौड़ी सड़क पर दूकान खोलना अच्छा होगा। आस-पासकी दूकान चित्ताकर्षक चीज़ोंकी हो। आपकी दूकान ऐसी हो कि दरवाज़े तक ग्राहक अपनी मोटर ला सकें। वस्तुतः, यदि दूकान ऐसी जगह खोली जाय जहाँ मोटर वाले साधारणतया सौदा खरीदने जाया करते हैं तो अधिक अच्छा होगा।

फ़ोटोग्राफ़रको सदा ध्यान रखना चाहिये कि उसके असली प्रतिद्वंद्वी वे लोग हैं जो लोगोंका फालतू रुपया ख़र्च कराते हैं, जैसे कपड़ेकी दूकानें, फैंसी सामान बेचने वाले या आभूषण आदि बनाने वाले। इसलिये फ़ोटोग्राफ़र की दूकान भी ऐसी साफ़-सुथरी और आकर्षक हो कि लोगों को वहाँ आने और फ़ोटो खिंचानेमें लोगों को आनंद मिले और उसकी फ़ोटो भी ऐसा सुन्दर हो कि वर्षों तक उससे लोगोंको आनंद मिलता रहे। स्टूडियोमें फर्निचर (कुर्सी मेज़ वगैरह) थोड़ा हो, परंतु हो अच्छे मेल और आधुनिक फैशन का। यह नियम बना लेना चाहिये कि स्टूडियो या दूकानमें बेमतलब का काठ-कबार या फालतू फर्निचर न भरा हो। केवल अत्यंत आवश्यक वस्तुएँ ही हों। शेष सामानको कहीं छिपाकर रखना चाहिये, आवश्यकतानुसार उनमेंसे इच्छित वस्तु कामके लिये निकाली जा सकती है।

ऊपरकी बातों पर ध्यान रखते हुये और नीचे के प्रकरण में से आवश्यक सामान पर विचार कर पाठक स्वयं तय कर सकेगा कि उसे कितनी पूँजीकी आवश्यकता पड़ेगी।

स्टूडियो और कैमेरा—स्टूडियोके भीतर साधारणतः हाफ़-प्लेटसे बड़े नेगेटिव बनानेकी आवश्यकता नहीं

पड़ती, परंतु कलाको दृष्टि से सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ लेने के लिये बहुत लंबे फ़ोकल लंबानके लेंज़की आवश्यकता पड़ती है। हाफ़प्लेट पर साधारणतः बीस या बाइस इंचमें फ़ोकल लंबानका लेंज प्रयुक्त किया जाता है। प्रकाश-दर्शन (एक्स पोज़र) कम करने के लिये बड़े अपरचरका लेंज लगाया जाता है (फ़/६ या फ़/४·५)। ऐसा लेंज़ इतना भारी होता है कि हाफ़-प्लेटके बने साधारण कैमरोंपर वह नहीं लगाया जा सकता। इसलिये लोग साधारणतः १०×१२ इंच या इससे थोड़ा ही छोटा या बड़ा कैमरा इस्तेमाल करते हैं।

यदि स्टूडियो के बाहर, लोगोंके मकानों या अन्य स्थानों पर जाकर ग्रूप (समूह-चित्र), या स्त्रियों और बच्चों आदिका चित्र भी खींचना हो तब तो फ़ोल्डिंग स्टैंड (फ़ील्ड) कैमेरा रक्खा जा सकता है, परंतु यदि स्टूडियोके भीतरके कामके लिये 'स्टूडियो-कैमेरा' खरीदा जा सके और यह स्टूडियो-स्टैंड पर आरोपित हो तो अधिक सुविधा होगी। इस प्रकारका कैमेरा और उपरोक्त मेलका लेंज़ दोनों ही बड़े मँहगे मिलते हैं। इसलिये आरंभ में अधिक सस्ते कैमेरे और लेंज़से काम चलाया जा सकता है (जैसे हाफ़-प्लेट स्टैंड कैमरा और फ़/८ का लेंज़), परंतु यह परमावश्यक है कि लेंज़का फोकल लंबान चौदह-पंद्रह इंचसे कम न रहे। पीछे अधिक अच्छा कैमेरा लिया जा सकता है। कभी-कभी ये सेकंड-हैंड बहुत सस्ते में मिल जाते हैं।

आधुनिक अति तीव्र प्लेटोंके कारण स्टूडियोके लिये अब अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि बिजली की बत्तीसे काम करना हो तो किसी भी बड़ी और दस-बारह फ़ुट ऊँची कोठरीसे काम चल जायगा। परंतु यह कोठरी १०×२० फ़ुट से छोटी न हो। अच्छा तो यह होगा कि कोठरी २०×३० फ़ुटकी हो। यदि बिजलीकी रोशनीके बदले दिनके प्रकाशसे काम करना हो तो छतका एक कोना शीशेका हो या छतसे सटकर किसी दीवारमें बड़ीसी खिड़की हो (पूरा ब्योरा अन्यत्र दिया जायगा)।

पीछेके परदे पहले हाथके रँगे रहते थे जिनमें खंभे, सीढ़ी आदि बने रहते थे। अब इनका फ़ैशन नहीं रहा। यदि अच्छी संस्कृतिके ग्राहक स्टूडियो पर आते हों तो कदाचित आधुनिक शैलीके अनुसार पीछे साधारणतः (एक रंगा) परदा ही वे पसंद करेंगे।

ऐसा प्रबंध अवश्य होना चाहिये कि गरमीके दिनों में स्टूडियो ठंढा रहे और जाड़े के दिनोंमें इसे गरम किया जा सके। किसी भी कोठरीको जाड़ेमें आसानीसे गरम किया जा सकता है। इसके लिये लकड़ीका कोयला जलानेकी अँगीठी, या बिजलीसे मकान गरम करनेका यंत्र (रेडिमेटर), या पत्थरका कोयला जलानेका दीवारमें बना हुआ चिमनी-युक्त फ़ायरप्लेस काफ़ी होगा। परंतु गरमीमें स्टूडियोको ठंढा रखनेमें अधिक कठिनाई पड़ेगी। तो भी बिना किसी उचित प्रबंधके यह आशा करना कि पसीनेसे तर ग्राहकों का फ़ोटो अच्छा आयगा वृथा है।

स्टूडियो गरमीमें भी ठंढा रहे इसके लिये निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। (१) स्टूडियो ऐसे स्थान में हो कि इसकी छतपर धूप न पड़े। यदि स्टूडियोके ऊपर कोठा हो तो इस उद्देश्यकी पूर्ति आप-से-आप ही हो जायगी, परन्तु यदि एक मंज़िला मकान में स्टूडियो बनाना पड़े तो पक्की छत बनवाकर उस पर खपरैल या ऐस्बेस्टस टाइल छवा दे, या यदि इसमें आपत्ति हो तो छतके ऊपर फूसकी मोटी तह (आठ या नौ इंच काफ़ी होगा) बिछा दे। मेरे एक मित्र जो भौतिक-विज्ञानके विशेषज्ञ हैं कहते हैं कि यदि छत पर एक ही नापकी हाँड़ियाँ (मिट्टी के बरतन) उलटकर रख दी जायँ और वे एक दूसरे से सटी रहें तो काफ़ी होगा। शायद इन हाँड़ियोंके ऊपर कोई टाट या बोरा तान देना अधिक अच्छा होगा। मतलब यह है कि कोई ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि छत पर धूप न पड़ने पाय। यदि संध्या समय छत पर प्रति दिन अच्छी तरह पानी भी छिड़क दिया जाया करे तो अधिक अच्छा होगा।

(२) छतको धूपसे बचानेके अतिरिक्त यह आवश्यक है कि दीवारों पर भी धूप न पड़े। यदि पूरब, दक्खिन और पच्छिमकी ओर दालान या अन्य कोठरियाँ हों तो यह कार्य भी आप-से-आप सिद्ध हो जायगा। अन्यथा टाटके परदे-का या अन्य किसी उचित उपायका सहारा लेना चाहिये। यदि स्टूडियोके अगल-बगल और पीछेकी ज़मीन सब अपनी हो तो स्टूडियोका मुँह उत्तरकी ओर रक्खा जाय और इसके बाक़ी तीनों ओर नीम आदिके पेड़ लगा दिये जायँ।

(३) धूपसे रक्षाके अतिरिक्त स्टूडियोमें पंखा भी अवश्य चाहिये। यदि बिजली न हो तो छतसे टँगे पंखे

और पंखा कुली का प्रबंध हो। जेठ-वैसाखके दिनोंमें खसकी टट्टीका प्रबंध हो।

(४) इसके अतिरिक्त रातके समय आमने-सामनेके दो जँगले अवश्य खुले छोड़ दिये जायँ (यदि चोरका डर हो तो छड़दार जँगले बनवाना चाहिये) फर्शको प्रति दिन धुलवा डाला जाय। इन छोटी-छोटी बातोंसे भी स्टूडियोके तापक्रममें काफी अंतर पड़ जायगा।

अब तो बिजली द्वारा संचालित ऐसे भी यंत्र बनते और बिकते हैं जिनसे किसी भी मकान को इच्छानुसार ठंढा रक्खा जा सकता है। इतना ही नहीं, ये यंत्र मकानमें आने वाली वायु को स्वच्छ भी कर देते हैं (एअर-कंडिशनिंग) परन्तु ये यंत्र अभी बहुत मँहगे बिकते हैं।

स्टूडियोमें जितने भी बिजलीके यंत्र रहें वे इस प्रकार लगे रहें कि उनसे किसी भी लड़केको, चाहे वह शरारती हो, चाहे सीधा, किसी प्रकारकी हानिकी संभावना न हो। टेबुलफैन यदि कहीं हो तो यह काफ़ी ऊँचे पर रहे। बिजलीका तार ज़मीन पर न पड़ा रहे। कम-से-कम वह रास्ते में न रहे।

साधारणतः पैनक्रोमैटिक प्लेटोंका ही उपयोग करना चाहिये। इसमें अनेक लाभ हैं, जिनके यहाँ गिनानेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि औरोंके घर जाकर अकसर बच्चों आदिका फ़ोटो खींचना पड़े तो दो या तीन फ़ोटो-फ्लड लैंपकी जातिके बिजलीके बल्ब भी रिफ़्लेक्टर और स्टैंड सहित रखना चाहिये। ये बल्ब कम बिजली लेते हैं और प्रकाश बहुत देते हैं। ये सस्ते बिकते हैं यद्यपि बल्ब डेढ़-दो घंटे चलते हैं।

दाम—नये व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़रको इसमें भी विशेष कठिनाई पड़ती है कि दाम क्या रक्खा जाय। कुछ तो अन्य फ़ोटोग्राफ़रोंसे कम दाम रखकर ग्राहकोंको अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि फ़ोटोग्राफ़ खिंचवाना शौककी चीज़ है। भोजन या कपड़ेकी तरह आवश्यक वस्तु नहीं है। इसलिये पहलेसे निश्चय कर लेना चाहिये कि उद्देश्य क्या है—बढ़िया-से-बढ़िया काम केवल धनी लोगोंके लिये करना या साधारण व्यक्तियोंके लिये साधारण अच्छा काम करना या सब-से-सस्ता (परन्तु तब भी अच्छा) काम करना—और इसी निश्चय के अनुसार अपना सज-धज और दाम रखना चाहिये। परन्तु किसी भी हालतमें दाम इतना कम न हो कि काम अच्छा न हो सके। फ़ोटोग्राफ़ीमें अच्छे काम से अधिक ग्राहक आते हैं, चाहे वह दूसरेसे ज़रा-सा मँहगा ही क्यों न हो। परन्तु काम बराबर अच्छा हो। एक ही ख़राब फ़ोटो ग्राहकके हाथ में जाने से अंतमें हानि होगी।

चाहे जो कुछ भी काम निश्चय किया जाय, सबसे एक ही दाम लेना चाहिये और मोल-चाल न करनी चाहिये। जो किसीसे कुछ, किसीसे कुछ लिया करते हैं, वे अन्तमें ठगी के लिये बदनाम हो जाते हैं और उनका रोज़गार नहीं चलता। एक किसी विशेष नाप और शैलीके लिये साधारण से कुछ कम दाम रखना, या किसी विशेष जातिके ग्राहकोंके लिये (जैसे विद्यार्थियों या बच्चोंके लिये) कुछ कम दाम रखना दूसरी बात है।

नेगेटिव बनानेका दाम साधारणतः पहली तीन प्रतियों में जोड़ लिया जाता है। इसीलिये फ़ोटोग्राफ़ोंका दाम अकसर यों रक्खा जाता है कि फ़ोटोग्राफ़की तीन प्रतियोंके लिये इतना लगेगा और उसके प्रत्येक फ़ोटोके लिये इतना—जैसे यदि प्रथम तीन प्रतियोंके लिये ५) लगेगा तो इससे अधिक जितनी प्रतियाँ ली जायँगी उनका लगभग १) हर एक प्रतिके लिये लगेगा।

फ़ोटो खींचनेके बाद प्रूफ़ शीघ्र भेजना चाहिये क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे उत्साह या उत्सुकता कम होती जाती है और ग्राहक अधिक आलोचनात्मक हो जाता है।

वही-खाता—व्यवसायके लिये यह परमावश्यक है आरम्भसे ही ठीक-ठीक बही-खाता लिखा जाय। इससे पीछे जब चाहें तब पता लग सकता है कि किसी विशेष मदमें कितना खर्च हुआ, किसी विशेष शाखामें कितना लाभ हुआ। इसके अतिरिक्त एक ऐसा रोज़नामचा भी रखना चाहिये जिसमें प्रत्येक आर्डरका ब्योरा लिखा जाय और उस कामकी पूर्तिकी तिथि अंतमें लिख ली जाय। सब काम ज़बानी करनेसे अवश्य कभी-न कभी भूल हो जायगी; किसी विशेष कामका स्मरण न रहनेके कारण वह वचन किये हुये समय पर तैयार न हो सकेगा। एक डायरी या रोज़नामचा ऐसा भी रखना चाहिये जिसमें एनगेजमेंट नोट कर लिये जायँ।

ऐसे रोज़नामचेमें उस तिथिके पृष्ठपर जिस दिन कहीं बाहर जाकर फ़ोटो खींचना है लिख लिया जायगा कि अमुक स्थानपर अमुक समयपर फ़ोटो खींचने जाना है। यदि उसी दिन किसी दूसरे समयपर कोई आकर स्टूडियोमें फ़ोटो खिंचाने वाला है तो यह बात भी उसी तिथि वाले पृष्ठपर लिखी जायगी। इस प्रकार किसीसे समय निश्चित करते समय फ़ोटोग्राफ़र क्षण भरमें जान सकता है कि उक्त समयपर अन्य किसी कामके लिये तो उसने वचन नहीं दे दिया है। फिर, प्रतिदिन सबेरे इस डायरीमें देखनेसे वह तुरन्त जान जायगा कि उसे उस दिन क्या-क्या करना है।

यदि ग्राहकोंके स्वागतके लिये कोई दूसरा व्यक्ति नियुक्त हो तो उसे चाहिये कि आर्डरकी दो प्रति बनावे, जिसमेंसे एक वह तुरन्त फ़ोटोग्राफ़रके पास भेज दे। इससे फ़ोटोग्राफ़र बिना ग्राहकसे फिर पूँछे ही जान जायगा कि कितना बड़ा फ़ोटो चाहिये, ग्राहकका नाम क्या है, बच्चेका फ़ोटो खींचना है या बच्चे और माँका ग्रूप, इत्यादि।

आर्डर का नम्बर महत्वपूर्ण है। इसीसे तुरन्त पता लगता है कि कोई विशेष फ़ोटो या नेगेटिव किसका है। बहीमें भी यही दर्ज रहे। नेगेटिवके एक कोनेमें भी यह नम्बर आलपीनसे खरोंच दिया जाय। पीछे जब ग्राहकसे किसी विशेष फ़ोटोकी अधिक प्रतियोंके लिये आर्डर आयेगा तो इस नम्बरसे बड़ी सहायता मिलेगी। यदि एक ही आर्डरके लिये एकसे अधिक नेगेटिव बने हैं और दोनोंको सुरक्षित रखना है तो सबों पर एक ही आर्डर नम्बर लिखना चाहिये, परन्तु भिन्न-भिन्न नेगेटिवोंके पहचानके लिए नम्बरके आगे क, ख, ग, आदि अक्षरोंका प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः प्रत्येक चित्रके लिये दो नेगेटिव बनाये जाते हैं और जो अधिक अच्छा होता है उसीका प्रूफ़ भेजा जाता है।

यदि सब व्यवहार नकद किया जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा कामके बाद बिल शीघ्र ही भेजना चाहिये। सस्ते फ़ोटोग्राफ़ोंके लिये नगद सौदा बेचना ही अच्छा है, परन्तु अधिक दामके फ़ोटोग्राफ़ोंके लिये जिन्हें धनी और मातबर लोगोंने खिंचाया हो बिल भेजना ही अच्छा होता है, यद्यपि इसमें झंझट और लिखा-पढ़ी अधिक रहती है। बिल भेजनेके बाद जब पहली तारीख़ आये तो बिलकी नक़ल फिर भेज देनी चाहिये और नौकरको सिखला देना चाहिये कि वह चिट्ठी देकर चला न आये। वह पूछ ले कि चेक मिलेगा या नहीं। यदि उस समय रुपया न मिल सके तो १५ तारीख तक कोमल शब्दोंमें लिखा रिमाइंडर भेजना चाहिये, इत्यादि। उन सब चिट्ठियोंकी नक़ल अवश्य रख लेनी चाहिये जिनमें किसी विशेष धनकी चर्चा हो, चाहे वह पत्र तक़ाज़ेका हो, चाहे किसी कामका अनुमान।

विज्ञापन—अधिक मँहगा होनेके कारण समाचार पत्रोंमें विज्ञापन छपाना साधारणतः संभव नहीं होता, परन्तु यदि कुछ महीनों तक किसी स्थानीय पत्रमें विज्ञापन बराबर छपाया जाय तो अच्छा ही है। साधारणतः लोगोंके पास गश्ती (छपी हुई) चिट्ठी भेजना काफ़ी होता है। इसके अतिरिक्त दूकानके दरवाज़ेके पास दो-चार अच्छे फ़ोटो लगाना चाहिये। भीतर दो-चार अच्छे फ़ोटो टँगे रहें। सारी दीवारको फ़ोटोसे भर देना अच्छा नहीं है। इसके बदले एक-दो ऐलबम मेज़ पर रक्खे रहें जिनमें फ़ोटोग्राफ़रके खींचे अच्छे फ़ोटो रहें।

इन सबसे जो विज्ञापन होता है उसके अतिरिक्त एक प्रकारका सूक्ष्म विज्ञापन यह है कि फ़ोटोग्राफ़र सार्वजनिक कार्योंमें प्रमुख भाग ले। अपनी रुचिके अनुसार धार्मिक, राजनैतिक, नागरिक, साहित्यिक, या कला, शिक्षा, खेल या व्यायाम सम्बन्धी कामोंमें सम्मिलित होना अच्छा है। फ़ोटोग्राफ़ी-सम्बन्धी कामोंके साधारण अंशोंको स्वयं ही करनेके बदले यदि एक सहायक रख लिया जाय और थोड़ा समय लोगोंसे जान-पहचान पैदा करने और काम पानेकी चेष्टा करनेमें लगाया जाय तो कुल मिलकर संभवतः अधिक लाभ हो सकेगा।

विविध बातें—यदि साथ-ही-साथ फ़ोटोग्राफ़ों पर चौखटा लगानेका काम भी किया जाय तो इससे भी कुछ लाभ हो सकता है, परन्तु चौखटे सुरुचि-पूर्ण हों और बहुत-सा माल इकट्ठा ही खरीद कर न रख लिया जाय। आवश्यकता और अनुभवके अनुसार थोड़ा-थोड़ा माल खरीदा जाय।

पैनक्रोमैटिक प्लेटोंके प्रयोगसे रि-टचिंगकी आवश्यकता अब कम पड़ती है, परन्तु तो भी पड़ती है। इसलिये

फ़ोटोग्राफ़रको अवश्य एक ऐसा व्यक्ति रखना चाहिये जो रि-टचिंग और फ़िनिशिंग अच्छा जानता हो। हो सकता है आरम्भमें फ़ोटोग्राफ़रके पास इतना कम काम आये कि वह दूसरे व्यक्तिको न रख सके। ऐसी दशामें फ़ोटोग्राफ़र स्वयं रि-टचिंग कर सकता है, परन्तु यह काम निरन्तर अभ्यास करते रहने ही से अच्छा आता है। इसलिये एक ही व्यक्ति ग्राहकोंसे बात भी करे एक्सपोज़, डेवेलप, रिटच, प्रिंट, माउंट और स्पट भी करे, बही-खाता लिखे और तक़ाज़ा भी करे और सब काम अच्छी तरह हो, यह संभव नहीं है।

स्मरण रक्खो कि जिस क्षणसे कोई व्यक्ति फ़ोटो खिंचवानेका ख़र्च पूँछने आये उस क्षणसे लेकर अन्त तक जब तक कि वह सब रुपया चुकता न कर दे उसकी ओर कभी भी उपेक्षाका भाव न आने दिया जाय। उसके साथ ऐसा सलूक किया जाय जैसे उसी पर आपका सब भविष्य निर्भर है। प्रत्येक ग्राहकको ओर आपका ऐसा ही बर्ताव रहे। जिस कामको जिस समय पर देनेका वचन दिया गया हो उस कामको उस समय पर अवश्य देना चाहिये। चाहे इसके लिये रात-रात भर क्यों न मेहनत करनी पड़े।

चाहे आपके ऊपर कितना भी कार्य-भार क्यों न हो, फ़ोटोग्राफ़ोंको ग्राहकके पास भेजनेके पहले उसका एक बार निरीक्षण आपको स्वयं अवश्य कर लेना चाहिये। चाहे नौकर कितने भी मातबर क्यों न हों ऐसा न करनेसे कभी-न-कभी धोखा खाना पड़ेगा और आपकी बदनामी होगी।

महाराष्ट्र भाषाका वैज्ञानिक साहित्य

[ले०—डा० वा० वि० भागवत, डी-एस्-सी]

(यह लेख 'अर्वाचीन मराठी साहित्य' में प्रकाशित "शास्त्रीय वाङ्मय" (ज० नी० कर्वे के) लेखकी सहायतासे लिखा गया है।)

इस लेखमें मराठी भाषामें सन् १८१८ से आज तक प्रकाशित हुए शास्त्रीय ग्रंथोंका संक्षिप्त विचार किया गया है। उनका संपूर्ण विवेचन इस छोटेसे लेखमें स्थानाभावसे नहीं हो सकता।

शास्त्रीय वाङ्मयके भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, वनस्पतिशास्त्र, शिल्पशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, वैद्यक आदि विभाग हैं। इसलिये हर एक विभागका विचार स्वतन्त्रतासे करना उचित होगा।

गणितशास्त्र सब पाठशालाओंमें पढ़ाया जाता है। इस कारण इस विषयमें बहुतसे भाषांतरित ग्रंथ मराठीमें लिखे गये हैं। इनमें बीजगणित, भूमिति, त्रिकोणमिति आदि ग्रंथोंका भी समावेश होता है। पहिले के ग्रंथ तो अंग्रेजोंने ही मराठीमें लिखे हैं। भास्कराचार्यके लीलावतीका भाषांतर सन् १८१७ में किया गया। भास्कराचार्यका बीजगणित विनायक शास्त्री खानापूरकरने १८१३में लिखा। गोलाध्याय किताब भी उन्होंने लिखी। इसके सिवाय अन्य स्वतन्त्र ग्रंथ गणित विषयमें मराठीमें नहीं हैं। शालोपयोगी ग्रंथ बहुत हैं। जब तक मातृ-भाषामें सब शिक्षण नहीं होता तब तक मातृ-भाषामें स्वतन्त्र ग्रंथ निर्मित होना असंभव है।

रसायन-शास्त्र

इस विषय पर भी मराठीमें स्वतंत्र लिखे हुये ग्रंथ थोड़े ही हैं। श्री मराठेजीका 'रसायन शास्त्र प्राइमर,' प्रो० मोडकका 'निरिंद्रिय रसायन-शास्त्र भाग १-२' और 'सेंद्रिय रसायन शास्त्र भाग १-२' ग्रंथ अच्छे हैं। काकेजी का 'भारतीय रसायन-शास्त्र' मौलिक रचना है। डा० आपटेने 'रसायन भूमिका' और 'इंद्रिय रसायन' ये दो किताबें लिखी हैं।

भौतिक-शास्त्र

प्रो० मोडकने इस विषयके भिन्न-भिन्न विभाग जैसे, उष्णता ध्वनिशास्त्र आदि पर भी ग्रंथ लिखे हैं। ग्यानोकी किताब उन्होंने चार भागमें भाषांतरितकी है तथा 'पदार्थ-विज्ञान-शास्त्रका उपोद्‌घात,' 'सृष्टिशास्त्रके मूल-तत्व' 'सृष्टिशास्त्र' आदि ग्रंथ लिखे हैं। 'हवा' किताब

श्रीयुत गोठेजी ने लिखी है। तथा 'वातावरण' किताब श्रीयुत करंदीकरने प्रकाशितकी है।

डॉ० आपटेकी 'पदार्थ-विज्ञान,' 'गिरने वाले फलका संदेश,' 'रंग-तरंग' तथा श्री आपटेकी 'यामिक प्रदीप,' 'बाहनी बीज' किताबें उल्लेखनीय हैं। विद्युत् शास्त्र पर 'विद्युत्' 'विद्युत और विद्युतक्रेन,' 'विद्युत-तारोंकी रचना,' 'विद्युत स्वावलंबन,' 'विद्युत् और लौहचुंबक' 'तडित,' 'बीजका इतिहास,' आदि किताबें हैं। रिलेटिवीटीपर 'अपेक्षा वाद' नामका ग्रंथ प्रो० मटंगेने लिखा है। 'मोटर कैसी चलाना' 'और मोटर कैसी चलती है' ये श्रीयुत देशपांडेजीकी किताबें विद्युतके बारेमें ही हैं। प्रकाश-शास्त्र पर श्री वैद्यजीका ग्रंथ है। ऊपर लिखी हुई किताबोंके सिवाय अन्य भी शालोपयोगी किताबें भौतिक-शास्त्रपर लिखी गयी हैं।

ज्योतिःशास्त्र

इस विषयमें 'ज्योतिर्विलास' श्री दीक्षितजी की किताब सन् १८९२ में लिखी गयी और तबसे आज तक उसकी पाँच आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। इससे ही इस किताबकी लोक-प्रियता मालूम हो सकती है। 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' ग्रंथ भी उन्हींका ही है। इसके सिवाय श्री चिटणीस जी का 'अंतरिक्षमेंके चमत्कार', श्री पेठेका, 'विश्व चमत्कार' श्री देशपांडेका 'तेजोनिधि सूर्य', श्री केतूकरका 'आकाशके दिखावे' आदि ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'विश्वकी रचना और उत्क्रान्त' यह किताब श्री ढबसेजीने १९३२ में प्रकाशित की। 'भारतीय ज्योतिर्गणित' किताब श्री कु० कोल्हटकरकी है। श्री केनकर जी की 'गोलद्वय प्रश्न विमर्श' किताबमें न्यूटनकी पद्धतिके अनुसार ग्रहोंके पारस्परिक आकर्षणका विचार किया गया है।

फल-ज्योतिष पर अनेक ग्रंथ हैं। लेकिन वे सब पुरातन विचारोंसे ही भरे हुये हैं। मौलिक किताबोंमें श्री गोखलेकी 'फलज्योतिष स्वतन्त्र विचारमें चिकित्सा' किताबका उल्लेख करना आवश्यक है।

जीवशास्त्र, प्राणीशास्त्र और वनस्पतिशास्त्र

'जीवन शास्त्रके तत्व' 'जनन-मरण-मीमांसा' 'सजीव सृष्टिकी उत्क्रांति' 'शरीरमेंका आश्चर्यजनक भाता' सुप्रजाजनन-शास्त्र आदि ग्रंथ जीवशास्त्र पर लिखे गये हैं। प्राणी शास्त्रमें 'हिंदुस्थानके सर्प' किताब डॉ० चिपडुणकरने सन् १८९३ में लिखी। 'महाराष्ट्रके सर्प' यह कर्नल धारपुरेजीकी किताब सन् १९२८ में छपी। 'प्राणी और आरोग्य' किताब भी उन्हींकी है। 'प्राणी-शास्त्रके मूलतत्व' पर दो ग्रंथ भिन्न-भिन्न लेखकोंने लिखे हैं। कीटकशास्त्र पर अनेक ग्रंथ हैं जिनमें देशपांडेजीका 'कीटक शास्त्र' अच्छा है। इसके सिवाय 'हिन्दुस्थानके पक्षी' 'मासे और देवमासे,' 'पशु-पक्षी और अन्य प्राणी,' 'हस्ति विज्ञान,' 'तुलनादर्शक-शास्त्र' आदि ग्रंथ प्राणी-शास्त्र पर लिखे हुये हैं।

वनस्पति-शास्त्र पर लिखे हुये ग्रंथोंमें थोड़े से अच्छे हैं। डॉ० भाटवडेकर ने 'वनस्पति-शास्त्रके मूलतत्व' किताब सन् १८८२ में लिखी। 'वनस्पतिका संसार' डॉ० सांबारेकी किताब है जो सबसे अच्छी है। 'वनस्पति विचार' श्री दामलेका है। 'सुलभ वनस्पति' शास्त्र-पुस्तक ताम्हने और कान्हेकी लिखी है जिसे आक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेसने छापा है।

डा० देसाईका 'औषधि संग्रह' ग्रंथ बहुत ही उपयुक्त है। हिंदुस्थानकी वनस्पतियोंके बारेमें इसमें कुछ लिखा है। 'वन-औषधि-गुणादर्श' 'वनस्पतिजीवन' आदि अन्य ग्रंथ भी इस विषय पर हैं।

वैद्यक शास्त्र

इस विषयपर अनेक ग्रंथ हैं। इनमेंसे कुछ संशोधनकी दृष्टिसे लिखे गये हैं, और शेष व्यावहारिक है 'शरीरशास्त्र,' 'इंद्रिय-विज्ञान,' शास्त्र वैद्यक आदि ग्रंथ छप चुके हैं। होमिओपैथी पर दस-बारह अच्छी किताबें हैं। क्रोमोपैथी पर 'वर्णजल चिकित्सा सार,' 'किरण चिकित्सक' 'सूर्य-किरण-चिकित्सा' ग्रन्थ उपयुक्त हैं। 'वैद्यावतंश' किताब भाटवडेकर की है। 'पथ्यापथ्य निघंटु' ग्रंथ रंगनाथजी ने लिखा है। पदे शास्त्रीका 'वाग्भट' और 'त्रिदोष पद्धति' वैद्यजी का 'शार्ङ्गधर,' ओगलेजीका 'चिकित्सा अयाकर' आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। इनके सिवाय 'बिल्व-माहात्म्य,' 'कोरफडका उपयोग' 'लंघन चिकित्सा' ग्रंथ उपयुक्त हैं।

बालरोग चिकित्सापर चालीसके ऊपर ग्रन्थ हैं। इसमें मंत्रीका 'बालरोग चिकित्सा', पळऊकरका 'बाल सुश्रुषा', डॉ० टेबेंका 'शिशु संवर्धन' डॉ० सांडुका 'बालसंगोपन', आदि ग्रंथोंका निर्देश करना आवश्यक है। स्त्री-चिकित्सा पर भी करीब-करीब चालीस किताबें हैं। प्लेग, पटकी, इन-फ्लुएंजा आदि विषयों पर भी किताबें हैं, लेकिन उन सब का उल्लेख यहाँ नहीं कर सकते। शरीर-शास्त्रपर डॉ० सहस्त्रबुद्धेका 'हमारा शरीर', 'मराठेका जीवनेन्द्रिय शास्त्र' ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

आरोग्य शास्त्रपर तो लगभग सौके ऊपर ग्रंथ हैं। 'नैसर्गिक आहारपद्धति,' 'नाक और आरोग्य,' 'मांसाहार,' 'आहार शास्त्र' आदि किताबोंका उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है। सार्वजनिक आरोग्य और व्यायाम पर भी अनेक ग्रन्थ हैं। आरोग्य शास्त्रके ग्रन्थोंमें फड़केका 'संतति नियमन', डॉ० इस विषयपरकी डा०राईकरकी किताबें, प्रो० कर्वेका 'आधुनिक कामशास्त्र','संततिनियमन,' 'गुप्तरोगोंसे बचाव,' आदि ग्रंथों का अंतर्भाव होता है।

शिल्पशास्त्र और भूस्तर-शास्त्र

शिल्प शास्त्रपर बहुत ही थोड़े ग्रन्थ हैं। रा० वझेने 'हिन्दी शिल्प शास्त्र' ग्रन्थ सन् १९२८ में लिखा। 'शिल्प शिक्षण', यह किताब उनकी ही है। देशपांडेजीका 'सुलभ-वास्तुशास्त्र और शिंचेजीका 'निरीक्षकाचे निरीक्षण' ग्रन्थ उपयुक्त है।

नौकानयन पर 'नौकानयनका इतिहास' ग्रन्थ वापट-शास्त्री ने लिखा है। इसी विषय पर दूसरा ग्रन्थ 'नौका-नयन' श्री० भोसेकरका है।

भूस्तर शास्त्रपर कुछ अच्छे ग्रन्थ मराठी भाषामें नहीं है। श्री० दुदलीकरने भूस्तर शास्त्रपर एक ग्रन्थ लिखा है। 'वेदकालीन भूस्तर शास्त्र' ग्रन्थ श्री० पावगी ने सन् १९२२ में छपवाया।

कृषिशास्त्र

'फल झाड़ोंकी लागवड', 'फल झाड़ोंकी बाग' 'शते-करी', 'शतेकी सुधारणा', 'मेराखेजका अनुभव', 'वनस्पति संवर्धन शिक्षक' आदि ग्रन्थ इस विषय पर हैं। कालेने शतेकी 'और 'बागयन' किताब लिखी है। 'कृषि-कर्म-विद्या' यह गुले और राजेका ग्रन्थ हज़ार पृष्ठोंका है। कुल कर्णीजी का 'हमारा खेती', साठेका, 'बागाइन', पुंडेका 'आम' आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं।

ऊपर दिये हुये विषयके ग्रन्थोंके सिवाय अन्य भी शास्त्रीय ग्रन्थ हैं जिसका वर्गीकरण कठिन हैं। 'शास्त्र रहस्य','निम्ब', 'निबन्ध रत्नमाला', इगंडी कोयला', 'लहरों की मीमांसा','संख्योंकी कल्पना' आदि ग्रन्थोंका इसमें समा-वेश होता है।

डॉ० केतकरके महाराष्ट्रीय ज्ञानकोशके पाँचवें खण्डमें 'विज्ञान-इतिहास' दिया हुआ है। रा० माटेका 'विज्ञान-बोध' ग्रन्थ उत्कृष्ट है। रत्नोंके बारेमें 'रत्न-परीक्षा' ग्रन्थ पिडकरका है। खांपटेजीका 'रत्न प्रदीप' १९३७ में छपा। 'मौक्तिक प्रकाश ग्रंथ उन्हींका है।

अब तक मराठी वाङ्मयके शास्त्रीय ग्रंथोंका संक्षिप्त विचार हुआ। अब शास्त्रीय लेखोंका विचार करना होगा। प्रायः सबही मासिकपत्रोंमें शास्त्रीय लेख आते हैं। विशेषतया उद्यम, सृष्टिज्ञान, शेतकी और शेतकरीमें केवल शास्त्रीय लेख ही आते हैं। 'सह्याद्रि' चित्रमय जगत, मासिक मनो-रञ्जन आदि मासिकपत्रोंमें भी शास्त्रीय लेख आते हैं।

सभी हिन्दुस्थानी भाषाओंमें अच्छे शास्त्रीय ग्रंथोंका अभाव है। इसका कारण यह नहीं हैं कि अच्छे लेखक नहीं किन्तु अर्थ-सहायताका अभाव ही एक कारण है। शास्त्रीय किताबोंसे पैसे नहीं मिलते। इसीलिये लेखक और प्रकाशक इस अव्यवहार्य धंधेमें पैसे नहीं डालते। अर्थ-सहायता बिना शास्त्रीय वाङ्मय बढ़ना कठिन है।

तम्बाकू अभ्यासियोंकी परीक्षा

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ, बी० एस-सी०]

हमारे पाठक मदिरापानके हानि-लाभ जानते होंगे। इसके कई कारण हैं। प्रथम, राजनैतिक व्यवस्थाके कारण यहाँ के बहुतसे स्थानोंमें मदिरा-पान बन्द कर दिया गया है। द्वितीय, इसी 'विज्ञान' में बहुतसे लेख इसके ऊपर

लिखे जा चुके हैं। परन्तु तम्बाकूके ऊपर न तो राजनैतिक और न किसी नर-नारीका विचार हुआ हैं। इसके ऊपर पश्चिमी देशोंमें बहुत खोज हो रही है। उनका कुछ थोड़ा-सा विवरण मैं यहाँ पर लिखूँगा। इसको प्रारम्भ करनेके पहिले मैं यह भी पाठकोंके सामने रख देना चाहता हूँ कि मेरे पहले 'हम सौ वर्ष कैसे जीवें' नामक लेखमें पाठकगण ने यह बात अवश्य देखी होगी कि जो-जो व्यक्ति सौ वर्ष तक जीवित रहे, उनमेंसे कोई भी तम्बाकू का सेवन नहीं करते थे। हम सब समाजमें तम्बाकू सेवन किया करते हैं, परन्तु वास्तवमें उसको लाभदायक नहीं समझते। हम और आप आदत पड़ जानेसे उसे बादमें नहीं छोड़ सकते, परन्तु मेरी सबसे यही प्रार्थना है कि इस लेख को पढ़नेके बाद वे अवश्य इस पर ध्यान दें और अपनी इस बुरी आदतको अवश्य छोड़नेका प्रयत्न करें।

तम्बाकू सेवन करनेसे हृदय और दिल पर कुछ गरमी और जलन अवश्य मालूम होती है। गरमीके कारण कुछ प्रभाव त्वचापर भी पड़ता है। इसके अतिरिक्त तम्बाकूके धुएँसे खाना पचानेकी नलीके ऊपरके भागोंमें जिनमें मुख्यतया पेट और आँतें सम्मिलित हैं उनकी श्लेष्मिक कलामें कैन्सर रोग हो जाता है।

एब्वे नामक नगरमें कैन्सरके रोगियोंको परीक्षा लेनेपर यह मालूम किया गया कि एक सौ रोगियोंमेंसे ९० मनुष्य तम्बाकूका सेवन करते थे और शेष १० स्त्रियाँ थी। वे भी तम्बाकू पिया करती थीं।

अब अलसर (ulcer) नामक रोगियोंकी परीक्षा करते हैं। पेटके बाद खाना पचाने वाली नलीमें ड्यूडोनम होता है। इसमें अलसर रोग वाले रोगियोंकी डाक्टर ग्रेने निरीक्षण करके यह मालूम किया है कि उनमें ९६ प्रति सैकड़ा तम्बाकूका सेवन करते थे। इन ९६ प्रतिसैकड़ा में—

२९ प्रति सैकड़ा बहुत ही अधिक मात्रामें तम्बाकू पीते थे।

३१ प्रति सैकड़ा अधिक मात्रामें और शेष ३६ प्रति सैकड़ा कभी-कभी पिया करते थे।

इनसे यह निश्चय होता है कि तम्बाकू-सेवन पेप्टिक अलसर रोग उत्पन्न होनेका एक मुख्य कारण है। डाक्टर मौल और फ्लिण्टका कहना है कि तम्बाकूसे पेटके अन्दर नमकका तेजाब अधिक मात्रामें बनते रहनेके कारण हाइ-पोक्लोरोहाइड्रिया नामक एक रोग हो जाता है जो पेप्टिक अलसरके रोगका एक मुख्य कारण है।

श्रीयुत डाक्टर फ्रेडरिच महोदय ने तम्बाकूके धुएँके ऊपर बहुतसे प्रयोग किये हैं और उनका कथन है कि धुएँ में बहुतसा भाग निकोटीनका होता है और उसका रक्तके एकत्रित करने वाले स्थानों पर यह प्रभाव पड़ता है कि उनमें विशेष जीवाणु पैदा हो जाते हैं। ये कीड़े खुर्दबीन-में ऊपर उठते हुये दिखाये जा सकते हैं और इनसे पेटमें पक्वाशय-स्राव और खारापन बढ़ जाता है। इसके कारण दो रोग अनसरेशन और नेक्रोसिस शरीरमें पैदा हो जाते हैं। डाक्टर महोदय ने अभ्यास करके इसका भी अनु-भव किया है कि तम्बाकूका सेवन खाली पेट और कलेवा करनेके बाद बहुत ही हानिकारक है क्योंकि जो खारापन पेटके अन्दर होता है वह तम्बाकूके निकोटीनके कारण कम पड़ जाता है।

तम्बाकूके धुएँका अनेक प्रकारसे विश्लेषण करके इसका पूर्णतया निश्चय किया गया है कि इससे अधिक मात्रामें निको-टीन होती है और यह वस्तु शरीरके लिये सबसे अधिक भयानक होती है। इसके अतिरिक्त तम्बाकूके जलन और छाननेसे निम्नलिखित वस्तुओंका भी निश्चय रूपसे पता लगा है:—

१—कार्बनमोनोक्साइड जो आधेसे भी अधिक मात्रा में होती है।

२- अमोनिया

३ - फार्मेलडीहाइड

४ - मिथेन

५— मिथाइलामीन

६—मिथाइल एलकोइल

७ – पिरीडिन

८—फरफरोल

९ – आर्सेनिक

१०—प्रूशिकाम्ल

११—कार्बन डाइऑक्साइड

सिगरेटमें एक ग्राम तम्बाकूके पीनेसे ७० घ० से० घातक कार्बन मोनोक्साइड होती है और उसी एक ग्राम तम्बाकूको पाइप अथवा हुक्केमें पीनेसे १०५ घ० से० मी० की मोनोक्साइड बनती है। रक्तके अन्दर यह घुल जाती है। इस घुली हुई गैसकी मात्रा ०·१ से ०·७ प्रति सैकड़ा तक होती है।

प्रातःकाल ०·२६ प्रति सैकड़ा कार्बन मोनोक्साइड पिच रक्तमें घुली होती है और तीसरे पहर ०·५२ प्रति सैकड़ा तक मात्रा पहुँच जाती है। सबसे अधिक ०·८५ प्रति सैकड़ा तक इसकी मात्रा रक्तमें हो जाती है। तम्बाकूके सेवन करनेसे पहले उसकी मात्रा ०·४५ प्रति सैकड़ा होती है। सेवन करते ही इसकी मात्रा १ प्रति सैकड़ा से ०·७५ प्रति सैकड़ा तक हो जाती है। सेवनके ५ मिनट बाद इसकी मात्रा २ प्रति सैकड़ा से १·७ प्रति सैकड़ा हो जाती है। रक्तमें घुली हुई वायुमें ऑक्सीजन भी होता है। यह कार्बन मोनोक्साइड पर प्रभाव करके उसको कार्बन डाइऑक्साइड के रूपमें परिणत कर देती है। यही कारण है कि पृथ्वी-मण्डलसे ऊपर वायुयानमें उड़नेमें ऐसे वायुमण्डलमें जहाँ ऑक्सीजनकी कमी होती है, तम्बाकू-सेवन बिलकुल बन्द कर देना आवश्यक होता है। इसीलिये दिलके रोगके कारण मृत्युकी संख्या बहुत बढ़ रही है। युवक और नौ जवान नर-नारियोंकी अकस्मात् दिलके दौरेसे मृत्युकी संख्या भी बढ़ती जा रही है।

इसके अतिरिक्त तम्बाकूके सेवनसे रक्तकी नलियों पर भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। करोनरी नामक नली जो स्वच्छ रक्तको दिलमें ले जानेका कार्य करती है इससे प्रभावित हो जाती है। एक रोग भी शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। उससे रक्तकी आने-जाने वाली नलियोंमें रक्त अधःक्षेपित हो जाता है और जिसके कारण एक मुख्य स्थानपर मुलायम अथवा द्रव जैसी वस्तु एकत्रित हो जाती है और इस वस्तुके निर्माणसे रक्तका दिलमें आने-जानेके कार्य्य में बाधा पड़ जाती है। इस रोगको थ्रोम्बोसिस कहते हैं।

अमरीकाके मेडिकल एसोसियेशनके मुख्य पत्रमें सम्पादकीय वक्तव्यमें इस विषयमें यह लिखा है कि इसके सेवन से पाँच मुख्य कष्ट शरीरको सहने पड़ते हैं।

(१) मनुष्य अपनी ही लवलीनतामें पड़ जाता है और दूसरोंके भले-बुरे कहनेका उसपर कम प्रभाव पड़ता है।

(२) रक्तकी नलियोंमें कभी-कभी उनकी माँसपेशियोंके स्थान सिकुड़ने लगते हैं।

(३) इन रक्त नलियोंमें कुछ organic तबदीलियाँ हो जाती हैं।

(४) मनुष्य जैसे-जैसे बुड्ढा होने लगता है उसके भाव भी बुड्ढे हो जाते हैं। उसके विचारोंमें कोई यौवनका जोश नहीं होता। मनुष्यकी दशा वैसी ही उस तम्बाकूके सेवनसे हो जाती है। इसके अतिरिक्त रक्त-चाप कम हो जाता है।

(५) स्वच्छ रक्तका मुख्य स्थान दिलकी बाँई ओरके नीचेका भाग होता है। इस रक्तको शारीरिक भागोंमें ले जाने वाली नलीमें जलन पैदा होने लगती है। एरोटिक एथेरोमा नामक रोग पैदा हो जाता है।

बहुतसे उसके अभ्यासी शौच जानेसे पहले धुएँको पेट में पहुँचानेका प्रयत्न किया करते हैं और यह विचारते हैं कि उससे उनका मल-त्याग अच्छी प्रकार होगा। यह आदत उनकी इतनी बढ़ जाती है कि अगर कभी वे इसका सेवन न कर सके तो उनका मलत्याग बिलकुल न होगा।

वैज्ञानिक दृष्टिसे ऐसा एक आदत पड़ जानेके प्रभावसे हो हो जाता है। वास्तवमें धुएँकी गरमीसे पेटका मल मुलायम नहीं पड़ सकता है। सिगरेट, बीड़ी या हुक्का पीनेसे जो धुआँ बनता है उसका बहुतसा भाग तो साँसकी हवासे मिलकर दूसरी नलीमें चला जाता है। धुएँका बहुत थोड़ासा भाग थूकमें मिल कर मेदेमें जा सकता है अथवा थोड़ासा सीधा ही खानेको नलीमेंसे होकर मेदेमें पहुँच सकता है। मेदेकी गरमी इन्हीं दो प्रकारसे मिल सकती है।

शरीर और मनपर अंतःस्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) का प्रभाव

(ले०—श्री रामविलास सिंह)

हमारे आयुर्वेदमें रसायनको एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और आज भी रसायन-शास्त्र चिकित्सा-शास्त्रका एक आवश्यक अंग माना जाता है। वस्तुतः, हमारे शरीरके वृद्धि-विकास तथा आचरण पर जितना प्रभाव रासायनिक पदार्थोंका पड़ता है उतना कदाचित् अन्यान्य वस्तुओंका नहीं पड़ता। इनमें से कुछ पदार्थ तो हम खान-पान आदिके द्वारा बाहरसे प्राप्त करते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनका निर्माण शरीरमें ही होता है। अतः इस दृष्टिसे इनके दो विभाग हुए—बहिरागत और अन्तजन्य। इन दोनों प्रकारके रासायनिक द्रव्योंका घनिष्ट सम्बन्ध रक्त-संचालनसे है क्योंकि इसीके द्वारा ये बातकी बातमें समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। रक्त-प्रवाह इतना तीव्र है कि धमनियोंमें प्रविष्ट होने पर किसी भी अंगका द्रव्य लगभग पन्द्रह सेकण्डमें ही अन्य सारे अंगोंमें पहुँचकर उनकी अवस्था और क्रिया को प्रभावित कर देता है।

अन्तर्जन्य रासायनिक द्रव्योंकी उत्पत्ति नाना प्रकारकी शरीरस्थ ग्रन्थियों (glands) से होती है। रक्तवाहिनी नलीमें पदार्थ-प्रस्रवणके विचारसे ये दो प्रकारकी होती हैं—बहिःस्रावी और अंतःस्रावी। आकार, प्रकार और बनावटके विचारसे अंतःस्रावी ग्रंथियाँ (endocrine glands) क्षुद्र होनेके कारण कुछ भी महत्व नहीं रखतीं; परन्तु गत शताब्दी में लगभग १८५० ई० से प्रारम्भ कर प्राणी-विज्ञान (physiology) तथा काय-चिकित्सा शास्त्र (clinical medicine) ने अन्तःस्रवण शास्त्र (endocrinology) नामक एक व्यापक विज्ञान-का निर्माण कर यह अनुसन्धान किया है कि बाहरसे तुच्छ प्रतीत होने पर भी ये ग्रंथियाँ शरीरके कल्याणार्थ अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। जीव-विद्या विशारदों ने दो प्रधान प्रणालियोंके द्वारा पशुओं पर इनका परीक्षण किया-ग्रंथि-विच्छित्ति-करणसे उनके स्वास्थ्य, वृद्धि और व्यवहारमें उत्पन्न होनेवाले परिणामों पर ध्यान देकर और ग्रंथ्यंश-संयोजन या ग्रंथि-भक्षयण अथवा ग्रंथि-सत्त्व-प्रवेदान करके। कार्य-चिकित्सकों (clinicians) ने ग्रंथिकी अति या अल्प क्रियाशीलताके परिणाम-स्वरूप होनेवाले रोगोंका पता लगाकर तथा प्राणी-शास्त्र-विशेषज्ञ-सम्मत ग्रंथि-सत्त्वों-का व्यवहार कर इस कार्य्यमें अत्यन्त सहयोग प्रदान किया है। रासायनिकोंने भी ग्रंथि-जन्य रासायनिक द्रव्योंकी खोजकरके तथा कभी वस्तुतः उन्हें प्राप्तकर उनका विश्लेषण करके इस कार्य्यमें प्रमुख भाग लिया है।

अन्तर्निर्यास (hormones) —अन्तःस्रावी ग्रंथियोंसे अत्यन्त अल्प परिमाणमें द्रवित होनेवाले रसोंको अन्तर्निर्यास (hormones) कहते हैं। ग्रन्थि-भेदसे इनके भी कई भेद होते हैं। इनमें नाना अंगोंकी क्रियाको मन्द या तीव्र करनेकी शक्ति होती है। रासायनिक द्रव्य होनेके कारण शरीरकी रासायनिक क्रिया (metabolism) पर इनका अत्यन्त प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक अन्तर्निर्यासके प्रभाव भी विभिन्न होते हैं।

उदर-ग्रन्थि-माला (pancreas)—उदरकी ग्रंथियोंसे दो प्रकारके स्राव उत्पन्न होते हैं। पहला उदर-ग्रंथि-रस (pancreatic juice) जो अंत्रावलीमें प्रवेश कर भुक्त-वस्तु-परिपाकमें अत्यन्त सहायता प्रदान करता है; पर इसे अंतःस्रवण नहीं कह सकते क्योंकि रक्त-प्रवाहमें यह नहीं जाता। दूसरा उदरान्तर्निर्यास (insulin) है जो मांसपेशियोंको सिता-भस्मी-करणकी योग्यता प्रदान कर शक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ बनाता है। इसके बिना शरीर मधुमेह (diabetes) रोग-ग्रस्त हो जाता है, क्योंकि सिता मांस-पेशियोंमें न जल सकनेके कारण रक्तमें संग्रहीत होकर मूत्राशयोंके द्वारा बहिर्गत हो हो जाती है। रक्तमें इसके परिमाणमें विभिन्नता होनेके कारण व्यक्तिकी क्रियाशीलता और सुस्थ-भावनामें भी विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। इसके आधिक्य से मनुष्य बुभुक्षा, परिश्रान्ति, प्रकप और चिन्ताका अनुभव करता है; और इसकी अत्यन्त अधिकता से असह्य मानसिक वेदना, उन्माद या संज्ञा-हीनता पैदा हो जाती है। मधुमेह रोगी की मानसिक अवस्था भी प्रभावित होनेसे नहीं बचती।

कंठ-ग्रंथि (thyroid gland) :—इसका अवस्थान ग्रीवाधार पर श्वासनलीके सामने है, और सामान्यतः तौलमें यह एक औंससे कुछ कम होती है। बढ़कर यही कंठमाला रोग (goiter) में परिणत हो जाती है। व्याधिसे जब यह ग्रंथि नष्ट हो जाती है तब व्यक्तिका शरीर शोथावस्था (myxedema) में परिवर्तित हो जाता है और वह अपनी पहली शक्ति और सतर्कता खोकर श्लथावस्थापन्न बन जाता है। तरल पदार्थ की अधिकतासे चर्म फूल जाता है, मांस-पेशियाँ और मस्तिष्क अकर्मण्य बन जाते हैं और व्यक्ति मनन, चिंतन तथा कर्मकी क्षमतासे रहित होकर सुस्त, अज्ञान और प्रमादी बन जाता है। बचपनमें ही इसके नष्ट हो जाने पर या जन्मसे ही दोषपूर्ण रहने पर तनकी वृद्धि में व्याघात उपस्थित हो जाता है और बुद्धि कुंठित हो जाती है। निकृष्टतम दशामें जिसे वामन (creten) कहते हैं, व्यक्ति अत्यन्त नाटा, कुरूप और बुद्धिहीन (imbicile) रह जाता है, यद्यपि उसका स्वभाव विनम्र होता है।

सबसे स्पष्ट अनुसन्धान जो अन्तःस्रवण शास्त्रने किया है वह है–शोथ-व्याधि (myxedema) की चिकित्सा। १८८० ई० से इधर शल्य चिकित्सक कभी-कभी शल्य-चिकित्सा द्वारा कण्ठमाला रोग दूर कर देते थे; परन्तु समस्त कंठ-ग्रंथियोंके दूरीकरणसे रोगी प्रायः शोथावस्था-ग्रस्त हो जाता था। कुछ वर्षोंके परीक्षणके उपरान्त यह ज्ञात हुआ कि भेड़की कंठ-ग्रंथि मात्र खिला देनेसे ही शोथ-व्याधि-ग्रस्त व्यक्ति मानो ऐंद्रजालिक क्रिया द्वारा शीघ्रातिशीघ्र अपना सामान्यावस्थाको पुनः प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जब तक रोगी उचित मात्रामें इसका व्यवहार करता रहता है तभी तक उसकी सामान्यावस्था बनी रहती है, क्योंकि ऐसा करनेसे नई कंठ-ग्रंथियाँ उत्पन्न नहीं होतीं।

कंठान्तर्नियास (thyroxin) रासायनिक ढंगसे ज्ञात हो चुका है और विश्लेषण द्वारा पता लगाकर इसके रचनात्मक तत्वोंको इस सूत्र ($C_{15} H_{11} O_4 NI_4$ के द्वारा व्यक्त किया जाता है। ग्रंथि-सत्वोंके स्थानमें इस मिश्रणका उपयोग भली-भाँति किया जा सकता है।

कार्बन (carbon), जलजन (hydrogen), अम्लजन (oxygen) और नेत्रजन (nitrogen) जो शरीरके सामान्य रासायनिक तत्व हैं, इस मिश्रणमें निहित हैं हो, आयडिन भी प्रति शत पैंसठ अंश इसमें मिश्रित है। भोजन और जलके साथ जो आयडिन (iodin) अत्यन्त ही अल्प परिमाणमें शरीरमें जाता है, उसे कंठिग्रंथि इस मिश्रणमें एकत्र कर रखती है। स्वीटज़रलैण्ड (Switzerland) और संयुक्त-देश अमरीकाके झील-प्रान्तोंकी तरह जिन स्थानोंका प्रायः सारा आयडिन घुलकर समुद्रमें चला गया है, वैसे भूभागोंमें आयडिनकी प्राप्तिके अभावसे कंठि-ग्रंथिका काम दूना कठिन हो जाता है और वहीं कंठ-ग्रंथि सम्बन्धी दोष आम तौर से पाये जाते हैं।

कंठान्तर्नियास (thyroxin) का प्रधान कार्य्य है—रासायनिक प्रक्रिया (metabolism) को तीव्रता प्रदान करना। जब इस स्रावकी न्यूनता हो जाती है तब रासायनिक क्रियामें भी मंदता आ जाती है तथा शरीरमें अम्लजनके ग्रहण करने और कार्बन डाइऑक्साइड (carbon dioxide) के त्यागनेकी क्षमता स्वल्प हो जाती है। जब इसकी उत्पत्ति प्रचुरतासे होती है तब रासायनिक क्रियाकी गति भी सामान्यावस्थाको अतिक्रम कर अत्यन्त आगे बढ़ जाती है।

कंठ-ग्रंथिकी क्रियाका प्रधान द्योतक है आधारभूत रासायनिक क्रिया (basal metabolism) की गति। जाग्रतावस्थामें पूर्ण शान्त और निश्चिन्त रहने पर किसी व्यक्तिमें जो रासायनिक क्रिया सम्पादित होती है उसे ही आधारभूत रासायनिक क्रिया कहते हैं। इसकी गतिका हिसाब जाननेके लिये व्यक्ति को जलपान करनेके पूर्व ही निश्चिन्त होकर पर्यंक पर लेट जानेके लिये कहा जाता है। तब उसके मुँह पर गैससे बचनेकी नक़ाब (gas mask) जिसमें श्वास लेने और छोड़नेके लिये रबड़की दो नलियाँ बनी रहती हैं, डाल दी जाती है। प्रश्वासको एक शीशेके पात्रमें मापने और विश्लेषण करनेके विचारसे जमा रक्खा जाता है। इस भाँति एक निश्चित कालमें अम्लजनका उपयोग ज्ञात हो जाता है और व्यक्तिके दग्धीकरण (oxidation) के आधारभूत हिसाब (basal rate) तथा शक्ति-व्ययका पूरा पता चल जाता है। ऐसा करते समय व्यक्तिके आकार और विशेषकर उसकी

त्वचाके सम्पूर्ण क्षेत्रफलका भी लेखा रखना पड़ता है क्योंकि उससे सदैव उष्णता वायुमंडलमें विकीर्ण होती रहती है। आधारभूत रासायनिक क्रियाकी गतिके विचारसे व्यक्तियोंमें साधारण औसतसे दश प्रति शत अधिक या कमकी ही विभिन्नता पायी जाती है; पर कंठ-ग्रंथिके दोषमें साठ प्रति शतका अन्तर पड़ जाता है। औसतसे अधिक होनेकी दशाको अधिककंठता (hyperthyroidism) और कम होनेको दशाको अल्पकंठता (hypothyroidism) कहते हैं।

कंठासन्न ग्रंथियाँ (parathyroids) — जब कंठ-ग्रंथिके रोगके कारण शल्य-चिकित्सकको उन्हें निःसृत कर देना होता है तब उनके समीपस्थ बड़ी गालियोंके आकारकी चार ग्रंथियोंको बचा रखना आवश्यक हो जाता है क्योंकि उनके अभावमें व्यक्ति शीघ्रही तीव्र उत्तेजना और मांसपेशीजन्य व्यथापूर्ण मरोड़का शिकार बन जाता है। यह भयानक ऐंठनको दशा तभी दूर हो सकती है जब कंठासन्न ग्रंथिका सत्त्वप्रवेशन-क्रिया (injection) द्वारा रक्तमें संचरित कर दिया जाय। इसके अभावमे तन्तु-समुदाय अनावश्यक ही मरोड़ खाने लगता है ओर स्रावका विद्यमानतासे पुनः शान्ति ग्रहण कर लेता है। इसकी प्रचुरता मांस-पेशियोंको कामल बनाकर व्यक्तिको अत्यधिक शान्त बना देती है और वह शैथिल्य तथा उदासीनताका साक्षात स्वरूप बन जाता है। यह किसी भाँति रक्तको भोजन और अस्थियोंसे चूनेका लवण (calcium salt) प्राप्त करनेके सुयोग्य बनाता है क्योंकि सभी अंगोंको कुछ परिमाणमें इसकी आवश्यकता होती है। यदि रक्तमें कल्सियम लवणकी मात्रा अत्यन्त कम हो जाती है तो मांसपेशियाँ और नसें अतीव उत्तेजित हो उठती हैं। अतः इस अन्तःस्रावके सर्वथा अभाव होने पर पेशियाँ कठिन, क्लान्त, तीव्र और प्रत्येक प्रकारकी उत्तेजना प्राप्त करने पर अत्यन्त हो प्रतिक्रियापूर्ण बन जाती हैं तथा व्यक्ति अन्यान्य व्यक्तियोंके विरोध, बाधा और आलोचनासे घबड़ा कर अति क्षुब्ध हो जाता है।

अड्रेनल ग्रंथि (adrenal glands) — प्रत्येक वस्ति (Kidney) के पास एक-एक अड्रेनल ग्रंथि है। प्रत्येकके दो विभाग होते हैं; बाहरी भाग अड्रेनल कर्तेक्स (cortex) और भीतरी भाग मेडुला (medulla) कहा जाता है। प्रत्येक भाग की रचना और कार्य्य विभिन्न हैं; हर एकसे अलग-अलग अन्तःस्राव द्रवित होता है। मेडुलासे उत्पन्न स्रावको अड्रेनिन (adrenin) और कर्तेक्ससे उद्भूत निर्यासको कर्तिन (cartin) कहते हैं। अड्रेनिनका क्रिया-कलाप तो ज्ञात हो चुका है लेकिन कर्तिन अभी रहस्यमय ही बना हुआ है।

रासायनिक ढंगसे अड्रेनिनका विश्लेषण हो चुका है। इसकी रचनाको इस सूत्र ($C_9 H_{13} O_3 N$) से प्रकट करते हैं। यह अतीव शक्तिशाली अन्तःस्राव है। रक्तमें इसकी स्वल्प मात्रासे ही हृत्-स्पन्दन दृढ़ और तीव्र हो जाता है; त्वचा और अंत्रावलीको छोटी धमनियाँ संकुचित होकर तन जाती हैं; रक्तका दबाव बढ़ जाता है; मस्तिष्क और मांसपेशियोंमें रक्त-प्रवाह उमड़ पड़ता है; पाकस्थली और अंत्रावलीको पाचन-क्रिया रुक जाती है; फेफड़ोंके वायु-छिद्र खुल कर चौड़े हो जाते हैं; यकृतकी संचित सिता बहिर्गत हो जाती है; निरन्तर क्रियमाण मांसपेशियाँ शीघ्र श्रान्त नहीं होने पातीं; आँखोंकी पुतलियाँ बड़ी हो जाती हैं; स्वेदकी धारा प्रवाहित होने लगती है और रोएँदार पशुओंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ज्ञान-तंतुओंकी क्रियासे भी ऐसी दशा उपस्थित हो सकती है, परन्तु वह अल्पकालीन होती है और इससे उत्पन्न दशा तुलनाकी दृष्टिसे दीर्घकालीन होती है और कभी-कभी एक-डेढ़ घंटेसे भी अधिक काल तक बनी रहती है।

देखा जाता है कि लड़नेके लिये प्रस्तुत होने पर पशुओंमें ऐसी दशा उपस्थित हो जाती है। सम्भव है कि अड्रेनिन केवल आकस्मिक घटनाके समय ही, चाहे वह छोटी हो अथवा बड़ी, वास्तविक हो या काल्पनिक, रक्त-प्रवाहमें द्रवित हो जाता होगा। विषम भय-संकट उपस्थित होने पर अथवा युद्ध करते समय जब मांस-पेशियोंके कार्य्यकी तीव्रता अपेक्षित होती है, तभी यह लहूमें ढलक कर मनुष्यको विशेष शक्ति-सम्पन्न बना देता है। किसी व्यक्तिमें अड्रेनिनका स्रवण शीघ्रतासे होता है और किसीमें देरसे; अतः तदनुसार ही वह व्यक्ति आकस्मिक दुर्घटनाओंके लिये त्वरित अथवा विलम्बसे प्रस्तुत हो सकता है।

अड्रेनल कर्तेक्स जीवनके लिये अनिवार्य है। क्षयरोगसे

इसका पूर्णतया नाश हो जाने पर मनुष्य एक घातक रोगके चंगुलमें फँस जाता है जिसे आविष्कारकके नाम पर एडिसनकी व्याधि (Addison's disease) कहते हैं। रोगीकी दुर्बलता और शिथिलता दिनों-दिन बढ़ती जाती है; वह कार्य्यमें अनिच्छा और सतत क्लान्तिका अनुभव करता है; उसकी क्षुधा और कामेच्छा नष्टप्राय हो जाती है; हृत्-स्पन्दन क्षीण हो जाता है; आधारभूत रासायनिक क्रिया पन्द्रह-बीस प्रति शत कम हो जाती है; संक्रामक रोगोंसे सामना करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है; त्वचा कृष्ण वर्ण धारण कर लेती है; रोगीमें बाहरी ताप और शीतके सहनेकी शक्ति नहीं रह जाती; वह प्रायः अनिद्र रोगका शिकार बना रहता है और असहयोगी, चिड़चिड़ा और निर्णयशक्ति-रहित हो जाता है। ये लक्षण कर्तिन ($C_{20}H_{30}O_5$) के सेवनसे मिट जाते हैं।

अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि किस तरह कर्तिन शरीरको उत्तेजित करता है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह साधारण रीतिसे उत्तेजकका काम करता है। दूसरे कहते हैं कि यह जलको शरीर-तंतुसे होकर लहूमें प्रवेश करनेकी योग्यता प्रदान कर शरीरके रक्त-परिमाण पर नियंत्रण रखता है। इसके अभावमें खून गाढ़ा और कम होकर शीघ्रतासे सचरित नहीं हो सकता; पर अभी तक लोग एक निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुँच सके हैं। अद्रेनल कर्तेक्सकी क्रियामें तीव्रता आनेसे पुरुष अथवा स्त्रीमें पुंसत्वाधिक्य (virilism) हो जाता है और स्त्रीमें स्तनाभाव, स्वर-गाम्भार्य्य और श्मश्रुकी उत्पत्ति आदि पुंसत्वके चिह्न परिलक्षित होने लगते हैं।

कपालाधार-ग्रंथि (pituitary gland)—यह मृदुल ग्रंथि शिरके ठीक मध्यमें कपालाधारमें स्थित एक छोटी थैलीमें रहती है और मस्तिष्कके निम्न तलसे संलग्न रहती है। इसका कुछ भाग मस्तिष्क तथा कुछ मुखकी अतिवृद्धि स्वरूप उत्पन्न होता है; पर दोनों ही भाग नितान्त सन्निकट उद्भूत होने पर भी रचना और क्रियामें विभिन्न होते हैं। मुख त्वचोद्भूत अग्र भाग (anterior lobe) का अन्तर्निर्यास अंग-वृद्धि करता है तथा मस्तिष्क-जन्य पाश्चात्य भाग (posterior lobe) का अंतःस्राव पाकस्थली, अंत्रावली, रक्त-नलिकाओं तथा स्निग्ध और कोमल मांस-पेशिओंको उत्तेजना प्रदान करता है। सम्भव है कि कपालाधार ग्रंथिसे दो से अधिक स्राव उत्पन्न होते हों, क्योंकि अग्र भागके दो स्पष्ट परिणाम लक्षित होते हैं—अस्थि तथा मांसपेशी आदिकी वृद्धिको प्रभावित करना और शिश्न तथा जननेंद्रियकी क्रियाशीलता और विकासमें सहायक होना।

यदि अग्र भाग बाल्यकालमें अत्यन्त उत्तेजित हो जाता है तो अस्थिपंजर और मांस-पेशियोंकी वृद्धि अति शीघ्रतासे होती है और वह व्यक्ति आठ-नौ फुट लम्बा दानव बन जाता है। तदुपरान्त ग्रन्थिमें ह्रास और विनाशके लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं और वह अपना महान् बल और पुंसत्व खोकर युवावस्थामें ही काल-कवलित हो जाता है। अगर वृद्धि-कालमें सम्यक् रीतिसे कार्य्य-सम्पादन करनेके बाद किशोरावस्थामें इसे अत्यन्त उत्तेजना प्राप्त हो जाती है तो वह व्यक्ति अत्यन्त लम्बा तथा दीर्घकाय तो नहीं होता पर उसके हाथ,पाँव, नाक, भौं, जबड़े आदि बहुत बढ़ जाते हैं और उसे बाह्यांगवृद्धि दशा (acromegaly) प्राप्त हो जाती है। यदि यह ग्रंथि भली-भाँति कार्य्य नहीं कर पाती तो सुगठित बौने (midgets) उत्पन्न होते हैं जो पुंसत्व-विहीन होनेपर भी प्रायः सामान्य बुद्धि-युक्त होते हैं। बचपनमें ही यदि उन्हें कपालाधार-ग्रंथि-सत्त्व सेवन करनेको दिया जाय तो उनकी वृद्धि उत्तेजना प्राप्त कर सकती है।

मस्तिष्काधारके जिस अंशके साथ पाश्चात्य भाग संलग्न है उसके साथ-साथ इसका प्रभाव वसा-संबन्धी रासायनिक क्रिया पर विशेष रूपसे पड़ता है और इसके कार्य्यमें शैथिल्य आ जानेसे व्यक्तिको पीवरत्वकी प्राप्ति होती है और कभी-कभी तो पीवरत्वके साथ-साथ शिश्नका भी समुचित विकास नहीं हो पाता। संभवतः ऐसा अग्र भागकी क्रियामें न्यूनता आ जानेसे होता है। कपालाधार ग्रंथिसे द्रवित होने वाले सभी अन्तर्निर्यासोंमें से यदि एक भी अति या न्यूनावस्थाको धारण कर लेता है तो उद्वेगजनक लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। अभी तक इन स्रावोंका रासायनिक विश्लेषण नहीं हो सका है। इस ग्रंथिका अग्र भाग अपने क्षरणसे कंठ-ग्रंथि, अद्रेनल-तुष (adrenal cortex) तथा लिंग-ग्रन्थ्यादिकोंको भी उत्तेजना

प्रदान करता है और इसकी क्षतिसे इन सबोंका विकास दोषपूर्ण हो जाता है।

अन्तः स्रवण-शास्त्र-विज्ञोंकी धारणा है कि इस ग्रंथिके अग्र भागकी क्रियामें कुछ भी न्यूनता आ जानेसे व्यक्ति दुर्बल, आलसी, निरुत्साह, उदासीन और विषण्ड हो जाता हैं और कभी-कभी तो उसकी प्रवृत्ति रोनेकी भी होती है; पर अधिकतामें वही व्यक्ति बलवान्, अभियानात्मक, संयत, विचारशील और दूरदर्शी होता है। अतः मनुष्यके व्यवहार पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

गोनद (gonads) —स्त्री-गर्भाशय (ovary) और पुं-वृषण (testes) जो प्राथमिक प्रजननेन्द्रियाँ हैं, गर्भाण्ड (ovum) और वीर्य्य-कीटाणु (spesmatozoon) उत्पन्न करनेके अतिरिक्त अन्तर्निर्यास भी द्रवित करते हैं जिनका वृद्धि और व्यवहार पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। थीलिन (thielin) नामक एक स्त्री-अंतःस्राव ज्ञात हो चुका है जिसे इस सूत्र ($C_{18} H_{22} O_2$) से प्रकट करते हैं। पुं-अन्तर्निर्यास पुंसत्वका तथा स्त्री-अन्तर्निर्यास स्त्रीत्वका समुचित विकास करते हैं। नव यौवन कालमें कामेन्द्रियोंके विकासके साथ-साथ पुरुषोंमें स्वर-गांभीर्य्य और श्मश्रुका उन्मेष तथा स्त्रियोंमें उरोजोत्थान भी इन्हींसे होता है जो कि पुंजाति तथा स्त्री जातिके विशिष्ट चिन्ह हैं। गोनदीय अंतस्स्रावका सर्वथा अभाव होनेसे प्रत्येक जातिमें जातीय विशिष्ट लक्षण पूर्णतया दृश्यमान नहीं होते और इस प्रकार नपुंसक और बंध्याके नमूने उपस्थित हो जाते हैं।

स्त्रियोंमें रजोधर्म, रति काल, गर्भावस्था, सन्तानोत्पत्ति आदि प्रजननात्मक मिश्रित क्रियाओं तथा स्तन्यदानकाल आदिका नियमन अत्यधिक मात्रामें कुच्यान्तर्निर्यास द्वारा ही होता है; पर अग्र कपालाधार-ग्रंथिका हाथ भी इसमें अवश्य रहता है। विभिन्न व्यक्तियोंमें कामेच्छा दुर्बल या बलवती गोनदके ही कारणसे होती है और वृद्धावस्थामें इसकी शक्ति क्षीण हो जाने पर काम-वासना भी अत्यन्त कम होते-होते नष्ट-प्राय हो जाती है। अभी तक ऐसी औषधिका सर्वथा अभाव ही है जो नष्ट केलि-शक्तिको पुनरुज्जीवित कर नपुंसक को भी पुंसत्व प्रदान कर सके।

यद्यपि अंतस्स्रावी ग्रंथियों के कार्य्य-कलाप भिन्न-भिन्न हैं तथापि वस्तुतः वे अन्योन्याश्रित हैं। अतः रोगीके बाह्य व्यवहार मात्रसे ही उसके विशेष अंतःस्रावी-ग्रंथि-दोषका निदान करना दुष्कर है। इस कारण यदि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्वका विश्लेषण अंतःस्रावी ग्रंथियोंके रूपमें करके ग्रन्थि-सत्व-सेवन द्वारा अपने आचार-व्यवहार आदिमें परिवर्तन करना चाहे तो उसका यह कार्य्य हास्यास्पद होगा। सुयोग्य और अनुभवी चिकित्सक ही इसका सम्यक् निदान कर सकता है।

कीमत लगाना (COSTING)

[ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा]

(लेखककी "औद्योगिक प्रबन्ध" नामक अप्रकाशित पुस्तकका छठा अध्याय)

सही कीमत लगानेके तरीक़ेकी आवश्यकता—संगठनके अध्यायमें बताया गया है कि आर्थिक विभागके अध्यक्षके मातहत मज़दूरीका हिसाब रखना, चिट्ठा तैयार करना, तनख़्वाह बाँटना, कार्य-कर्त्ताओंकी हाज़िरी रखना, कारखानेमें बने सामानकी कीमत लगाना आदि कई महत्वपूर्ण काम रहते हैं। इस अध्यायमें कीमत लगानेके विषयमें हम कुछ विचार करेंगे।

इस व्यापारिक होड़के ज़मानेमें यदि कोई कारखानेदार अपने बनाये सामानका मूल्य ठीक तरहसे नहीं लगा सकते तो उन्हें आगेकी उन्नतिकी आशा छोड़ देनी चाहिये। यदि किसी कारख़ानेमें कीमत लगानेका कोई वैज्ञानिक तरीक़ा चालू नहीं है, तो जब तक पूरा आय-व्यय का लेखा न किया जाय, यह नहीं मालूम हो सकता कि उन्हें नफ़ा हो रहा है या नुकसान। इस प्रकारसे नफ़े-नुक-

सानका पता, यदि लगा भी लिया जाय तो इससे यह जानना तो बिल्कुल ही असम्भव है कि किस चीज़ने उन्हें सबसे अधिक फ़ायदा दिया, किसने कम, और किसने नुकसान दिया और भविष्यमें किस चीज़का बनाना अधिक लाभदायक होगा और नुकसान देने वाली चीज़ोंमें कहाँ पर पैसेकी अधिक बरबादी होती है जहाँ तरक्की करनी चाहिये।

उदाहरणके लिये मान लीजिये कि कोई कारखाना तीन चीज़ें बनाता है। उसे साल भर काम करनेके बाद काफ़ी फायदा भी हुआ। इनमेंसे एक चीज़ ऐसी ज़रूर होगी जो साधारण लाभ दे रही है, और दूसरी एक ऐसी भी हो सकती है जो बहुत ज्यादा फ़ायदा देती है लेकिन तीसरी चीज़ जो कि शायद नुकसान दे रही है उसके घाटे को भर भी रही है।

अब मान लीजिये कि एक नया कारखाना और खुल गया जो कि पुराने कारखानेकी सबसे लाभ देने वाली चीज़ को बना कर कम भावमें बेंचता है। अब, क्योंकि पुराने कारखाने वाले अपनी चीज़की असली कीमत नहीं जानते इसलिये उस चीज़का व्यापार खो बैठते हैं। उधर तीसरी नुकसान देने वाली चीज़, पहिली मामूली लाभ देने वाली चीज़के फायदेको सोख लेती है। अतः सालके अन्त में जब कि कुछ भी लाभ नहीं मिलता या घाटा रहता है। तो कारखानेका व्यवस्थापक उसका कुछ भी जवाब नहीं दे सकता।

कारखानेमें बनाये हुये प्रत्येक सामानपर कितना नफा मिल जाता है, इस बातके अतिरिक्त कीमत लगानेके वैज्ञानिक तरीक़ेसे यह भी मालूम हो जाना चाहिये कि प्रत्येक काम करनेके तरीक़ोंमें जो भी हम फेर बदल करें उसका मूल्य रुपये, आने और पाइयोंमें क्या होता है?

आज कल मजदूर और कारखानेदारोंके झगड़ेके ज़माने में वैज्ञानिक तरीक़ोंसे हिसाब रखने वाला मुनीम मजदूरोंको भली-भाँति समझा सकता है कि उनको मेहनतका बेजा फ़ायदा नहीं उठाया जा रहा है, लेकिन पुराने ढंगका मुनीम केवल सालाना आय-व्ययका चिट्ठा ही सामने रख सकता है जिसे न तो साधारण योग्यता वाले मज़दूर समझ ही सकते हैं और न उनका अविश्वास ही दूर हो सकता है।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक तरीक़ेसे कीमत लगानेसे कुछ दिनोंमें इस प्रकारके आँकड़े तैयार किये जा सकते हैं जिनकी सहायतासे सामानके बननेके पहिले ही मूल्य कूतने वाले, ग्राहककी पूछ-ताछपर मूल्यका अनुमान-पत्र (estimate) बनाकर दे सकें। पुराने ढंगके कारखानोंमें जहाँ वैज्ञानिक "मूल्य लेखन" (cost accounting) नहीं होता वहाँ अनुमान-पत्र केवल अंदाज़ेसे ही बना दिये जाते हैं। ऐसी हालतमें यदि ग्राहकको कमती मूल्य बताया गया और ग्राहकने उसे मंजूर कर लिया तो कारखानेको घाटा रहता है; और यदि बहुत अधिक बता दिया गया और उसे ग्राहकने मंजूर कर लिया तो ग्राहकको घाटा रहा और यदि न मंजूर किया तो कारखानेने अपना व्यापार खोया।

मूल्यके स्तम्भ (elements of costs)—हर एक कारखानेमें प्रत्येक चीज़को बनानेमें तीन तरहके खर्चे हुआ करते हैं, जिनका योग बिक्री-विभागके खर्चे और नफेके सहित' उस चीज़का मूल्य कहलाता है। १—सामान (material) की कीमत, २—मजदूरी (labour) ३—प्रबन्ध खर्च (overhead expenses)

सामान और मज़दूरीके ख़र्चेको जोड़नेसे उस चीज़की "प्राथमिक कीमत" (prime cost) मालूम होती है, इस प्राथमिक कीमतमें कारखानेके प्रबंधके ख़र्चेका हिस्सा जोड़नेसे उस चीज़की "कारखानेकी कीमत" (works cost) मालूम होती है। कारखानेकी कीमतमें बिक्री-विभागका ख़र्चा (subs expenses) जोड़नेसे उस चीज़की "कुल कीमत" (total cost) मालूम होती है, और इस कुल कीमतमें मुनाफ़ा जोड़नेसे उस चीज़का "बिक्रीका मूल्य (selling price) मालूम होता है।

कीमत लगानेके प्रकार

१—सामानकी बनवाई अथवा आदेश-पत्रका तरीक़ा (job costing or order method) इस तरीक़ेमें भिन्न-भिन्न खर्चे किसी एक ही आदेश-पत्र पर लगा दिये जाते हैं, चाहे वह एक ही चीज़ बनानेके लिए हो अथवा कई के लिये, चाहे यह आदेश किसी सामानको आरम्भसे अन्त तक बनवानेके लिये हो, या चाहे उस

सामान पर कोई विशेष क्रियायें करवानेके लिये। अकसर इंजीनियरिंग कारखानोंमें यही तरीक़ा बरता जाता है।

२—क्रियाका तरीक़ा (process costing)—इस तरीकेमें प्रत्येक क्रियाके अनुसार कीमत लगाई जाती है। यह तरीक़ा वहीं काममें लाया जाता है जहाँ उपोत्पादित पदार्थ स्वभावतः बन जाते हैं-जैसे खाद्य पदार्थ बनानेके कारखानों, फारमेंसियों और रङ्ग और रोगन आदि बनानेके कारखानोंमें।

३—सेवात्मक तरीक़ा (operative under taking costing) यह तरीक़ा वहाँ काममें आता है जहाँ सामान तो किसी प्रकारका नहीं बनाया जाता लेकिन सेवायेंको जाती है, जैसे बारबरदारी (transport), सामान उतारना-चढ़ाना (loading unloading) पानी खींच कर देना इत्यादि।

सामान

किसी वस्तुके बनानेमें सामान दो प्रकारसे ख़र्च होता है। एक तो प्रत्यक्ष (direct) और दूसरा अप्रत्यक्ष (indirert)।

प्रत्यक्ष सामान—किसी वस्तुके बनाने अथवा किसी क्रियाके करनेमें सामानका प्रत्यक्ष खर्चा वह है जो कि सही-सही नापा जाकर उसकी कीमत उस वस्तु, आदेश अथवा क्रिया पर लगाई जा सके, जैसे सरिये, चद्दर, तार इत्यादि।

अप्रत्यक्ष सामान—किसी वस्तुके बनाने अथवा किसी क्रियाके करनेमें सामानका अप्रत्यक्ष खर्चा वह है जो सही-सही न नापा जा सके लेकिन जिसको कीमत किसी न्यायसंगत तरीकेसे विभक्त कर उस वस्तु, आदेश अथवा क्रिया पर लगा दी जा सके—जैसे यंत्रोंको चलानेमें तेल, ग्रीज, साबुनका पानी अथवा जूट (cotton waste) आदिका खर्चा अथवा जैसे बिजली द्वारा कलई करनेमें कलईकी धातु और रासायनिक पदार्थोंका खरचा इत्यादि।

मज़दूरी

किसी वस्तुके बनानेमें अथवा किसी क्रियाके करनेमें मज़दूरी भी दो प्रकारकी लगती है, एक तो प्रत्यक्ष और दूसरी अप्रत्यक्ष।

प्रत्यक्ष मज़दूरी—प्रत्यक्ष मज़दूरी वह होती है जो किसी वस्तुके बनाने अथवा क्रियाको करनेके लिये किसी खास कर्मचारियोंको जो उस कामको करनेके लिये नियुक्त किये गये हैं, दी जाती है, जैसे फरमाघर और ढलाईखानोंमें बढ़ई और साँचा (mould) बनाने वालोंको दी जाती है। यह मज़दूरी उनके कार्य-पत्रों (job cards) द्वारा नापी जा सकती है, जो मज़दूरी शीर्षक अध्यायमें वर्णित पाँच तरीकों द्वारा दी जाती है।

अप्रत्यक्ष मज़दूरी—अप्रत्यक्ष मज़दूरी वह होती है जो किसी वस्तुके बनाने अथवा क्रियाके करनेमें सही-सही न नापी जा सके, लेकिन वह किसी न्यायसंगत तरीक़ेसे विभक्त कर उस वस्तु, आदेश अथवा क्रिया पर लगा दी जाती है। उदाहरणके लिये बिजली द्वारा कलई करने वाले अथवा हड्डीकी आबदारी लगाने वाले कारीगरको ही लीजिये। वह अकसर किसी एक अथवा दो वस्तुओं पर एक साथ काम बहुत कम करता है, जब उसके पास पूरा हौज़ अथवा बक्स भरने योग्य विविध आदेशोंका सामान हो जाता है तब वह अपना काम आरम्भ करता है। ऐसी हालतमें उसकी मजदूरी भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर किसी उचित तरीक़ेसे ही बाँटनी पड़ती है। हाँ, एक ही आदेश का यदि इतना काम हो कि उसके हौज़ या बक्सकी भरती भर जाय तो दूसरी बात है।

प्रबन्ध खर्च—कारखानेके प्रबन्ध खर्च में निम्न लिखित बातोंका खर्चा अकसर शामिल रहा करता है, जो किसी न्यायपूर्ण तरीकोंसे, जिसका वर्णन आगे चलकर होगा, कारखानेमें तैयार होने वाली प्रत्येक चीज़ क्रिया अथवा आदेश पर लगा दिया जाता है।

प्रबन्ध खर्चमें अकसर निम्नलिखित खर्चे गिने जाते हैं।

१—पूँजीका ब्याज, सब प्रकारके किराये, चुँगी, कर, बीमा और छीजन खर्च।

२—व्यवस्थापकों, फोरमैनों और दफ्तरके कर्मचारियोंका वेतन।

३—शक्तिका खर्चा।

४—गरमी प्राप्त करनेका खर्चा।
५—रोशनीका खर्चा।
६—इमारत और यंत्र आदिकी मरम्मत।
७—औज़ार और फरमोंको व्यवस्था और सम्हाल खर्च।
८—आर्थिक विभागका खर्चा।
६—नकशाघर, प्रयोगशाला और अन्वेषण-विभागका खर्चा।
१०—जायदाद और मजदूर-विभागका खर्चा।
११—भंडार गृहका खर्चा।
१२—सामान खरीदनेका खर्चा।
१३—भीतरी और बाहरी बारबरदारोका खर्चा।
१४—निरोक्षण विभागका खर्चा।
१५—अधिक समय काम करनेका वेतन।
१६—उपाय-विभाग और चालक विभागका खर्चा।
१७—गठरी-बन्दी और खानगीका खर्चा।
१८—बेकार समय और छुट्टियोंका वेतन।
१६—अप्रत्यक्ष सामानका खर्चा, जैसे तेल, जूट साबुन, सोडा आदि।
२०—विविध प्रकारके खर्च, जैसे दफ्तरके कागज़ कमल आदि, उपरोक्त बातोंमेंसे कुछ तो बातें ऐसी हैं जो पूरे कारखानेसे सम्बन्ध रखती है और कुछ ऐसी हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न विभागों पर बाँटा जा सकता है।

अप्रत्यक्ष मजदूरी और प्रबन्ध खर्चको बाँटनेके तरीक़े—

(१)—प्रत्यक्ष मजदूरी पर निश्चित प्रति शत दर (Percentagi on direct wages) निम्न लिखित सूत्रसे निश्चितकी जाती है।

$$\frac{\text{एक वर्षका प्रबन्ध खर्च}}{\text{एक वर्षको प्रत्यक्ष मजदूरी}} \times १०० = \text{प्रति शत दर}$$

इस प्रकारसे प्रबन्ध खर्चको बाँटनेमें सबसे भारी ऐब यह रह जाता है कि जिन कामोंमें बहुत कीमती मशीनोंका उपयोग किया जाता है, जिनकी सार-सम्हालमें बहुत प्रबंध ख़र्च बैठ जाता है और जिन कामोंमें केवल हाथसे ही काम करता है इत्यादि भेद-भावों पर कुछ विचार नहीं हो पाता।

(२) प्रति घंटा प्रत्यक्ष मजदूरी पर निश्चित दर (rate per direct labour hour) निम्न-लिखित सूत्रसे निश्चितकी जाती है।

$$\frac{\text{एक वर्षका प्रबन्ध खर्च}}{\text{एक वर्षके प्रत्यक्ष मजदूरीके घण्टे}} = \text{प्रत्यक्ष मज़दूरी पर प्रति घंटा दर}$$

इस प्रकारसे प्रबंध खर्चको बाँटनेमें सबसे भारी लाभ यह होता है कि धीरे-धीरे अर्थात् सुस्तीसे काम करने वाले, जो अधिक शक्ति, रोशनी और प्रबन्ध चाहते हैं और फुरतीसे तेज़ काम करने वाले जो कम शक्ति, रोशनी और प्रबन्ध चाहते हैं, इनका विचार इसमें आ जाता है।

(३) प्राथमिक कीमतपर प्रति शत दर (percentage on prime cost) निम्न लिखित नियमसे निश्चितकी जाती है।

$$\frac{\text{एक वर्षका प्रबन्ध खर्च}}{\text{एक वर्षकी प्रत्यक्ष मज़दूरी और सामान खर्च}} \times १०० = \text{प्रति शत दर}$$

इस प्रकारसे प्रबन्ध खर्चको बाँटनेमें निम्नलिखित ऐब रह जाते हैं:—(१) कीमती और सस्ते सामानको जुटा कर रखनेके खर्चका विचार नहीं होता। (२) कीमती और सस्ते सामान पर जिस प्रकार अधिक और कम ध्यान देकर काम किया जाता है उसके खर्चेका विचार नहीं होता। (३) कीमती मशीनोंके विशेष ख़र्चे और केवल हाथसे किये हुए सस्ते कामके खर्चेके फ़र्कका विचार नहीं किया जाता।

(४) विभागानुसार दर (departmental rate)—कारखानेके समस्त प्रबन्ध खर्चको पहिले विभागानुसार विश्लेषण कर लिया जाता है जिसकी विधि आगे चलकर बताई जायगी और फिर उससे एक दर निश्चित कर दी जाती है जो या तो प्रत्यक्ष मजदूरी पर या प्रत्यक्ष काम करनेके घण्टों पर लगा दी जाती है। इससे खास लाभ यह होता है कि जो विभाग विशेष कीमती यन्त्र और औज़ार काममें लाते हैं और जो नहीं लाते इन बातोंका भी विवेचन हो जाता है।

यन्त्र दर (machine rate)—यह नीचे लिखे हुएके अनुसार निर्णयकी जाती है।

१—सबसे पहिले नीचे लिखी मद्दोंके खर्चोंका विभागोंके अनुसार विश्लेषण किया जाता है । प्रत्येक विभाग, कुल कारखानेके क्षेत्रफलके कितने अंशको घेरता है, उसके अनुपातसे उन खर्चोंको बाँटा जाता है ।

क—पूँजीका व्याज, सब प्रकारके किराये, चुङ्गी, कर, बीमा और इमारतका छीजन खर्च ।

ख—आयदादकी क़ानूनी हिफ़ाज़त, मरम्मत, सफ़ाई चौकीदार, औषधालय और स्कूल आदिका खर्चा ।

ग—सब विभागोंमें लगे यन्त्रोंको चलानेके लिये धुरे, माल मोटरों इत्यादिको सम्हालने, उनकी मरम्मत करने और नये बदलनेका खर्चा ।

घ—सब विभागोंमें गरमी और रोशनी पहुँचानेका खर्चा ।

फिर उस विभागकी प्रत्येक मशीन, उस पर काम करने वाला कारीगर और उस मशीनसे सम्बन्ध रखने वाला कच्चा और तैयार माल, औज़ारोंके बक्स आदि कितनी जगह घेरते हैं यह नापना चाहिये और फिर देखना चाहिये कि उस विभागके दफ्तर, औज़ार-घर, निरीक्षण-विभाग और गुसलखाने आदि कितनी जगह घेरते हैं । अतः जितनी भी जगह यह घेरे उसे भी प्रत्येक मशीन पर बाँट देना चाहिये । फिर कारखानेके उपरोक्त खर्चोंको उस विभागके कुल क्षेत्रफलसे भाग देकर मालूम करना चाहिये कि क्षेत्रफलकी एक इकाई पर कितना खर्चा बैठता है और फिर उसके हिसाबसे प्रत्येक मशीनके ऊपर आने वाला खर्चा निकाल लेना चाहिये ।

२—उसी विभागके फोरमैन, मिस्त्री और दफ़्तरके बाबुओं, सफ़ाई वालोंकी तनख़्वाह, यन्त्रोंकी मरम्मत और मरम्मत करने वाले विभागका ख़र्चा, विभागके हिस्से मशीनोंको कीमतके अनुसार प्रत्येक मशीन पर बाँट देनी चाहिये । इसी प्रकार प्रत्येक मशीनका छीजन खर्च, उसकी लागत पर व्याज आदि, मशीनकी लागत पर १५% प्रति वर्षके हिसाबसे बाँट देना चाहिये ।

३—कारखानेके व्यवस्थापक, सहायक व्यवस्थापक, उनके दफ़्तरके बाबुओं, मुख्य यांत्रिक, नकशाघर, प्रयोग अन्वेषण-विभाग, निरीक्षण-विभाग, अधिक समय काम करनेका वेतन, भंडार-गृह, आर्थिक विभागका खर्चा, उपाय-विभाग और चालक विभागका खर्चा, बेकार समय और छुट्टियोंका वेतन, दफ़्तरके कागज़ क़लम आदिका खर्चा, पहिले तो विभागानुसार बाँटना चाहिये और वह भी, प्रत्येक विभाग जितनी प्रत्यक्ष मजदूरी एक वर्षमें देता है, उसके अनुपातानुसार और फिर इस प्रकारसे प्राप्त ख़र्चेके हिस्सेको प्रत्येक मशीन पर उसकी कीमतके अनुसार बाँट देना चाहिये ।

४—भंडार-गृहका खर्चा, सामान खरीदने और तैयार मालकी गठरीबंदी, खानगी भीतरी और बाहरी बारबरदारीका खर्चा, अप्रत्यक्ष सामानका खर्चा, सब प्रकारकी अप्रत्यक्ष मज़दूरी, प्रत्येक विभाग कितनी प्राथमिक कीमतका सामान तैयार करता है उसके अनुपातानुसार सब विभागोंको बाँट देना चाहिये । फिर इस प्रकारसे प्राप्त ख़र्चेके हिस्सेको प्रत्येक मशीन पर कितनी प्रत्यक्ष मज़दूरी होती है, उसके अनुपातसे प्रत्येक मशीन पर बाँट देना चाहिये ।

५—शक्तिके खर्चेके लिये पहिले तो प्रत्येक विभागमें मीटर लगाना चाहिये, और फिर वे मीटर जितना खर्चा प्रदर्शित करें उसे प्रत्येक मशीन पर उसके निर्माण-कर्त्ताओंके दिये हुए अश्वबलकी दर और उसके चालू घंटोंके गुणनफलके अनुपातसे बाँट देना चाहिये ।

फिर उपरोक्त पाँचों प्रकारमें प्राप्त प्रत्येक मशीनके खर्चेको प्रति घंटेको दर पर ले आना चाहिये और उसमें उस मशीन पर काम करने वाले कारीगरको प्रति घंटा मज़दूरी जोड़नेसे उस मशीनकी दर मालूम हो जाती है ।

बाहरी बारबरदारी का खर्चा

(१) यदि खरीदने वाला और बेंचने वाला दोनों ही रेल्वे स्टेशनसे दूर हैं तो इस प्रकारसे खर्चा पड़ेगा ।

(क) कारखानेसे लारीमें लादनेका ख़र्चा
(ख) लारीमें स्टेशन तक ले जानेका ख़र्चा ।
(ग) लारीसे स्टेशन पर उतारनेका ख़र्चा ।
(घ) रेलमें लादनेका ख़र्चा ।
(ङ) रेलका किराया ।
(च) रेलसे उतारनेका ख़र्चा ।
(छ) लारीमें लादनेका ख़र्चा ।

(ज) स्टेशनसे गोदाम तक लारीमें लेजानेका खर्चा।

(झ) गोदाममें लारीसे उतारनेका खर्चा।

२—यदि बेचने और खरीदने वाले दोनों ही समुद्र पार मुल्कोंमें रहते हैं तो उनके खर्चे इस प्रकारसे होंगे।

(क) कारखानेसे लारीमें लादनेका खर्चा।

(ख) लारीमें स्टेशन तक लेजाने का खर्चा।

(ग) लारीसे स्टेशन पर उतारनेका खर्चा।

(घ) रेलमें लादनेका खर्चा।

(ङ) रेलका किराया बन्दरगाहतक।

(च) बन्दरगाह पर रेलसे उतारने का खर्चा।

(छ) जहाज़में चढ़ानेका खर्चा।

(ज) जहाज़का किराया।

(झ) जहाज़से उतारनेका खर्चा।

(ञ) रेलमें लादनेका खर्चा।

(ट) रेलका किराया।

(ठ) रेलसे उतारनेका खर्चा।

(ड) लारीमें लादनेका खर्चा।

(ढ) लारीमें गोदामतक ले जानेका किराया।

(ण) गोदाममें लारीसे उतारनेका खर्चा।

उपरोक्त उदाहरण हदके दरजेके दिये गये है, । कई कारखाने और गोदाम ऐसे होते है जिनके भीतर तक रेलकी लाइन पहुँचती है अथवा वे समुद्रके किनारे बंदरगाह पर या उसके पास होते हैं जिससे खर्चेकी कई मदें बच जाती हैं जिनपर पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

नीचे एक नक़शा दिया जाता है जिसमें बताया है कि किसी कारखानेमें पैसा खर्च करनेकी तीन मुख्य मदें होती है जो उसमें बनी वस्तुकी कीमतका लेखा रखनेके तीन मुख्य स्तम्भ होते हैं। इसमें यह भी बताया है उन खर्चोंका खाता रखनेके लिये सूचनायें संग्रह करनी चाहिये और प्रत्येक वस्तुकी किस प्रकारसे कीमत लगती है।

—— ——
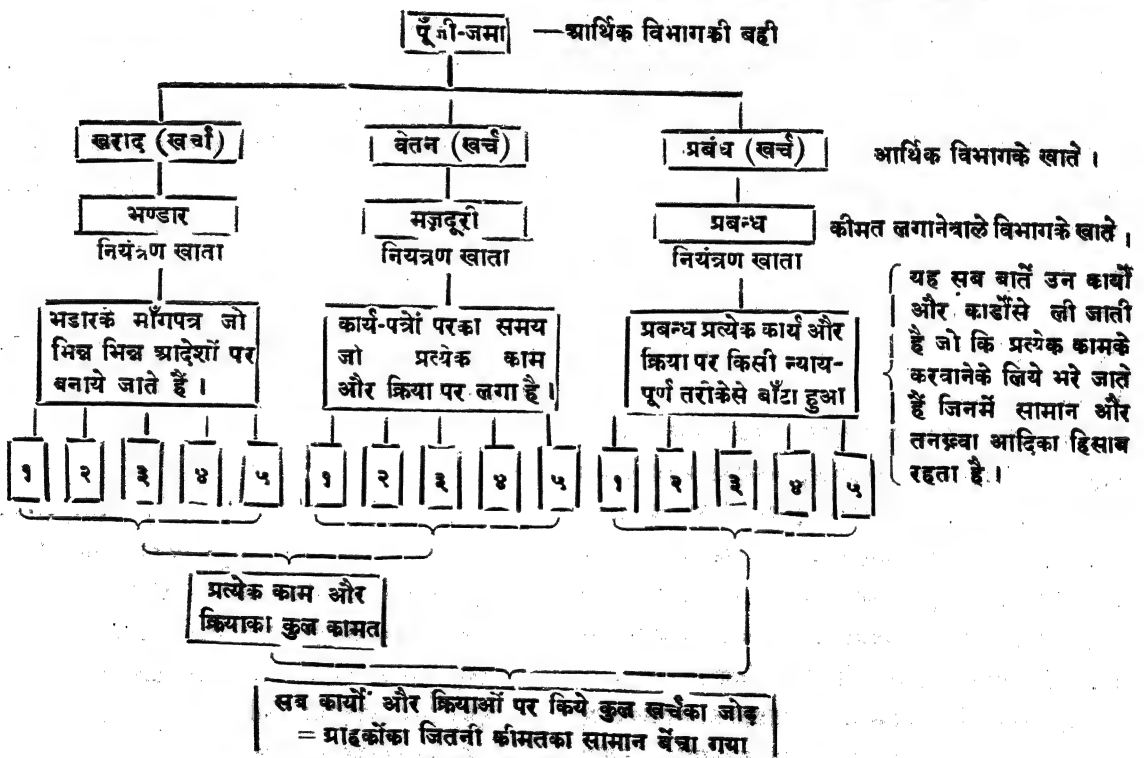
ऊर्ध्व मंडलकी उड़ानें

[ले०—डा० कल्याणबख्श माथुर]

सर्व प्रथम सन् १७८३ ई० में ऐसे गुब्बारे काममें लाये गये जिनकी सहायता से वैज्ञानिक एक टोकरेमें बैठकर वायुमंडलके ऊपर जा सकते थे। इस तरहके गुब्बारोंकी सहायता से साहसी वैज्ञानिक वायुमंडलके ऊँचे-से ऊँचे भागोंकी खोज करने और वहाँके तापक्रम, आर्द्रता आदिके विषयमें निर्दिष्ट संग्रह करनेके लिये अत्यन्त उत्साहित हुए। परन्तु उनको यह बहुत शीघ्र ही विदित हो गया कि ऐसा करना बहुत जोखमका सामना करना है क्योंकि बहुत ऊँचाई पर दबाव इतना कम है तथा ठंड इतनी अधिक है कि मनुष्यके शरीरसे रक्त फूट-फूट कर निकलने लगेगा तथा आँखें जम जावेंगी; इसके अतिरिक्त वहाँका वायुमंडल इतना सूक्ष्म है कि साँस लेना असम्भव है और खोज करने वाले वहाँ बेहोश हो जावेंगे। शुरू ही शुरूमें जो लोग ऊपर उड़ते थे वे चाहते थे कि हम जितना अधिक हो सके ऊपर जावें। वे अपने हाथमें गुब्बारेके वाल्वकी रस्सी पकड़े रहते थे ताकि जब वे चाहें गुब्बारेको नीचे उतार सकें। परन्तु वे इतनी जल्दी बेहोश हो जाते थे कि रस्सीको खींचनेकी नौबत ही नहीं आती थी और गुब्बारा उस शांत ठंडी हवामें उड़ता चला जाता था और अन्तमें वे एक विचित्र परन्तु शानदार मृत्युको प्राप्त होते थे।

प्रथम उड़ाके

सन् १८६२ ई० में इसी तरहकी एक बड़ी बहादुरीकी उड़ानमें उड़ने वालोंको सफलता भी प्राप्त हुई। ये बहादुर उड़ाके ग्लेयसर और कॉक्सवैल थे जो ब्रिटिश एसोसियेशनकी तरफसे प्रयोग करते हुए ७ मील ऊपर तक ऊर्ध्व मंडलके नीचेके भागमें पहुँचनेमें सफल हुए। इन उड़ाकोंको अधिक श्रेय इसलिये और है कि वे अनुसन्धानके आधुनिक यन्त्रोंकी सहायता बिना ही इस ऊँचाई तक पहुँचनेमें समर्थ हुए। न तो साँस लेनेमें मदद करनेके लिये उनके पास कोई ऑक्सीजन यन्त्र था, न कड़कड़ाती ठंडको सहनेके लिये कोई बिजलीसे गरम किये हुए कपड़े और न पृथ्वी पर जैसा वायु-दबाव अपने चारों तरफ बनाये रखनेके लिये कोई वायुरोधक गोनडोला (gondola)। इन आधुनिक सुविधाओंका ध्यान रखते हुए हम अनुमान कर सकते हैं कि ऊपरी वायुमंडलकी बहुत-सी समस्याओंको हल करनेके लिये एक खुले हुये मामूली टोकरेमें बैठकर ऊपर उड़नेके लिये कितने अधिक साहस तथा बहादुरीकी आवश्यकता थी। इस उड़ानके बाद कई लोगोंने ऊपर उड़नेकी कोशिशकी परन्तु इनमेंसे ऊर्ध्वमंडलमें सबसे अधिक ऊपर पहुँचनेके लिये संयुक्त राज्यके हवाई बेड़ेके कप्तान हाथार्न ग्रे ने जिस बहादुरीके साथ अपनी जान दी वह अत्यन्त सराहनीय है। ४ नवम्बर सन् १९२७ ई० को कप्तान ग्रे साँस लेनेमें सहायता देने वाले एक ऑक्सीजन-यन्त्रके साथ एक खुले हुए टोकरेमें बैठकर ऊपर उड़े और ८·०४ मील ऊपर चढ़ गये। अतः वे ऊर्ध्व मंडलमें घुसने वाले प्रथम पुरुष थे यद्यपि वापस उतरते समय कड़-कड़ाती ठंड तथा हलकी हवाके कारण उनकी मृत्यु हो गई। कप्तान ग्रे अपनी इस अन्तिम उड़ानका तमाम वर्णन एक लट्ठे पर लिखा हुआ छोड़ गये हैं। अन्तमें इस लट्ठेको कप्तान ग्रेकी पत्नीने राष्ट्रीय म्यूज़ीयमके उड्डयनविद्याके अध्यक्ष पाल गारबर (Paul Garber) को दे दिया। इस पर अभी तक कप्तानके दस्तानेके निशान विद्यमान हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं है कि जो-जो बातें कप्तान ग्रेकी उड़ानसे मालूम हुईं उनमें बादकी ऊर्ध्वमंडलकी उड़ानोंको सफल बनानेमें बहुत सहायता मिली है।

प्रोफेसर पिकार्डकी प्रथम उड़ान

जैसा सर्व संसारको विदित है गुब्बारेकी सहायतासे ऊर्ध्वमंडलके अन्दर जाकर जीवित लौट आने वाले प्रथम पुरुष ब्रूसल विश्वविद्यालयके प्रोफेसर अगस्ट पिकार्ड थे जो दो दफ़ा ऐसी ऊँचाई तक उड़े जहाँ तक पहले मनुष्य कभी नहीं पहुँचे थे। इनकी इन दोनों उड़ानोंने संसारको दो बातें साफ-साफ बता दीं। पहली तो यह कि ऊर्ध्वमंडल में जाने ओर वहाँसे जीवित वापस लौट आनेके लिये जिन-

जिन आवश्यकीय वस्तुओंका इन्होंने अनुमान लगाया था वे सच निकलीं और दूसरे, जिस उद्देश्यसे यह उड़ानकी गई थी वह भी सही प्रमाणित हो गई। बहुत तेज़ हवाओंके अतिरिक्त (जो भाग्यवश इनके समयमें नहीं चल रहीं थीं) दस मील तकके लिये जो कुछ अनुमान निचले वायुमंडलके विषयमें इन्होंने लगाया था वह बिल्कुल ठीक था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अब वहाँ तक फिरसे उड़ना या वहाँसे और भी ऊपर उड़नेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। इससे तो केवल यह विदित होता है कि जिस रास्ते पर वैज्ञानिक चल रहे थे वह बिल्कुल ठीक था।

डा० पिकार्ड ने उड़ानके समय बहुत-सी आवश्यकीय वस्तुएँ जुटा लीं थीं और इनमें सर्व प्रथम वह मशहूर गोण्डोला था जो इनको बड़ी आसानीसे ऊपर ले गया था। यह एल्यूमीनियम और टिनके मिश्रित धातुका बना हुआ एक गोला था जिसका व्यास ८२ इंच था और इसकी तौल ३०० पौण्ड थी। परन्तु जब इसमें दोनों उड़ाके तथा तमाम यन्त्र रहते थे तब इसकी तौल ८०० पौंड हो गयी। जब इसकी तमाम खिड़कियाँ बन्द कर ली जाती थीं तब इसमें बाहरसे भीतर तथा भीतरसे बाहर कोई हवा नहीं जा सकती थी। इसीलिये इसमें जैसा चाहे वायु-दबाव रक्खा जा सकता था। इसमें साँस लेनेसे जो ऑक्सीजनकी कमी होती थी उसे पूरा करनेको तथा साँससे निकले हुये कार्बन-डाई-ऑक्साइडको सोखनेके लिये भी यन्त्र थे जिनसे उसके अन्दरकी हवा बिल्कुल साफ रहती थी।

डा० पिकार्डको अपने गोण्डोला तथा गुब्बारेके बनाने के लिये आर्थिक सहायता नेशनैल-फंड-आफ़ साइण्टीफिक रिसर्चसे मिली और इसीके नाम पर इन्होंने अपने गुब्बारेका नाम एन० अफ० एस० आर० (N. F. S. R.) रक्खा। उस गुब्बारेका आयतन इसके पूरे फैल जाने पर ५००००० घन फुट था। २७ मई सन् १९३१ ई० को ऑगसबर्ग (Augsburg) से डा० पिकार्डने ऊर्ध्वमंडलकी खोजका श्रीगणेश किया। इनके साथ इनके सहायक पाल किपर (Paul kipper) भी गये थे। अपने गुब्बारेको नीचे उतारनेके पहले ये ५१७५५ फुट (९·८१ मील) ऊपर पहुँच गये थे, जहाँ पहले कोई जीवित पुरुष तथा पक्षी भी नहीं पहुँच सके थे। बहुत ऊपर पहुँचनेके बाद उन्होंने देखा कि इनका गुब्बारा आल्प्स पहाड़के ऊपर आ गया है और जब इन्होंने अपने आपको तथा तमाम संग्रह किये हुए निर्दिष्टको बचानेके लिये नीचे उतरना चाहा तो इनका गुब्बारा ओएट्ज़वाल्टमें (Oetzwald) में उबरगुरैल (Ober-guryl) के ऊपर एक बहुत बड़े ग्लेशियर पर जाकर उतरा। इससे गोण्डोला और इसके साथ-साथ बहुतसे निर्दिष्ट भी इनको नहीं मिल सके। ये लोग ऊर्ध्वमंडलमें गये और वापस भी लौटे परन्तु इनके साथ भी ऐसा ही हुआ जैसा कि अमरीकाको तलाश करनेके बाद कोलम्बसके साथ होता यदि उसका जहाज़ स्पेनके समुद्रके किनारेके पास आने पर टूट कर डूब जाता और वह उसकी बहुत थोड़ी-सी चीज़ें बचाने पाता।

डा० पिकार्डकी दूसरी उड़ान

डा० पिकार्ड दूसरी उड़ानमें जो १८ अगस्त सन् १९३२ ई० को ज़ूरिच (Zurich) से हुई, अधिक सफल रहे। इस समय इनके साथ इनके एक शिष्य मैक्सकाज़िन (Max Cosyns) गये थे। इस समय ये ५३१५२ फुट (१·००७ मील) ऊपर गये जो इनकी पहली उड़ानकी ऊँचाईसे काफी अधिक थी। १२ घंटेकी उड़ानके बाद ये इटलीमें ग्रेड झीलके पास लम्बाईके मैदानके एक खेतमें सुरक्षित उतरे। इस उड़ानमें इन्हें बहुत ठंडके कारण काफी कष्ट उठाना पड़ा और जब ये उतरे तो इन्हें इटलीकी गरमीके मौसमकी कड़कड़ाती धूपका सामना करना पड़ा। जिससे ये करीब-करीब अधमरेसे हो गये।

यू० एस० एस० आर० की उड़ान

प्रोफेसर पिकार्डने जो रिकार्ड अपनी दूसरी उड़ानमें स्थापित किया था वह सिर्फ एक वर्ष तक ही रहने पाया। क्योंकि ३० सितम्बर सन् १९३३ ई० को तीन रूसियोंने ६०६९५ फुट (११·४९५ मील) ऊपर पहुँच कर तमाम संसारको आश्चर्यमें डाल दिया। इस उड़ानके मुखिया चीफ़ पायलट जार्ज प्राकोफिव (George Prokofieu) थे जो लाल फौज़के एक बहुत अनुभवी उड़ाके थे और जिनकी आयु सिर्फ ३१ वर्षकी थी। इनके साथ सेण्ट्रल मिलिटेरी ऐवियेशन डिपार्टमेंटके एक अफसर एम०

वनबॉन तथा एम० ग्रेडुनॉफ (M. Godunoff) थे जो बहुत होशियार गुब्बारे बनाने वाले समझे जाते थे । इन्होंने अपने गुब्बारेका नाम यू० एस० एस० आर० (U. S. S. R.) रक्खा था । इनका गोण्डोला डा० पिकार्डके गोण्डोलासे काफी अच्छा था । यह डेरुलियमका बना था । इसमें बैठनेके लिये कुरसियाँ भी थीं । इसमें विशेष बात यह थी कि गुब्बारेको उड़ानके समय हलका करनेको बोझा गिरानेके लिये जो यन्त्र थे तथा और दूसरे यन्त्र जो गोण्डोलाके बाहर लगे हुये थे सब बिजलीसे काम करते थे और इनकी देख-रेख अंदर-से ही की जा सकती थी । जो गुब्बारा यह लोग काममें लाये थे वह प्रोफेसर पिकार्डके गुब्बारेसे बड़ा था । इसका व्यास ११७ फुट था और जब यह पूरा फूल जाता था तो इसका आयतन ८८०,००० घन फुट हो जाता था । अपने साथ ये लोग एक रेडियो प्रेषक तथा ग्राहक भी ले गये थे जिनकी सहायतासे ये मास्कोके पोपफ स्टेशन (Popoff - station) से बातें कर सकते थे ।

ए-सेनचुअरी-आफ़-प्राग्रेस की उड़ान

यद्यपि प्रोफेसर पिकार्डकी दोनों शानदार उड़ानोंमें सर्व संसारमें दिलचस्पी पैदा कर दी परन्तु जैसा ऊपर कह आये हैं रूस ही पहला देश था जिसने अपनी इस दिलचस्पीको प्रयोगमें लाकर संसारके सामने रक्खा और प्रोफ़ेसर पिकार्डकी दूसरी उड़ानके रिकार्डको मात कर दिया परन्तु रूसके भाग्यमें इस रिकार्डको बहुत समय तक रखना बदा नहीं था । अमरीकाके संयुक्त राज्य ने भी रूसका बहुत शीघ्र अनुकरण किया और २० नवम्बर सन् १९३३ ई० को अर्थात् यू० एस० एस० आर० की उड़ानके केवल सात हफ्ते बाद ही यू० एस० जहाज़ी बेड़ेके लेफ़्टीनेण्ट-कमा-डर टी० जी० डबल्यू-सटिल और यू० एस० "मैरीन कोरई" के मेजर चस्टर-ज्पल फ्रांडनी ओहियोके अकरानसे उड़े । इनके गुब्बारेका नाम एसेनचुअरी-आफ़-प्रोग्रेस (A-century of-Progress) था । इसमें लेफ़्टीनण्ट कमाण्डर सटिल तो गुब्बारे के उड़ानेके लिये थे और मेजर फ्रांडनो तमाम वैज्ञानिक यंत्रोंको जाँच करनेके लिये थे । आठ घंटेसे कुछ अधिक समय तक उड़कर ये न्यूजरसी में ब्रीजटनसे सात मील दक्षिण-पश्चिमको सुरक्षित उतरे । ये सबसे अधिक ऊँचे ६१२३७ फुट (११·५९ मील) तक उड़े । अतः यू० एस० एस० आर०के रिकार्डको ५४२ फुटसे मात किया । इनके गुब्बारेका आयतन इनके पूरा फैल जानेपर ६००००० घन फुट था । यह प्रोफ़ेसर पिकार्डके गुब्बारे आफ० एस० आर० ए० (५००००० घन फुट) से थोड़ा बड़ा और रूसी उड़ाकेके गुब्बारे यू० एस० एस० आर (८८०,००० घन फुट) से कुछ छोटा था । इन्होंने अपने गुब्बारेको सब से अधिक ऊँचाई पर लगभग दो घंटेके रक्खा और वहाँ पर विश्व किरणों और पराकासनी किरणोंके विषयमें अच्छा निर्दिष्ट संग्रह किया । लेफ़्टीनेण्ट कमाण्डर सटिलकी इस उड़ानकी सफलताने अमरीकामें ऊर्ध्वमंडलकी खोजके लिये गुब्बारोंकी उड़ानमें और भी अधिक दिलचस्पी पैदा कर दी और यही कारण है कि आजकल अमरीका इस विषयमें संसारमें सबका अग्रणी है और जैसा हमारे पाठकोंको आगे चल कर मालूम होगा आजकल अमरीकाके कैप्टेन अलबर्ट डल्यू० स्टीवन्सका संसारमें सबसे ऊँचे (७२३९५ फुट) उड़नेका रिकार्ड है ।

रूसकी द्वितीय उड़ान

सन् १९३४ ई० में ऊर्ध्वमंडलकी खोजके लिये चार उड़ानें हुईं । ३० सितम्बर १९३३ ई० की उड़ानकी पूर्ण सफलतासे उत्साहित होकर रूसकी ऑल यूनियन कान्फ्रेंस ने फिरसे एक दूसरी उड़ान करनेका विचार किया । इसके लिये बड़ी धूम-धामसे तैयारियाँ होने लगी । इस समय गोण्डोला भी नई तरहका बनाया गया । यह एलुमिनियम-की जगह साफ़ अचुम्बकीय इस्पात (non-magnetic steel) का बना था और इसकी दीवारकी मोटाई एक कागज़की मोटाईसे अधिक नहीं थी । इससे यह बहुत ही हलका होगया था और इसलिये इसमें और भी अधिक यंत्र रख कर ले जाये जा सकते थे । इसके लगभग सब यंत्र उपायसे आप काम करते थे और ये यू० एस० एस० आर० में भेजे गये यंत्रोंसे अच्छे तथा सुग्राहक थे । इनका गुब्बारा भी पहलेकी उड़ानोंके गुब्बारोंसे काफी बड़ा

था और एक नई तरहकी रबरवेष्टित महीन मलमलका बनाया गया था। इनकी यह उड़ान, जो सन् १६३४ ई० की पहली उड़ान थी, ३० जनवरीको हुई। इसमें फेडोसियंको (Fedoseyenko) और आसाइस्किन (Ousyskin तो गुब्बारेके उड़ानेके काम पर थे और यम वेसंको (M. Vasenko) जिन्होंने गुब्बारेको बनाया था यंत्रोंकी जाँच करते थे। इन्होंने और दूसरी बातों की अच्छी तरहसे जाँचके अतिरिक्त यह भी बताया कि जैसे जैसे हम ऊपर जाते हैं आकाशका रंग नीलेसे बैजनी तथा बैजनीसे भूरे रंगमें कैसे बदलता जाता है।

यह गुब्बारा काफी ऊँचाई पर पहुँच गया और जब ये लोग वापस उतर रहे थे तो अभाग्यवश वे रस्सियाँ जो गोण्डोलाको गुब्बारेसे बाँधे हुये थीं टूट गईं और गोण्डोला बड़ी तेज़ीसे आकर ज़मीनसे टकराया और इसमेंके तीनों उड़ाकोंकी तुरन्त मृत्यु हो गई। इस दुर्घटनाके कारणोंकी जाँच करनेके लिये एक कमेटी बैठाई गई और इसने बताया कि उतरते समय गुब्बारेकी गति इतनी तेज़ हो गई थी कि यह समतुलित न रह सका। इसीलिये किसी कारणसे गोण्डोलाको गुब्बारेसे बाँधने वाली रस्सियों ने जवाब दे दिया। गोण्डोलाके बहुतसे यंत्र तो बिल्कुल चकनाचूर हो गये, परन्तु कुछ बिल्कुल खराब नहीं हुये और इन्हींकी जाँच करके यह बतलाया गया कि गुब्बारो ७२१-७६ फुट (१३·६७ मील) की ऊँचाई तक गया।

"एक्सप्लोरर प्रथम" की उड़ान

रूसकी इस उड़ानकी दुर्घटना ने वैज्ञानिकोंको हतोत्साह करनेके विपरीत और अधिक उत्साहित किया। सन् १६३३ के अन्तसे ही वाशिंगटन डी० सी० की राष्ट्रीय भौगोलिक परिषद्ने ऊर्ध्वमंडलकी खोज करनेका विचार किया। इसने संयुक्त राज्यके हवाई बेड़े तथा दूसरी संस्थाओं और व्यक्तियोंकी जो ऊपर वायुमंडलको जाननेमें बड़ी दिलचस्पी रखते थे, सहायतासे एक बहुत बड़ी उड़ानकी सोची। इस समय इनका उद्देश्य ऊपरी वायु मंडलके विषयकी सब ज्ञातव्य बातोंको मालूम करना था। इनके लिये इतने धूमधामसे तैयारियाँ होने लगीं कि पहलेकी उड़ानोंकी सब तैयारियाँ इनके सामने कुछ नहीं थीं। इस उड़ानमें जो गुब्बारा काममें आनेको था उसका आयतन जब यह पूरा फैला हुआ हो तो ३०००००० घन फुट था। यह दो आदमियों सहित १५ मीलकी ऊँचाई तक जानेको बना था। इसकी विशालताका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पहले जो सबसे बड़ा गुब्बारा बना था उससे यह चार गुना बड़ा था। उड़ानके समय यह २६५ फुट ऊँचा रहता था, यानी यह लगभग कुतुबमीनार के बराबर ऊँचा था। इस उड़ानके लिये अमरीकाके बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंकी एक कमेटी बनाई गई थी जिसके सभापति डॉ० लेमैनमें ब्रिग्स थे। इस कमेटीका उद्देश्य यह बताया गया था कि किन-किन वैज्ञानिक विषयोंकी खोज इस उड़ानमेंकी जावे तथा इनके लिये कौन-कौनसे यंत्र किस-किस तरहसे काममें लाये जावें। इस कमेटीकी सहायतासे सबसे बढ़िया यंत्र गोण्डोलामें लगाये गये और सब यंत्र लगभग उतने ही बड़े थे जितनेकी प्रयोगशालाओंमें काममें लाये जाते हैं ताकि काफी यथार्थतासे निर्दिष्ट संग्रह किया जा सके। परन्तु ऐसा करनेसे सब यन्त्र काफ़ी बड़े तथा भारी हो गये थे। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि केलीफोरनिया-इन्सटीट्यूट-आफ-टेक्नॉलॉजी ने जो तीन विद्युद्दर्शक (electroscope) दिये थे उनमेंसे एक तो खुला हुआ था, दूसरा चार इंच मोटी तहसे चारों तरफ ढका हुआ था जिसमें बारीक-बारीक शीशेके छर्रे भरे थे और तीसरा इसी तरहकी छः इंच मोटी तहके ढका था। केवल तीसरे विद्युद्दर्शककी ही तौल छः सौ पौण्ड थी। बड़ा तथा भारी यंत्र होनेके कारण गोण्डोला भी काफ़ी बड़ा बनाया गया था। यह ६ फुट ४ इंच व्यासका एक बड़ा गोला था और इसका आयतन प्रोफेसर पिकार्ड या लेफ्टीनण्ट कमाण्डर स्टिलके गोण्डोलाके आयतनसे लगभग दूना था। यह धातु विशेष डौ-मेटेल (Dow metel) का बना था जो काफ़ी मज़बूत तथा हलका होता है और इसकी तौल सिर्फ ४५० पौण्ड थी। यदि यह डौ मेटेलके स्थानमें लोहे का बना होता तो इसकी तौल एक टन होती।

इस उड़ानके व्ययका बहुतसा भाग राष्ट्रीय भौगोलिक संस्था ने दिया था। इस उड़ानको सबसे अद्भुत बात यह थी कि इसके सब भाग बीमा करा दिये गये थे ताकि उड़ान असफल होने पर अधिक आर्थिक हानि न हो। इसमें

उड़कर हवाई सेनाके तीन अफसर मेजर-इ-कैपनर, कैप्टेन अलबर्ट-डब्लू-स्टीवन्स और कैप्टेन आर्विल-ए- एन्डरसन गये थे । यह तीनों बहुत होशियार उड़ाके थे और सन् १९१४-१८ ई० के महायुद्धमें बहुत बहादुरी तथा साहस दिखाने पर इन्हें कई पदक मिले थे । २८ जूलाई सन् १९३४ ई० को यह गुब्बारा जिसका नाम 'एक्सप्लोरर प्रथम' रक्खा गया था दक्षिणी डकोटा को ब्लैक हिल्स नामक स्थान से जो कि रपिड नगरसे सिर्फ १२ मील दक्षिण-पूर्व को था, उड़ा। यह स्थान ऐसी उड़ानोंके लिये बहुत ही उपयुक्त था क्योंकि यह एक प्यालेकी शकलका बना था और इसके चारों तरफ ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं। अब यह जगह स्टेटोकैम्पके नामसे प्रसिद्ध है। इस उड़ानकी सबसे विशेष बात यह थी कि इन्होंने गुब्बारेको बीच-बीचमें एक ही सतह पर काफ़ी समय तक रखकर अच्छा निर्दिष्ट संग्रह किया। सबसे पहले ये ४०,००० फुट वाली सतह पर लगभग १½ घंटे रुके और उसके बाद ६०,००० फुट से कुछ ऊपर उठे कि एक चररर की आवाज़ आई और गुब्बारेके नीचेका भाग फट गया तथा इस जगह जो रस्सा बँधा था वह गोंडोला पर आकर गिरा। अब इन्होंने गुब्बारेको तुरन्त नीचे उतारनेके लिये वाल्वसे गैस निकालनी आरंभकी । २० मिनटके परिश्रमके बाद गुब्बारा नीचे उतरने लगा । जैसे-जैसे यह नीचे उतरता था गुब्बारा अधिक फटता जाता था। २०,००० फुट पर आने पर तो नीचेका भाग काफ़ी फट गया और इसके अन्दरका सारा हिस्सा दिखाई देने लगा । इस समय इन्होंने अपने भारी-भारी यंत्रोंको अवतरण छत्रकी सहायतासे नीचे गिराना आरंभ किया और साथ ही शीशेके बुरादेको भी। परन्तु अब गुब्बारेकी दशा इतनी खराब होती जा रही थी कि ६,००० फुटकी ऊँचाई तक पहुँचाने पर इन्होंने गोंडोलासे कूदनेका तथा अवतरण छत्रों की सहायतासे उतरनेका विचार किया । मेजर कैपनर तो बड़ी आसानीसे कूद गये परन्तु जब कैप्टेन एंडरसन कूदने लगे तो उनके अवतरण छत्रके खोलनेके यंत्रमें कुछ खराबीसी मालूम हुई और इन्होंने दरवाजे पर खड़े ही खड़े अवतरण छत्रको खोलकर इसकी तहोंको हाथमें लेकर कूदनेकी सोची । इनके दरवाजे पर होनेके कारण कैप्टेन स्टीवन्स भी कूदने नहीं पाये और जैसे ही कैप्टेन एंडरसन ने कूदकर इनके लिये जगह की कि एक बहुत ही अनहोनी बात हुई, गुब्बारा फट पड़ा और गोंडोला कैप्टेन स्टोवन्सको लेकर पृथ्वीकी तरफ बड़े वेगसे गिरने लगा। अब इन्होंने दरवाज़ेसे कूदनेका प्रयत्न किया परन्तु हवा वहाँ इतने वेगसे चल रही थी कि उसने इन्हें वापस ढकेल दिया। इन्होंने दो बार प्रयत्न किया और दोनों बार असफल रहे । अन्तमें यह अपने सरके बल कूद पड़े परन्तु फिर भी यह गोंडोलाकी गतिसे ही नीचे गिर रहे थे जो १ मील प्रति मिनट थी। इन्होंने बड़ी शान्तिके साथ अपने तमाम बदनको एक चक्कर किया और अवतरण छत्र को खोल दिया। परन्तु जब अवतरण छत्र पर गुब्बारेका टूटा भाग जो गोंडोलाके ऊपर था आ गिरा और इन्हें फिरसे अपने साथ ले जाने लगा । भाग्यवश यह थोड़ी देरमें फिसल गया और यह बिलकुल स्वतन्त्र हो गये । ४० सेकण्ड बाद इन्होंने गोंडोलाके पृथ्वी पर टकरानेका धमाका सुना। कुछ समय बाद यह भी सुरक्षित पृथ्वी पर उतर आये। तीनों उड़ाके अपना-अपना अवतरण छत्र समेट कर वहाँ पहुँचे जहाँ गोंडोला चूर-चूर पड़ा था। इन्होंने आत्म-लेखक यंत्रोंके साथकी फिल्मोंको बड़ी जल्दी-जल्दी लपेटकर रक्खा जिससे यह और अधिक ख़राब न हों क्योंकि इनमें काफ़ी समय तक रोशनी पड़नेसे यह पहले ही कुछ ख़राब हो गई थी। गोंडोलाके अन्दर बहुतसे यंत्र चूर-चूर हो गये थे परन्तु फिर भी जो कुछ थोड़े बचे थे उनको इन्होंने निकालकर अलग रक्खा। इनकी सहायतासे मालूम हुआ कि गुब्बारा ६०६१३ फुट ऊपर तक जा सका और यदि वह फटा न होता तो यह १५,००० फुट और अधिक चला जाता ।

यद्यपि गुब्बारेके फटने तथा गोंडोलाके टूट जानेसे बहुत ज़्यादा आर्थिक हानि हुई, परन्तु इन सब चीज़ोंके बीमा होनेके कारण यह हानि काफ़ी कम हो गई।

डा० मैक्स काज़िनकी उड़ान

इस उड़ानके कुछ समय बाद ही डा० मैक्स काज़िन (Max Cosyns) जो प्रोफेसर अगस्ट पिकार्डके साथ उनकी दूसरी उड़ानमें उड़े थे, अपने विद्यार्थी एम. वाण्डर एलूस्टके साथ उड़े। यह उड़ान १८ अगस्त सन्

१९३४ ई० को बेलजियम्के आरडनीज़में हावर हैवेनसे हुई। ५२३२९ फुट (१० मीलसे कुछ अधिक) की ऊँचाई तक पहुँच कर ये १००० मीलकी दूरी पर यूगोस्लावियामें ज़ेनेवल्ज़ पर सुरक्षित उतरे। यह वे ही गुब्बारा काममें लाये जिससे शुरूमें प्रोफेसर पिकार्ड उड़े थे, परंतु इसमें कुछ परिवर्तन कर दिये गये थे जिससे यह गुब्बारा जिस स्तर पर चाहे आसानीसे ठहराया जा सकता था। इस उड़ानमें गोंडोला दूसरा बनाया गया था। इस उड़ानका उद्देश्य विशेषतः विश्वकिरणोंकी जाँच करना था।

डा० जीन पिकार्डकी अपनी धर्म-पत्नी सहित उड़ान

सन् १९३४ ई० की अन्तिम उड़ान २३ अक्टूबरको हुई जिसमें प्रोफेसर अगस्ट पिकार्डके जुड़वा भाई डा० जीन पिकार्ड अपनी धर्मपत्नी सहित उड़े। यह उड़ान संयुक्त राज्यके डाट्राइटके पास वाले फोर्ड ऐअर पोर्टसे हुई। ये १०·९ मीलको ऊँचाई तक पहुँच कर ओहियोमें केडिज़के पास सुरक्षित उतरे। डा० जीन पिकार्डकी धर्मपत्नी मिसेज़ जेनीटी पिकार्ड पहली स्त्री हैं जिन्होंने गुब्बारेकी उड़ानका लाइसेन्स लिया था और इसके साथ-साथ यह संसारमें अकेली स्त्री है जो ऊर्ध्वमंडल तक हो आई हैं। इनके गुब्बारेका आयतन ६००,००० घन फुट था। इनकी इस उड़ानका भी उद्देश्य अधिक ऊँचाई तक पहुँचना नहीं था बल्कि विश्वकिरणों तथा वैज्ञानिक बातोंकी खोज करना था।

रूसकी तीसरी उड़ान

यू०-एस०-एस०-आर गुब्बारेकी दुर्घटनासे रूसके वैज्ञानिकों ने ऊपरी वायुमंडलको खोजके लिये ऐसे गुब्बारे ही काममें लानेकी सोची जिसमें आदमी बैठकर न जाते हों और इसी समयमें वहाँ सर रेडियो भी टियोराग्राफ़ आदि पर जिनका वर्णन हम पहले कर आये हैं काफ़ी खोज हुई। परन्तु यह आदमी बैठकर जाने वाले गुब्बारोंको नहीं पा सकते और इसीलिये २६ जून सन् १९३५ ई० को यानी यू०-एस०-एस-आर की उड़ानके डेढ़ साल बाद फिर एक उड़ान हुई इसमें एम-क्रीसटापज़िल (M. Christopziile) और एम- प्रिलूटस्की (M. Prilutski) गये थे और इनके साथ लैनिनगार्ड वेधशालाके प्रोफेसर वेरीगो (Varigo) भी थे। यह रूसके बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंमें से हैं और रश्मिशक्तित्व (radio activity) तथा विश्वकिरणोंमें दक्ष समझे जाते है। यह उड़ान मास्कोके एक स्यरोड्रोम से हुई। सबसे ऊँचे १० मील तक जाकर ढाई घंटेकी उड़ानके बाद ये सब सुरक्षित उतरे। इस उड़ानका भी उद्देश्य विश्वकिरणोंकी खोज करना था।

जंगलके हानिकारक कीड़े (५)

[ले०—श्री ए० एन० चैटर्जी]

इस विषयका यह सागुनका पाँचवा क्रम है जिसमें कुछ आधुनिक कार्य्यकी सफलता प्राप्त हुई है विशेष करके सागौनके पत्र-भक्षक और उनके परान्नभोजीके बारेमें। यह देखा गया है और निर्णय किया गया है कि जहाँ जहाँ सागौनकी आबादी है, वहाँसे कीड़े सब जगहोंमें नहीं पाये जाते हैं; और सागौनके इलाकेमें हो परान्नभोजियोंका वितरण सागौनकी आबादीसे समकालीन नहीं था। यह मानी हुई बात, कि प्राकृतिक रोक (natural control सागौनके पत्र-भक्षकोंका सुधार नकली प्रचार (artificial control) से हो सकती है जहाँ कि परान्नभोजक गायब हों, भली-भांति साबित होना सम्भव हो गया है। तब देहरादूनके जंगल-विभागने बर्म्माके जंगल-विभागसे यह प्रबन्ध किया कि परान्नभोजियोंका अदला-बदला किया जाय। बर्म्मा और हिन्दुस्तानके बीचमें तब यह काम १९३७ में आरम्भ हुआ। इन परान्नभोजियोंके भेजनेके लिये बहुतसे नयी विधियाँ निकाली गयीं, जिसमेंसे यह देखा गया कि परान्नभोजियोंके ककून या प्यूपेरीया गर्मीके समयोंमें ठंडे थर्मौफ़्लास्कोंमें भेजे जायँ और वर्षाके बाद ठंडे समयोंमें हवाई जहाज़ द्वारा भेजे जावें, परन्तु अधिक दिनका फासला नहीं होना चाहिये। (अधिकसे अधिक ५ दिनका)। इन हालके दो वर्षों के अंदर चार जातिके परान्नभोजक बर्म्मासे नीलाम्बर (मदरास) में

भेजे गये और वहाँ उनका वितरण हुआ और तीन जातिके परान्नभोजक नीलाम्बरसे बर्माको भेजे गये।

यह काम पैरासाइट एक दूसरे देशोंमें भेजे जाय और मँगाये जाय, और फिर जङ्गलमें छोड़ दिये जायँ, यह अत्यन्त लाभदायक हुआ है जो कि देहरादूनके जंगलातके विभागने किया है। यह देखा गया है कि १९३७-१९३८ में हपेलिया मैकेरेलिस लार्वाके ऊपर पैरासाइटोंकी कुल आबादी २०·६% अप्रैलके महीनेमें थी, ३५·६% मईके महीनेमें थी, परन्तु दूसरे साल २४% अप्रैलके महीनेमें और १२·६% मईके महीनेमें और १५·१% जूनके महीने थी। और हाईब्लीया प्योरा लार्वाके ऊपर पैरासाइटोंकी कुल आबादी ४·१% अप्रैलके महीनेमें; १२·८% मईके महीने में, ६८.७% जूनके महीनेमें, ११·६% जुलाईके महीनेमें और ३८·३% नवम्बरके महीनेमें थी। परन्तु जुलाईसे सितम्बर तक बिलकुल ही कम थी। इसके दूसरे साल ३·७% अप्रैलके महीनेमें, २३·२% मईके महीनेमें, ४६.% जूनके महीनेमें और ८६·६ जुलाईके महीनेमें; और नवम्बर भर स्टरमीया इनकान्सपीक्यूला की अधिक फीसदी थी। इससे यह मालूम होता है कि पत्र-भक्षकोंकी आबादी कहीं अधिक प्रीडेटरों, बीमारी और जलवायु द्वारा केवल पैरासाइसकी अपेक्षा काबूमें हो।

सागौनकी आबादी जहाँ-जहाँ है, वहाँ कुछ छोटे-छोटे और जातिके पेड़ भी होने चाहिये, क्योंकि जंगलके बचाव-की मुख्य बात यही है, कि मिले हुये जङ्गलोंको कम हानि पहुँचती है, अपेक्षा ही कि जहाँ केवल एक ही जातिके पेड़ उगे हों। परन्तु सागौनके पत्रभक्षकोंसे बचनेके लिये और दूसरे पेड़ जो उग रहे हों, उनके पत्रभक्षक ऐसे होनी चाहिये जो कि सागौनके पत्रभक्षकोंकी पैरासाइटोंको पाल सकें, जब कभी ऐसा कोई समय आवे परन्तु वह दूसरे सागौनके पत्रभक्षकोंको घर नहीं दें, जिसमें वह तादादमें बढ़े, बल्कि इसका उल्टा ही होना चाहिये जो कि समय होने पर सागौनके पेड़के पत्रभक्षकका प्रीडेटर नष्ट कर दें। और यह भी देखना चाहिये कि वह पेड़ जो कि सागौनके विभागमें उग रहे हैं, वह सागुनके पत्रभक्षकोंको नहीं पालें, नहीं तो उल्टा ही फल प्राप्त होगा।

नीलाम्बरमें खोज करनेसे लाईग्रोपिया क्वाटरनलीस बहुत अच्छा पेड़ समझा गया है क्योंकि सागौनके पेड़ोंकी पत्रभक्षकोंकी पैरासाइटोंको आश्रेय देती है जब कभी सागौनके पत्रभक्षकोंकी कमी हो जाती है। लाइग्रोपीया क्याटरन-लीस २६ जातिके पैरासाइटोंसे पीड़ित है। ४०·३% अप्रैलके महीनेमें, २९% मईके महीनेमें, ४५.१% जूनके महीनेमें, १९·६% जुलाईके महीनेमें। कुछ १०,३०० लार्वे पकड़े गये और उसमेंसे केवल २२० पैरासाइटोंके ककून बनें। इसमें विशेष करके एक मक्खी जातिके पैरासाइट यूटोरोका फेसीयेटा जुलाईमें ४२%की आबादी और इससे दूसरे बढ़के मिसोस्टीनस पैरासाइट था। परंतु मासिक पैरासाइटोंकी आबादीमें अधिक भेद नहीं था। हाइपर बिलकुल नहीं थी। ६ जातिके पैरासाइट सागौन और लाइग्रोपोयामें पाये गये हैं और यह देखा गया है कि हैलेकट्रिस आईसोरा ने १% पैरासाइट सागौनके मैकेरेलिस को दे दी और १.३% प्योरा को। इन समयों पर सागौनकी पहिलेके नुकसानसे कहीं कम रही है।

अन्तिममें पैरासाइटोंकी जाँच करने पर यह मालूम हुआ है कि जितना कम ऐसे पैरासाइट हों कि दूसरे पर निर्भर करते हों, उतना ही कम घटते-बढ़ते रहेंगे।

हिन्दुस्तानमें सागौनके पेड़ोंकी पत्तियोंका बार-बार कीड़ोंसे नुकसान १००-१३० रुपये फी एकड़ और फी साल हो जाता है। परन्तु बर्म्मामें यह नुकसान और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि वहाँ एक बोरर नुकसान पहुँचाता है। इस बोररके कारण १५ लाख रुपयोंका नुकसान फी साल हो जाता है।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

उलटी-सीधी पढ़ाई

अमरीकाके डाक्टरोंने यह राय दी है कि आजकल बायेंसे जो दायेंको लिखावट जारी है और पढ़ी जाती है, उससे आँखों पर बड़ा ज़ोर पड़ता है। उनका कहना है कि पंक्ति बायेंसे दायेंको जावे। ऐसा लिखनेके बाद पढ़नेमें कष्ट न होगा। यह विधि मानों हिन्दी-उर्दू लिपियोंका

समझौता है। इस विधिकी लिखावट ऐसे होगी—

पहले बाँयेंसे दाँयेंको पढ़ो।

ढ़ोप येंदाँ से येंबाँ रफि

अंग्रेज़ीमें—

First from left to right,
.tfel ot thgir morf neht

इसका नाम स्विंग-रीडिंग रक्खा गया है।

प्रतिदिन पृथ्वी गरम होती जा रही है

कहा जाता है कि बहुत दिनों पहले पृथ्वी आगका गोला थी और बादको धीरे-धीरे ठंडी पड़ गयी यह बात ठीक है। पर ऐसा मालूम होता है कि आजकल पृथ्वी गरम होती जा रही है। संयुक्त राज्य अमरीकाकी जलवायु-संस्था ने इसी प्रकार बात घोषितकी है। गत् ३२ वर्षोंकी जलवायुके लेखा पर विचार करनेके उपरान्त इस परिणाम पर पहुँच गया है। अधिकतर सभी स्थानोंका औसत तापक्रम पहलेकी अपेक्षा अब बढ़ गया है।

सबसे ठंडा और सबसे गरम स्थान

कहा जाता है कि सबसे अधिक ताप-क्रम आज तक लीब्याका अंकित किया गया है। यह स्थान इटली वालोंके अधिकारमें है और उत्तरी अमरीकामें स्थित है। सन् १९२२ में यहाँ अधिकतम तापक्रम १३६·४ डिगरी पाया गया। इससे अधिक ताप-क्रम अब तक कभी और किसी देशमें नहीं मिला।

और सबसे न्यून तापक्रम? कहा जाता है कि साइबेरियाके एक प्रान्तमें १८९२ में तापक्रम शून्यसे ९४ ४ डिगरी नीचे तक गिर गया। इतना अधिक शीत कहीं नहीं पड़ा। वस्तुतः साइबेरियामें सबसे अधिक सरदी पड़ती है।

चुम्बकीय दाँत

जो लोग नक़ली दाँतोंका प्रयोग करते हैं, वे जानते हैं कि दाँतोंको सदा एक ही स्थितिमें रखना कितना कठिन हो जाता है। कहा जाता है कि अमरीकामें एक ऐसी विधि निकली है जिससे ये दाँत सदाके लिये एक निश्चित स्थिति में जड़े जा सकते हैं। इन दाँतोंमें शक्तिशाली चुम्बक लगे हैं। ठीक क्या रहस्य है, यह कहना कठिन है। एक संशयवादीका कहना है। मान लो चुम्बकीय दाँत वाले दो व्यक्ति चुम्बन करनेके लिये आगे बढ़े। क्या ऐसे समयमें मानसिक आकर्षणके अतिरिक्त भौतिक आकर्षण भी होगा या नहीं? लोहेकी चम्मचसे मुँहमें मटर डालने पर क्या होगा।

समालोचना

मठा उसके गुण तथा उपयोग लेखक श्री महेन्द्रनाथ पांडेय आयुर्वेद विशारद, श्रीधन्वन्तरि रसायन शाला, दिलकुशा, इलाहाबाद। पृष्ठ सं० ३१ मूल्य ।)

भारतमें मठाका प्रचार बहुत दिनोंसे चला आता है। पंजाबमें दहीकी लस्सी, बंगालमें दहीका घोल, महाराष्ट्रमें ताक (तक्र) और मद्रासमें मठा आज भी अच्छी मात्रामें सेवन किये जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक लिखकर लेखक ने हिन्दी और हिन्दी भाषी जनताकी विशेष सेवाकी है। हम लोग मठाको एक साधारण वस्तु समझ कर उस पर ध्यान नहीं देते। किन्तु पुस्तक देखनेसे हम यह समझनेके लिये वाध्य होते हैं कि यह उपेक्षणीय वस्तु नहीं है। पुस्तकमें उद्धृत श्लोकोंसे यह भली-भाँति विदित हो जाता है कि हमारे यहाँके प्राचीन चिकित्सकोंने इसके अन्वेषणोंमें विशेष श्रम किया था और जो अनुभव वे छोड़ गये हैं वे आज भी वैसे ही आदरणीय और मान्य हैं।

मठा दूध और दही दोनोंकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। दूधके तारतम्यमें दही अधिक पाचक है, और मठा दहीसे अधिक है। दूधमें जावन डालनेपर जीवाणु विशेष अपनी क्रिया करने लगता है जिससे दूधकी शर्करासे दुग्धि काम्ल बनता है। इस अम्लकी विद्यमानतामें दूधका कैसीनोजेन कैसीनमें परिणत हो जाता है, जो अवक्षेपित हो कर दही जमाता है। दहीका यह अम्ल पाचनमें विशेष सहायक है और अनेक रोगोंका घातक है।

वर्षामापक यंत्र

[ले० श्री बाबूरामजी पालीवाल]

वर्षाके नापनेके लिये रेनगेज नामक यंत्रका प्रयोग किया जाता है। पहिले-पहल कोरियामें सन् १४२२ में वर्षामापक यंत्रोंका प्रयोग किया गया था। यह कई प्रकारके होते हैं।
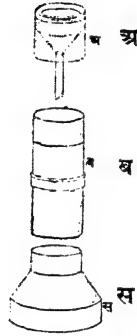
चित्र नं० १— साइमनका वर्षामापक यंत्र

आज कल सबसे अधिक प्रचलित वर्षामापक यंत्र साइमनका वर्षामापक यंत्र है। इसका एक चित्र यहाँ दिया जाता है। (चित्र नं० १) इसमें एक फुल्ली 'अ' होती है
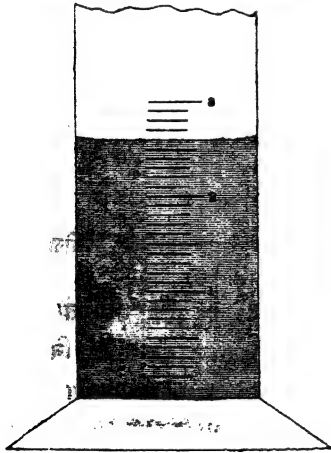
चित्र २— मेज़रिंग ग्लास

जिसके ऊपरी सिरेपर पीतलकी रिम लगी होती है जो ठीक-ठीक वृत्ताकार होती है और जिसका व्यास ठीक ५ इञ्चका होता है एक बेलनदार पानी जमा होनेका पात्र 'ब होता है तीसरा पात्र 'स' होता है जो ज़मीनमें गड़ा होता है।

पानी जब बरसता है तब फुल्ली 'अ' में होकर पात्र 'ब' में जो पात्र 'स' में रक्खा होता है, जमा हो जाता है। इस जमे हुये पानीको एक ख़ास नापनेवाले गिलाससे जिसे नपना या मेज़रिंग ग्लास कहते हैं (चित्र नं० २) नाप लेते हैं। इसमें एक इञ्चके शतांश तकके निशान बने होते हैं।

वर्षा नापनेके स्वलेखक यंत्र भी होते हैं जो मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं :—

(१) टिपिंग-बकेट गेज

(२) फ्लोट रेन गेज

(३) हायटोग्राफ

(१) टिपिंग-बकेट गेजमें पानी एकत्रित होने वाला पात्र दो भागोंमें बँटा होता है और वे दोनों भाग एक धुरी पर इस प्रकार समतुलित होते हैं कि जब उनमेंसे एकमें पानी इकट्ठा होकर पूरा भर जाता है तो स्वतः ही पानी उसमेंसे एक तीसरे बड़े पात्रमें टपक जाता है और खाली वाले दूसरे भागमें पानी एकत्रित होने लगता है। जब यह भर जाता है तब पहिले वाले भागमें पानी एकत्रित होने लगता है और इसका पानी टपकने लगता है। इस प्रकार जब-जब पानी टपकता है तब-तब यह एक डिस्क पर बिजली द्वारा लिख उठता है। टपकने वाले पात्र इतने छोटे होते हैं कि उनसे ०·०१ इञ्च तककी माप हो सकती है और किसी-किसी यंत्रसे तो ०·००५ इंच तककी भी माप हो सकती है।

(२) फ्लोटिंग रेन गेज में एक तैरने वाली वस्तु जब पात्रमें पानी भरता है तो ऊपरको उठती जाती है और उसके साथ एक कलम लगा रहता है जो एक घड़ी द्वारा घूमने वाले ड्रमके ऊपर लिपटे हुए चार्ट पर लेख अंकित करता जाता है। जैसे-जैसे पानी बढ़ता है वैसे-वैसे वह तैरने वाली वस्तु ऊपर बढ़ती है और उसी प्रकार कलम ऊपर उठता है। जब पानी एक निश्चित सतह पर पहुँचता है तो एक झुकी हुई नली सायफन द्वारा सब पानी

बाहर निकल जाता है। फिर तैरने वाली चीज़ नीचे झुक जाती है और फिर पानीके एकत्रित होनेसे ऊपर उठती है। इस प्रकार चार्ट पर जैसे-जैसे कलम ऊपर होता है उसके निशान बनते जाते हैं। इस तरह किस समय कितनी वर्षा हुई यह जाना जा सकता है। इस प्रकारके
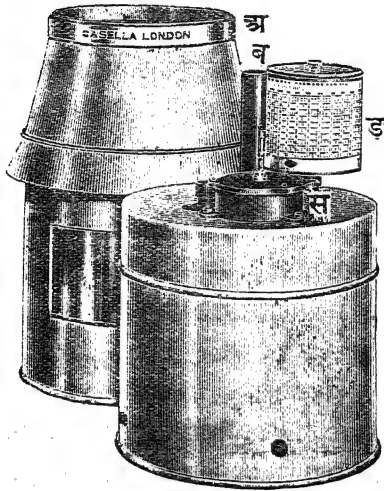
चित्र नं० ३ – प्राकृतिक सायफन रेनगेज

वर्षामापक स्वलेखक यंत्रोंमें प्राकृतिक सायफन रेन गेज बड़े ही सरल होते हैं और वायुमंडल निरीक्षणालयोंमें अधिकतर उन्हींका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकारके यंत्रका एक चित्र यहाँ दिया जाता है। (चित्र नं० ३)

इस यंत्रमें फुल्ली 'अ' ८ इञ्च व्यासकी होती है जिसमें होकर वर्षाका जल धीरे-धीरे नली 'ब' में होकर एक पात्र 'स' में पहुँचता है। इस पात्रके भीतर एक तैरने वाली वस्तु होती है जिसके ऊपर एक डंडीमें कलम लगा रहता है। जैसे-जैसे पानीकी सतह ऊपर उठती है, यह कलम ऊपर उठता है और ड्रम 'ड' जो एक घड़ी द्वारा घूमता रहता है पानीकी सतहको लिखता जाता है।

जब पानी एकत्रित होने वाला पात्र एक दम भर जाता है तब टेढ़ी नली सायफन अपने आप काम करने लगती है और उसमें होकर सब पानी बाहर निकल जाता है जिससे तैरने वाली वस्तु फिर नीचे आ जाती है। उसके साथ-साथ कलम जो उसीमें जुड़ा रहता है नीचे आ जाता है।

इस यंत्रके भीतरी भागको तथा सायफनको स्पष्ट दिखानेके लिये चित्र नं० ४ दिया जाता है। इसमें देखा जा सकता है कि सायफनकी लम्बी तथा छोटी नलियाँ एक दूसरेके समकक्ष हैं। लम्बी नली जिसमें होकर पानी बाहर निकलता है छोटी नलीके भीतर है और इस छोटी नलीका सम्बन्ध जलके इकट्ठा होने वाले पात्रसे है। इन दोनों नलियोंके जोड़नेका मार्ग दोनों नलियोंके ऊपर एक सूक्ष्म
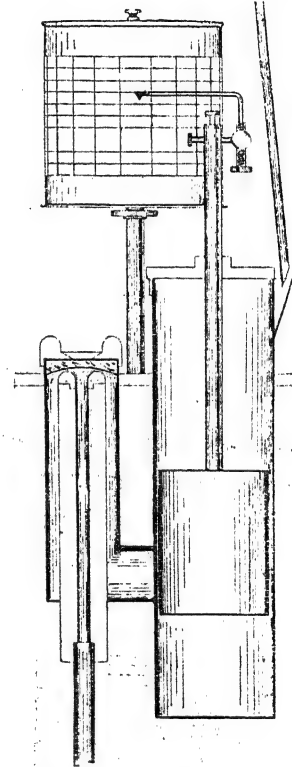
चित्र ४ — प्राकृतिक सायफन रेनगेजका भीतरी भाग

व्यासके छिद्रमें होकर है जो वैसे तो बहुत छोटा है परन्तु इसमें से होकर पानी बड़ी आसानीसे निकल जाता है। छोटी नलीका ऊपरी भाग इस प्रकार रक्खा जाता है कि जैसे ही पात्रमें पानी एक निश्चित सतह पर पहुँचे, वैसे ही इस छिद्रमें हो कर पानी निकलना शुरू हो जाय। जब पानी निकलना शुरू हो जाता है तब लम्बी वाली नलीकी वायुका स्थान पानीसे भर जाता है। इस प्रकार जब तक सारा पानी नहीं निकल जाता पानीका बहना जारी रहता

है। जैसे ही सब पानी निकल जाता है वायु फिर इस नलीमें भर जाती है और फिर पानी पात्रमें एकत्रित होने लगता है । इस प्रकार इस यंत्र द्वारा वर्षा किस समय कितनी हुई यह जाना जा सकता है जो भविष्यके अन्वेषण-कार्यके लिये उपयोगी होता है।

हायटोग्राफ (चित्र नं० ५) भी करीब-करीब सायफन रेनगेज ही की तरह का होता है। इसमें सायफन के स्वतः काम करनेका प्रबन्ध नहीं रक्खा गया, इससे पानी एकत्रित होने वाला पात्र काफ़ी बड़ा बनाया जाता है- अर्थात् जिसमें ४ इञ्चसे अधिक पानी समा सके और तैरने वाली वस्तुके ऊपरकी डंडीमें कई बाहर निकले हुए पिन लगे होते हैं जो समान दूरी पर होते हैं। यह दिनके बाद दूसरे कलमकी कमानीसे जुड़ जाते हैं। जब कलम चार्टके ऊपर पहुँच जाता है तो कमानी अपने आप पहिले पिनसे छूट जाती है और नीचे वाले पिन पर लग जाती है और इसी समय कलम भी चार्टके नीचे आ जाता है । यह नियम बराबर जारी रहता है जब तक कि पानी एकत्रित होने वाला पात्र बिलकुल न भर जाय और तब पानीको एक नली द्वारा हाथसे बाहर निकाल देते हैं । चार्ट और ड्रमका प्रबन्ध इसमें सायफन रेनगेजका सा ही होता है ।
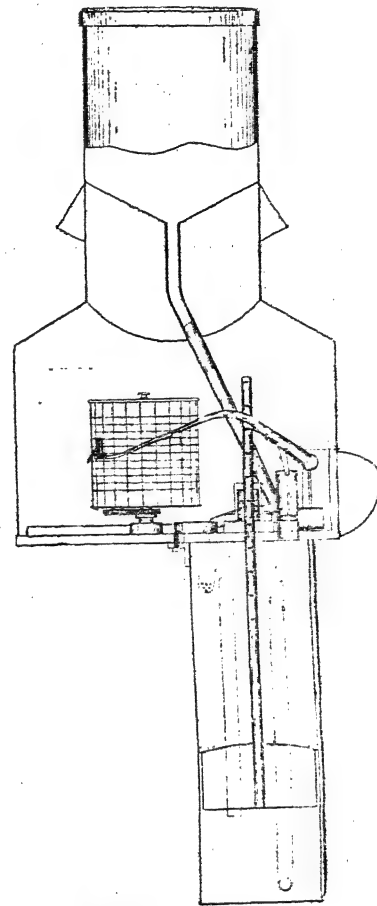
चित्र नं० ५ हायटोग्राफ

आंवला

[ले—श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार]

नाम

संस्कृत*—उत्पत्ति बोधक नामः—आमलकी (अमलात्कात् अश्रुजलात् आगतम्, भगवती और लक्ष्मीके ज़मीन पर गिरे हुए अश्रुजलोंसे उत्पन्न वृक्ष)।

*वयस्थाऽमलकं वृस्यं जातीफलरसं शिवम् ।
धात्रीफलं श्रीफलं च तथाऽमृतफलं स्मृतम् ॥
धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

आमलकी वयस्था च श्रीफला धात्रिका तथा।
अमृता च शिवा शान्ता शीताऽमृतफला तथा ॥
जातीफला च धात्रेयी ज्ञेया धात्रीफला तथा।
वृष्या वृन्तफला चैव रोचनी च चतुर्दश ॥
—राज निघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग ।

वयष्यामलकी वृस्या जातीफलरसं शिवम् ॥
धात्रीफलं श्रीफलं च तथामृतफलं स्मृतम् ।
त्रिस्वामलकरख्यातं धात्री तिष्यफलामृतम् ॥
—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग;
श्लोक ३७, ३८ ।

परिचय ज्ञायक नाम:—श्रीफल (सुन्दर फल, अथवा जिसमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा फल); शेभनी (सुन्दर फल); कोल (बेरके समान गोल फल); जातीफला, जातीरसफला (जायफल जैसी आकृतिके फल); श्रृङ्गी (सूखे फलकी फाँकें सींगके रंगकी और सींगकी तरह मुड़ी हुई होती है), वृन्तफला (बहुत छोटे वृन्तों पर फल लगते हैं); कोरङ्क, आमलकी (अम्ल रस युक्त); कामलक (कुछ खट्टा फल), सीधुरसा, सीधुफला (मद्य जैसा रेषद् अम्ल कषाय फल)।

गुण प्रकाशक नामः—शिवा (कल्याणकारी); तिष्या, तिष्यफला, तिष्यरसफला 'नित्यमामलके लक्ष्मीः' इति श्रवणत् तिष्यं मङ्गल्यं फलमस्याः।

मङ्गलकारक फल); अमृता, अमृतोद्भवा, अमृतफल (अमृत रूप फल); दिव्याधारा (दिव्य आधार वाला, जिसके सेवनसे दिव्य गुण आते हों) वयःस्था (आयु स्थापक); वयस्या (आयुष्कारक फल); धात्रीकला, धात्रिका, धात्रेयी, धात्री (आयु धारण कराने वाले फल); आमलकी (आमलते 'मलं' धारणे, शरीरमें धातुओंको धारण कराने वाला फल); वृष्या, वृष्यफला (रसके फलवृष्य होते हैं); शीता, शान्ता, शीतफला (पिपासा शान्त करने वाला शीत फल)।

हिन्दी—आंवला, आमला।
बँगला—आमलकी।
आसामी—आमलकी।
तामिल—नेलि।
केनरी—नेल्लिकाय।
मराठी—आवला।
गुजराती—आम्बला।
सिंहाली (लङ्का)—नेल्लि।
वर्मा—शब्जु
अरबी—आमलज।
पर्शिया—आमला।
अंग्रेज़ी—एम्ब्लिक माइरोबैलन (emblic myroabian),
इण्डियन गूज़बेरी (Indian gooseberry)
फ्रेंच—फ़ाइलेन्थे एम्ब्लिक (phylanthe emblic)।
एम्ब्लिक ऑफिसिनल (emblic officinal)
जर्मनी—जिब्रौक्लिशर आमलाबौम (gebrauchlicher amlabaum)
लैटिन—फ़ाइलेन्थस एम्ब्लिका (phyllanthus emblica liner)
नैसर्गिक वर्ग—युफोर्बिएसी (euphorbiaceæ)

धात्रीफलाऽ मृतफलाऽऽमलकं श्रीफलं शिवम्।
—मदन विनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग; श्लोक २६।

श्रीफला पर्वकीटाख्या कोरङ्काऽऽमलकी शिवा।
जातीरसफला सीधुरसा सीधुफला तथा॥
वयःस्था चामृतफला तिष्या तिष्यफलाऽमृता।
धात्री वृष्या वृष्यफला दिव्याधाराऽमृतोद्भवा॥
धात्रीफलं शीतफलं तिष्यरसफलं मतम्।
श्रीफलं चामृतफलं कोलं कामलं शिवम्।
श्रृङ्गी धात्री चामलकी शुक्तिः शुष्कामलवचापि॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग; श्लोक २२० से २२२ तक।

प्राप्ति-स्थान

समस्त उष्ण भारतमें हिमालयके साथ-साथ जम्मूसे पूर्वकी ओर दक्षिणकी ओर और लङ्का तक सब जगह जङ्गलोंमें या बोया हुआ मिलता है। भारत और बर्माके बहुतसे भागोंमें सामयिक (deciduous) जंगलोंमें प्रायः होता है। हिमालयमें, गढ़वाल और कुमायुँ में ४५००० फ़ीटकी ऊँचाई तक मिलता है। शुष्क प्रदेशोंमें और पंजाबके उत्तर-पश्चिम भागोंमें रावीके पश्चिमकी ओर नहीं मिलता। बर्मा, लंका, चीन, मलाया प्रायद्वीपोंमें होता है। वहाँ अक्सर खेती भी की जाती है। दक्षिण-पूर्व एशियाके उष्ण प्रदेशोंमें और मलायासे तिमूर तक पाया जाता है।

वर्णन

एक छोटा या मध्यमाकार तीस-चालीस फ़ीट ऊँचा सामयिक (deciduous) वृक्ष है। तना छःसे नौ फ़ीट

ऊँचा होता है। छाल चिकनी हरिताभ-धूसर या हलकी भूरी, पतली एक तिहाई इंचसे कुछ कम मोटी, छोटे अनियमित गोल छिलकोंमें उतरती हुई होती है। छालके अन्दरका भाग लाल होता है। छिलके उतरने पर नीचे पीले रंगकी नवीन छाल आ जाती है। लकड़ी लाल और कठोर होती है। काष्ठमज्जा (heart wood) नहीं होती। वार्षिक वृत्त स्पष्ट नहीं होते। छिद्र छोटे और मध्यम आकारके, एक सदृश फैले हुए, प्रायःकर अर्द्ध-विभक्त, माध्यमिक रेखाएँ (meddullary rays) चौड़ी और दो रेखाओंके बीचका अन्तर सामान्यतया छिद्रोंके लम्बा अक्ष व्याससे अधिक बड़ा होता है। प्रतिघन फुट लकड़ीका भार ५२'५ से ४१ पौंड तक होता है।

पत्ते पंख सदृश समाकार (feathery oblong) हलके हरे, छोटी-छोटी शाखाओं पर पास-पास लगे हुए, आधा इंच लम्बे, किनारे मोटे, लगभग वृन्त-रहित होते हैं। लगभग नवम्बर या दिसम्बरमें पत्ते गिरना आरम्भ होते हैं और फर्वरी या मार्चसे मार्च अप्रैल तक वृक्ष पत्र-रहित होता है। तब नये अंकुर प्रकट होने हैं।

पीताभ या हरिताभ-पीत सूक्ष्म पुष्प छोटी शाखाओं पर नये पत्तोंके अक्षोंमें घने गुच्छोंमें मार्चसे मई तक निकलते हैं और मधु-मक्खियोंके झुण्डोंसे व्यस्त रहते हैं। फूलोंमें नर अधिक और मादा कम होते हैं। दोनों जातिके फूल एक ही शाखाओं पर होते हैं। नर पुष्पोंका वृन्त छोटा और स्त्री पुष्प लगभग वृन्त-रहित होते हैं।

पत्ते और फूल धारण करने वाली छोटी सामयिक शाखाएँ अनियमित ग्रन्थिल (tubercular) उभारोंसे एक साथ तीन निकलती हैं। इनकी लम्बाई चारसे आठ इंच होती है। ये प्रायः रोमश होती हैं और पत्तोंके गिरनेके साथ गिर जाती हैं। इनकी आकृति संयुक्त पक्षाकार (compound pinnate) पत्तोंकी तरह होती है।

फल मांसल, गोल और ऊपर तथा नीचेसे चपटे होते हैं। फलोंका व्यास आधेसे पौन इंच, वर्ण पीताभ-हरित, छः लम्बाईके रुख रेखाओं वाले, चिकने, स्वादमें खट्टे ग्राही और तिक्त होते हैं। फलके अन्दर छः रेखाओं वाली अस्थिमयी गुठली होती है। गुठलीके अन्दर तीन कोष्ठ होते हैं जिनमें चार या छः गहरे भूरे चिकने त्रिकोण बीज पड़े होते हैं। १८०० या १९०० बीजोंका भार एक औंस होता है। फल दिसम्बरसे फर्वरी तक या इससे भी अधिक देरमें पकते हैं। पकने पर फलका रंग लालिमा लिये हुए हरित पीत-सा हो जाता है। पके हुए फलोंको धूपमें रखनेसे गूदा सूख कर फट जाता है और अन्दरसे बीज बाहर निकल पड़ते हैं।

कृषि

देहरादूनकी परीक्षाएँ बताती हैं कि बीजोंकी उत्पादन शक्तिकी तुलनात्मक प्रतिशतकता कम है और बीज देर तक अपनी जीवनी शक्ति कायम नहीं रखते। एक साल तक रखे बीज उगनेमें सफल नहीं हो सके।

नर्सरीमें लगभग मार्चमें बीज बोये जाते हैं। पानी नियमित रूपसे देना चाहिए। पहले कुछ मास धूप और ज़ोरकी बारिशमें रक्षा करना चाहिए। निराई नियमित होती रहे तो पहली बरसातमें पौधे इतने बड़े हो जाते हैं कि पृथक् करके नियत स्थान पर लगाए जा सकें। जड़ोंको नङ्गा न होने देनेका पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पुनरारोपणके लिए पौधे बहुत नाजुक होते हैं। सबसे अच्छा उपाय यह होता है कि बरसातके आरम्भमें बीजोंको नियत स्थान पर बोया जाय और निराईका ध्यान रक्खा जाय। प्रथम बरसातमें ही अधिक घने उगे हुए पौधोंमेंसे कमज़ोर पौधोंको निकाल फेंकना चाहिये और जहाँ पर बीचमें अधिक खाली स्थान छूट गया हो वहाँ स्टॉकमें रखे हुए नये मजबूत पौधोंको लगा देना चाहिए।

उपयुक्त अवस्थाओंमें छोटे पौधोंकी वृद्धि शीघ्र होती है। पौधोंके बीचमें उग आने वाले विजातीय घास-पातको उखाड़ डालने पर और पानी न दिये जाने पर पौधोंकी प्रथम चार सालमें अधिकतम ऊँचाई इस प्रकार थी।

पहले साल—दो फ़ीट आठ इञ्च।

दूसरे साल—सात फ़ीट।

तीसरे साल—नौ फ़ीट सात इञ्च।

चौथे साल—सोलह फ़ीट छः इञ्च।

घास-पात निकालना वृद्धिमें बहुत सहायता करता है और घास-पातकी उपस्थिति वृद्धिको रोकती है। घास-पात

न निकाले गये खेतोंमें पहले तीन सालोंमें अधिकतम वृद्धि इस प्रकार थी—

पहले साल—पाँच इञ्च।

दूसरे साल— तीन फ़ीट आठ इञ्च।

तीसरे साल— छः फ़ीट दस इञ्च।

छोटे पौधे छाया या किसी प्रकारके दबावको बर्दाश्त नहीं करते और जब कई छोटे पौधे एक साथ बोये गये हों तो एक या दो सबल पौधे तेज़ीसे बढ़कर अन्य पौधोंको दबा लेते हैं। पहले कुछ मासोंमें ये कुछ नाज़ुक होते हैं।

का इन पर बहुत असर होता है और जोरकी वर्षासे इनके बह जाने या मारे जानेका भय रहता है। कीड़ों, चूहे और गिलहरियोंके हमलेकी भी उन्हें सम्भावना रहती है। छोटे पौधोंकी वृद्धि सन्तोषजनक शीघ्र होती है परन्तु बादमें यह कुछ मन्द हो जाती है।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें शीत ऋतुमें और ग्रीष्म ऋतु के कुछ भागमें फल वृक्ष परसे गिरते हैं। ऊपरके मांसल आवरणके सूख जानेपर और अन्दरकी कठोर गुठली सहित फट जाने पर बीज बाहर निकल पड़ते हैं। हिरण फलोंको खा लेते हैं। जुगाली करते समय कठोर गुठली ज़मीन पर गिर पड़ती है और पड़ी-पड़ी सूखकर फट जाती है जिससे बीज ज़मीन पर बिखर पड़ते हैं। अङ्कुरोत्पत्ति वर्षा-ऋतुके आरम्भमें हो जाती है, परन्तु बहुत अधिक उदाहरणोंमें प्राकृतिक उत्पत्ति कम ही देखनेमें आती है। इसका कारण सम्भवतः कुछ तो यह हो कि बीजोंकी जननशक्ति बहुत उच्च नहीं है, परन्तु मुख्यतया शायद यह है कि प्रारम्भिक अवस्थाओंमें नवजात पौधे बहुत अधिक नाज़ुक होते हैं और कीड़ोंसे खाये जानेके सर्वथा योग्य होते हैं। प्राकृतिक अवस्थाओंमें पौधेकी वृद्धि सम्भवतः धीमी होती है।

पाले और तेज़ आँधी दोनोंका पौधे पर शीघ्र असर पड़ता है। तीव्र पालेमें फल सफ़ेदसे हो जाते हैं जैसे कि उबाले गये हों। भारतीय प्रायद्वीपमें १८९९-१९०० में आंवलेके पेड़ोंको आँधीसे असाधारण हानि हुई थी। इसी तरह १९१३-१४ के शुष्क सालोंमें नुकसान हुआ था अनेकों वृक्ष मारे गये थे, तनेसे नीचेकी ओर दरारें पड़ जाना एक व्यापी हानि थी। वृक्षकी पतली छाल धूपमें नाम मात्र ही रक्षा कर पाती है।

वृक्षके तनेको ज़मीनसे थोड़ा ऊँचेसे काट दिया जाय तो काटे हुए स्थानसे बहुतसी नवीन शाखाएँ निकल आती हैं। महीनेके अनुसार इन शाखाओंकी संख्या कम या अधिक होती है। अप्रैलसे सितम्बर तक विभिन्न मासोंमें काटनेसे नवीन शाखाओंकी संख्या इस प्रकार थी अप्रैल १०० मई ९५, जून ९०, जुलाई १०० अगस्त १०० और सितम्बर १००। एक साल पुरानी नवीन शाखाएँकी औसत ऊँचाईका माप ७·४ फ़ीट था।

इतिहास

आमलकी वृक्षकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक पौराणिक गाथा प्रसिद्ध है—किसी पुण्य दिन भगवती और लक्ष्मी प्रभारत तीर्थको भई थी। भगवतीने लक्ष्मीसे कहा—"देवी आज मैं स्वकल्पित किसी नवीन द्रव्यसे हरिकी पूजा करना चाहती हूँ।" लक्ष्मीने उत्तर दिया—"शिवकी भी किसी नये पदार्थसे पूजनेकी हमारी इच्छा है।" फिर दोनोंकी आँखोंसे अमल अश्रुजल भूमि पर गिरा, उसीसे माघ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको आंवलेकी उत्पत्ति हुई। इस वृक्षको देखकर देवता और ऋषि आनन्दोल्लसित हो उठे। तुलसी और बिल्वके समान ही यह पवित्र माना जाता है। इसके पत्तोंसे शिव और विष्णु दोनोंकी पूजा होती है। माघ मासकी एकादशीको इसकी उत्पत्ति होनेसे उसी दिन विष्णुदेव की इससे पूजा करनेसे देव प्रसन्न होते हैं।*

---

*कदाचित् देवयात्रायां प्रभासे पुण्यतीर्थके।
सर्वे देवाः समायाताः दिने पुण्ये कुत्रचित्॥
तत्राहञ्च स्वयं लक्ष्मीरेकस्थाने समागते।
तत्रावयोर्मतिजाता शिवविष्णुप्रपूजने॥
अहं श्रियमवोचञ्च सामुद्रि शृणु ये यतिम्।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं हरिं प्रभुम्॥
मामुवाच ततो लक्ष्मीर्गद्गदा सरभाषिणी।
ममाप्येवं मतिर्जाता त्वमवोचः स्वयं यथा।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं त्रिलोचनम्॥
सजये विजये देवि! नावेवम्भूतयोस्तदा।
नयनेषु सुजातानि अमलाश्रुजलानि च।
तानि नौ नयनेभ्यश्च निपेतुर्भुवि हे सखि!॥
ततो जाता द्रुमाः पृथ्व्यां चत्वारो विमलप्रभाः॥

देवताओंका प्रिय होनेसे हिन्दू लोग आँवलेके वृक्षको बहुत पवित्र मानते हैं। पत्र, पुष्पमालाएँ आदि चढ़ा कर इसकी पूजा करते हैं†। हिन्दुओंका विश्वास है कि आंवला सब पापोंको दूर कर देता है‡। इसके पानीसे स्नान करनेसे स्वस्थ रहता हुआ मनुष्य सौ साल तक जीता है और लक्ष्मी-सम्पन्न रहता है¶।

बहुत दिनोंसे आंवलेने लोकोक्तिमें स्थान प्राप्तकर लिया है। संस्कृतके 'हस्तामलकवत्' मुहाविरेका हम दैनिक भाषामें बहुत प्रयोग देखते हैं। तुलसीदासने भी इस मुहाविरेका प्रयोग किया है—"जानहि तीनि काल निज-ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना" दूध भरे हुए गायोंके पयोधरोंकी तुलना माघने माघ मासमें फलोंसे लदे हुए आमलकी बनों से दी है§।

मलक्का नदी और नगरका नाम विश्वास किया जाता है कि संस्कृतके मूल शब्द 'आमलक' से निकला है। पश्चिमीय मलायेशियासे यदोएराके पूर्व तक यह नाम सामान्य रूपसे व्यवहृत होता है।

ख्याता आमलकी नाम्ना जाता कादमलाद् यतः।
श्यामलच्छद वृन्दास्ते कर्व्बूरस्कन्ध मूलकाः॥
शिराग्रथितपत्राली पत्रमालाक पत्रका।
बिल्वस्य च तुलस्याश्च ये गुणा कथिता सखि॥
ते ते गुणाः एव आमलक्यां समाहिताः।
पत्रमालादलैरस्याः शिवविष्णू सुरेश्वरौ॥
सर्व्वथा पूजितौ स्यातां सरव्यौ नास्त्यत्र संशयः।
माघे मासि सितायां तामेकादश्यां समुद्भवां॥
शुभामलकीं दृष्ट्वा समेताः सर्व देवता।
न्हापस्ते सशिष्याश्च हर्षमायुः परं तदा॥
गरुड़ पुराण, अध्याय २१५।

† नमाम्यालकीं देवीं पत्रमालादालङ्कृताम्।
शिव विष्णु प्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दर प्रभाम्॥
गरुड़ पुराण, अध्याय २१५।

‡ धात्री हरति पातकम्॥—स्कन्द पुराण।

¶ श्री कायः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामालकैर्नरः॥
गरुड़ पुराण; अध्याय २१५।

§ पयोधरैरामलकी वनाश्रिताः॥—माघ॥

उपयोगी भाग

हरा और सूखा फल, बीज, पत्र, मूल, त्वक् और पुष्प।

संग्रह

फाल्गुन-चैत्रमें पूर्ण पक्व हो जाने पर वृक्ष परसे फलोंको तोड़ लें और अच्छी तरह सुखा कर शुष्क वायु-रहित कनस्तरोंमें रखें।

मात्रा

ताज़े फलका स्वरस – आधासे एक औंस।

सूखे फलका चूर्ण— चालीससे साठ ग्रेन।

रासायनिक विश्लेषण

यह सुविदित है कि फलोंके पकने पर उनमें टैनिक एसिडको प्रतिशतकता घट जाती है। आंवला जब छोटा होता है तो ७ बुरी तरहसे तिक्त होता है जब पक जाता है तो भक्ष्य हो जाता है और स्वादु लगता है। अपक्व आंवलेके शुष्क गूदेमें पैंतीस प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है परन्तु पके हुए फलमें अत्यल्प परिमाणमें मिलता है। फलके गूदेमें गैलिक एसिड, निर्यास, शर्करा, एल्ब्युमिन, काष्ठोज, (सेलुलोज़) और खनिज पदार्थ भी होते हैं।

भारत और स्याममें टैनिन देने वाला यह अच्छा वृक्ष है। टैनिन निकालनेके लिए फल, पत्ते और छाल सब समान रूपमें प्रयुक्त होते हैं। भारतमें किये गये विश्लेषणमें—गुठलीमें छः प्रतिशतक, फलके छिलकेमें छब्बीससे तीस प्रतिशतक, सम्पूर्ण फलमें उन्नोस प्रतिशतक, छोटी शाखाओंको छालमें उन्नाससे चौबोस प्रतिशतक और पत्तोंमें २३ ७ प्रतिशतक टैनिन था। जावामें विभिन्न स्रोतोंकी छालमें यह प्रतिशतकता १२.८ से २४ तक भिन्न-भिन्न थी।

गुठली रहित फलका गूदा १००° शतांश पर सुखाया गया है। इसका संगठन निम्नलिखित ज्ञात हुआ।

ईथर सत्व या एक्स्ट्रैक्ट (गैलिक एसिड आदि)	११.३२
एल्कोहलिक सत्व (टैनिन, शर्करा आदि)	३६.१०
जलीय सत्व (गोंद आदि)	१३.७५
सोडा सत्व (एल्ब्युमिन आदि)	१३.०८
अशुद्ध काष्ठोज (सेलुलोज़)	१७.८०
खनिज पदार्थ	४.१२
नमी और कमी	३.८३
	१००.००

टैनिन निकालनेके बाद फ़ेहलिंगसे गूदेके कषायकी परीक्षामें दस प्रतिशतक ग्लूकोज़ पाया गया।

विश्लेषण करने पर बीजोंमें एक स्थिर तेल और गन्ध वाला रेज़िन पाया गया है। बीजोंमें कोई क्षारीय तत्व (alkaloid) नहीं प्राप्त हुआ।

पत्तोंमें अठारह प्रतिशतक टैनिक एसिड होता है और थोड़े परिमाणमें उड़नशील तेल या स्निग्ध पदार्थ होता है।

गुण

चरक हरड़ और आंवलेके गुण और प्रभावोंको एक जैसा ही समझता है परन्तु आंवलेका वीर्य इससे विपरीत है*। हरीतकी ऊष्ण वीर्य है और आमला शीत वीर्य। भावमिश्र और कैयदेव भी दोनोंको एक जैसा समझते हैं। भावमिश्र ने आंवले और उसकी गुठलीके गुण लिखे हैं—

हरीतकी समं धात्री फलं किन्तु विशेषतः।
रक्त पित्त प्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥
यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्।
तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानामपि निर्दिशेत् ॥
—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग
श्लोक ३९ और ४१।

कैयदेव लिखते हैं—

तद्वद्धात्री स्वेदयेदोहराऽम्ला शुक्रला हिया।
भग्न सन्धानिकृत्केश्या पिपासा कफपित्तहृत्।
तन्मज्जा तु तुवरः स्वादुस्तृड्वर्धनिलपित्तहा ॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधि वर्ग; श्लोक २२३।

* विधामायलके सर्वान् रसांल्लवण वर्जितान् ॥
स्वेदयेदः कफोत्क्लेदपित्त रोग विनाशनम्।
—चरकः सूत्रस्थान; अध्याय २७;
श्लोक १४५, १४६।

अन्य लेखकोंके शब्दोंमें आंवलेके गुण इस प्रकार हैं—

तद्वद्धात्रीफलं वृष्यं विशेषाद्रक्तपित्तजित् ॥
धात्र्यास्त्रिदोषहन्तृत्वं शक्तयैव मुनिभिः स्मृतम्।
सम्मवनादवशादुक्ता रसादेरपि हेतुता ॥
—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग
श्लोक २६ और ३०।

कषायं कटु तिक्तोष्णं स्वादु चाऽऽमलकं हिमम्।
रसं त्रिदोषहृद् वृष्यं ज्वरघ्नं च रसायनम् ॥
—धन्वन्तरि निघण्टु; गुडूच्यादि वर्ग।

आमलकं कषायाम्लं मधुरं शिशिरं लघु।
दाहपित्तवर्मा मेहशोफघ्नं च रसायनम् ॥
कटुमधुरकषायं किञ्चिदम्लं कफघ्नं।
रुचिकरातिशीतं हन्ति पित्तास्रतापम् ॥
श्रमवमन विबन्धाध्मान विष्टम्भदोष।
प्रशमनममृतामं चऽमलक्याः फलं स्यात् ॥
—राजनिघण्टु; आम्रादि एकादश वर्ग।

लवण रसके अतिरिक्त सब रस आंवलेमें होते हैं। प्रत्येक इसके कारण रसमें अलग-अलग गुण होते हैं—

हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्य शैत्यतः।
कफं रूक्ष कषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥
—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग श्लोक ४०

अम्लत्वात्पवनं हन्ति पित्तम्माधुर्य शैत्यतः।
कफं रूक्ष कषायत्वात्तस्मात्किमधिकं फलम् ॥
कुर्यात्पित्तन्तदम्लत्वात्कफम्माधुर्य शैत्यतः।
वातं रूक्षकषायत्वादेवं किन्न विपर्ययः ॥
—मदनविनोद निघण्टु; अभयादि प्रथम वर्ग;
श्लोक २९ और २८।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश कला, प्रेस प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१ | प्रयाग, मिथुन, संवत् १९९६ विक्रमी | जून, सन् १९४० ई० | संख्या ३

दन्त-रक्षा

(ले०—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी)

आकृतिके अनुसार दाँत चार भागोंमें बाँटे जा सकते हैं (१) अग्रतीव्र दन्त (चपटे खुतरने वाले पैने दाँत) (२) पार्श्व दन्त उन्हींके दाहिने बायें फणाकृति दाँत (३) द्विमुखी दन्त (पार्श्व दन्त तथा दाढ़ोंके बीच वाले दाँत) (४) दाढ़े (जिनसे भोजन पीसा जाता है) जो क्रम व संख्या ऊपर वाले दाँतोंकी है ठीक वही नीचे वालोंकी है।

जीवनमें दाँत दो बार निकलते हैं। शैशवावस्थामें दूसरे उसके बाद। प्रथम निकलने वाले दाँतोंको दूधके दाँत और बाद वालोंको स्थाई दाँत कहते हैं। दूधके दाँत गणनामें बीस होते हैं, स्थाई दाँत बत्तीस। दूधके दाँत सातवें माहकी अवस्थासे निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं और तीन वर्ष तक सब निकल चुकते हैं। ये दाँत प्रायः ६ व ७ के बीच वाली अवस्थासे गिरने शुरू हो जाते हैं और बारह वर्षकी उम्र तक सब गिर चुकते हैं।

प्रकृतिका प्रबन्ध बड़ा ही सुविधाजनक है। ऐसा नहीं है कि जब सब दूध दाँत गिर चुकें तब स्थाई दाँत निकलना शुरू हों। यदि ऐसा हुआ होता तो धरातल पर ग्यारह वर्षको अवस्था वाले मानव पुत्रोंकी पोपली पल्टन विचित्र कठिनाइयोंका सामना करती दृष्टिगत होती। बात यह है कि एक-एक करके दुग्ध दाँतोंका पतझड़ होता रहता है। उनके स्थान पर क्रमशः शनैः-शनैः स्थाई दाँतोंकी नवीन कोपलें अंकुरित हुआ करती हैं। इस गिरने व उगने वाले संधि-कालकी क्रियायें इतनी मन्द व अज्ञात गतिसे हुआ करती हैं कि पता भी नहीं चलता। किस आयुमें प्रायः कितने दाँत हुआ करते हैं इसकी सूची इस प्रकार है—

आयु (लड़का)	आयु (लड़की)	दूधके दाँत	स्थायी दाँत	कुल योग
७ माह	६ माह	२	—	२
३.० वर्ष	२.८ वर्ष	२०	—	२०
६.० ”	६.० ”	२०	४	२४
७.५ ”	७.० ”	१६	८	२४
९.५ ”	८.९ ”	१२	१२	२४
९.८ ”	९.० ”	८	१६	२४
१०.१ ”	१०.२ ”	४	२०	२४
११.३ ”	११.२ ”	—	२४	२४
१३.२ ”	१२.८ ”	—	२८	२८
२२.२ ”	२१.८ ”	—	३२	३२

ऊपरकी सूची देखनेसे पता चलता है कि ६ वर्षकी आयुसे स्थाई दाँत निकलते हैं। स्थाई दाँत दुग्ध दाँतोंकी जड़में तैयार हुआ करते हैं—जैसे ही स्थाई दाँतके अंकुरित होनेका समय निकट आ जाता है दुग्ध दाँतोंकी जड़ें निर्बल पड़ जाती हैं यहाँ तक कि वे स्वय झड़ जाते हैं। प्रत्येक फूलके नोचे फल बना करता है। जब फल कुछ बड़ा हो जाता है तब फूल मुरझा कर स्वयं गिर जाता है और फल स्पष्ट दीखने लगता है। यही हाल अस्थाई व स्थाई दाँतोंका है। गिरने व उगनेकी क्रियाओंका ताँता बारह वर्षकी आयु तक लगा रहता है। छः व ग्यारहके बीच वाली पाँच वर्षोंकी यह अवधि बड़ी नाजुक होती है। इसी अवस्थामें दाँत सदाके लिये बन या बिगड़ जाया करते हैं। आगे चल कर देखेंगे कि किन उपायोंसे दाँतोंको सदाके लिये दृढ़ बनाया जा सकता है।

बलहीन दाँतोंसे हानियाँ

प्रायः देखा गया है कि रुग्ण दाँतोंकी तब तक चिंता नहीं की जाती जब तक असह्य पीड़ा न होने लगे। ध्यान न देनेसे खराबियाँ बढ़ती जाती हैं, दाँत निर्बल होते जाते हैं, भोजन भली-भाँति कुचला जा सकना बन्द हो जाता है और पाचन-क्रिया अव्यवस्थित होती जाती है। इतना ही क्यों आगे तो और भी विकार बढ़ जाते हैं। दाँतोंकी खराबी बढ़ते रहनेसे मुख गन्दा दुर्गंधिपूर्ण व अस्वस्थकर हो जाता है। कण्ठ मसूड़ों व टांसिलमें व्रण आ जाता है। तभी तो कभी-कभी डिफथीरिया, निमोनिया और गठिया ज्वरकी सम्भावना हो जाती है। गन्दे मुँहमें बैक्टीरिया (bacteria) नामक कीटाणु अनायास उत्पन्न हो जाते हैं। ये तुच्छ जन्तु भोजनके साथ पेट व आँतोंमें धावा मारा करते हैं। सम्पूर्ण प्रणालीको दूषित व अशक्त बनाया करते हैं।

मुँह व कण्ठके दूषित और व्रणित हो जाने पर भोजन तो विकृत हो ही जाता है साथ ही साथ श्वास द्वारा खींची गई वायु भी मलयुक्त विषाक्त हो जाती है। गन्ध पूर्ण—ऑक्सीजन रहित वायु फेफड़ोंमें पहुँचते रहनेसे रुधिरका शुद्ध न हो सकना—मस्तिष्कका भारी रहना, आलस आना स्वाभाविक हो जाता है। यदि मुख द्वारा ही दूषित है तो उससे छूकर भीतर जाने वाले पदार्थ अवश्य दूषित होंगे।

दाँतोंकी दुर्बलताके कारण

अन्य रोगोंको भाँति दन्त-नाशके भी मुख्य दो कारण हैं—पूर्ववर्ती तथा परवर्ती। पूर्ववर्ती कारण वे हैं जो दाँत निकलनेसे पूर्व (उनके निर्माण पर) प्रभाव डालते हैं। परवर्ती कारण वे हैं जो दाँतके निकल चुकनेके पश्चात् प्रभाव डालते हैं।

पूर्ववर्ती कारण तीन हैं (१) आनुवंशिक परम्परा (२) पौष्टिक भोजनकी कमी (३) बाल्यावस्था वा गर्भावस्थाकी बीमारी। जिन वंशोंके पुरुषोंके दाँत रोगी होते हैं उनकी संतानोंके दाँतका भी कमजोर हो जाना स्वाभाविक है। बाल्यावस्थाके भोजनमें पौष्टिक अंश न होनेसे अन्य अंगोंका भाँति दाँत भी निर्बल उगते हैं। शिशुकी गर्भावस्थामें यदि माँ बीमार रहे तो बालकके दाँत बलहीन उगते हैं। हमने पिछली सूचीमें देखा था कि तीन वर्षकी आयु तक बालकके सब दुग्ध-दन्त निकल चुकते हैं। इन तीन वर्षोंमें यदि बालक बीमार रहे उसका रुधिर चाप अधिक रहे, भोजन न पचे, सदा ज्वर रहा करे तो आगे चलकर निकलने वाले स्थाई दाँत निस्सन्देह निर्बल निकलेंगे।

परवर्ती कारण दो हैं। मुँहमें बैक्टीरियाका पैदा हो जाना तथा दाँतोंमें तेजाबका बनने लगना। जब भोजनके कारण दाँतोंमें या दाँतोंकी संधियोंमें चिपके रह जाते हैं तब उनमें एक तरहका उबाल प्रारम्भ हो जाता है। यही उबाल मुँहमें तेजाब खट्टा ज़हर पैदा कर देता है जिस प्रकार कि दूधमें उत्पन्न करता है। यदि दूध बिना किसी देख-रेखके बहुत देर योंही रक्खा रहे तो हम कहने लगते हैं कि दूध खट्टा हो गया। कारण यह है कि भीतर ही भीतर दूधमें खमीर उठता रहा अन्तमें आम्ल स्वाद देने वाला तेजाब पैदा हो गया। इसी प्रकार दाँतोंके बीचमें दबा रहने वाला अन्नकण मुँहकी गर्मीसे सड़कर खमीर व तेजाब पैदा कर देता है। तभी तो सुबह सोकर उठने पर मुँहका स्वाद खट्टा प्रतीत होता है। मुँह साफ़ न किये जाने पर कुछ दिनों बाद खमीरमें बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं।

यह दूसरों पर आक्रमण करते हैं—जड़ोंको पोली दाँतोंमें छेद मसूड़ोंमें दर्द पैदा कर देते हैं।

सब प्रकारके भोजनांश तेजाब उत्पन्न नहीं करते। केवल दो प्रकारके भोजन तेजाब उत्पन्न करते हैं—लुब्दीयुक्त और मिठासयुक्त।

लुब्दीयुक्त पदार्थ—आलू, चावल, सागूदाना, रोटी, बिस्कुट जौका दलिया, काजू, अखरोट आदि।

मिठासयुक्त पदार्थ – सब पदार्थ जिनमें शर्करा मिश्रित हो सब मिठाइयाँ, शहद, मुरब्बा, दूध मलाई आदि।

अब प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त पदार्थ ही सार तत्वोंसे परिवेष्टित होते हैं। इन्हें यदि तेजाबी विषके डरसे न खाया जाय तब फिर शरीर कैसे और क्या खाकर पुष्ट किया जाय। उत्तर सरल है। उपर्युक्त पदार्थोंको खाया चाहे जितना जाय कोई डर नहीं। केवल भोजनके अन्तमें उन्हें न खाया जाय ताकि इनका कण दाँतोंकी संधियोंमें चिपका बच रहे। भोजन समाप्त करके उठते समय कभी मिठाई, शहद, मलाई, दूध आदि पदार्थ न खाये जाँय। सबसे सरल विधि यह है कि लुब्दीयुक्त या मिठासयुक्त भोजनके पश्चात् दन्तशोधक पदार्थ खा लिये जाँय।

दन्त शोधक पदार्थ—ताज़े फल तथा सेब, नारङ्गी, संतरा, नासपाती, अंगूर, फालसा, कमरख आदि, कच्चे साग तथा खीरा-ककरी, खरबूजा, टमाटर, रसभरी, मूली, गाजर, प्याज़ तथा मछली व सुअरका मांस। खाना खाकर उठते समय इनमेंसे कोई एक खा लेने पर अन्नकण दाँतोंमें लगा रहीं रह सकता।

दन्त-पुष्टिके स्वर्ण नियमों पर विचार करनेके पूर्व यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि दन्त पुष्टिका क्या अर्थ है। बाज़ारमें कई प्रकारके दन्त वज्र चूर मंजन, पाउडर आदि बिका करते हैं जिनमें दाँतोंको लोहा-सा बना देने वाली शक्ति होनेका ढोल पीटा जाता है। किन्तु यह सब मृग-मरीचिका है। दाँतके वाह्य शरीरको स्वच्छ करने में उपर्युक्त पदार्थ भले ही सहायक हो जाँय पर दाँतोंके शरीर-निर्माण-में इनका रंच-मात्र भी हाथ नहीं है। दन्त-पुष्टिके साधनोंका अर्थ होगा कुछ ऐसे प्रयत्न जिससे निकलने वाले दाँत भीतरसे ही पुष्ट व कड़े निकलें – जिस धातुसे दाँत निर्मित हुआ करते हैं सीधे उसीको दुरुस्त किया जाय। दूसरे यह कि जिन दिनों दाँत अंकुरित हो रहे हों ठीक उन्हीं दिनों उनसे हल्का व्यायाम लिया जाय ताकि वे सदाके लिये स्वस्थ व कड़े हो जाँय, कोमलके कोमल ही न बने रहें। व्यायाम कब, किस प्रकार करवाया जाय आगे देखेंगे।

यहाँ दन्त-निर्माणकी स्पष्ट दो मंजिलें दीख पड़ती हैं एक तो दाँतोंकी गर्भावस्था (teeth in the making) और दूसरे दन्तोदय व वृद्धि।

स्थाई दाँतोंकी गर्भावस्था माँके पेटसे लेकर तीन वर्ष की उम्र तक रहती है। थोड़ी देरके पहले हमने देखा था कि पेटमें बालक होनेके दिन यदि माँ लगातार बीमार रहे अथवा यदि शुरूके तीन साल तक बालक अधिकांश बीमार रहे तो निश्चय ही दाँतोंकी धातु निर्बल और रुग्ण हो जाती है। कुलफीमें यदि समुचित मात्राकी शीतलता न पहुँचाई जाय तो मलाई जम नहीं पाती, तरल बनी रहती है। इसी प्रकार दाँतोंका हाल है। अतः आवश्यक है कि प्रारम्भिक दो तीन वर्ष माँ व बालक दोनोंको स्वस्थ रक्खा जाय।

सबसे अधिक सावधानीकी आवश्यकता उन दिनों पड़ती है जब कि दाँत नये-नये निकल रहे हों। हरे दाँतों-जितना कड़ा चाहें बन सकते हैं केवल थोड़ा ध्यान देनेकी ज़रूरत है। दन्त व्यायामका उल्लेख पीछे किया था। वह व्यायाम तथा कुछ अन्य स्वर्ण नियम पाठकोंके लाभार्थ नीचे दिये जाते हैं।

दन्त वज्रकारक स्वर्ण नियम

(१) जैसे ही बालक दूधके अतिरिक्त कुछ भोजन खाना प्रारम्भ कर दे (८ या ९ माहकी अवस्थामें) भोजन कड़े ठोस रूपमें दिया जाय, जैसे रोटीकी पपड़ी, दो बार सेंकी हुई रोटी आदि। यह इसलिये जिससे कि चर्बन करना ही पड़े। दूधमें भीगी रोटी, हलवा आदि देनेसे दाँतोंका व्यायाम नहीं हो पाता। वे कोमल बने रहते हैं। बढ़ावा-प्रशंसाको सहायतासे बालक कुचल कर खानेके लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। शिक्षा, व्याख्यान देना हानि-लाभ बताना उसके लिये नगाड़खानेमें तूतीकी आवाज़ है। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि बालक खाते समय नाकसे साँस लिया करे। यदि नासिका-छिद्र रुंधा रहता हो तो माता-पिताको चाहिये कि दिनमें तीन बार कमसे कम दो

बार प्राणायाम (deep breathing) करवा दिया करे। धीरे-धीरे श्वास ऊपर खींचना, कुछ देर रोक कर फिर बाहर फेंकना इसी प्रकार एक बारमें बारह दफे करना। सदा नाकसे श्वास लेते रहने से दाँतोंकी जड़ें पुष्ट हो जाती है। यह क्रिया बालक तभी कर सकते हैं जब कि घरके अन्य लोग भी किया करें। स्वयं न करना और उनसे उपदेश द्वारा करवाना बुद्धिमानी नहीं।

(२) जब वह बालक बड़ा हो जाय तब भी भोजन ठोस रूपमें देना चाहिये। नृतत्व-विशारदों व पुरातत्वाचार्यों-का कहना है कि आदि कालमें मनुष्यको चक्की आदि-का प्रयोग विदित न था। प्रत्येक पदार्थ चाहे जितना कड़ा हो दाँतों द्वारा फोड़ा जाता था। तथा उनके दाँत जबड़े आदि हमसे कहीं अधिक पुष्ट थे। ज़मीनमें दबे पाये गये जबड़ों व दन्त पंक्तियोंके अध्ययन द्वारा पता चला है कि उनके दाँतोंमें वे पचासों रोग अनुपस्थित थे जो आज हमारे निर्बल दाँतोंमें पाये जाते हैं। कारण यह है शताब्दियोंसे हम लोग कोमल पदार्थ खाते चले आये हैं। दन्त-व्यायाम हो ही नहीं पाता। दूध व पानीको छोड़कर अन्य कोई पदार्थ तरल रूपमें न लेना चाहिये। रोटी गर्म-गर्म न खाई जाय। ताजी ठण्डी रोटी खाई जाय। कच्ची मुलायम या घी चुपड़ी रोटी न खाना चाहिये। घी दालमें खाया जा सकता है।

(३) तीन-चार वर्षका हो चुकने पर बालक को दिन-में तीन-चार बार खानेका स्वभाव डाल देना चाहिये। दिन भर खाते रहना अस्वास्थ्यकर है। यह आदत तभी पड़ सकती है जब घरके अन्य लोग भी गीताके 'युक्ताहार विहार' अर्थात् नियमित आदरका पालन करने वाले हों।

(४) खाना खाते समय पानी पीना बहुतेरे डाक्टरोंने बुरा बताया है। भोजन ग्रहण करनेके आध घंटे पूर्व व आध घंटे पश्चात् मनचाहा पानी पिया जा सकता है। खाते समय पानी न पीना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि पानीकी कम मात्रा आमाशयमें पहुँचे। पाचन-क्रियाकी सुविधाके लिये विपुल जलकी आवश्यकता है। यदि समुचित मात्रा न ली जायगी तो रुधिरमें खुश्की आ जायगी। फलतः मस्तिष्कमें सूखापन, आलस, सुस्ती, चक्कर आना प्रारम्भ हो जायगा। खाना खाते समय पानी पीना इसलिये वर्जित है क्योंकि चर्वन करते-करते दाँतोंमें रगड़ व गर्मी उत्पन्न हो जाती है। वे यदि इसी समय पानीकी ठण्डकका संसर्ग पा जाँय तो निर्बल मूल वाले हो जायँ। जहाँ तक हो दूधको भी भोजनका एक अंग मानना चाहिये। अलगसे अकेला दूध पीना ठीक नहीं। खाना खाते समय पीना चाहिये, ताकि रोटी, दाल, सागके प्रोटीन व विटेमिनके साथ दूधके सारतत्व मिश्रित होकर रासायनिक क्रिया सम्पा-दित कर सके। खानेके एक घंटा या आध घंटा बाद जब कि भोजनकी पाचन-क्रिया चलते-चलते काफ़ी दूर निकल चुकती है उस समय दूध पीना बड़ा घातक होता है। पाचन-क्रियाको दूधके लिये फिरसे क ख ग पढ़ना पड़ता है। अतः साथ हो पीना चाहिये। किन्तु दूध पीनेके बाद दन्त शोधक पदार्थ अवश्य खाये जाँय।

(५) रातमें शय्या पर जानेके पूर्व मिठाई, मलाई, चाकलेट, बिस्कुट अथवा अन्य दाँतमें चिपकने वाले पदार्थ न खाना चाहिये। यदि खाये भी जाँय तो बादमें दन्त-शोधक पदार्थ अवश्य खाये जाँय। बिना मुँह साफ किये सो जाना खतरनाक है। सोते समय बन्द मुहकी गर्मीके सहयोगसे उपर्युक्त पदार्थोंकी चिकनी मिठास उबलकर खमीर पैदा कर देती है। अतः सोनेके पाँच मिनट पूर्व दाँत मुँह अच्छी प्रकार साफ़ कर लिये जाँय।

(६) मुँह और दाँत साफ़ करनेके बाद पान, तम्बाकू, छालिया पिपरमेण्ट आदि कोई पदार्थ खाये हुये न सो जाना चाहिये। जो कुछ भी खाना हो मुँह धोनेके पहले खा लिया जाय।

अन्तमें सूक्ष्म रूपसे समस्त बातोंको एक बार दुहरा दूँ। गर्भवती स्त्रीको स्वस्थ रक्खा जाय, शैशवावस्थामें पौष्टिक पदार्थ खिलाये जाँय, चर्वन-क्रिया प्रोत्साहित करनेको ठोस कड़े पदार्थ प्रयुक्त हों। प्रत्येक भोजनके पश्चात व सोनेके पूर्व नित्य दन्त-मुख-शुद्धी कर ली जाय— गर्म-गर्म पदार्थ न खाय। माता शिशुका स्वास्थ्य पौष्टिक भोजन चर्वन व्यायाय मुख-शुद्धी दन्त रक्षाके अमोघ अस्त्र हैं।

हाथसे काग़ज़ बनाना

[ले० श्री गौरीशंकर तोषनीवाल, बी० काम०]

जनवरीके दिन थे, प्रयागमें अखिल भारतवर्षीय अर्थ-शास्त्र महासभाकी वार्षिक बैठक हो रही थी। घूमने-घामनेके कार्यक्रममें प्रयागका बेसिक ट्रेनिंग कालेज भी देखना था। अतएव हम लोग वहाँ पहुँचे। यहाँ पर औद्योगिक शिक्षाका ख़ास प्रबन्ध है। हमें हाथसे काग़ज़ बनानेका तरीका भी बतलाया गया। वैसे मुझे और भी कई जगह इसका प्रदर्शन मिला है। उन्हीं सबके आधार पर यह छोटासा लेख आपके सामने उपस्थित करता हूँ।

वैसे तो काग़ज़ कई चीज़ोंका बनता है, पर रद्दी काग़ज़ और सनका बना हुआ उल्लेखनीय है। यही दो चीज़ हाथके काग़ज़में प्रयुक्त की जाती हैं। सनका काग़ज़ तो बहुत थोड़ी तादादमें बनता है, कारण यह बहुत मँहगा पड़ता है। किसी समय इसका दाम ४०) प्रति रीम था, पर अब १६) ही है। इतना महँगा होनेसे इसकी खपत बहुत ही कम है। सनके काग़ज़का केन्द्र कालपी है। इसके लिए टूटी-फूटी पट्टी, पाख़री रस्सी, सनके टाट, पगही खाँचें आदि काममें लाई जाती हैं। हाँ, फटे-पुराने मछली पकड़नेके जालका काग़ज़ बहुत ही बढ़िया बनता है और वह रंगमें भी काफ़ी सफ़ेद होता है। सनका बना हुआ काग़ज़ अपनी मज़बूतीके लिए जगत्-प्रसिद्ध है। मज़बूती ही के कारण इस पर लिखा हुआ लेख सैकड़ों वर्ष तक ज्योंका त्यों बना रहता है। महँगाईके कारण उन काग़ज़ातोंके जिनमें रेकार्ड सैकड़ों वर्ष तक रखना है, यह काग़ज़ काममें लाया जाता है। बही खातों, लग्न पत्रिकाओं, सरकारी बन्दोबस्तके काग़ज़ों और नकशों आदिसे इसकी काफ़ी खपत है।

सनके बने हुए पट्टी, टाट, पाखरी रस्सी आदिके चिथड़े १) से २) मन तक ख़रीद लिए जाते हैं। कुल्हाड़ी तथा लकड़ीके पटरेको सहायतासे जो १ फुट गोल ५॥ फुट लम्बा होता है और जो ज़मीनमें गड़ा होता है, टाटके लगभग एक-एक इंचके टुकड़े काट लिए जाते हैं। यहाँ इस बात पर ख़ास ध्यान रखना चाहिए कि टाट या जालमें किसी प्रकारकी गाँठ न रहने पावे। कुटाईकी एक घानमें ३ मन से ४ मन तक सन काममें आता है। अब ये टुकड़े एक हौज़में पटके जाते हैं, जो लगभग ६ फुट लम्बा, ५॥ फुट चौड़ा तथा ५ फुट गहरा होता है। इस हौज़के ऊपरसे तीन आदमी एक ढेकी चलाते रहते हैं और दो आदमी हौज़के अन्दर रह कर ढेकीके नीचे मूठेसे सन दिया करते हैं। सनके टुकड़े पानीमें डुबा दिये जाते है। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि टुकड़ोंसे पानी ऊपर ही रहे। अब यह ढेकीसे कूटे जाते है और कुछ देर बाद यह पानी उलीच कर फेंक दिया जाता हैं। इसके बाद १५ मन टाटमें ऽ२॥ सेर कलईका पानी मिला कर लगातार ३ दिन तक खूब रौंदा जाता है। इस वक्त सादे पानीकी इतनी तादाद होनी चाहिए कि रौंदनेमें कोई कठिनाई न हो। इस रौंदाईके बाद तब तक धुलाईकी जाती है, जब तक इसमेंसे मैल न छँट जाय। यह कार्य प्रायः नदी या नहरके बहते हुए पानीमें सबसे अच्छा होता है। धुलाईके लिए लगभग ५ हाथ लम्बा तथा ३ हाथ चौड़ा गाढ़े चद्दरमें सन डाल कर खलबलाया जाता है।

इस कार्यके लिए सजिया नामक एक दूसरा प्रयोग भी काममें लाते हैं। इसमें १५ सनके लिए ऽ५ साजी मिट्टी तथा ऽ२॥ कलई लगती है। इसे वही ५-६ दिन तक ढेकीसे कूट कर नदी या तालाबमें धो लिया जाता है। सज्जी देनेके लिए मिट्टीके एक नाँदमें जिसमें पानी भर दिया जाता है, सज्जीके बेरसे टुकड़े तोड़-तोड़ कर पटक दिये जाते हैं। इसके ऊपर एक डंडा चलाया जाता है, ताकि वह ठीकसे घुल जाय। यह काम तब तक जारी रहता है, जब तक डिगरियाँ नहीं फूट जाती। थिरानेके बाद सज्जीके पानीको इस तरह छोड़ना चाहिये कि जिसमें सज्जीकी कालिख पानीके साथमें न जाने पावे। सनकी सफ़ाईके लिए साबुन तथा फिटकरी भी काममें लाये जाते हैं।

इस खुले हुए सनको लगभग ऽ२॥ की पिंडियोंमें बाँध कर धूपमें सुखा देते हैं। बस अब लुगदी (pulp) तैयार हो गई।

रद्दी काग़ज़से इस प्रकार लुगदी तैयार की जाती है।

काग़ज़की कतरन, अख़बारोंकी रद्दी आदिको मिट्टीके नाँदमें जिसमें एक प्रतिशत कास्टिक सोडाका पानीमें मिश्रण होता है, २४ घंटे तक भिगो दिया जाता है। रद्दीसे इस घोलको अधिक रखना चाहिये। २४ घंटे बाद रद्दीको किसी पथरीली जगह पर रखकर लगभग ४ घंटे तक पैरोंसे रौंदा जाता है। जो कुछ छोटे-छोटे टुकड़े रह जाते हैं, उन्हें मथानीसे फोड़ दिया जाता है। इस लुगदीमें पाटकी लुगदी भी मिलाई जाती है। इसकी मात्रा रद्दीकी लुगदीके भारकी १० प्रतिशत होती है और जो इस प्रकार तैयारकी जाती है। पाटके १० सेर रेशे १ सेर चूनेके साथ पानीमें २४ घंटे तक भिगो दिए जाते हैं। अब यह सुखा कर ढेकीसे पीटा जाता है। इसे सफेदी देनेके लिये यह रात्रि भरके लिए हल्की कलईके पानीमें छोड़ दिया जाता है। एक सेर पाटके लिए आधा औंस कलई काफ़ी होती हैं। इस रद्दी तथा पाटकी लुगदीके मिश्रणको पानीसे खूब धोया जाता है।

इस १० सेर कागज़ तथा पाटकी लुगदीमें १० तोला रोज़िन सोप पानीमें घोल कर मिलाया जाता है। तब १० तोला फिटकरी भी मिलाई जाती है।

अब इस लुगदीकी मिड़ियोंको पानीके हौज़में डाल कर खूब हिलाया जाता है, ताकि कोई डली न रहने पावे। काग़ज़की सफ़ेदीके लिए धोबीकी नील दी जा सकती है। अब छतरी (साँचा) की मददसे जो एक विशेष प्रकारकी सीकों की होती है और घोड़ेकी पूँछके बालोंसे बनी होती है तथा नीचे सागौनकी लकड़ीका एक फ्रेम होता है, कागज़ उठाया जाता है। यह बाँससे भी तैयारकी जा सकती है। इस फ्रेमके ऊपर छतरी रख दी जाती हैं। लुगदीके रेशे छतरी पर जम जाते हैं। पल्पको नीचेसे उठानेके लिए बार-बार फ्रेममें छतरीके पानीमें चलाया जाता है। जब लुगदी सतह पर एक सी हो जाय, तब वह उठा ली जाती है। फ्रेममें हिप्चों तथा अँगुलियोंकी सहायतासे छतरीके आकारका एक कपड़ा खूब तान कर लगा रहता है।

इस प्रकार लगातार कागज़ उतारते रहना चाहिये। यदि इसमें उतावलापन किया तो कागज़ बिगड़ और फट जाता है।

इस उठाये हुए गीले कागज़को कपड़े सहित चिकनी दिवार पर चिपकाया जाता है। अब कपड़ेको दीवारसे उतार लेते हैं, कागज़ दिवार पर चिपटा रहता है। कागज़ सूख जाने पर उतार लिया जाता है। ब्लाटिंग तथा पुट्ठा (card board) भी इसी तरह चिपकाये जाते हैं। सूख जाने पर ब्लाटिंग और पुट्ठे तो कामके लायक हो गये, पर यदि उन्हें कुछ चिकना बनाना हो तो उसे घोंट दिया जाता है। रंगीन आदि ब्लाटिंग व पुट्ठा बनानेके लिये लुगदीमें ही रंग छोड़ कर उसे खूब अच्छी तरह मिला दिया जाता है।

कागज़ पर कलप करनेके लिये निम्न विधि काममें लाई जाती है। पहिले चावलका मैदा बना कर उसे कपड़-छान कर लिया जाता है। तब खौलते पानीमें इसको घोल लेते हैं। नारियलकी दाढ़ीसे वह अब कागज़ पर पोता जाता है। बस, अब सूखने पर कागज़ तैयार हो गया। चावलके माँड़से अरारोटकी मैदा अच्छी रहती है।

काग़ज़की चिकनाईके लिए उसे लकड़ीमें फ्रेममें रख कर चिकने पत्थरसे घोंटा जाता है। इस वक्त यह ध्यान में रखना चाहिये कि काग़ज़में कोई जगह न छूट जाय और वह कटने और मुड़ने न पाये। बस, अब हम इसको काममें ला सकते हैं।

आजकी सभ्यतामें काग़ज़की गिनती भी भोजन तथा पोशाकके साथ की जाती है। अमेरिका, यूरोप जैसे देशोंमें इसके बिना एक दिन भी काम नहीं चल सकता। वहाँके मज़दूर तथा किसान तक समाचार-पत्र तथा किताबोंको अपनी दिनचर्यामें प्रधान स्थान देते हैं। हमारे भारतमें इसका क्षेत्र काफ़ी तीव्र गतिसे बढ़ रहा है। मुझे इसकी यहाँ कोई प्रशंसा नहीं करनी है। यह कहना है कि हाथके काग़ज़की हम लोग काफ़ी माँग पैदा कर सकते हैं। इसके बनानेके लिये न तो ज़्यादा पूँजीकी आवश्यकता है और न ज़्यादा अक्लकी। इस कामसे मामूली ग्रामीण भी चार-पाँच आने प्रति दिन कमा सकता है। इसमें तो ज़्यादा-तर मेहनतका काम है। अतएव यह गाँवोंमें बड़ी आसानीसे बनाया जा सकता है। बस ज़रूरत है हम लोगोंके प्रोत्साहन की।

रोग प्रतिबन्धक शक्ति और उसके पैदा करनेके उपाय

(ले०—श्री जगमोहन)

ऐसे पदार्थ जो रक्त-रसमें घुले रहते हैं और जो कीटाणु अथवा कीटाणु-जन्य विषैले पदार्थोंके विरुद्ध क्रिया करते हैं, विरोधी पिंड कहलाते हैं। अभी तक जो विरोधी पिंड खोज द्वारा मालूम हुए हैं वे विरोधी विष, कीटाणु-विलेयक, कीटाणु-ग्राहक और भोजन-विधायक है। भोजी-कोष्ठोंको विरोधी पिंड नहीं कहते, क्योंकि वे घुले हुये पदार्थ नहीं हैं वरन् जीवित कोष्ठ है। विरोधी पिंड और भोजी-कोष्ठोंमें एक अन्तर यह भी है कि भोजी-कोष्ठ प्रत्येक प्रकारके कीटाणुओंके खानेकी चेष्टा करते हैं परन्तु प्रत्येक जातिके कीटाणु अथवा तद्-जन्य पदार्थोंके लिये एक विशेष ही विरोधी पिंड हुआ करता हैं। जब किसी प्राणीके कोष्ठ किसी विशेष कीटाणुसे अपने शरीरकी रक्षा विशेष विरोधी पिंड द्वारा करते हैं तो हम कहते हैं कि उस प्राणीने इस रोगके लिये प्रतिबंधक शक्ति (मुक्तता) अर्जन कर ली है अथवा यों कहिये कि यह प्राणी अब इस रोगके परजीवी कीटाणुका शिकार नहीं बनता।

अर्जित रोग प्रतिबंधक शक्ति कब तक बनी रहती है ?

जब विरोधी-पिंड बन जाते हैं तब यह रक्त-रसमें भिन्न भिन्न समय तक बने रहते हैं। विरोधी-पिंडकी मौजूदगी के कारण शरीरमें किसी विशेष कीटाणुके मुक़ाबिलेके लिये अधिक क्षमता पैदा हो जाती है। कुछ रोगोंमें जैसे इनफ्लुयंज़ा, प्रतिबंधक शक्ति बहुत थोड़े दिनों तक क़ायम रहती है। कुछ रोगोंमें प्रतिबन्धक शक्ति कई वर्षों तक बनी रहती है। ऐसे रोगोंमें ऐसा प्रतीत होता है कि योजक कोष्ठ-पुंज एक बार विशेष विरोधी पिंड बनानेके बाद भी इस कामको करते ही रहते हैं। कभी यह भी होता है कि योजक-कोष्ठ-पुंज अधिक सचेष्ट हो जाते हैं। अतएव जब कभी भविष्यमें इसी किस्मके अधिक कीटाणु शरीरमें प्रवेश करते हैं तो यह कोष्ठ पहलेसे अधिक वेगके साथ विरोधी पिंड बनाना आरम्भ कर देते हैं।

विरोधी पिंडोंकी खोजमें बहुत पूर्व ही यह बात मालूम हो चुकी थी कि कुछ मनुष्य कुछ रोगोंके लिये स्थाई मुक्तता प्राप्त कर लेते हैं। जब किसी बालकको एक दफा कुकुर खाँसी हो जाती है तो दुबारा वह कदाचित ही इस रोगसे पीड़ित होता है। वास्तवमें भारतवर्षके प्राचीन ग्रंथोंसे पता चलता है कि मनुष्य इस ज्ञानका व्यवहार आजसे ४,००० वर्ष पहले भी करते थे। जब कभी शीतलाका हलका प्रकोप होता था वे अपने बालकोंको जान-बूझ कर शीतलाकी दया दाक्षिण्यके लिये अर्पण कर देते थे जिससे बालकोंको हलका सा शीतला रोग हो जाता था। उन्हें ज्ञात था कि एक बार शीतला माताकी गोदमें खेल कर बालक सदाके लिये शीतलाके प्रकोपसे सुरक्षित बना रहता है।

प्राकृतिक रोग प्रतिबन्धक शक्तिसे क्या तात्पर्य है ?

कभी ऐसा होता है कि परजीवी कीटाणु अपने आश्रय दाता और पालकके शरीरमें पलनेके लिये उपयुक्त दशा नहीं पाता। किन्हीं दो मनुष्योंमें पूर्ण समताका होना असंभव है। अतएव यह बुद्धि-संगत प्रतीत होता है कि एक मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करनेके बाद किसी कीटाणुको पूर्ण उपयुक्त अवस्थायें प्राप्त हों परन्तु दूसरे मनुष्य कोष्ठ-पुंज और शारीरिक रस-कीटाणुओंके पालन-पोषणके लिये कम उपयुक्त हों। सम्भव हो सकता है कि जीवाणु शरीरमें प्रवेश करनेके बाद मृत्युको प्राप्त हो जायँ अथवा जीवित रहते हुये भी शरीरको क्षति न पहुँचा सकें। कभी-कभी ऐसा होता है कि न केवल कोई व्यक्ति वरन् उस जातिके सब मनुष्य किसी विशेष क़िस्मके कीटाणुओंके आक्रमणका सामना अच्छी तरह कर सकते हैं। ऐसे जीवोंमें इन कीटाणुओंके लिये प्राकृतिक रोग प्रतिबन्धक शक्ति मौजूद होती है। मनुष्योंमें प्राकृतिक मुक्तताकी बहुतसी मिसालें पाई जाती हैं।

कुछ लोग प्राकृतिक मुक्तताका स्पष्टीकरण इस तरह करते हैं कि योजक कोष्ठपुंज किसी विशेष कीटाणुके लिये सचेष्ट होते हैं और इसलिये विरोधी पिंड बनानेमें अति वेगवान होते हैं। परन्तु इसका पूर्ण भेद अभी तक अच्छी

तरह समझमें नहीं आया। कभी-कभी जिसे मुक्तता कहते हैं बाल्यकालको अर्जित मुक्तता हुआ करती है। जब कोई मनुष्य बाल्यावस्थामें किसी रोगके मृदु आकर्षणसे आक्रान्त होता है तो इसका पता किसीको नहीं होता परन्तु योजक-कोष्ठ-पुंज कीटाणुओं पर प्रतिक्रिया करने लगते हैं और आवश्यकीय विरोधी पिंड पैदा कर लेते हैं।

कीटाणु सिद्धान्त मालूम होनेके पश्चात् पाश्चरने इस ज्ञानमें क्या वृद्धि की ?

जब कीटाणु सिद्धान्त सर्व-मान्य हो गया तो पाश्चरने अपना ध्यान इस ओर दिया कि किसी जानवरमें अपनी रक्षा करनेकी क्या सामर्थ्य है। अपने सहकारियोंकी सहायतासे उसने अपनी प्रयोगशालामें कई किस्मके रोगोंके कीटाणु पैदा किये। उसने ऐसे जीवाणुओंकी भी शुद्ध बस्तियाँ पैदाकी जो मुर्गीके बच्चोंमें विसूचिका पैदा करते हैं। एक दिन संयोगवश उसे यह मालूम हुआ कि जब इन पोषित जीवाणुओंको बस्तियोंको थोड़े दिनोंके लिये छोड़ दिया जाता है तो जीवाणु कमज़ोर हो जाते हैं। उसने इस बातका भी निरीक्षण किया कि जब इस क़िस्मके कमज़ोर जीवाणु स्वस्थ मुर्गियोंमें टीके द्वारा प्रवेश किये जाते हैं तो मुर्गियाँ इतनी सख़्त बीमार नहीं पड़तीं जितनी कि ताज़े पोषित जीवाणुओंके टीकेसे। उनमें रोगके लक्षण नहीं पाये जाते हैं। यदि उन्हें रोग होता भी है तो बहुत हलका। इस खोजका कारण एक आकस्मिक घटना थी परन्तु पाश्चर में इतना बुद्धि थी कि वह इसका महत्व समझ गया। वह सोचने लगा कि यह खोज क्रियात्मक रूपसे किस तरह काममें लाई जा सकती है। उसने अपने मनमें विचार किया "क्यों न इन कमज़ोर कीटाणुओंको बहु संख्यामें पैदा किया जाय और स्वस्थ मुर्गियोंमें टीकेके द्वारा प्रवेश किया जाय। संभव है रोगका हलका आक्रमण होनेके बादसे मुर्गियाँ इस रोगसे मुक्त हो जायँ। यदि मुर्गियोंमें विसूचिका रोगकी महामारीका प्रसार हो जाय तो टीका लगी हुई मुर्गियाँ इस रोगका मुक़ाबिला कर सकें। उसने इसकी जाँचकी और यह जाँच ठीक उतरी। जब दूसरी मर्तबा इस रोगका प्रसार हुआ तब टीका लगी हुई सब मुर्गियाँ बच गईं। पाश्चरकी आशा के अनुकूल यह सब विसूचिकासे मुक्त थीं। उस ज़मानेमें भिन्न-भिन्न प्रकारके विरोधी पिंड अभी तक पहचाने नहीं गये थे। इनकी खोजके पूर्व ही पाश्चरका देहान्त हो गया परन्तु उसे यह मालूम था कि यह प्राणी कीटाणुओंके प्रति क्रियाशील होते हैं जिसके कारण वह रोगसे सुरक्षित रहते हैं।

इस सिद्धान्त पर काम करते हुये उसने एन्थ्रेक्स रोग पर भी विचार करना आरंभ कर दिया। कॉख़ बतला चुका था कि रक्त पोषक माध्यममें जीवाणुओंको किस तरह पैदा किया जा सकता है। पोषक-माध्यममें कीटाणुओंकी वृद्धि करनेके बदले पाश्चरने कीटाणुओंको कुछ दिनों तक १०८°फ तक गरम रक्खा। प्रयोग करनेसे उसे मालूम हुआ कि इस क्रियासे कीटाणु बहुत कमज़ोर हो जाते हैं क्योंकि जब इनको टीका द्वारा स्वस्थ भेड़ोंमें प्रवेश किया गया तो सब भेड़ें बीमार हो गईं मगर उन्हें बहुत ही हलका एन्थ्रेक्स रोग हुआ। जब भेड़ें इस आक्रमणसे स्वस्थ हो गईं तो उसने उनमें बहुत ही भयंकर और शक्तिशाली एन्थ्रेक्सके कीटाणुओंसे टीका द्वारा प्रवेश किया। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ भेड़ें इस रोगसे खफ़ीफ़सी आक्रान्त हुईं मगर बहुतसी भेड़ें इस रोगसे मुक्तसे बना रहीं। पाश्चर कीटाणु-सिद्धान्तकी वृद्धिमें लगा था। वह ऐसे तरीक़े मालूम करनेमें व्यग्र था जिनको किसी रोगके लिये मुक्तता प्राप्त होती है। यह बात केवल क्रियात्मक रूपसे ही महत्वकी न था वरन् कीटाणु-सिद्धान्तकी सत्यताके स्थापन करनेमें भी बड़ी सहायक हुई।

पाश्चरने इस सिद्धान्तसे मनुष्य-जीवन बचाने में किस तरह काम लिया ?

विसूचिका और एन्थ्रेक्स रोगोंसे प्राणियोंको मुक्त बनानेके बाद पाश्चरने इसी सिद्धान्तको एक ऐसे रोग पर जाँचनेका प्रयत्न किया जो मनुष्योंके लिये बहुत ही भयानक था। यह रोग पागल कुत्तेके काटनेसे पैदा होता है। इसका एक लक्षण यह भी होता है कि रोगी पानी देखकर डरता है। इसलिये इस रोगको जल-संत्रास भी कहते हैं। यह रोग पागल कुत्तोंमें पाया जाता है और पागल कुत्तेके काटनेसे यह रोग मनुष्यको लग जाता है। यह रोग सदा घातक सिद्ध हुआ। बहुत से प्रयोगोंके बाद पाश्चरको इस रोगके

कीटाणुओंको कमज़ोर बनानेमें सफलता प्राप्त हुई। अचंभेकी बात तो यह है कि वह इस रोगका कीटाणु न मालूम कर सका और अभी तक इस कीटाणुका पता नहीं चला है। ऐसा ख़्याल किया जाता है कि यह छनने वाले विषों (virus) में से है अथवा उन जीवोंमें से है जो इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शकमें भी दिखाई नहीं पड़ते। परन्तु पाश्चर ने मालूम कर लिया था कि ये जीव (उनका रूप चाहे कुछ भी हो), मेरुदंड और दिमाग़में पहुँच कर अपना घर बना लेते हैं। इस अभिप्रायसे उसने एक ऐसे खरगोशके मेरुदंड को काटा जो पागल कुत्ते के काटनेसे मर गया था। उसे यह तो पहले ही मालूम हो गया था कि सुखानेसे अज्ञात कीटाणु-विष कमज़ोर हो जाता है; इसलिये उसने मेरुदंडको सूखनेके लिये एक शीशीमें रख दिया। शीशीमें कुछ ऐसी रासायनिक चीज़ें रख दी गई थीं जो पानीको चूस लेती हैं,। फिर उसने मेरुदंडको पीस कर रख लिया कि सरलतासे उसका उपयोग कर सके स्वस्थ जानवरके शरीरमें प्रवेश करनेके पहिले मेरुदंडको बहुत दिनों तक सुखा लिया गया था, क्योंकि पागल कुत्ते-के शरीरमें बहुत ही शक्तिशाली कीटाणु मौजूद होते हैं। उसने विचार किया कि जब बहुत ही कमज़ोर कीटाणु-विष पिचकारी द्वारा किसी जानवरके शरीरमें प्रवेश किया जायगा तब उस जानवरके शरीर-कोष्ठ प्रतिक्रिया करने लगेंगे और मुक्तता पैदा करनेमें लग जायँगे। दूसरे दिन पाश्चरने कुछ और विष पिचकारी द्वारा प्रवेश किया मगर अबकी बार ऐसे मेरुदंडसे कीटाणु-विष लिया गया जो पहलेसे कम सुखाया गया था। यह विष पहलेसे अधिक शक्तिशाली था। इस तरह चौदह दिन तक लगातार उत्तरोत्तर शक्ति-शाली विषसे टीका लगाता गया। इस इलाजके बाद वह जानवर इस रोगसे मुक्त हो गया। इससे अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक पिचकारीके बाद शरीरने अवश्य ही उत्तरोत्तर अधिक विरोधी पिंड तैयार किया होगा।

पाश्चरने अपने इन प्रयोगोंको कुत्तों पर किया और उसके ये सब प्रयोग सफल हुये और उसे कीटाणुवाद-की सत्यता पर विश्वास हो गया, जिस पर इन प्रयोगोंकी नींव स्थित थी। परन्तु पाश्चर मनुष्यों पर इस प्रयोगके करनेका साहस न करता था। एक दिन नौ वर्षका एक बालक जिसे पागल कुत्तेने काटा था उसकी प्रयोगशालामें लाया गया। माता-पिता ने पाश्चरसे अनुरोध किया कि वह इस बालकका इलाज करे। फिर भी पाश्चरको साहस न होता था क्योंकि यह घटना अनुभूत प्रयोगोंसे बिल्कुल भिन्न थी। उसने जो प्रयोग किये थे उनमें स्वस्थ कुत्तोंको कीटाणु-विषका टीका पागल कुत्ते के काटनेसे पहले ही लगा दिया जाता था। अब उसके समक्ष समस्याही कुछ दूसरी है। उसे एक ऐसे बालकके उपचारके लिये कहा जाता है जिसके शरीरमें पहले हीसे इस रोगका विष प्रवेश हो चुका है। परन्तु यह जानकर कि यह रोग बहुत धीरे-धीरे, कभी-कभी काटनेके कई सप्ताह बाद, होता है, उसने सोचा संभव है कि कीटाणु-विषका टीका अपना असर दिमाग़में पागल कुत्तेके विषके पहुँचनेके पहले ही कर सके। यह भी समझ कर कि बिना उपचारके बालकका जीवित रहना संभव नहीं, पाश्चर बालकके माता-पिताकी विनतीको माननेके लिये तैयार हो गया। इलाजके चौदह दिन बाद बालकको अस्पतालसे छुट्टी दे दी गई। वह इस रोगसे मुक्त बना रहा और उसके प्राण बच गये।

पागल कुत्तेके काटनेके भयानक और घातक परिणामसे बचनेकी यह पहली मिसाल है। अब पागल कुत्ते के काटने पर विष-नाशक टीका लगाया जाता है। यदि स्वास्थ्य-विभागके डाक्टरको रायमें कुत्ता स्वस्थ हो तो चिकित्साकी आवश्यकता नहीं।

काख़ और पाश्चरकी खोजके बाद और क्या अनुसंधान हुये ?

स्काटलैंडमें गत शताब्दीके मध्य कालमें सर जोज़ेफ जर्राही करता था। उसका काम बहुत ही प्रशंसनीय था यद्यपि हाथ और पाँव काटनेके बाद उसे भी अन्य चिकित्स-कोंकी भाँति पीव रोकनेके लिये गरम तारकोल अथवा लाल गरम लोहा इस्तेमाल करना पड़ता था। पेटके स्थलकी शल्य-क्रिया वह उसी अवस्थामें करता जब कि शल्य-क्रिया-का टालना अनिवार्य हो जाता क्योंकि इस श्रेणीकी शल्य क्रियामें रक्त-दोष अथवा गेंग्रीनका भय होता था। सन् १८६० तक जर्राहीसे इसीलिये लोग डरते थे।

जर्राहोंने यह नतीजा निकाला कि हवाकी ऑक्सीजनके

असरसे कोष्ठ-पुंजोंमें परिवर्तन होने लगता है। लिस्टर और अन्य वैज्ञानिकोंने, जिनमें सेमेलवीस नामी एक आस्ट्रियन डाक्टर भी था, इस बातका शक किया कि कदाचित् विषाक्त रक्त वृणमें कीटाणुओंकी क्रिया द्वारा उत्पन्न होता हो। इसकी जाँचकी एक तरकीब यह थी कि कीटाणुओंको मार डाला जाय और देखा जाय कि कीटाणु मारनेका प्रभाव वृण पर क्या होता है। लिस्टरने इस कामके लिये एक शक्तिशाली निःसंक्रामक (कीटाणु नाशक) कारबोलिक अम्ल इस्तेमाल किया। जब वह किसी रोगी पर शल्य-क्रिया करता तो इस क्रियाके पूर्व अपने हाथों और शस्त्रोंको उसमें डुबो लेता। शल्य-क्रियाके समय वह रोगीके शरीर पर भी इस द्रवको छिड़कता रहता। फिर कारबोलिक अम्लमें जाली भिगोकर वृणमें रख देता। उसे इस तरकीबसे बड़ी सफलता प्राप्त हुई। इस क्रिया द्वारा वृण पीवसे सुरक्षित रहता और शल्य-क्रियाके उपरान्त मृत्यु-संख्यामें बहुत कमी हो गई।

परन्तु लिस्टर अपने तरीकेसे पूर्णतया संतुष्ट न था क्योंकि कारबोलिक अम्ल जो कीटाणुओंको नाश करता है कोष्ठ-पुंजोंके लिये भी हानिकारक प्रमाणित हुआ और वृण बहुत धीरे-धीरे पुरता था। लिस्टरने फिर इस बातकी जाँचकी कि कीटाणुओंके प्रवेश होनेके बाद उन्हें नाश करनेके बदले ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि वृणमें कीटाणु पहुँच न सकें। उसने उबलते हुये पानीसे अपने शस्त्रोंको कीटाणु-मुक्त कर लिया और ऐसे कमरेमें शल्य-क्रिया की जो लगभग कीटाणु-रहित था। वृणको निःसंक्रामकमें सोखनेके बदले शल्य-क्रिया करनेके पूर्व त्वचाको कीटाणु-मुक्त कर लिया गया। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि लिस्टरने सरण विरोधी (सड़न रोक) जर्राहीको सड़नहीन जर्राहीमें परिणत कर दिया। इस समयके बादसे वृण तेज़ीसे पुरने लगे और विषाक्त रक्तके मौके बहुत कम हो गये। लिस्टरके ज़मानेसे अब जर्राहीके कमरेको रचना और प्रत्येक चीज़को कीटाणु-मुक्त रखनेमें बहुत तरक्की हो गई है। हम जोज़ेफ लिस्टरके बहुत आभारी हैं परन्तु इसकी यह खोज संभव न थी यदि राबर्ट काख़ और लुई पाश्चर और उनके अन्य सहकारियोंने अदम्य परिश्रम करके कीटाणुवादकी स्थापना न की होती।

एडवर्ड जेनरने शीतला रोगको किस तरह नष्ट करनेका प्रयत्न किया?

सन् १८०० ई० तक शीतलाका प्रकोप इतना उग्र हुआ करता था कि बहुत-सी जानें इस देवीकी भेंट होती थीं। बहुतसे अपने जीवनके निरुपम रत्नको भेंट करनेके बाद संसार-यात्रामें भटकते-फिरते और बहुतसे इसकी स्थाई छापसे अंकित रहते थे। परन्तु सन् १७६० ई० में जेनरने कुछ मनोरम निरीक्षण और परीक्षण किये। उसने देखा कि गायें एक रोगसे पीड़ित होती थीं जो शीतलाके ही समान है। इस रोगको गो-शीतला (cow-pox) कहते हैं। ग्वालिने जो इन गायोंको दुहा करतीं थीं बहुधा एक ऐसे रोगसे हलकी-सी आक्रान्त होतीं थीं जो शीतलासे मिलता-जुलता है। लोगोंने यह भी देखा कि शीतलाके आगामी प्रकोपमें जब अन्य ग्वाले रोग-ग्रस्त होते थे तब ये ग्वालिने रोगसे मुक्त रहतीं। जेनरने कुछ वीर पुरुषोंके तरीकोंके अनुसार जिन्होंने इस क्रियाको पहले जाँच कर देखा था कुछ पदार्थ गो-शीतलासे ग्रस्त गायके वृणसे खुरच कर एक लड़केकी बाँह पर खरोंच कर रगड़ दिया। इससे लड़केको हलकी-सी बीमारी हो गई परन्तु इसके पश्चात् उसमें ऐसी क्षमता उत्पन्न हो गई कि स्पर्शके बाद भी शीतला रोगसे मुक्त रहा। जेनरने इस क्रियाको वेक्सीनेशनका नाम दिया क्योंकि लैटिनमें पशुको वेकस (vaccus) कहते हैं जिससे टीकाका पदार्थ अर्थात् वेक्सीन (vaccine) तैयार किया गया। इस समयके बाद ही शीतलाका टीका इँगलिस्तानमें प्रचलित हो गया। शीतलासे बचनेके लिये मनुष्य सब कुछ करनेको तैयार थे। होते-होते सारे यूरोपमें इसका रिवाज हो गया। यूरोपके राजा-महाराजाओंके दरबारमें उसका मान हुआ, जनताने उसका अभिनन्दन किया।

रोग प्रतिबन्धक शक्ति किस तरह प्राप्त होती है?

जब पागल कुत्तेके काटनेके विरुद्ध तुमको पाश्चरी उपचार दिया जाता है या तुम्हारे शीतलाका टीका लगाया जाता है तो तुम्हारे शरीरके कोष्ठ क्रियाशील होकर तुममें रोग प्रतिबन्धक शक्ति उत्पन्न करते हैं। इसका तुम्हें तनिक भी भान नहीं होता परन्तु इस किस्मके टीकाके बाद तुम्हारे

शरीरके अगणित कोष्ठ रात-दिन विरोधी पिंड बनानेमें लगे रहते हैं। इस प्रकार तुम जल-संत्रास और शीतलाका सामना करनेके लिये विरोधी-पिंड द्वारा सुसज्जित हो जाते हो। इस प्रकारकी अर्जित प्रतिबन्धक शक्तिको सक्रिय कहते हैं क्योंकि इस क्रियामें शारीरिक कोष्ठ रक्षाका सामान तैयार करनेमें क्रिया-शील होते हैं।

विरोधी पिंडोंको तैयार करनेका एक और तरीका है। वैज्ञानिक अब जानते हैं कि किसी जानवरसे विरोधी-पिंड किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं और इन्हें मनुष्यके शरीरमें रास्त प्रवेश किया जा सकता है। लगभग पचास साल व्यतीत हुये जब काखके एक शिष्य एमिलवान् वेहरिंगने इस बातका प्रयत्न किया। उसने डिप्थीरियाके विरुद्ध सक्रिय प्रतिबन्धक शक्ति पैदा करनेके तरीके पर एक घोड़ेमें प्रतिबन्धक शक्ति पैदा की। उसने फिर घोड़ेसे विरोधी पिंडोंको लेकर मनुष्यके शरीरमें प्रवेश किया। इस तरीकेसे कुछ ही घंटोंमें मनुष्यका शरीर डिप्थीरियाका मुक़ाबला करनेके लिये पूर्णतया तैयार हो गया। वान वेहरिंगने इस उपचारका प्रयोग डिप्थीरियासे ग्रस्त बालकोंको अच्छा करनेके लिये किया। उसने विरोधी-पिंडोंको एक ऐसे भी बालकके शरीरमें प्रवेश किया जो रोगसे प्रभावित हो चुका था, मगर रोग-ग्रस्त न हुआ था। दोनों ही हालतोंमें उसे कामयाबी प्राप्त हुई। इस प्रकारसे अर्जित मुक्तताको निष्क्रिय प्रतिबंधक शक्ति कहते हैं क्योंकि इस क्रियामें शारीरिक कोष्ठ निष्क्रिय होते हैं। इस किस्मकी निष्क्रिय मुक्तता तुरन्त प्राप्त की जा सकती है परन्तु केवल दो या तीन सप्ताह तक बाक़ी रहती है।

बहुतसे कीटाणु विष उत्पन्न नहीं करते। अतएव ऐसे रोगोंके लिये वास्तविक विरोधी-विष इस प्रकार उत्पन्न नहीं किये जा सकते जिस तरह कि डिप्थीरियाके लिये वान वेहरिंगने आविष्कृत किये थे; परन्तु हाल ही में यह मालूम हुआ है कि बहुतसे विरोधी-पिंड जिन्हें मनुष्य रोगसे स्वस्थ होनेकी अवस्थामें बनाता है कभी-कभी दूसरे मनुष्योंके लाभके लिये प्रयोगमें लाये जा सकते हैं—मसलन, जब किसी बालकको खसरा (measles) का रोग हो जाता है तो उसके शरीरमें कभी-कभी ऐसे मनुष्यका प्रतिबंधक रक्त-रस प्रवेश किया जाता है जो इस रोगमें कई वर्ष पूर्व ग्रस्त हो चुका था।

डिप्थीरिया विरोधी रक्त-रस तैयार करनेका क्या तरीका है?

मौजूदा ज़मानेमें विरोधी रक्त-रस तैयार करनेके लिये डिप्थीरियाके कीटाणु-शरीरमें प्रवेश नहीं किये जाते वरन् उनके बदले कीटाणु-विष प्रवेश किया जाता है। डिप्थीरियाके कीटाणुओंको शोरबामें पैदा किया जाता है, फिर कीटाणुओंको छानकर अलग कर लिया जाता है और कीटाणु-विषको अलग इकट्ठा कर लिया जाता है। अब यह विष घोड़ेके शरीरमें प्रवेश किया जाता है। पहले टीकामें बहुत ही थोड़ा विष प्रवेश किया जाता है। हर छठवें या सातवें दिन कई मास तक बढ़ती हुई मात्रामें कीटाणु-विषका टीका घोड़ेके लगाते रहते हैं। इस क्रियाके पश्चात घोड़ेके रक्तमें डिप्थीरियाके विरुद्ध बहुतसे विरोधी-पिंड तैयार हो जाते हैं। अब इस घोड़े पर डिप्थीरियाके भयंकर आक्रमण का भी कोई असर नहीं होता। ऐसी अवस्थामें घोड़ेकी एक बड़ी नाड़ीको काट कर इसका रक्त एक बर्तनमें इकट्ठा कर लिया जाता है। रक्तको जमाया जाता है और रक्त-रस को साफ़ कर लिया जाता है। इसके उपरान्त किसी दूसरे जानवर पर इसके असरकी जाँचकी जाती है, फिर इस रक्त-रसको शीशियोंमें बन्द कर दिया जाता है।

डिप्थीरियाके रोगके निराकरणका क्या उपाय है?

वान वेहरिंगके विरोधी-विषकी खोजने बहुतसे बालकोंको डिप्थीरियाके कारण होने वाली मृत्युसे बचा दिया, परन्तु यह खोज डिप्थीरियाके निराकरणमें इतनी फलीभूत नहीं हुई जितना कि वेक्सीनेशन शीतलाके मूलोच्छेदनमें फलीभूत हुआ। तुम देख चुके हो कि घोड़े द्वारा रचित विरोधी-विष जब किसी मनुष्यके शरीरमें प्रवेश कर दिया जाता है तब यह कुछ सप्ताह तक ही रक्तमें बना रह सकता है। इसके पश्चात् मनुष्यको फिर इस रोगकी आशंका होती है। इस उग्र न्यूनताको देखकर वैज्ञानिकोंने प्रयत्न किया कि कोई ऐसी प्रणाली खोज निकालें कि डिप्थीरियाके विरुद्ध सक्रिया प्रतिबन्धक शक्ति उत्पन्नकी

जा सके। डाक्टर बेलासिक, एक आस्ट्रियन चिकित्सक इस कार्यमें फलीभूत हुआ। उसने एक स्वस्थ मनुष्यको भुजामें डिप्थीरियाका विष प्रवेश किया। इस डरसे कि कहीं यह घातक न हो उसने अपने प्रयोगोंमें विष और विरोधी-विष दोनोंके मिश्रणका व्यवहार किया। उसने हलकी मात्रा-से कार्य आरम्भ किया और कोष्ठोंको विरोधी-विष बनानेका समय दिया। तदुपरान्त उसने पहलेसे अधिक बलवान टीका लगाया और इसके बाद तीसरा टीका भी लगाया। इस प्रकार मनुष्यमें जो सक्रिय प्रतिबन्धक शक्ति उत्पन्न होती है बहुतसे लोगोंमें कई वर्षों तक अवशेष रहती है।

यह एक बड़े महत्वकी खोज थी और डाक्टर विलियम-पार्कने जो उस समय न्यूयार्क नगरके स्वास्थ्य-विभागकी प्रयोग-शालाके डाइरेक्टर थे इसके महत्वको शीघ्र ही पह-चान लिया। वान बेहरिंगके विरोधी-विषकी खोजके बहुत वर्ष पूर्व ही डाक्टर पार्कने इसका प्रयोग न्यूयार्कके नगरमें आरम्भ कर दिया। ज्योंही उसे यह मालूम हुआ कि विष और विरोधी-विषका प्रयोग भयरहित और प्रभावशाली है डाक्टर पार्कने इसके प्रसारमें सचेष्ट परिश्रम किया। पाठशालाओंमें बालकोंको रोग प्रतिबन्धक शक्ति प्राप्त करनेके अवसर दिये गये और संरक्षकोंको इस बातकी प्रेरणाकी गई कि वह इस अवसरका सदुपयोग करें।

कुछ वर्षोंके पश्चात् एक वैज्ञानिक ने डाक्टर सिककी मौलिक प्रणालीमें कुछ उन्नति की। उसने एक पदार्थ टॉक्-सोइड (toxoid) टीका द्वारा शरीरमें प्रवेश किया जो विशेष क्रिया-कृत कीटाणु-विष है। टाक्सोइडका केवल एक ही टीका पर्याप्त है। यदि प्रत्येक बालकके, जिसे डिप्थी-रियाके विरुद्ध प्रतिबंधक शक्तिकी आवश्यकता हो, टॉक्-सोइडका टीका लगा दिया जाय तो यह समूल नष्ट हो सकता है।

चिकित्सक यह कैसे पहचान सकता है कि कौन-से बालकोंको रोग प्रतिबंधक शक्तिकी आवश्यकता है ?

यह बात मालूम हुई है कि कुछ बालक डिप्थीरिया रोगसे प्रत्येक परस्थितिमें मुक्त रहते हैं चाहे इस रोगके लिये वे किसी प्रकारका बचाव भी न करें। अस्तु, डाक्टर सिक चाहते थे कि कोई ऐसा तरीका ढूँढ़ निकाला जाय जिससे पूर्व ही यह मालूम हो सके कि कौनसे बालक इस रोगको जल्द ग्रहण करते हैं और जिन्हें प्रतिबंधक शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, और ऐसे कौनसे बालक हैं जो इस रोगसे मुक्त हैं। उन्होंने इस कामके लिये एक साधारणसी परीक्षा सोच निकाली जिसे उसने "सिक-परीक्षण" का नाम दिया। इस मतलबसे बहुत थोड़ा कीटाणु-विष भुजाकी त्वचामें प्रवेश किया जाता है। चौबीस घंटोंके उपरान्त उस स्थानको देखकर चिकित्सक बता सकता है कि किसी बालक या मनुष्यमें विरोधी-विष पर्याप्त मात्रामें मौजूद है या नहीं और स्वभावतः वह इस रोगसे मुक्त है या नहीं। यदि एक विशेष प्रकारका लाल भाग दिखाई पड़े तो समझना चाहिये कि बालक इस रोगके आक्रमणसे सुरक्षित नहीं है। ऐसी अवस्थामें चिकित्सक इस बातकी शिफारिस करता है कि बालकमें टॉक्सोइड द्वारा रोग प्रतिबंधक शक्ति उत्पन्न की जाय अन्यथा बालकको इस कष्टकी आवश्यकता नहीं। यदि समाज यह निश्-चय कर ले कि प्रत्येक बालकका परीक्षण हो और ग्रहण शील और मुक्त बालकोंको मालूम कर लिया जाय, फिर ग्रहणशील बालकोंमें प्रतिबंधक शक्ति उत्पन्न कर दे तो डिप्थीरिया रोगका समूल विच्छेदन सहज ही हो सकता है।

टेटेनस (tetanus) से मनुष्य किस तरह सुरक्षित रह सकता है ?

अभी तक जल-संत्रासकी भाँति टेटेनस भी मारक रोग समझा जाता था। इस रोगके कीटाणुमें बीजाणु (spore) बननेकी शक्ति है। इस दशामें यह बहुत दिनों तक जीव-धारियोंके शरीरके बाहर बिना ऊष्मा और भोजनके जीवित रह सकता है। ये बीजाणु मिट्टीमें जीवित पड़े रहते हैं। ये ऐसी मिट्टीमें विशेषकर पाये जाते हैं जिसमें घोड़ेकी लीद मिली होती है। इसका कारण स्पष्ट है। ये कीटाणु घोड़े और अन्य जानवरोंके शरीरमें रहते हैं। मुँह द्वारा प्रवेश करनेके बाद ये महाश्रोतमें निवास करते है और वृद्धि करते हैं, परन्तु रोगके कोई लक्षण प्रकट नहीं होते। अतएव कीटाणु मलके साथ पशुके शरीरसे निकलते रहते हैं। शरीरसे निकलनेके बाद वे बीजाणु बनकर

मिट्टीमें पड़े रहते हैं। जब यह मिट्टी किसी व्रणमें प्रवेश करती है तो ये मुख द्वारा प्रवेश होनेकी अपेक्षा अधिक हानिकर होते हैं। ये विष उत्पन्न करते हैं जो शरीरमें फैलकर पेडू तक पहुँच जाता है और मांसपेशियोंमें खूब संकुचन होता है और जबड़ा अकड़ जाता है। डिप्थीरियाकी भाँति अगर इस रोगमें भी विरोधी-विष तुरन्त ही प्रवेश किया जाय तो रोगका अवरोध किया जा सकता है। आकस्मिक घटनाओंमें यदि त्वचामें गहरा व्रण हो जाय तो टेटेनस-विरोध-रक्त रस (विष) का टीका तुरंत लगाना बहुत जरूरी है।

मंथर ज्वर पर मनुष्यने किस तरह अधिकार प्राप्त किया ?

मंथर ज्वर एक ऐसा रोग है जो विज्ञान द्वारा काबूमें लाया जा सकता है। इसके कीटाणु भोजन अथवा पेयके साथ प्रवेश कर महास्रोतमें पहुँच जाते हैं। इसके कारण केवल रोग ही नहीं होता वरन् आँतमें भी व्रण पड़ जाते हैं। कीटाणु मलके साथ निकलते रहते हैं। अतएव वह मोरीके पानीके साथ मिट्टी, नदी, नाले और तालाबमें पहुँच जाते हैं। मिट्टीमें छन कर ये कीटाणु कुओं अथवा बड़े-बड़े जलाशयों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार मंथर ज्वर, जहाँ पीनेके पानीको सुरक्षित नहीं रक्खा जाता, महामारीकी भाँति फैल जाता है। हौज़ोंमें विशेषकर जहाँ मोरियों और पीनेके पीनीका सुप्रबन्ध नहीं होता मंथर ज्वरका भय रहता है। मंथर ज्वरके लिये एक सक्रिय प्रतिबंधक शक्तिका शोध किया गया है। इस कामके लिये मृत कीटाणुओंका टीका लगाया जाता है। मृत कीटाणु भी कोष्ठोंको उत्तेजित कर देते हैं और वह विरोधी-पिंड बनाते हैं। प्रतिबंधक शक्ति कई वर्षों तक बनी रहती है मगर यह सारे जीवनके लिये नहीं रहती। अतएव कीटाणुओंसे आक्रान्त होनेकी संभावनाके पूर्व दुबारा टीका लगाया जाय।

[सजीव प्राणियोंकी विस्मयजनक घटनाओंके आधार पर]

हमारे नेत्र

(लेखक—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालङ्कार, एम० एस-सी०, विशारद)

नेत्र हमारी अनमोल इन्द्रियाँ हैं। इनके बिना सारा संसार सूना हो जाता है और जीवन बोझ बन जाता है। नेत्रोंकी बदौलत हम संसारका सुख भोगते हैं। सच पूछिये तो प्रेमकी बातें नेत्रोंसे ही होती हैं। इस प्रस्तावमें हम नेत्रोंकी रचना तथा उनकी क्रियाओंका वर्णन करेंगे।

जब हम अपने नेत्र और छाया-चित्र खींचने वाले कैमरेकी तुलनात्मक जाँच करते हैं तो दोनोंकी रचनाओं और क्रियाओंमें आश्चर्यजनक सदृश्यता पाते हैं। दोनोंकी परीक्षा के अनन्तर प्रतीत हो जाता है कि हो-न-हो, छाया-चित्रण चक्षुओंका अनुकरण मात्र है। इस तत्वको विस्तार सहित समझने के हेतु हमें एक साधारण कैमरे एवं भेड़ या बकरी की आँखको ध्यानपूर्वक परीक्षा करनी होगी

देखने पर छाया-चित्रण-यंत्र एक छोटी अँधेरी कोठरीके समान होता है जिसकी लम्बाई स्वेच्छानुकूल घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इसके मुख्य भाग दो होते हैं। एक तो काँचकी पट्टी (फिल्म) जिस पर चाँदी मिश्रित रासायनिक योगका हलका-सा प्रलेप लगा होता है। पदार्थकी आकृति इसी पर बनती है। यह पट्टी कैमरेके पिछली दीवार पर एक चौखटे
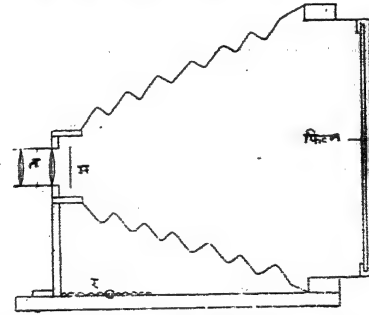
चित्र १—छाया चित्रण यंत्र (केमरा ; त = ताल, म = मूँदक (शटर), र = फोकस करनेका रैक, प सांवदानके प्लेट (फिल्म)

में लगी होती है। इसका दूसरा प्रमुख भाग काँचका एक लेंस (ताल) होता है। जिसका पेटा दोनों ओर उभरा

हुआ होता है। ऐसे तालको युगलोन्नतोदर ताल कहते हैं। यंत्रके अगले भागमें पीतलकी नली होती है जिसमें यह लैंस जड़ा होता है।

युगलोन्ननोदर तालकी यह विशेषता होती है कि जब यह किसी दूर रक्खे हुए स्थूल पदार्थके सम्मुख रक्खा जाता है तब यह अपने पीछे एक नियत दूरी पर उसकी यथार्थ किन्तु अधोमुख नन्हींसी मूर्ति निर्माण करता है। कैमरेमें प्रकाशकी रश्मियाँ पदार्थसे आकर ताल पर पड़ती हैं और वह अपने पीछे लगी प्लेट पर उस पदार्थका प्रतिबिंब बना देता है। अन्य प्रकाश-यंत्रोंकी भाँति कैमरेकी दीवारें जो प्रायः मुड़े हुए चमड़ेकी होती हैं, काली होती हैं।

यदि मसाला लगी पट्टीके स्थान पर घिसे हुए काँचकी एक सादी पट्टी लगा दी जाय तो पदार्थका प्रतिबिंब इस पर भी दिखाई देगा। फोटो उतारने वाला जब सिरपर काला वस्त्र डालकर पदार्थका फोकस ठीक करता है तब वह इसी घिसी हुई प्लेट पर बने हुए पदार्थके प्रतिबिंबको देखता है। प्रतिबिंबका स्पष्टीकरण (फोकस) ठीक हो जाने पर वह इस पट्टीको निकाल कर प्रलेप लगी हुई फिल्मको लगा देता है। प्रकाशकी किरणें फिल्मके जिन-जिन भागों पर पड़ती हैं उन-उन भागों पर वे अपना विशेष प्रभाव डालती हैं। तदुपरांत फिल्मको विविध मसालोंसे परिष्कृत कर स्थायी बना लेते हैं और उससे मसाला लगे कागज़ों पर चित्र उतार लेते हैं।

हमारे नेत्र भी कैमरेके समान होते हैं। हाँ, उनकी आकृति गोल होती है। उनके घेरे-अभिगोलक (eye-ball) कैमरेके समानकी बाहरी दीवार श्वेत पदार्थकी बनी होती हैं। आँखका आकार घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता है। सामनेसे देखने पर नेत्रको चमकती हुई पारदर्शक दीवार-कनीनिका दिखाई देती है। इस दीवारके पीछे एक रंगीन परदा-उपतारा (पुतली) होता है। उपतारमें एक गोल छेद (तारा) होता है। उपतारासे सटा हुआ भीतरकी ओर एक सजीव युगलोन्नतोदर ताल होता है जो उपताराके छेदमेंसे काँचके समान चमकता हुआ बाहरसे दिखाई देता है। कनीनिका और उपताराके बीच नेत्रका अगला कोष्ठ होता है जिसमें जलीय रसभरा होता है। नेत्रका बृहत् कोष्ठ उपतारा ताल और रेटीना (नेत्रके भीतरी पटल) से घिरा हुआ होता है। इसमें गाढ़ा अर्धतरल द्रव्य भरा होता है। इस कोष्ठके अधिकांश भागको एक सांवेदनिक झिल्ली घेरे हुए होती है जिसे रेटीना या दृष्टि-पटल कहते हैं। नेत्रका भी भीतरी भाग काला होता है।

छाया-चित्रण यंत्रमें जो कार्य लेपदार काँचकी पट्टी करती है वही कार्य हमारे नेत्रोंमें रेटीना करता है। पदार्थसे प्रकाशकी रश्मियाँ कनीनिका, जलीय रस, ताल और बृहत कोष्ठमें होती हुई दृष्टि-पटल पर पड़ती हैं और उस पर उस पदार्थका प्रतिबिंब निर्माण करती हैं। दृष्टि-पटल तालके अत्यंत समीप होता है। इसकी अपेक्षा पदार्थ तालसे कहीं दूरी पर होता है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे नेत्रका रेटीना फिल्मकी अपेक्षा कहीं अधिक गूढ़-जटिल और पेचीदा होता है। फिल्म द्वारा खिंचे चित्र केवल श्वेत और श्याम वर्णके ही छपते हैं किन्तु रेटीनामें सभी रंगोंके चित्रोंका प्रदर्शन होता है।
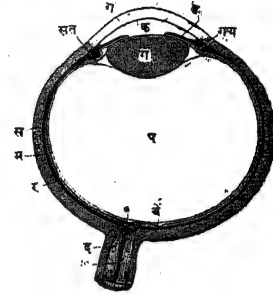
चित्र २ - ग = कनीनिका, क = जलीय द्रवपूर्ण अगला कोष्ठ, उ = उपतारा त = ताल, सत = ताल बंधन, प = बृहत कोष्ठ, स = बाह्य पटल, म = मध्य पटल, र = अंतरीय पटल (रेटीना) य = पीत बिन्दु, द = दृष्टि नाड़ी

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि हमारे चक्षुओंके लैंस बाह्य संसारकी जो प्रतिमा दृष्टि-पटल पर बनाते हैं वह यथार्थ किन्तु अधोमुख और अतीव छोटे होते हैं। इस तत्वको प्रत्यक्ष रूपसे प्रतिपादित करनेके हेतु अधोलिखित प्रयोग बड़ी सावधानीसे किया जा सकता है।

एक विदीप्त लैम्पसे कुछ फीटकी दूर पर भेड़ अथवा बकरीके एक नेत्र (आक्ष गोलक) को किसी पदार्थमें कस दें। तदुपरांत अस्तुरेसे नेत्रकी पीठ परके कड़े और मोटे बाहरी पटल (sclerotic) धीरे-धीरे यहाँ तक खुरचे

कि नेत्रका अंतरीय पटल (रेटीना) प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। अब इस निर्जीव दृष्टि-पटल पर लैम्पको चमकती हुई प्रतिमूर्ति उसी भाँति दिखाई पड़ती है जिस भाँति फोटो खींचते समय पदार्थका प्रतिबिंब धुँधली काँचकी पट्टी पर दिखाई देता था। यह प्रयोग क्रियात्मक दृष्टिसे कुछ दुस्साध्य होने पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रत्यक्ष रूपसे प्रमाणित करता है कि कैमरेके तुल्य हमारे चक्षुओंमें भी बाह्य संसारका यथार्थ किन्तु अधोमुख प्रतिबिंब बनाता है।

हमारे नेत्रोंमें बाहरी पदार्थोंका अपेक्षाकृत जितना सूक्ष्म प्रतिबिंब बनता है उसका ठीक-ठीक अनुमान इने-गिने पुरुषोंको ही होगा। रेटीनाका सम्पूर्ण क्षेत्र लगभग १ वर्ग इंच होता है फिर उसके सारे क्षेत्र पर बाहरी पदार्थका प्रतिबिंब बनता भी नहीं। प्रतिबिंब तो प्रायः उसके एक विशिष्ट गहरे भाग पीत-बिन्दु (macula lutea) पर ही बनता है जिसका व्यास $\frac{१}{२४}$ से $\frac{१}{२}$ इंचका होता है। इसका तात्पर्य यह है कि कुछ सौ गज़ोंको दूरीसे देखने पर ताजमहल सदृश विशाल भवनकी प्रतिमूर्ति हमारे नेत्रोंके लगभग ०'००४५ वर्ग इंच क्षेत्र पर ही घनीभूत (condensed) होकर बनेगी जिसमें महलका शिखर नीचेकी ओर और उसकी सीढ़ियाँ और भूस्तर ऊपरकी ओर होंगे।

यह बात तो प्रायः सभी लोग जानते हैं कि कोई लेंस एक ही समयमें ऐसे दो पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिबिंब निर्माण नहीं कर सकेगा जिनमेंसे एक तो तालके समीप हो और दूसरा उससे दूर हो। ताल किसी विशेष दूरी पर स्थित पदार्थका प्रतिबिंब अपने पीछे, किसी विशेष दूरी पर ही निर्माण कर सकता है। यही कारण है कि जब फिल्म पर किसी दूरवर्ती पदार्थका प्रतिबिंब बनता है तो समीपस्थ पदार्थका प्रतिबिंब फोकसके बाहर पड़ता है। अतः वह बिल्कुल धुँधला दिखाई देता है।

ऐसी दशामें हम समीपस्थ पदार्थ का स्वच्छ और स्पष्ट चित्र कैसे पा सकेंगे? इसकी दो विधियाँ हैं। या तो ताल पदार्थके समीप खिसका दिया जाय अथवा तालके उन्नतोदरत्वमें वृद्धिकी जाय।

कैमरेका ताल काँचका बना हुआ होता है। अतः उसकी आकृतिमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उसे तो आगे-पीछे हटाकर उस स्थान पर स्थापित करना होता है जहाँसे वह पदार्थका अधिकाधिक स्वच्छ, निर्मल और स्पष्ट चित्र निर्माण करता हो। कैमरेका दीवारें इस काममें धौंकनीका काम करती हैं। उन्हींसे कैमरेकी लम्बाईको घटा-बढ़ाकर पदार्थका फोकस ठीक किया जाता है।

हमारे नेत्रोंका ताल कैमरेके तालके समान हिल-डुल नहीं सकता। वह उपतारानुमंडलकी मांसपेशियोंसे आबद्ध है। तालोंका परीक्षासे मालूम हुआ है कि जितना ही समीप पदार्थ होगा उतने ही अधिक उभार (उन्नतोदरत्व) वाले तालकी आवश्यकता होगी। नेत्रका ताल लचकीले पदार्थका बना होता है। जब उपताराकी कोरोंकी मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं तब तालका उन्नतोदरत्व बढ़ जाता है। यही कारण है कि जब हम अति समीपके पदार्थको देखते हैं तो हमें निहार-निहार कर देखना पड़ता है। उस समय हम उन मांसपेशियोंको अधिकाधिक संकुचित करनेका प्रयास करते हैं। किन्तु जब हम दूरस्थ पदार्थ को देखते हैं तो तालका उन्नतोदरत्व घट जाता है। हमारे नेत्रोंमें यह क्रिया निरंतर स्वतः हुआ करती है, हमें उसका आभास तक नहीं होता।

फोकस करनेकी इतनी उत्कृष्ट योजना होने पर भी कुछ लोगोंके नेत्रोंमें बाहरी पदार्थोंका प्रतिबिम्ब ठीक रेटीना पर नहीं पड़ता। आक्ष गोलकके आकारके अनुसार पदार्थका प्रतिबिम्ब या तो रेटीना तक पहुँचता ही नहीं है या रेटीनाके परे बनता है। इस हेतु उन लोगोंको वह पदार्थ स्पष्ट नहीं दिखाई देता है। उनके नेत्रोंके आक्षगोलक दोषपूर्ण होते हैं और उनकी आकृति और आकार लेंससे मेल नहीं खाते। जब आक्षगोलक लम्बाईमें छोटा होता है तो पदार्थका प्रतिबिम्ब रेटीनाके पीछे बनता है। नेत्रके इस दोष या रोगको 'दूर दृष्टि-रोग' या 'निकट दर्शन-सामर्थ्य' कहते हैं। ऐसे व्यक्ति दूरकी वस्तुओंको तो आसानीसे देख सकते हैं किन्तु समीपकी वस्तु साफ़-साफ़ नहीं देख पाते। युगलोन्नतोदर ताल वाली ऐनकके प्रयोगसे यह दोष दूर हो जाता है।

जिन पुरुषोंके आक्षगोलक अधिक लम्बे होते हैं उनमें पदार्थका प्रतिबिम्ब रेटीना तक नहीं पहुँच पाता। उसे 'निकट दृष्टि-रोग' अथवा 'दूर दर्शन-सामर्थ्य' कहते हैं। ऐसे

लोगोंको समीपकी चीज़ें तो स्पष्ट दिखाई देती हैं पर दूरकी वस्तुएँ धुँधली जान पड़ती हैं। ऐसे व्यक्तियोंको युगलोन्नतोदर (concave lens) वाली ऐनक उपयोगी होती है।

कैमरे और हमारे नेत्रोंमें एक और सादृश्यता पाई जाती है। कैमरेमें तालके सामने धातुकी कुछ चक्रियाँ लगी होती हैं। ये मिलकर एक गोल छेद (पुतलीवत् छेद) बनाती हैं। इनके द्वारा छेदको इच्छानुसार तुरन्त छोटा व बड़ा कर सकते हैं। छेदके आकारके अनुसार ही प्रकाशकी रश्मियाँ कैमरेमें प्रवेश कर ताल पर पड़ती हैं। वहाँसे परावर्तित हो कर फिल्म पर टकराती हैं। चित्र खींचनेमें प्रकाशके परिणाम एवं उन्मीलन-समय (exposure) का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। प्रकाशके परिमाणानुसार चित्र हल्का या तीक्ष्ण किया जाता है।
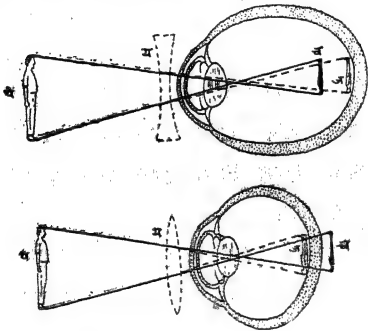
चित्र ३—(ऊपर) निकट दृष्टि रोग (short sight) प = पदार्थ, च = निकट दृष्टि रोग वाले पुरुषकी आँखमें पदार्थका उलटा प्रतिबिंब (दृष्टि पटल तक नहीं पहुँचा), य = युगलोन्नतोदर (concave lens) ताल वाली ऐनक, ज = ऐनक लगाने पर पदार्थका दृष्टि पटल पर बना हुआ प्रतिबिंब,

(नीचे) दूर दृष्टि रोग (long sight) प = पदार्थ य = युगलोन्नतोदर ताल वाली ऐनक, च = रोगीके नेत्रमें पदार्थका प्रतिबिंब (प्रतिबिंब दृष्टि पटलके पीछे बनता है), ज = ऐनक लगाने पर ठीक दृष्टि-पटल पर बना हुआ पदार्थका प्रतिबिंब

युगलोन्नतोदर तालकी यह भी एक विशेषता होती है कि जब प्रकाशकी किरणें उसके किनारों (कोरों) से होकर गुज़रती हैं तो चित्र धुँधला या अस्पष्ट हो जाता है। अतः जब फ़ोटोग्राफर तालकी कोरों पर पड़ने वाली रश्मियोंको काटना चाहता है तो वह चक्रियोंको घुमा कर छेद छोटा कर देता है ताकि उसमेंसे होकर कैमरेमें वे ही किरणें प्रवेश कर सकें जो तालके केन्द्र पर पड़ती हों। स्पष्ट चित्र लेनेमें यह संविधान परमावश्यक होता है।

कैमरेमें जो काम पुतलीवत् छेद और चक्रियाँ करती हैं वही कार्य हमारे नेत्रोंकी पुतली (तारा) और उपतारा (iris) करते हैं। उपताराका अपारदर्शक भाग तालके किनारों पर पड़ने वाली अनावश्यक किरणोंको भीतर जानेसे रोकता है और तारा (pupil) प्रतिबिंब निर्माण करने वाली किरणोंको ही भीतर जाने देता है। नेत्रके भीतर निचाट अँधेरा होनेके कारण यह छेद तारा बाहरसे काला दिखाई देता है।

यदि किसी मन्द धूप अथवा बदलीके दिवस हम शीशेमें अपने नेत्रोंको देखें तो हमारी पुतली दीर्घ प्रतीत होगी। तदुपरान्त यदि हम बिजलीका लैम्प जलाकर उसके प्रकाशमें उसे देखें तो वह पहलेकी अपेक्षा छोटी मालूम होती है। हमारे नेत्रोंमें यह क्रिया उपतारानुमंडलकी अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा आवश्यकतानुसार अपने आप हुआ करती हैं। मांसपेशियोंके आकंचन द्वारा पुतली छोटी हो जाती है और उनके प्रसार द्वारा वह फैल कर बड़ी हो जाती है। ये पेशियाँ प्रकाशकी तीव्रताके अनुसार संचालित होती हैं। जब रेटीना पर तेज प्रकाशकी किरणें पड़ती हैं तब उसकी सूचना केन्द्रगामी नाड़ियों द्वारा मस्तिष्कको हो जाती है। मस्तिष्क-केन्द्र त्यागी नाड़ियों द्वारा मांस-पेशियों।। आदेश देता है और वे पुतलीको तुरन्त छोटा कर देती हैं। नया पारा, बिल्लीकी पुतली पर प्रकाशकी तेजीका विचित्र प्रभाव पड़ता है। उजालेमें उसकी पुतलियाँ सिमिट कर केवल एक छोटी-सी लकीर (mere slits) के सदृश रह जाती हैं। हाँ, अँधेरेमें वे हमारी पुतलियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक दीर्घ हो जाती हैं। यही कारण है कि बिल्ली दिनकी अपेक्षा रात्रिको अधिक देख सकती है।

कैमरेके भीतर प्रकाशको जाने या न जाने देनेके हेतु जिस भाँति शटर (मूँदक) लगा होता है उसी भाँति हमारे नेत्रोंमें नेत्रच्छद अथवा पलकें होती हैं। इनके द्वारा हम आवश्यकतानुसार नेत्रोंको खोल अथवा मूँद सकते हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि कैमरे और हमारे नेत्रोंकी भीतरी भित्तियोंका रंग काला होता है। काला होनेके कारण प्रकाशकी रश्मियोंका आंतरिक परावर्तन (internal reflexion) नहीं होता। यदि उनका भीतरी भाग काला न होता तो प्रकाशकी उस बिखरी हुई द्युतिका पूर्ण रूपसे शोषण न हो पाता जो प्रतिबिम्ब-निर्माणमें भाग नहीं लेती। इस द्युतिके ठीक शोषण न होनेसे चित्र बरबाद हो जाता है।

अंतमें हम एक विवादास्पद प्रश्न पर विचार करेंगे। वह यह है कि हमारे नेत्रोंमें पदार्थोंका प्रतिबिंब अधोमुख बनता है तो भी हम उसे उल्टा क्यों नहीं देखते, हम उस पदार्थको ज्योंका त्यों कैसे देखते हैं? देखनेकी क्रियामें पदार्थकी जो हमें अनुभूति होती है उसका सम्बन्ध असलमें हमारे नेत्रसे नहीं वरन् हमारे मस्तिष्कसे होता है। नेत्र तो कैमरेकी भाँति केवल यन्त्र हैं। अंतर केवल इतना है कि वे हमारे शरीरके अंग हैं। दृष्टि-नाड़ी (eye-nerve) के सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा नेत्रोंका सम्बन्ध मस्तिष्कसे होता है, यह नाड़ी भेड़ अथवा बकरीके नेत्रमें देखी जा सकती है। रेटीनाका सारा पृष्ठ इस नाड़ीके तन्तुओं (वात तन्तुओं) से आच्छादित होता है। इन तन्तुओंके सिरोंमें विषयके ज्ञान या अनुभूतिको ग्रहण करनेकी अद्भुत स्वाभाविक शक्ति होती है और उनके शेष भागमें उस अनुभूतिको वहन कर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देनेकी विचित्र सामर्थ्य होती है। रेटीनाके जिस भाग पर प्रकाशकी किरणें पड़ती हैं तो इसकी सूचना या अनुभूति उस भागके वात-तन्तुओं द्वारा केन्द्रीय चेतना या मस्तिष्कको पहुँचाई जाती है। दृश्य-जगत्की इस अनुभूतिसे मस्तिष्कके भीतर एक प्रकारकी प्रतिक्रिया होती है। यह प्रतिक्रिया किस भाँतिकी होती है इसे हम लोग अभी तक नहीं समझ पाये हैं। अतः हम अभी इतना ही कह सकते हैं कि वात-तन्तुओं द्वारा पहुँचाई हुई अनुभूति ही मस्तिष्कको दृश्य-जगतका परिज्ञान या बोध कराती है और अब हम उसे यथावत् देखते हैं।

टेलीफोनका दृष्टांत देकर हम उस विषयको अधिक स्पष्ट करेंगे। टेलीफोनमें किसी व्यक्तिसे वार्तालाप करते समय हम उस व्यक्तिकी यथार्थ वाणीको श्रवण नहीं करते हैं। जिस टेलीफोनमे वक्ता बोलता है उसमें उसकी वाणीका एक प्रकारके 'वैद्युत-संदेश' में रूपांतर हो जाता है। यही 'वैद्युत-संदेश तार द्वारा वहाँसे हमारे हाथके टेलीफोन तक आता है। यहाँ पहुँच कर वह संदेश पुनः वाणीमें परिवर्तित हो जाता है। इसी वाणीको हम सुनते हैं। जो वाणी हम सुनते हैं वह वक्ताकी यथार्थ वाणी न होकर उसका केवल 'स्वर-चित्र' होता है कि टेलीफोनमें जो कुछ हम सुनते हैं वह वास्तवमें स्वर होता है जो वक्ताकी वाणीसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है किन्तु किसी पदार्थके देखनेको क्रियामें मस्तिष्क और नेत्रमें विभिन्न प्रकारके व्यापार होते हैं। मस्तिष्कके भीतर दृश्य-जगत्का यथार्थ प्रतिबिम्ब नहीं बनता जैसे हमारे नेत्रकी पीठ पर बनता है।

अस्तु, टेलीफोनके तारमें जो क्रिया होती है वह दृष्टि-नाड़ीमें होने वाली क्रिया हीके समझनेमें सहायक होती है। दोनों ही दशाओंमें मूल घटनाओं—एकमें वाणी और दूसरेमें प्रतिबिम्ब-का एक प्रकारके 'कानूनी-संदेश (code message) में रूपांतर हो जाता है। टेलीफोनके तारके उस छोर पर जो हमारे हाथमें है यह 'कानूनी-संदेश' पुनः वाणीमें परिणत हो जाता है और दृष्टि-नाड़ीके मस्तिष्क वाले छोर पर उस संदेशका रूपांतर किसी ऐसी वस्तुमें होता है जिसका संसर्ग उस दृश्यसे होता है।

विटेमिन 'ए' के रवे

[लेखक—श्री जगेश्वरदयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०, बीकानेर]

विटेमिन हमारे शरीरके लिये बहुत आवश्यक समझे जाते हैं। यदि भोजनमें इनकी कमी होती है तो भाँति-भाँतिके रोग हो जाते हैं।

विटेमिन 'ए'

हमारे भोजनमें विटेमिन 'ए' की कमी होने पर शारीरिक वृद्धि रुक जाती है, शरीरके अन्दर संक्रामक रोगोंसे

बचनेकी शक्ति कम हो जाती है, रचौंदा अथवा अन्य नेत्र-रोग हो जाते हैं। इसकी कमीके कारण बच्चोंके दाँत देर में निकलते हैं।

यह सोयाबीन, घी, दूध, मक्खन मलाई, मछलीके तेल, अंडा, मांस (विशेष कर यकृत), पालक, टमाटर, अंकुरित चने, गोभी, मटर और गाजर आदिमें पाया जाता है।

अधिक गर्मी पाने पर यह नष्ट हो जाता है।

रवे

अभी तक इस विटेमिनके जो प्रयोग किये जाते थे उनके लिये विटेमिनके गाढ़े घोल काममें लाये जाते थे।
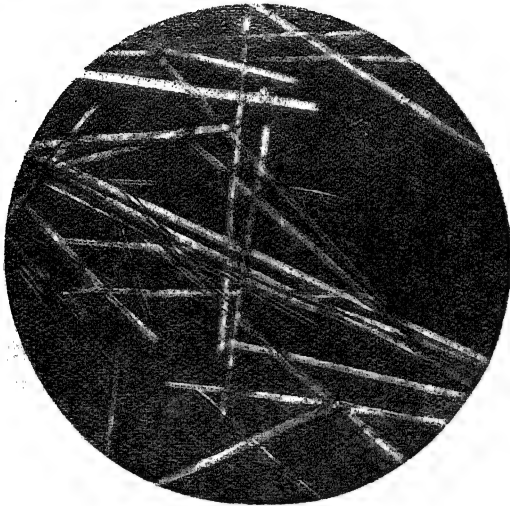
विटेमिन 'ए' के रवोंका चित्र

इनके द्वारा जो परिणाम प्राप्त होते थे वे बहुत विश्वास-जनक नहीं कहे जा सकते थे क्योंकि विटेमिनके घोलमें कुछ अशुद्धियाँ (impurities) भी रह जाती थीं। अभी तक प्रतिशत विशुद्ध घोल नहीं बन सका।

अमरीकाके डाक्टर हैलम्स ने एक तरीका ईजाद किया है जिसके द्वारा विटेमिन 'ए' के रवे तैयार किये जा सकते हैं। इनका रंग हलका पीला होता है, इनका द्रवाङ्क इतना कम है कि इनको सूखे बर्फ़ (dry ice – solid co_2)
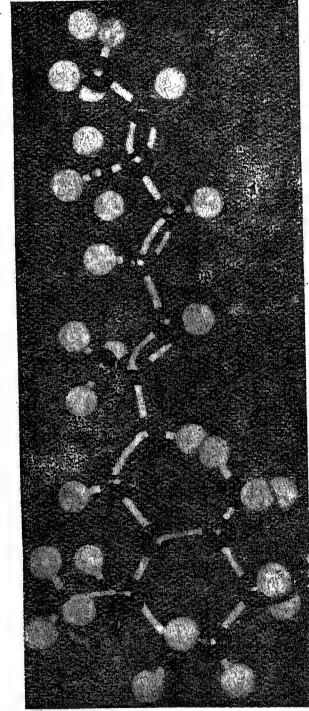
विटेमिन 'ए' के अणु का चित्र काली गेंदें कार्बन परमाणु, सफ़ेद गेंदें हाइड्रोजन परमाणु और भूरी गेंद ऑक्सीजन परिमाणु हैं।

पर रक्खा जाता है अब इसका विशुद्ध घोल भी बन सकता है और इसका सङ्गठन भी मालूम हो सकता है। उन्होंने इसका सूत्र (formula) क२० उ३० ओ निर्धारित किया है। अणुका चित्र नीचे दिया जाता है।

मिट्टीमें संचित रूपसे विद्यमान स्फुरेत (फॉसफ़ेट)

[ले०— श्री राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी०, एल० टी०]

सरकारी कृषि अन्वेषणालयकी वार्षिक रिपोर्टका कथन है कि मिट्टीमें संचित रूप स्फुरेत तथा मिट्टीके रासायनिक स्वभाव और स्फुरिकाम्लके लवणोंमें पारस्परिक सम्बन्धके विषयों पर अभी लोगोंका उतना ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है जितना कि होना चाहिए।

नोषजन (नाइट्रोजन) प्राप्त करनेके अब अनेक साधन

हमको मिल रहे हैं तथा अब हमको पहलेकी अपेक्षा इस बातका अच्छा ज्ञान हो गया है कि भिन्न-भिन्न प्रकारके नोषजन-साधनोंको पौधोंके लिये कैसे काममें लाया जाय। एक भ्रम इस बातका है कि कहीं नोषजनीय तथा पांशुज खादके बुद्धिहीनता-सहित व्यवहारसे मिट्टीमें विद्यमान और प्राप्त खनिज पदार्थ विशेषतः स्फुरेत जिसकी प्राप्ति नाइट्रोजनकी अपेक्षा सीमित है, चुक न जायँ।

यदि फसलोंकी पैदावार बढ़ानेके लिए हमें मिट्टीके पदार्थोंको पूर्ण रूप तथा उपयुक्त रीतिसे काममें लाना है तो हमको मिट्टीके भिन्न-भिन्न स्वभावके कारणों-को पूर्णतया समझ लेना चाहिये। मिट्टीपर प्रयोग द्वारा प्राप्त निर्दिष्टोंके आधार पर क्षेत्र निर्दिष्टोंके आपेक्षिक अध्ययनकी आवश्यकता है। भारतीय मिट्टी पर वैज्ञानिक निर्दिष्टोंकी एक बृहत् मात्रा है, परंतु यह निर्दिष्ट तीस वर्षके पृथक्-पृथक् अध्ययनों तथा भिन्न-भिन्न रीतियोंके उपयोगसे संचित हो गए हैं, ऐसे निर्दिष्टोंके आधार पर जो प्रथम हों, मिट्टीके भिन्न प्रकारोंमें उत्पादकताका आन्तरिक सम्बन्ध निर्धारित करना तथा उसके क्षेत्रीय स्वभावका अर्थ निकालना अशुद्ध है।

भारतीय मिट्टियाँ भिन्न हैं

वे सिद्धान्त और रीतियाँ, जो नम प्रदेशोंकी मिट्टियोंके लिए उपयुक्त ज्ञात हुए वास्तविक परिवर्तनोंमें बिना भार-तीय मिट्टियोंके लिये अनेक उदाहरणोंमें अब उपयुक्त प्रतीत हुए हैं। पिंडोरिया मिट्टी जो युरोपीय स्टैण्डर्डसे फस्ल पैदावारके लिए अनुपयुक्त कही जायगी उत्तम फस्ल देती हुई देखी गई। अधिक भारतीय मिट्टियोंको, जो फस्ल देती है, नोषजन तथा स्फुरेत मिलावटें एक ऐसे श्रेणीकी है जो नम प्रदेशोंको मिट्टियोंमें न्यून पाई जाने वाली कही जायँगी। भारतीय मिट्टियोंकी नोषजन ग्रहण शक्ति नम प्रदेशोंकी मिट्टोके ग्रहण शक्तिसे कहीं अधिक है। भारतीय मिट्टियाँ, जिनमें चूनेकी मिलावट योरोपियन स्टैण्डर्डसे इतनी कम समझी जायगी कि ऊपरसे और अधिक मिलानेकी आवश्यकता बताई जायगी, चूनेकी चिकित्साके उत्तरदाई नहीं हैं तथा कुछ मिट्टियोंमें चूनेकी प्राथमिक मिलावट भी फसलोंके लिये बहुत अधिक है।

धरतीकी बार-बार तथा गहरी जोताई बोवाई, जिसका अधिकांश लोग विश्वासरूपसे पक्ष करते हैं, देशके अल्प भागोंमें तथा अल्प अवस्थाओंमें फस्ल लानेमें प्रभावहीन ही नहीं वरन् हानिकारक भी पाई गई है। फिर भारतके समस्त भागोंमें फसल उगानेके लिए धरतीकी पृष्ठतली जोताई बोआई उपयुक्त नहीं रही। नदी तथा कूप-जल जिसकी नमकीन मिलावट कुछ भागोंकी कुछ मिट्टीकी सिंचाईके लिए अत्यधिक है, और भागों कुछ मिट्टोकी सिंचाईके लिए बिना कष्ट व्यवहरित किया जाता है, तथा समस्त प्रकारकी मिट्टियोंने जब सींची गई तक एकही श्रेणीकी लवणता तथा गरिमताका प्रदर्शन नहीं किया। उन खेतों तथा उन अवस्थाओंमें भी जहाँ नमीकी प्रधानता एक सीमित अवयव नहीं है खादोंके उपयोगका उत्तर भिन्न-भिन्न है। जहाँ पृथ्वी को खादों द्वारा उपजाऊ बनानेकी चिकित्साका उत्तम है। यह स्पष्ट है कि गन्नेकी पैदावारके रूपमें खादोंका अधिक उत्तम होना सम्भव है।

मिट्टीके विज्ञानका अध्ययन

आधुनिक कालमें मिट्टीके विज्ञानमें उन्नति अधिक हुई है। मिट्टीके सम्बन्धमें यह पुराना विचार कि यह एक सदाके लिए स्थिर पदार्थ है जो अपने वायुजलकी अवस्थाओंके समतुलित है अब ठीक नहीं समझा जाता। मिट्टी अब एक परिवर्तनशील पदार्थ समझी जाती थी जिसमें सदा परिवर्तन होता रहता है। पूर्वकालमें पिंडोरिया मिट्टीके जल सम्बन्धी खाद व अन्य उपचारोंसे इसके प्रक्रिया-संबंधी महत्त्वशील गुण इस मिट्टीके पूर्ण रूपसे समझी जाती थी। पर अर्वाचीनकालमें ऐसी मिट्टी प्राकृतिमें रवारूप दिखाई गई हैं और पिंडोरिया रवेके अवयव भागोंकी रचना स्पष्ट कर दी गई हैं। पिंडोरिया मिट्टीके गुण न केवल इसके अणु मात्रसे निर्धारित किये जाते हैं जैसाकि पहले हुआ करता था वरन इसके खनिज तथा रासायनिक सम्ब-न्धी गुणोंसे तथा स्फटिक। पिंडोरिया खनिजोंके स्वभाव मिट्टियोंके ज्ञानमें अधिक वृद्धि करने तथा उस ज्ञानके प्रयोगात्मक उपयोगके पहिले हमको मिट्टीके विज्ञानमें आधु-निक वृद्धियोंके रूपमें तथा अन्वेषण एक ही प्रकार रीतियों को व्यवहारमें लाते हुए आपेक्षिक अध्ययन करना आव-श्यक है।

मिट्टी वर्गों की व्याख्याके लिए तथा इस बातका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए कि हमारी भारतीय मिट्टियाँ मिट्टी वर्गीकरणके आधुनिक संसार स्कीममें किस दर्जे तक ठीक उतरती हैं। अपनी देशके मिट्टियों की एक नियमबद्ध आपेक्षिक अध्ययनकी आवश्यकता है। एक बार भी यदि प्राकृतिक मिट्टीके स्वभावों तथा उसके वर्गीकरणका निर्धारण हो जाता तो भौतिक, रासायनिक तथा सूक्ष्म जैविक क्रियाओंके, जो मिट्टी कृषि तथा मिट्टी चिकित्साकी भिन्न रीतियोंके परिणाम स्वरूप है, स्वभाविक परिणामोंका अन्दाज़ा करना तथा मिट्टी प्रबन्धके उपयुक्त स्कीमोंका बनाना सरल हो जायगा।

साइकिलकी कहानी

[ले०—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०]

साइकिलकी लोकप्रियता अभी थोड़े ही दिनोंसे आरंभ हुई है। इंगलैण्डमें साइकिलका प्रचार सन् १८८५ से बढ़ा जब पहिले-पहल दो बराबर पहियोंकी साइकिल बनी। इसके पहले बाइसिकिलोंमें एक पहिया बहुत बड़ा और एक बहुत छोटा रहता था। सन् १८८५ से धीरे-धीरे साइकिल बनानेके उद्योगमें बड़ी उन्नति हुई है और अब तो इस उद्योगमें करोड़ों लोहार और कई हजार कारीगर काम करते हैं। भारतवर्षमें अभी तक साइकिल बनानेका कोई कारख़ाना नहीं खुला है, परन्तु यदि ऐसा कोई कारखाना खुल जाय तो काफ़ी लाभ हो सकता है। इंगलैंडमें अधिकतर साइकिलें कवेण्ट्रीमें बनती हैं और थोड़ी-बहुत बरमिंघममें भी। कवेण्ट्रीमें बाइसिकिल बनानेके कई एक कारख़ाने हैं। एक ज़माना था जब साइकिल साढ़े चार सौ रुपयेमें बिकती थी, परन्तु अब तो यह चालीस-पचास रुपयेमें मिल जाती है और जापानी साइकिल तो पन्द्रह बीस रुपयेमें ही बिकती है।

साइकिलके सस्ता होनेका कारण यह है कि उसके बनानेके लिए अब विशेष मशीनें बन गई हैं जिनसे समयकी बचत होती है। दूसरा कारण यह है कि साइकिल बनानेके अब कई एक कारख़ाने खुल गए हैं और प्रतियोगितासे वस्तुएँ सस्ती हो ही जाती हैं।

इस लेखमें यह बताया जायगा कि साइकिल बनाए जाने वाले कारख़ानोंके भीतर क्या-क्या होता है और आशा की जाती है कि साइकिल पर चढ़ने वालोंको तथा अन्य पाठकोंको भी यह लेख रोचक प्रतीत होगा।

साइकिलके निर्माणमें निम्न धातुके बने भाग लगते हैं—एक फ्रेम जो इस्पातकी बनी हुई कई नलियोंके जोड़नेसे बनता है; एक चिमटा जिसमें अलग पहिया नाचता है; एक हैंडिलबार जिसके घुमानेसे साइकिल मुड़ती है; दो क्रैंक; दो पीडल जिस पर पैर रखते हैं, (उसको कुछ लोग भूलसे पैडिल कहते हैं) एक चेन; दो दाँतीदार चक्र; दो पहिये और प्रत्येक पहियाके लिये सिंपडिल (धुरीक) इनके अतिरिक्त पहिये, क्रैंक और पीडलोंमें बालबेयरिंग होता है। साइकिलमें इन भागोंके अतिरिक्त मड-गार्ड और ब्रेक भी होते हैं।

साइकिलके विभिन्न अंग कैसे बनते हैं

साइकिल-निर्माणका वर्णन पहले क्रैंकसे आरम्भ करते हैं। मेरे साथ आइये, पहले लोहारखानेमें चलिये, यहाँ पर कई एक वाष्प संचालित बलिष्ठ हथौड़ोंका काम देखनेमें आयेगा। लोहार भट्टीसे लाल इस्पातका छड़ उठाता है और गरम इस्पातको निहाई पर रखता है खटका उमेठते ही हथौड़ेका सिर छड़पर धमाधम गिरता है। क्षण भरमें ही लाल इस्पात क्रैंककी शकलका हो जाता है। यह क्रैंक अभी बिल्कुल बैठ कर तैयार नहीं हो गया। इसे अन्य मशीनोंसे चिकना करना पड़ता है, और चिकना करनेके बाद इसमें पिंडल, धुरी और कॉटरपिनके लिए छेद करना पड़ता है। पहले इन क्रैंकोंमें छड़ पहिना कर मालाकी तरह बना दिया जाता है और इसी प्रकार गुथ जाने पर क्रैंक पारी-पारीसे एक वेगसे नाचते हुए कटर (रुखानी) के नीचे पहुँचता है। इस यन्त्रसे क्रैंकके पार्श्वमें जो कुछ अनावश्यक धातु रहती है वह कट जाती है। अब मालाको उलट करके फिर उसी यन्त्रमें डाला जाता है। इस प्रकार दूसरी ओर भी क्रैंक चिकना और उचित आकारका हो जाता है। इसी प्रकार दूसरी मशीनसे क्रैंकके

दोनों पृष्ठ स्वच्छ और चिकने किये जाते हैं। इन दो मशीनोंसे जितने समयमें पहले सिर्फ एक क्रैंक बनता था उतने ही समयमें अब चार सौ क्रैंक तैयार होते हैं। इसके अतिरिक्त एक क्रैंक अब दूसरेके पूर्णतया अनुरूप होता है। हथौड़ेसे बनानेमें यह सचाई नहीं आती थी। अब या तो तप्त लाल इस्पातको पीटकर फिर खराद कर तैयार किया जाता है या उसे ठोस इस्पातके छड़से खराद कर बना लिया जाता है।

कप और कोन हमेशा इस्पातकी छड़को खराद कर बनाया जाता है। यदि कोई व्यक्ति खड़ा होकर इस खरादके कामको देखे तो चित्त प्रसन्न हो जाय। एक लम्बे छड़को मशीनमें धीरे-धीरे ढकेलते हैं और वह तेज़ीसे नाचता हुआ आगे बढ़ता है। इसके बगलमें 'मीनार' नामक एक यन्त्र रहता है जिसमेंसे कई एक रुखानीकी तरह यंत्र निकले रहते हैं। छड़के आनेके साथ ही मीनारमें बँधे यंत्र पारी-पारीसे अपना काम करने लगते हैं। जब एक यंत्र काम कर चुकता है तो दूसरा उसकी जगह पर आपसे आप आ जाता है। इस प्रकार पहले एक रुखानी छड़में गहरा गड्ढा करके कपका भीतरी भाग बना देती है, फिर दूसरी रुखानी इसके ऊपरसे फालतू माल काट देती है और तीसरी रुखानी कपसे छड़को अलग कर देती है। तब कप एक संदूकमें गिर पड़ता है। तब खटसे छड़ ठीक उतना ही आगे बढ़ता है जितनेमें एक कप बनता है और दूसरा कप पहलेकी तरह बनने लगता है। एक मशीनसे एक दिनमें ऐसे सैकड़ों कप बनकर तैयार होते हैं और कारीगरको केवल समय-समय पर नया छड़ पेसनेमें ही अपना हाथ लगाना पड़ता है।

प्रत्येक कप, कोन और स्पिंडल (धुरी) की पूरी जाँचकी जाती है और यदि वे पूर्णतया सच्चे नहीं होते हैं तो रद्दी करके निकाल दिये जाते हैं।

इसके बाद कप कोन आदि कड़े कर दिये जाते हैं जिसमें वे छर्रेकी रगड़से शीघ्र ही घिस न जायँ। परन्तु कप आदिको भीतरसे बाहर तक कड़ा नहीं किया जाता, नहीं तो उनके चटकनेका डर रहता है। इसलिये उनको कोयलेके चूर में बन्द किया जाता है जो स्वयं एक बड़े बक्समें भरा रहता है। इस बक्सको भट्टीमें डाल दिया जाता है। गरम होने पर लोहा कोयलेको थोड़ी मात्रामें सोख लेता है और कड़ा हो जाता है।

वस्तुतः इस क्रियासे यह इतना कड़ा हो जाता है कि यदि इस पर रेती भी चलाई जाय तो कोई असर नहीं होता। छर्रा होके कारण साइकिल इतनी आसानीसे चलती है। इसके बनानेका ढंग अत्यन्त रोचक है। इस्पातसे छर्रा खराद कर बनाया जाता है। खरादनेके बाद यह कुछ खुरदरा होता है। इसलिये उसको बक्समें डाल कर मशीनसे झकझोरा जाता है। इस बक्समें एमटी पत्थरका चूर और तेल भी रहता है जिसमें बराबर रगड़ खाते-खाते छर्रा सच्चा गोल भी हो जाता है और उसमें चिकनाहट भी आ जाती है। उसके बाद ये छर्रे चलनियोंमें लुढ़काये जाते हैं और यदि कोई छर्रा पूर्णतया गोल नहीं होता तो ये चलनियाँ उनको रद्दीकी टोकरीमें फेंक देती हैं। इस प्रकार केवल सच्चा छर्रा ही चलनियोंसे बाहर निकलता है और विभिन्न नामके छर्रे विभिन्न बक्सोंमें जा गिरते हैं। ये छर्रे इतने कड़े और साथ ही चिमड़े होते हैं कि उसे साधारण लोहे पर रख कर हथौड़ेसे खूब पीटने पर छर्रा लोहेमें धँस जाता है पर टूटता नहीं।

फ्रेम

विशेष मशीनोंसे इस्पातकी नलियोंको पहले ठीक नाप कर काट लिया जाता है फिर लग और बाटम-ब्रैकेट नामक संधियोंके छेदोंको तथा अगले पहियेके चिमटेके माथेके भीतरी छेदोंको खराद पर किया जाता है। जब फ्रेम तैयार करना होता है तो लगोंमें नलियोंको पहिना दिया जाता है और उन्हें एक विशेष होल्डरमें, जिसे जिग कहते हैं, रख दिया जाता है। तब कारीगर बरमीसे एक छेद करके पिन पहिना देता है। इस प्रकार पीतलके जोड़नेके लिये फ्रेम तैयार हो जाता है। पीतलसे जोड़नेके लिये कारखानेमें कई एक भट्टियाँ होती है और प्रत्येक भट्ठी पर एक लोहार नियुक्त रहता है। वह पारी-पारीसे एक-एक फ्रेम हैंडिलबार या चिमटाको उठाता और भट्ठीमें लाल करता है। फिर जोड़ पर वह कल्छुलसे सोहागा गिराता है। सोहागा आँच से पिघल जाता है और प्रत्येक कोनेमें पहुँच जाता है। फिर इन जोड़ों पर पीतलका चूर छिड़क दिया जाता है। आँच के कारण पीतल पिघल जाता है और जहाँ-जहाँ सोहागा

लगा रहता है वहाँ तक फैल जाता है। इस प्रकार जोड़ इतना मज़बूत हो जाता है कि खराब-से-खराब सड़क पर साइकिलको दौड़ाने पर भी ये जोड़ नहीं खुलते।

पीतलसे जोड़नेके काम केवल बहुत होशियार कारीगरोंके ही सुपुर्द किया जाता है क्योंकि यदि जोड़को आवश्यकतासे अधिक गरम कर दिया जाय तो पीतल जल जाता है और यदि कम गरम किया जाता है तो पीतल अच्छी तरहसे पकड़ता नहीं।

हैंडिलबारोंके छेदमें पहिले बालू भर दिया जाता है और फिर उनको लाल किया जाता है। तब उन्हें साँचेपर रखकर साँचेके अनुसार मोड़ देते हैं। बालूके रहनेसे हैंडिलबार पिचकने नहीं पाता। इसके बाद साफ़ किया जाता है जो कार्य आगे बताया जायगा।

बालूकी बौछार

हैंडिलबारको बालूकी बौछारसे साफ किया जाता है जिससे कि फालतू सोहागा कट न जाय और यदि किसी स्थान पर फालतू पीतल हो तो वह घिस जाय। पहले इस कामको रेतीसे रगड़ कर किया जाता था परन्तु अब संकुचित वायुसे संचालित बालूकी बौछार इतना ज़ोरसे काम पर छोड़ी जाती है कि वह चिकना हो जाता है। यद्यपि इसे बालूकी बौछार कहते हैं, तो भी वस्तुतः यह बालू नहीं होता। इसमें इस्पातके नन्हें-नन्हें छर्रे रहते हैं। देखनेमें छर्रा बालूके समान ही जान पड़ता है। उससे चोट खाकर क्षण भरमें ही लोहा चमकने लगता है और सब करकराहट जाती रहती है। इस कामको एक ऐसे कोठरीमें किया जाता है जिसकी दीवार इस्पातकी चादरसे मढ़ी जाती है, क्योंकि यदि इस कामको साधारण पलस्तर वाले मकान में किया तो पलस्तर तुरन्त नष्ट हो जायगा। इस्पातकी चादरें भी कुछ समयमें घिस जाती है परन्तु इतना शीघ्र नहीं कि विशेष असुविधा हो। अपनी रक्षाके लिये कारीगर खुद इस्पातका टोप पहने रहता है जिसमें दो छेद आँखके लिये कटे रहते हैं। इन छेदों पर मोटे शीशे लगे रहते हैं जिसके द्वारा वह देख सकता है। उन नेत्रोंमें होकर स्वच्छ वायु पंप द्वारा भेजी जाती है जो उनके पाससे होती हुई दूर निकल जाती है। इस प्रकार कारीगर बराबर स्वच्छ वायुमें श्वाँस लेते हैं और बालूका कोई कण उनके अन्दर घुसने नहीं पाता। कुछ घंटोंके बाद वह शीशा जो आँखोंके सामने लगा रहता है घिस कर अंधा हो जाता है और तब उसको बदलना पड़ता है।

चमकनेके बाद फ्रेमको जाँचकी जाती है और यदि आवश्यकता होती है तो उसको सीधा किया जाता है। इस कामके लिए फ्रेमको एक विशेष जिगमें बाँध दिया जाता है। जहाँ कहीं भी फ्रेम कुछ टेढ़ा जान पड़ता है वहाँ उसे ब्लो-पाइपसे गरम करके सीधा कर दिया जाता है। इस कार्यके बाद फ्रेम इतना सच्चा हो जाता है कि पहिया और हैंडिलबार लगानेसे साइकिल चल सकती है।

सीधा करनेके बाद फ्रेम और हैंडिलबारको पॉलिश करने वाले विभागमें भेज दिया जाता है। वहाँ पर पत्थरके चक्के बड़ी तेज़ीसे नाचते रहते हैं। इनसे छुआनेसे फ्रेम चमकने लगता है। कारीगर बड़ी सावधानीसे फ्रेमको पॉलिस करता है जिसमें कोई अंश छूट न जाय। परन्तु इस मशीन पर कारीगर फ्रेम आदिके प्रत्येक भागको क्षण भर ही रखता है अन्यथा वह घिस कर कट जा सकता है। पत्थरके चक्के इतने ज़ोरसे नाचते रहते हैं कि फ्रेमको उनसे छुवातेही चिनगारियोंकी बौछार निकलती है जो फुलझड़ीसे भी अधिक सुन्दर होती है। इन फुलझड़ियोंके साथ-साथ धातु और पत्थरके असंख्य कण निकलते हैं जो कारीगरोंके स्वास्थ्यके लिये अति हानिकारक होते हैं। इसलिए प्रत्येक चक्केके नीचे चोंगा लगा रहता है जो एक नली द्वारा बिजलीके पंखेसे संबद्ध रहता है। बिजलीके पंखेके चलनेसे हवा इस चोंगेमें घुसती रहती है और इस प्रकार दूर निकल जाती है जिससे पॉलिश करने वाला कमरा बराबर साफ-सुथरा रहता है।

अब देखना चाहिए कि पॉलिश किये हुए फ्रेममें क्या किया जाता है। इसे पहले मिट्टीके तेल या तारपीनसे भरी टंकीमें डुबोया जाता है। टंकी गरम करनेके लिए नीचे तन्दूर लगा रहता है। इस टंकीमें डुबानेसे फ्रेमसे सब तेल ग्रीज़ आदि दूर हो जाता है। इसमेंसे निकालनेके बाद कारीगर फिर फ्रेमको हाथसे नहीं छूता। मिट्टीके तेल या तारपीनके उड़ जाने पर फ्रेमको एनामेलकी टंकीमें डुबाया जाता है। निकालने और फालतू एनामेल निथर जाने पर उसे एक तंदूरमें लटका दिया जाता है। यहाँ पर तीन

मिनट तक ३५० डिगरीके आँच पर सूखता है। ठीक इसी प्रकार फ्रेम तोन या चार बार रंगा जाता है। और अन्तिम बार छोड़कर प्रत्येक बार रंगनेके बाद इसे बारीक प्यूमिससे पत्थर पर रगड़ा जाता है जिससे अंतमें एनीमल अत्यंत चिकना और चमकदार चढ़ता है। आँचमें सूखनेके कारण एनामेल केवल शीघ्र ही नहीं सूखता, यह कुछ पिघलकर सब जगह बराबर हो जाता है और इस प्रकार सतह सब जगह बराबर मोटाईकी हो जाती है। यदि ब्रशसे पोतकर फ्रेमको रंगा जाता तो सतह कभी भी इतनी चिकनी और चमकदार न होती।

अन्तमें चतुर कारीगर फ्रेम पर सोना या रंगसे रेखाएँ खींच देते हैं। यह काम केवल आँखसे देखकर और सदा हाथसे ही किया जाता है। कारीगर ब्रशको रंगमें डुबाता है और तब उसे एक किनारे फ्रेम पर रखकर सोधी रेखा खींचता है। अभ्यासके कारण वह इस कामको इतनी सफ़ाईसे कर सकता है कि देखने वालोंको आश्चर्य होता है। जहाँ-कहीं सोना लगाना होता है वहाँ अधिक बखेड़ा करना होता है। इसके लिए उस जगह फ्रेमको आइसिंग-ग्लाससे रँगना पड़ता है (आइसिंग ग्लास मछलीसे निकली हुई एक विशेष सरेस है)। फिर उस पर कारीगर सोनेकी पन्नी चिपका देता है। जहाँ पर सोनेकी रेखाओंकी आवश्यकता होती है वहाँ पन्नीके ऊपर एनामेलसे रंग दिया जाता है। एनामेलके सूखने पर सोनाको धो डालनेसे सोना केवल एनामेलके नोचे ही रह जाता है। अंतमें एनामेलको धो डाला जाता है और इस प्रकार वांछित स्थानोंमें सोना दिखाई पड़ने लगता है।

पहिया बनाना

पहिया बनानेका काम बड़ा हो चित्ताकर्षक होता है। इन्हें बनाने वाली मशीनमें कोई एक रोलर रहते हैं। जब इस्पातकी पत्ती इस मशीनमें जाती है तो इन रोलरोंसे पत्तियोंके किनारे दुहरे हो जाते हैं और पत्ती बीचमें गहरी हो जाती है इन रोलरोंसे निकलनेके बाद पत्ती दूसरी मशीनमें पहुँचती है जहाँ वह गोल होकर पहियेकी तरह हो जाती है। ज्योंहो यह भरपूर गोल हो जाती है त्योंहो एक काटने वाला यन्त्र इसे शेष पत्तीसे काटकर अलग कर लेता है। फिर एक छोटी पत्तो इसमें जड़ दी जाती है जिसमें पहिया खुलने न पावे। तब इसे एक विशेष जिगमें रख कर इसमें तीलियोंके लिये छेद किये जाते हैं। छेदको एक दाँतीदार चक्रकी सहायतासे बराबर-बराबर दूरी पर रक्खा जाता है।

तीलियोंमें छोटे-छोटे पीतलके निपल कसे जाते हैं जिनका सिर इतना बड़ा होता है कि पहियाके छेदमेंसे वे पार नहीं चले जा सकते। पहले तीलियों पर चूड़ी डाई पेर कर काटा जाता था परन्तु अब उन पर केवल ठप्पा मार दिया जाता है जो इतने सच्चे होते हैं कि चूड़ी बिल्कुल सच्ची बनती है। इस प्रकार तीलीकी चूड़ी बातकी बातमें बन जाती है।

पहिया फिट करने वाला दो-चार तीली हबमें पहिना देता है और इन तीलियोंको पहियामें निपल द्वारा लगा देता है। तब वह तीलियोंको इतना कसता है कि हब लगभग केंद्रमें आ जाय। तब एक-एक करके तीलियाँ पहिनाई और कसी जाती हैं। अंतमें पहियेको एक विशेष जिगमें रखकर पहियाको सच्चा किया जाता है। कुछ ही मिनटोंमें पहिया सच्ची हो जाती हैं।

चेन वाले दाँतोदार चक्रको ठप्पा मार कर इस्पातकी मोटी चादरसे काट लिया जाता है। इसके बीचमें छेद करके इसे एक मशीनकी धुरी पर पहिनाते हैं। तब इसको नचाते हैं, और किनारेके पास रोलरसे दबाते हैं। इससे इसमें गहरा खाँचा पड़ जाता है जिस पर चेन बैठता है। फिर इसको दुबारा ठप्पेमें डाल कर बीचका फालतू माल निकाल दिया जाता है जिससे यह हल्का और सुन्दर हो जाता है। अब इस पर दाँती काटी जाती है जो काम मिलिंग मशीन पर किया जाता है।

क़लई

बाइसिकिलके कई भागों पर क़लईकी जाती है जिससे उन पर मुर्चा न लगे और वे सुन्दर जान पड़े। क़लई करनेके पहले उन पर अच्छी तरह पॉलिश कर लिया जाता है और तब उनको कास्टिक सोडाके घोलमें डाल कर उनकी सब चिकनाहट काट दी जाती है। इस्पातको निकेल अच्छी तरह पकड़ता नहीं है। इसलिये पहले इस्पात पर ताँबाकी क़लई की जाती है और तब निकेलकी। क़लई करनेके विभागमें

टंकियोंका दो समूह रहता है जिसमेंसे एक ताँबेको कलईके लिये रहता है और दूसरा निकेलके लिए। इनमें उपर्युक्त रासायनिक घोल भरे रहते हैं। कामको इन टंकियोंमें लटका कर इनमें बिजली भेजी जाती है जिससे ताँबा या निकेल बाइसिकिलके पुर्ज़े पर चढ़ जाता है। एक या दो मिनटमें इस्पात पर काफ़ी ताँबा चढ़ जाता है। निकेल वाले घोलसे यह आवश्यक है कि या तो वस्तुको बराबर हिलाया जाय या घोल बराबर चलता रहे। इस अभिप्रायसे या तो पंप द्वारा घोलको बराबर चलता हुआ रखवा जाता है या क़लई किये जाने वाले भागोंको चेनसे लटका कर रक्खा जाता है और चेन बराबर चलता रहता है।

क़लई हो जानेके बाद पुर्ज़ोंको पॉलिश करने वाले विभागमें भेजते हैं। यहाँ पर कारीगर एक ज़ोरसे नाचते हुए कपड़ेके कई परतोंसे बने हुए पहिये पर वस्तुको धीरेसे दबाता है इससे खूब चमक आ जाती है। पॉलिश करने वाले पहियों पर विशेष चूर्ण लगाते जाते हैं जिससे पॉलिश और बढ़िया आती है।

साइकिलको फिट करना

साइकिलके विभिन्न पुर्ज़े तैयार हो जाने पर गोदाममें रक्खे जाते हैं। फिर आवश्यकतानुसार उन पुर्ज़ोंको एक दूसरेमें फिट करके बाइसिकिल तैयारकी जाती है। यह काम अक्सर ठेका पर किया जाता है। जितनी साइकिलें कारीगर फिट करेगा उतनी ही मज़दूरी उसे मिलेगी। एक कारखानेमें फिट करनेका काम निम्न क्रमसे किया जाता है। पहले बॉटम ब्रैकेट या धुरी और बेयरिंग फिट किया जाता है, फिर धुरी पर क्रैंक लगाया जाता है और चने वाला दाँतीदार चक्र कसा जाता है। तब पीछे वाले पहिएको लगाते हैं; फिर पीछे वाला मड गार्ड; तब चेन चढ़ाते हैं और इसे आवश्यकतानुसार तानते या ढीला करते हैं। इसके बाद सैडिल फिट कसते हैं तब अगला पहिया कसते हैं और मड गार्ड लगाते हैं। स्टियरिंगको फिट करके हैंडिलबार लगाते हैं। अन्तमें ब्रेक दुरुस्त करते हैं। इस काममें एक घंटेसे लेकर दो घंटे तक लगता है। यह इस पर निर्भर है कि पुर्ज़े ढीले फिट होते हैं या कसे। इसके बाद साइकिल परीक्षकके पास जाती है जो सावधानीसे इसकी जाँच करता है। हर एक पहिएको नचा कर वह देखता है। ब्रेककी हचक और फ्रेमकी सच्चाईकी भी वह पूरी जाँच करता है। सारांश यह कि वह हर प्रकारकी त्रुटियोंको पकड़नेकी कोशिश करता है। यदि इसे कोई भी दोष दिखलाई पड़ता है तो वह एक पुर्जा पर ब्योरा लिख कर मशीनमें बाँध कर फिट करने वालेके पास मशीनको लौटा देता है जिसमें वह उसे ठीक कर दे। परन्तु यदि मशीन पूर्णतया दोष-रहित निकली तो उसे गोदाममें रख दिया जाता है जहाँसे वह आर्डर आने पर बाहर भेजी जाती है।

घरेलू डाक्टर

[संपादक— डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरखप्रसाद आदि]

अँभौरी (prickly heat or miliary)— गरमी और बरसातके दिनोंमें, विशेष कर बरसातके दिनोंमें, अधिक पसीनेके कारण इसकी शिकायत होती है। शरीरमें लाल नन्हें-नन्हें दाने निकल आते हैं जिनमें पीछे जल भर आता है। इसमेंसे कुछका जल पीछे दूधिया हो जाता है। इनके कारण बड़ी खुजली और चुनचुनाहट मचती है। इससे असुविधाके अतिरिक्त अन्य कोई हानि नहीं होती, परन्तु खुजलानेके कारण कहीं-कहीं फोड़े निकल आ सकते हैं या घाव हो जा सकता है। यदि खुजली और चुनचुनाहट इतनी हो कि रातको नींद न आये तो स्वास्थ्य को भारी धक्का लग सकता है।

चिकित्सा—ऐसा अनुमान किया जाता है कि अधिक पसीना आनेसे स्वेदन-नलिकाएँ (sweat glands) भठ जाती हैं और इसीसे सब परेशानी होती है। इसलिए ऐसा उपाय करना चहिए कि बहुत पसीना हो ही नहीं। कपड़ा हलका पहनना चाहिए। यथासंभव ठंढे स्थान में रहना चाहिए। गरम पदार्थ (जैसे गरम दूध, या चाय) न पीना चाहिए। हलका भोजन करना चाहिए। शराब वग़ैरहसे परहेज़ करना चाहिए। पेट साफ़ रहे (दस्त अच्छा हो)। यदि स्वयं रसोई बनाना हो तो यथा-संभव हवादार जगह, या पूरब-पच्छिम की दिशा में खुली कोठरी में रसोई बनानी चाहिए। पूरब और पच्छिम दोनों ओर जँगला या दरवाज़ा रहने से कोठरी में हवा बराबर चलती रहेगी (यह उत्तरी भारतवर्ष के लिए है जहाँ हवा साधारणतः पूरब से या पच्छिम से बहती है)। चूल्हे के ऊपर धुआँ और गरम हवा निकलने के लिए कोई प्रबंध (हो सके तो चिमनी) रहे।

खुजली और चुनचुनाहट दूर करने के लिए ठंढे पानी से स्नान करना चाहिए; पानी में थोड़ी-सी अमोनिया मिला ली जाय तो और भी आराम मिलेगा। कारबोलिक साबुन (carbolic soap) का इस्तेमाल भी अच्छा है। घाव होने का डर हो तो किसी कीटाणुनाशक का उपयोग करना चाहिए, जैसे आध सेर पानी में एक (चाय वाला) चम्मच भर लाइसोल (lysol) मिला कर उसे रुई से अँभौरी हुए स्थानों पर लगाना अच्छा होगा। लाइसोल के बदले निम्न घोल का भी प्रयोग किया जा सकता है—

तूतिया	½ तोला
गुलाबजल	१ पाव

शरीर के पोंछ डालने के बाद (और यदि लाइसोल या अन्य कोई कीटाणुनाशक लगाना हो तो उसे लगाने और शुद्ध रुई या स्वच्छ कपड़े से पोंछ डालने के बाद) अँभौरी वाले स्थानों पर निम्न बुकनी रुई से लगाओ। इससे अँभौरी जल्द मिटती है।

सैलिसिलिक ऐसिड	५ ग्रेन
गंधक	५ ग्रेन
कपूर (अच्छी तरह चूर्ण किया)	५ ग्रेन
बोरिक ऐसिड	२ ड्राम
जिंक ऑक्साइड	२ ड्राम
स्टार्च	४ ड्राम

अँभौरीको अम्हौरी, अँधोरी और घमौरी भी कहते हैं।

अक्षरअंधता (word blindness)—इस रोग में लिखी हुई भाषा समझ में नहीं आती। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति हो और उसे यह रोग हो जाय तो उससे यह कहने पर कि हाथ उठाओ वह समझ जायगा और हाथ उठा देगा, परंतु यदि उसे लिखकर दिया जाय "हाथ उठाओ" तो वह समझ न सकेगा कि क्या मतलब है। बात यह है कि बोली समझने की शक्ति और लिखी हुई भाषा समझनेकी शक्ति मस्तिष्कके भिन्न-भिन्न भागोंमें केंद्रित हैं, और जब अर्बुद (tumour) के निकलनेके कारण, या अन्य किसी कारणसे मस्तिष्कका केवल एक छोटा-सा अंश खराब होता है तो संभव है कि लिखित भाषा समझनेकी शक्तिवाला केन्द्र खराब हो जाय, पर अन्य बातोंमें मस्तिष्क ठीक काम करता रहे।

अक्षरअन्धता वस्तुतः वाणीहीनता (aphasia) का एक भेद है और वहाँ इसके सम्बन्धमें अन्य बातें बतलाई जायँगी।

अकड़बाई (spasms)—शरीरकी नसोंका पीड़ाके सहित एक बारगी खिंचनेको अकड़बाई कहते हैं (शब्द सागर)। अकड़बाई, ऐंठन या कुड़ल शरीरके किसी भी मांसपेशीमें हो सकती है, परन्तु पैरोंकी मांसपेशियोंमें अधिक होती है। ऐंठन केवल अल्पकालिक हो सकती है या यह प्रायः सदा ही वर्तमान रह सकती है, या बीच-बीचमें कुछ समय तक यह शांत भी हो जा सकती है। कुछ रोगोंमें, जैसे अपस्मार (मिरगी), धनुष-टंकार (टिटेनस tetanus) या हिस्टीरियामें, या स्ट्रिकनीन (strychnine) नामक विष खा लेने पर प्रायः सारे शरीरमें ऐंठन उत्पन्न होती है। कुछ लोगोंके मुखकी नसोंमें ऐंठन होती है जिसके कारण रह-रह कर मुँह विकृत हो जाता है या आँखें फड़क उठती हैं।

ये लक्षण साधारणतः नाड़ी-मंडलके किसी रोगसे उत्पन्न होते हैं। देखो नाड़ीमंडल, हिस्टीरिया और तांडव।

अगियासन (herpes)—संक्षिप्त शब्द-सागरके अनुसार अगियासन एक चर्म-रोग है जिसमें झलकते हुये

फफोले निकल आते हैं। "मोतिया" (चिकेन-पॉक्स chicken-pox) की भाँति कभी-कभी होठों पर, माथे पर, बगलमें, छाती पर, कमर पर, कूल्हे हर, जांघ पर झलके पड़ जाया करते हैं। न्यूमोनिया, मलेरिया और अन्य तेज ज्वरोंमें भी होठों या माथे पर इस प्रकारके झलके पड़ जाते हैं। साधारण लोग इसे मकड़ी मलना कहते हैं। वे समझते हैं कि ये दाने मकड़ीके मलनेसे निकल आते हैं। विदेशमें भी जनसाधारणकी कुछ ऐसी ही धारणा है। उदाहरणतः इसे अँग्रेजीमें spider-lick (=मकड़ी चाटना) कहते हैं। परन्तु यह धारणा आधार-रहित है; इन दानोंका मकड़ीसे कोई भी संबन्ध नहीं है।

आजकल यह रोग दो प्रकारका माना जाता है। (१) ज्वरजनित अगियासन (febrile herpes) जो ज्वरों के विषके असरसे होता है। (२) मेखलाकार अगियासन (herpes zoster या shingles) जो अकसर पीठसे आरम्भ होकर बढ़ते-बढ़ते पेटी (मेखला) की तरह चारों ओर हो जाता है, परन्तु शरीरके अन्य भागोंमें भी हो सकता है। इस रोगमें किसी नाड़ी-केन्द्रमें उग्र प्रदाह (acute inflammation) हो जाता है और जहाँ-जहाँ उस नाड़ीकी शाखायें फैली रहती हैं वहाँ-वहाँ पहले पीड़ा होती है और फिर झलके निकल आते हैं।

कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है जैसे मोतिया (चिकेन-पॉक्स) और अगियासन दोनों एक ही कारणसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि मोतियाके छूतसे अगियासन होते देखा गया है।

उपरोक्त दो प्रकारके अगियासनके अतिरिक्त कुछ लोग एक तीसरा भेद भी मानते हैं - जननेंद्रियका अगियासन (herpes genetalis)। यह पुरुषों और स्त्रियों की जननेन्द्रियों पर होता है और इसमें पकनेका विशेष डर रहता है। यदि स्वच्छता पर ध्यान दिया जाय और नीचे लिखी चिकित्साकी जाय तो इस अगियासनमें भी कोई विशेष चिंताकी बात नहीं है, परन्तु डरकी बात यह रहती है कि रोग शायद असलमें आतशक हो और वह केवल अगियासन समझ लिया जाय।

यदि अगियासन बार-बार एक ही स्थान पर हो तो समझना चाहिए कि सड़े दाँत या नाकके भीतरके घाव, या इसी प्रकारके किसी केन्द्रसे कीटाणु आ रहे हैं।

चिकित्सा—यदि दाने पके नहीं तो वे आप-से-आप आठ-दस दिनमें सूख जाते हैं। दाने पकने न पायें इस अभिप्रायसे वह बुकना जो अँभौरी पर लगानेके लिए बतलाई गई है यहाँ भी ठीक होगी। उससे तेज दवा है—

सैलिसिलिक ऐसिड	२ ग्रेन
बोरिक ऐसिड	१०० ग्रेन

यदि किसी फफोलेमें पकनेके लक्षण दिखलाई पड़ें तो वहाँ इसीका प्रयोग करना चाहिए। यदि पीड़ाके कारण बेचैनी बहुत हो तो ऐसपिरिन खाया जा सकता है। यदि माथे और पलकों पर झलके निकलें तो डाक्टरसे इलाज करानी चाहिए, क्योंकि ऐसी दशामें आँखके गोलक पर झलके निकल सकते हैं। इनसे आँखमें फूली पड़ जा सकती है और आँख फूट भी जा सकती है।
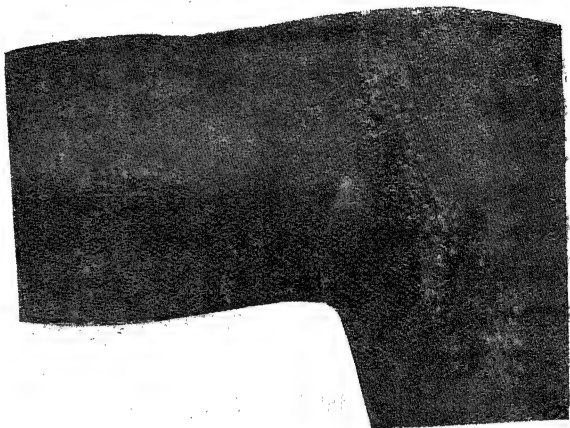
अगियासन।
इस रोगमें झलकते हुए फफोले निकल आते हैं।

अछवानी—अजवाइन, सोंठ तथा मेवोंको पीसकर घृतमें पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियोंको पिलाया जाता है (शब्दसागर)। अलवाँतियों (प्रसूता स्त्रियों) को अछवानी पिलानेका रिवाज भारतवर्षमें बहुत प्रचलित है। लोगोंका विश्वास है कि अजवाइन और सोंठसे गर्भाशयका विकारमय रक्त निकल जाता है और मेवों तथा घृत

से बल उत्पन्न होता है। अछवानी पिलानेके परिणामकी जाँच वैज्ञानिक रीतिसे अभी नहीं की गई है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि अछवानीके मेवे और घी शीघ्र नहीं पचते। पाश्चात्य पद्धतिके अनुसार अलवाँतीको बहुत हल्का भोजन मिलना चाहिए। अन्यथा पाचन शक्तिको स्थायी हानि पहुँच सकती है। इसीलिए पाश्चात्य सिद्धांतानुसार अछवानी न पिलाना चाहिए।

स्त्री बलिष्ठ हो तो संभवतः अछवानीसे हानि न भी होगी, परन्तु निर्बल स्त्रियोंकी बात दूसरी है। कुछ लोग तो छुआछूतके विचारसे साधारण भोजन बारह दिन तक बन्द कर देते हैं और अलवाँतीको केवल पूड़ी और अछवानी खानेको देते हैं। अवश्य ही यह बहुत अहितकर है।

अजवायन (Carum Copticum)—अजवायन या अजवाइनको संस्कृतमें यवानिका या यवानी कहते हैं, बँगलामें जोवान, और गुजरातीमें यवान। यह एक बीज है जो हलके खाकी रङ्गका और चावलकी तरह लम्बा परन्तु चावलसे बहुत छोटा होता है। इसका पौधा सारे भारतवर्षमें और विशेषकर बंगालमें लगाया जाता है। अजवाइनमें एक विशेष महक होती है और इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है। यह मसाले और दवाके काममें आता है। इसका सत थाइमल (thymol) के नामसे अँग्रेज़ी दवाखानोंमें मिलता है। अजवायनमें थाइमलके सब गुण वर्तमान रहते हैं। थाइमल कृमिनाशक (anthelmintic) और कीटाणुनाशक (antiseptic) है। देखो थाइमल।

अजीर्ण (indigestion or dyspepsia)—अजीर्ण, अपच या बदहज़मी वह रोग है जिसमें आहार ठीक तरहसे पचता नहीं है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि पेटमें भारीपन या पीड़ा होती है। साधारणतः यह अनुचित आहार या पोषण-संस्थान (आमाशय, अँतड़ी इत्यादि) के किसी रोगके कारण होता है। अधिक उग्र अवस्थाओंमें अकसर पेटकी पीड़ाके अतिरिक्त मिचली या वमन भी होता है और स्वास्थ्यमें भी गड़बड़ी हो जाती है। वस्तुतः अजीर्ण कोई विशेष रोग नहीं है। यह केवल एक लक्षण है जो कई रोगोंमें दिखलाई पड़ता है।

पेटकी पीड़ाके अतिरिक्त अकसर भूख भी मर जाती है, जीभ गन्दी रहती है और मुँहमें बुरा स्वाद जान पड़ता है। अकसर कोष्ठबद्धता (क़ब्ज़) भी रहती है, परन्तु इसके बदले कभी-कभी पेटझरी (अतिसार) की शिकायत रहती है। अजीर्णके मुख्य कारणों पर विचार नीचे क्रमानुसार किया जायगा।

मुँह और गलेके भीतर ख़राबी—दाँतोंके टूट जाने पर या उनके सड़े रहने पर अकसर अजीर्ण होता है क्योंकि ऐसी दशामें भोजन अच्छी तरह चबाया नहीं जा सकता। यदि नक़ली दाँत लगे हों और वे ठीक न बैठते हों तो भी यही परिणाम हो सकता है। जब दाँत सड़े रहते हैं या मसूड़े सड़े रहते हैं तो मवाद और कीटाणुओंके बराबर पेटमें पहुँचते रहनेके कारण भी अजीर्ण होता है। गलेमें या नाकके अन्दर कहीं घाव रहने पर भी इसी प्रकार विषैले पदार्थ पेटमें पहुँचते हैं और अजीर्ण उत्पन्न करते हैं।

बुरी आदतें—आवश्यकतासे अधिक खाने, या शराब पीने, या रातमें देर करके खानेकी आदतोंसे अकसर स्थायी अजीर्ण उत्पन्न होता है। आमाशयको भी विश्राम-की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यदि भोजन थोड़े-ही-थोड़े समय पर किया जाय तो आमाशय कभी भी खाली नहीं होने पाता और उसे विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता। केवल रातकी अंतिम घड़ियोंमें, जब रातका खाना प्रायः पच जाता है, उसे कुछ समयके लिए विश्राम मिल सकता है। यदि रातमें बहुत देर करके भोजन किया जाय तो इसमें भी बाधा पड़ जाती है। दो भोजनोंके बीचमें समय-समय पर थोड़ा-सा कुछ खा लेनेकी बान भी बहुत बुरी है; इससे अकसर अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है। कभी देरमें, कभी पहले, भोजन करना भी बुरा है।

यह सिद्ध हो चुका है कि शोक, चिंता, क्रोध या अन्य मानसिक संक्षोभके समय पाचक रस (gastric juice, आमाशयिक रस) कम बन पाता है और इससे भी पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। शीघ्र भोजन करना या भोजन करते समय पढ़ते रहना या अन्य किसी विचार में मग्न रहना भी हानिकारक है। बिना अच्छी तरह चबाये भोजन निगल जाना तो हानिकारक है ही।

अधिक चटपटा (मसालेदार) भोजन या बहुत सोडा-वाटर या लेमनेड पीनेसे, या अधिक चाय या कहवा पीनेसे अम्लाधिक्य होता है। बहुत आइस-क्रीम या बर्फ़से उदरक-कला-प्रदाह होता है।

आमाशयके दोष—जब आमाशयकी मांसपेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं तो आमाशय कुछ बड़ा हो जाता है और इसकी पचानेकी शक्ति कम हो जाती है। ऐसी दशामें स्थायी अजीर्ण उत्पन्न होता है। थोड़ा भी भोजन करनेके बाद पेट भारी मालूम पड़ता है। वह व्यक्ति कुछ दिनोंमें दुबला हो जाता है क्योंकि काफ़ी भोजन पच नहीं पाता। (जब आमाशयकी मांसपेशियोंकी कार्यशीलता किसी कारण साधारणसे बहुत अधिक बढ़ जाती है तब भी थोड़ा भोजन करने पर ही पेट भारी मालूम पड़ता है और दो ही तीन घण्टे बाद फिर ज़ोरकी भूख लगती है।)

कभी-कभी आमाशयिक रस साधारणसे भिन्न गुणोंका बनता है। जब आवश्यकतासे कम हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड बनता है, या एकदम नहीं बनता, तो अम्लाल्पता (hypochlorhydria or achylia gastrica) उत्पन्न होती है। कम हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड (नमक का तेज़ाब) बननेसे एक तो पेपसिन अपना काम नहीं कर पाता। इससे आहारका प्रोटीन वाला अंश पच नहीं पाता। फिर आमाशयके भीतरकी चीज़ें बहुत जल्द अँतड़ीमें चली जाती हैं, क्योंकि हाइड्रोक्लोरिक ऐसिडके अभावमें आमाशयसे अँतड़ीमें खुलने वाला द्वार (pylorus) ढीला रहता है। अम्लाल्पताके कारण अकसर पेटझरी (अतिसार) उत्पन्न होती है। रक्ताल्पता (अनीमिया anæmia) नामक रोगमें अकसर अम्लाल्पता और इसके कारण उत्पन्न अजीर्ण रहता है। आमाशयके भीतर कैनसर (cancer) होने पर भी अम्लाल्पता होती है। अम्लाल्पतामें भूख मिट जाती है, पेट भारी जान पड़ता है और मिचली आती है। बहुत शीघ्रतासे खाने पर या अपच पदार्थ खाने पर भी अकसर उसी प्रकारका अजीर्ण होता है जिस प्रकारका अम्लाल्पतासे उत्पन्न होता है।

यदि आमाशयिक रस आवश्यकतासे अधिक बनता है तो अम्लाधिक्य (hyperchlorhydria) उत्पन्न होता है। इससे अकसर पेटमें पीड़ा होती है। कभी-कभी पीड़ा नहीं भी होती; केवल छातीकी हड्डियोंके नीचे जलन-सी जान पड़ती है। अकसर खट्टे डकार भी आते हैं। साधारणतः भूख अच्छी लगती है, परन्तु वायु (बार-बार हवा खुलने) की शिकायत रहती है और कब्ज़ रहता है।

नाड़ी-मंडलके रोगोंका प्रभाव—स्नायु-दौर्बल्य (neurasthenia) के रोगसे ग्रस्त व्यक्तियोंको अकसर अजीर्णकी भी शिकायत रहती है, परन्तु एक दिन वह भला-चंगा जान पड़ता है और दूसरे दिन उसे काफ़ी तकलीफ़ हो सकती है। भूख साधारणतः मिट जाती है, वायु बहुत खुलता है और भोजन करनेके बाद पेट बहुत भारी जान पड़ता है। मिचली भी आ सकती है, परन्तु साधारणतः वमन नहीं होता है। हिस्टीरियामें किसी भी प्रकारका अजीर्ण हो सकता है।

भोजनके आध घंटे पहलेसे लेकर एक घंटे बाद तक आराम करनेसे स्नायु-दौर्बल्य वालोंको लाभ होता है।

पाचक अवयवोंका रोग—आमाशय-कला प्रदाह (gastritis) तथा आमाशय-क्षत (gastric ulcer) या पक्वाशय-क्षत (duodenal ulcer) में जो अजीर्ण उत्पन्न होता है उसका वर्णन इन रोगोंके सम्बन्धमें किया जायगा। पक्वाशय-क्षतमें पीड़ा होती है जो भूखके कारण उत्पन्न हुई (hunger pains) जान पड़ती है और थोड़ा कुछ खा लेनेसे कुछ समयके लिए मिट जाती है। आमाशय-क्षतकी अपेक्षा पक्वाशय-क्षतमें वमन कम होता है, परन्तु रक्त-स्रावकी संभावना अधिक होती है। पक्वाशय-क्षतमें आमाशयिक रस साधारणतः अधिक बनता है।

यदि अधेड़ व्यक्तियोंमें स्थायी अजीर्ण उत्पन्न हो और उनका स्वास्थ्य पहले अच्छा रहा हो तो डाक्टरसे अच्छी तरह जाँच करानी चाहिए और पता लगा लेना चाहिए कि आमाशयमें कैनसर (cancer) तो नहीं हो रहा है। इस रोगमें ऐसी पीड़ा होती है जैसे कोई कुतर रहा हो। यह पीड़ा आरम्भमें पेटके ऊपरी भागमें जान पड़ती है। पीछे कैनसर जिस स्थान पर होता है उसीके अनुसार लक्षण उत्पन्न होते हैं।

कभी-कभी अजीर्ण यकृत (liver) या पित्ताशय (gall bladder) के रोगोंके कारण भी उत्पन्न होता

है। पित्ताशय-प्रदाहके आरम्भमें स्थायी अजीर्ण भी एक साधारण लक्षण है। पीछे पथरी भी बन जाती है। इसलिए यदि अजीर्णके कारणका ठीक पता लग जाय और पित्ताशयको निरोग करनेके लिए चिकित्साकी जाय तो पथरीका बनना रोक जा सकता है।

यकृत प्रदाह (cirrhosis of the liver) में भी अजीर्ण होता है, जिसका मुख्य लक्षण यह होता है कि सबेरे मिचली आती है और वमनके साथ रक्त भी आ सकता है। यकृतके कैनसर (cancer) होने पर भी अजीर्ण हो सकता है। इसमें पीड़ा प्रायः स्थायी होती है और पेटके ऊपरी दाहिने भागमें जान पड़ती है। पीठमें भी कुछ पीड़ा रहती है। रोगी शीघ्र दुबला हो जाता है। पांडु-रोग (jaundice) उग्र रूपमें हो आता है।

पेटके भीतरके अंगोंके अन्य रोगोंमें भी अजीर्ण हो जाता है। इस प्रकारके रोग कई हैं जिनमें उदरशूल (intestinal colic और colitis), उदरक-कलायक्ष्मा (tuberculous peritonitis), अँतड़ोका कैनसर (cancer of the intestines) आदिकी गणना है। उदरशूल जब वृहदंत्र प्रदाह (colitis) के कारण होता है तो पीड़ाके अतिरिक्त अतिसार भी रहता है और मलके साथ आँव और रक्त भी गिरता है। यह रक्त चटक लाल रङ्गका होता है।

पाचन-क्रियासे सम्बन्ध रखनेवाले शरीरके अंगोंमेंसे एक महत्वपूर्ण अंग क्लोम (pancreas) है। इसमें रोग हो जानेसे अजीर्ण प्रचंड रूप धारण करता है। उन रोगियोंमें जिनको दीर्घकालिक क्लोम-प्रदाह रहता है भूख मिट जाती है। नाभिके पास तीव्र पीड़ा भी हो सकती है। धीरे-धीरे रोगी घुल जाता है। मलकी परीक्षा करनेसे पता चलता है कि आहारका वसा वाला अंश बिना पचे ही निकल आता है। प्रोटीन और करबोहाइड्रेट भी ठीकसे नहीं पचते।

उपांत्र प्रदाह—कभी कभी उपांत्र (appendix) में स्थायी (chronic) प्रदाह होनेके कारण अजीर्ण होता है जो साधारण उपचारसे अच्छा नहीं होता। ऐसे अजीर्णका लक्षण यह है कि भोजन करनेके थोड़े समय बाद पेटके ऊपरी भागमें पीड़ा होती है, परन्तु यह पीड़ा अधिक नीचे नाभि तक भी हो सकती है और वहाँसे नीचे और पेटकी दाहिनी ओर फैल सकती है। कभी-कभी पीड़ा भोजन करनेके दो-तीन घंटे बाद भी उभड़ती है। पीड़ा साधारणतः सोडियम बाइकारबोनेट आदि क्षारमय औषधोंसे नहीं मिटती और न यह कुछ और खा लेनेही शान्त होती है। मिचली भी आती है और कभी-कभी वमन भी होता है। कब्ज़ भी रहता है। पेटको बारी-बारीसे सब जगह दबाने पर उस स्थानमें पीड़ा जान पड़ती है जिधर उपांत्र है।

प्रणालीविहीन ग्रन्थियों (ductless glands) का प्रभाव—कभी-कभी किसी प्रणाली-विहीन ग्रंथिके किसी रोगके कारण अजीर्णके लक्षण उत्पन्न होते हैं। उदाहरणतः ऐडिसन-रोग (Addison's disease उ० दे०) में बार-बार वमन होता है। इसी प्रकार थाइरॉयड-ग्रंथिकी अतिक्रियाशीलतामें, जो घेघा रोगमें उपस्थित रहती है, अकसर अजीर्ण भी वर्तमान रहता है। अधिकतर बार-बार बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके ही पेट झरता है।

रोगग्रस्त केन्द्रोंके विष—कभी-कभी अजीर्ण उग्र रूपमें वर्तमान रहता है यद्यपि अन्य मार्गमें कहीं भी रोग नहीं रहता। ऐसी दशाओंमें अजीर्ण ऐसे स्थानीय या सर्वव्यापी कारणोंसे होता है जो मस्तिष्कके उन केन्द्रों पर अपना कुप्रभाव डालते हैं जो आमाशय या अंत्रकी नाड़ियोंका संचालन करते हैं। उदाहरणतः गुर्दोंके स्थायी रोगोंमें कुछ विषाक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो रक्त-धारामें मिल कर सर्वत्र पहुँचते हैं। इनसे मिचली और अतिसार उत्पन्न होता है। रक्ताल्पता और क्षय रोगोंमें अजीर्ण तथा गर्भवती स्त्रियोंका वमन संभवतः ऐसे ही किसी कारणसे होता होगा। अकसर मस्तिष्कके भीतर अर्बुद (ट्यूमर tumour) बनने पर भी वमन होता है जिसके समयमें और भोजन करनेके समयमें कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

अजीर्ण होनेका धोखा—कुछ रोगोंमें अजीर्णका धोखा हो सकता है यद्यपि उनका अजीर्णसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उदाहरणतः, हृदशूल (angina) में पेटके ऊपरी भागमें तीव्र पीड़ा उत्पन्न हो सकती है। मूत्रमार्गमें पथरी रहने पर भी जो पीड़ा होती है वह अकसर

उदरशूल-सी ही जान पड़ती है। न्युमोनिया या प्ल्युरिज़ी (pleurisy) में भी अजीर्णकी तरह पेटके ऊपरी भागमें पीड़ा हो सकती है।

बच्चोंका अजीर्ण रोग—बच्चोंमें अजीर्ण रोग प्रायः सदा ही आहारकी गड़बड़ीसे उत्पन्न होता है।

अजीर्णसे बचनेके उपाय—उचित और बँधे समय पर भोजन करना चाहिए। दाँतोंमें कोई रोग हो तो उसकी दवा तुरंत करानी चाहिए। भोजनको अच्छी तरह चबाना चाहिए और धीरे-धीरे खाना चाहिए। भोजनके पहले और पीछे कुछ समय तक आराम करना भी बहुत अच्छा है। भोजनके समय या भोजन करनेके घंटे, डेढ़ घंटे-के भीतर अधिक पानी न पीना चाहिए। अधिक पानी पीनेसे आमाशय-रस पतला पड़ जाता है और इसलिए पाचन क्रिया ठीक रीतिसे हो नहीं पाती।

कोष्ठबद्धतासे बचना चाहिए (दे० कोष्ठबद्धता)। मदिरा और तमाखू दोनों बुरे हैं। कुछ लोगोंका ख़्याल है कि तमाखू पीनेसे पाचनशक्ति बढ़ती है, परन्तु यह ग़लत है। जिन्हें अम्लाधिक्य या आमाशय-क्षत अथवा पक्वाशय-क्षतका डर हो उन्हें तो कभी भी तमाखू न पीना चाहिए।

चिकित्सा—यथासंभव ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि बिना दवाके ही अजीर्ण अच्छा हो जाय। सरल और लघु मात्रामें भोजन करना चाहिए। अन्य वस्तुओंकी मात्रा घटा कर दूध-दहीकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए, परंतु दूधको गाढ़ा न किया जाय। नमक भी कम खाया जाय। कभी-कभी उपवास करना भी अच्छा है। अकसर इतने ही से अजीर्ण अच्छा हो जाता है। परंतु यदि पीड़ा या बेचैनी अधिक हो तो निम्न औषधोंका प्रयोग किया जा सकता है।

(१) अम्लाधिक्य—यदि अम्लाधिक्यकी शिकायत हो, खट्टे डकार आयें, कलेजा जलता-सा जान पड़े, तो सोडियम बाइकारबोनेट (sodium bicarbonate) से आराम मिलता है। चायके चम्मचसे नाप कर एक भरपूर चम्मच सोडा पानीमें घोल कर पीना चाहिए। इससे अकसर तुरंत आराम मिलता है, क्योंकि इससे अम्लता कट जाती है। तो भी इसका प्रति दिन सेवन अच्छा नहीं है; हाँ, कभी-कभी सोडा खानेमें कोई डर नहीं रहता। जब उग्र लक्षण मिट जायँ तो आमाशय-की प्रकुपित कलाकी शान्तिके लिए निम्न नुसखा उचित होगा।

बिसमथ कारबोनेट	१२० ग्रेन
कंपाउंड पाउडर ऑफ़ ट्रैगाकैंथ	६० ग्रेन
स्पिरिट ऑफ़ क्लोरोफ़ॉर्म	२ ड्राम
ग्लिसरिन	२ ड्राम
कंपाउंड इनफ़्यूज़हन ऑफ़ जेनटियन (gentian)	६ आंउस

खाना खानेके थोड़ा समय पहले आधा आउंस (४ चाय वाले चम्मच भर) पीना चाहिए।

अजीर्णके लिए लेफ़्टिनैंट करनल जी० टी० बर्डवुड ने अपनी प्रैक्टिकल बाज़ार मेडसिन्समें निम्न नुसखे उपयोगी बतलाया है।

(१) अजवाइन	१ भाग
सेंधा नमक	१ भाग
हींग	१ भाग
छोटी हड़ (हर्रे)	१ भाग

सबको खूब बारीक चूर्ण करो। खूराक—१ से २ ग्रेन तक (दो से ४ रत्ती तक)।

(२) सोंठ, सौंफ़, छोटी हड़, काला नमक और नमक बराबर-बराबर मात्रामें लेकर मिलाओ। खूराक—१० से ३० ग्रेन (२० से ६० रत्ती), खाना खानेके बाद। ये दवाएँ अम्लाल्पतामें विशेष उपयोगी होंगी।

(२) वायु—आहार पच कर तीन चार घंटेमें अँतड़ीमें चले जानेके बदले जब आमाशयकी कमज़ोरीके कारण बहुत समय तक वह आमाशयमें ही पड़ा रह जाता है तो वह सड़ने लगता है, या इसमें खमीर उठती है। इससे वायु बनता है जो गुदा द्वारा निकलता है। कभी-कभी भोजनके साथ आवश्यकतासे अधिक हवा पेटके भीतर भी चला जाता है और इससे भी वायुकी शिकायत हो जा सकती है, परन्तु इस दशामें अजीर्णके अन्य कोई लक्षण नहीं रहते।

चिकित्सा—परहेज़से भोजन करना चाहिए। बहुत अधिक मात्रामें तरकारी, या भात, या दाल, या रोटी न

खानो चाहिए। दूध, दही, मट्ठा आदिका सेवन अच्छा है। भोजनके साथ जल न पोना चाहिए। कब्ज़से बचना चाहिए। ऐसा व्यायाम बराबर करना चाहिए जिससे पेट मज़बूत हो जाय। पेट पर मालिशसे भी लाभ होता है।

सोडियम बाईकारबोनेट और पाचकोंसे साधारणतः कुछ लाभ अवश्य होता है, परंतु यदि परेशानी ज़्यादा हो तो डाक्टरकी राय लेनी चाहिए।

(२) स्थायी अजीर्ण—ऊपर बतलाया जा चुका है कि अजीर्ण कई बड़ी बीमारियोंके कारण भी हो सकता है। इसलिए यदि परहेज़ आदिसे लाभ न हो तो डाक्टरका इलाज अवश्य करना चाहिए।

अति-आहार (overfeeding)—बराबर आवश्यकतासे अधिक खानेको अति-आहार कहते हैं। अधिकांश अधेड़ लोग जो इतने ग़रीब नहीं होते कि उन्हें खाने-पीनेमें तंगी हो, आवश्यकतासे अधिक खाते हैं। तीस वर्षकी आयु तक अधिक खानेकी बानसे विशेष हानि नहीं भी होती है, परन्तु इस आयुके बाद अति-आहारसे बड़ा अनर्थ होता है। मोटापा, मूत्रमें शक्कर उतरना, जिगर और गुर्देकी बीमारियाँ और अधिक रक्त-चाप आदि इससे उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए तीस वर्षको आयुके बाद विशेष संयमसे भोजन करना चाहिए जिसमें शरीरके पाचक अंगों-में (जिगर, गुर्दा इत्यादिमें) अति-परिश्रमसे रोग न हो जाय (देखो आहार)।

अतिचेतनता (allergy)—अतिचेतनता उस दशाको कहते जिसमें कोई व्यक्ति किसी विशेष वस्तु या वस्तुओंके इस्तेमालसे अस्वस्थ हो जाता है, यद्यपि उसी वस्तुसे अन्य व्यक्तियों पर कुछ भी असर नहीं होता। उदाहरणतः, एक व्यक्ति जब कभी मसूरकी दाल खाता था तो सारे बदनमें चुनचुनी पैदा हो जाती थी। एक दूसरा व्यक्ति जब कभी कानपुर जाता था, या उसकी रेल-यात्रा-में कानपुर स्टेशन भी पड़ता था, तो उसका दम फूलने लगता था। बहुत छान-बीनके बाद पता चला कि जब कभी वह ऐसे स्थानमें जाता था जहाँ चमड़ा बनता था तो उसकी यही हालत होती थी। कच्चे चमड़ेकी बदबू वह ज़रा भी बरदाश्त नहीं कर सकता था।

अतिचेतनताको कोई दवा नहीं है, यद्यपि ऐड्रिनैलिन, ऐफ़ेड्रिन या पेपटोन आदिके इनजेकशनसे यह वशमें रक्खा जा सकता है। जिस वस्तुसे बेचैनी होती है उससे परहेज़ करना चाहिए। अभी तक ठीक पता नहीं है कि अति-चेतनता क्यों और कैसे उत्पन्न होती है?

यदि कहीं नरम स्थानकी त्वचाको खरोंच कर वहाँ दाल, दूध, आदि कोई वस्तु लगा दी जाय तो उस वस्तुके लगाने पर त्वचा लाल हो जायगी जिसे वह व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। इस रीतिसे अकसर पता चल जाता है कि किस विशेष वस्तुसे उस व्यक्तिको बेचैनी होती है।

दमा, जलपुत्ती (urticaria), उकवत (eczema) और तृणजनित ज्वर (hay-fever) ये सब रोग भी अति चेतनताके ही विविध परिणाम हैं।

कुछ व्यक्तियोंमें अतिचेतनता जन्मसे वर्तमान रहती है, परन्तु कुछमें किसी मानसिक आघात या रोग या अस्वस्थताके पश्चात् उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियोंमें अति-चेतनता बच्चा जननेके बाद हो सकती है। एक यूरोपीय स्त्री प्रतिदिन एक सेब खाया करती थी, परन्तु प्रथम बच्चा पैदा होनेके बाद जब कभी वह सेब खाती थी तो वह बीमार पड़ जाती थी; यही नहीं, यदि वह सेबके पेड़के पास चली जाती थी तो बेहोश हो जाती थी।

ऐनाफ़ाइलैकसिस (anaphylaxis) भी एक प्रकारकी अति चेतनता है। कुछ (इन-गिने) लोगोंको एक बार सिरम (रक्तरस, serum) का इनजेक्शन देने पर लगभग १४ दिन बाद उनमें सिरमके लिए अतिचेतनता उत्पन्न हो जाती है। इस लिए उनको १४ या अधिक दिन बाद फिर सिरमका इनजेक्शन देनेसे शरीर पर चकत्ते निकल आते हैं और तेज़ बुखार आ जाता है। साँस लेनेमें बहुत कष्ट होता है और हाथ-पैर काँपने लगते हैं। कभी-कभी तो मृत्यु तक हो जाती है। अतिचेतनता सिरम देनेके १४ दिन बादसे लेकर वर्षों तक रह सकती है। दमाके रोगियोंको और उनको जिन्हें बार-बार जलपुत्ती उभड़ती है सिरमका इनजेकशन लेनेके पहले डाक्टरको बतला देना चाहिए कि उनको दमा या जलपुत्तीकी शिकायत रहा करती है।

अतिचैतन्य त्वचा (hyperæsthesia)—जब त्वचाको छूनेसे ही पीड़ा होती है तो कहा जाता है कि त्वचा अतिचैतन्य है। नाड़ीमंडलके कई रोगोंमें यह दशा उत्पन्न हो जाती है। हिस्टीरियामें रोगीकी त्वचा कहीं-कहीं अतिचैतन्य हो जाती है, विशेषकर छाती, पेट और पीठ पर। कई स्त्रियोंको रजोनिवृत्तिके समय अतिचैतन्य त्वचासे बेचैनी रहती है। शिरस्त्वचा (सिरकी चमड़ी) भी कभी-कभी अतिचैतन्य हो जाती है। कभी-कभी तो यह रोग इतना प्रचंड रूप धारण करता है कि सरका एक-एक बाल भारी जान पड़ता है।

यदि किसी बच्चेमें अतिचैतन्य त्वचा हो तो रिकेट्स (rickets अस्थि-दौर्बल्य) का संदेह करना चाहिए।

अतिनिद्रा रोग (sleeping sickness or trypanosomiasis)—यह रोग अफ्रीकामें होता है और ट्राइपैनोसोमा नामके अतिसूक्ष्म कीटाणुओंसे उत्पन्न होता है। रोगग्रस्त मवेशीका रक्त चूसते समय सीटसी मक्खी (tsetse fly) के शरीरके भीतर ये कीटाणु घुस जाते हैं। उसीके भीतर ये बच्चा जनते हैं और बढ़ते हैं। जब ऐसी मक्खी मनुष्यको काटती है तो कुछ कीटाणु मनुष्यके रक्तमें घुस जाते हैं। इसीसे मनुष्यमें अतिनिद्रा रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—कीटाणुग्रस्त मक्खीके काटनेके दो सप्ताहसे लेकर कई महीने पर प्रत्यक्ष लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। पहले रह-रह कर बुखार आता है, रोगी दुर्बल हो जाता है और रक्ताल्पता (anæmia) हो जाती है। गरदन तथा अन्य स्थानोंकी लसीका-ग्रंथियाँ फूल आती हैं (जिसे लोग कौड़ी उभड़ना कहते हैं)। त्वचा सूखी हो जाती है। कुछ महीनों या वर्षोंके बाद सुस्ती बहुत बढ़ जाती है और वह प्राय: सदा ही नींदमें डूबा रहता है। पीछे भोजन करनेके लिये भी वह अपनेसे जाग नहीं पाता और कभी-कभी तो मुँहमें कौर रक्खे-ही-रक्खे सो जाता है। कमज़ोरी बेहद बढ़ जाती है और वह बहुत दुबला हो जाता है। मृत्यु या तो कमज़ोरीके कारण या न्युमोनिया, आमातिसार या अन्य किसी रोगके कारण हो जाती है।

निद्राप्रद मस्तिष्क प्रदाह (encephalitis lethargica) दूसरा ही रोग है। इसमें बेहोशी-सी रहती है। इसका वर्णन मस्तिष्कके सम्बन्धमें दिया जायगा।

अतिपरिश्रम (over work)—एक सीमा से अधिक परिश्रम, चाहे यह मानसिक हो, चाहे शारीरिक, हानिकर सिद्ध होता है। अन्तमें शिथिलता उत्पन्न होती है। अतिपरिश्रमकी दवा विश्राम है। शारीरिक अतिपरिश्रममें विश्रामके साथ-साथ बदनकी मालिश होनी चाहिये। मानसिक अतिपरिश्रम या चिन्ताके कुपरिणामोंसे छुटकारा पाने के लिए यदि किसी नवीन और स्वास्थ्यप्रद स्थानमें, या पहाड़ पर कुछ दिन तक समय बिताया जाय तो अधिक उत्तम होगा। शक्तिवर्द्धक औषधों (tonics) से भी कुछ लाभ हो सकता है (देखो शक्तिवर्द्धक औषधें)।

अतिरक्त (plethora)—रक्तवाहिनियोंमें रक्तकी अधिकताको अतिरक्त कहते हैं। अतिरक्त वाले व्यक्तियोंका चेहरा (यदि वे गोरे हुये तो) अधिक लाल होता है। उनकी नाकसे खून अधिक आसानीसे गिरता है और अतिरक्त वाली स्त्रियोंका मासिक स्राव अधिक मात्रामें निकलता है। सर अकसर भारी जान पड़ता है। अधेड़ व्यक्तियोंमें अतिरक्त उपस्थित रहनेसे पक्षाघात (apoplexy) होनेका बहुत डर रहता है।

अतिरक्तकी दवा यह है कि आहार कम मात्रामें खाया जाय, मदिरासे परहेज़ किया जाय और व्यायाम किया जाय।

कुछ व्यक्तियोंके रक्तमें लाल रक्तकण साधारण से बहुत अधिक होते हैं। इस रोगको रक्तकण-बाहुल्य (polycythæmia या erythrocythæmia) कहते हैं। इसमें सर-दर्द, चक्कर, कर्णनाद, शीघ्र हाँफना आदि लक्षण रहते हैं। अकसर तिल्ली बढ़ी रहती है। फस्द खोलनेसे लाभ होता है। इस रोगमें भी कम खाना चाहिये और व्यायाम करना चाहिए।

फ़र या बालोंके कोट

[ले०—श्री राधाकृष्ण, बी० एस-सी, एल-एल० बी०]

विदेशोंमें जानवरोंके बालोंके कोटोंका बहुत रिवाज है। अधिक ठण्ड पड़ना भी इसका एक कारण है। बालोंके लिए व्यवसायी लोग दूर-दूर देशोंमें जानवरोंका शिकार करके उनकी खालें यूरोप और अमेरिका भेज देते हैं। पर इनका मूल्य अधिक होता है। अतः व्यापारी लोग असली बालोंकी जगह नकली वस्तुओंका कोट बनाकर असलीकी कीमतमें बेंचते हैं।

परन्तु जब तक विज्ञानकी काफ़ी उन्नति नहीं हुई थी असली और नकलीका ठीक पता चलाना कठिन कार्य था और भिन्न-भिन्न लोग एकही कोटके लिए भिन्न-भिन्न राय देते थे। उनकी राय कोई वैज्ञानिक परीक्षा पर निर्भर नहीं थी परन्तु अपने अनुभवके अनुसार अपनी-अपनी राय देते थे।

अमेरिकाके मैक्स बैकरैकने बालोंके विषयमें बहुत ही लगनसे काम किया और अमुक-अमुक स्थानोंके जानवरोंके बालोंके परिच्छेद (sections) लेकर उनकी स्लाइडें बनाई और एक स्लाइडकी दूसरी स्लाइडसे भिन्नता ध्यान-पूर्वक देखी। अनुवीक्षण यंत्र और वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा वे बालोंकी वास्तविकता शीघ्र ही मालूम करनेमें समर्थ होते हैं और स्लाइड देखकर यह बतला देते हैं कि वह किस जानवरके बालोंकी है और वह जानवर किस देशमें रहता था।

अमेरिकाका हाल ही का एक बहुत दिलचस्प किस्सा है। एक महिला उस दुकानदारके यहाँ, जहाँसे उन्होंने फ़र-का कोट खरीदा था, पहुँची और उस पर तीन लाख रुपयेका दावा करनेकी धमकी दी क्योंकि उस महिलाके गले पर एक लाल निशान दूकानसे ख़रीदे हुए कोटके पहिननेसे पड़ गया था। सौदागर ने बैकरैकको फोन द्वारा बुलाकर कोटकी वैज्ञानिक परीक्षा करनेके लिये कहा। महिलाको यह मालूम कर अचम्भा हुआ कि उसके गर्दन पर लाल निशान कोटके रंग और उसके लेवेण्डरके मिल जानेके कारण पड़ गया था। दूसरी खुशबूदार वस्तुका उपयोग करनेसे वह लाल दाग़ सदाके लिए फौरन ही दूर हो गया और वह दूकान-दार पर भरोसा करते हुए अपने घर खुशीसे वापस चली गई।

दो व्यापारियोंमें एक कोटके ऊपर झगड़ा होने लगा। एकका कहना था कि वह कोट रूसी जानवरोंके बालोंका बना है और दूसरेका कहना था कि कोट जापानी जानवरके बालोंका था। दोनोंने मामलेको किसी दक्ष व्यक्तिके पास भेजनेका निश्चय किया। कोटके बालोंकी वैज्ञानिक परीक्षा करनेके पश्चात् उसने बतलाया कि कोट न रूसी जानवरके बालोंका है और न जापानी, बल्कि वह कोट चीनी जानवरोंके बालोंका बना हुआ था। इसी प्रकार दक्ष वैज्ञानिकोंने अक्सर ऐसे झगड़ोंको निपटाया है।

बालोंकी परीक्षाके लिए बहुमूल्य यंत्रोंकी आवश्यकता होती है और इसके द्वारा बालोंको चौड़ाईमें छः हिस्से तक विभाजित कर सकते हैं। ऐसे बारीक हिस्सेमें विभाजित करने वाली मशीनको सूक्ष्म विभाजक या माइक्रोटोम कहते हैं। आप विचार कर सकते हैं कि कई हज़ार गुना बढ़ा कर ही देखनेसे हम बालोंके परिच्छेदके भीतरी बनावटको समझ सकते हैं तथा भिन्न-भिन्न बालोंमें अन्तर समझा सकते हैं—जैसे अँगूठेके निशानोंमें अनभिज्ञ मनुष्यको कोई अन्तर नहीं मालूम होता पर दक्ष व्यक्ति और पुलिसके विशेषज्ञ इन निशानोंके अन्तरोंको समझते हैं तथा गुनह-गारका पता चलानेमें सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार बालोंके परिच्छेदोंकी परीक्षा करने पर उनके सूक्ष्मसे सूक्ष्म अन्तर भी पता चल जाते हैं और उसकी सहायतासे यह मालूम किया जाता है कि अमुक बाल किस जानवर-का था।

बैकरैक ने एक बहुत बड़े धूर्तका पता चलाया। वह नकली बालोंके कोटोंको असली कहकर बहुत दिनोंसे विक्रय करता था और इसका पता किसीको नहीं चला। एक व्या-पारीको फ़रकी असलियत पर संदेह होनेसे कोटोंको उसने बैकरैकके पास परीक्षाके लिए भेजा। परीक्षासे यह ज्ञात हुआ कि साधारण बालोंका यह धूर्त महाशय ऐसे धात्विक रंगसे रंगते थे ताकि वह असली बहुमूल्य बाल मालूम

पड़े। यह रंग बालोंके ऊपरी सतहको तो रंग देता पर धातुके कारण यह अन्दर तक प्रवेश होनेमें असमर्थ था। इसलिए स्लाइडके बाहरी हिस्सेमें तो रंगका पता चला पर अन्दर ग़ायब था। अगर वह रंग बालोंका स्वाभाविक रंग होता तो अन्दर भी मिलता क्योंकि जानवरोंके स्वाभाविक बालोंमें प्राकृतिक रंग होता है और न कि धात्विक रंग। ये रंग धुलाने पर भी ग़ायब नहीं होते।

विलायतमें एक धनाढ्य पुरुषने बीमा कम्पनीके ऊपर लाख रुपयोंका दावा किया। उनका कहना था कि गोदाम जिसमें आग लगी थी बहुमूल्य बालोंसे भरा था। जले हुए बालोंकी राखकी परीक्षा द्वारा पुलिसको यह पता चला कि गोदाममें कीमती बाल नहीं रक्खे गये थे बल्कि उसमें खरहेके बाल थे। न्यायाधीश ने उस व्यक्तिको कम्पनीसे कुछ भी रुपया नहीं दिलाया और धोखा देकर और झूठ बोलकर रुपया वसूलनेकी चेष्टा करनेके लिए उन महाशयको कारागारमें भेज दिया।) आप इससे समझ सकते हैं कि विज्ञान न्यायमें भी कितना अधिक सहायक हो सकेगा।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

अत्यन्त चमकीला लोहा

न मुर्चा खानेवाला इस्पात जिसमें चाँदी या प्लैटीनमकी तरह स्थाई चमक होती है अभी हाल ही में मैसाचुसेट्सके टेकनॉलोजी इंस्टीट्यूटमें बना है। वहाँके वैज्ञानिक इस प्रकारका इस्पात बनाना चाहते थे कि उसमें किसी प्रकारका मुर्चा न लगे। अनेक प्रयोगोंके बाद उनको पता चला कि इस्पातमें थोड़ा-सा टिटेनियम मिलानेसे वह इतना मुर्चा-विरोधी हो जाता है कि नमकके पानीमें भी वह मुर्चा नहीं खाता। इसके अतिरिक्त इस्पातके बनानेके कई एक ब्यौरेको थोड़ा-बहुत बदल देनेसे और भी अच्छा इस्पात बना सके जिस पर खूब चमक आती है। यह चमक पूर्णतया स्थाई होती है।

नाव सड़क पर भी चलती है

एक चलने वाली नाव बनाई गई है जिसके नीचे पहिया निकला रहता है। ढालू तट पर आकर यह नाव अपने पहिएके भरोसे ज़मीन पर चलने लगती है और इसमें १६ आदमी बैठ सकते हैं। पानीमें नाव करीब ८ मील प्रति घंटाके वेगसे चल सकती है और आगे वाले पहिए ही पतवारका काम देते हैं।

गर्मीके दिनोंमें चैनसे सैर कीजिये

गर्मीके दिनोंमें मोटरकी सवारी करने वालोंको गर्मीके कारण बहुत तकलीफ़ होती है। परन्तु अब जमा हुआ कारबन डाइऑक्साइडकी सहायतासे मोटर खूब ठंडी रक्खी जाती है। जमा हुआ कारबन डाइऑक्साइड बर्फ़से कहीं अधिक ठण्डा होता है। एक डिब्बा जमा हुआ कारबन डाइऑक्साइड कई घंटे तक चलता है। इससे मोटरका भीतरी ताप-क्रम बाहरी ताप-क्रमसे ३० से लेकर ५० तक कम किया जा सकता है। छः-छः सेरका डिब्बा अब अमरीकामें बराबर बिकता है और पेटेण्ट किया हुआ यन्त्र बनाया गया है जिससे ऐसा डिब्बा लगा देनेसे मोटरको इच्छानुसार ठण्डा रक्खा जा सकता है।

मशीन है या डाक्टर

मशीनमें एकन्नी छोड़कर हैंडिल खींचने पर टिकट, सिगरेट या चॉकलेटका निकलना बहुतसे लोगोंने देखा होगा, परन्तु अब एक ऐसी मशीन बनी है जिसमें एकन्नी छोड़ कर हैंडिल खींचनेसे एक छपा पुर्जा मिलेगा। इस पर आपका ताप-क्रम और ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) छपा मिलेगा। इसके लिए बायें हाथको मशीनमें लगे हुए विशेष होल्डरमें कुछ क्षण तक रखना पड़ता है। अनुमान किया जाता है कि इन दिनों जब कि बहुतसे लोगोंको अधिक रक्त-चापकी शिकायत रहती है, ऐसी मशीनको जनसाधारणके आने-जानेके स्थानमें लगा देनेसे मशीनके मालिक को प्रतिदिन काफ़ी एकन्नियाँ प्राप्त हो जायँगी।

हीरेके समान कड़ा लोहा

विशेष इस्पातको बिजलीकी भट्टी गर्म करके इस प्रकारसे रखते हैं कि जिसमे ऑक्सिजन गैस न लगे। साधारण हवाके बदले (जिसमें ऑक्सिजन रहता है) इस भट्टीमें हाइड्रोजन और नाइट्रोजन रहता है। यह भट्टी करीब ७ फुट लम्बी है। एक ओरसे इस्पात इसके भीतर जाता है और दूसरी ओरसे निकलता है। बीचमें पहुँचते-पहुँचते इस्पातका ताप-क्रम २०००° फारेनहाइट हो जाता है। इस्पात एक विशेष बनावटका होता है और इसको गर्म करके पानी या तेलमें बुझानेकी आवश्यकता नहीं होती। गर्म करनेके बाद ठण्डा होने पर लोहा इतना कड़ा हो जाता है कि यह शीशाको आसानीसे काट सकता है। वस्तुतः यह लगभग हीरेके समान कड़ा हो जाता है। ऑक्सिजनके संपर्कसे बचे रहनेके कारण यह अंत तक चमकता ही रहता है और इसमें किसी प्रकारका मुर्चा नहीं लगने पाता।

आँवला

[ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार]

योग

आमलकी तेल—आमलकी स्वरस चार सेर तिल, तेल एक सेर, मन्दाग्नि पर तेल सिद्ध करें। छाग्ण-पत्र (filter paper) में छान कर मनोनुकूल गन्ध डाल दें। यह तेल प्रति दिन सिर पर लगाया जाता है। सिरके दाह और शूलको यह शान्त करता है।

आमलक्यावलेह*—आँवलेके १ मन ११ सेर १६ तोला स्वरसमें पाँच सेर खाण्ड डाल कर मन्दाग्नि पर पकाएँ। मैलको निथार कर फेंक दें और गाढ़ा होने पर आगसे उतार कर निम्न औषधियोंके चूर्णको मिला दें—पिप्पली १ सेर ४८ तोला, मुलहठी १६ तोला, द्राक्ष १ सेर ४८ तोला, सोंठ १६ तोला और वंशलोचन १६ तोला। ठण्डा होने पर १ सेर ४८ तोला शहद मिला लें।

*रसममालकानान्तु संशुद्धं यन्त्र पीडितम्।
दोणं पत्रेच मृद्वग्नौ तत्र चे यानि दाययेत्॥
चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा।
प्रस्थं गोस्तनि कायाश्च द्राक्षायाः किल पेषितम्॥
श्रृङ्गवेरचले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम्।
तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत्॥
मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत् पलसम्मितम्।
हलीमकं कामलाञ्च पाण्डुत्वञ्चापकर्षति॥
— भैषज्य रत्नावली; पाण्डुरोगाधिकार;
श्लोक १०८ से १११ तक।

मात्र—आधेसे एक तोला।

रोग—पाण्डु, कामला, पित्त रोग, शुक्रमेह आदि।

आमलकी खण्ड—†पचास तोला कूष्माण्ड (पेठे) को आठ तोले घी में भूनें। रसमें आमलकी स्वरस, कूष्माण्ड स्वरस और शर्करा पानक प्रत्येक सोलह तोले डाल पाक करें। पाक हो जाने पर निम्न औषधियोंका चूर्ण डाल दें। पिप्पली, जीरा, सोंठ, प्रत्येक दो तोला, कालीमिरच एक तोला, धनियाँ, तालीस पत्र, चतुर्जातक, मोथा, प्रत्येक चौथाई तोला। शीत हो जाने पर आठ तोला शहद मिला दें।

†स्विन्न पीडितकूष्माण्डातुलार्धं मृष्टभाज्यतः।
प्रस्थार्द्धं तुल्य खण्डञ्च पचेदामलकीरसात्॥
प्रस्थे सुस्विन्न कूष्माण्ड रस प्रस्थं विघट्टयन्।
दर्व्यापाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य निधापयेत्॥
द्वे द्वे पले कणाजाजी शुण्ठीनां परिचस्य च।
पलं तालीसधान्याक चातुर्जात कमुस्तकम्॥
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च।
पक्तिशूलं निहन्त्येव दोषत्रय कृतञ्च यत्॥
छर्दम्लपित्तमूर्च्छाश्च कासश्वासाव सेचकम्।
हृच्छूलं रक्तपितञ्च पृष्ठशूलञ्च नाशयेत्॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलक संज्ञकम्।
—वंगसेन संहिता; परिणामशूल चिकित्सा;
श्लोक ८४ से ८८ तक।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

रोग—अम्लपित्त, पित्तजन्य उदरशूल, रक्त पित्त आदि।

धान्यरिष्ट—*दो हज़ार ताजे आँवलोंको कुण्डी सोटेमें पीसकर रस निकालें। इसमें पिप्पली चूर्ण सोलह तोले और खाण्ड पाँच सेर मिलाकर पाक करें। खाण्ड घुल जाने पर उतार लें। ठण्ढा होने पर आँवलेके रसमें अष्टमांश मधु मिला कर घीसे स्निग्ध किये हुए घड़ेमें रख दें। उचित काल बाद अरिष्ट बन जाने पर छान कर प्रयोग करें।

मात्रा—सवासे ढाई तोला।

रोग—कमला, पाण्डु, हृद्रोग, कास, हिक्का आदि।

आमलाद्य लोह†—आमला, पिप्पली और मिश्री प्रत्येक एक तोला, लोह भस्म तीन तोला; चूर्ण बनाये।

मात्रा—दो रत्ती।

रोग—रक्त पित्त, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, आदि।

धात्री लोह * (१)—आँवलेका चूर्ण चौंसठ तोला, लोह भस्म बत्तीस तोला; मुलहठीका चूर्ण सोलह तोला, सबको आँवलेके स्वरससे सात भावनाएं दें। सुखा कर शुष्क मात्रामें बन्द करके रखें।

मात्रा—तीनसे छः रत्ती।

रोग—रक्तपित्त, अग्निमान्द्य।

अनुपान—घी और शहद।

धात्री लोह (२) †—बत्तीस तोले जौको एक सेर

---

*धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्द्धकुडवान्वितम्॥
शर्करार्द्धं तुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम्।
प्रपिवेत् पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णो हितमिनाशनः॥
कामलापाण्डुहृद्रोग वातासृग्विषयज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्टः प्रणाशयेत्॥
भैषज्यरत्नावली; पाण्डुरोगाधिकार;
श्लोक ११२ से ११४ तक।

चरक संहिता; चिकित्सत स्थान; अध्याय १६; श्लोक ११० से ११३ तक में यही धान्यरिष्ट पढ़ा गया है।

† आमलापिप्पलीचूर्णां तुल्यता सितया सह।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिदं स्मृतम्॥
वृष्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्त विनाशनम्।
पित्तोत्थानापि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान्॥
—रसेन्द्र सारसंग्रह, रक्तपित्त चिकित्सा।

*धात्री चूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौह चूर्णस्य।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पुरे घृष्टम्॥
धात्र्याश्च क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्ताहम्।
चण्डातपेन संशुष्कं भूयः पिष्टं घटे स्थितम्॥
घृतेन मधुना युक्तं भोजनाद्यन्त मध्यतः।
त्रीन्वारान्भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः॥
भक्तास्यादौ नाशयेच्च दोषान्पित्त कृतानपि।
मध्ये चावाहविष्टब्धं तथान्ते चाग्निमन्दिताम्।
रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान्हन्ति न संशयः॥
—रसेन्द्र सार संग्रह; पित्तरोगाधिकार; श्लोक २ से ५ तक।

†कुडवं शुद्ध मण्डूरं यवञ्च कुडवन्तथा।
पाकार्थञ्च जलं प्रस्थं चतुर्भागाव शेषितम्॥
शतावरीरसस्याष्टावाम्मलक्या रसस्य च।
तथा दधि ययो भूमि कूष्माण्डस्य चतुः पलम्॥
चतुः पलमिक्षुरसं दद्यातत्र विचक्षणः।
प्रक्षिपेज्जीरकं धान्यं त्रिजातं करिपिप्पली॥
मुस्तं हरीतकी चैव अभ्रं लौहं कटुत्रयम्।
रेणुका त्रिफला चैव तालीशं स्वर्ण केशरम्॥
कटुकं मधुकं शस्वा चाश्वगन्धा च चन्दनम्।
एतेषां कार्षिकं भागं चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत्॥
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः।
तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयस्तथा॥
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्य यथापि वा।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥
परिणाम समुत्थञ्च अन्नद्रवभवं तथा।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम्॥
—रसेन्द्र सार संग्रह; शूल रोग चिकित्सा, श्लोक १६ से २३ तक।

अड़तालीस तोले पानीमें चौंसठ तोला पानी शेष रहने तक पकाएँ। इस क्वाथमें मण्डूक भस्म बत्तीस तोला, शतावरी का स्वरस चौंसठ तोला, आँवलेका स्वरस चौंसठ तोला, दही बत्तीस तोला, दूध बत्तीस तोला, विदारी कन्द स्वरस बत्तीस तोला, गन्नेका रस बत्तीस तोला डालकर पकाएँ। पाकशेष कालमें जीरा, धनियाँ, छोटी इलायची, तेजपात्र, दालचीनी, गज पिप्पली, मोथा, हरड़, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सोंठ, यष्टि, पिप्पली, रेणुका, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तालीशपत्र, नागकेसर, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, उरुगन्ध और लाल चन्दन प्रत्येकका चूर्ण मिलाएँ।

मात्रा—चारसे आठ रत्ती।

रोग—शूल, अम्लपित्त, आदि।

अनुपान—दूध।

धात्री षट्पलक घृत* —घी एक सेर अड़तालीस तोला आँवलेका स्वरस बारह सेर चौंसठ तोला, कल्कार्थ–पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, यवक्षार, प्रत्येक आठ तोला, पाकार्थ जल बारह सेर चौंसठ तोला। सिद्ध करके खाण्ड और सैन्धव मिला कर प्रयोग करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—गुल्म रोग।

आमलक घृत†—प्रशस्त भूमिमें उत्पन्न और अपने स्वभाविक गन्ध, वर्ण और इससे युक्त आँवलेके स्वरस और पुनर्नवाके कल्कसे छः सेर बत्तीस तोले घीको यथा विधि सिद्ध करें। आँवलेका स्वरस २४ सेर १२८ तोले और पुनर्नवाका कल्क $1\frac{1}{2}$ सेर आठ तोले लेना चाहिए। सिद्ध होने पर घृतको छान लें। फिर इसी प्रकार आँवलेके स्वरस और पुनर्नवाके कल्कसे पकाएँ। फिर छान लें। इस प्रकार सौ बार पकाएँ फिर घीको छानकर विदारी कन्द स्वरस और जीवन्ताके कल्कसे पूर्वोक्त विधिसे सौ बार पकाएँ। इसमें भी प्रत्येक बार विदारी कन्द स्वरस २५ सेर ४८ तोले और जीवन्तीका कल्क $1\frac{1}{2}$ सेर २ तोले लेना चाहिए। तदनन्तर घीको छान कर पुनः घीसे चौगुने दूध बला और अतिबलाके क्वाथ और शतावरीके कल्क द्वारा पूर्वोक्त विधिसे सौ बार पकाएँ। प्रत्येक बार दूध २५ सेर ४२ तोले बला और अतिबला भी इतना ही और शतावरी का कल्क $1\frac{1}{2}$ सेर २ तोले लेना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकारके पाकको एक हज़ार बार भी कर सकते हैं। घृत सिद्ध हो जाने पर उससे चतुर्थांश खण्ड और मधु मिलाए। खाण्ड और मधुका मिलित प्रमाण $1\frac{1}{2}$ सेर २ तोले होने चाहिए जिसमें २ पाव ४ तोले शहद और इतनी ही खाण्ड होनी चाहिए।

इस प्रकार दो विधियोंसे पाक हुआ। सौ बार पके हुएको शत पाक और हज़ार बार सिद्धको सहस्र पाक कहते हैं। शतपाकको अपेक्षा सहस्र पाक अधिक गुणकारी होते है। यदि तीनों प्रकारसे क्रमशः एक-एक बार पाक किया जाय तो इसे 'एक पाक' कहते हैं। यह सबसे न्यून गुण होता है। शत पाक इससे अधिक और सहस्र पाक इससे भी अधिक गुणवान् होता है। खाण्ड और मधु मिला लेनेके बाद घृतको सोने चाँदी या घृतसे भावित दृढ़ मृत्पात्रमें रखें। कुटी प्रावेशिक विधिसे अग्निबलके अनुसार इस घृतका

---

* धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्ग पाचयेद् घृतम्।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम्॥
—भैषज्य रत्नावली, गुल्मरोगाधिकार; श्लोक ८४।

† आमलकानां सुभूमिजानां कालजानामनुपहत गन्ध वर्णरसानामा चूर्णरस प्रमाणवीर्याणां स्वरसेन पुनर्नवा कल्क संप्रयुक्तेन सर्पिषः साधयेदाढकं, अतः परं विदारीस्वरसेन जीवन्ती कल्क संप्रयुक्तेन, अतः परं चतुर्गुणेन पयसा कला तिबला कषाग्येण शतावरी कल्क संप्रक्तेन, अनेन क्रमेणैकेकं शतपाकं सहस्रपाकं वा शर्करा क्षौद्रचतुर्भाग संयुक्तं सौवर्णे राजते मार्तिके वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयते। तथोक्तेन विधिना यथाग्नि प्रातः प्रातः प्रयोजयेत्, जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात्; अस्य त्रिवर्ष प्रयोगाद्वर्षशतं पयोऽजरं तिष्ठति, श्रुतभवतिष्ठते, सर्वायथाः प्रशाम्यन्तिः, अप्रतिहतगतिः स्त्रीस्वष पत्यवान् भवति॥ बृहच्छरीरं गिरिसारसारं स्थिरेन्द्रियं भातिबलेन्द्रियं च। अधृष्यमन्यैइतिकान्तरूपं प्रशस्तपूजा सुखचित्त भाक् च॥ बलं महद्वर्णं विशुद्धिरग्रया स्वरो घनौघस्त नितानुकारी। भवत्यपत्यं विपुलं स्थिरं च समश्नतो योगमियं नरस्य॥
—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १ प्राणोकामीय रसायन पार, ४,५, और ६।

प्रातःकाल सेवन करें। घी पच जाने पर दूध और घीसे शाली या सांठीके चावल खाएँ।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—रस घृतको तीन साल पर्यन्त नियमित सेवन करनेसे बुढ़ापा दूर होकर सौ साल आयु होती है। मस्तिष्क उद्‌बुद्ध होता है। स्मृति शक्ति बढ़ती है एक बार सुनी हुई बात भूलती नहीं। सब रोग दूर होते हैं। बल और पौरुष बढ़ता है। शरीर सुडौल और पर्वतके समान बलवान् होता है। रूप अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी होता है, शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहता है। वाणी गम्भीर और प्रभावशाली होती है। लैङ्गिक विकार दूर होते हैं। सेवन करने वाला स्त्री सहवासके योग्य होता है और उसकी सन्तानें बहुत पराक्रमी होती हैं।

आमलक चूर्ण रसायन* — ६ सेर ३२ तोले आँवलेके चूर्णको एक हज़ार आँवलोंके स्वरससे इक्कीस बार भावना दें। इसमें शहद और घी प्रत्येक १२ सेर १३ छटांक, पिप्पली चूर्ण ६३ तोले, खाण्ड १½ सेर ८ तोले मिलाएँ और घीसे भावित मृत्पात्रमें रख छोड़ें। प्रावृट् ऋतुमें इसे राखके ढेरमें गाड़ दें। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर निकाल लें।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—ठीक सात्म्य भोजन करता हुआ मनुष्य इसे सेवन करे तो उसके पास बुढ़ापा नहीं आता और उसकी आयु सौ साल होती है। यह उत्कृष्ट रसायन है।

हरीतक्यादि योग† — दस सेर आँवलेके चूर्णको आँवले-का रस पिला कर सुखाएँ और इसमें चतुर्थांश तीक्ष्ण लोहेकी भस्म मिलाएँ। इसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, शालपर्णी, वच वायविडङ्ग, गिलोय, सोंठ, मुलैठी, पिप्पली और सफेद खैरके कल्कसे सिद्ध किये गये दूधसे निकाला घी तथा मधु और खाण्ड मिला कर प्रातः इस प्रातः कुटीप्रवेशिक विधिसे सेवन करें।

मात्रा—तीनसे दस रत्ती। दिनमें इसे अनेक बार आवश्यकतानुसार दे सकते हैं।

रोग—तीन वर्ष तक इस रसायनके निरन्तर सेवनसे वृद्धावस्थासे उन्मुक्त हो कर सौ साल आयु होती है। सब रोग दूर हो जाते हैं। शरीरमें विषप्रभाव नहीं होता। शरीर पत्थरकी तरह कठोर होता है। कोई कृमि तथा अन्य जीव रसायन-सेवीके शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकते अर्थात् उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि कृमि उसमें रोग उत्पन्न नहीं कर सकते।

पथ्य—औषध पच जाने पर सायंकाल मूंगकी दालके रसे या दूधके साथ खूब घी डाल कर शाली या सांठीके चावल खाएँ।

च्यवनप्राश*—बिल्व, श्योनाक, करणी, गम्भारी और

---

*आमलक चूर्णाढकमेकं विंशतिरात्रं आमलक सहस्र स्वरस परिपीतं मधुघृताढकाभ्यां द्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकं शर्कराचूर्णचतुर्भाग संप्रयुक्त घृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशौ निदध्यात्, तद्वर्षान्ते सात्म्यपथ्याशी प्रयोजयेत्, भस्म प्रयोगाद्वर्षशत मजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण॥

—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; प्राणकामीय रसायनपाद; ८।

†हरीतक्यामलक विभीतकहरिद्रास्थिरावचा विडङ्गमृतवल्लीविश्वभेषज मधुकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेन क्षीरसर्पिषा मधुशर्कराभ्यामपि च सत्रीयामलक स्वरस परिपीत शतपल परिमिलतमामलक चूर्णमयश्चूर्णचतुर्भागसंप्रयुक्तं पाणितलमात्रं प्रातः प्रातः प्राश्य यथोक्तेन विधिनासायं मुद्गयूषेण पयसा वा ससर्पिष्कं शालिषष्टि कमश्नीयात्, त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति, श्रुतमवतिष्ठते, सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति, विषय विषीभवति गात्रे, गात्रमश्मवत् स्थिरी भवति, अदृश्यो भूताना भवति।

यथाऽमराणाममृतं यथा भोगवतां सुधा।
तथाऽभवन्महर्षीणां रसायनविधिः पुरा॥
न जरां न दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च।
जग्मुर्वर्ष सहस्राणि रसायनपराः पुरा॥

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; अभयामलकीय रसायनपाद; ६५, ६६, ६७।

*बिल्वाग्निमन्थौ स्योनाकः काश्मरी पाटलिर्बला।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्॥
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु।

पाटलाकी जड़को छाल प्रत्येक आठ तोला, बलामूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी पिप्पली, गोखरू,

अभयां मामृता ऋद्धि जीवकर्षभको शठी ॥
पुस्तं पुनर्नवा मेदा एला चन्दनमुत्पलम् ।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥
एषां पलोन्मितान्भागाञ्शतान्यामलकस्य च ।
पञ्च तच्चात्तदैकत्र जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ ते रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषो ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्वा चार्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते सभावयेत् ।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीद्विपलं तथा ॥
पलमेकं निदध्यांच त्वगेलापत्र केशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥
कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्धनः ॥
स्वरक्षय मुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुः प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्नि वृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥
रसायन स्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटिप्रवेशात् ।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वंबिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १;
अभयामलकीय रसायनपाद; श्लोक ६० से ६२ तक ।

निम्न ग्रन्थोंसे भी पवन द्वाराका पाठ है—
अष्टांग हृदय; उत्तर स्थान; रसायन अध्याय; अध्याय ३६; श्लोक ३३ से ४१ तक ।
सारोत संहित; तृतीय स्थान; अध्याय ६; क्षयरोग चिकित्सा; श्लोक ४६ से ६२ तक ।
चक्रदत्त; यक्ष्म चिकित्सा श्लोक ४६ से ५३ तक ।

छोटी कष्टकारी, बड़ी कष्टकारी, काकड़ाशृंगी, भुई आँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्कर फूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कपूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलाइची, लाल चन्दन, नीलोत्पल, विदारीकन्द, बांसकी जड़, काकोली और काकनासा प्रत्येक आठ तोला; आँवले पाँच सौ (सवा छः सेर); इन्हें एक मन ग्यारह सेर सोलह तोले जलमें पकाएँ। आँवलोंको कपड़ेकी ढीली पोटलीमें बाँध कर डालना चाहिए। क्काथ बन जाने पर आँवलेको पोटली निकाल लें। क्काथको वस्त्रपूत कर लें। अन्दरकी औषधियोंको फेंक दें। आंवलेमें से गुठली निकाल कर उन्हें हाथसे अच्छी तरह कुचल दें। कपड़ेमें छान कर रेशे फेंक दें। छनी हुई आंवलेकी पीठीको तिल तेल और घीके एक सेर सोलह तोले यमकमें भुनें। घी और तेल प्रत्येक अड़तालिस तोला लें। भुन जाने पर उतार कर अलग रख लें। छाने हुए क्काथमें पाँच सेर खाण्ड घोलें और आग पर रख कर मैल निकाल दें। आँवलेकी भूनी हुई पीठोंमें इस खाण्ड मिश्रित क्काथको डाल कर आग पर चढ़ाएँ। हलकी-हलकी आगके पकाएँ। लेहकी तरह सिद्ध हो जाने पर उतार लें। भूनते और पकाते समय लकड़ीके खौंचेसे लगातार हिलाते रहना चाहिये जिससे पात्रके तलेमें औषध लगाकर जल न जाँय। शीतल ही जाने पर अड़तालिस तोले शहद बत्तीस तोले वंशलोचन, सोलह तोले पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेसर प्रत्येक दो तोला मिलाकर आलोड़ित कर लें।

चरक संहितमें पठित क्काथ द्रव्योंकी संख्या और योगरत्नाकरोक्त संख्या एक समान ही है। परन्तु योगरत्नाकर में मुद्गपर्णी माषपर्णं और काकनासा न पढ़ कर वृद्धि, क्षीर काकोली और महामेदा ये अवर्गोक्त द्रव्य विशेष पढ़े गये हैं। * शार्ङ्ग-धर † ने क्काथ्य द्रव्योंमें क्षीरककोली

*शृङ्गीतामलकी कणोत्पल बलापथ्याष्टवर्गामृता-
जीवन्तीत्रुटिचन्दनागुरुशठी द्राक्षाविदार्यम्बुदैः ।
वर्षाभूदशमूलपुष्करवृषैः सार्द्धं पृथक पालिकै
रब्द्रोणेन शतानि पच विपचेद्धात्रीफलानामतः ॥
—योगरत्नाकर

†पाटलारणि काश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ।

और महामेदा दो द्रव्य अधिक पड़े हैं। इससे मिलित क्वाथ्य द्रव्योंकी मात्रा ३०४ तोला हो जाती है। चरकमें क्वाथ बन जानेकी पहिचान लिखी है जब औषधियोंका सारा रस क्वाथ में आ जाये। चक्रपाणिने 'गतरसानिका' की टीक करते हुए चतुर्थांश बचा लेनेके लिए कहाँ है। अष्टांग हृदयमें भी पादशेष रससे चतुर्थांश बचानेका अभिप्राय है। शार्ङ्गधर संहितामें अष्टमांश बचानेका विधान है। इसके अतिरिक्त आँवलेकी पीठोको चूलनेके लिए शार्ङ्गधरने तैलका पाठ नहीं किया और अड़तालीस तोला घीके स्थान पर छप्पन तोला घी लेनेके लिये कहा है। इसी प्रकार प्रक्षेपमें दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेसरको पृथक्-पृथक् एक तोला लेनेके लिए कहा है जब कि चरक संहितामें इनकी मात्रा दो-दो तोला है।

पथ्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृङ्गी द्राक्षामृतामयाः ॥
बला भूम्यामलकी वासा वृद्धिर्जीवन्तिका शठी।
जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा।
काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागुरुचन्दनम् ॥
एकैकं पलसम्मानं स्थूल चूर्णितमौषधम्।
एकीकृत्य बृहत्पात्रे पंचामल शतानि च ॥
पचेद् द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांश शोषितम्।
ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वा ससा ॥
दृढहस्तेन सम्यर्ध क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्।
पलसप्तमितं तानि किंचिद्भृष्टान्यल्पवन्हिना ॥
ततस्तत्र क्षियेक्वाथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम्।
लेह्यवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत् ॥
पिप्पली द्विपला श्वेता तुगाक्षीरी चतुष्पला।
प्रत्येकं च त्रिशाणं स्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ॥
ततस्त्वेकीकृते तस्मिन् क्षिपेत् क्षौद्रं च षट्पलम् ॥
—शार्ङ्गधर संहिता;

† यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रं पिष्टस्वेदनविधिना पयस ऊष्मणा सुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थित चूर्णयेत्, तदामलक सहस्रस्वरस पोत स्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागबलाब्रह्म सुवर्चलामण्डूकपर्णी शतावरीशंखपुष्पी पिप्पली वचाविडङ्गस्वयंगुप्तामृताचन्दानागुरु मधुकमधूक पुष्पोत्पलपद्ममालतीयुवती यूथिका चूर्णाष्ट भागसंयुक्तं पुनर्नागबला सहस्र पलवस्वरस परिपीतमनातपशुष्कं द्विगुणित सर्पिषा क्षौद्रसर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृतिं कृत्वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेदन्तर्भूमेः पक्षं कृतरक्षाविधानमथर्ववेदविदा, पक्षात्यये योद्धृत्य कनकरजतताम्र प्रवाल कालायस चूर्णाष्ट भाग संयुक्तमर्धकर्षवृद्ध्या यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्निबलमभिसमीक्ष्य जीर्णे च षष्टिकं पयसा ससर्पिष्कमुपसेवमानो यथोक्तान् गुणान् समुश्नुवत इति ॥

इदं रसायनं ब्राह्मं महर्षिगणसेवितम्।
भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रयुञ्जानो महाबलः ॥
कान्तः प्रजानां सिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
श्रुतं धारयते सत्त्वमार्षं चास्य प्रवर्तते ॥
धरणीधरसारश्च वायुना समविक्रमः।
स भवत्यविषं चास्य गात्रे संपद्यते विषम् ॥
—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; अभयामलक रसायनपाद; ५६ से ५९ तक।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश कला, प्रेस प्रयाग।

भाग ५१ } जुलाई १९४० वार्षिक मूल्य ३) एक प्रतिका ।=) { संख्या ४ पूर्ण संख्या ३०४

चांद मरवा

Flowering stalk of Rauwolfia Serpentina.

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

❀ नियम ❀

(१) मासिक पत्र विज्ञान, विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका उद्देश्य है भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार करना तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन देना।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी प्रेमी परिषद् की कौंसिलकी स्वीकृतिसे परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद्की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदलेके सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें स्वामी हरिशरणानन्द, पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्किट, अमृतसर, के पास भेजे जायं। शेष सब सामयिक पत्र, लेख, पुस्तकें प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मन्त्री विज्ञान-परिषद् इलाहाबाद' के पते पर भेजे जायं।
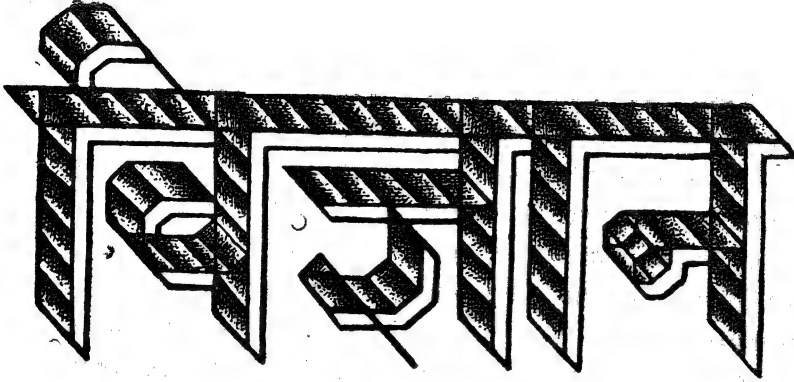
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१ | प्रयाग, कर्कार्क, संवत् १९९७ विक्रमी जुलाई, सन् १९४० ई० | संख्या ४

शिशुओं और बालकोंके भोजनका प्रश्न

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

हमारे देशमें राज्यकी ओरसे राष्ट्रके बालकों और शिशुओंकी कोई देख-भाल नहीं की जाती है। ये भावी भाग्य-विधाता असहाय जीवन व्यतीत करते हैं। इनके आहार-विहारके प्रश्नको जिस उपेक्षासे हमारे देशमें देखा जाता है, उसीका फल यह होता है कि यहाँ शिशुओंकी मृत्यु-संख्या भी अधिक है, और जो बच्चे अधिक काल तक जीनेमें सफल होते हैं उनके शरीर रुग्ण और निकम्मे हो जाते हैं। क्या राष्ट्र-निर्माणमें इन शिशुओंका कोई भी मूल्य नहीं है? क्या देशको इन सन्तानोंकी कोई आवश्यकता नहीं? यदि है तो इनके प्रति इतनी उपेक्षा और उदासीनता क्यों। हम इस लेखमें यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि अन्य स्वतन्त्र एवं समृद्धिशाली राष्ट्रोंमें बालकोंको अमूल्य निधि समझा जाता है, और वहाँ अमीरोंके बच्चोंको ही नहीं, प्रत्युत ग़रीबोंके बच्चोंको भी उचित और पौष्टिक भोजन प्रदान किया जाता है।

१—यूनियन आव् साउथ अफ्रीका

नवम्बर १९३५ में सरकारकी ओरसे इस प्रदेशमें ग़रीब बच्चोंको मुफ़्त दूध प्रदान करनेकी एक आयोजना उद्घाटित की गई। देशी विदेशी १२००० बच्चोंको प्रति-दिन १/२ पाइण्ट दूध देनेका प्रबन्ध किया गया। यह आशाकी गई कि आगामी एक वर्षके भीतर ४२५,००० बच्चोंको इतना दूध बराबर दिया जा सकेगा। इसका अर्थ यह है कि ५०,००,००० गैलन दूध प्रति वर्ष ग़रीब बच्चोंको बिना किसी मूल्यके प्रदान किया जाता है। सन् १९३५ से अब तक यह आयोजना बराबर काम कर रही है, और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि भी हो रही है।

२—आर्जेण्टाइन रिपब्लिक

इस प्रदेशमें लगभग गत चालीस वर्षसे ऐसी संस्थायें काम कर रही हैं जो निर्धन बालकोंको दूध, रोटी और दूध चाय-कहवा मुफ़्त प्रदान कर रही हैं। इस प्रदेशकी नेशनल

कौंसिल आव् एडुकेशनने बच्चोंके भोजनके लिये अनेक आयोजनायें रक्खी हैं। उदाहरणतः ४ अगस्त १९३२ को एक राज्यनियम बनाया गया जिससे घुड़-दौड़ों पर टैक्स लगा। इस टैक्ससे १० लाख 'पैसों' की आय हुई जिससे ६८०० स्कूली बच्चोंको पूरा भोजन प्रदान किया गया। सन् १९३५ में इस फण्डसे २० भोजनालय स्कूली बच्चोंके लिये और दो भोजनालय माताओंके लिये खोले गये जिनमें १०,००० से अधिक शिशुओं और बालकोंको बिना मूल्य पूरा भोजन दिया जाता रहा।

स्टेटकी ओरसे चलाये जाने वाले स्कूलोंमें प्रति दिन स्थानीय नागरिकोंकी सहकारी संस्थायें हैं जिनकी ओरसे दूध और फल बच्चोंको बाँटे जाते हैं। इन संस्थाओंमें केवल फेडरल केपिटलमें ९३,८९९ बालकोंको दूध-फल मिले।

आर्जेण्टाइन रिपब्लिककी ओरसे अस्वस्थ और निर्बल बच्चोंके लिये उपनिवेश बनाये गये हैं। छुट्टियाँ होने पर ये बच्चे लगभग ३०,००० के समुद्रतट पर या पर्वतों पर भेज दिये जाते हैं। वहाँ उनके रहने और भोजनका अच्छा प्रबन्ध राज्यकी ओरसे किया जाता है।

ब्यूनोस आयर्सकी म्यूनिसपेलिटीकी ओरसे भी ऐसे ही उपनिवेश हैं जो ग्रीष्मकी छुट्टियोंमें तीन महीने खुले रहते हैं। इन उपनिवेशोंमें १२,००० बालकोंके लिये स्थान है। बारीबारीसे ३०००० बालक प्रतिवर्ष इनसे लाभ उठाते हैं। यहाँ बच्चे दिनमें तीन बार भोजन पाते हैं—ब्रेक फस्ट, लंच और डिनर। उनमें किसी प्रकारका कोई मूल्य नहीं लिया जाता। सब चीज़ें मुफ़्त मिलती हैं।

इसी नगरमें ३ भोजनालय वर्ष भर बराबर खुले रहते हैं जिनमें १५० बच्चोंके लिये प्रबन्ध है। यहाँ दिनमें खुली रहने वाली ऐसी नरसेरी (मातृगृह) भी हैं जिनमें मातायें दिन भरके लिये अपने बच्चे छोड़ जाती हैं। २०० बच्चोंके लिये इनमें प्रबन्ध है।

ब्यूनोस आयर्समें ही नहीं, अन्य नगरोंमें भी म्यूनिसपेलिटीकी ओरसे हॉलिडे-कॉलोनी (छुट्टी वाले उपनिवेश) हैं जहाँ १०० से ८०० तक बच्चोंके लिये प्रबन्ध है।

आस्ट्रेलिया

इस देशमें मज़दूरोंको नौकरी इस हिसाबसे मिलती है कि मर्द, औरत और उनके दो बच्चोंका पेट अच्छी तरह भर सके। अधिक बच्चे होने पर सबको प्रति बच्चा पीछे अधिक भत्ता मिलता है।

कुछ दिनोंसे स्कूली बच्चोंके स्वास्थ्यकी और उनके भोजनकी विशेष जाँचकी जा रही है। इस जाँचसे यह पता चला कि केवल १ प्रतिशत बच्चा ऐसा है जिसे उचित भोजन प्राप्त नहीं हो रहा है। (हमारे देशके दीन बच्चोंसे इस अंककी तुलना कीजिये।)

आस्ट्रेलियाकी विक्टोरिया स्टेटमें सरकारकी ओरसे जाड़ों में स्कूलके बच्चोंको दूध दिया जाता है। इस कामके लिये सरकार काफ़ी रुपया ख़र्च करती है। निर्बल बच्चों पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

आस्ट्रिया

रविवारको छोड़ कर सब दिन और छुट्टियोंमें भी स्कूली बालकोंको वियना नगरमें स्कूलको भूमिमें ही स्थित हर भोजनालयोंमें गरम-गरम ताज़ा भोजन दोपहरको दिया जाता है। जिसमें बच्चोंको मांस, रोटी, तरकारी, मिठाई सभी कुछ मिलता है। अधिकांश बच्चोंको यह भोजन मुफ़्त मिलता है। वियनामें ८२,००० बच्चे इन भोजनालयोंसे लाभ उठाते हैं। म्यूनिसपेलिटीकी ओरसे ३ भोजनालय और भी हैं जिनमें इसी प्रकारका भोजन ६०० बच्चोंको प्रतिदिन (दोपहर को) मिलता है। इसके अतिरिक्त पिताओं से उनकी आयके अनुसार टैक्स लेकर वियना म्यूनिसपेलिटी कुछ और भोजनालय चलाती है जिनमें सब बच्चोंको एकसा ताज़ा भोजन दिया जाता है। १ अक्टूबर १९३५ को ५३०० बच्चे इस फण्डमेंसे भोजन प्राप्त कर रहे थे।

९२ म्यूनिसपल किण्डर गार्टन स्कूलोंमें ३ से ६ वर्ष तककी आयुके ४,००० बच्चोंको कलेवा और दो बार भोजन उनके आयुके अनुसार दिया जाता रहा है। इसके लिये अधिकांश बच्चोंको कुछ नहीं देना पड़ता।

बेकार मनुष्यों (जिनका नाम वियनाके रजिस्टरमें अंकित है) की सन्तानोंको जन्म-दिनसे लेकर एक वर्ष तक आधा लीटर (आधा सेर) दूध प्रतिदिन मुफ़्त दिया जाता है। लगभग १८०० बच्चोंको इस प्रकारकी सहायता मिल रही है।

वियनामें एक और प्रथा है। वहाँ ग़रीबोंको "फूड-

पैकेट" (भोजनके थैले) बाँटे जाते हैं। प्रत्येक पैकेटमें ये चीज़ें होती हैं :—

१/२ किलोग्राम (लगभग आधा सेर) आटा		
१	"	शक्कर
१/२	"	लार्ड (चर्बी)
१/२	"	गेहूँका दलिया
या १	"	छीमी या दाल

एक निर्धन परिवारको प्रतिमास ७ पैकेट तक मिल सकते हैं (बच्चोंकी संख्याके अनुसार)। वियनामें प्रति मास २५८०० पैकेट बाँटे जाते हैं।

बेलजियम

सन् १९१४-१८ के महायुद्धके समय बच्चोंको राज्यकी ओरसे कूके (cauque)—एक प्रकारका मिष्ट भोजन-बाँटे जाते थे क्योंकि उन दिनों रोटियोंकी कमी पड़ गई थी। कहीं-कहीं बच्चोंको दिनका पूरा भोजन मिलता था। बादको बच्चोंके लिये अनेक भोजनालय खोले गये।

यूनाइटेड किंगडम

सन् १९०६ में इंगलैण्डमें राज्यका ध्यान ऐसे ग़रीब बच्चोंके भोजनकी ओर गया है जो स्कूलोंमें पढ़ते हैं। सन् १९२१ में जो एक्ट बना उसके अनुसार निर्धन पिताओंके बच्चोंको मुफ़्त भोजन प्राप्त करनेका अधिकार दिया गया, पर यदि पिता भोजनका कुछ व्यय दे सकते हैं तो उन्हें देना पड़ता है। बहुतोंसे पूरा व्यय नहीं, बल्कि थोड़ासा ही वसूल किया जाता है। मेडिकल डिपार्टमेंटकी सहायतासे सूची तैयारकी जाती है और पिताकी आयके अनुसार निश्चित किया जाता है कि किसको भोजन बिना मूल्य दिया जाय और किसको कम दाम पर।

शिक्षण-संस्थाओंमें भोजनका प्रबन्ध किया जाता है और बहुधा दोपहरका खाना ही दिया जाता है, पर कहीं-कहीं इन संस्थाओंकी ओरसे कलेवा, भोजन और चाय सबका प्रबन्ध किया जाता है। इस भोजनके अतिरिक्त बच्चों को दूध, मछलीका तैल, और माल्ट सत भी देनेका प्रबंध रहता है। लगभग ४००,००० बच्चोंको किसी न किसी प्रकारकी सहायता मिलती है।

सन् १९३४में एक आयोजना बनी। राज्य ने 'मिल्क-मार्केटिंग बोर्ड' (दुग्ध-विक्रय संस्था) को ५,००,००० पौंड धन प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया। इससे यह प्रबन्ध हुआ कि स्कूलके बालकोंको १/३ पाइंट दूध १ पेनीमें न देकर आधी पेनीमें दिया जाय। स्काटलैण्डमें भी इसी प्रकारका प्रबन्ध हुआ। ४,००,००० बच्चोंको आधे दाममें दूध दिया गया और जो बच्चे दाम बिल्कुल नहीं दे सकते थे उन्हें मुफ़्त दूध दिया गया।

सन् १९३४ के लगभगसे दूध बाँटनेका काम म्युनिसपेल्टियोंको सौंपा गया। इसमें पिताओंका सहयोग प्राप्त किया जाता है। दोपहरको जहाँ बच्चे पहले मलाई खाते थे, वहाँ अब दूध पीनेका रिवाज़ बढ़ रहा है।

भिन्न-भिन्न देशोंके इन अनुभवोंके आधार पर हमें अपने देशके लिये एक आयोजना रखनी चाहिये। गरीब और अमीर सभीके बालकोंको पुष्टिकर भोजन मिलना चाहिये। प्रत्येक स्कूलकी ओरसे तीसरे पहर दूधका प्रबन्ध होना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि गरीब-अमीर सबको दस बजेके लगभगका भोजन स्कूलमें ही मिले जिसमें स्वास्थ्य-प्रद वस्तुयें दी जायँ। इससे यह होगा कि गरीब बालकों को दिनमें एक बार तो अच्छा भोजन मिल सकेगा। राष्ट्रके नेताओंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

आयुर्वेदके इतिहासकी झाँकी

(लेखक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी)

चिकित्सा-शास्त्रका सम्बन्ध आयुके साथ है। इसलिये जबसे मनुष्य उत्पन्न हुए उस समयसे ही चिकित्सा-शास्त्र-का प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि आयुर्वेद भी वेदोंकी भाँति अनादि है। चरकमें लिखा है—

'सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यतेऽनादित्वात्'

आर्य-जाति वेदोंको सब ज्ञानका स्रोत मानती है। प्रत्येक

ज्ञानका मूल वेदोंमें पाया जाता है। इसी प्रकार आयुर्वेदको भी वेदका ही उपांग माना गया है। परन्तु इस विषयमें दो मत हैं। इसका कारण यह है कि चिकित्सा सम्बन्धी बहुत-सी बातें ऋग्वेदमें होनेसे उस समयके चिकित्सक अग्निवेशने आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपांग माना है। शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी बहुत-सा ज्ञान अथर्ववेदमें होनेसे सुश्रुत आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपांग मानता है।

अथर्ववेदमें शरीर-शास्त्र, रक्त-संचार, मूत्रस्रावण विधि तथा यक्ष्मा रोगकी चिकित्साका वर्णन स्पष्ट रूपमें मिलता है।

उपनिषदोंमें प्राणोंके आधार देवकोष, मस्तिष्कको अश्वत्थ वृक्षसे उपमा दी गई है। इस वृक्षकी जड़ें ऊपर हैं और शाखा-प्रशाखाएँ नीचेको फैली हुई हैं। वास्तवमें मनुष्यका छोटा मस्तिष्क (cerebellum) एक वृक्षकी भाँति है जहाँसे स्नायुओंके १२ युग्मोंमें ८ युग्मोंके निकलनेके साथ पंच ज्ञानेन्द्रियोंका भी आदि और अंत है।

उपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट है कि वैदिक-कालमें भी चिकित्सा-शास्त्र विद्यमान था। इसके अतिरिक्त वेदमें देवासुर-संग्राम का वर्णन भी आता है। उस संग्राममें क्षत-विक्षत व्यक्तियोंकी चिकित्सा आवश्यक थी।

रामायण और महाभारत काल

रामायणमें भी देवासुर (राम, रावण) के संग्रामका वर्णन मिलता है। उसी युद्धमें लक्ष्मणके मूर्छित होने एवं वैद्यके संजीवनी बूटीसे उसे पुनः जीवित करनेके वृत्तसे भी पाठक अपरिचित नहीं हैं।

इसके उपरान्त महाभारतका समय आता है। महाभारतके उद्योगपर्वमें युधिष्ठिरके सैन्य-संचयका वर्णन करते हुए लिखा है कि उसने चिकित्सक वैद्योंका भी कोश, यन्त्र और आयुधोंके साथ संग्रह किया। इसी प्रकार सेनाका वर्णन करते हुए लिखा है कि उस सेनामें वेतनभोगी और शिल्पी वैद्य भी थे।

भीष्मके शरशय्या पर लेटने पर दुर्योधन, शल्य-निकालनेमें चतुर वैद्योंको लेकर पितामहके पास गया था परन्तु जान्हवी-पुत्रने धन देकर उनको वापिस भेजवा दिया था।

महाभारत-कालमें भी चिकित्सा जीवित थी, इस बातका दिग्दर्शन उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है।

महाभारतके समय आयुर्वेदके आठ अंग हो चुके थे और प्रत्येक अंग अपनी पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ था। भगवान् कृष्ण सभापर्वमें अपना परिचय 'त्रिधातु' शब्दसे देते हैं।

१—आयुर्वेद त्रिदस्तस्मात् त्रिधातुं मां प्रचक्षते।
(महाभारत)

प्राचीन समयमें धर्मार्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति जीवन का मुख्य उद्देश्य समझा जाता था और इस उद्देश्यकी पूर्ति का साधन शारीरिक आरोग्यता ही है। इसलिये आरोग्यता-दान और जीवनदानको सब दानोंमें श्रेष्ठ माना गया है। जैसा कहा भी है कि—

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्
न हि जीवितदानाद्धि दानमन्यद् विशिष्यते।

बौद्धकाल

बौद्धोंके प्रसिद्ध ग्रंथ 'महावग्ग' में लिखा है कि उस समयके राजा बिंबिसारके राजवैद्य 'जीवक' ने भगवान् बुद्धकी चिकित्सा की थी। जीवकने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा ली थी। शिक्षाग्रहण-कालमें एक बार उनके गुरुने उन्हें ऐसी औषधि लानेको कहा था जिसमें कि कोई गुण न हो अथवा निरर्थक हो। जीवक एक योजन घेरेमें घूमे लेकिन वे असफल रहे।

सम्राट् अशोकके द्वितीय शिलालेखमें तत्कालीन चिकित्सा-प्रबन्धका वर्णन करते हुए तक्षशिला विश्व-विद्यालयके बारेमें लिखा है कि इस विश्वविद्यालय-

---

१—तस्या अक्षिता सत्या विचक्ष अधत्तं दस्राभिषजार्थवत्। (ऋग्वेद)।

२—चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णम्
आजाखेलस्य परितक्म्यायां
सद्यो जंघामायसीं विशायलाये
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्। (ऋग्वेद-ऋचा १५-मण्डल सूक्त ११६)

३—केन पार्ष्णी आभृते पुरुषस्य केन मांसं केन गुल्फौ।

४—ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थयस्तु प्राहुरव्ययम्—गीता

में आयुर्वेदकी शिक्षाका विशेष प्रबन्ध था। आयुर्वेद-के बड़े-बड़े ज्ञाता और शिक्षक यहाँ रहते थे। वे केवल शिक्षा ही नहीं देते थे अपितु असाध्य रोगोंकी चिकित्सा भी करते थे। यहाँ अनेक प्रकारकी जड़ी-बूटियोंकी अधिकता थी। कहा जाता है कि चीनके राजकुमारको एक बार भयानक तेज पीड़ा हुआ,जब वहाँके चिकित्सकोंसे वह अच्छा नहीं हुआ तो वह तक्षशिलामें आया था और वहाँसे अच्छा होकर लौटा था।

'महावग्ग' में आगे लिखा है कि भगवान् बुद्धके समय 'अश्वघोष' नामक राजवैद्य ने भगंदर रोग (fistula in ano) में शल्यकर्म किया था। पश्चात् बुद्धने स्थानके मृदु होनेसे तथा व्रणके पूर्ण साफ़ न होनेके कारण शल्यकर्म-का निषेध कर दिया। यही कारण है कि जीवकने राजा बिंबसारका यह रोग प्रलेपोंके द्वारा ही अच्छा कर दिया था।

भगवान् शंकराचार्यको भी जब भगंदर रोग हुआ तो वैद्योंको शल्यकर्म करनेको आज्ञा नहीं दी गई और औषधि-चिकित्सा द्वारा ही उनका इलाज किया गया।

भारतवर्षमें बौद्धकालके समय आरोग्यदानके पुण्यका कितना महत्त्व था यह उस समयके विदेशी यात्रियोंके वर्णनसे स्पष्ट है—

(१) मेगस्थनीज—यह सम्राट् चन्द्रगुप्तके समय भारतमें दूत बनकर आया था। लिखता है कि 'भारतमें सबसे अधिक प्रतिष्ठा उनकी है जो जंगलोंमें घूमते-फिरते हैं। उसके बाद उन लोगोंकी है जो रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं।'

(२) निर्यकस—यह सिकन्दरका सेनापति था। लिखता है कि 'यूनानी लोग साँप काटनेकी औषधि नहीं जानते थे, परन्तु जो इस दुर्घटनामें पड़े उन सबको भार-तीयोंने ठीक कर दिया।'

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि बौद्धकालमें भी चिकित्सा-शास्त्र पूर्ण उन्नतिके शिखर पर था और इस कालकी घट-तीके साथ-साथ ज्यों-ज्यों बौद्ध धर्म घटता गया त्यों-त्यों चिकित्सा-शास्त्रकी अवनति आरम्भ होती गई विशेषतः शल्यतन्त्रकी।

आयुर्वेदके यद्यपि आठ अंग है, तथापि अत्यन्त प्राचीन-कालसे 'काय चिकित्सा' और 'शल्यचिकित्सा' नामक चिकित्साके दो संप्रदाय प्रचलित हैं। प्रथम संप्रदाय महर्षि आत्रेयके नामसे तथा द्वितीय संप्रदाय भगवान् धन्वन्तरि-के नामसे प्रसिद्ध है। प्रत्येक संप्रदायके आचार्यों ने कई ग्रंथोंका निर्माण किया था जिनमेंसे अधिकांश ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं होते।

उपलब्ध ग्रंथोंमेंसे 'चरक संहिता' आत्रेय संप्रदायका और 'सुश्रुत संहिता' धन्वन्तरि संप्रदायका प्रधान ग्रन्थ है। सातवीं शताब्दीमें वाग्भट्टने अष्टांगहृदय' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने आठों शाखाओंका संक्षिप्त विवेचन किया। इस चिकित्सा-पद्धतिका भी इसी समयसे प्रादुर्भाव हुआ है जिसके जन्मदाता वाग्भट्ट हैं।

चरक संहिता

चरक संहिताके प्रथमाध्यायमें आयुर्वेदका प्रादुर्भाव बताते हुए लिखा है कि ब्रह्माने सबसे पहले दक्ष प्रजापति-को आयुर्वेद पढ़ाया। दक्षसे अश्विनिकुमारोंने पढ़ा। अश्विनिकुमारोंका शिष्य इन्द्र बना। इन्द्रसे भारद्वाजने आयुर्वेद पढ़कर उसका प्रचार किया।

इसी प्रकारका ही वर्णन 'सुश्रुत' में मिलता है पर यहाँ इतना अधिक है कि इन्द्रसे धन्वन्तरि दिवोदासने पढ़ा और उसने सुश्रुतादिको पढ़ाया।

भारद्वाजके कई शिष्य थे जिनमेंसे पुनर्वसु आत्रेय मुख्य थे। आत्रेयके अग्निवेश, भेल, हारीत जतूकर्ण, परा-शर और क्षारपाणि ये छः शिष्य थे। इनमेंसे प्रत्येकने पृथक्-पृथक् ग्रंथ बनाया। 'चरक संहिता' आत्रेयके प्रधान शिष्य 'अग्निवेश' की बनाई हुई है। वर्तमान संस्करण चरक मुनिका किया हुआ है। वर्तमान संपूर्ण संहिता चरक मुनि द्वारा सम्पादित नहीं। अन्तिम ४४ अध्यायोंको पंचनदनिवासी दृढ़बलने पूर्ण किया है।

भेल और हारीतके ग्रंथ भी मिलते हैं। भेलके ग्रंथकी हस्तलिखित प्रति तंजौरके पुस्तकालयमें अब भी विद्यमान है।

चरककी प्राचीनताके सम्बन्धमें मतभेद है। हिन्दू लोग चरकको अत्यन्त प्राचीन-कालका मानते हैं। परन्तु

यूरोपियन विद्वान् इसको इतना पीछे नहीं ले जाना चाहते। सिल्वन लेवी (Sylvain Levi) ने बौद्ध त्रिपिटकोंका चीनी अनुवाद पढ़कर बतलाया है कि चरक कृषण राजा कनिष्कके राजवैद्य थे। परन्तु इस बातको माननेमें निम्न आपत्तियाँ हैं—

(१) बौद्धत्रिपिटकमें चरकको केवल राजवैद्य लिखा है, प्रमाणिक ग्रंथका निर्माता नहीं लिखा। अतएव यह कहना कठिन है कि चरक संहिताके कर्त्ता और कनिष्कके राजवैद्य एक ही हैं।

(२) हिन्दू वैद्य 'चरक' को अत्यंत पुराना बतलाते हैं। इस पर यदि एक दम विश्वास नहीं तो अविश्वास भी नहीं कर सकते। वे लोग चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट्ट इन तीनों-मेंसे चरकको ही प्राचीनतम मानते हैं। हारीत संहितामें लिखा है।

चरक: सुश्रुतश्चैव वाग्भट्टश्च तथापरे।
मुख्याश्च संहिता वाच्यः निम्न एव युगे-युगे॥

(३) डा० पी० सी० रायका कथन है कि कई वेद-मन्त्रोंमें 'चरक' का नाम आता है और यह ठीक भी है। इस प्रकार 'चरक' एक पद है। बौद्ध त्रिपिटकमें कनिष्कके राजवैद्यका वर्णन आया है, सम्भवत: उसे यह पद मिला हो। यह सर्वथा असंभव नहीं, कारण वाग्भट्ट सिन्धके चरक कहलाते हैं।

(४) पाणिनिने अग्निवेश और चरकके नाम पर पृथक्-पृथक् सूत्ररचनाकी है।

'कठचरकाल्लुक्' 'गर्गादिभ्यो यज्'

(गर्ग, वत्स, अग्निवेश जिनका पहले वर्णन किया गया है, अतएव पाणिनिसे पूर्व यह नाम अवश्य प्रसिद्ध होंगे। प्रोफेसर गोलस्टकर ने यह सिद्ध किया है कि पाणिनि छठी शताब्दी ई० के पूर्वके नहीं।)

(५) पतंजलिने चरक पर टीकाकी है। पतंजलि द्वितीय शताब्दीमें हुए थे। अतः चरक उनसे बहुत पहले हो चुके होंगे। तब तक चरकका ग्रंथ भी बहुत प्रसिद्ध हो चुका होगा। अन्यथा वे टीका ही क्यों करते?

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
अपाकरोत् यः युवको मुनीनां पतंजलिस्तं शिरसा नमामि॥

(६) चरक संहिताका क्रम, लेखनशैली आदि प्रायः ब्राह्मण ग्रंथों और न्याय वैशेषिक आदि दर्शनोंसे मिलती है और यह प्राचीन शैली इस बातका प्रमाण है कि चरक-संहिता भी उन्हींके समकालीन है।

(७) चरक-संहितामें वाद-विवाद, वितंडा, छल एवं प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द और उपमान आदि प्रमाणोंको न्याय दर्शनकी भाँति माना है तथा सांख्य दर्शनके प्रति भक्ति दिखाई है। अतः चरक-संहिता सूत्रकालसे पहिले लिखी गई है।

सुश्रुत संहिता

इस संहिताके कर्ता विश्वामित्रके पुत्र 'सुश्रुत' थे। उन्होंने काशीराज दिवोदाससे चिकित्सा-शास्त्रकी शिक्षा-ग्रहण की थी। दिवोदासका उपनाम 'धन्वन्तरि' था। सबसे पूर्व रोहण क्रिया (art of healing) का आविष्कार इन्हींने किया था। चरक औषधि-चिकित्साके विशेषज्ञ थे तो सुश्रुत शल्य-शास्त्रके पण्डित थे। इसीलिए चरकमें शल्यकर्मके सम्बन्धमें स्वयं धन्वन्तरि संप्रदायकी सहायता माँगी गई है। यथा

तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ
वैद्यानां कृत वेध्यानां व्यध शोधन रोहणे। चि० गुल्म

'सुश्रुत संहिता' के कर्ताके विषयमें भी मतभेद है। धन्वन्तरिने शल्य-चिकित्साके सिद्धान्तों पर सुश्रुतको कुछ व्याख्यान दिए थे। कहा जाता है कि वर्तमान संहिता उन्हीं व्याख्यानोंका संग्रह है। परन्तु संहिताके आदिमें ही ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनिकुमार, इन्द्र, धन्वन्तरि, सुश्रुत आदिको नमस्कार किया गया है। इससे स्पष्ट है कि स्वयं सुश्रुत इस ग्रंथके कर्ता नहीं। डल्हणाचार्यकी सुश्रुत पर टीका है। जान पड़ता है कि वर्तमान संहिता सुश्रुत संहिता की पुनरावृत्ति है। यह दूसरा संस्करण नागार्जुनका है। नागार्जुन प्रसिद्ध बौद्ध वैज्ञानिक था। सुश्रुतके पठनसे यह स्पष्ट है कि वह दूसरी प्रतिसंस्कर्ता अवश्य है। उत्तरतंत्रके प्रारम्भमें निमिनायक अन्य ऋषिका वर्णन आता है। वस्तुतः सुश्रुत संहितामें भगवान् धन्वन्तरिके सिवाय अन्य किसीका भी निर्देश नहीं होना चाहिये। चूँकि सुश्रुतादि

ऋषि भगवान् धन्वन्तरिके पास आयुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए गए थे।

सुश्रुतका काल—सुश्रुतके समयका पता लगाना कठिन है। सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र थे। परन्तु विश्वामित्रके विषयमें हमें इतना ही मालूम है कि वे वैदिक-कालमें हुए महाभारतमें भी सुश्रुतका नाम आता है।

श्यामायमानोऽथगार्ग्यश्च जावालिः सुश्रुतस्तथा।
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः।
महाभारत अनुशासनपर्व

महाभारतका समय १०००-ई० पू०निश्चित किया जाता है। अतएव सुश्रुत इनसे ही बहुत काल पूर्व हुए होंगे। शतपथ ब्राह्मणके कर्ता सुश्रुतसे परिचित थे। शतपथका समय ६०० ई० पू० के बादका भी नहीं हो सकता।

कात्यायन अपने वार्तिकोंमें सुश्रुतका वर्णन करता है अतः सुश्रुत इनसे भी बहुत प्राचीन होंगे।

'सुश्रुतेन प्रोक्तं सौश्रुतम्' (कात्यायन सूत्र)

अभी हमने 'सुश्रुत' के द्वितोय संस्करण-कर्ता नागार्जुनको कहा था। नागार्जुन कनिष्क राजवैद्यके समकालीन थे और कुछ लोग नागार्जुनको चौथी सदी ई० पू० का मानते हैं। यदि यह सत्य हो तो सुश्रुतका प्रथम संस्करण छठी शताब्दी ई० पू० में हुआ होगा—अर्थात् दो साल पूर्व हुआ होगा। फिर भी ठीक-ठीक तिथि बतलाना कठिन है। हमें प्राचीन भारतीय इतिहाससे थोड़े बिखरे हुए खण्ड मात्र मिलते हैं। उन आधार पर कोई प्रमाणिक सम्मति नहीं दी जा सकती।

सुश्रुतके शल्य-विज्ञानके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंको दो-तीन सम्मतियोंको ही पाठकोंके सम्मुख रखना शायद पर्याप्त होगा।

इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिकामें शल्यतंत्रके इतिहास (History of Surgery) पर लिखते हुए लिखा है कि

(i) "In both branches of the Aryan stock surgical practice (as well as medical) reached a high degree of perfection at a very early period".

(ii) "we may give the first place than to the eastern branch of the Aryan race in a sketch of the rise of the Surgery".

वस्तुतः नासासंधान आदि कई रीतियाँ सुश्रुत में इतनी उत्तमतासे वर्णित हैं कि पाश्चात्य विज्ञान में उन्हें (Indian method) के नामसे पुकारा जाता है और आजके शल्य चिकित्सक (surgeon) भी इसी ही प्रकारसे शल्य कर्म करते हैं।

महाशय वेबर अपने ग्रन्थमें लिखते हैं—

"In surgery, too, the Indians seem to have attained a special proficiency and in this department European Surgeons might perhaps, even at the present day, still learn something from them, as indeed they have already borrowed from them the operation of Rhinoplasty".

इसी प्रकार म० कास्टेलानी और शैमर्स अपनी पुस्तक 'Manual of Tropical medicine' में लिखते हैं—

"There is no doubt that the Indian Doctors were well-versed, not merely in medicine & surgery, but also in the prevention of disease & operative midwifery. They apparently knew Diabetes Mellitus, Dysentery, Pthisis, Syphilis & diseases due to worms etc. In diagnosis they paid a great attention to the examination of the pulse, the temparature of the body the colour of the skin, the urine,

faces, eye, voice and the respiratory sounds".

अर्थात् उस समय आयुर्वेदका ज्ञान पूर्ण था और इस ज्ञानकी प्रत्येक शाखाका वैज्ञानिक रीतिसे अनुसन्धान तथा अनुशीलन किया जाता था यह इसीसे स्पष्ट है।

प्राचीन हिन्दुओंको किसी उत्तम संज्ञाहर द्रव्य (anaesthetic) का ज्ञान नहीं था। कहा जाता जाता है कि बुद्धसे कुछ समय पूर्व (लगभग ५०० ई० पू०) एक संज्ञाहर द्रव्यका 'सम्मोहिनी' नामसे प्रयोग किया जाता था। बनारसके एक सेठके लड़केका पेट चीरकर उलझी हुई आँतोंको चीरकर फिर ठीक स्थितिमें रख देना, राजगृहके एक सातसालके रोगको अच्छा करनेके लिये सिरका आपरेशन करके कीड़े बाहर निकालना आदि मगधराज बिम्बसारके राजवैद्य जीवक कुमारभृत्य द्वारा किये गये ऑपरेशनोंका वर्णन बौद्ध साहित्यमें आता है। जीवक इन ऑपरेशनोंमें सम्मोहनके लिये किसी औषधिका प्रयोग नहीं करता था। रोगी को स्थिर रखनेके लिये वह उसे खम्भे या शय्या पर अच्छी तरह बाँध देता था जिससे वह हाथ-पैर न मार सके।

सुश्रुत शल्य-कर्मसे पूर्व मद्यकी प्रभूत मात्रा पिला देता था और रोगीके बेहोश हो जानेपर ऑपरेशन करता था। इन सब त्रुटियोंपर ध्यान देते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि समयानुसार जाति ने शल्यतन्त्रमें भी असीम उन्नति की थी। वह लोग भी व्रण सीनेके लिए आंत का प्रयोग करते थे।

यह कहना कठिन है कि उस समय उन्हें रोगोंके जीवाणुओंका ज्ञान भी आज जैसा था क्योंकि उस समय सूक्ष्मदर्शक जैसे यन्त्रका होना असम्भव सा जान पड़ता है। लेकिन फिर भी उन्हें कृमियोंका ज्ञान अवश्य था और वे यह भी जानते थे कि कृमियोंद्वारा व्रणोंमें विकार हो जाते हैं। इसीलिये हो वह व्रणोंका विषहारी वस्तुओंसे प्रक्षालन तथा रोगीके स्थान तथा शय्याको धूपनद्वारा शुद्ध कर लेते थे।

शल्य-तन्त्रकी अवनति

प्राचीन शल्यतन्त्रके इतने उन्नत हो चुकने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि सुश्रुतके बाद ही शल्यतन्त्रकी अवनति आरम्भ हो गई। सुश्रुतके बाद इस विषयके जितने भी ग्रन्थ मिलते हैं उनमें कहीं भी इस विषय सम्बन्धी कोई नई बात नहीं है। केवल सुश्रुतके उपदेशों को ही सबने अपने शब्दोंमें रखनेका यत्न किया है। संस्करण-कर्ताओंके स्वयं शवच्छेद न कर देखनेसे, उनको शरीर-शास्त्रका उचित ज्ञान न हो सकनेसे उनका ज्ञान केवल पुस्तकोंके पाठ पर ही सीमित था। यही कारण है कि शरीर स्थान तथा अन्य स्थानोंमें बहुतसे भ्रान्तिजनक लेख या पाठ समाविष्ट हो गए हैं।

शल्यतन्त्रकी अवनतिके कई कारण हैं—

(१) शवच्छेद-क्रियाको छोड़ देना सबसे मुख्य कारण है। मनुने शल्य-चिकित्सकोंके लिये कुछ ऐसे ही नियम बना दिए थे और शवच्छेदन भी अनियमित करार कर दिया था जिससे हिन्दुओंको उसी समयसे ही शल्य-चिकित्सकोंसे घृणा होने लगी और केवल निम्न और मध्य कोटिके व्यक्ति ही इस ओर अभिरुचि रखते थे। आज भी नाई इत्यादि फोड़ोंको चीरनेका काम करते हैं। ज़र्राह भी इसी श्रेणीके व्यक्ति होते हैं। यही कारण है कि इस विद्याकी उन्नति रुक गई।

(२) मन्दिरोंके पुजारियों और साधुओंने भी इस विद्याकी अवनतिमें सहयोग दिया। इन लोगोंने मन्त्र, झाड़-फूँक, देवताके चढ़ावे और चरणामृतसे चिकित्सा आरम्भ कर दी। रोगग्रस्त अवस्थाओंमें अभी तक भी मन्दिरों और देवताओंकी शरण ली जाती है। मिश्र और ग्रीसमें भी यह प्रथा बहुत प्रचलित थी।

(३) रोगीको आपरेशन करानेसे वैसे ही डर लगता है विशेष कर प्राचीन समयमें जब कि संज्ञाहर वस्तुका भी प्रयोग नहीं होता था उन दिनों इससे भयभीत होना और भी अधिक स्वाभाविक था।

(४) शस्त्र-चिकित्साकी अवनतिमें बौद्ध धर्मका भी कुछ कम हाथ नहीं है। दो हज़ार वर्ष पहले भारतमें जब यह धर्म फैला तो साराका सारा देश यहाँ तक कि राजे-महाराजे भी इसके अनुयायी हो गए थे। यह धर्म अहिंसा-भूयिष्ठ था। किसी भी प्राणीको तनिक-सा कष्ट देना इनके धर्मके विरुद्ध था। इस कारण शस्त्रका भी निषेध था। मानवी और दैवी चिकित्साने यद्यपि उन्नतिकी लेकिन

चिकित्साशास्त्र की अवनति आरम्भ हो गई। शवछेदन तथा पशुवध राजाज्ञासे बन्द कर दिए गये थे। बौद्धोंके पूर्व-काल में गुरु और शिष्य मिलकर पशुओं पर शल्य-क्रियाका अभ्यास किया करते थे। किन्तु बौद्ध-कालमें यह भी बन्द हो गया। स्वयं बुद्ध भगवान्ने यद्यपि विद्रधिको वेधसदृज से चीरनेकी अनुमति दे दी थी किन्तु गुदाके समीप शल्य-कर्मोंका निषेध कर दिया था। बौद्ध साहित्यमें एक कथानक इस प्रकार है :—

किसी समय राजगृह नगरमें वेलुवन स्थानमें बुद्ध भगवान ठहरे हुये थे। एक दिन भ्रमण करते हुये वह भिक्षुकोंके निवास-स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ पर एक भिक्षु भगन्दर रोगसे पीड़ित था और शगोत्त नामक शल्य-चिकित्सक द्वारा उसका शल्य-क्रिया करवा रहा था। उसी समय बुद्ध भगवान्ने अपने शिविरमें बुलाकर उनकी भर्त्सना करते हुये कहा तुम अपने शरीरके उस स्थान पर कभी शस्त्र-कर्म मत कराओ। मल-द्वारके दो इंचके भीतर शस्त्रकर्म करना या करवाना वर्जित है। जो ऐसा करता है वह अपराधी है।'

अन्य विषयों और विद्याओंकी भाँति आयुर्वेदके ह्रासका सबसे मुख्य कारण हुआ है 'भारतकी परतन्त्रता'।

प्रथम तो हमारे देशपर जङ्गली जातियोंके आक्रमण हुए जिन्होंने हमारे पुस्तकालयोंको जलाकर ज्ञानराशिका नाश कर डाला। जब मुसलमान हमारे देशके अधिपति बने तो उस समय आयुर्वेदका स्थान हिकमत या यूनानी-ने ले लिया। जब देश अंग्रेज़ोंके हाथ आया तो आयुर्वेद और यूनानीका भाग्य एक समान होकर पाश्चात्य चिकित्सा (allopathy) राजकीय पद्धति होनेके कारण सारे देशमें फैल गई।

दूसरी ओर हमारे देशके वैद्य और कविराजोंके अन्ध-परम्परा, विश्वास तथा संकुचित दृष्टि होनेके कारण पाश्चात्य विद्यामें उनकी प्रमाणिक औषधियों तथा विधियों को न सीखा। परिणाम यह हुआ कि आयुर्वेदमें किसी नवीन वस्तु अथवा ज्ञानका समावेश न हो सकनेसे उसकी बराबर हानि होती गई है और अब तक हो रही है यद्यपि आयुर्वेदके प्राचीन विद्वानोंका मत यह रहा है कि 'जहाँ जो चीज़ उत्तम मिले उसको ग्रहण किया जाए'। तीन सौ वर्षोंसे अधिक नहीं हुए जब भावमिश्र द्वारा रचित भावप्रकाशमें अनेक नवीन औषधियोंका समावेश किया गया था लेकिन आजका वैद्य-समाज इसके लिये प्रस्तुत नहीं दीख पड़ता।

हमारा कर्तव्य

यद्यपि आयुर्वेद पर सहस्रों वर्षोंसे विपत्तियाँ आ रहीं हैं लेकिन इन आपत्तियोंका सामना करनेके बाद भी उसका अब तक स्थिति बनाए रखना सचमुच आश्चर्यजनक है। यह सब इस विद्याके और प्रणेताओं, ऋषि-मुनियोंकी तपस्या का ही फल है जिन्होंने अत्यन्त परिश्रम, अन्वेषण और अनुसन्धानके पश्चात् आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तोंका निर्देश किया था।

किन्तु आयुर्वेद-प्रेमियोंको आयुर्वेदको साम्प्रतिक अवस्थासे संतुष्ट नहीं होना चाहिये। क्या आयुर्वेद इस दशामें है कि उसको जीवित विज्ञान कहा जा सके या वह पाश्चात्य विज्ञानके साथ टक्कर ले सके?

जीवित विज्ञान तो उसे कहते हैं जो रात-दिन चौमुखी उन्नति करता हुआ नवीन अन्वेषणाओं और नवीन अनुसंधानोंसे अपने भंडारको भरता हो। गत ५० वर्षोंसे पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञानका तो रूप ही पूर्णतया परिवर्तित हो गया है। यही जीवनका लक्षण है। जिस विज्ञानके भंडारमें वृद्धि नहीं होती, नवीन अन्वेषण तथा अनुसन्धान नहीं होते, वह जीवित विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

सम्प्रति आयुर्वेद-प्रेमियों तथा वैद्यसमाजका यह कर्तव्य है कि हम आयुर्वेदके पुनरुत्थानका पूर्ण प्रयत्न करें। पुनरुत्थानका यह अर्थ नहीं कि ग्रन्थोंके मूलोंकी सत्यता ही प्रमाणित करनेका यत्न किया जाता अपितु आवश्यकता इस बातकी है कि पक्षपात-रहित होकर प्रत्येक वाक्यका अनुसन्धान किया जाता। उसमें जो सत्य निकले उसको माना जाता और असत्यका त्याग कर दिया जाता।

पाश्चात्य विद्वानोंका भी यही तरीका है। उन्होंने हमारी कितनी ही औषधियोंको परीक्षण करने पर अपने औषधि-विज्ञानमें सम्मिलित कर लिया है।

आयुर्वेदका अर्थ है "जीवनका ज्ञान"। आयुर्वेद शब्दसे

किसी विशेष ग्रन्थका बोध नहीं होता। किन्तु उससे विज्ञानकी उस पहली शाखाका ज्ञान होता है जिसका सम्बन्ध जीवन-मरणसे है। जो शाखा रोगग्रस्त व्यक्ति को रोगसे मुक्त कराने वाली, आतुरोंका कष्ट-निवारक और मानवी जीवनको बढ़ाने वाली है वह आयुर्वेद है, वह चाहे पश्चिमसे आवे चाहे पूर्वसे। चरक और सुश्रुतमें ही आयुर्वेदको परिमित कर लेना महा भूल है। यह तो केवल आयुर्वेदको विशेष शाखाओंसे सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ हैं, आयुर्वेद नही हैं।

'आयुर्वेद' का उत्थान करनेके लिए संसारके किसी भी भागमें से जो उपयोगी ज्ञान मिलेगा वह लेना होगा और पक्षपात-रहित होकर उसका आत्मीकरण करना होगा। ज्ञान कहीं से भी मिले वह पवित्र, आदरणीय और ग्राह्य है।

सुई द्वारा आधुनिक चिकित्सा तथा सुई लगानेकी विधि

[ले०—डा० उमाशंकर एम० बी० बी० एस०]

चिकित्सामें सुई लगानेकी प्रथा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। अधिकांश रोगोंमें किसी न किसी प्रकारकी सुई लगाई जाती है। सुई लगानेका आशय यह है कि उपयुक्त औषधि पिचकारी-द्वारा शरीरके विशेष अंगमें प्रविष्ट करा दी जाती है।

सुईसे देनेके लिये औषधियाँ

ये विशेष क्रियाओं द्वारा बनाई जाती हैं। यह आवश्यक है कि औषधि तरल रूपमें हो जिससे पिचकारीमें वह खींची जा सके। कुछ औषधियाँ घुलनशील टिकियोंके रूपमें आती हैं जो सुई लगाते समय स्रवित (डिस्टिल्ड) पानीमें घोल ली जाती हैं। कुछ औषधियाँ घुलनशील नहीं होती हैं। ये गाढ़े तैल पदार्थोंमें घोंट दी जाती हैं। सिरम (कीटाणुनाशक रक्तरस) और वैक्सिन (मरे कीटाणुओंका घोल) तो तरल रूपमें ही होते हैं।

सुई द्वारा प्रवेश हुई औषधियाँ कई प्रकारसे शरीरमें अपनी क्रिया करती हैं। हम यहाँ इन पर विचार न करके केवल सुई लगानेकी प्रधान विधियों पर ही विचार करेंगे।

(१) त्वचाके नीचे।

(२) मांसपेशियोंमें।

(३) शिराओंमें।

सुई लगाईकी पिचकारी

सुईके लगानेके लिये कुछ बातें ऐसी हैं जो सभी विधियोंके लिये लागू हैं। पहले इन्हें जान लेना चाहिये। फिर इन विधियोंका अंतर समझाया जायगा।

सुई लगानेके लिये अच्छी पिचकारीकी आवश्यकता है। पिचकारीके भाग ये हैं :—

(१) शीशेकी नली (बैरेल) जिसमें शतांश मीटर और उसके भागोंके अथवा बूंदके निशान लगे रहते हैं, जिससे हमें ज्ञात हो सकता है कि पिचकारीमें कितनी मात्रामें दवा खींची गई और कितनी शरीरमें दी गई है।

डाट (प्लंजर) नलीमें डाली जाती है। डाट बाहरकी ओर खींचनेसे पिचकारीमें औषधि आ जाती है।

(२) डाट अंदर दबानेसे औषधि बाहर निकलती है। डाटकी नलीमें डालकर ऊपरसे टोपी बन्द कर दी जाती है जिससे पिचकारी उलटने पर डाट स्वयं ही नलीसे बाहर न निकल आये।

(३) नलीके नीचेके सिरे पर सुई लगाई जाती है। सुइयाँ विविध मोटाई तथा लम्बाईकी होती हैं। अच्छी सुइयाँ ऐसे स्टील लोहेकी बनी रहती हैं कि उनमें मुरचा लग ही नहीं सकता। सुई खोखली होती है। इसके छेदमें पीतलका पतला तार डाला रहता है जिससे दर्दसे छेद बन्द न हो जाय और प्रयोगके समय यह तार बाहर निकाल लिया जाता है।

सस्ती पिचकारीमें सुईको छोड़ कर अन्य सभी भाग शीशेके बने रहते हैं। इससे काम चल सकता है, परन्तु 'रेकार्ड सिरिंज' बहुत अच्छी होती है। इसमें केवल नली ही शीशेकी बनी रहती है जिससे यदि गिर कर टूट गई तो नली अलग मँगा कर लगा ली जा सकती है। इससे किफा-

यत होगी। रुपये, डेढ़ रुपयेमें और 'रेकार्ड सिरिंज' पाँच-छ: रुपयेमें मिलती है।

साधारण प्रयोगके लिये २ घन शतांश-मीटर ५ श० मी० और १० श० मीटर वाली पिचकारियोंसे काम चल सकता है। सुइयाँ भी उसी अनुसार लम्बी और मोटी या पतली मिलती हैं।

पिचकारी सदा शुद्ध रक्खो

यह परमावश्यक है कि सुई लगानेकी क्रियामें काम आने वाली सभी वस्तुयें तथा रोगी और चिकित्सकका शरीर और हाथ बिल्कुल साफ़ रहे जिससे कीटाणुका नाम भी न हो।

पिचकारी दो प्रकारसे शुद्ध रक्खी जाती है। पहली विधि तो यह है कि प्रयोगसे ठीक पहले पिचकारीके सब भाग (सुई भी) अलग करके किसी साफ़ कटोरेमें डाल दें। फिर उस कटोरेको साफ़ पानीसे भर दें। पानी कमसे कम इतना रहना चाहिये कि पिचकारीके सभी भाग पानीमें अच्छी तरह डूब जायँ। अब इस कटोरेको आग पर गरम करना चाहिये जिससे पानी उबलने लगे। पाँच मिनट तक पानीमें उबाल लेनेके बाद चिमटीसे, जो स्वयं स्पिरिटमें या उबलते पानीमें डालकर कीटाणु रहित की गई हो, नली को बाहर निकाल लेना चाहिये। डाट निकाली जाती है। पचीस तीस सेकंड तक ठंडा होने देनेके बाद चिमटी ही से डाटको पकड़े हुए उसे नलीमें पहना दिया जाता है। फिर सुईको भी चिमटीसे निकाल कर सिर पर कस दिया जाता है।

उबलते हुए या बहुत गरम पानीमें एकाएक पिचकारी डालनेसे शीशा टूट जायगा। यदि नलीमें डाट पड़ा ही रहे और पानीमें डाल कर पिचकारीको उबाला जाय तो शीशा और धातु जिससे डाट बनी है, तापसे बराबर-बराबर न बढ़ेंगे और या तो शीशेकी नली ही टूट जायगी या डाट नलीमें फँस जायगी जिससे उनका निकालना कठिन हो जायगा। ठंडा करते समय भी यही बात लागू है। पिचकारीके भागोंको धीरे-धीरे ठंडा होने देना चाहिये। जब कुछ क्षणमें नली इतनी ठंडी हो जाय कि उसे हाथसे पकड़ सकें तब उसे बाँयें हाथमें ले लेते हैं और दाहने हाथसे चिमटी द्वारा जोड़े। सुईको अँगुलियोंसे कभी न छूना चाहिये क्योंकि यह भाग शरीरके भीतर प्रवेश करता है। सुईके भीतरसे पीतलका तार निकाल लेना चाहिये।

दूसरी विधि यह है हर समय पिचकारीके सब भाग पृथक्-पृथक् करके स्पिरिटमें डाले रहें। स्पिरिट किसी चौड़े मुँह वाले शीशेके बरतन या "जार" में भरा रहता है। बरतनके पेंदेमें सूईकी पतली गद्दी डाल दी जाती है, जिससे पिचकारी या बरतन टूट न जाय। बरतनका ढकना बरतनके मुँह पर बिल्कुल सच्चा बैठना चाहिये, जिससे बन्द करने पर स्पिरिट उड़ न जाय। (ऐसे बरतन उनके मुँहमें रेत या एमरी पाउडर डाल और ढक्कनसे रगड़ कर बनाये जाते हैं जिससे ढक्कन सच्चा बैठता है। ऐसे बरतन प्रत्येक बड़े शहरमें खरीदे जा सकते हैं।) स्पिरिटमें पिचकारी का सब भाग बिल्कुल डूबा रहना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर बरतनसे पिचकारीके सब भागोंको चिमटी द्वारा एक-एक करके बाहर निकाल कर जोड़ लेना चाहिये। उसके बाद साफ उबले पानीको पिचकारीमें ३-४ बार खींचकर बाहर फेंक देनी चाहिये, जिससे स्पिरिट धुल जाय।

त्वचाकी तैयारी

रोगीके शरीरके जिस भागमें सुई लगाई जाने वाली हो वहाँ त्वचाको स्पिरिटसे भीगे रुई द्वारा कुछ देर तक रगड़ कर साफ कर लेना चाहिये। टिंचर आयोडीन लगानेसे यह हानि होती है कि त्वचा गहरे रंगकी हो जाती है, जिससे वहाँकी शिरायें अच्छी तरह दिखलाई नहीं पड़ती, इससे स्पिरिट ही अच्छा है। परंतु यदि टिंचर आयोडीन काममें लाये तो रुईके फाहेसे आयोडीनका रङ्ग साफ कर लेना चाहिये। सुई लगा कर जब सुई निकाल ली जाती है तब फिर उसी स्थान पर स्पिरिटसे भीगी रुई रगड़ दी जाती है जिससे सुई-छिद्रका स्थान साफ हो जाता है और वहाँके कीटाणु मर जाते हैं तथा रक्त नहीं निकलता और साथ ही औषधि भी शरीरमें एक ही स्थान पर रुकी रहनेके बदले शीघ्र ही फैल जाती है। सुई लेनेके बाद पिचकारीमें साफ पानी बार-बार खींच कर उसे धो लेनी चाहिये। तब स्पिरिटसे भी यही क्रिया दुहरानी चाहिये। फिर केवल हवा ही बार-बार पिचकारीमें खींच कर बाहर निकाल देनी चाहिये, जिससे सुई और नली अन्दरसे सूख जाय। अंतमें

पिचकारीके सब भागोंको पृथक् करके और सुईके छिद्रमें पतला पीतलका तार डालकर पिचकारी रखने वाली डिब्बी में सब भागोंको रख देना चाहिये या स्पिरिटके बरतनमें सब भागोंको डुबो देना चाहिये जिसमें पुनः आवश्यकता पड़ने पर पिचकारी साफ और तैयार मिले।

त्वचाके नीचे वैक्सीनकी शीशियाँ

मुख्यतर "वैक्सीन" तथा कुछ अन्य औषधियाँ, जैसे दर्द दूर करनेकी दवा या चैतन्य करनेकी दवा या नींद लानेकी दवा त्वचाके नीचे पिचकारीसे दी जाती हैं। सुईकी नोक ख़ूब तेज़ होनी चाहिये। त्वचाके नीचे दी जाने वाली औषधियाँ बहुत कम मात्रामें दी जाती हैं; इसलिये १ या २ शीशी की पिचकारी उपयुक्त है। वैक्सीन दो प्रकारकी शीशियोंमें आती है। एक प्रकारमें प्रत्येक शीशीमें नियमित मात्रा रहती है। शीशीकी पतली गर्दन साथकी आरीसे काट कर सुई द्वारा कुल दवा पिचकारीसे खींच ली जाती है। दूसरे प्रकारमें शीशीमें बहुत अधिक दवा रहती है, जिसमेंसे थोड़ी ही मात्रा निकाली जाती है। शीशीके मुँह पर मोटा रबड़ तना रहता है। इस पर पहले स्पिरिट लगाया जाता है, और सुईको इसी रबड़में चुभो कर उपयुक्त मात्रामें औषधि खींच ली जाती है। इस प्रकारकी शीशीसे दवा निकालनेके पहले पिचकारीमें कुछ दवा पहले खींच ली जाती है और सुईको रबड़के ढक्कनमें चुभाने पर वह दवा शीशीमें भर दी जाती हैं, जिससे जितनी दवा शीशीसे निकाली जाती है उतनी ही हवा शीशीमें घुस जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो औषधिके खींचने में कठिनाई पड़ेगी। वैक्सीनकी शीशीको दवा निकालनेके पहले खूब झकझोर देना चाहिये जिससे सब दवा एक रूप में मिल जाय। यदि दवा टिकियाके रूपमें हो तब एक चम्मचमें पहले स्पिरिट लगाकर और स्पिरिटको आग पर जला कर उसे कीटाणु-रहित कर लिया जाता है। इस चम्मचमें लगभग १ श० मी० स्रवित जल और दवा डाल स्पिरिटकी ज्वाला पर घुला लेनी चाहिये। साथ ही घोलको ½ मिनटके लिये उबाल भी लेना चाहिये। ठंडा हो जाने पर इस घोलको पिचकारीमें खींच लेना चाहिये। यदि घोल एक घन शतांश मीटर से कम हो तो पिचकारीमें थोड़ा-सा स्रवित जल भी खींच लेना चाहिये।

पिचकारीमें शीशीसे दवा खींच लेने पर और सुईको शरीरमें चुभानेके पहले पिचकारीको सुई ऊपर करके पकड़नी चाहिये और जो हवा या बुलबुला पिचकारीमें खिंच आया है उसे, डाटको थोड़ा-सा दबा कर, बाहर निकाल देना चाहिये। अन्यथा वायु भी शरीरमें दवाके साथ चला जायगी और यदि शिरामें वायु पहुँचेगी तो हानि होनेकी सम्भावना है। साथ ही जब सुई औषधिकी शीशीमें औषधि निकालनेके लिये डाली जाती है तब सुईके बाहरी सतह पर भी वही दवा लग जाती है। इसको स्पिरिटसे तर रुईसे पोंछ देना चाहिये, क्योंकि कुछ औषधियाँ ऐसी होती हैं कि यदि वे त्वचाके नीचे त्वचाको छूती हुई लग जायँ तो उस स्थान पर बहुत जलन पैदा होती है और कभी-कभी घाव भी हो जाता है, यद्यपि ये दवायें यदि स्वच्छ सुई द्वारा त्वचाके काफ़ी नीचे छोड़ दी जाय तो उपरोक्त लक्षण नहीं उत्पन्न होते।
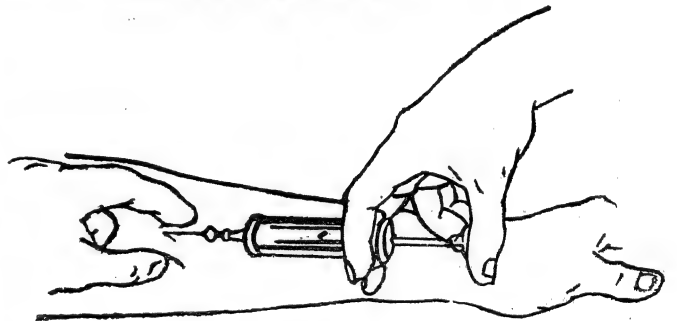
त्वचाके नीचे सुई देनेकी विधि

सुई लगाना

इस प्रकार पिचकारी, औषधि तथा रोगीकी त्वचा सुई देनेके लिये तैयार कर ली जाती है। प्रायः यह सुई बाईं भुजामें बाहरके भागमें लगाई जाती है, क्योंकि लोग दाहिने हाथसे काम करते हैं। इससे इस हाथमें सुई लगाने पर हाथ हिलानेमें रोगीको असुविधा होगी। रोगीकी भुजा त्वचाको अपने बायें हाथके अँगूठे और तर्जनी अँगुलीमें धीरेसे पकड़ कर कुछ बाहर खींचना चाहिये जिससे वहाँकी त्वचा मांस-पेशीसे कुछ बाहर खिंच आये और दाहिने हाथमें पिचकारी लेकर उसकी सुईको त्वचा और मांसपेशीके

बीचके भागमें जल्दीसे घुसेड़ देनी चाहिये। धीरे-धीरे सुई चुभानेसे कष्ट होता है। सुईको पूरा शरीरमें कभी न घुसेड़ना चाहिये। करीब तीन-चौथाई भीतर रहे और बाकी चौथाई बाहर। कारण यह है कि यद्यपि सुइयाँ ऐसी ही कभी टूटती हैं, तो भी यदि कभी या रोगीके हाथ झटकनेसे या अन्य किसी कारणसे यदि कभी टूटती है तब सर्वदा जड़ ही से टूटती है। यदि पूरी सुई जड़ तक शरीरमें छोड़ दी गई है और सुई टूट जाय तो सुईका कोई भाग शरीरसे बाहर निकला रहेगा जिससे वह आसानीसे पकड़ कर बाहर खींच ली जाय। सुई शरीरमें भोंक कर पिचकारीमें लगे नाप द्वारा उचित मात्रा तक दवा शरीरमें डाल दी जाती है। फिर सुई निकाल ली जाती है और त्वचाके उस भाग पर स्पिरिटसे तर रुईसे रगड़ दिया जाता है।

मांसपेशियों में सुई लगाना

मांसपेशियों में सुई लगानेके लिये भी यही विधि है। प्रायः नितम्बों या कंधोंके मांसदार भागमें सुई लगाई जाती है। इसके लिये अंसाच्छादनी पेशी या नैताम्बिक पेशियाँ उपयुक्त हैं। नितम्बोंमें लगानेके लिये रोगीको चारपाई या मेज़ पर एक करवट लिटा देना चाहिये। उपरोक्त स्थानोंमें सूई देनेका कारण यह है कि वहाँ मांसपेशियाँ अधिक होती हैं। इससे अधिक औषधि डाली जा सकती है और वहाँ रक्तका संचार अधिक रहनेसे शीघ्र ही दवा शरीरमें भिन जायगी और कष्ट कम होगा। इस कामके लिये १० श० मी० की पिचकारी और उसी अनुसार लम्बी सुई प्रयुक्तकी जाती है। सुई देनेके बाद साधारणतया कुछ पीड़ा होती है। यदि अधिक कष्ट हो तब गरम रुईसे सेकनेसे कुछ आराम होगा।

मांस-पेशियोंमें कीटाणुनाशक रक्त-रस (सिरम) दूध, रोगीका ही रक्त, मलेरियाके लिये कभी-कभी क्विनैन, आदि औषधियाँ दी जाती है। उपदंश रोगके लिये भी अब नई औषधियाँ मांस-पेशियोंमें दी जाती हैं।

त्वचा और मांस-पेशीमें सुई लगाना तो बहुत सरल है। बहुत औषधियाँ शिरामें डाली जाती हैं। शिरामें सुई लगानेमें सूईकी नोक शिरा (vein) की पेट (lumen) में डाली जाती है जिससे पिचकारीसे औषधि शिरामें आकर उसी क्षण रक्तमें मिल जाय। इस कार्यके लिये ऐसी शिरा चुनी जाती है जो त्वचाके कुछ ही नीचे हो और जो काफ़ी भी हो कि जिसमें सुईको शिरामें डालनेमें कठनाई न हो।

शिरा में सुई लगाना

शिरामें सुई डालनेमें कुछ कठिनाई पड़ती है और अभ्यासकी आवश्यकता है। विशेष कर स्थूल शरीरवाले रोगियोंमें और बच्चों तथा स्त्रियोंमें जिनकी शिरायें चर्बीमें छिपी रहती है, या बहुत छोटी होती हैं शिरामें सुई लगाना बहुत ही कठिन हो जाता है। कुछ बूढ़े रोगियोंमें भी, जिनके शरीरमें त्वचासे नीचे शिरायें बहुत बड़ी दिखलाई देती हैं, सुईकी नोकको सिरामें डालनेमें बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि बूढ़े रोगियोंकी शिराओंकी दीवारें खटिक (कैलसियम) चार से भरी रहती हैं इससे सुई उनमें चुभती नहीं है और शिरायें फिसल जाती हैं। फिर यदि सुई शिराके भीतर एक दीवार छेद कर प्रविष्ट भी हुई तब डर रहता है कि हाथके ज़रा सा हिल जानेके कारण सुई शिरासे बाहर न निकल आये या यदि अधिक बल लगाकर सुई शिरामें चुभाई जाय तो झोंकेमें शिराकी दोनों दीवारोंको छेदती हुई आर-पार न हो जायगी, जिससे दवा शिरामें जानेके बदले गलत जगह पहुँच जायगी।

शिरामें औषधि बहुत अधिक मात्रामें दी जाती है, इससे १० श० मी०की पिचकारी अच्छी है। सुई बहुत मोटी न होनी चाहिये कि शिरामें जल्दी जा ही न सके। साथ ही बहुत पतली सुई लेनेसे सुईमें रक्त जम जानेका डर रहता है, जिससे सुईका छिद्र बन्द हो जायगा और पिचकारी नहीं लगाई जा सकेगी। बच्चोंके लिये पतली ही सुई उपयुक्त होगी। साधारणत: नं० १२ वाली सुई उपयुक्त होती है।

अधिकतर कुहनी (elbow) के मोड़ पर सामनेकी ओर स्थित शिरा इस कार्यके लिये चुनी जाती है। रोगीको विस्तर पर लिटा कर बाँहको किसी तख़्ते पर फैला देनी चाहिये, जिससे वह बिल्कुल स्थिर रहे और उसके हिलनेका कोई डर न रहे। बायें हाथमें सुई देना अच्छा है। शिराको

और अधिक मोटा बनानेके लिये जिसमें सुई सरलतासे भीतर प्रविष्ट की जा सके कुहनीसे कुछ ऊपर बाँहके बीचमें रबड़की डोर या नली अथवा रुमाल कस कर बाँध देना चाहिये जिससे रक्तका हृदयमें वापस जाना तो रुक जाय परन्तु शरीरमें रक्तका आना न रुके। साथ ही रोगीको आदेश भी कर दे कि वह उस हाथकी मुट्ठी बलपूर्वक बाँधे। कुछ सेकण्ड बाद यहाँकी शिरायें बहुत अधिक उभड़ कर दिखलाई देने लगेंगी। स्पिरिटसे यहाँकी त्वचा अवश्य ही रगड़ कर साफ कर दी गई रहे। पिचकारीमें दवा भर कर सब वायु निकाल दी गई रहे और साथ ही सुईका बाहरी भाग भी स्पिरिटसे पोंछ दिया गया रहे। अब सुईकी नोक को शिराकी पेटमें डालनी चाहिये। बायें हाथकी अँगुलीसे शिराको त्वचाके नीचे दबा लेनी चाहिये, जिससे वह सुई चूभोते समय छटक न सके। जिस स्थान पर त्वचामें छेद करे उसी स्थानमें शिरामें भी छेद न करना चाहिये नहीं तो सुई निकालने पर सुईके रास्तेसे रक्त निकलने लगेगा। इसे बचानेके लिये त्वचामें सुईकी नोक भोंक लेनी चाहिये। फिर सुईको कुछ दूर तक त्वचाके नीचे-नीचे बढ़ा कर उसकी नोकको शिरामें चुभाना चाहिए जिससे सुईका पथ कपाटके रूपमें हो जाय। ऐसा करनेसे त्वचा और शिरामें सुईके कारण बने छिद्र एक सीधमें नहीं रहते और सुईकी राह स्वयं ही बन्द हो जाती है, जिससे बादमें रक्त बहुत कम आता है। शिरा त्वचासे करीब ⅛ इञ्चकी गहराई पर होती है।

जब समझ ले कि सुई शिराके भीतर पहुँच गई तब इसे निश्चय करनेके लिये पिचकारीमें रक्त धीरेसे खींचनेका प्रयत्न करे। यदि पिचकारीमें रक्त आने लगे तब अवश्य ही सुईकी नोक शिरामें है। यदि बुलबुले आने लगें तब शिरा में सुईकी नोक नहीं पहुँची है और पुनः प्रयत्न करना चाहिये। कुछ लोग पहले सुईको पिचकारीसे पृथक् करके शिरामें डालते हैं और जब सुईके दूसरे सिरेसे रक्त निकलने लगता है तब समझ जाते हैं कि वे शिराको उचित प्रकार छेद पाये हैं और तब पिचकारीको सुईमें लगा कर दवा शरीरमें डाल देते हैं। यह विधि अच्छी नहीं है क्योंकि रक्त ज़मीन पर गिरता है या शरीर पर लग जाता है, जिससे बहुत गन्दा लगता है और साथ ही रोगी भी अपने रक्तको देखता है और घबड़ाता है।

प्रारम्भमें चाहिये कि अभ्यासके लिये कुछ लोगोंकी शिराओंमें सुई डाल कर रक्त निकाले। जब दो-चार बार इसे कर ले तब अन्दाज लग जायगा। उसके बाद ही औषध देनेका प्रयोग करे।

जब सुई शिराके भीतर पहुँच जाय तब आहिस्तासे बाँहमें बँधी हुई रबड़की नली या रूमालको ढीला कर देना चाहिये, जिससे रक्तका दौरा पहलेकी भाँति होने लगे। धीरे-धीरे पिचकारीसे औषधि शिरामें डाल दे। यदि कहीं शक हो कि सुई शिरासे बाहर आ गई तब पिचकारीमें पुनः रक्त खींचें और यदि रक्त आ जाय तब समझे कि शिरामें ही सुई है और पिचकारी दे डाले, पर यदि रक्त न आय तब अवश्य सुई बाहर आ गई है और पुनः दवा न डाले बल्कि सुई बाहर खींच ले। यदि सुईके पास त्वचामें कुछ सूजन आने लगे तो इसका भी यही अर्थ है कि औषधि शिरामें न जाकर उसके बाहर जा रही है, जिसके फलस्वरूप वहाँकी त्वचा उभड़ रही है। पिचकारी दे लेने-के बाद सुई निकाल ले और छिद्रके स्थान पर १ मिनटके लिये स्पिरिटसे तर रुईको दबाये रहे। पिचकारी धोकर रख दे।

उपरोक्त वर्णन नौसिखियोंके लिये है। अभ्यस्त हो जाने पर डाक्टर शिराओंमें बिना किसी हिचकके पिचकारी लगा सकता है।

आंजनम — हरित (ऐंटिमनी-क्लोराइड) बहुत बीमा-रियोंमें काममें लाया जाता है। यह सर्वदा शिरा ही में दिया जाता है। इस दवाकी एक बूँदके भी बाहर टपक जानेसे बहुत जलन होती है और सूजन उत्पन्न हो जाती है।

संखियाके कुछ यौगिक उपदंश रोगके लिये इस विधि-द्वारा बहुत अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

खटिकम (कैलसियम) भी क्षयरोगमें तथा घावसे रक्त बराबर निकलते रहने पर दिया जाता है। कुनैन तथा सिरम (रक्त-रस) भी कभी-कभी इसी प्रकार दिया जाता है।

अग्नि-प्रकोपमें विज्ञान और हवाई जहाज़

[ले०—श्री राधाकृष्ण, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०]

अमेरिकामें बनोंमे आग लगनेके कारण प्रति वर्ष लगभग ३० करोड़ रुपयेका नुकसान होता है और सन् २८ में ३४ करोड़ एकड़ लकड़ीके उपवन अग्नि-प्रकोपसे वृक्ष-रहित हो गये। अमेरिका ही में क्या, भारतवर्ष, इंगलैण्ड तथा अन्य प्रदेशोंमें अग्निसे प्रति वर्ष बहुत जान-माल नष्ट हो जाते हैं। अग्नि बुझाने वाले इञ्जनों द्वारा इस हानिको कम करनेके लिये लोग चेष्टा करते हैं।

विज्ञान और हवाई जहाज़ने इसमें बहुत कुछ सहायता दी है। अमेरिकाके सरकारी कृषि-विभागने जंगलकी रक्षाके लिये मोनो-अमोनियम फॉसफेटकी सहायता ली है। हवाई जहाजोंमें इस घोलसे भरे पीपे रख दिये जाते हैं और जिस स्थान पर अग्नि-प्रकोपका धुवाँ दिखाई देता है वहाँ जाकर ऊपरसे एकके बाद दूसरा पीपा गिराते हैं और उनसे निकला हुआ घोल वृक्षोंकी डालियों और पत्तियों पर जम जाता है और उनमें आग नहीं लग सकती। यह घोल जीव-जन्तु को जो बनोंमें रहते हैं कुछ नुकसान नहीं पहुँचाता। हवा जिस ओर बहती है उसी तरफ आग बढ़नेकी अधिक सम्भावना होती है। इस कारण हवाकी दिशाको ध्यानमें रखते हुये पाइलट लोग उसी ओर पीपोंको गिराते हैं जिस तरफ आग बढ़नेका डर होता है। पेड़ पर गिरते ही घोल फैल जाते हैं और बढ़ती हुई ज्वालाको बुझाते हैं। इस तरह आग बढ़नेसे रोक दी जाती है और जंगलका जलता हुआ हिस्सा शेष जंगलसे अलग हो जाता है।

एक पीपेमें करीब ५ गैलन घोल भरा रहता है और एक जहाजमें ६० पीपे अर्थात् ३०० गैलन घोल आ सकता है। १८० मीलकी तेज चाल वाले मोनो-अमोनियम-फॉसफेटके भरे हुए पीपोंके लदे कई जहाज़ आगके ख़तरेका सन्देशा पाते ही तुरन्त दुर्घटनाके स्थान पर पहुँच जाते हैं। आप विचार कर सकते हैं कि ऐसे अवसरों पर समय कितना अमूल्य होता है। दुर्घटनाके स्थान पर शीघ्र-से-शीघ्र सहायता पहुँचनी परमावश्यक है, नहीं तो सब कुछ जल कर राख हो जायगा और फिर सहायतासे लाभ ही क्या? इसी कारण जहाज़की तेज चालसे विशेष लाभ होता है।

एक ओर तो अग्नि-प्रकोपको बढ़नेसे जहाज़ों द्वारा रोकनेका उपर्युक्त विधिसे उपाय करते हैं और दूसरी ओर जलते हुये बनमें उस विभागके लोग आगमें कूद जाते हैं। इस विभागके लोग ऐसे वस्त्र पहिने होते हैं जो अग्नि द्वारा नष्ट नहीं होते और अपना सिर भी ढक लेते हैं। यह अवतरण छत्र (पैराशूट) द्वारा वहाँ पर आ पहुँचते हैं। वस्त्रके अतिरिक्त इन लोगोंके पास रस्सी तथा अग्नि बुझाने की सामग्री होती है। अगर अग्नि बुझाने वाले अवतरण-छत्रसे उतरते समय कहीं यह लोग बनके घनिष्ठ पेड़ों और झाड़ियोंमें टँग गये और जमीन तक न पहुँच सके तो इनके साथ वाली रस्सियाँ विशेष लाभकी होती हैं। उनके सहारेसे जमीन पर उतर कर ये लोग दावानल बुझानेमें समर्थ होते हैं। वे लोग अपने अवतरण छत्र भी साथमें ही लिए रहते हैं।

ये अवतरण छत्र ३० फुट व्यासमें होते हैं और वे शनैः-शनैः पृथ्वी पर नीचे उतरते हैं। अग्नि बुझाने वाले स्वयम्-सेवकोंको इस तरह उतरनेमें बहुत आसानी होती है। हवाई जहाज़ और पैराशूट दावानलके शान्त करनेमें बहुत लाभदायक प्रतीत हुये हैं। इसका कारण यह है कि घने जंगलोंमें जानेके लिए कोई सुगम पथ नहीं होता है और वहाँ पहुँचना कठिन हो जाता है पर यह सब कठिनाइयाँ और अड़चनें जहाज़ोंके सामने आती ही नहीं क्योंकि यह "उड़न खटोला" और "पक्षी-पंख" जहाँ और जिधर चाहें जा सकते हैं।

यह तो रहा बनके लिये, अब घरोंमें अग्नि-उत्पात की शान्तिके लिये किन विधियोंका आविष्कार हुआ है? न्यूयार्क शहरमें आरिस हेनिंगने एक कारकी आयोजनाकी है। यह कार जलते हुये मकानोंमें सीढ़ीके ऊपर लगा दी जाती है और वह उस लोहेकी सीढ़ीपर सुगमतासे दूसरी-तीसरी मञ्जिल पर जहाँ अग्नि लगी हो चली जाती है। खिड़की पर रुक जाती है और जलते हुये कमरे और अटारियोंके मनुष्य इस पर बैठ कर नीचे चले आते हैं। इस तरह जो लोग शीघ्र बाहर न आनेके कारण जल जाते बचाए जाते हैं।

ऐसे रङ्गोंका प्रयोग दरवाजों पर करते हैं जो अग्नि से शीघ्र नहीं जलते और वे अग्नि लगने पर घुलकर दरवाज़ोंके ऊपर एक ऐसी सतह बनाते हैं जिस पर कुछ समय तक अग्निका कोई प्रभाव न हो सके। इन रङ्गोंमें सोहागा, सोहागाकी तेजाब, तथा पीसे हुये महीन अग्निसे न जलने वाले शीशोंका मिश्रण प्रयोग करते हैं। कमरोंकी दीवारों पर साधारण चूनेकी जगह पर एक दूसरे ढंगसे तैयार किये गये चूनेका प्रयोग होता है। चूनेको पानीमें धीरे-धीरे घोलते हैं और उसे ढक देते हैं। इसके बाद चूनेमें नमक मिलाते हैं और पीसे हुये चावलका मिश्रण कर देते हैं।

इस मिश्रणको उबाल कर पेस्ट बना लेते हैं। कई दिनों तक इसको ऐसा ही रखनेके बाद दीवारों पर गरम-गरम चूनेमें मिलाकर पोतनेके काममें लाते हैं। अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सलफेटके घोलमें दरवाजोंके टाँगने वाले पर्दोंको डुबो देनेसे उसमें अग्निसे शीघ्र जलनेकी सम्भावना कम हो जाती है तथा पर्दोंका रङ्ग आदि भी नहीं नष्ट होने पाता।

अदृश्य चश्मे

[ले०—श्री गौरीशंकर तोषनीवाल, बी० कॉम०]

६,००० अमेरिकन आज अदृश्य चश्में काममें ले रहे हैं। इनमें नायक, नायिका, जहाज़के कप्तान, गायक, खिलाड़ी आदि सभी हैं। इनके जान-पहचान वालोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ये लोग चश्में प्रयोगमें ला रहे हैं।

ये चश्में आँखकी पुतलोसे सटे रहते हैं। जिधर आँखें घूमती हैं, उधर ये भी घूम जाते हैं। एक फुटकी दूरी पर ये अदृश्य हो जाते हैं।

इन लेन्सके पहिनने वालोंको कई लाभ हैं। कुछ आँखोंकी ऐसी बीमारियाँ होती हैं, जिनमें ये बड़े लाभदायक सिद्ध हो चुके है। ये न कभी झटकेसे गिरते हैं और न वर्षासे भीग कर धुँधले ही होते हैं। खिलाड़ियोंको खेलकूदमें इनमें बड़ी सहायता मिलती है। जहाज़के अफ़सरोंका समुद्री बौछारोंसे बचाव होता है। कारख़ानोंमें विविध धुओंसे ये आँखोंकी अच्छी तरह रक्षा करते हैं। यही कारण है कि आज जर्मनीमें ५०,००० मनुष्य इन्हें काम में ला रहे हैं।

लेकिन इनसे नुक़सान भी हैं। पहले तो ये महँगे पड़ते हैं। लगभग ३००) में इनका एक सेट मिलता है। डाक्टरकी फ़ीस तो अलग रही। इन्हें लगानेमें लोगोंको बड़ी दिक्कत होती है। हमेशा यह ख्याल रहता है कि आँखमें कुछ अटक रहा है। जिनके पलक कड़े होते हैं वे तो इन्हें काममें ला ही नहीं सकते। डाक्टरोंके अनुसार प्रति चौथे घण्टे इन्हें उतारना लाज़मी है, ताकि इस बीचमें आँखोंको आराम मिल सकें। हाँ, वैसे तो लोग १६ घंटे लगातार पहने देखे गये हैं। शुरू-शुरूमें तो ये कुछ मिनटोंके लिये ही पहिने जाते हैं।

अदृश्य ऐनक काफ़ी सुरक्षित हैं। अभी तक इनके टूटनेका केवल एक ही केस हुआ है जिसमें भी आँखोंको कोई चोट नहीं आई। एक अदृश्य ऐनक पहने हुए महाशय मोटरसे लड़ गये और बुरी तरह घायल हुये। अगर सादा ऐनक पहने होते, आपकी आँखको बहुत खतरा था। आँखोंके बाहर भी इनके फूटनेका बहुत कम डर है। अगर कोई जान-बूझकर इन्हें तोड़ना चाहे तो दूसरो बात है।

इन लेन्सको आँखोंमें बड़ी होशियारीसे बैठाया जाता है ताकि आँखोंमें किसी प्रकारका दर्द न मालूम होने लगे। पहले तो इनको बहुत हो अच्छी तरहसे पालिश करते हैं। जब-जब इनको पहना जाता है, एक चिकना पदार्थ इनके मेहराबमें रख दिया जाता है। यह पदार्थ पहनने वालेके आँसुओंसे ही बनता है।

इन अदृश्य चश्मोंका आविष्कार सन् १८२७ में हरशल द्वारा हो चुका था, पर इस ओर सन् १८८० तक कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई। बादमें ज़ीनाको ज़ेसस फैक्टूरी ने इस कार्यमें हाथ डाला। जर्मनीके मुलर महोदय ने भी कई प्रकारके लेन्स बनाये। अब तो अमेरिकाकी बाशा एण्ड लॉब कम्पनी आँखोंके आकार तथा रंगरूपके लेन्स बनाने लग गई है। आजकल लगभग ३०० प्रकारके लेन्स बनाये जा रहे हैं। जान पड़ता है कि इनका भविष्य बड़ा उज्जवल है।

राजयक्ष्मा रोगका इतिहास

[ले०—आयुर्वेदाचार्य पं० पारसनाथ पाण्डेय, जी० ए० एम० एस०, श्री शंकर औषधालय, सीतामढ़ी (बिहार)]

पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार राजयक्ष्मा रोगके सर्व प्रथम विशेषज्ञ हिपोक्रेटिस और गेलन नामक विद्वान थे। इस रोगका वर्तमान इतिहास ईसाके ४६० से ३७७ वर्ष पूर्वसे आरम्भ होता है। हिपोक्रेटिसने चिकित्साके बहुतसे अङ्गों पर प्रकाश डाला है। इनके लेखों से पता चलता है कि इन्हें यक्ष्मा रोगके सभी लक्षणोंकी जानकारी थी। उस समयमें इसे अन्य रोगोंसे, जिनमें शारीरिक शक्तियोंका क्षय एक प्रधान लक्षण हो, अलग नहीं माना जाता था। किसी रोगसे हृदयकी शक्तियोंके नष्ट होने पर अँगुलियोंका प्रान्त भाग सूज जाता है, इस बातको हिपोक्रेटिस जानते थे। इनकी यह धारणा थी कि शारीरिक शक्तियाँ रक्त, पित्त और कफ पर अवलम्बित हैं। इनके न्यूनाधिक होनेसे ही रोग पैदा होता है। यही विश्वास चिकित्सकोंके मस्तिष्कको चिरकाल-पर्यंन्त प्रभावित करता रहा; क्यों न हो? भारतीय चिकित्सा-विज्ञान तो इस बात का पहिलेसे ही निर्देश कर रहा है। हिपोक्रेटिसके बाद गेलन १३० से २०० ई० तकके लेखोंका पता चलता है। गेलन पहले-पहल यक्ष्मा रोगको संक्रामक (epidemic) समझा था। इसको विश्वास था कि फुफ्फुसों (lungs) में व्रण होनेसे यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। गेलन के बाद १६वीं शताब्दीके आरम्भ तक यूरोपीय वैज्ञानिक वायुमंडल अन्धकारपूर्ण है। पुरानी बातें वैज्ञानिकोंको आगे बढ़ने नहीं देती थीं। कुछ दिनोंके बाद उक्त वायुमंडलका परिवर्तन हुआ। १६१४ ई० से लेकर १६७२ ई० के अन्दर सिल्विअस ने एक पुस्तक लिखी, जिसमें इन्होंने यक्ष्मा रोगके लक्षणके विषयमें कास, ज्वर और दैहिक ह्रास होना लिखा है। यह लक्षणोक्ति महर्षि चरक के कथनसे सर्वथा समता रखती है। यथाः—"प्रतिश्यायं ज्वरं कासं अङ्गसादं शिरोरुजम्।" सिल्विअस ने ही सर्व प्रथम tubercle (यक्ष्मा ग्रंथि) शब्दका प्रयोग किया। सिल्विअस कहता था कि यक्ष्माग्रंथियाँ फुफ्फुसस्थ लसिकाग्रंथियाँ (lymph glands) हैं जो रोगवशात् सूज जाती हैं और इनके घुलनेसे फुफ्फुसमें गड्ढे हो जाते हैं। सिल्विअसके बाद १८ वीं शताब्दीमें वेलीका प्रादुर्भाव हुआ तो इन्होंने बतलाया कि फुफ्फुसोंमें ग्रंथियाँ नहीं हैं। यह रोग वस्तुतः फुफ्फुस-तन्तुओंमें होता है। तदनन्तर १७८१ से १८२६ ई० के लगभगमें लेकेन का आविर्भाव हुआ तो आपने बतलाया कि फुफ्फुसमें अथवा लसिकाग्रंथिमें पहले यक्ष्मा रोगके दाने निकलते हैं, तत्पश्चात् फुफ्फुसमें क्षणाकरण क्रिया होती है जिससे फुफ्फुस मुलायम तथा पीला पड़ जाता है। जब घुलनेका अतिक्रम होता है तो फुफ्फुसमें गड्ढे पड़ जाते हैं। यक्ष्मा रोगमें रक्त-स्राव होना इन्हीं क्रियाओंका फलस्वरूप है। लेकेन की कही यह बात महर्षि चरकको निम्न लिखित उक्तिसे एक दम मिलती-जुलती है जैसा कि—ततः क्षणाना चैवोरसो विषम गतित्वाच्च वायोः कण्ठस्योद्ध्वंसनात्कासः संजायते कास प्रसंगात् उरसिक्षते सशोणितं ष्ठीवति। शोणित गमनाच्चास्य दौर्बल्यमुपजायते, इत्यादि। लेकेन की मृत्युके बाद एक रूसी वैज्ञानिक वर्चो की प्रसिद्धि हुई। इसने पूर्वोक्त विद्वानोंके सारे कृत्यों पर पानी फेर दिया। यह अद्वितीय प्रभावशाली था। इसने इस मन्तव्यका प्रचार किया कि यक्ष्मा-गाँठें अन्य रोगोंके द्वारा भी पायी जाती हैं। इसी मतका अनुयायी निमेयर ने तो यहाँ तक कह डाला कि किसी भी क्षयरोगी (रसरक्तादि विहीन) को सबसे अधिक भय है कि यक्ष्मा पीड़ित हो जाय। अब इन बातोंको निर्मूल बतलाने वाला १८६८ ई० में विलेमिन पैदा हुआ तो उसने यक्ष्मा-ग्रंथि (tubercle) को क्षुद्र पशुओंमें लगाकर उन्हें यक्ष्मा रोगके सभी लक्षणोंसे आक्रान्त दिखलाकर सिद्ध कर दिया कि वास्तवमें यक्ष्मा रोगका अस्तित्व अलग ही है। तदनन्तर १८८२ ई० में कॉक को प्रसिद्धि हुई तो इसने टी. बी. (यक्ष्मा-जीवाणु) का पता लगाया। इसके बाद अर्लिक ने जीवाणुओंको अम्लग्राही बतलाया। कॉक ने १८८६ ई० में टी. बी. टौक्सिन (यक्ष्मा-जीवाणु-विष) का आविष्कार किया और १६०१ ई० में यह सिद्ध कर दिखाया कि जीवाणु मानुषिक और पाशविक दो प्रकारके होते हैं। संक्षेपतः, यह इस रोग

विषयक पश्चिमीय इतिहास है। चिकित्सा विषयक पहलेका पश्चिमीय इतिहास बड़ा ही कौतूहलजनक है। मध्यकालिक प्रत्येक यूरोपियन डाक्टर अपनी-अपनी विचित्र रीतियोंसे यक्ष्मारोगकी चिकित्सा करते थे। १७ वीं शताब्दी तक प्राप्त औषधियोंके योग तो समय-समय पर मनोरंजनकी सामग्रियाँ हैं। आप एकको नक़ल तो पढ़ें?

केंचुवे और घोंघेका जल	१½ आउंस
अफीमका मद्यार्क	२ ड्राम
वायलेटका शर्बत	१ आउंस

इन्हें मिलाकर प्रतिदिन सोनेके समय १ चम्मच पी लिया करे। किसी योगमें सुअरका जूँ, किसीमें हड्डी एवं धान्य-कीटोंका पैर मिलानेका आदेश रहता था। कहीं-कहीं विष भी मिला दिया करते थे और ऐसे मन चाहे कार्यों के फलस्वरूप मर्ज और मरीज़ दोनों ही को ठिकाने लगाते रहे। इतना ही नहीं, कितने यक्ष्मा-पीड़ितोंको जुलाब देकर और रक्त निकाल कर इन चिकित्सकोंने अनेक हत्यायें कीं। अन्ततोगत्वा इन चिकित्सकोंसे जनतामें घृणा फैल गई। यह बात इन्हें नहीं मालूम थी कि यक्ष्मा-रोगीका जीवन मल पर निर्भर रहता है। जैसा कि महर्षि 'चरक' ने लिखा है।

यथास्वेनोष्मणा पाकं शरीरे यान्ति धातवः।
स्रोतसा च यथास्वेन धातुः पुष्यति धातुना॥
स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनाञ्च संक्षयात्।
धातूष्मणांचा पचयात् राजयक्ष्मा प्रवर्तते॥
तस्मिन् काले पचत्यग्निर्यदन्नंकोष्ठमाश्रितम्।
मलो भवति तत्प्रायः कल्पते किंचिदोजसे॥
तस्मात्पुरीषं संरक्ष्यं विशेषाद्राज यक्ष्मिणः।
सर्वं धातु क्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम्॥

"चरक संहिता"

अस्तु, आजकल डाक्टर लोग औषधियोंमें विशेषतः मोल गार्ड के बनाये हुये सेनो क्राइसिन नामक औषधिका यक्ष्मा-रोगमें प्रयोग करते हैं। सेनेके द्वारा यह औषधि जब प्रस्तुत की गई तो एक बार वैज्ञानिक दुनियामें चहल-पहल हुई, लेकिन इससे भी यक्ष्मा रोगको परास्त करनेकी चेष्टा विफल निकली। आज सारा वैज्ञानिक समाज यक्ष्मा-रोगकी एक विशेष दवाको खोज निकालनेमें व्यस्त है। परमेश्वर करे ये अपने उद्योगमें सफल हों। अब आप यक्ष्मा रोगके भारतीय इतिहास पर ध्यान दें।

आर्योंके बड़े-बड़े पुस्तकागार एवं असंख्य पुस्तकें कितनी ही बार भस्मसात् कर दी गई हैं। अतएव हमारे विज्ञान विशेष अग्निदेवके उदरस्थ हैं; तथापि कतिपय ऐतिहासिक बातें आज भी उपलब्ध हैं जिन्हें यथाशक्ति आपके सामने, रखता हूँ। प्राचीन पुस्तकोंके पढ़नेसे हमें मालूम होता है कि यक्ष्मा रोग आर्यावर्तमें सर्व प्रथम राजा चन्द्र को हुआ था और आपकी बीमारी अश्विनीकुमार नामक वैद्योंकी चिकित्सासे अच्छी हुई थी जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है:—

प्रजापतेस्त्रय स्त्रिंशद् दुहितर आसन्। ताः सोमाय राज्ञे ददात् तासां रोहिणीम् एवोपैत्। तं यक्ष्म आर्च्छत्। तद् राजयक्ष्मस्य जन्म। यत् पापीयान् अभवत्। तत्पाप यक्ष्मस्य। यज्जायाभ्यो विन्दत् तज्जायेन्यस्य। य एवं एतेषां जन्मवेद नैनम् एते यक्ष्मा विन्दति। इत्यादि।

(तै० स० २-३-५-२)

प्रजापतिके ३३ पुत्रियाँ थीं। वे इन सबोंको राजा चन्द्र के साथ ब्याह दिये। चन्द्रमा अपनी स्त्री रोहिणी में विशेष संभोगासक्त होकर यक्ष्मा-रोगसे पीड़ित हुए। यही यक्ष्मा रोगकी प्रथमोत्पत्ति कही जाती है। इस प्रकार जो इस रोगकी उत्पत्ति जानता है वह यक्ष्मा रोगके फेरमें नहीं आता है। आधुनिक इतिहास तत्ववेत्ता राजा चन्द्र का काल ईसा से २,००० वर्ष पूर्व मानते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के बाद चौबीसवीं पीढ़ीमें प्रादुर्भूत रघुवंशी महाराज अग्निवर्ण यक्ष्मा-रोग के ही शिकार हुए। यथा—

आमयस्तु रतिराग संभवो दक्षशाप इव चन्द्र मक्षिणोत्।
दृष्ट दोषमपि तन्न सोत्य जत्संग वस्तु भिषजामनास्रवः॥
स्वादु वस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रिय गणो निवार्यते।
तस्य पाण्डु वदनाल्प भूषणा सावलम्ब गमना मृदुस्वना॥

राजयक्ष्म परिहानि राययौ कामयान समवस्थया तुलाम् ।

(रघुवंश काव्य)

आधुनिक अनुसन्धानके अनुसार महाराजा अग्निवर्ण जी का काल ईसासे लगभग १२०० वर्ष पूर्व है ।

महाभारतमें देखिये, इसी रोगने "महाराजा विचित्र-वीर्य" को मारकर शन्तनु-संततिको निर्मूल कर दिया था । यथा—

अथ काशिपतेः कन्या वृणवाना वै स्वयम्वरम् ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥
तासाम्--अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे ।
तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवन दर्पीतः ॥
ताभ्यां सह समास्सप्त विहरन्पृथिवो पतिः ।
विचित्र वीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥
जगामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम् ।

(महाभारत आदिपर्व)

विचित्रवीर्य का काल ऐतिहासिक लोग ईसासे ११०० वर्ष पहले मानते हैं । भारतीय युद्ध (महाभारत) का काल ईसासे १००० वर्ष पूर्व है ।

देखिये, पार्गिटर साहब लिखित प्राचीन भारतवर्षका इतिहास । (Ancient Indian Historical Tradition by F.F. Pargiter)

अस्तु इन प्रमाणोंसे निश्चित है कि भारतवासी यक्ष्मा रोगको अनन्त कालसे जानते हैं । कुछ पाश्चात्य पंडित इस देशकी महत्ता जानते हुये भी बहुत-सी बातोंमें हमें अनजान बनानेका असफल प्रयास करते हैं । जो प्रायः प्राकृतिक है । लेकिन सत्यग्राही सज्जन भी अनेक यूरोपीय इतिहासमें विद्यमान हैं, जो इस देशकी महनीयता मुक्त हृदयसे मानते हैं । यथा—

अमेरीका देशके सुप्रसिद्ध डाक्टर कारपेण्टर साहब लिखते हैं कि अग्निवेश, चरक, सुश्रुत, एवं अन्यान्य महर्षियोंकी आविष्कृत चिकित्सा-प्रणालीको देखनेसे उनकी दिव्य स्मृति हमें आज भी होती है; क्योंकि अनेक सदियोंके पहले उक्त महर्षियोंकी लिखी पुस्तकोंका अनुवाद--अरब, यूरोप, अमरीका और ग्रीस आदि देशोंमें लैटिन, अर्बी, यूनानी आदि भाषाओंमें अनेक बार हो चुका है। इससे हमारी चिकित्सा पुस्तकोंमें भी भारतीय महर्षियोंकी प्रचुर विभूतियाँ विद्यमान हैं ।

प्रोफेसर मैकडॉनल का कहना है कि हिन्दू वैद्य-विद्याका अरबों पर ७०० ई०के लगभगमें प्रभाव पड़ा । यह विचारणीय है क्योंकि बगदादके खलीफ़ाने कितनी ही संस्कृत पुस्तकोंका अनुवाद कराया था ।

राजयक्ष्मा रोगकी अवतरणिका लिखते हुए महर्षि चरकने लिखा है कि—"लब्ध्वा चतुर्विधंहेतुं समा विशति मानवान्" । चार कारणोंसे यह रोग मनुष्योंको होता है, जिनमें वीर्यनाश प्रधान कारण है । जैसा कि—

रोहिण्या मति सक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः ।
रजोऽन्धमबलंदीनं यक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥

"पतञ्जलिः (चरकर्षिः)"

रजोगुणसे कर्तव्याकर्तव्य-विमूढ़ अपनी देहको रक्षामें अनवधान स्त्री-संभोगमें सदा संलग्न निर्बल एवं कृश राजा चन्द्रमाको यक्ष्मा रोग हो गया । क्यों न हो ? यथार्थमें शुक्रके क्षय होने पर शारीरिक रोग-निवारक शक्ति घट जाती है और ऐसा होने पर सभी रोग आक्रमण कर सकते हैं, जैसा कि कहा है—"क्षणे शुक्रे सर्व रोगाः भवन्ति"

उपर्युक्त महर्षि पतञ्जलि (चरकर्षि) का काल प्राच्य और प्रतीच्य ऐतिहासिकोंने इस समयसे २००० वर्ष या कुछ और अधिक पूर्व माना है । निम्न लिखित मन्त्रसे वेद भी उपर्युक्त सन्दर्भका समर्थन करता है ।

यथा—यः कीक कसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदिश्रितः ॥

अथर्ववेद का० ७ अ० ७ सू० ८१

साय० भा०—यो राजयक्ष्माख्यो रोगः कीककसाः अस्थीनि प्रसृणाति व्याप्नोति । यश्च रोगः तलीद्यम् । तलीद् इति अन्तिक नाम । अन्तिके भवं तलीद्यम् । अस्थिसमीप गतं मांसं अवतिष्ठति अवकृष्य तिष्ठति मासं शोषयतीत्यर्थः । यः कश्चिद् दुःसाध्यो राजयक्ष्माख्यो रोगः ककुदि ककुन्नाम ग्रीवा पर भागः तस्मिन् श्रितः संश्रितः ककुत्स्थानं तनू कुर्वन् यो रोगोऽस्ति तं सर्वं शरीरगत सर्वं धातु शोषकं जायान्यं निरन्तर जाया स्त्री संभोगेन जायमानं क्षयरोगं निर्हाः निर्हरतु । जायान्य शब्दो रोगविशेष परः । सच जाया सम्बन्धेन प्राप्नोतीति "तैत्तिरीयके" समाम्नायते ।

जो राजयक्ष्मा रोग रस, रक्त आदि धातुओंसे लेकर हड्डियों तक फैलने वाला और दुश्चिकित्स्य है, जो फुफ्फुसों-के उपरि भागमें अवस्थित होकर उस वक्ष-प्रदेशको सिकोड़ देता है। उस सम्पूर्ण शारीरिक धातुओंको सुखाने वाले एवं निरन्तर मैथुनसे पैदा होने वाले रोगको निकाल डालें। जायान्य शब्द रोग विशेषवाची है और वह स्त्री सम्बन्धसे पकड़ता है, जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद्से जाना जाता है। अस्तु, कुछ पाठकोंको सन्देह होगा कि लेखक इन वेदादि वचनोंसे यक्ष्मारोग होनेके मुख्य कारण शुक्रक्षयको लिखते हैं, तो भला यह रोग स्त्रियोंको क्योंकर होता है?

उत्तर—बहुतोंको मालूम होगा कि स्त्रियोंमें शुक्र और उसके क्षरण करने वाली डिम्बग्रंथियाँ (ovaries glands) गर्भाशयके दोनों पार्श्वमें संसक्त रहती हैं, और मैथुनके समय स्त्रियाँ भी इन्हीं डिम्बग्रंथियोंसे शुक्रपात करती हैं। जैसा कि कहा भी है—

"योषितोऽपि स्रवत्येवं शुक्रं पुंसः समागमेः
(सुश्रुत सं० शोणित वर्णनाध्याये)

नोट—स्त्रियोंके इस शुक्रका नाम चरक ने वीजार्तव लिखा है।

इससे निश्चित है कि अतिरिक्त एवं कुसमयमें मैथुन करना स्त्री, और पुरुष दोंनोंके लिये घातक है। इसलिये उष्णता-प्रधान भारतवर्षमें कमसे कम १६ वर्षकी आयु तक स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य-पालन परमावश्यक है और पुरुषोंको २० वर्षकी आयु तक।

रसाचार्य और उनके ग्रन्थ तथा समय

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

रस नाम पारेका है। पारे द्वारा आरम्भमें जिन महा-पुरुषोंने लोह-सिद्धि (कीमियागरी) और देह सिद्धि (शरीरको निरोग करनेका साधन) प्राप्त किया और जिन्होंने इस रसायनी विद्याको फैलाया उन महा पुरुषोंको रसाचार्य माना जाता है।

इन महा पुरुषका समय कबसे आरम्भ होता है और कब तक चलता है इस बात पर विद्वानोंमें काफ़ी मतभेद है। पुराने विचारकोंका मत है कि इस विद्याके आदि जन्म-दाता कैलाश-वासी शिवजी हैं। जिनका समय सृष्टिके आरम्भमें बताया जाता है। कुछ नव्य इतिहासज्ञ विद्वान् रस-ग्रंथोंकी रचना, शैली तथा उनमें दिये गए अनेक वस्तुओं, नाम और धाम आदि बातोंके आधारपर उनका समय दो सहस्र वर्षके भीतर कूतते हैं। इनमेंसे कौन विद्वान् अधिक सच्चाईके समीप हैं तथा किनके विचार अधिक प्रमाणपूर्ण माननीय हैं हम इस पर कुछ विचार करेंगे।

यह बात तो निर्विवाद माननी पड़ेगी कि रसाचार्योंका समय तबसे आरम्भ हो सकता है जबसे पाराकी प्राप्ति होती है। पाराके इतिहासके साथ उसके आचार्योंका समय जुड़ा है। यदि यह गुत्थी सुलझ जाय तो आचार्योंके समयकी गुत्थी भी आसानीसे सुलझ सकती है।

रस-ग्रन्थोंमें पाराको शिव जीका वीर्य बतलाया गया है और लिखा है कि इसकी उत्पत्ति निम्न कारणसे हुई—शिव जीके रतिकालमें प्रवृत्त होने पर वहाँ अग्निदेव कबूतर का रूप धारण किये यह दृश्य देख रहे थे। उस समय शिवजी की निगाह उसपर पड़ गई। वह विरति हो गये। उस समय उनका रेत जो च्युत हुआ उसे अग्निने अपने मुँहमें ग्रहण कर लिया। किन्तु उस तेजस्वी वीर्यको अग्नि-देव अधिक देर तक धारण न कर सके। उन्होंने उसे चारों दिशाओंमें फेंक दिया। उत्तर, दक्षिण और पूरब इन तीन दिशाओंमें तो समुद्र था इसलिये वह वहाँ समुद्रमें जा गिरा, किन्तु पश्चिममें भूमि थी इसलिये वह पृथ्वी पर गिर कर पाराके रूपमें प्रकट हुआ। कुछ ग्रन्थकार कहते हैं कि उस समय पश्चिम दिशाओंमें देवताओं ने पाँच कूप खोदे थे। शिवका वीर्य उन कूपोंमें आकर गिरा तो वहाँ पर जो देवता व नाग विद्यमान थे उन कूपोंको पत्थर और मिट्टीसे भर कर बन्द कर दिया। इस तरह वह शिव-वीर्य पारा रूप बना। यह शिव-वीर्य पृथ्वी पर कब गिरा और पच्चिम में कहाँ गिरा? इसका समय व स्थान किसी ने नहीं बत-लाया।

पाराकी इस तरह अलंकारिक उत्पत्ति पर आधुनिक

इतिहासज्ञ विद्वान् कोई विश्वास नहीं रखते। वे लोग तो हर एक चीज़की उत्पत्तिका समय सही-सही जाननेकी चेष्टा करते हैं।

संसारकी सर्व प्राचीन पुस्तकको वेद माना जाता है और कहा जाता है कि वेद सब विद्याओंके भण्डार हैं किन्तु उन वेदोंमें पाराका पता नहीं चलता, न इस रसायनी विद्या का। इसीलिये यह मानना पड़ता है कि रस और रसायनी विद्या वेदोंके बहुत पीछेकी चीज़ है।

ऋग्वेदमें सोना, चाँदी, और ताँबा तीन ही धातुओंका उल्लेख मिलता है। उसमें आयस शब्द ताम्रके लिये प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेदमें कृष्ण आयस शब्द आया है जो लोहेके लिये प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेदमें कांसा पीतलका भी ज़िक्र है किन्तु पाराका कहीं नाम तक नहीं मिलता। पाराका नाम और उसका उपयोग सुश्रुत-संहितामें मिलता है। सुश्रुत संहिता दो सहस्र वर्षसे अधिक पुरानी नहीं। तो क्या पारा इसी दो सहस्र वर्षके समीपकी चीज़ है? इतिहाससे तो ऐसा ही ज्ञात होता है।

भारतीय विद्वानोंसे छिपा नहीं कि पारा भारतीय वस्तु नहीं है। इसकी खानें स्पेन, इटली और केलीफोर्नियामें हैं। यह आरम्भसे लेकर आज तक इन्हीं देशोंसे आता था और और आ रहा है। सबसे पहले स्पेन देशसे ही आता था। आजसे कोई दो सहस्र वर्ष पूर्व व्यापारियों द्वारा मिश्र देश में होकर यह ईरान, अरब और फारस होता हुआ भारतमें पहुँचा करता था। पाराका एक नाम मिश्रक भी है। विद्वानों ने इसका अर्थ कुछ और लगाया है किन्तु हमारा अनुमान है कि मिश्र देशसे आनेके कारण ही इसका नाम मिश्रक दिया गया है।

पुरातत्व-सम्बन्धी खोजोंसे भी पता चलता है कि जब से सभ्यताका विकास होता है सबसे प्रथम मनुष्य पत्थरके शस्त्र बनाने लगा। इसलिये उस युगको पाषाण युगका नाम दिया गया है। जब इसे धातुका ज्ञान हुआ तो सर्व प्रथम इसने ताम्रके शस्त्र बनाये फिर इस युगको ताम्र-युग का नाम दिया गया है। चाँदी, सोना, ताँबेके बाद जब इसे लोहेका ज्ञान हुआ और यह लोहेके अस्त्र-शस्त्र बनाने लगा तो इस युगको लोह-युगका नाम दिया गया। लोह-युगका समय आजसे ४ हज़ार वर्षके भीतरका है। इसके बाद पाराका पता लगता है।

विदेशी इतिहास-खोजियों द्वारा पता मिलता है कि ईसाके ३०० वर्ष पूर्व थियोफ्रेटिस नामक एक यूनानी विद्वान्ने खनिज पदार्थोंकी जानकारीके सम्बन्धमें एक ग्रंथ लिखा था उसमें इसने पारेका उल्लेख किया और बतलाया है कि मिश्र देशमें पारेके पत्थरोंको कूट कर उसमें ताम्र-चूर्ण और सिरका मिला कर बन्द बर्तनमें गरम करते हैं तो पारा अपने पत्थरसे अलग हो जाता है। उसने लिखा है कि लोग इसकी स्वच्छ आभा-प्रभाको देख कर इसे द्रव चाँदी (quick silver) कहते हैं। पाराको जानकारी के सम्बन्धमें इससे अधिक और कोई प्राचीन प्रमाण नहीं मिलता।

स्पेनके प्राचीन इतिहाससे भी ज्ञात होता है कि इसको निकालनेका उपक्रम २½ सहस्र वर्षसे अधिक पुराना नहीं है। जब पाराका आरम्भिक ज्ञान ही ढाई सहस्र वर्षके भीतरका हो तो उसको उपयोगमें लाने वाले हमारे रसाचार्य अवश्य ही इस समयके भीतरके हो सकते हैं, न कि इससे पूर्व, क्योंकि इस रस-तन्त्रके नाटकका नायक पारा है। जब तक नायक न हो तब तक उसके बाद ही उसके कृत्योंकी आलोचना हो नहीं सकती। जबसे पाराकी उत्पत्ति होती है उसके बाद ही उसके समझने वाले आचार्य हो सकते हैं उससे पूर्व नहीं। यदि कोई विद्वान् पाराकी उत्पत्तिका जितना अधिक प्राचीनता-द्योतक प्रमाण उपस्थित कर सकेंगे हम आचार्योंका उतना ही पूर्वकालीन समयको स्वीकार कर लेंगे।

अब देखना यह है कि प्राचीन-कालमें रस-तन्त्रके आचार्य कौन-कौन हुए? और उनके इतिहासका कुछ पता भी लगता है कि नहीं? हमें रसरत्न-समुच्चय, आनन्द-कन्द तथा कुछ अन्य ग्रंथोंमें काफ़ी रसाचार्योंके नाम मिलते हैं।

रसरत्न-समुच्चयमें आदिनाथ, चन्द्रसेन, लेकेश, विशारद, कपाली मत्त माण्डव्य, भास्कर, सूरसेन, रत्नघोष, शम्भु, सात्विक, नरवाहन, इन्द्रदगोमुख, कम्बलि, व्याड्रि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खण्डकापालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक, और हरि रससिद्ध तथा रसांकुश, भैरव, नन्दी, (नन्दीश्वर) स्वच्छन्द भैरव, मन्थान

भैरव, काकचण्डी ऋषिशृंङ्ग, सिन्द्रतिलक, भालुकी, मैथिल, महादेव, नरेन्द्र, वासुदेव, हरि और ईश्वर रसतन्त्रकार बतलाये हैं।

आनन्दकन्द-ग्रंथ जो मन्थान भैरवका लिखा बतलाया जाता है उसमें निम्न लिखित रस-सिद्धोंके नाम आये हैं:—आदिनाथ, मूलनाथ, गोरखनाथ, कोंकणेश्वर, चोलांन्ध्रदेश, कन्थड़ी, ईश, मुद्गल चिंछिणीपाद, ईश्वर चौरंगिया, कर्पटीपाद, छोंटीपाद, चुल्लीपाद, कामरूपाद बालगोविन्द, व्यलि, नागार्जुन, भोरण्ड, सूर्य घण्टापाद, दृत्तायी, रेवण, कुक्कीरापाद, सूर्यपाद, कणेरीपाद, टिंटिणीपाद।

मतान्तरसे अन्य ग्रन्थोंमें निम्नलिखित नाम रस-सिद्धोंके दिये हैं:—मन्थान भैरव, सिद्धबुद्ध, कन्थड़ी कोरण्ट, सुरानन्द सिद्धपाद; चर्पटीपाद, कणेरीपाद नित्य-नाथ, निरंजन, कपाली, विन्दुनाथ, काकचण्डीश्वर, गजराज अल्लभ, प्रभुदेव छोड़ाचोली, ठिण्ठिणी, भालुकी नागदेव, खण्डकपालि। जिन रसाचार्यों और रसतन्त्रकारोंका नाम ऊपर आया है आजसे दस वर्ष पूर्व इनके इतिहासका कोई पता नहीं लगता था, १९३०-३१ में महापण्डित राहुल सांकृतायन जी तिब्बत गये और उन्होंने बौद्धधर्म-सम्बन्धी प्राचीन इतिहासको खोजनेके लिये तिब्बतके प्राचीन तञ्जोर कञ्जोर नामक पुस्तकालयोंका निरीक्षण किया तो वहाँसे आपको प्रचुर मात्रामें इन रसाचार्योंमेंसे अनेकोंका क्रमबद्ध जीवन-इतिहास प्राप्त हुआ। जिन-जिन रसाचार्यों और सिद्धोंका उनके द्वारा पता चला है हम संक्षेपमें उनका वृत्तान्त देते हैं।

यह किम्वदन्ती तो सारे भारतमें फैली हुई है कि किसी समय इस देशमें ८४ सिद्ध हुए। गोरक्षसिद्धान्तमें "चतुः शति सिद्धानां पूर्वादीनां दिशांन्यसेत्" आया है। साधुओंमें विशेषकर नाथ-पंथियोंमें ८४ सिद्धोंकी चर्चा पाई जाती है। इन ८४ सिद्धोंका तिब्बतके उक्त पुस्तकालयोंमें क्रमबद्ध इतिहास मिल गया है। इन ८४ सिद्धोंमेंसे अनेक रसाचार्य, तथा रससिद्ध भी हुए हैं। इन सन्तोंका इतिहास ७८६-८०९ से आरम्भ होता है। उस समय पटनामें कोई धर्मपाल नामका राजा राज्य करता था। उसके राजत्वकालमें सरहपाद नामका प्रथम सिद्ध हुआ जिसके लिखे ३२ ग्रंथ तिब्बतमें मिले हैं। इस सरहपादके कई नाम पाये जाते हैं उनमेंसे इसका एक नाम आदिनाथ भी है। ये सिद्ध तान्त्रिक तथा रसवादके आचार्य थे। इसके तीन प्रधान शिष्य हुए—बुद्धज्ञान, शावरपाद और नागार्जुन। बुद्धज्ञानका दूसरा नाम सिद्धबुद्ध भी था। बुद्धज्ञान और नागार्जुन दोनों ही तान्त्रिक तथा बड़े भारी रसाचार्य हुए। इन नागार्जुनका तो बौद्ध ग्रंथोंमें विस्तृत इतिहास मिलता है और इनके लिखे तन्त्र विषयक कई ग्रंथ मिले हैं। नागार्जुनके गुरु बौद्ध धर्मानुयायी थे और वह धान्यकटक नामक नगरीके पास श्री शैल या श्री पर्वत पर बने चैत्य (मठ) के मठाधीश थे। इन्होंने ही इन पर्वतों को सिद्धियोंका गढ़ बना दिया। ८४ सिद्धोंमेंसे अधिकतर सिद्ध यहींसे निकले हैं। हमारे संस्कृत-साहित्यमें उक्त श्री शैल या श्री पर्वतका कई स्थानोंमें उल्लेख आया है और इसे सिद्धोंका स्थान माना है। यथा—मृच्छकटिक नाटकमें लिखा है "आर्यक नामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति।" कादम्बरीमें श्री हर्षने लिखा है "सकल प्रणीय मनोरथ सिद्धिः श्री पर्वतोहर्षः"। बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी उक्त स्थानको सिद्धियोंके लिये श्रेष्ठ माना है यथा—"श्री धान्यकटके चैत्ये जिन धातु धरे भुवि। सिध्यन्ते तत्र मन्त्रा वै क्षिप्रं सर्वार्थ कर्मसु।" आदिनाथ सरहपादके बाद उनकी गद्दी नागार्जुनको मिली। पाठकोंके भ्रम-निवारण बतला देना चाहता हूँ कि रस-तन्त्रके आचार्य दो नागार्जुन हुए हैं। एक तो ईसवी सन् ७३ से लेकर २१८ तक में। प्रथम नागार्जुनके समयमें धान्यकटक नामक नगरीमें शतवाहन या शालिवाहन नामक राजा राज्य करता था जो इनका बड़ा मित्र था। इन्होंने ही बाहर भ्रमण करते हुए किसी समयमें अपने उस मित्र शतवाहन नामके राजाको सुहल्लेख नामका एक पत्र लिखा था जिसका तिब्बती भाषामें अनुवाद मिला हैं। इन्हीं नागार्जुनके रसरत्नाकर, रसेन्द्र मंगल और कक्षपुट नामक तीन ग्रंथ हैं। किन्तु इन ग्रंथोंका संकलन दूसरे नागार्जुनने किया है। इन ग्रंथोंकी शैली व पदार्थ-ज्ञान दूसरे नागार्जुनके समयको सिद्ध करता है।

दूसरे नागार्जुनका समय ७८६-८०९ ई० से आरम्भ होता है। दूसरे नागार्जुन सिद्ध नागार्जुनके नामसे भी विख्यात हुए हैं। मैं ८४ सिद्धोंमें इन्हीं दूसरे नागार्जुनकी

चर्चा कर रहा हूँ। इन सिद्ध नागार्जुनके तीन शिष्य हुए—आर्यदेव, नागबोधि और पंकजपाद। इन शिष्योंमेंसे आर्यदेव और नागबोधि दोनों ही रसाचार्य हुए। आर्यदेव जब सिद्ध हुए तो इनका नाम सिद्ध कर्णरीपाद पड़ा। इनके लिखे तन्त्र विषयक २६ ग्रन्थ तथा ६ ग्रंथ दर्शन विषयक मिले हैं। नागबोधि और पंकजपादके भी एक-एक दो-दो ग्रंथ मिले हैं। नागबोधिके दो शिष्य हुए, एक भूसुक दूसरे विरूपाद। भूसुक क्षत्रिय राजकुमार कहीं नालन्दाके पासके थे। यह भिक्षु बन कर शान्तिदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। पीछे नालन्दाके राजा देवपाल (ईसवी सन् ८०९-८४९) ने इनका नाम भूसुक रख दिया था। इनके लिखे दर्शन विषयक ६ ग्रंथ तथा तन्त्र सम्बन्धी ३ ग्रन्थ मिले हैं। दूसरे शिष्य विरुपाद बड़े सिद्ध हुए। इनके लिखे २८ ग्रंथ मिले हैं। यह बड़े भारी तान्त्रिक थे तथा यमारि तन्त्रके ऋषि थे। इनके डोम्भीपाद और कण्हपाद प्रधान शिष्योंमेंसे थे। बौद्ध-धर्मके तिब्बती इतिहास-लेखक लामा तारानाथने लिखा है कि डोम्भीपाद सिद्ध विरुपादसे दस वर्ष बाद हुए। इनके लिखे २१ ग्रंथ मिले हैं। दूसरे शिष्य कण्हपाद ८०९-८४९ ई० में हुए। इनका रंग काला था इसोलिये यह कण्हपाद या कृष्णपादके नामसे प्रसिद्ध हुए। यह कर्नाटक देश निवासी ब्राह्मण थे। यह बादमें जलन्धरपादके भी शिष्य बन गये थे, रसतन्त्र-विद्यामें भी यह बड़े प्रवीण हुए। इनकी गणना भी रसाचार्योंमें हुई है। इनके सात शिष्य तथा दो योगिनियाँ शिष्य थीं। उनमेंसे कन्थलोपाद या कन्थड़ीपाद नामका शिष्य रसाचार्य हुआ है। नागार्जुनकी एक शिष्य परम्पराका बहुत दूर तक पता लगता है किन्तु उसके अन्य शिष्योंका कोई शिष्य सम्प्रदाय चला या नहीं इसका इतिहास पता नहीं देता। हाँ, उनके गुरुभाई सावरपादकी शिष्य-परम्परा खूब चली और उनके सम्प्रदायके अनेक शिष्योंमेंसे कई रससिद्ध, तथा रसाचार्य हुए हैं। हम उनकी चर्चा करेंगे।

आदिनाथ सरहपादके दूसरे शिष्य सवरपाद बड़े भारी तान्त्रिक विद्वान हुये। यह इतने बढ़े-चढ़े तान्त्रिक सिद्धोंमेंसे थे कि इन्हें लोग शिवका अवतार मानते थे। इनके लिखे २६ ग्रन्थ मिले हैं। उनमें कई यन्त्र-विद्या पर हैं। इन्होंने कुछ ऐसे मन्त्रोंकी भी सृष्टिकी थी जिनको जपने या सिद्ध करनेकी ज़रूरत नहीं थी। उनके एक बार पढ़नेसे ही फलकी प्राप्ति हो जाती थी। इन्हींके बनाये मन्त्र सावरमन्त्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने—'सावर मन्त्र जाल जिन सिरजा' का जो गुणगान महेशके नामसे किया है वह यहाँ सवरपाद प्रतीत होते हैं। इनको भी कई इतिहासज्ञोंने आदिनाथ कहा है। यह भी बड़े भारी रससिद्ध हुए हैं। इनके लूहिपाद, चर्मरीपाद और सर्वभक्ष तीन शिष्य हुए। इनमेंसे सर्वभक्ष बड़े भारी तान्त्रिक सिद्ध हुए। इन्होंने अघोर मन्त्रोंकी सृष्टि की और अघोर मत फैलाया। इनका लिखा एक ग्रंथ मिला है। इनके दूसरे शिष्य लूहिपाद भी बड़े तान्त्रिक सिद्ध हुए। इनके लिखे ७ ग्रंथ मिले हैं। इनके अनेक शिष्यमें उड़ीसा देशका राजा और उसका मन्त्री शिष्य बनकर सिद्ध दारिकपाद और डेंगीपादके नामसे प्रसिद्ध हुए। सिद्ध दारिकपादके लिखे ११ ग्रंथ मिले हैं। इन दारिकपादके कई शिष्य हुये उनमें से वज्रघण्टा या घण्टापादके नामसे एक प्रसिद्ध रस सिद्ध हुआ। इनके लिखे ११ ग्रन्थ मिले हैं। इनके शिष्य कूर्मपाद और कूर्मपादके शिष्य जलन्धरपाद हुए। जलन्धरनाथ प्रथम बौद्ध बनकर नास्तिकसे आस्तिक बने और इन्होंने अपना नाथ नामसे एक शैवोपासक भिन्न सम्प्रदाय खड़ा किया। नाथ-पन्थी इसीसे इन्हें भी आदिनाथ मानते हैं। इनके लिखे ७ ग्रंथ मिले हैं। इनके अनेक शिष्योंमें शान्तिपाद, कण्हपाद, तन्तिपाद, या टिंटिणीपाद और मत्स्येन्द्रनाथ प्रसिद्ध सिद्ध शिष्य हुए। इनमेंसे टिंटणीपाद और मत्सेन्द्रनाथ रससिद्ध भी थे। मत्स्येन्द्रनाथका बाप भी मत्स्येन्द्रनाथके साधु बनने पर साधु बन गया। वह मीनपादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसका नाम भी रससिद्धों में आया है। इनका जन्म-स्थान कामरूप देश था। जलन्धरनाथका एक शिष्य शान्तिपाद जो आगे चल कर रत्नाकर शान्तिके नामसे प्रसिद्ध हुआ बड़ा बौद्ध-धर्म प्रचारक साधु था। इसका समय ९७४-१०२६ है। कहते हैं यह १०० वर्ष तक जीवित रहा। इसके लिखे ६ ग्रंथ दर्शन-विषयक तथा २१ ग्रंथ तन्त्र-विषयक मिले हैं। कण्हपादके महीपाद, भहिपाद आदि कई शिष्य हुए जो आगे चलकर सिद्ध बन गये। मत्स्येन्द्रनाथके गोरक्षनाथ और चौरंगिया दो प्रसिद्ध शिष्य हुए। ये दोनों बड़े सिद्ध बड़े तान्त्रिक तथा

बड़े रससिद्ध हुए। गोरखनाथ जो नवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें हुए, यह अनेक प्रयोगोंसे सिद्ध होता है। यह सवरपादके दूसरे शिष्योंका वंश-वृक्ष है। सवरपादके तीसरे शिष्य धर्मरीवादका शिष्य चर्पटीपाद हुआ। यह चर्पटीपाद भी बड़ा तान्त्रिक तथा रससिद्ध हुआ इसका नाम भी रसाचार्यों में आया है।

हमने ८४ सिद्धोंका सारा वंश-वृक्ष क्रमसे नहीं बतलाया क्योंकि यह इस लेखका विषय नहीं है। हमने तो उन सिद्धोंको ही लिया है जिनका नाम रसाचार्यों रससिद्धोंमें आया है।

८४ सिद्धोंका जो इतिहास मिला है उसको देखनेसे ज्ञात होता है कि इनका प्रादुर्भाव बौद्ध-सम्प्रदायके वज्रयान नामक शाखासे हुआ है। बौद्धधर्मके वज्रयान सम्प्रदायी भैरवीचक्र मन्त्र-सिद्धि, तन्त्र-विद्या और रसायनी विद्याके ज्ञाता थे और ज्ञात होता है कि इन सम्प्रदाय वालोंने धान्यकटक श्री शैल व श्री पर्वतके दैत्यों पर अपना एकाधित्य बना लिया था। वहाँसे उनके अनेक शिष्य सम्प्रदायी साधु निकल-निकल कर जो सिद्ध बनने चले गये अपना-अपना मत अपने-अपने स्वतन्त्र विचार फैलाते देश-देशान्तरका भ्रमण करते रहे। इन्हीं ८४ सिद्धोंमेंसे अनेक रससिद्धोंके नाम आनन्द-कन्द तथा अन्य ग्रंथोंमें दिये हैं जिनका समय आठवीं सदीसे लेकर ११ वीं सदीके मध्य बनता है। हमारे उक्त विचारोंकी पुष्टि नित्यनाथ विरचित रसरत्नाकरके रसायन-खण्डमें दिये पर्वतसाधक नामक अध्यायसे काफी होती है।

८ वीं सदीसे लेकर ११ सदीके मध्य देशमें मन्त्र-विद्याका बड़ा जोर रहा। उन्हीं दिनों कोई रसांकुश नामका भी सिद्ध हुआ जो मन्त्र-विद्या और रस-विद्याका अच्छा विद्वान् हुआ। ज्ञात होता है इसने जब देखा कि पारा अग्नि पर किसी तरह स्थायी नहीं रहता, उड़ जाता है तो इसने पाराको अग्नि पर रोकनेके लिये मन्त्रोंसे सहायता लेनेकी चेष्टाकी और उसने रसायनी विद्यामें मन्त्रोंको प्रयुक्त किया। वह मन्त्र रसांकुशी विद्याके नामसे प्रख्यात हुए। रसतन्त्रोंका मन्त्र-तन्त्रसे गठजोड़ी इसी विद्वानने की।

हमें यह ८४ सिद्धोंका जो इतिहास मिला है वह ८ वीं शताब्दीसे आरम्भ होकर ११ वीं तक जाता है जिसे दूसरे नागार्जुनके समयसे आगे चलता है। किंतु प्रथम नागार्जुन जो पहिली शताब्दीमें हुए उनके समयसे लेकर आठवीं शताब्दी तकके मध्यमें जो रससिद्ध या रसाचार्य हुए उनके इतिहास पर अभी पूर्णरूपेण प्रकाश नहीं पड़ा।

रसरत्न-समुच्चयमें जिन रसग्रंथ निर्माताओं और रसाचार्यों का नाम आया है उनमेंसे तीन-चारको छोड़कर बाकीके रसाचार्यों के समयका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। जहाँ तक मैं समझता हूँ ये आठवीं शताब्दीसे पहिलेश रसाचार्य हैं।

यहाँ पर एक बात और बतला देना चाहता हूँ। प्राचीन समयमें इस रसायनी विद्याके जन्मदाता विरक्त, भ्रमणशील, साधु, सन्त ही थे और इन साधु-महात्माओंको इस रसायनी विद्याकी ठरक पूरी करनेके लिये लिप्सा युक्त गृहस्थियाँ, राजाओं और भक्तोंसे काफी सहायता मिलती थी। [शेष पृष्ठ १५३ पर देखो]

विज्ञान परिषद्‌की नवीन योजना

हिन्दीमें आधुनिक डाक्टरीके विषय पर इनी-गिनी ही पुस्तकें हैं, परन्तु इनमेंसे कोई भी ब्योरेवार नहीं है। इसीलिए विज्ञान-परिषद्की ओरसे एक वृहद् पुस्तक तैयार करनेकी योजनाकी गई है। इस पुस्तकके संपादक डाक्टर जी० घोष एम० बी०, बी० एस, डी० टी० एम०, प्रयाग, कैप्टेन डाक्टर उमाशंकर प्रसाद, एम० बी०. बी० एस० (अजमेर), डाक्टर गोरख प्रसाद, और डाक्टर सत्यप्रकाश रहेंगे। इसके अतिरिक्त पटना मेडिकल कालेजके प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (एडिनबरा); एम० बी०; डी० टी० एम०, एफ० आर० एस० (एडिनबरा) और मेयो-हास्पिटल, नागपुर, के डाक्टर चन्द्रभानु राय, एम० बी०, बी०एस० का सहयोग भी हमें इस कामके लिए प्राप्त हुआ है। इसलिए पुस्तक सब प्रकारसे प्रामाणिक होगी। इसमें आवश्यक चित्र भी रहेंगे।

इस ग्रंथके चार फरमे छप चुके हैं। पहिला फरमा विज्ञान फरवरी १९४० के अकमें छपा था। विचार है कि ग्रंथ विज्ञानमें छपता चलेगा। साथ-ही-साथ हम इसे पुस्तकके रूपमें भी छापते चलेंगे। आशा है, विज्ञानके पाठकगण इस प्रबन्धको पसन्द करेंगे।

मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयाग

अतिवृद्धि (hypertrophy)—शरीरके किसी अंग या अंशके साधारणसे बहुत अधिक बढ़नेको अतिवृद्धि कहते हैं। उदाहरणतः, लोहारोंकी बाँहकी मांस-पेशियाँ या पहाड़ी कुलियोंकी टाँगोंकी पिंडलियाँ घोर परिश्रमके कारण साधारणसे अधिक बढ़ी रहती हैं। इसी प्रकार शरीरके भीतरके किसी अवयवमें भी विशेष कारणोंसे अतिवृद्धि हो सकती है। उदाहरणतः, जब रोगके कारण किसीका एक गुरदा काट कर निकाल दिया जाता है तो दोहरा परिश्रम करनेके कारण दूसरा गुरदा साधारणसे बहुत बड़ा हो जाता है। साठ वर्षसे अधिक आयुके मर्दोंमें अकसर प्रॉस्टेट ग्रंथि (उ० दे०) इतनी बढ़ जाती है कि मूत्र-त्याग करनेमें कठिनाई पड़ती है और कभी-कभी ऑपरेशन (शल्य-चिकित्सा) को छोड़ दूसरा उपाय नहीं रहता। पहलवानों और अन्य व्यायाम करने वालोंके हृदय अधिकतर साधारणसे बड़े हो जाते हैं और यदि व्यायाम एकाएक छोड़ दिया जाय तो हृदय थलथल (ढीला) और अस्वस्थ हो जाता है। इसलिए ऐसे व्यक्तियोंको व्यायाम धीरे-धीरे (कुछ वर्षोंमें) छोड़ना चाहिए।

अतिसार (diarrhœa)—बार-बार पतला दस्त होनेको अतिसार कहते हैं। इस रोगको प्रवाहिका या पेटझरी भी कहते हैं क्योंकि दस्त साधारणतः बहुत पतला होता है।

अतिसार वस्तुतः कोई रोग नहीं है, यह केवल एक लक्षण है जो भिन्न-भिन्न कारणोंसे उत्पन्न हो सकता है। इस बातको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए; नहीं तो सब प्रकारके अतिसारोंमें एक ही दवा देनेसे बड़ा अनर्थ हो जा सकता है। कभी-भी अतिसारको बन्द करनेकी दवा नहीं दी जाती, सर्वदा उस कारणको दूर करनेके लिये दवा दी जाती है जिससे अतिसार उत्पन्न हुआ रहता है। इस-लिए अतिसारकी चिकित्सामें पहला काम यह है कि पता लगाया जाय कि कारण क्या है। साधारणतः अनुचित भोजन, ठंढ, विष, विषाक्त भोजन, हैज़ा, आमातिसार, पहाड़ी अतिसार या ग्रहणी (स्प्रू) में से कोई एक कारण रहता है। इनमेंसे विष, विषाक्त भोजन, हैज़ा, आमातिसार और ग्रहणीके वर्णन अपने-अपने स्थान पर मिलेंगे। शेष बातों पर यहाँ विचार किया जायगा। कभी-कभी नाड़ी-मंडलकी उत्तेजनासे भी अतिसार हो जाता है, जैसा वह अतिसार जो स्कूली लड़कोंको परीक्षाके समय हो जाता है।

अनुचित भोजन—भोजनके साथ कोई ऐसी वस्तु खा जानेसे जिससे अँतड़ियोंमें प्रदाह उत्पन्न होता हो अतिसार हो जाता है। यदि ऐसी वस्तु काफ़ी मात्रामें हो तो साधारणतः आमाशय ही वमनके रूपमें उसको निकाल बाहर फेंकता है। परन्तु यदि उस वस्तुकी मात्रा कम हो और वह आमाशयसे आगे बढ़ कर अँतड़ियोंमें पहुँच जाय तो शरीर उसे दस्तके साथ निकाल बाहर करनेकी चेष्टा करता है। इससे प्रत्यक्ष है कि दस्तका रोकना किसी प्रकार हितकर नहीं हो सकता।

अपचनशील आहार, कच्चे फल, अधपकी तरकारियाँ, डिब्बाबन्द (tinned या canned) भोजन जो पूर्ण शुद्धतासे डिब्बेमें बन्द न किया गया हो, गंदगीसे बना शराब, इत्यादि इन सबोंसे अतिसार हो सकता है। बरतनोंकी गंदगी या अस्वच्छ जलसे भी अतिसार हो जा सकता है। कुछ कुओंके पानीमें ऐसे लवण होते हैं जिनसे अतिसार होता है।

चिकित्सा—अपच या हानिकारक वस्तुके निकल जानेके बाद अतिसार आपसे-आप बन्द हो जाता है और पेट ठीक हो जाता है। परन्तु इसमें प्रकृतिको सहायता पहुँचाई जा सकती है और अँतड़ियोंका कष्ट कम किया जा सकता है। इसके लिए आधी छटाँक शुद्ध रेंडीका तेल (castor oil) पीना चाहिए। इसे किसी दवाख़ानेसे खरीदना उचित होगा। पेटमें दर्द अधिक हो तो इसमें १० बूँद टिंकचर ऑफ़ ओपियम मिला लेना चाहिये। पेट को सेंकनेसे भी आराम मिलता है।

यदि अतिसार दो दिनसे अधिक रहे तो समझना चाहिए कि उत्तेजक वस्तुके निकालनेमें अँतड़ियोंमें इतना प्रदाह हुआ है कि उस वस्तुके निकल जानेके बाद भी काफ़ी प्रदाह वर्तमान है। इसलिए अँतड़ियोंकी शान्तिके लिए कोई दवा देनी चाहिए। दिनमें तीन या चार बार निम्न दवा दी जाय तो अच्छा होगा।

बिसमथ कारबोनेट	१५ ग्रेन
लाइट मैगनीसियम कारबोनेट	१० ग्रेन

सोडियम बाईकारबोनेट	१० ग्रेन
म्युसिलेज ऑफ़ ट्रैगाकैंथ	१ ड्राम
क्लोरोफॉर्म वाटर	१ आउंस

इतना एक खूराक है।

जब तक अतिसार रहे बहुत हल्का भोजन करना चाहिए। यदि केवल दूध और जौका पानी (barley water) पिया जाय तो बहुत अच्छा होगा। सागूदाना भी खाया जा सकता है। पीछे भोजनकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

ठंढ लगनेसे अतिसार—गरमीके बाद एकाएक ठंढ लगनेसे दुर्बल पाचन-शक्ति वालोंको अतिसार हो जा सकता है। ओसमें सोनेसे, या भीगे कपड़े बहुत समय तक पहने रहनेसे भी ऐसा हो जा सकता है। साधारणतः ऐसी दशामें वास्तविक बात यह होती है कि पेटमें आमातिसार वाले कीटाणु उपस्थित रहते हैं और ठंढ लगनेके कारण जब शरीरकी रोगदमन-शक्ति कम पड़ जाती है तो ये कीटाणु उभड़ पड़ते हैं। मलकी जाँच सूक्ष्मदर्शकसे कराने पर ठीक पता चल सकता है कि कारण क्या है।

शीत-जनित अतिसार साधारणतः एक-दो दिनमें अपने-आप ठीक हो जाता है। आमातिसारके लक्षण हों तो आमातिसारकी दवा करनी चाहिए।

बासी मांस, मछली और दूध—ऐसा आहार खानेसे जिसमें बिगड़नेकी क्रिया आरम्भ हो गई हो अतिसार हो जाता है। यों तो सभी भोजन रक्खे रहनेसे बिगड़ जाते हैं, परन्तु मांस, मछली और दूध शीघ्र बिगड़ते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये चीज़ें इतनी बिगड़ जायँ कि उनमें बदबू आ जाय या दूध फट जाय; उनमें कोई भी ऐसा परिवर्तन, जिसे हम देख या सूँघ सकें, हुए बिना ही वे बहुत हानिकारक हो जा सकते हैं। बात यह है कि इनमें हानिकारक कीटाणुओंकी संख्या इतनी बढ़ जा सकती है कि ऐसे भोजनके खाने या पीनेसे अतिसार हो जाय। अतिसारके अतिरिक्त वमन, चक्कर, मंद नाड़ी, और कमज़ोरी भी हो जा सकती है। बचनेका उपाय यह है कि मांस, मछली, दूध आदि ताज़ा ही खाया जाय और खानेके पहले इन्हें अच्छी तरह पका या खौला लिया जाय जिससे कीटाणु मर जायँ। बासी वस्तुसे अतिसार हो जाने पर वही दवा ठीक होगी जो पहले साधारण अतिसारके लिए बतलाई गई है।

पहाड़ी अतिसार—बहुतसे लोगोंको जब वे पहाड़ पर जाते हैं अतिसार हो जाता है। कुछको बराबर जब तक वे पहाड़ पर रहते हैं अतिसार रहता है और नीचे उतर आने पर यह शिकायत दूर हो जाती है। इसका ठीक कारण अभी ज्ञात नहीं। कुछ लोग समझते हैं कि पहाड़का पानी ठीक नहीं रहता, या उसमें अबरक मिला रहता है। कुछ समझते हैं कि तापक्रममें हेर-फेरके कारण यह होता है।

पहाड़ी अतिसारकी उपेक्षा न करनी चाहिए, क्योंकि इसके कारण कुछ समय बाद संग्रहणी हो जाती है।

चिकित्सा—हल्का भोजन करना चाहिये और पेटको गरम रखना चाहिए। इसके लिए पेट पर ऊनी कपड़ेकी चौड़ी पेटी बाँधना ठीक होगा। कोई हलकी दस्तावर दवा सोकर उठते ही खाना भी उपयोगी होगा। सोडियम सलफेट और मैगनीसियम सलफेट बराबर-बराबर मात्रामें मिलाकर खाना अच्छा होगा। केवल इतना खाना चाहिए कि एक साफ़ दस्त हो जाय। लगभग एकसे दो ड्राम तक काफ़ी होगा।

यदि इतनेसे भी अतिसार न रुके तो डाक्टरसे सलाह लेनी चाहिए।

अतिसार, बच्चोंका (infantile diarrhœa)—इस रोगमें जल्द-जल्द दस्त आता है। तालु (fontanelle ब्रह्मरंध्र) और आँखें शरीरमें पानीकी कमीसे धँस जाती हैं। साथ ही कभी-कभी खट्टा क़ै (वमन) भी होता है और ज्वर भी रहता है। यदि क़ै और दस्त बहुत संख्यामें होते हैं तब बच्चेका चेहरा उतर जाता है, प्यास बहुत लगती है और अर्द्ध-मूर्च्छाकी अवस्था रहती है।

कारण—इसके कारण तो अनेक है, किन्तु दो प्रधान हैं:—

(१) भोजनमें शर्करा (carbohydrate, sugar) या चिकनाई (fat) बसाकी अधिकता; और (२) कीटाणुओंका प्रभाव (infection)। यदि बच्चेके भोजनमें शर्करा पदार्थ या चिकनाई इतनी रहती है कि वह बच्चेकी पाचन-शक्तिसे बाहर होती है तब इनका पाचन

पूरे तौरसे नहीं होता है और इनके अधपचे अंश आँतोंमें विशेष खमीर (fermentation) पैदा कर देते हैं। इससे उत्पन्न रासायनिक तत्व मेदेकी चालको तेज़ कर देते हैं और अपूर्ण पचे पदार्थ पैख़ानेमें आने लगते हैं। पैख़ाना पतला और हरा, लसेदार, आँव और खूनसे रँगा हुआ या पीला सुनहले रंगका होता है। पैख़ानेमें खून और आँवसे यह ज़ाहिर होता है कि अँतड़ियोंमें प्रदाह (सूजन) बहुत है। हरे पैखानेसे यह मालूम होता है कि पित्तका कार्य मेदे में ठीक नहीं हो रहा है। चिकने, फटे पैखानेसे यह बोध होता है कि चिकनाई पचनेसे ज़्यादा परिमाणमें बच्चेको दी जा रही है। पैखानेके समय भड़भड़की आवाज़ तथा पैखानेमें वायु मिले रहनेसे पता चलता है कि मेदेमें खमीर (fermentation) ज़्यादा हो रहा है।

चिकित्सा— पानीका विशेष सेवन, तथा शर्करा और चिकनाई बच्चेके भोजनमें कम कर देना परम आवश्यक है। साधारणतया लोगोंका विश्वास है कि छोटी अवस्थामें बच्चोंको पानी नहीं पिलाना चाहिए। उनका यह भी विश्वास है कि फलका रस देनेसे सर्दी होती है। ऐसी बात प्रायः सभी मातायें कहा करती हैं। किन्तु ये दोनों ही बातें निमू्र्ल हैं। माँका दूध प्रसवके कुछ महीने बाद गाढ़ा हो जाता है और यदि माँ समतुलित भोजन (balanced diet) पर न रहती हो तो बच्चेको सब आवश्यक तत्व दूधसे नहीं प्राप्त हो सकते हैं। यदि गायके दूध पर बच्चा पलता हो तो भी उसको समतुलित आहार नहीं मिलता, क्योंकि गायके दूधमें कुछ तत्व कितने ज़्यादा और कुछ कम हैं। उदाहरणतः स्त्रीके दूधकी अपेक्षा गायके दूधमें चीनी और प्रोटीनका अंश कम और चिकनाईका अंश अधिक रहता है। लोहेका अंश गायके दूधमें कम है। इन बातों पर विचार कर अतिसारमें भोजनका प्रबन्ध होना चाहिए। यदि २४-४८ घण्टे तक बच्चेको केवल पानी पर रक्खा जाय तो बहुत अच्छा हो। इससे कोई हानि नहीं हो सकती। अतिसारकी दवा यही है कि भोजन पर विशेष ध्यान दिया जाय, परन्तु कीटाणु-जनित अतिसारमें अच्छे औषधिको भी आवश्यकता होती है। पहले ही दस्त बन्द करनेकी औषधि कभी नहीं देनी चाहिए। इस अवस्थामें पैख़ानेके साथ विष (toxin) निकल जाय इसीका प्रबन्ध होना चाहिए। अकसर प्रारम्भिक अवस्थामें ही अनाड़ी लोग अफ़ीम या इससे बनी हुई कोई औषधि पैखाना रोकनेके लिए दे बैठते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। इसका उपचार तजुर्बेकार डाक्टरके हाथ ही छोड़ना चाहिए। (बद्रीनारायण प्रसाद)

अतिस्वेदन (hyperidrosis)—अति-स्वेदनमें पसीना बहुत निकलता है। यह पसीना सारे शरीरसे या किसी विशेष अंगसे निकलता है और बिना ज्वरके ही निकलता है।

सारे शरीरसे अति-स्वेदन – कुछ व्यक्तियोंमें थोड़े ही परिश्रमसे सारे शरीरसे बहुत पसीना निकल पड़ता है। यहाँ तक कि सर्दीके दिनोंमें भी कपड़े तर हो जाते हैं और उनको बदलनेकी नौबत आ जाती है।

खास किसी अंगसे अति-स्वेदन—विशेषतया हथेली, पैरका तलवा, काँख, जननेन्द्रियके पासका भाग और गुदा-स्थानके चारों ओर (perineum) से अति-स्वेदन होता है। यह अवस्था ज़्यादातर कम उम्रमें ही पाई जाती है और उम्र बढ़नेसे आप-से-आप यह दूर भी हो जाती है।

पसीनेसे तर रहनेके कारण कई प्रकारके चर्म-रोग भी हो जाते हैं।

चिकित्सा—सारे शरीरसे अति-स्वेदनमें बार-बार स्नान करनेकी आवश्यकता होती है। फीका (१ प्रतिशतका) फॉरमैलिन (1% formalin) से अंग धोनेसे कुछ लाभ होता है। स्थानीय अति-स्वेदनमें फॉरमैलिन, साबुन और सैलिसिलिक ऐसिड (salicylic acid) के पाउडरसे लाभ होता है। (बद्रीनारायण प्रसाद)

अदरक (ginger)—अदरक एक पौधेकी जड़ है जो भारतवर्ष, जमाइका तथा अन्य गरम देशोंमें होता है। इसे संस्कृतमें आर्द्रक और देहातोंमें आदी कहते हैं। सूखने पर अदरकको सोंठ कहते हैं। अदरककी सुगंधि बहुत अच्छी लगती है और इसका स्वाद तीक्ष्ण और चरपरा होता है।

अजीर्णमें अदरक लाभदायक है। रेचक दवाओंके साथ अदरकका सत्त अकसर इसलिए मिलाया जाता है कि पेट-में मरोड़ न उठे। कुछ नुसख़े नीचे दिये जाते हैं।

(१) वायु तथा उदरशूलके लिए—

सोंठ, चूर्ण करके	½ छटाँक
खौलता पानी	आध सेर

एक घण्टे तक ढक कर रक्खो। फिर छान लो। एक खूराकके लिए आधी छटाँक लो। तीन-तीन घण्टे पर दो।

(२) अदरक या सोंठको पानीके साथ पीसकर लेप बनाओ। सर पर लगानेसे सर-दर्द आराम होता है।

(३) सोंठका बारीक चूर्ण पैर ऐंठने पर पैरों पर रगड़ना चाहिए।

(४) अजीर्णमें निम्न चूर्णसे लाभ होता है—

सोंठ	१० ग्रेन
अजवायन	१ ड्राम
इलायची	३० ग्रेन

खूब बारीक चूर्ण करो। इतना एक खुराक है। भोजन करनेके बाद (२४ घंटेमें दो बार) इसे खाना चाहिए।

अधकपारी (hemicrania, migraine)—आधे सरमें दर्दके साथ-साथ मिचली भी रहती है और कभी-कभी वमन भी होता है। यह मर्ज़ अकसर खानदानी (hereditary) होता है। आँख पर ज़ोर पड़नेसे, दाँत सड़ा रहनेसे या नाक या कानमें रोग रहनेसे अधकपारी जल्द-जल्द हो जाती है। इसका दौरा रोज़, या कई-कई दिनों पर या कई-कई महीनों पर होता है। दौरा आरम्भ होनेसे पहले हाथ-पाँवमें झुनझुनी-सी हो आती है। आँख खोलनेकी इच्छा नहीं होती है, कानमें झनझनाहट होती है और मस्तिष्क-क्रिया शिथिल हो जाती है। प्रातः नींद खुलते ही रोगीको आभास होता है कि आज दौरा होगा।

दर्द—प्रायः तीक्ष्ण चुभता दर्द कनपटी (temples) या आँख या ललाटसे आरम्भ होता है और फिर पासके स्थानोंमें फैल जाता है। क़ै होनेके बाद दर्द कुछ कम हो जाता है किन्तु रोगी असमर्थ हो जाता है। किसी-किसी रोगीके सरमें दर्द नहीं होता है, सिर्फ क़ै होकर हो रह जाता है। भूख रहते हुए भी खानेकी इच्छा नहीं होती है। जी अँधेरे कमरेमें लेटे रहनेका होता है और नींद आ जाने पर तबियत कुछ हलकी हो जाती है।

यह दर्द क्यों होता है इसका ठीक पता नहीं है किन्तु यह बड़ी ही दिलचस्प बात है कि चालीस वर्षकी उम्रके बाद आप-से-आप अधकपारी ग़ायब हो जाती है। इस मर्ज़ वाले व्यक्ति प्रायः दिमाग़के तेज़ होते हैं।

चिकित्सा—(१) दर्दकी आशंका हो तो हलका जुलाब लाभदायक है। दर्द हो जाने पर अँधेरे और सन्नाटेकी कोठरीमें लेट रहना अच्छा है। यदि सर्दीके दिन हों तो पैरके पास गरम पानीसे भरी रबड़की थैली (hot water bag) रख लेनी चाहिए। पैरको कुछ देर गरम पानीमें डुबाये रहनेसे भी कुछ आराम मिलता है। इसके अलावा ऐसपिरिन (aspirin) या इसी श्रेणीकी दवा देनेसे भी दर्दमें कमी पड़ जाती है। आज-कल अधकपारी और सर-दर्दकी दवाओंका विज्ञापन बहुत छपता है, परन्तु बहुतेरी दवाएँ हानिकारक होती हैं। इसलिए ऐसी दवाओंका सेवन बिना डाक्टरकी रायके न करना ही ठीक है।

(२) दर्दके बाद चिकित्सा इस बातकी होनी चाहिए कि फिर दर्द न हो। आँख, नाक, कान और दाँतकी खराबियोंसे दर्दका दौरा शीघ्र-शीघ्र होता है। इसलिए इन अंगोंको पूरे तौरसे जाँच करा कर ठीक करा लेना ज़रूरी है। कोष्ठ-बद्धता (constipation) से भी बचना चाहिए। यदि तनदुरुस्ती अच्छी न हो तब उसे सुधारनेकी चेष्टा करना बहुत आवश्यक है। (बद्रीनारायण प्रसाद)

अनमनी (depression) - अनमनीकी अवस्था सभीको कभी न कभी सताती है। विपरीत भाग्य-चक्रसे मानसिक खिन्नता होना स्वभाविक है और कालकी गतिसे फिर यह आपसे-आप दूर भी हो जाती है। ऐसी अनमनीकी चिकित्साकी ज़रूरत नहीं। किन्तु अनमनी बिना किसी काफ़ी कारणके भी होती है और तब आवश्यकता होती है कि इसकी दवाकी जाय। पागलपन कभी-कभी अनमनीका रूप धारण करता है, किन्तु ठीक दिमाग़ वालोंको भी यह कभी-कभी बहुत सताती है। कभी शारीरिक कष्टोंसे अनमनी होती है। मन्दाग्नि, पेटकी बीमारियों, तथा शारीरिक और मानसिक थकावटोंसे, और आशा पर पानी फिर जाने पर, या विचार-तरंगोंमें रुकावट पड़ने पर अकसर अनमनी होती है।

अनमनीमें चाय, कहवा, उत्तेजक औषधि और मदिरा का सेवन करना हानिकारक है। कुछ कालके लिए सम्भव है कि इन वस्तुओंके सेवनसे अनमनी चली जाय, किन्तु भय इस बातका है कि इन द्रव्योंका नशा हो जाता है और मनुष्य अनमनोकी जगह इन आदत डालने वाले द्रव्योंका गुलाम बन बैठता है। मानसिक थकावटकी दवा जलवायु-परिवर्तन है। मन्दाग्निकी दवा आराम और कामसे फुरसत लेकर कहीं अन्यत्र चला जाना और मनोरंजनमें समय बिताना है। साथ-साथ कोई दवा भी खाई जा सकती है। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक चिकित्साकी भी आवश्यकता होती है। (बद्रीनारायण प्रसाद)

अनाज (cereals)—प्राचीन कालसे अब तक अनाज ही मनुष्यका, विशेषकर भारतीयोंका, मुख्य आहार रहा है। अमीरोंमें गेहूँ, चावल और विविध प्रकारकी दाल की खपत अधिक है, परन्तु गाँवोंमें जौ, बाजरा, मकई आदि भी बहुत व्यवहारमें आते हैं। शहरोंमें अब मैदा और पॉलिश किया चावल बहुत चलता है। बिना चोकर निकाला आटा और बिना पॉलिश किये चावल इनकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वास्थप्रद हैं। मैदेसे कब्ज होता है। पॉलिश किये चावलसे वह विटामिन निकल जाती है जो बेरी-बेरी तथा अन्य विटामिन-हीनता-जनित रोगोंको रोकता है। धान जब छाँटा जाता है तो पहले भूसी छूटती है, परन्तु अधिक छाँटनेसे चावलके ऊपरको एक तह जिसमें विटामिन रहता है कनके रूपमें निकल जाता है और चावल पर चमक आ जाती है; ऐसे चावलको पॉलिश किया चावल कहते हैं। जब छाँटनेका काम मशीनसे किया जाता है तब तो प्रायः सारा विटामिन निकल जाता है। भुजिया चावल, अर्थात् वह चावल जो धानको पहले उबाल कर भूसी छुड़ानेसे तैयार किया जाता है बहुत ही बुरा है। उसमें विटामिनोंके अतिरिक्त अन्य पोषक अंश भी मर जाते हैं।

अनाजोंमें प्रोटीन, वसा और विटामिन बहुत कम मात्रा में रहते हैं। इसलिए अनाजके साथ घी-दूध, हरी तरकारियाँ और फल भी खाना चाहिए। इसका ब्योरेवार विचार 'आहार' के सम्बन्धमें किया जायगा।

अनार (pomegranate)—अनार एक प्रसिद्ध फल है जिसे संस्कृतमें दाड़िम कहते हैं। बंगला, तेलगू, कनाड़ी, मराठी, गुजराती और मलय भाषाओंमें भी इसे दाड़िम या दालिम कहते हैं। फलका छिलका, फूल, और तने या जड़का छिलका दवाके काममें आता है। फल स्वयं (छिलका हटाकर) रोगियोंको खानेको दिया जाता है। नीचेकी तालिकामें गायके दूध और बेदाना अनारके दानोंके रासायनिक विश्लेषण दिये गये हैं, जिससे स्पष्ट है कि आध पाव अनारके दाने लगभग एक छटाँक दूधके बराबर ताकत पैदा करते हैं, परन्तु निस्संदेह अनार शीघ्र पचेगा।

खाद्य पदार्थ एक छटाँक	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कर्बोज माशे	उष्णांक प्रति छटाँक
अनार बेदाना	०·६०	सूक्ष्म	४·३८	२०
दूध, गायका	१·८८	२·०४	२·७२	३६

नीचे कुछ ऐसे नुसखे दिये जाते हैं जिनमें अनारका छिलका पड़ता है।

(१) आमातिसार और अतिसारमें निम्न दवा उपयोगी होगी—

अनारके फलका सुखाया हुआ छिलका	१ छटाँक
लौंग	½ तोला
पानी	½ सेर

पंद्रह मिनट तक उबाल कर छानो। एक खुराकके लिये आधी छटाँक दो। दिनमें तीन खुराक देनी चाहिये।

(२) टेप-वर्म (कृमि) के लिये—

अनारके जड़का छिलका	१ छटाँक
पानी	१ सेर

खौलाओ। जब पानी आधा सेर रह जाय तो आँचसे उतारो। छानो। रोगीको बासी मुँह इस दवाकी एक खुराक (१ छटाँक) पीनेको दो। रोगी दिन भर उपवास करे। उसे आधे-आधे घंटे पर एक-एक खुराकें देते रहो। कुल मिलाकर चार खुराक दो।

अनुकूलन (accommodation of eye) हमारी आँखें एक प्रकारसे ठीक फ़ोटोके कैमेरेकी तरह हैं। जिस प्रकार फ़ोटोके कैमेरेमें एक लेंज़ होता है उसी प्रकार आँखमें भी एक लेंज़ रहता है, और जिस प्रकार कैमेरेके लेंज़से फ़ोकस-परदे या फिल्म पर चित्र बनता है उसी प्रकार आँखके लेंज़से नेत्र-पटल (रेटिना, retina)

पर बनता है। सभी फ़ोटोग्राफ़र जानते हैं कि दूरस्थ वस्तुओंका तीक्ष्ण (स्पष्ट) चित्र प्राप्त करनेके लिए लेंज़को फिल्मसे एक नियत दूरी पर रखना पड़ता है। इसी प्रकार साधारण आँखोंमें नेत्रपटलसे लेंज़की दूरी ठीक इतनी होती है कि दूरस्थ वस्तुओंका तीक्ष्ण चित्र नेत्रपटल पर बन सके। यदि किसी रोगके कारण या प्राकृतिक बनावटके कारण आँखके भीतरका लेंज़ नेत्रपटलसे कम या ज़्यादा दूर होता है तो दूरस्थ वस्तुएँ तीक्ष्ण नहीं दिखलाई पड़तीं हैं। ऐसी दशामें आँखोंके सामने चश्मा (ऐनक) लगानेकी आवश्यकता पड़ती है।
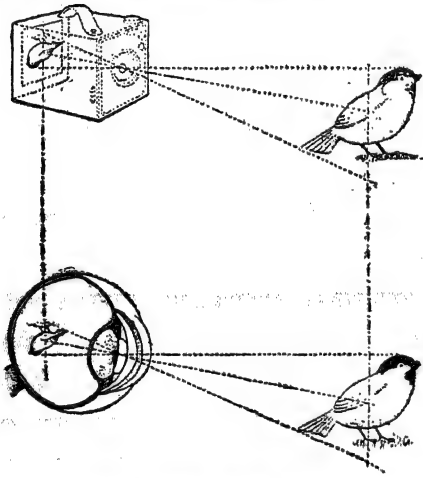
आँखकी बनावट कैमेरेकी-सी है।
जैसे कैमेरेमें लेंज़ (ताल) होता है उसी प्रकार आँखमें भी होता है।

कैमेरेसे जब समीपस्थ वस्तुका फ़ोटो लेना रहता है तो लेंज़को ज़रा सा आगे खिसकाना पड़ता है। आँखके लेंज़से भी दूरस्थ और समीपस्थ वतुओंके चित्र एक साथ ही तीक्ष्ण नहीं बन सकते। साधारण स्वस्थ नेत्रमें २० फुटसे अधिक दूरको वस्तुओंका चित्र आप-से-आप नेत्र-पटल पर तीक्ष्ण बनता है। समीपस्थ वस्तुको तीक्ष्ण देखनेके लिए आँखके भीतरका लेंज़ तो अपने स्थान पर ही रहता है, परन्तु वे मांस-पेशियाँ जो आँखके लेंज़को घेरे रहती हैं संकुचित हो जाती हैं। इस प्रकार लेंज़ बीचमें कुछ अधिक मोटा (उन्नतोदर) हो जाता है और तब समीपस्थ वस्तुका चित्र नेत्र-पटल पर तीक्ष्ण पड़ने लगता है जिससे वह समीपस्थ वस्तु हमको स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है।

समीपस्थ वस्तुओंको देखनेके लिए आँखोंके मांस-पेशियोंके संकुचित होने तथा लेंज़के अधिक उन्नतोदर होने और दूरस्थ वस्तुओंको देखनेके लिए मांस-पेशियोंके ढीला होने तथा लेंज़को कम उन्नतोदर होनेको अनुकूलन कहते हैं।

बचपन और जवानीमें अनुकूलन-शक्ति अधिक रहती है। जवानीमें अनन्त दूरीसे लेकर आठ-नौ इंच तककी दूरी
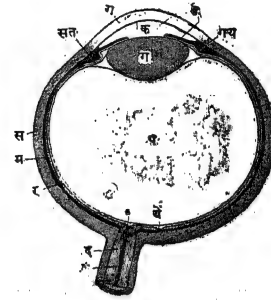
आँखकी भीतरी बनावट।

ग, कनीनिका; क, जलीय द्रवपूर्ण अगला कोष्ठ; उ, उपतारा; त, ताल; सत, तालबंधन; प, वृहत् कोष्ठ; स, वाह्य पटल; म, मध्य पटल; र, अंतरीय पटल (रेटिना); य, पीत-विंदु; द, दृष्टि-नाड़ी।

पर स्थित वस्तुएँ पारी-पारोसे स्पष्ट देखी जा सकती हैं। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है त्यों-त्यों अनुकूलन शक्ति घटती चली जाती है, यहाँ तक कि चालीस-पैंतालिस वर्षकी आयुके बाद नौ-दस इंचकी वस्तुएँ बहुत चेष्टा करने पर भी स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ती और लिखना-पढ़ना तथा सीना-पिरोना असंभव हो जाता है। समीपस्थ वस्तुओंको स्पष्ट देखनेके लिए उन्नतोदर चश्मा लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। साठ वर्षके बाद आँखका लेंज इतना कड़ा हो जाता है कि उसमें कुछ भी अनुकूलन-शक्ति नहीं रह जाती; परन्तु यदि आँखोंमें और कोई रोग न हो तो बिना चश्मा के दूरकी वस्तुएँ स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। चश्मा लगा लेनेसे पढ़ने-लिखनेका काम अच्छी तरह किया जा सकता है।

बचपनमें अनुकूलन-शक्ति बहुत अधिक रहती है। चार-पाँच इंच तककी वस्तुएँ भी स्पष्ट देखी जा सकती हैं। जब कोई बारीक काम करना रहता है तो बच्चे अपनी आँखको कामसे बहुत सटा देते हैं क्योंकि नज़दीकसे वस्तुएँ अधिक बड़ी दिखलाई पड़ती हैं। परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि घंटों आँखके लेंज़को खूब फुलाये रखना पड़ता है। इसके कारण पीछे (जब अनुकूलन-शक्ति कुछ घट चलती है) लेंज़ आवश्यकतासे अधिक उन्नतोदर रह जाता है। प्रत्यक्ष है इसका परिणाम यह होगा कि वह
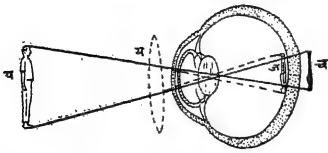
बुढ़ापेमें समीपस्थ वस्तुएँ स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़तीं। प, विषय जिसे देखते हैं; य, उन्नतोदर ताल (चश्मा); च, विषयकी मूर्त्ति जब चश्मा नहीं लगाया जाता; ज, चश्मा लगाने पर विषयकी मूर्त्ति। देखनेकी बात है कि चश्मा न लगाने पर समीपस्थ विषयकी मूर्त्ति नेत्रपटल पर नहीं बन पाती।

व्यक्ति साधारणसे अधिक समीपकी वस्तुएँ अच्छी तरह देख सकेगा, परन्तु दूरकी वस्तुएँ उसे स्पष्ट न दिखलाई पड़ेंगी। इसके लिए उसे ऐसा चश्मा लगाना पड़ेगा जो बीचमें कम मोटा अर्थात् नतोदर (concave) हो। कहा जाता है कि ऐसे व्यक्तिको निकट-दृष्टि (short sight, शॉर्ट साइट) है। स्पष्ट है कि छोटे बच्चोंको छोटे टाइपमें छपी पुस्तकोंसे न पढ़ाना चाहिए और कापीमें सूक्ष्म अक्षर लिखवानेकी अपेक्षा तख्तियों पर बड़े-बड़े अक्षर लिखवाना कहीं अच्छा है। उन्हें बहुत कम आयुमें सीने-पिरोनेका काम भी न सिखलाना चाहिए। बराबर ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे अपनी आँखोंको पुस्तक या कामसे दस इंचसे अधिक समीप न लाने पावें।

निकट-दृष्टि उपरोक्त कारणके अतिरिक्त अन्य कारणोंसे भी हो सकती है। कुछ लड़कोंमें यह शिकायत पैदाइशी होती है।

अपेंडिसाइटिज़ या उपांत्र-प्रदाह

(appendicitis)—बृहदंत्र और क्षुद्रांत्रकी संधिके पास बृहदंत्रमें दो-तीन इंच लम्बी एक नली लगी रहती है जिसे उपांत्र (या अंग्रेज़ीमें अपेंडिक्स, appendix or vermiform appendix) कहते हैं (देखो अँतड़ी)। इसका दूसरा सिरा बन्द रहता है। यह साधारणतः तीन-चार इंच लम्बा और पेंसिलके समान मोटा होता है, परन्तु इसकी लम्बाई १ इंचसे लेकर १० इंच तक पाई गई है। इसकी स्थिति भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंमें थोड़ी-बहुत विभिन्न होती है। उपांत्रका वस्तुतः क्या प्रयोजन है इसका अभी तक ठीक पता नहीं चल सका है। उपांत्र-प्रदाह नामक रोगमें (लक्षणके लिए नीचे देखो), अकसर उपांत्र काट कर निकाल दिया जाता है और तो भी अच्छे हो जाने पर उपांत्ररहित व्यक्तिका स्वास्थ्य
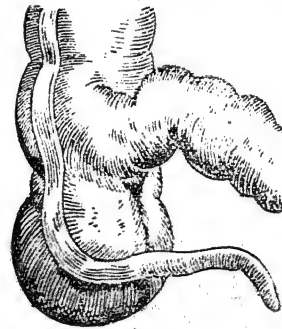
उपांत्र।

इस चित्रमें उपांत्र तीरसे सूचित किया गया है। 'अँतड़ी' शीर्षक लेखके सम्बन्धमें दिये गये चित्रसे उपांत्रकी स्थितिका पता चल जायगा (उसे देखो)।

पहले-जैसा ही अच्छा रहता है। निरामिषभोजी जानवरोंमें, जैसे घोड़े या खरगोशमें, उपांत्र बड़ा होता है, परन्तु आमिषभोजी जानवरोंमें, जैसे शेर या बाघमें, उपांत्र बहुत छोटा होता है। मनुष्योंमें उपांत्र मझोले आकारका होता है, जिससे लोग अनुमान करते हैं कि मनुष्यका शरीर मिश्रित भोजन (निरामिष और आमिष दोनों मिला कर) खानेके लिये बना है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि

उपांत्र-प्रदाह अधिकतर आमिषभोजी व्यक्तियोंको ही होता है।

उस रोगको जिसमें उपांत्रमें प्रदाह (सूजन) हो जाता है उपांत्र-प्रदाह (अँग्रेज़ीमें अपेंडिसाइटिज़) कहते हैं। अभी तक ठीक पता नहीं चल सका है कि उपांत्र-प्रदाह क्यों होता है। अधिकतर ऐसा जान पड़ता है कि स्ट्रेप्टोकोकाई आदि जीवाणुओं (कीटाणुओं) के कारण यह रोग होता है। ये जीवाणु अँतड़ीसे उपांत्र में पहुँचते हैं। कभी-कभी तालु-ग्रंथि (टॉनसिल tonsil) या दाँतमें बसे जीवाणु या अन्य किसी प्रदाहित (infected) स्थानके विषाक्त जीवाणु रक्त-धारामें आकर उपांत्रमें पहुँच जाते हैं और इसी कारण वहाँ प्रदाह होता है। कभी-कभी डाक्टरोंकी ऐसी धारणा होती है कि उपांत्रके भीतर कड़े मलके पहुँच जानेसे, या वहाँ बेरकी गुठली या संतरेके बीज या ऐसी ही किसी कड़ी वस्तुके
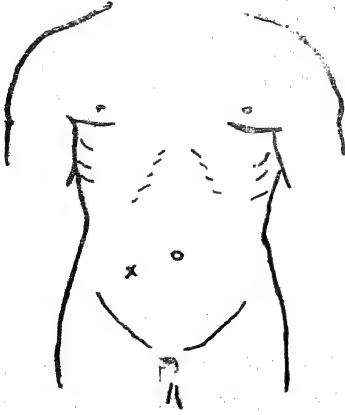
उपांत्र-प्रदाहमें पीड़ा कहाँ होती है ?

उपांत्र-प्रदाहमें पहले नाभिके पास पीड़ा होती है, परन्तु पीछे पीड़ा बराबर उस स्थानमें होती है जो चित्रमें × चिह्नसे सूचित किया गया है।

पहुँच जानेसे प्रदाह होता है। कभी-कभी एक बार प्रदाह होनेके बाद उपांत्र पेटके भीतरके किसी अन्य अवयवमें चिपक जाता है या उससे दब जाता है और इस कारण सँकरा हो जाता है। तब उसमें ज़रा-ज़रा-सी बातके लिए प्रदाह हो जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि अधिकांश व्यक्तियोंमें उपांत्र-प्रदाह जीवाणुओंके ही कारण होता है, परन्तु क्यों जीवाणु इतना उपद्रव कर पाते हैं और शरीरकी प्राकृतिक जीवाणु-नाशक शक्तिसे नष्ट नहीं हो जाते इसका कारण खोजना भी आवश्यक है। जहाँ तक पता चल सका है बहुत दिनों तक कब्ज़की शिकायत रहने पर उपांत्र-प्रदाह होनेका डर अधिक रहता है। उपांत्र-प्रदाह यूरोपीय सभ्यताके अनुसार रहने वालोंको तथा आमिषभोजियोंको अधिक होता है। भारतीयोंको, विशेषकर उन्हें जो निरामिषभोजी होते हैं, उपांत्र-प्रदाह बहुत कम होता है।
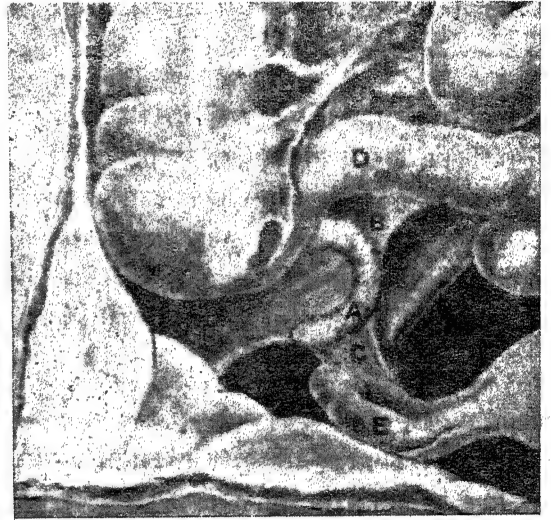
स्थायी उपांत्र-प्रदाहका परिणाम।

इस चित्रमें D क्षुद्रांत्र है, A उपांत्र और E फ़ैलोपियन ट्यूब। देखो कि उपांत्र एक ओर तो क्षुद्रांत्रमें और दूसरी ओर फ़ैलोपियन ट्यूबमें बँध गया है। B और C वे तन्तु हैं जो उपांत्र-प्रदाह के कारण उत्पन्न हो गये हैं और उपांत्रको बाँध रक्खे हैं। स्वस्थ शरीरमें ये नहीं होते।

यों तो उपांत्र-प्रदाह किसी को भी हो सकता है, परन्तु छोटे बच्चों और बूढ़े व्यक्तियोंको बहुत कम होता है। मर्दोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको भी यह रोग कम होता है।

[पृष्ठ १४४ के आगेका मैटर]

रसाचार्य और उनके ग्रन्थ तथा समय

इस बातका रसाचार्यों के नाम तथा ग्रंथोंसे काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। नागार्जुन, नित्यनाथ, गोविन्दाचार्य, मन्थान भैरव आदि सब कोई न कोई सम्प्रदायवादी साधु-सन्त थे तथा रसरत्न समुच्चयमें जिन आचार्यों के नाम आये हैं वह सब ऐसे ही हैं। वास्तवमें रसायनी विद्या हमारे देशकी विद्या नहीं। इसका जन्म सबसे पूर्व वहीं हो सकता है जहाँ पाराको उत्पत्ति हुई क्योंकि संत - महात्मा देश-देशान्तरोंमें फिरा करते थे और बौद्धोंके समयमें तो उसके प्रचारक साधु चीन, अरब और मिश्र तक पहुँचते थे। उन्हीं समयोंके वे व्यक्ति यह विद्या भारतमें लाये।

पाराकी उत्पत्ति स्थानको - किसने देखा था ? इस पर ग्रन्थकार ने बतलाया है कि "नागार्जुनेन संदृष्टौ रसश्च रसका वुभौ।"

नागार्जुन ने ही इनके उत्पत्ति-स्थानको देखा है। एक बात और पाठकोंको स्मरण करा देना चाहता हूँ। वह यह है कि आरम्भमें यह रसायनी विद्या शुद्ध रसायनी (कीमियागरी या स्वर्ण चाँदी प्रस्तुती करणार्थ) के लिये आरम्भ हुई। प्राचीन-से-प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ भी इसी बातको पुष्ट करते हैं। जब लोह-सिद्धि प्राप्त करते-करते जिन रसों और भस्मोंसे इसमें सफलता नहीं मिली उन्हीं चीजोंको फिर देह-सिद्धिके अर्थ प्रयुक्त किया गया। इसके उन ग्रन्थोंमें अनेक प्रमाणभूत साधनोंसे सिद्ध किया जा सकता है।

विद्वानोंके निरन्तर प्रयत्नसे इस समय तक लगभग ७० हस्तलिखित रस-ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं उनमेंसे आधे के लगभग तो प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशकों तथा इतिहासज्ञोंने उन ग्रन्थकारोंका जो समय निकाला है हम उसकी एक सारणी देते हैं।

रसाचार्योंके ग्रन्थ और उनका समय

ग्रन्थ	कर्ता	समय	
रसरत्नाकर	नागार्जुन	ईसवी ८ वीं	शताब्दी
कक्षपुट	"		"
रसेन्द्र मंडल	"		"
रसहृदय	भगवत्पाद् गोविन्दाचार्य	९	"
रस पद्धति	श्री विन्दु	१०	"
आनन्द-कन्द	मन्थान भैरव	१२	"
रसार्णव	भैरवानन्द योगी	१२	"
रसरत्नाकर	सिद्धनित्यनाथ	१२	"
रससार	दूसरे गोविन्दा चार्य	१३	"
रसरत्न-समुच्चय	वाभट	१३	"
रसेन्द्र चिंतामणि	रामचन्द्र	"	"
रस चिन्तामणि	अनन्त देवसूरि	१४	"
रसेन्द्र चिंतामणि दूसरा	ढुँढुकनाथ	"	"
रस प्रकाश सुधाकर	यशोधर	"	"
रुद्रयामल तन्त्र	भैरव	१६	"
आयुर्वेद प्रकाश	माधव	१७	"
रसकामधेनु	चूड़ामणि	"	"

हमने कूपीॐ पद्य रस-निर्माण-विज्ञान नामक ग्रन्थका जो उपोद्घात् लिखा है उसमें युक्त विषय पर विस्तारके साथ सप्रमाण चर्चाकी है। जिन रससिद्धोंके नाम आनन्द-कन्दमें दिये गये हैं वह वास्तवमें ८४ सिद्धोंमें से ही है। यथा—

आदि नाम (साहपाद या जलन्धरनाथ) गोरख नाथ, कन्यातीश (कण्डपादका शिष्य) चिंछिणीपाद (टिंटिणोपाद) चौरंगिया, कर्पटो (कर्पटीपाद) घौरी (घण्टापाद) चुली (चेलुक पाद) कामद्दय (काम रूप देशीय मीनपाद और मत्स्येन्द्रनाथ) व्यालि (व्यालि पाद) कुक्कुरी (कुक्कुरीपाद) कणौरी (कणौरीपाद दूसरा नाम आर्य देव) मन्थान भैरव सिद्धबुद्ध (ज्ञान बुद्ध) कन्थड़ी (कन्थड़ीपाद) कपाली कपालपाद, ठिंठिणी (तानोपाद) आदि।

ॐ उक्त ग्रन्थ छप रहा है।

मानसिक रोगमें "छोटे चाँद" का प्रयोग

[ले० डा० जी० घोष, एम० बी०, बी० एस०, डी० टी० एम०]

छोटे चाँदका वानस्पतिक नाम "रौवोलफिया सर्पेण्टिना" है। बंगालीमें इसे चन्द्र और संस्कृतमें चन्द्रिका या सर्पगन्धा कहते हैं। मुरादाबादसे लेकर सिक्किम तक यह हिमालयकी तलैटीमें पाया जाता है। बिहार और नैपालमें बहुत होता है, और थोड़ा-बहुत भारतवर्ष भरमें मिलता है। उत्तरी बिहार, पटना और भागलपुरमें बिना बोये जंगली उगता है।

इसका पौधा ६ से १८ इंच ऊँचा होता है, और अच्छी ज़मीनमें कभी कभी २-३ फुट तकका पाया गया है। इसके पत्ते ३" से ७" तक लम्बे और १½ इंचसे २½ इंच तक चौड़े होते हैं। इसका फूल लगभग एक इंच लम्बा और लाल रंगका होता है। जड़ें टेढ़ी, ½ से ¾ इञ्च व्यास तकको होती हैं। छोटे चाँदकी जड़ें, पत्तियाँ और रस काममें आते हैं।

सामान्य जनतामें यह प्रसिद्ध है कि छोटा चाँद ज्वरनाशक है और साँपके काटेकी औषधि है। रौक्सबर्ग, डाइमोक और हूकरने ५० वर्ष पहले अपने ग्रंथमें इसका उल्लेख किया है। हौर्सफील्डका कहना है कि जावा-देशवासी भी इसका औषधि-रूपमें प्रयोग करते हैं। डा० पुलने एण्डेका कथन है कि प्रसवावस्थामें गर्भाशयके संकोचनमें जड़का अर्क लाभकर होता है। डा० रमफियसने लिखा है कि भारत और जावामें छोटे चाँदकी पत्तियोंका रस आँखकी धुँधली मिटानेके काममें लाया जाता है। बम्बईके मज़दूर जो दक्षिण कोंकणसे आते हैं अधिकतर अपने पास छोटे चाँद की जड़ रखते हैं। उनका विचार है कि इससे प्रदर-शूल और पेचिशमें लाभ होता है।

बिहारमें यह पौधा बहुत होता है, और वहाँ ग़रीब लोग बच्चोंको सुलानेमें इसका उपयोग करते हैं। कविराज और वैद्य मानसिक उद्वेग और शारीरिक चापल्यको शिथिल करनेमें इसका व्यवहार करते हैं। डा० गणनाथसेन ने इसका व्यवहार पागलपन और रक्त-चाप-आधिक्यमें बताया है। अब तो भारतवर्ष ही नहीं, इङ्गलैण्ड, अफ्रीका और अमरीका ऐसे विदेशोंमें भी डाक्टरोंका ध्यान इस ओर गया है, और वे इस औषधिके गुणों पर विविध प्रयोग कर रहे हैं।

रासायनिक संगठन

सेन और बोस (१९३१) के प्रयोगोंसे यह पता चला कि इसकी जड़में दो एलकलॉयड (क्षारोद) हैं जिनके द्रवांक पृथक्-पृथक् हैं। सूखी जड़में १ प्रतिशत तक एलकलॉयड होतो है। जड़में इसके अतिरिक्त नशास्ता और रेज़िन भी होते हैं। जलाये जाने पर ८ प्रतिशत राख बच रहती है जिसमें पोटैसियम कार्बोनेट, फॉसफेट, सिलिकेट और कुछ अंश लोहे और मैंगेनीज़के भी होते हैं। तिब्बी कालेज, देहलीके डा० सिद्दीकी ने छोटे चाँदकी जड़में से पाँच एलकलॉयड निकाली हैं जिनके विभाग इस प्रकार हैं—

समूह (क)—अजमलिन समूह—इसमें तीन श्वेत-रवेदार क्षीण क्षारोद हैं।

समूह (ख)—सर्पेण्टाइन समूह—इसमें दो पीले चमकीले उग्र क्षारोद हैं।

ट्रॉपिकल स्कूल ऑव मेडिसिन कलकत्तामें भी इन क्षारोदोंके रासायनिक संगठन पर काम हो रहा है। अब तक केवल एक क्षारोद शुद्ध रवेदार रूपमें पृथक् किया जा सका है जिसका द्रवांक २०२° श है। इस पर अभी काम चल रहा है।

शारीरिक प्रभाव

डा० सिद्दीकीके कथनानुसार पीले और श्वेत क्षारोदोंको मेंढकों पर अनुपान-मात्रा एक समान पायी गयी। सेन और बोस (१९३१) ने बिल्लो आदि पशुओं पर भी प्रयोग किये। इन प्रयोगोंके कुछ फल नीचे दिये जाते हैं।

(१) यह औषधि दाहक नहीं है। क्षारोदोंका १०० घोल यदि त्वचामें या मांसपेशियोंमें सुई-द्वारा गहरा प्रविष्ट करा दिया जाय तो अंगोंमें किसी भी प्रकारको सूजन नहीं प्रकट होगी।

(२) भोजन-प्रणाली पर इन क्षारोदोंका तत्काल और निश्चित विश्राम प्रद प्रभाव पड़ता है। कुछ थोड़ोंमें

ही अन्त्रि-संस्थानमें दाह प्रकट होता है और वमन तथा रेचन होता है।

(३) रुधिर-संस्थान पर—(क) हृदयकी गतिका कुछ अवरोध होता है यदि औषधिका बहुत समय तक सेवन किया जाय। पर ज्योंही औषधि बन्द की जाती है यह प्रभाव भी शीघ्र बन्द हो जाता है।

(ख) नाड़ी धीमी चलने लगती है जिससे औषधिका रुधिर-प्रवाह पर प्रभाव स्पष्ट है। नाड़ीकी मात्रा (volume) भी कम हो जाती है। फलतः रक्तचाप या ब्लड प्रेशर भी कम हो जाता है।

(४) श्वास-संस्थान पर—बोसने यह स्पष्ट दिखा दिया है कि इस औषधिका श्वास पर उत्तेजक प्रभाव होता है।

(५) स्नायु-संस्थान—यदि मनुष्यको १० से ३० ग्रेन तक औषधि दी जावे तो स्नायुओं पर सुखकर प्रभाव पड़ता है। औषधि-सेवनके उपरान्त अच्छी और प्रगाढ़ नींद आती है। १० से १२ घंटे तक व्यक्ति सोता रहता है। कामुक स्नायु-केन्द्रों पर भी औषधिका शिथिलता दायक प्रभाव पड़ता है।

(६) गर्भाशय पर—गर्भिणियोंके गर्भाशयका औषधि-सेवनसे संकोचन होता है पर कौमार-गर्भाशयका प्रसारण होता है।

मानसिक चिकित्सामें उपयोग

इस औषधिका मस्तिष्क पर विश्रामप्रद प्रभाव पड़ता है। डा० गणनाथसेन और डा० के० सी० बोसकी सम्मति है कि पागलकी अवस्थामें जब कि मानसिक विक्षोभ अतीव उग्र हो इस औषधिका सेवन कराना चाहिये. चूर्ण जड़की औसत अनुपान-मात्रा १५-२० ग्रेन है। दिनमें २-३ बार देनी चाहिये। औषधि-सेवनके उपरान्त रोगीक सुखकर और शान्तिदायक निद्रा आती है, रोगीवशमें आ जाता है और भोजन भी शीघ्र करने लगता है। थोड़े दिनों-के औषधि-सेवनके उपरान्त रोगीके मानसिक विकार दूर हो जाते हैं और वह सामान्य मनुष्य बन जाता है।

हाइपर पीसिसमें भी यह औषधि उपयोगी सिद्ध हुई है। दिनमें दो बार ५-५ ग्रेन देनेसे ही कुछ दिनोंमें रक्तचाप बहुत कम हो जाता है। यह सब प्रभाव इसलिये है कि हृदयकी गति इससे मन्द पड़ जाती है और रक्तवाहि-नियोंमें प्रसारण हो जाता है।

मैंने इन औषधिका प्रयोग अत्यन्त विक्षुब्ध पागलों पर किया है। प्रत्येक रोगीको इससे लाभ हुआ और उसने इससे आराम पाया। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह औषधि मानसिक संवेदनाओंको विश्राम और शान्ति देनेमें बहुत ही गुणकारी है और कई प्रकारके प्रमादोंमें तो अचूक है। अब तक जितने भी संमूर्छक और प्रमाद-रोधक औषधियाँ ज्ञात हैं उनमेंसे यह किसीसे कम नहीं है।

मैंने इस औषधिका उपयोग रक्त-चापाधिक्यमें भी किया है। इससे रक्तचाप निश्चित रूपसे कम हो जाता है। और रोगीको आराम मिलने लगता है।

मानसिक चिकित्साकी आजकल जो औषधियाँ ज्ञात हैं—जैसे ब्रोमाइड, ल्यूमिनल, सलफर-इञ्जेकशन आदि उनका प्रभाव सर्वदा संतोषजनक नहीं होता। कभी-कभी तो इनके प्रयोगमें बड़ा निराश होना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें यह नितान्त आवश्यक है कि छोटे-चाँद या सर्पगन्धाके समान औषधिकी भली प्रकार से वैज्ञानिक परीक्षा की जाय। मैं समस्त चिकित्सकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, विशेषकर उनका जिनका सम्बन्ध पागलखानोंसे है। वे इस औषधिका रोगियों पर प्रयोग करें और प्रयोगफलोंको चिकित्सा-सम्बन्धी पत्रिका-ओंमें प्रकाशित करावें। मैंने अपने इस विषयके एक लेखकी प्रति भारत, लङ्का और बर्माके २३ पागलखानोंके अध्यक्षोंके पास भेजवायी। इनमेंसे केवल १० ने इसमें रुचि ली और उन्होंने मुझसे औषधि माँगी। मैंने उनके पास औषधि भेज दी है और मैं उनके प्रयोग-फलोंकी प्रतीक्षामें हूँ।

अनुपान-विधि

औषधि चूर्ण रूपमें देना अधिक अच्छा होता है। इसमें शक्कर और पानी मिलाना चाहिये, और प्रातःकाल ख़ाली पेट देना चाहिये। मैंने चूर्ण जड़की ४५ ग्रेन तक मात्रा दिनमें दो बार करके अति उग्र पागलोंको दी है और उन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। इस औषधिमें कठिनाई एक ही है—वह है इसका कड़ुवा स्वाद। पर मेरा विश्वास है कि यदि छोटे चाँदके पूर्ण क्षारोदोंको पृथक् करके उनके इञ्जेक्शन तैयार किये जायँ तो यह कठिनाई दूर हो सकती

है। यदि पूर्ण क्षारोदोंके १% घोल किसी भी प्रकार सुई-द्वारा त्वचाके नीचे या रक्तवाहिनियोंमें प्रविष्ट कराये जाँय तो किसी प्रकारका दाह उत्पन्न न होगा। प्रौढ़ व्यक्तिको क्षारोदोंकी उपयुक्त अनुपान-मात्रा १/३ से १/२ ग्रेन तक है।

इस औषधिके सेवनके कुछ मिनट बाद ही रोगीकी त्वचा विशेषत: मुँहकी त्वचा--लाल और उत्तप्त हो जाती है आँखें मिचमिचाने लगती हैं। पर कुछ खूराक औषधि और खा लेनेके उपरान्त रोगी पर बिलकुल भिन्न प्रभाव पड़ने लगता है। वह रोगी जो कई दिनोंसे सोया न हो और बराबर विक्षुब्ध रहता हो अब वशमें आने लगता है, और भोजन करनेमें आपत्ति नहीं करता। उसे शान्त और सुख-कर नींद आती है। थोड़े दिनोंमें ही प्रदाह बन्द हो जाता है, होश ठिकाने आने लगते हैं, और वह चंगा हो जाता है। रोग-निवृत्तिके उपरान्त भी कुछ दिनों दवा देते रहना चाहिये। मेरा अनुभव है कि इस औषधिके सेवनसे भूख बढ़ती है और दस्त साफ़ आने लगते हैं। कभी-कभी यह औषधि रेचक भी हो जाती है। अधिक मात्रामें औषधि देनेसे मूत्रमें भी विकार हो जाते हैं, पर ज्यों ही अनुपान-मात्रा कम की जाती है ये सब हानिकर लक्षण मिट जाते हैं। मैंने अब तक इस औषधिका कोई कुप्रभाव नहीं देखा। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि रसायनज्ञ मुझे छोटे चाँदमेंसे क्षारोदोंको पृथक् करके दे दें।

('दी ऐन्टीसेप्टिक' नामक पत्रिकामें प्रकाशित लेखका भावानुवाद)

समालोचना

आयुर्वैदिक इञ्जेक्शन विज्ञान—लेखक डाक्टर वैद्यशास्त्री राधागोविन्द मिश्र, आयुर्वेदालंकार, प्रकाशक पं० घनश्यामदास अयोध्याप्रसाद मिश्र, आयुर्वैदिक फार्मेसी, सागर दरवाजा झाँसी। पृष्ठ-संख्या ३०८; दूसरी आवृत्ति; मूल्य ५); पुस्तकके तीन खण्ड हैं। पहिलेमें इञ्जेक्शन-सम्बन्धी आरम्भिक जानकारी है; दूसरेमें अनेक आयुर्वैदिक वनस्पतियोंके सत्व क्वाथैव द्रव क्षारोंको इञ्जेक्ट करनेका विधान दिया है; तीसरेमें सीतलाके टीका आदि लगानेके लाभालाभ पर विचार प्रकट किया है तथा कुछ नुसखे भी बतलाये हैं और आकस्मिक घटनाओंके उपचार भी दिये हैं।

इञ्जेक्शन शब्द अँगरेजी भाषाका है। इसका अर्थ है—भीतर डालना। इस बातको आधार मान कर विद्वान लेखकने आयुर्वेदमें प्रयुक्त वस्तियोंको भी इञ्जेक्शन माना है। जिस तरह आयुर्वेदमें निरुहण वस्ति देनेके लिये अनेक प्रकारके रोगानुसार औषध क्वाथ बनाकर उनका अनीमा दिया जाता था तथा इसी तरह मूत्र-मार्गमें कोई रोग होने पर उत्तर वस्ति देते थे इसी तरह शरीरमें कोई रोग होने पर जिस तरह डाक्टर सूची द्वारा औषध शरीरके भीतर पहुँचाते हैं इसी तरह आपने भी कुछ आयुर्वैदिक वनस्पतियोंके सत्व, क्वाथ-द्रव, व क्षारोंको सूची-वेध द्वारा शरीरके भीतर पहुँचानेका विधान बतलाया है और साथ ही साथ आपने यह भी आदेश दिया है कि जिन औषधियोंके सूची-वेध बतलाये हैं वे निरापद है। वानस्पतिक क्षार और सत्वोंको इस तरह सूची वेध-द्वारा शरीरके भीतर पहुँचानेका विधान बतलाते हुये आपने यह भी बतलाया कि मल्ल चन्द्रोदय-द्वारा भी इञ्जेक्शन तैयार किया जा सकता है। यह सब ईथरमें हल करके छान कर प्रयोग किये जाते हैं। आपने बनानेकी साधारण सी विधि भी दी है और फिर आपने १७० पृष्ठ पर भस्मों-द्वारा इञ्जेक्शन तैयार करना शीर्षक देकर उसमें गन्धक स्वर्ण-भस्म और चाँदी-भस्मको संजीवनी सुरा या रेक्टिफाइड स्पिरिटमें घोलकर इञ्जेक्शन तैयार करना और सूची-वेध द्वारा शरीरके अन्दर देना बतलाया है। इन रसोंके इञ्जेक्शन आपके कोई लेखक मित्र पं० रामेश्वर प्रसाद जो द्विवेदीके भेजे हुए हैं जिस पर आपने इनके घुलनशील होनेमें शंकाकी है।

आधुनिक समयमें सूची-वेधन द्वारा शरीरके भीतर औषधि पहुँचानेकी जो पद्धति आविष्कृत हुई है वह किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है और उसके लिये जो औषधियाँ आधुनिक समयमें प्रयुक्त हो रही हैं वे कैसे तैयारकी जाती हैं? और वे औषधि सत्व होते क्या हैं? तथा उनका शरीर पर किस तरह प्रभाव पड़ता है और उससे शरी-

रमें क्या-क्या रासायनिक परिवर्तन होते हैं, इन बातोंका संबंध आधुनिक समयके इञ्जेक्शन-विज्ञानसे है जिसका लेखक महाशय ने कुछ साधारण संकेत मात्र दे देनेके अतिरिक्त और कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। जिन विषयोंका जिस-जिस विज्ञानसे सम्बन्ध हो जब तक उन पर प्रकाश न डाला जाय उस विषयका ग्रन्थ पूर्ण नहीं माना जा सकता।

दूसरे, आपने जिन वनस्पतिओंका उपयोग बतलाया आपने उन वनस्पतियोंके सिद्ध द्रव सत्व और उसे जलाकर तैयार किये गये क्षारोंको समान गुणधर्मी बतलाया है। आपने लिखा है कि उस क्षारमें औषधिके समस्त गुण विद्यमान रहेंगे और आपने १२३ पृष्ठ पर यह भी लिखा है कि "सत्यकी अपेक्षा क्षारकी औषध विशेष गुणकारी होती है" जो आधुनिक अनुसन्धानसे ठीक नहीं जँचता आपने इञ्जेक्शनकी औषधियोंके सिद्धद्रव, सत्वद्रव, क्षार द्रव सत्वसुरा और क्षारसुरा यह पाँच भेद तैयार किये हैं। ये यदि एक वनस्पतिसे बने हों तो एकके स्थान पर दूसरा प्रयुक्त हो सकता है ऐसा आपका मत है। ये बातें अत्यन्त भ्रमात्मक हैं। पहिली बात तो यह कि गीली और ताज़ी वनस्पतिका स्वरस निकाल कर उससे जो द्रव सत्व भिन्न किया जाता है उसमें तथा जो औषधि क्वाथ करके उसको अग्नि पर गाढ़ा करके जो सत्व बनाया जाता है उन दोनोंके सांगोपांगमें काफ़ी अन्तर रहता है। फिर जब उस वनस्पतिको भस्म करें और उसका ऐन्द्रिक पदार्थ दग्ध कर दें और उस दग्ध भस्मसे क्षार निकालें तो वह उस वनस्पतिके द्रव सत्व व शुष्क सत्वसे नितान्त भिन्न होगा।

आधुनिक वनस्पति शास्त्रज्ञों ने प्राप्त वनस्पतिके अंग-उपांगका विश्लेषण किया है। वनस्पतियोंमें कुल १५-१६ तत्व पाये जाते हैं। इसमेंसे पांशुजम, चूनजम, कान्तम, और लौहके लवण मुख्य रूपमें पाये जाते हैं। ये धातवीय हैं।

इससे भिन्न कज्जल, गन्धक, नैलिका, शैलिक और स्फुर (फॉस्फरस) ये अधातवीय तत्व तथा उद्जन, पवन (नाइट्रोजन) ऊष्मजन, लवणजन (क्लोरीन) ये वायवीय तत्व पाये जाते हैं।

जब तक वनस्पतियाँ हरी रहती हैं तब तक उनमें उत्तम तत्त्वोंके अनेक यौगिक राल, गोंद काष्ठोज कषायिन, शीकरी, स्नेही, तथा क्षारोद (अलकेलाइड्स) आदि अनेक ऐन्द्रिक पदार्थ विद्यमान रहते हैं। किन्त वनस्पतियोंके सूखनेके समय रासायनिक परिवर्तन होता है इससे कई वस्तुएँ घट-बढ़ जाती हैं व उनके यौगिक बदल जाते हैं। फिर उन वनस्पतियोंको कहीं जला डाला जाय तो उनमेंके राल गोंद, कषायिन (टैनीन) शीकरी, स्नेही व क्षारोद आदि ऐन्द्रिक पदार्थ जलकर नष्ट हो जाते हैं और उन ऐन्द्रिक पदार्थोंके सारे यौगिक नष्ट हो जाते हैं। उनके स्थान पर अनैन्द्रिक क्षारों और लवणोंका अवशेष बनता है। जिनमें अधिकतर पांशुजम्, चूनजम्, कान्तम् (मैगनेशियम्) लोह सैन्धजम्, मग्नम् और शैलिकाके लवण व क्षार ही अवशेष रह जाते हैं। भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंमें इन धातवीय द्रव्योंका संगठन भिन्न-भिन्न मात्रामें होता है, यथा— यवमें पांशुजमका क्षार अधिक होता है, लानी बूटीमें सैन्धजमका क्षार अधिक होता है। लेखककी यह युक्ति मेरी समझमें नहीं आई कि जिस वनस्पतिके हरे अंगमें जो-जो द्रव्य विद्यमान हैं उनकी उपस्थितिसे वह जो गुण करती है उन द्रव्योंके अग्नि-प्रभावसे नष्ट हो जाने पर उसके वनस्पति से बने क्षार जिसमें उस वनस्पतिके पूर्व यौगिक एक भी नहीं रहते वैसा ही गुण करते हों, यह कभी सम्भव नहीं। यह क्रियात्मक विचार-धारा के विरुद्ध बात है।

क्षार गुण करते हैं, क्षार-चिकित्सा नामसे एक भिन्न चिकित्सा-पद्धति है जिसमें शुलर साहबने १२ क्षारोंसे समस्त रोगोंको दूर करनेके विधान बतलाये हैं, किन्तु किसी वनस्पतिका क्षार उसके हरित भागसे प्राप्त द्रव्य सत्व व सत्त्ववत् गुण करता है यह कभी माना नहीं जा सकता।

मेरे तो विचारमें यह बात जँचती है कि जिस तरह आज कल पाश्चात्य वनस्पति-वैज्ञानिकों तथा रासायनिकोंने वनस्पतियोंके क्षारोद (alkaloid) भिन्न करके उस गुण-भागका इञ्जेक्शन करते हैं लेखक महाशय उन क्षारोदोंको वह क्षार (alkali) समझ न बैठे हों। अगर ऐसा हो तो बड़ी भयंकर भूल होगी। क्षारोद जो वनस्पतियोंसे भिन्न किये जाते हैं यह उस वनस्पतिके अत्यन्त विषाक्त गुण पूर्ण भाग होते हैं। यह ऐन्द्रिक द्रव्य है किन्तु क्षार वनस्पतिका वह भाग है जो उसको जलाने पर प्राप्त होता है जो उसका अनैन्द्रिक भाग होता है। दोनोंमें ज़मीन

आसमानका अन्तर है। यदि इस विषयका विवेचन डाक्टर साहब करते और उसका अन्तर बतलाते तो क्या ही अच्छा होता।

औषधि मुँह-द्वारा खिलाकर शरीरमें पहुँचानेकी विधि और किसी औषधिको रक्तमें पहुँचानेकी विधिमें बड़ा भारी अन्तर है। रक्त शरीरका वह भाग है जिसमें शरीरके लिये अत्यन्त शुद्ध व परिष्कृत भोज्य द्रव लसिकाके रूपमें विद्यमान रहता है। फिर जिसकी भ्रमणशील स्थितिमें अनेक रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। वहाँ जो वस्तु औषधिके रूपमें पहुँचाई जाय वह ऐसी होनी चाहिये जो अत्यन्त शुद्ध, परिष्कृत, और घुलनशील हो तथा उसके द्रवमें मिलने पर उसका क्या प्रभाव हो सकता है इसका ज्ञान पशु-श्रेणी के प्राणियों पर इञ्जेक्शन करके जान लेना चाहिये। इस पद्धतिके लिये बड़ी सावधानी व समझ तथा अनेक वैज्ञानिक उपकरणोंकी आवश्यकता है जिसके किसी भी अंशकी डाक्टर साहबके लिखे इस इञ्जेक्शन-विज्ञानसे पूर्ति नहीं होती।

आरोग्य-विज्ञान—लेखक वैद्यगोपाल कुँवर जी ठक्कर। प्रकाशक—सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी, नानकवाड़ा, कराँची। मूल्य ।)

यह पुस्तक गुजराती भाषामें है। आरोग्य रहनेके सम्बन्धमें इस समय तक जितना भी विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ है उन सबको आपने बड़ी खूबीसे इस ग्रन्थमें संकलित किया है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विषयके ज्ञान वर्द्धनार्थ इसे गुजराती भाषा-भाषीको अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये।

नारायण पिंगल—लेखक—कलिया नारायण सिंह। पुस्तक-प्राप्ति-स्थान कालिया नारायण सिंह, कलियोंका वास, जोधपुर, मूल्य ।)

पुस्तक छन्द-रचना शास्त्र पर है और हिन्दीमें अनेक छन्दोंकी रचनाका वर्णन दिया है। छन्द बनानेके शौकीनोंके काम की है।

प्रति संस्कृति निदान चिकित्सा, दूसरा भाग—लेखक-वैद्य पं० घनानन्द जी पन्त विद्याणीत प्रकाशक—दीपचन्द्र शर्मा बी० ए०, प्राप्ति-स्थान वैद्य पं० राधावल्लभ-पन्त, बाज़ार सीताराम, देहली; पृष्ठ संख्या ६७; मूल्य ॥)

यह पुस्तक संस्कृत गद्यमें लिखी हुई है। आप काफी समयसे इस प्रयत्नमें है कि इस समयके जितने भी प्रचलित रोग हैं तथा उनके सम्बन्धमें जो विशेष जानकारी अब तक प्राप्त हो चुकी है उन सबका परिचय संस्कृतके विद्वानोंको कराया जाय। इसी विचारसे आपने इसका प्रथम भाग आजसे चार-पाँच वर्ष पूर्व निकाला था उसी क्रममें आपने यह दूसरा भाग अब प्रकाशित किया है। इसमें आपने मन्थर ज्वर (टाइफाइड) श्वसनक (न्यूमोनिया) प्लूरसी, डिप्थेरिया, तूनी प्रतितूनी (वृक्शूल, अश्मरी शूल) आदि रोगोंका सविस्तृत निदान देकर चिकित्सा भी साथ-साथमें दी है। पुस्तक संस्कृत-साहित्य-सेवियोंके लिये देखनेकी चीज़ है।

विद्वानोंके अनुभूत प्रयोग—लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० भैरवप्रसाद जी शुक्ल, शास्त्री, फार्मेसी-संचालक आयुर्वेद विद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, मूल्य ।)

काशी-हिन्दू विश्वविद्यालयके आयुर्वेद विद्यालय-विभागमें एक दातव्य औषधालय है वहाँ पर जो औषधियाँ अनेकों वर्षोंसे जिन-जिन रोगों पर प्रयुक्त होती चली आई हैं उनको शुक्ल जी ने वैद्योंके लाभार्थ प्रकाशित किया है। यदि प्रत्येक धर्मार्थ औषधालय इस प्रकार अपने-अपने धर्मार्थ औषधालयोंमें प्रयुक्त अनुभूत औषधियोंको प्रकाशित करते रहें तो इन सबके संग्रहसे इतना अच्छा आयुर्वेदिक अनुभूत योगोंका संग्रह बन सकता है जिसकी तुलना किसी लेखकके ग्रंथसे नहीं की जा सकती। पुस्तकमें अनेक योग अत्यन्त सरल और सादे हैं और उनमेंसे कितने ही तो मेरे अनुभवमें आये हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। पुस्तक लेखकसे ही प्राप्त होगी।

जेबी वैद्य—लेखक, दधीच वैद्य पं० रामप्रसाद मिश्र, प्रकाशक प्रभाकर-विभाग नागौर (मारवाड़) मूल्य ।≈)

इस पुस्तकमें भी कुछ अनुभूत योग दिये गये हैं। किंतु अधिकतर उसमें उनकी औषधियोंका विज्ञापन है।

रेडियो-विभाग और हिन्दी

भारत-सरकार के रेडियो-विभाग ने हिन्दी-भाषा की पूर्णरूप से उपेक्षा कर रक्खी है। रेडियो के अधिकारी हिन्दुस्तानी के नाम पर फारसीमय उर्दू का प्रयोग करते हैं, जिसमें से हिन्दी शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाल दिया जाता है। आधा, माँग, गेहूँ, दूत आदि सरल शब्दों के स्थान पर निस्फ, मुतालबा, गन्दुम, सफीर आदि क्लिष्ट शब्दोंका धड़ल्ले से प्रयोग किया जाता है। इतना ही नहीं, जहाँ कहीं विशेष शब्दोंका प्रयोग करना होता है, वहाँ उर्दू के शब्दों को ही लिया जाता है और भूल कर भी हिन्दी शब्द नहीं आने दिये जाते। बैनुल-अकवामी, इत्तिहादी, इस्तकबालिया, वज़ीरे खारजा, कुलाकमाँ इक्तसादी आदि शब्द हमें नित्य रेडियो पर सुनने को मिलते हैं। यदि आपने रेडियो-द्वारा ब्राडकास्ट की जाने वाली हिन्दुस्तानी में खबरें सुनी होंगी, तो आप हिन्दी की इस असहनीय उपेक्षा से अवश्य परिचित होंगे। यदि आपने न सुनी हों तो हमारा अनुरोध है किसी दिन अवश्य सुनिये और हिन्दी के प्रति होने वाले इस अन्याय को देखिये। रेडियो-विभाग आजकल इस हिन्दुस्तानी नामधारी फारसीमय उर्दू के अतिरिक्त अँग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, पश्तो और फारसी भाषाओं में भी समाचार ब्राडकास्ट कर रहा है। भारत की प्रायः समस्त भाषाओं में प्रबन्ध कर देने पर भी सबसे अधिक भारतीयों की भाषा हिन्दी की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई है। इससे बढ़कर अन्याय और क्या हो सकता है?

रेडियो-विभाग के अन्य हिन्दुस्तानी प्रोग्रामों में भी उसके सामने हिन्दी की बुरी तरह उपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिये गत ता० १ जनवरी से ३० अप्रैल १६३६ तक रेडियो-विभाग ने हिन्दुस्तानी के ७३ ड्रामा ब्राडकास्ट किये। इनमें से ६६ मुसलमानों द्वारा लिखे हुए उर्दू के थे और केवल ४ हिन्दुओं के लिखे हुए थे। इन चार ड्रामाओं की भाषा भी ऐसी थी जिस पर उर्दू की गहरी छाप थी। हिन्दू-संस्कृति का वर्णन करने वाले ड्रामाओं को भी रेडियो अधिकारी मुसलमानों से उर्दू में लिखा कर ब्राडकास्ट करते हैं। यही नहीं प्रत्येक दिन 'आदाबर्ज़' से रेडियो के प्रोग्राम आरम्भ होते हैं और आदाबर्ज़ पर ही समाप्त होते हैं।

हिन्दी की इस उपेक्षा का एक कारण यह भी है कि रेडिया-विभाग के बड़े से लेकर छोटे प्रायः सभी अधिकारी हिन्दी से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इनमें अधिकांश मुसलमान हैं जो हिन्दू रक्खे गये हैं वे भी हिंदी नहीं जानते। आवश्यकता यह है कि रेडियो-विभागमें हिन्दी-भाषाके ज्ञाता नियुक्त किये जाँय।

हिन्दी-साहित्य-सभा, रीडिङ्ग रोड, नई दिल्ली ने इस अन्याय के विरुद्ध अखिल भारतीय आंदोलन करने का निश्चय किया है। अतः समस्त हिन्दी प्रेमियों से सानुरोध प्रार्थना है कि इसमें सहयोग दें।

हमें क्या करना चाहिये?

हमें चाहिये कि रेडियो-विभाग द्वारा हिंदी के प्रति होने वाले इस अन्यायके विरुद्ध उग्र आन्दोलन आरम्भ कर दें। आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित किसी भी कार्य को शीघ्रातिशीघ्र करनेकी कृपा करें :—

(१) यदि आपका हिंदी अथवा अँग्रेजीके किसी समाचार पत्र से सम्बन्ध है, तो उसमें रेडियो-विभागकी हिन्दी-विरोधी नीति के विरुद्ध लेख लिखिये।

(२) यदि आपका सम्बन्ध किसी संस्था से है तो उसकी ओर से सभायें कराइये और रेडिया-विभाग की हिन्दी-विरोधी नीति के विरुद्ध प्रस्ताव पास कीजिये।

(३) यदि आपके पास रेडियो सेट है तो उसके द्वारा ब्राडकास्ट होने वाले हिन्दुस्तानी प्रोग्रामों को सुनिये और उनमें होने वाली हिन्दी की उपेक्षा के विरुद्ध अधिकारियों को पत्र लिखिये। यदि लेख लिखें तो उनकी कटिंग, यदि प्रस्ताव पास करायें तो उनकी प्रतिलिपि तथा अन्य पत्रों को अंग्रेजी में लिखकर निम्न पतों पर अवश्य भेज दें :—

१—माननीय सर एण्ड्रयू क्लो, सी. एस. आई., सी. आई. ई. आई. सी. एस.

मेम्बर, कम्यूनिकेशन विभाग, गवर्नमेंट आफ इण्डिया, नई दिल्ली।

The Hon'ble Sir Andrew Clow C.

S. I., C. I. E., I. C. S. Member, Communication Department Government of India

New Delhi

२—माननीय मि० एस. एन. राय. सी. एस. आई सी. आई. ई. आई. सी. एस., सेक्रेटरी, कम्यूनिकेशन विभाग, गवर्नमेंट आफ इण्डिया नई दिल्ली।

The Hon'ble Mr. S. N. Roy C. S. I., C. I. E., I. C. S. Secretary, Communications Department, Government of India, New Delhi

३—हिन्दी साहित्य सभा, रीडिंग रोड, नई दिल्ली

निवेदन

श्री हरेश शर्मा

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सभा

रीडिंग रोड, नई दिल्ली,

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

[ले०—श्रीप्रकाश, सम्पादक 'चमचम']

"यू २३५" नामक एक नये तत्वका अभी हालमें पता लगाया गया है। सबसे प्रथम इसका भास जर्मन वैज्ञानिकोंको लगा था। डा० लिसे मेटनर नामक एक यहूदी स्त्री भी उन वैज्ञानिकोंमेंसे थी जब कि नाज़ी सरकारने उनको देश निकाल दिया था, तब भी वह कोपेनहेगनमें भाग कर कार्य करती रही और अपने फल अमेरिकाके वैज्ञानिकोंके पास भेजती रही।

यह तत्व वैज्ञानिक जगत्के लिये अपूर्व व अद्भुत वस्तु है। यह यूरेनियम धातुके साथ मिला रहता है और इसके गुण भी बहुत कुछ यूरेनियमसे मिलते-जुलते हैं। यह कहा जाता है कि एक पौंड "यू २३५" की ताकत ५० लाख पौंड कोयले या ३० लाख पौंड पेट्रोलके बराबर होती है। प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक प्रो० जानडनिंगका तो यहाँ तक कहना है कि ५ से लेकरके १० पौंड तक "यू २३५" एक विशाल जलयान या एक युद्ध-पोतको खींच सकता है। जर्मनीने अपने वैज्ञानिकोंको यह आज्ञा दी है कि वे इस खनिजके प्रयोगमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति लगायें।

बहुत कालसे प्रयत्न किया जा रहा है कि नकली रबर बनाया जाय। अब तक भिन्न-भिन्न प्रयोग हो चुके हैं। इटलीके वैज्ञानिकोंने घोषणाकी है कि वो टमाटरसे रबरको बना सकते हैं। पोटैटो अल्काहौल (potato alcohol) एक दूसरा साधन है। अमरीकासे सूचना मिली है कि वहाँ एक ऐसा आविष्कार निकला है जिसके द्वारा तेल और वायुसे रबर बनाया जा सके। इस प्रयोगका आरम्भ सर्व प्रथम जर्मनी हुआ था।

अमरीकाके तेलके व्यापारियोंका यह कहना है वे ५ वर्षके भीतर इतना रबर तैयार देंगे जिससे देशको बाहरसे रबर मँगानेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। इसका प्लान (plan) बनानेमें दस लाख डालरोंसे अधिक व्यय होंगे। यह वर्षमें २,००० टन रबर बना देगा। यह अमरीकाकी खपतका एक तिहाई भाग है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१	प्रयाग, सिंह संवत् १९९७ विक्रमी	अगस्त, सन् १९४० ई०	संख्या ५

नक्षत्र और आकाश-गंगा

[ले०—प्रोफ़ेसर श्री अमियचन्द्र वन्द्योपाध्याय, एम० एस-सी०, आई० ई० एस०]

(अनुवादक—श्रीसुरेशशरण अग्रवाल)

रात्रिके समय आकाशमें हमें तारे या नक्षत्र दीखते हैं और नीहारिकायें भी। कमसे कम हम उनसे परिचित अवश्य हैं। अँधेरी रातमें आकाश-गंगा (milky way) भी हम देख सकते हैं। यह हमको कुछ-कुछ प्रकाशमान पट्टी सी दिखाई देती है जो आकाशके एक सिरेसे दूसरे तक धनुषाकार जाती है। यदि हम इसे एक अच्छी दूरबीनसे देखें तो ऐसा लगेगा मानो आकाश-गंगामें अनगिनती नक्षत्र हैं। परन्तु वास्तवमें नक्षत्र अनगिनती नहीं है। उनकी पूरी संख्या कोई दो खरब (२,००,००,००,००,०००) के निकट है और प्रत्येक नक्षत्र हमारे सूर्यके समान आगका एक बड़ा गोला है। हमारी धरतीकी जनसंख्या लगभग दो अरब है। अतएव आकाश-गंगाकी नक्षत्र-संख्या हमारे ग्रहकी जन-संख्यासे लगभग सौ गुनी है। ये सब नक्षत्र एक संस्थान या आकाश-गंगा (galaxy) बनाते हैं जिसका विस्तार विशाल है परन्तु असीमित नहीं। चूँकि हम इसी संस्थानमें स्थित हैं हमें उसका रूप अच्छी तरह नहीं मालूम पड़ सकता। उत्तराभाद्रपद (Andromeda) नीहारिकाका एक निवासी या आकाश-गंगाके परे स्थित एक आदमी इसको शून्य अवकाशमें स्थित द्रव्यका एक द्वीप जैसा समझेगा। हम इस प्रकार भो कह सकते हैं कि आकाश-गंगा और उत्तराभाद्रपद दोनों मरुभूमिमें ओएसिस या हरित् स्थल सदृश हैं। यद्यपि वे रिक्त स्थानमें हरित् स्थलके समान हैं उनका आकार हमसे कहीं बढ़ा-चढ़ा है। उनका विस्तार नापनेके लिये हमारे दूरी नापनेके साधारण पैमाने तो नितान्त तुच्छ हैं और उनके स्थान पर हम ज्योतिष-मापों का प्रयोग करते हैं। ज्योतिष-माप प्रकाश-वर्ष और पारसैक (त्रिप्रकाश-वर्ष) हैं। एक प्रकाश-वर्ष वह दूरी है जिसे तै करनेमें एक लाख छयासी हज़ार (१८६,०००) मील प्रति सेकण्ड गतिसे चलने वाले प्रकाश को एक वर्ष लगता है। एक प्रकाश-वर्ष लगभग ६० खरब (६०,००,००,००,००,०००) मीलके बराबर है। एक पारसैक उस आकाशीय पिण्डकी दूरी है जिसका लंबन (parallax)

एक सेकण्ड है, अथवा यह कोई दो पद्म (२ ००, ००,००, ००,००,००,०००) मील है ।

हबिल और ट्रम्पलरके नवीनतम अनुमान पर आकाश-गंगाका व्यास कोई ३०,००० पारसैक है । लिन्डब्लादके सिद्धान्तानुसार व्यास २६,००० पारसैक है । हमारा आकाशीय-संस्थान (galactic system) अथवा आकाश-गंगा एक बहुत-कुछ चपटी थालीके समान है जिसके बीचमें मोटाई ६००० पारसैकके निकट है । हमारे सूर्य देवता आकाशीय-संस्थानके भार-केन्द्रसे १०,००० पारसैककी दूरी पर हैं। यह केन्द्र सर्पवाहक (Ophiuchus) तारामंडलमें है । अपनी आकाश-गंगामें नक्षत्रोंकी गतिका अध्ययन करनेसे यह ज्ञात होता है कि हमारा आकाशीय-संस्थान एक गत्यात्मक इकाई है जो अपने ही तलमें केन्द्रके गिर्द एक बड़े कैथरीन पहियेके समान घूम रही है । परिभ्रमण-काल कोई २२,००,००,००० मील है और सूर्यपर स्पर्शीय-गति कोई लगभग २०० मील प्रति सेकण्ड है । आकाश-गंगाका कुल भार सूर्यके भारका १६५ $\times$ $१०^{११}$ गुना है । हमारी आकाश-गंगाके बाहरका सबसे बड़ा ज्ञात संस्थान उत्तराभाद्रपद नीहारिका है । हाल ही की खोजसे उसका व्यास लगभग २०,००० पारसैक निकला है । शेपलेका विचार है कि यह भी बहुत-कुछ चपटा और १००० पारसैक चौड़ा स्तर है परन्तु गैलक्टिक केन्द्रके समीप यह बहुत बढ़ गया है । इसका परिभ्रमण-काल १,४०,००,००० वर्ष है और भार सूर्यके भार से ३.५ $\times$ १० [illegible] गुना है। हबिल ने उत्तराभाद्रपद नीहारिका और हमारी आकाश-गंगामें समानता दर्शायी है । हर एकमें नक्षत्र और नक्षत्र-मेघ हैं, प्रकाशमान तथा अप्रकाशमान नीहारिकायें हैं और हैं विशाल तथा दैव नक्षत्र। दोनों संस्थानसे चपटे आकारसे उनकी बनावटकी एकताका पता लगता है । अपने तलोंमें दोनों तेज़ीसे घूमते हैं और शायद यह घूमना ही उनके चपटे होनेका कारण है । उत्तराभाद्रपद नीहारिकाकी सर्प जैसी आकृति है और हम अपनी आकाश-गंगाको एक महान् सर्पिल नीहारिका कहें तो अनुचित नहीं होगा । उत्तराभाद्रपद नीहारिका और आकाश-गंगा महा आकाश-गंगायें हैं और कई महा-गंगायें मिलकर विशाल-गंगा (supergalaxy) बनाती हैं । यदि भूगोलका विचार करें तो विशाल-गंगा एक महाद्वीपके सदृश है और महागंगा एक महाद्वीपके देश सदृश है । आज कल यह कहा जाता है कि "अपने देशको भली भाँति जानो" और अतः हम अपने आकाशीय संस्थान या आकाश-गंगाका मनन करेंगे ।

ऊपर कहा जा चुका है आकाश-गंगामें नक्षत्रों के ढेर के ढेर हैं ये नक्षत्र आपसमें भेद दर्शाते हैं । कुछ हमारे सूर्यसे १०,००० गुना प्रकाश और ताप देते हैं और कुछ हमारे सूर्यके $\frac{१}{१००}$ से भी कम । कुछका ऊपरी तापक्रम ३०००० शतांश है और कुछका ३०००° । इन नक्षत्रोंकी स्पष्ट चमक भी भिन्न-भिन्न है जिसके दो कारण हैं -- (१) उनकी दूरियाँ और (२) उनकी व्यक्तिगत् चमकमें असली भेद ।

कुछ नक्षत्र स्पन्दन करते हैं । वे कुछ दिन या कुछ सप्ताहके कालान्तरसे फूलते और सिकुड़ते रहते हैं । जैसे वे फूलते और दबते हैं उनसे दिये प्रकाश और तापकी मात्रामें बड़ा अंतर पड़ जाता है । बहुतसे नक्षत्र (लगभग एक तिहाई) जोड़ा बनाकर चलते हैं और वे द्विक-नक्षत्र कहलाते हैं । परन्तु अधिकतर नक्षत्र तो, महा वैज्ञानिक एडिंगटनके शब्दोंमें, सूर्यके समान कुमार ही हैं । कुछ नक्षत्र बड़े घने और ठोस हैं परन्तु कुछ बहुत हलके हैं । इन नक्षत्रोंके डीलडौलमें भी काफ़ी अन्तर है ।

बहुत सी बातोंमें विभिन्नताके होते हुये भी जहाँ तक इन नक्षत्रोंके भारका प्रश्न है उनमें कुछ एकता भी है । कुछ थोड़े-से तारोंको छोड़कर सबका भार सूर्यके भारसे ५ गुनेसे लेकर $\frac{१}{५}$ गुने तक है । प्रौढ़ व्यक्तियोंके रूप आदिमें बड़ा भेद होता है परन्तु उनका भार अधिकतर एक और ढाई मनके बीचमें होता है । भारकी ऐसी ही समानता इन नक्षत्रोंमें भी है ।

एक विशाल तारा (दैवतारा) अपने भारके कारण विशाल नहीं होता, बल्कि वह एक गुब्बारेकी भाँति फूला हुआ होता है । कुछ नक्षत्र तो इतने हलके हैं जैसे गैस । बौना तारा छोटा होता है क्योंकि वह बहुत ठस (compressed) होता है । हमारा सूर्य तो एक बीचका तारा है । इसका भार १'६ $\times$ $१०^{३३}$ ग्राम और व्यासार्ध ६'६ $\times$ $१०^{११}$ सेण्टी-मीटर है । सूर्यका घनत्व पानीके घनत्वसे १'४ गुना है । सूर्यका ऊपरी तापक्रम ५०००° शतांश है परन्तु केन्द्रमें

तापक्रम १,४०,००,००० श० तक ऊँचा हो सकता है।

ओरिगा (Auriga) तारामंडलमें कापेला (Capella) जो सबसे बड़ा तारा है द्विक-तारा है। उसके चमकीले अंगका भार ८'३ $\times$ १०^{३३} ग्राम या ४'१८ $\times$ भ, जहाँ भ सूर्यका भार है। उसका व्यासार्ध ९'५५ $\times$ १०^{११} से और घनत्व ०'००२२७ ग्राम प्रति घ.से. है। अस्तु, कापेलाका औसत घनत्व हमारी वायुका सा है। उसका ऊपरी तापक्रम ५२००° श० परन्तु केन्द्रमें तापक्रमका अनुमान ७० लाख श० से ऊपर लगाया जाता है।

ओरायन या मृगव्याध (Orion) पुंजमें एक बड़ा नक्षत्र आर्द्रा (Betelguese) है। उसके आकारका अनुमान लगानेके लिये हम मान लें कि सूरज फूल गया और बुध, शुक्र, पृथ्वीको निगलता हुआ मंगल तक पहुँच गया। उसका व्यासार्ध २'५ $\times$ १०^{१३} से या सूर्यके व्यासार्धका ३६० गुना है। उसका घनत्व ०.००००००२ ग्राम घ.से. है। अतएव आर्द्रामें द्रव्य बड़ा ही हलका है। आर्द्राको हम एक शून्य नली कह सकते हैं। परन्तु हाल हीमें हमारी प्रयोग-शालाओंमें आर्द्रासे कहीं अधिक क्षीणशून्य पैदा किया गया है। यदि आर्द्राके आकारके किसी नक्षत्रका घनत्व सूर्यके घनत्वके समान हो तो गुरुत्वाकर्षणका बल इतना होगा कि प्रकाश उससे बच कर जा नहीं सकेगा और प्रकाश-किरणें नक्षत्रमें ही रहेंगी, जैसे एक पत्थरको फेकें तो पृथ्वी पर ही गिरेगा।

वायव्य-नीहारिकाओंमें ऐसे द्रव्यका अनुमान लगाया गया है जो जितना शून्य हम पृथ्वी पर पैदा कर सकते हैं उससे १० लाख गुना और कम (rarefied) है। हमारी प्रयोग-शालाओंमें मुश्किलसे तापक्रम ५०००° श० हो पाता है परन्तु नक्षत्रोंमें तापक्रम ५,००,००,०००° श० तक ऊँचा पाया गया है। एडिंगटन ने ठीक ही कहा है कि आकाशीय प्रयोगशालाओंमें कहीं अधिक गरम भट्टियाँ और कहीं अधिक हलके "शून्य" मिलते हैं। और वहाँ प्रयोग भी यहाँ से कहीं बड़े पैमाने पर होते हैं।

श्वेत बौने नक्षत्र

एडिंगटन ने ज्योतिषाचार्यकी तुलना एक बिजलीके इञ्जीनियरसे की है। बिजली-बाबू हमको यह बता देंगे कि अमुक मात्राका प्रकाश पानेके लिये अमुक आकारका डायनेमो लगाइये। इसी प्रकारसे एक ज्योतिषीके लिये एक तारे का जिससे जनित ताप और प्रकाशकी मात्रा ज्ञात हो, भार निकालना सम्भव है। एडिंगटनने एक तारेका "भार-दीप्ति नियम" निकाला कि किसी तारेकी चमक विशेषकर उसके भार पर और कुछ तक उसके व्यास पर निर्भर है। इस नियमके केवल हलके नक्षत्रों पर लागू होनेकी आशा थी जो वायव्य जैसा व्यवहार करते हैं। परंतु आश्चर्य हुआ और अतएव समस्या पैदा हो गई जब कि इस नियमसे घने तारोंका भार भी सही आने लगा। इससे यह प्रकट हुआ कि यद्यपि घनत्व पानी या लोहेके घनत्वके समान हो फिर भी नक्षत्रीय द्रव्य वायव्य जैसा व्यवहार करता है और उसे दबाया जा सकता है। कारण इस प्रकार है। हम पानी या लोहेको हवाकी भाँति नहीं दबा सकते क्योंकि उनके परमाणु लगभग बिल्कुल पास-पास है और दबानेकी सीमाके परे होनेके कारण उन्हें दबाकर अधिक पास नहीं लाया जा सकता है। अत: भूस्थितिमें दबावकी सीमा द्रव या ठोसके घनत्व पर निर्भर है। परन्तु नक्षत्रीय द्रव्यमें यह बात नहीं। उसका तापक्रम लाखों और करोड़ों अंशों पर होता है और इस कारणसे भूस्थित परमाणुके ऋणाणुओंके विपरीत वहाँके परमाणु क्षत-विक्षत होकर विच्छिन्न हो जाते हैं और नक्षत्रोंमें परमाणुके बाहरी भागके क्षत-विक्षत हो जानेके कारण द्रव्यके दब सकनेकी क्षमता बहुत बढ़ जाती है।

यह द्रव्य वायव्य जैसा व्यवहार करता है जिसके कारण एडिंगटनका नियम लागू होता है।

आकाशमें सबसे प्रकाशमान तारे व्याध या लुब्धक (Sirius) का घनत्व पानीसे ५०,००० गुना है। इस तारेमें द्रव्य प्लेटीनम धातुसे २००० गुना घना है। यदि इस द्रव्यसे एक दियासलाई भर देवें तो उसका भार एक टन होगा। एक दूसरे नक्षत्र ओ$_२$-इरीडानी-बी का घनत्व पानीके घनत्वका ९८,००० गुना है।

ग्रह-संस्थान

एक समय था जब यह विचार किया जाता था कि

सब तारोंके सहकारी ग्रह हैं। परन्तु अब यह विचार है कि ग्रह बनना एक दुर्लभ बात है। अनुमान किया जाता है कि कोई दो अरब वर्ष पूर्व हमारा सूर्य एक दूसरे नक्षत्रसे ज़रा-ज़रा टकरा गया। पूरा टक्कर नहीं हुआ। वह नक्षत्र तो अब बड़ी दूर चला गया। हमारे सूर्यमें एक बड़ी ज्वार-तरंग पैदा हो गई और द्रव्य फूट निकला जिसने ग्रहों-का रूप धारण किया। इस गगनमें काफ़ी स्थान है और एडिंगटन ने ठीक ही कहा है कि नक्षत्रोंकी विशाल गतिके होते हुये भी आकाशमें आवागमनको हालत बहुत अच्छी है और दुर्घटनायें या टक्करें कम होती हैं। जैसा आजकल तारोंका वितरण है उसका हिसाब लगानेसे ज्ञात होता है कि कोई तारा ध × १०^{१७} वर्षोंमें केवल एक बार टक्कर खायगा। यदि हम नक्षत्रोंकी औसत आयु ५ × १०^{१२} वर्ष मानें तो आजकल केवल एक लाख नक्षत्र ही ग्रह वाले हैं।

द्विक्-तारे

कुछ द्विक्-तारे (दो-दो साथ चलने वाले) ऐसे हैं जिनमेंसे प्रत्येकको आँखोंसे देखकर नहीं पहचाना जा सकता है, क्योंकि दोनों तारे बहुत ही निकट हैं। इन तारोंका किरण-चित्र ही हमें बताता है कि ये द्विक् तारे हैं। इन्हें हम किरण-चित्र दर्शकीय द्विक् कहेंगे। ये आँखों-से सीधे नहीं देखे जा सकते हैं। ऐसा विचार है कि लगभग समान घनत्वके घूमते हुये पिण्डोंसे ये बने हैं।

मूल पिंड तो गोलाकार था, और यह घूमते-घूमते अण्डाकार हो गया और बादमें सिकुड़नके कारण नास पातीकी आकृतिका हो गया। यह आकृति गत्यर्थक दृष्टिसे अस्थायी है। अतः बीचसे दो टुकड़े हो गये। इस प्रकार दो पिण्ड बने जो साथ-साथ घूमने लगे। इनसे ही द्विक्-संस्थान बना।

आँखोंसे दिख जाने वाले द्विक्-तारे इस प्रकार नहीं बने। मूल नीहारिकाओंमें स्वतंत्र सघनीकरणसे इनका जन्म हुआ है।

सेफायड-तारे

स्पन्दन प्रदर्शित करने वाले तारोंको सेफायड-वेरियेबिल कहते हैं। उनकी सहायतासे दूरस्थ तारों और नीहारिकाओंकी दूरी निकाली जा सकती है। यदि कोई आकाशीय पिंड १०० पारसैकसे अधिक दूरी पर है तो लंबन-विधि द्वारा उसकी दूरी नहीं निकाली जा सकती है। सेफायडकी दीप्ति या चमक आवर्त्त-नियमके अनुसार बराबर परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन-का आवर्तकाल कुछ घंटोंसे लेकर कुछ सप्ताह तक होता है। एक ही आवर्तकालके सेफायडकी एक सी ही निजी दीप्ति, एक सा ही व्यासार्ध और एक सा ही किरण-चित्र होता है। आवर्तकाल और दीप्तिके बीचके संबंधको "आवर्त-दीप्ति नियम" कहते हैं। अधिकतर आवर्तकाल और दीप्तिमें साथ-साथ परिवर्तन होता है। अतः सेफायडों-को दीप्तिकी मापमें "आदर्श-मोमबत्ती" माना जा सकता है। उस सेफायडकी दीप्ति जिसका आवर्तकाल ४० घंटे है, सूर्यकी दीप्तिसे २५० गुनी है, और जिसका आवर्तकाल १० दिन है उसकी दीप्ति सूर्यकी दीप्तिसे १६०० गुनी है। यदि सेफायडकी सापेक्ष और निरपेक्ष मापें ज्ञात हैं तो व्युत्क्रमवर्ग नियमसे दूरी निकाली जा सकती है। यदि क और ख की निजी दीप्ति बराबर, हो, पर यदि ख की अपेक्षा क चार गुना अधिक दीप्तिमान दिखाई पड़े तो क की अपेक्षा ख दुगुनी दूरी पर स्थित होगा।

सौभाग्यकी बात है कि अधिकांश तारामंडलों और नीहारिकाओंमें सेफायडोंकी संख्या काफ़ी होती है। अतः इनकी अनुमानिक दूरियाँ आसानीसे निकाली जा सकती हैं।

ग्रही और क्षीण नीहारिकायें

ग्रही और क्षीण नीहारिकाओं में ग्रह जैसी कोई चीज़ नहीं होती, परन्तु दूरबीनसे देखे जाने पर उनमें निश्चित थालियोंका होना पता चलता है। इन नीहारिकाओंमें अत्यधिक तारे हैं। वे अति हलके या क्षीण हैं। एडिंगटन महोदय ने गणितसे निकाला है कि पृथ्वीके समान बड़े आयतनकी इन नीहारिकाओंका भार २० टनसे ऊपर नहीं होगा। इन क्षीण नीहारिकाओंके रूप विभिन्न होते हैं। इसका, कारण है—घनत्व अपारदर्श-कता और दीप्तिके भेद।

अपनी आकाश-गंगामें हमें दोनों प्रकारकी नीहारिकायें मिलती हैं। उनमेंसे कुछका व्यास तो १०० प्रकाश-वर्ष होता है। यदि अपनी गैलक्टिक पद्धतिको एक देश मानें तो नीहारिकाओंको प्रान्त कह सकते हैं।

अँधेरी नीहारिकायें भी होती हैं जो प्रकाश नहीं देतीं और अपने पीछेके तारोंको भी ढक लेती हैं। कृत्तिका (Pleiades) और रोहिणी (Hyades) गैलक्टिक गुच्छे हैं जो आकारमें छोटे हैं। कृत्तिकाकी लम्बाई कोई दस प्रकाश-वर्ष है। इन गैल-कक्टि गुच्छोंकी तुलना ज़िलों और डिवीज़नोंसे की जा सकती है। इसी पैमाने पर सूर्य और उसके ग्रहोंकी तुलना नगर और उसके पड़ोससे की जा सकती है।

मैगलनीय मेघ और वाह्य गैलक्टिक नीहारिकायें

हमारी आकाश-गंगाके ज़रा बाहर तारोंके तो विचित्र गुच्छे हैं, जिनको सर्व प्रथम स्पेन वासी नाविक फर्डीनैण्ड मैगलनने संसारका चक्कर लगाने पर दक्षिणी खगोलीय ध्रुवके पास देखा था। यह हमसे ८५ और ९५ हज़ार प्रकाश-वर्ष दूर हैं। अनन्त स्थानमें और भी संस्थान तथा नीहारिकायें हैं जिनमेंसे अधिकतर सर्पिल रूपमें और कुछ दीर्घवृत्त रूपमें हैं। ये नीहारिकायें बड़ी विशाल होती हैं। यदि इन नीहारिकाओंका आकार एशियाके बराबर कर दिया जाय तो पृथ्वी इतना सूक्ष्म पिंड होगी जिसको सर्वश्रेष्ठ खुर्दबीनसे भी नहीं देखा जा सकता।

प्रसरणशील जगत्

बाह्य गैलक्टिक नीहारिकाओंमें सेफ़ायड तारे बहुत होते हैं अतः उनकी दूरियाँ आसानीसे निकाली जा सकती हैं। इन बाह्य गैलेक्टिक नीहारिकाओंमें एक विचित्र बात दिखाई पड़ती है। उनका किरण-चित्र निकटतम यह बताता है कि तीन-चारको छोड़कर, शेषमें चित्र रेखायें लाल की ओर हटती जा रही हैं। अधिकतर यह भी पाया गया है कि रेखाओंका यह हटाव नीहारिकाओंको दूरीसे संबन्धित है। इस हटावकी मीमांसा केपलर-नियमके आधार पर की जा सकती है। इस नियमके आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ये गैलेक्सियाँ (आकाश गंगायें) बराबर हमसे दूर हटती जा रही हैं, और ज्यों-ज्यों दूर हटती जा रही हैं उनके दूर हटनेकी गति और भी अधिक बढ़ती जा रही है। यह गति दूरीकी समानुपाती है। १ करोड़ प्रकाश-वर्षकी गैलेक्सी यदि १,००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे हटे तो ५ करोड़ प्रकाश-वर्षकी गैलेक्सी ५,००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे हटेगी। अब तक सब से अधिक तीव्र गतिसे हटने वाली गैलेक्सी ३०,००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे हट रही है। इसकी दूरी हमसे ३० करोड़ प्रकाश-वर्ष दूर है। मीलोंमें ३० करोड़ प्रकाश-वर्ष = १८०००००००००००००००००० मील।

मैं यहाँ एक बात और कहना चाहूँगा। हम नीहारिकाओंका बड़ा पुराना इतिहास ही जान सकते हैं। कोई नीहारिका जिसकी दूरी हमसे एक करोड़ प्रकाश-वर्ष लगाई जाती है उस दूरी पर एक करोड़ वर्ष पहले था। अब वह हमसे और ज़्यादा दूर है—लगभग १,००,५०,००० प्रकाश-वर्ष और अब हमसे १०५० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे दूर भाग रहा है। इसी प्रकार कोई नीहारिका जिसको दूरी ३ अरब प्रकाश-वर्ष है हमसे ३ अरब वर्ष पूर्व उस दूरी पर थी। वह हमसे ३$\frac{1}{2}$ अरब प्रकाश-वर्ष दूर है और अब हमसे ३५,००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे दूर भाग रही है।

जल तथा खनिज जल

[ले० श्री महेन्द्रनाथ अष्ठाना]

शरीरके सम्पूर्ण भार का $\frac{2}{3}$ भाग जल है। शरीरके अंगोंके निर्माणके लिये जलका महत्व स्पष्ट है। इसलिये आवश्यक भोज्य-पदार्थोंमें जलको ऊँचा स्थान प्राप्त है।

प्रति दिन लगभग ४$\frac{1}{2}$ पाइंट जल मल-मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर जाता है। इसका लगभग $\frac{1}{6}$ भाग अंगोंमें ओषजन और हाईड्रोजनके मिलनेसे बनता है और शेष

भोजन और अन्य द्रव्योंसे प्राप्त होता है। यदि सम्पूर्ण ठोस भोज्य-पदार्थोंके वज़नका आधा जल माना जाय, तो लगभग २$\frac{1}{3}$ पाइंट जलकी और आवश्यकता होगी। ठीक-ठीक मात्रा तो बाहरी दशा (तापक्रम इत्यादि) और पसीनेकी मात्रा पर निर्भर है।

भिन्न-भिन्न प्रकारके भोजनके ऊपर भी जलकी आवश्यकता निर्भर है। वॉयटने इस प्रकारको एक सारिणी बनाई है जो निम्नलिखित है :—

भोजन	भोजनमें जलकी मात्रा	मलमें जल-की मात्रा
८०० ग्राम डबल रोटी	११५१ ग्राम	२१२ ग्राम
५०० " मांस और २०० ग्राम चर्बी	७६० "	२५ "
५०० " मांस और २०० ग्राम स्टार्च	६४६ "	१६ "
१५०० " मांस ..	१२३८ "	१० "

डबल रोटीके भोजनमें मलमें जलका अंश सबसे अधिक है। इसलिये जलके अधिक अंशकी आवश्यकता है। यह बात इस कथनके कि शाकाहारी भोजनमें प्यास अधिक लगती है, बिल्कुल विपरीत है।

खनिज जल

एयरेटेड जलका आविष्कार प्रीस्टलेने किया था। अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें इसका आविष्कार हुआ था। कर्बन द्विओषिदी गैसको अत्यधिक दबावसे जलमें मिलाया जाता है। यह गैस गंधकके तेज़ाब और चूनेके पत्थरसे बनाई जाती है। साधारणतया एक भाग जलमें तीन या चार भाग गैस रहती है। यह अनुपात बहुत अधिक है, और बोतल खोलनेके समय गैस बहुत वेगसे निकलती है, जिससे थोड़ा जल बाहर निकल जाता है। परन्तु बाहर जाते समय यह गैस जलकी थोड़ी बहुत गर्मी अपने साथ लेती जाती है, जिससे एयरेटेड जल साधारण जल से सदा शीतल रहता है।

निम्नलिखित प्रकारके एयरेटेड जल प्रसिद्ध हैं :—

१—साधारण जल जिसमें कर्बन द्विओषिद गैस मिला दी गई हो। अधिकतर यह जल कुओंका होता है, जिसमें स्वच्छता अधिक होती है। इस प्रकारके एयरेटेड जलको कभी-कभी 'सोडा-वाटर' कहा जाता है, परन्तु यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि इसमें सोडा नहीं होता।

२—एयरेटेड स्रवित (distilled) जल—इसमें कुएँके जलके स्थान पर स्रवित जल काममें लाया जाता है। यह खनिज-पदार्थों और अशुद्धियोंसे मुक्त होता है। इस प्रकारका जल प्यूरेलिस, सेल्यूटेरिस, ग्लोविनेरिस आदिके नामसे बाज़ारमें बिकता है।

३—जल जिसमें भिन्न-भिन्न रासायनिक लवण मिले हों—उदाहरणार्थ – सोडा-वाटर, जिसमें ३ से ५ ग्रेन सोडियम बाईकार्बोनेट एक बोतलमें घुले हों; मेडिसनल सोडा वाटर जिसमें १५ ग्रेन सोडियम बाईकार्बोनेट एक बोतलमें घुला हो। पोटाश-वाटर, जिसमें १५ ग्रेन पोटैसियम बाईकार्बोनेट एक बोतलमें मिले हों। मैग्नीशिया-वाटर, जिसमें १२ ग्रेन मैग्नीशियम-कार्बोनेट एक बोतलमें हों। कैरारा-वाटर, जिसमें ५ ग्रेन कैलसियम कार्बोनेट एक बोतलमें हों। लीथिया-वाटर, जिसमें ३ से ५ ग्रेन लीथियम कार्बोनेट एक बोतलमें हो।

४—भिन्न भिन्न प्रकारके प्राकृतिक खनिज जलों की नकल

इस प्रकारके जलका एक उदाहरण सेल्टज़र (Seltzer) जल है, जो सेल्टर्स सोतेके प्राकृतिक जल की नकल मात्र है। इसमें मिले हुए पदार्थ ये हैं—साधारण नमक, सोडियम बाईकार्बोनेट, मैग्नीशियम, कार्बोनेट और हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड। इन पदार्थोंकी प्रतिक्रियाओंसे एक प्रकारका एयरेटेड जल बनता है, जो प्राकृतिक सेल्टज़र जलसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इसकी एक बोतलमें .६२ ग्रेन खनिज-पदार्थ उपस्थित होते हैं। इसका एक गिलास ३७$\frac{1}{2}$ घ. श. म. सोडेके घोलको शिथिल कर सकता है। सोडेका घोल दशमांश सामान्यता (decinormal) का है।

५—मीठे और स्वादिष्ट किये हुए खनिज जल

इस श्रेणीमें लेमोनेड, जिंजर-बियर, इत्यादि सम्मिलित

है। इसके बनानेमें जलको गन्नेकी शक्करसे मीठा करके कोई अम्ल खट्टापन लानेके लिये मिला दिया जाता है। इसके बाद स्वादके लिये कोई पदार्थ मिलाकर उसमें कर्बन द्विओषिद गैस भर दिया जाता है।

इस प्रकारके जलकी एक बोतलमें १ औंस शक्कर रहती है। यदि असल फलसे बनेके नामसे बिके तो उसमें साइट्रिक या टारटेरिक ऐसिड मिलाया जाता है, अन्यथा फॉसफ़ोरिक ऐसिड, फॉसफ़ोलैक्टिक या फॉसफोसाईट्रिक ऐसिडके रूपमें रहता है। कोई-कोई ऐसेटिक ऐसिड भी काममें लाते हैं। यदि सिट्रिक या टारटेरिक ऐसिड प्रयोग किया जाय तो उसकी मात्रा एक बोतलमें लगभग १० ग्रेन होती है। और इसकी अम्लता सिरकेके एक बड़े चम्मच के बराबर होती है।

इस प्रकारके कुछ जलोंकी बनावट इस प्रकार है:—

लेमोनेड

शीरा, १ गैलन
लेमन टिंक्चर, ४ औंस
ऐसेटिक ऐसिड, ४ से ५ औंस
एक बोतल में १ से १½ औंस

जिंजर बियर

शीरा, ३ क्वार्ट
उबलता जल, १ क्वार्ट
नीबूका तेल, २४ क्वार्ट
ऐसेटिक ऐसिड द्रव ४ औंस
जिंजरका टिंक्चर (q. s.)
एक बोतल में १ से १½ औंस

औरेंजेड

शीरा, १ गैलन
औरेंज टिंक्चर, ४ से ६ औंस
ऐसेटिक ऐसिड, ४ औंस
एक बोतलमें १ से १/२ औंस

जिंजरेड

शीरा, १ गैलन
जिंजरका टिंक्चर, ४ औंस
ऐसेटिक ऐसिड, ४ औंस
कड़ुवा औरेंज-टिंक्चर (q. s.)
एक बोतलमें १ से १½ औंस

जिंजर-एल

शीरा, १ गैलन
जिंजरका टिंक्चर, ४ औंस
(या कैप्सिकमका टिंक्चर, १ औंस
ऐसेटिक ऐसिड, ४ औंस
रंग (शक्कर), ½ औंस
एक बोतलमें १ से १½ औंस※

लेमोनेड और औरेंजेडका नीबू या नारंगीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिंजर-बियर या जिंजर-एलका अदरकसे तो बिल्कुल संबन्ध नहीं है, क्योंकि अधिकतर तेज़ी कैप्सीकमके टिंक्चर डाल देनेसे आ जाती है।

असल ख़मीरदार जिंजर-बियर दूसरी ही वस्तु है। इसमें निम्नलिखित पदार्थ मिले होते हैं:—

जल, २१ गैलन
शक्कर, २१ पौंड
कुचली हुई अदरक, १½ पौंड
टारटेरिक ऐसिड, ६ औंस
गम अरेबिक, १ पौंड
नीबूका तेल ½ औंस
यीस्ट ½ पाइंट

ख़मीर (यीस्ट) के कारण इसमें अधिकतर २ प्रतिशत एलकोहल रहता है।

प्राकृतिक खनिज जल

इस प्रकारके जल प्राकृतिक सोतोंसे प्राप्त होते हैं, और उनमें अधिकतर कार्बन द्विओषिद गैस भरी होती है। भिन्न-भिन्न प्रकारके खनिज पदार्थ भी इनमें मिले होते हैं, जिनमें साधारण नमक और सोडे और चूनेके लवण बहुतायतसे होते है। जलमें खनिज पदार्थोंकी संख्या एक प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। इससे अधिक होने पर शरीर पर इनका प्रभाव अधिक पड़ने लगता है।

निम्न लिखित सारिणीसे इस प्रकारके भिन्न-भिन्न जलों के विषयमें कुछ सूचना मिलती है।

※ शीरा १¼ गैलन जलमें ५ सेर शक्करका घोल है।

जल	१ गैलनमें खनिज पदार्थ	१ बोतलमें खनिज पदार्थ		वर्णन
१	ग्राम २ २७	ग्राम ः ४	घ श. म. ६१.८	प्रशाकी आरकी घाटीसे प्राप्त होता है। क्षारीय गैस अधिकतासे मिली होती है, और थोड़ा क्लोरीन भी मिला होता है। मुख्य पदार्थ साधारण नमक, सोडियम, कैल्सियम और मैग्नेशियम कार्बोनेट।
२	१,०५	,६१	२९.३	हॉम्बर्गके लगभग एक सोते से प्राप्त होता है। थोड़ा क्षारीय, गैस मिला हुआ कुछ खनिज पदार्थ मिलाये हुए होता है। पदार्थ—एक लिटरमें लगभग १˙२ ग्राम साधारण नमक, और ˙५ ग्राम पार्थिव कार्बोनेट होते हैं।
३	१. ५८	˙६५	३१.८	जो हानिसके सोतोंसे प्राप्त होता है। हल्का क्षारीय गैस मिला हुआ, और थोड़े खनिज-पदार्थ मिलाये हुए होता है। मुख्य पदार्थ-चूने और सोडेके कार्बोनेट और कुछ साधारण नमक। इससे एक प्रकारका जल बनाया जाता है, जिसमें इस जलकी एक बोतलमें १ ग्रेन लीथियम बाईकार्बोनेट मिलाया जाता है।
४	२२	—	१५	फ्रांसके एक सोतेसे प्राप्त। थोड़े खनिज पदार्थ, और गैस मिली होती है। मुख्य लवण सोडियम-बाई कार्बोनेट है।

अन्य प्रकारके जल निम्नलिखित हैं :—

विची :—एक लिटरमें ८ ग्राम ठोस पदार्थ रहता है, जिसमें ५ ग्राम सोडियम बाईकार्बोनेट है। २५० सी० सी० विची जल २६८सी० सी० दसांश सामान्यता (decinormal) के क्षारको शिथिल करता है। स्वस्थ शरीरके लिये लाभदायक नहीं है।*

सेण्ट गाल्मियर :—इसका उपयोग बहुधा फ्राँसमें होता है। इसके एक लिटरमें २ ८ ग्राम ठोस पदार्थ, मुख्यतः पार्थिव कार्बोनेट रहते हैं।

कन्ट्रेविल :—इसमें पहलेकी भाँति २˙३ ग्राम ठोस पदार्थ हैं।

*गान्धी जी अपने पिछले व्रतमें इसीका उपयोग करते थे।

मालवर्न :— यह एक स्वच्छ प्राकृतिक जल है जो मालवर्न सोतेसे प्राप्त स्पार्क्लिङ्ग होता है। एक लिटरमें १˙८ ग्राम पदार्थ है, जिसमें ७५ ग्राम साधारण नमक और १ ग्राम सोडियम कार्बोनेट है।

सेल्टज़र :—एक लिटरमें ३˙६ ग्राम ठोस पदार्थ है, जिसमें २ २४ ग्राम साधारण नमक और १˙३ अन्य कार्बोनेट है।

एडोनिस :—हल्का क्षारीय है। एक लिटरमें २ ३ ग्राम सोडियम बाईकार्बोनेट है। यह मृदु है और गैस अधिकतासे होती है।

सिनेरो :—मुख्य खनिज पदार्थ कैलसियम और सोडियम बाईकार्बोनेट है।

आर्कीनाः—स्विट्ज़रलैंडमें प्राप्त। हल्का क्षारीय है। इसमें मुख्यत: मैग्नीशियम बाईकार्बोनेट है।

रैमलोसाः—यह स्वीडेनसे प्राप्त होता है और इसमें चूना और लोहा नहीं होता।

खनिज जलोंके उपयोग

जलमें कर्बन द्विओषिद गैस दबावके साथ मिलाकर पीनेसे बहुत लाभ होता है। इसका स्वाद सुहावना होता है, और पाचनका सहायक है। खनिज जलोंसे मेदेमें गैस्ट्रिक-जूस जल्दी और अधिकतासे निकलने लगता है। कार्बोनेट ऐसिड मेदेकी शक्तिको बढ़ा देता है, जिससे पाचन-क्रिया को सहायता मिलती है। मेदेमेंसे गैस बुलबुलोंके रूपमें बाहर निकलती है, जिससे मेदेकी वस्तुयें सरलतापूर्वक छोटे-छोटे भागोंमें विभाजित हो जाती है।

कभी-कभी इस प्रकारके जल हानिकारक होते हैं। कर्बन द्विओषिद गैस मेदेमेंसे रुधिरमें शीघ्रतापूर्वक शोषित हो जाती है। यदि खूनमें इस गैसकी अधिकता पहले ही से है, जैसे साईनोसिस (एक प्रकारकी बीमारी) में, तो जल हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। क्षीण हृदययुक्त पुरुषके लिये भी यह हानिकारक है, क्योंकि गैसके दबाव के कारण मेदा फूलनेसे हृदयके ऊपर दबाव पड़ सकता है। जिन मनुष्योंकी भूख मन्द हो उनको भी इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मेदेकी शक्ति गैस द्वारा क्षीण हो जाती है और भोजनकी इच्छा और भी कम हो जाती है।

एयरेटेड जलोंमें कीटाणुओंके मारनेकी शक्ति नहीं होती है। कदाचित हैज़ेके कीटाणु कर्बन द्विओषिद गैससे मर जाते हैं, अन्य नहीं मरते। इनका जल अकसर कुओंसे लिया जाता है जिससे उनमें रोगोंके कीटाणुओंको आशंका नहीं होती। स्रवित एयरेटेड जल भी इसी प्रकार है, परन्तु इसका काफ़ी मात्रामें नहीं उपयोग करना चाहिये, क्योंकि मेदेकी दीवारोंको हानि पहुँचा कर उल्टी हो जानेकी आशंका है।

अब यह प्रश्न उठता है कि प्राकृतिक खनिज जल अधिक उपयोगी है अथवा बनावटी। प्राकृतिक खनिज जलमें गैसकी अधिकता नहीं होती और जितनी गैस होती भी है उसमें बनावटी जलकी अपेक्षा अधिक गैस संयुक्त रूपमें होती है। इसलिये उनकी गैस अधिक धीरे निकलती है, और चँचलावस्थामें अधिक समय तक रहती है, और एकाएक मेदा नहीं फूलता। निम्नलिखित सारिणीसे इसका पता चलता है।

प्राकृतिक जल

बाहर निकल जाने वाली गैस	४८० घ.श.म.
बच रहने वाली गैस	१०१०
योग	१४६०

बनावटी जल

७६० घ.श.म.	} बोतल आध-घंटे तक खुली रहो।
७२३	
१४८	

प्राकृतिक खनिज जलोंमें कुछ गुण होते हैं, जो बनावटी जलोंमें नहीं आ सकते।

इसका कारण यह है कि प्राकृतिक जलोंमें थोड़ी-सी मात्रामें कुछ ऐसे लवण भी होते हैं जो बनावटी जलोंमें नहीं रहते, थोड़ी-सी मात्रामें विद्यमान इन लवणोंका शारीरिक स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यही नहीं, बनावटी जलके लवण अन्य बातोंमें भी प्राकृतिक जलोंके लवणोंसे भिन्न हैं।

इस प्रकारके जलोंको शराबके साथ मिला कर पिया जाता है। शराबकी अम्लताको इस जलकी क्षारता शिथिल कर देती है। इससे शराबका थूकके ऊपर असर सुधर जाता है।

मीठे खनिज-जल, जैसे लेमोनेड, मेदेमें जाकर अपनी अम्लताके कारण कुछ हानिकारक हो सकते हैं। यह अम्लता कुछ तो उन जलोंमें स्वयं अम्ल होनेके कारण और कुछ उनकी शक्करके मेदेमें पाचकरसोंके साथ मिलनेसे, और ख़मीर बन जानेसे भी, उत्पन्न हो सकती है। परन्तु यह न समझना चाहिये कि इस प्रकारके जलोंमे पौष्टिक अंश बिल्कुल ही नहीं हैं, क्योंकि इनकी एक बोतलमें इतनी काफ़ी शक्कर रहती है जो शरीरको लगभग ११५ कलारी सामर्थ्य प्रदान कर सकती है। थकावटके समय यह जल शक्करके कारण थकावट भी मिटा देते हैं।

वनस्पतियोंके रंग

(शैवाल योनि असम्मिलित)

[ले०—श्री हरिकिशोर एम० एस-सी०]

पत्तियों, फूलों, तथा वृक्षों और उनके अन्यान्य अंगोंके रंगोंमें अनेक भेद पाये जाते हैं। फूल कितने सुन्दर लगते हैं; नई कोपलें कितनी मनमोहक होती हैं; कुछ वृक्षोंकी लकड़ियोंका रंग कितना चित्ताकर्षक होता है, यह बतानेकी बात नहीं। ये पहली ही दृष्टिमें हमें अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। ख़ास कर फूल अपने विविध रंग तथा एकमें ही अनेक रङ्गोंके सम्मेलन, अपने मखमली स्पर्श, चिकनापन तथा कोमलतासे जो आनन्द बिखेरते हैं वह केवल प्रकृति-पर्यटनलीन ही समझता है।

इनको देखकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि प्रकृति-नागरी किस जादूकी छड़ीसे वनस्पतियोंमें रङ्ग भरती है। वह उसकी कौन-सी कला है जो इन विविध और विचित्र रंजन-चतुरताको विचित्रित करती है। चित्रकार, कवि, तथा पदार्थ-विज्ञानी सभी उसे अपने-अपने दृष्टिकोणसे देखते हैं।

जिन विविध विधानोंसे प्रकृति वनस्पति-संसारको रङ्ग प्रदान करती है उसका तत्व वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे बहुत ही सरल है। इन रङ्गोंमें अनेकता उत्पन्न करने वाले केवल कुछ रङ्ग-तत्व (pigments) हैं क्योंकि अंग विशेषकी बनावट, रङ्ग-तत्वोंकी शिराओंमें विभाजन तथा उनके विसर्जन-शक्ति इत्यादिके अनुरूप मिश्रित हो रंग विशेष बनाते हैं। ये रंग प्राणी-संसारके रङ्गसे कुछ भिन्न प्रकारके होते हैं। भ्रमरवर्ण, तितलीवर्ण तथा पक्षीवर्णके रङ्ग, सतहकी बनावट और उनके निरूपण भावके अधीन होते हैं, पर वनस्पति-संसारके रंग केवल रंगतत्व तथा कभी-कभी पौधों के ऊपरी धातुरूपी दमकके ऊपर निर्भर रहते हैं। ये रंग-तत्व शुद्ध स्फटिकके रूपमें या जीव-परमाणु रसमें मिले, या जीव रसवाहकोंकी दीवारोंमें बटे होते हैं। वे कभी-कभी इन दीवारोंसे ही स्रवित या रूपान्तरित कर दिये जाते हैं। इनका विशद विवेचन आगे किया जायगा।

ऊपरके कारणोंके सिवा रंगों और उनके अधिक आभा-के होनेके अन्य भी कारण हो सकते हैं। रंग-तत्व ठोस या तरल दोनों ही रूपमें पाये जाते हैं। कभी-कभी तो दो जीव-परमाणुके बीचकी दीवारमें हवा भर जानेके कारण भी रङ्ग-भेद आ जाता है।

जब कभी भी अनेक रंग-तत्व एक ही साथ पाये जाते हैं तो रङ्ग सदैव उन सबके बीचका होगा—यह जब कि दो रङ्ग ऐसे आ पड़ें कि वे एक साथ ही दिखाई दें तो उनके मिश्रित फलका होता है। ऐसे रङ्गके उदाहरण ट्रोफियोलम है जिसमें भी लाल जीव परमाणु जाल रस और पंखड़ियोंके पीले क्रोमेटोफोर एक साथ पड़ जाते हैं उसके फल स्वरूप फूलका रङ्ग नारङ्गी दिखाई देता है। इनको धनात्मक रङ्ग कहते हैं। इसके विपरीत ऋणात्मक रङ्ग तब उत्पन्न होते हैं जब दो रङ्ग एक दूसरेके ऊपर आ जाते हैं। ऐसे रङ्गके उत्पन्न होनेका कारण यह होता है कि जब सफेद रोशनी इन रङ्गोंपर दौड़ती है तो उसका एक भाग तो ऊपरी सतहका रङ्ग सोख लेता है और दूसरा भाग जब बची रोशनी नीचे जाती है तो नीचेकी सतह जो दूसरा रङ्गका है उसे सोख लेता है; फलस्वरूप हम केवल दोनोंके सोखनेसे बची रोशनी ही परावृत रोशनीके रूपमें देखते हैं। ऐसे रङ्गके उदाहरण अधिकतर सभी काले और भूरे रङ्गके फूल हैं। जहाँ कहीं भी ऊपरी सतह चिकनी होती है स्निग्ध आभा आ जाती है। वाह्य जीव-परमाणु श्रेणी सूजे होनेके कारण अंग विशेषके रंगको गाढ़ा करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीव-परमाणु-समूहके अंग रङ्गोंके प्रकट करनेमें कितने सहायक होते हैं।

आगेके वर्णनसे स्पष्ट हो जायगा कि वनस्पतिमें रङ्ग उत्पन्न करनेमें किस साधनका आश्रय ग्रहण करते हैं और एक ही रङ्ग-तत्व एन्थोसाइनिन सभी श्रेणीके विपरीत रङ्ग लाल और नीलेसे लेकर काले और बैगनी तक किस प्रकार से उत्पन्न करनेमें सहायक होता है।

हरा रंग

यह रङ्ग वनस्पति संसारमें बाहुल्यसे देखा जाता है। इस रङ्गको सभी आभाका प्राण क्लोरोप्लास्टमें पाये जाने

वाला क्लोरोफिल है। विल्सटाटर (Willstatter) के अनुसन्धानोंके अनुसार सभी वनस्पतियोंमें पाये जाने वाले क्लोरोफिलका रासायनिक रूप सदैव एक ही रहता है। दो हरे और पीले पदार्थ जो कि क्लोरोफिलको उसका रूप प्रदान करते हैं उनका परिमाण ६:१ से ३:१ तक बदलता रहता है। रङ्गका गाढ़ापन और हल्कापन इनके मिश्रित परिमाण पर निर्भर रहता है। जीव-परमाणुके अंग इनके प्रकट करनेमें विशेष पात्रका भाग लेते हैं। पारदर्शी अथवा हल्के रङ्गके जाल-वृन्दके दीवारोंसे बिना किसी रूपान्तरके क्लोरोफिल वैसा ही चमकता है जैसा कि अलकोहलके द्रवमें। इस प्रकारके रङ्ग देने वाले वनस्पतियों-के, उदाहरण स्पायरोगायटा तथा जलके तल परकी नीफर की पत्तियाँ हैं। जलकी सतहके ऊपरकी पत्तियों क्लोरोफिल जालमें रिक्त स्थान होते हैं जो कि रङ्ग-तत्वको अवश्य प्रभावित करते हैं। पैलिसेड जाल फूले हुये पैरनकाइमा की सतरोंकी संख्या तथा जालमेंका परिमाण और उनका विस्तरण, सभी रङ्गको प्रभावित करते हैं। पत्तियाँ अपनी बनावट तथा क्लोरोफिलके परिमाणके अनुसार रङ्गोंका असम विस्तरण दिखा सकती हैं जैसा हम करोटनोंकी पत्तियोंमें देखते हैं। कड़ापन, मोम, कैलसियम लवण तथा कुछ और चीज़ोंके से पत्तियोंका हरा रंग पांशुवर्णी हरेमें परिवर्तित हो जाता है। सदा हरी रहने वाली वनस्पतियों के शिशिरमें रंग बदलनेके कारण कौस के अनुसन्धानोंके अनुसार अनेक हैं, जैसे एन्थोसाइनिनको उत्पत्ति, क्लोरो-प्लास्टका विस्तरण या इकट्ठा होना या क्लोरोफिलके रंग-तत्वमें किसी प्रकारका परिवर्तन हो जाना जैसे हरेसे नीला-पन लिये हरा या भूरापन लिये हरेमें परिवर्तन इत्यादि।

मोटी पत्तियोंमें नागफनीकी तरहके तनोंमें तथा हरे तनोंमें, वायवीय जड़ोंमें तथा अन्य हरे रहने वाले वनस्पति-अंगके हरे रंगका कारण भी क्लोरोफिल ही है। ये सभी भाग इसी कारण सदा प्रकाश-संश्लेषण-क्रियामें रत पाये जाते हैं। फूलोंके हरे तथा रंगीन पंखड़ियों, तथा फूलके अन्य भाग, फल, दाल, नीबू इत्यादिके हरे रंगका भी कारण क्लोरोफिल ही है।

फुंगी वेलमें हरे रंगका कारण क्लोरोफिल नहीं होता वरन् और कुछ है जिसके रंग-तत्वके बारेमें अभी काफी अन्वेषण नहीं हो पाया है। कुछ हाइमिनो माइसीट्स, लियोलिया लुब्रिकाके डंठल तथा टोपीके हरे रंगका कारण जोफ़के अनुसन्धानोंके अनुसार ताँबेके हरे रंग तत्व, पीले और भूरे गोंद और एक पीले लाइपोक्रोमका संमिश्रण है। फुंगी वर्गमें रंगोंके बारेमें सबसे अद्भुत कुंजी—क्लोरोस्पीलीयम एइरुगीनोसम् जो कि हरी काईकी तरहका होता है। यह अपनी शाखाओंकी दीवारोंमें ज़ाइलोरिक ऐसि-डके ताम्रीय हरे रंगतत्व बनाता है जो कि इसको हरा रंग प्रदान करता है। उसी प्रकार क्लोरोवैक्टीरियामें उसके हरे रङ्ग का कारण वैक्टीरीयो विरोडिन है।

चित्रकलामें यह कहा जाता है कि नीले और पीलेके संयोगसे हरा रङ्ग उत्पन्न होता है। यही सूर्यके किरणोंके विश्लेषणसे भी साबित होता है। पर जैसा कि ऊपरके विवरणसे मालूम होता है कि वनस्पतियोंका हरा रंग इन सभीसे भिन्न प्रकारका है।

पीला रङ्ग

वनस्पति संसारमें पीला रंग अनेक रंगतत्वोंके कारण उत्पन्न हो सकता है। ये रंग-तत्व (chromato-phores) या जीव-परमाणुरस या जीव-परमाणुकी भिति-योंमें पाये जाते हैं। क्रोमेटोफोरमें पाये जाने वाले रंग-तत्व अधिकतर एन्थोजैन्थीन है जो कि मेसोफिल या वाह्य छाल में विस्तरित रहते हैं। ये अधिकांशतया पीले फूलोंके रंगके सभी उद्भिजोंके अंगोंमें इनका आधिक्य भीतरी शिराओंमें होता है। अँधेरेमें उगे पौधोंकी पीली पत्तियोंमें हरे क्लोरो-प्लास्टके बदले पीले प्लास्टिड होते हैं। इनके रंगतत्व प्रोटो-क्लोरोफिलके समान होते हैं। ये क्लोरोफ़िलके प्राथमिक रूप कहे जा सकते हैं तथा ओषजन न होनेसे क्लोरोफिलमें परिवर्तित हो जाते हैं।

हेमन्तकी पीली पत्तियोंका कारण उनके जीव-परमाणु-रसमें पीले रंगकी बूंदोंका आ जाना है जोकि नष्ट प्लास्टिड के पीले रंग-तत्वको ग्रहण कर लेते हैं। उदाहरणके लिये हम गिंकोकी पत्तियाँ देख सकते हैं जो कि हेमन्तमें सफेद हो जाती हैं उसी प्रकार बरगदकी जातिके वृक्षोंकी पत्तियों का सुनहले रंगमें परिवर्तन भी है। हेमन्तकी पीली पत्ति-योंके भिन्न-भिन्न आभाका कारण केरोटिन और जैन्थोफिलकी विभिन्नता है। उसी प्रकार बगीचोंके औरोवेरीगेटी-विभाग

के भी पौधे हैं। ये धुले हुये पीले रंग तत्व चर्बी, तेल या जाल रसमें धुले होते हैं। चर्बीमें घुलेके उदाहरण कुंजी जैसे पौलिस्गिमाँ, पेजाइज़ा तथा उसकी अन्य उपजातियाँ हैं। तेलके पराग-कण। पराग कणमें अधिकतर केवल उनके बाह्य काँटे ही रंगे रहते हैं।

पीला रंग-तत्व जो जीव परमाणु-रसमें घुला रहता है उसे एन्थोक्लोर कहते हैं। यह फूलों तथा फलोंमें पाया जाता है। केवल ऊपरसे ही निरीक्षण करके यह नहीं कहा जा सकता कि पीलापन एन्थोजैन्थीन या एन्थोक्लोर किसके कारण है पर अधिकतर गाढ़ा पीला रंगका कारण एन्थोक्लोर ही होता है। उदा० प्राइमुलाके इलेटियरके फूलों गाढ़ा पीले रंग एन्थोक्लोर होता परन्तु प्राइमुला ओफिसीनेलिसके शुद्ध पीले रंगका कारण एम्थोगैन्थीन है। गिटलर के अन्वेषणसे पता चला है कि अधिक पत्तियोंके पीले रंगका कारण पीला जीव परमाणुभित्तिकायें हैं उदा० इवोनिमस प्रगेव कहा जाता है कि ऐसे किनारे नीली और वैगनी रोशनीके रास्तेको रोकनेके लिये पाये जाते हैं।

लकड़ियोंके पीले रंगका कारण उनके जीव परमाणु भित्तिकायें ही है। फिस्चीन जो कि इन लकड़ियोंमें पाया जाता है कि हेटेरोसाइक्लिक कम्पाउण्ड है। दूसरे आवरणोंके रंगतत्व भिन्न रासायनिक श्रेणीके होते हैं तथा इनका इसलिये जाइलोक्रोम नाम उपयुक्त नहीं है। पीली भित्तिका ही बहुतोंके फली, फूलों, बीजे, तथा फुंगीयोंके पीले रंगका कारण है। कुछ फूल पत्तियोंमें पसीनेके लिये बाल होती है जिनके नाक पर पीले क्रिस्टिल पाये जाते हैं और ये ही उनको रंग प्रदान करते हैं।

नारंगी रंग

यह पीले रंग या अनेक रंग तत्वोंके संयोगसे उत्पन्न होता है। पहले प्रकारका उदाहरण स्टरलीजिया नरसीसस टमाटो और कुन्दरूके फल हैं जिनके मेसोफिल तथा वाह्य छालमें पीले नारंगी रंगके पीले क्रोमेटी प्लाक्ट पाये जाते हैं। फुंगी और लिकेनके रंगके कारण कुछ उनमें पाये जाने वाले लीपोक्रोम हैं। अभी तक जीव परमाणुमें घुला नारंगी रंग केवल पेपेवरके फूलमें ही पाया गया है।

अनेक रंग तत्वोंके समिश्रणसे नारङ्गी रङ्ग उत्पन्न करनेका सबसे अच्छा उदाहरण नारङ्गीका फल है। इनमें पीले रङ्गका तेल रहता है। वाह्य छालमें लाल एन्थोसाइनिन पाया जाता है तथा छालमें पीला रङ्गतत्व। कभी-कभी केवल लाल जीव परमाणुरस तथा पीले क्रोमेटो फोर ही नारङ्गी रङ्ग प्रदान करते हैं। उदा० चिरेथस और ट्रोफियोलमकी पंखुड़ियाँ तथा हिडचीयमके फलका गूदा जब ये सब रङ्गतत्व अनेक परतोंमें एकके ऊपर एक पाये जाते हैं तब भी नारङ्गी रङ्ग उत्पन्न हो जाता है ऐसे उदा० चिरेन्थस ट्रोफिमोलमकी पंखुड़िया तथा हिडीचीयम, आर्किड इत्यादि हैं जिनमें की पीला जीव जालरस या लाल क्रोमेटोफोर एक ही जालमें रहता है। कहीं-कहीं एन्थोक्लोर भी नारङ्गी रङ्गके पीले रङ्गका अभिनय करता है यथा कुसुमके फूलके पंखुड़ियां वाह्य छालमें। इसके साथ कभी-कभी भितरी जालमें भरा एन्थोसाइनिन ऋणात्मक रंग देनेका भी कार्य करता है।

भूरा

हरा और भूरा यही दो रंग वनस्पति संसारमें अत्यधिक पाये जाते है। भूरा रंग अधिकांशतः भरे शिराओमें पाया जाता चाहे ये काष्टके है। अथवा पत्ती या फूल या फलको सदैव यह रंग भरे हुये भी अंगोंमें अन्य वे भाग जिनमें कोई फुंगीसे घाव हो पाया जाता है। इन सभी भूरी वस्तुओंका रंग तत्व फ़्लोहेफिन (phlohaphene) है जो जीव परमाणु रसमें सर्गरसके वस्तुओंके ओषजनित होनेसे बनता है। तदुपरान्त (plasma) तथा जालके दीवार उसे सोख लेते हैं।

भूरा रंग कई प्रकारसे हो सकता है। कुछ वस्तुओंका केवल कोई एक ही भाग भूरा होता पर उसके प्रभावसे उसके साथकी चीज़ें भी भूरी दिखाई देती हैं। ऐसे उदाहरण फुंगी, मौस तथा फर्नके वीजोंके वाह्य आवेष्ठन, मौसके फल, सीटी तथा जड़ोंमें भी ऐसा ही होता है। यही कारण एडिएन्टम तथा हिलीवोरस नाइगरको जड़, रेस्टीस रेक्युरमके पत्तियाँकी जड़ इत्यादिके भूरे रंगका भी है। कभी-कभी शिराओंके दीवालों परके बाल भूरे होते हैं जिसके फलस्वरूप सारी पत्ती भूरी जान पड़ती है।

भूरे क्रोमेटोफोर बहुत ही कम पाये जाते हैं। केवल कुछ भूफोड़ तथा ऑकिडके प्रकारके नियोरियाको छोड़ और कहीं नहीं पाये गये हैं। उसी प्रकार एन्थोफिन भी

डलफीनीयम तथा आॅर्किडके फूलोंमें ही पाया जाता है तथा उन्हें भूरा रंग प्रदान करता है।

भूरा रंग कभी-कभी एन्थोसाइनीन तथा क्लोरोफिलके सहयोगसे भी आ जाता है। शैवाल लिचेन तथा वैक्टोरियाके भूरा रंगका कारण लौह ओषिदका आ जाना है।

लालरंग

यह पेड़ तथा उनके अंगोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। इस रंगका कारण अधिकतर जीव परमाणु रसमें घुला एन्थोसाइनिन है। विलस्टाटरके अन्वेषणके अनुसार यह तत्व अनेक श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है। वनस्पतियोंके लालरंगके अन्तर्गत सभी आभा एन्थोसाइनिन के रासायनिक संयोगके ऊपर निर्भर हैं। कुछ हद तक सतह तथा रंग तत्वका गाढ़ापन भी इसे बदल सकता है। यह रंग तत्व जड़े तनों पत्तियों तथा पंखुड़ियोंके वाह्य छालमें ही रहता है। ऐसा उदाहरण जिनमेंकी अन्तर छाल-में भी यह पाया जाया है शलजम तथा चोकन्दर है।

हेमन्तके पत्तियोंमें यह रंग-तत्व जीव जाल रस अथवा वाह्य छाल रसमें घुला रहता है और उन्हें लाल आभा देता है।

कभी-कभी एन्थोसायनिन जाल भित्तियोंमें भी पाया जाता है पर इस श्रेणीके पौधोंके बारेमें अधिक ज्ञात नहीं है।

नीलारंग

क्षारीयता एन्थोसाइनिनको नोला कर देती है और यही कारण है जिनसेकी एक ही नाम भेदके दो पौधोंमें एकमें नीला और दूसरामें लाल फूल होता है उदा० अना-गिलिस आरवेन्सीस या सेलिवया तथा बोरेजीनेसीके कुछ फूल फली रूपमें लाल रहते हैं पर फूलने पर नीले हो जाते हैं उनका भी कारण यही है। शुद्ध नोला रंग प्रकृतिमें उतना अधिक नहीं पाया जाता। नोला एन्थोसाइनिन भी लालकी ही भाँति वनस्पतियोंके अंगोंमें विसर्जित रहता है और अधिकतर वाह्य छालमें ही पाया जाता है उदाहरण ही सी सेन्टोरिया व्याइनस और लोविलिया क्रायसमें लालकी ही भाँति इसके भी रासायनिक संयोगमें थोड़ा भी रूपान्तर रंग भेद दे देता है।

कुछ और भी रंग तत्व जैसे वोलिटोल जो एक फिनोलका ओषजनित रूप है यह रंग देता है कुछ शैवाल तथा फुंगीके जीव परमाणुकी भित्तियोंका भी होता है। बीज़ वाले पौधोंके मोम कीसी बाहरी तहका भी रंग कभी-कभी काला होता है। उदाहरण नीला फर

बैंगनी

लाल और नीलेके बीचकी आभा वैगनी है। धनात्मक रंगके रूपमें यह कनवल्वुलसके पंखुड़ियोंके किनारों पर पाया जाता है। वायला आरडेटामें यह पंखुड़ियोंके जमीनके रंगका काम करता है। इस फूलमें बाह्य जाल लाल एन्थोसायनिन, पंखुडियोंका तला नीले एन्थोसायनिन का रहता है तथा बाह्य छाल रंग-रहित होता है। इन सबका संमिश्रणके फलसे बैंगनी रंग बन जाता है जो हम देखते हैं मार-केन्सिया, क्लेविसेप्सके फल इत्यादिमें यह रंग जीव पर-माणुके भित्तिकाओंमें पाया जाता है।

काला

यह अनेक प्रकारसे होता है। उनमेंसे कुछ ये हैं।

(१) रंगीन प्लास्मा
(२) एन्थोसाइनिन
(३) एन्थोफिन
(४) विविध रंग-तत्वोंके समिश्रणसे
(५) रंगोन जीव-जाल भित्तिकाओंके प्रभावसे
(६) जीव-जालके बाहर पड़े वस्तुओंके प्रभावसे इस श्रेणीमें फाइटीमिलेन्ज़ के श्रेणीकी वस्तुयें आती हैं जो एक प्रकारका कार्बन यौगिक है।

पाण्डुवर्ण (gray)

यह रंग वनस्पति संसारमें करीब करीब नहीं हो पाया जाता है। इसके रंग तत्वके बारेमें कुछ भी नहीं मालूम है। यह केवल चमकते नीले या बैंगनी तथा सुनहले पीलेके संयोगसे ही पाया जाता देखा गया है। उदाहरणार्थ, कुछ फल, पत्तियाँ इत्यादि अथवा हवासे भरे शिरा-समूहके प्रभावसे जो कि हरे अथवा भूरे रंगके भागके ऊपर आ जाते हैं। कभी-कभी हवा भरे बालोंके समूहसे भी यह रंग आ जाता है। (उदा० ओलिवकी पत्तियां) लकड़ी, जलमें के

फलको प्राइनस नामक कुकरमुत्ताकी कुछ जाति इत्यादिके पाण्डुवर्णका कारण भी हवाकी सतहका बीचमें आ जाना है।

सफेद

यह रंग जब कभी दो या अधिक परमाणु हवासे भरे एक दूसरेके ऊपर आ जाते है तब रंगहीन जीव पैदा होता है। (उदा० केमीलियाकी पंखुड़ियाँ) । मोम, नमक, चूना इत्यादिके प्रभावसे भी यह रंग आ जाता है।

चमक

ऊपर विविध प्रकारके रंगोंके बारेमें बतलाया गया है। पर हम वनस्पति संसारमें जो चमक तथा चिकनापन पाते हैं उनकी भी उत्पत्ति एक महत्वपूर्ण बात है। सफेद रंगके साथ ही हमें कभी कभी रुपहली चमक भी मिल जाती है। इसका कारण जीव परमाणुकी भित्तिकाओंमें बन्द हवा ही है। मखमली सतह जो कि बहुतायतसे पायी जाती है उसका कारण पंखुड़ियों तक अंग विशेषके छोटे छोटे एक प्रकारके बाल है। जब बाल इससे कुछ बड़े रूपमें आ जाते हैं तो वे रेशमी अथवा रुपहला या सुनहला रंग देते हैं जैसा कि कन्वलव्युलस इम्यूरन इलेकेग्नस पार्विफोलियस इत्यादिमें पाया जाता है। तेलसे भरी बाह्य छाल तैलीयरूप प्रदान करते हैं इसके उदाहरण केला, चमेली, जूही इत्यादिके फूल हैं। इसी प्रकारके अनेक रंगोंके रहनेसे और भी अनेक प्रकारकी सतहें हो जाती हैं। काँटा, बाल खुरखुरापन इत्यादि इन रूपको विविध प्रकारकी सतह देनेमें सहायक होते है।

प्रोफ़ेसर हाल्डेन--इङ्गलैण्डके एक जागरुक वैज्ञानिक

[ले०—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

"किन्तु इस तरहके प्रयोग मैं तो पहले भी कई बार कर चुका हूँ।" मुसकुराते हुये प्रो० हाल्डेनने भरे हुये इजलासमें जवाब दिया। आजसे क़रीब दो साल पहलेकी यह घटना है। इंगलैंडके सुप्रसिद्ध सबमेरीन थेटिस संबन्धी दुर्घटनाकी जाँचकी कार्रवाई हो रही थी। जस्टिस बकनिलके सामने एक विशेषज्ञकी हैसियतसे आप गवाही देने आये थे कि थेटिस-दुर्घटनामें थेटिसमें काम करने वाले नाविकोंको मरते वक्त असह्य यंत्रणा नहीं भोगनी पड़ी थी।

यह निष्कर्ष हाल्डेनने केवल अपने अनुमानसे नहीं निकाला था बल्कि फ़ौलादके एक पीपेमें अपनेको बन्द करके हाल्डेनने ठीक वही परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं जो थेटिसमें फँसे हुये नाविकोंका मृत्युके कारण बनी थी। पूरे साढ़े चौदह घंटे तक आप उस पीपेमें बन्द रहे और इसी बीच आप सावधानीके साथ नोट करते रहे कि उन पर प्रतिक्षण उन परिस्थितियोंका क्या असर हो रहा था। जिस समय वे पीपेसे बाहर निकले आपके पैर लड़खड़ा रहे थे, सर चक्कर खा रहा था और बदन पीला पड़ गया था। छियालीस वर्षकी इस प्रौढ़ अवस्थामें मानव-समाजके हितके लिये इंगलैंडके इस सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकने एक बार फिर अपनी जानको जोखममें डाला।

प्रो० हाल्डेनका स्थान मौजूदा ज़मानेके अग्रगण्य वैज्ञानिकोंकी लिस्टमें आसानीके साथ रखा जा सकता है। आप जीव-विज्ञानके विशेषज्ञ हैं। आपका जन्म सन् १८६२ में हुआ था। आपने न्यू कालेज, आक्सफोर्डमें शिक्षा पाई। ईटनके हैरोस्कूलमें आपके प्रारंभिक जीवनको नींव पड़ी थी। यह स्कूल इंगलैंडके महान् व्यक्तियोंके चरित्र-निर्माण के लिये प्रसिद्ध है।

प्रो० हाल्डेन सेना-विभागमें भर्ती होकरके फ्रांस और ईराकमें १६१४-१८में गये थे। हिन्दुस्तानमें भी कुछ दिनों तक आप रहे थे। जर्मन महायुद्धमें आप दो बार घायल भी हुये थे। फिर सन् १६३३ में आप यूनिवर्सिटी कालेज लन्दनमें प्रजनन्-विज्ञानके प्रोफ़ेसर नियुक्त हुये। तबसे आप इस पद पर काम कर रहे हैं। इसके पहले कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटीमें तथा अन्य कई कालेजोंमें अध्यापनका काम आप कर चुके थे।

आपके विज्ञान-सम्बन्धी विचार पूर्ण तथा सुलझे हुये हैं। ज़िन्दगीके भौतिक प्रश्नों पर आप एक शुष्क हृदय वैज्ञानिकको तरह विचार नहीं करते बल्कि देश, समाज और मानव-प्रकृतिकी कोमल प्रवृत्तियोंके लिये आपकी विचार-धारामें हमेशा स्थान रहता है। जीवनके हर एक पहलू पर आप वैज्ञानिक ढंगसे विचार करते हैं। इसी कारण आपका साम्यवादकी ओर विशेष झुकाव है। इस बातको आप भली-भाँति महसूस करते हैं कि आधुनिक समाजमें जो विषमता आज नज़र आ रही है उसका मूल कारण पूँजीवाद है। पूँजीवादको हटाये बिना आम जनता की बेकारी और ग़रीबी दूर नहीं की जा सकती।

इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर ब्रिटेन सरकारकी अकसर कड़े शब्दोंमें आप आलोचना करने पर बाध्य होते हैं। फिर भी गवर्नमेण्ट आपका सही मूल्य आँकना जानती है। वर्तमान युद्धके लिये इंगलैण्डके वैज्ञानिकोंकी एक परामर्श-दायिनी कमेटी गवर्नमेण्टने बनायी है आप उस कमेटीके प्रधान नियुक्त किये गये हैं। आप एयर-रेड-प्रोटेक्शनके सबसे बड़े विशेषज्ञ समझे जाते हैं।

साम्यवादके प्रति आपकी सहानुभूति कोरे शब्दों तक ही सीमित नहीं है। पिछले स्पेन-गृहयुद्धमें स्पेनकी साम्य-वादी सरकारको परामर्श देनेके लिये आप एक विशेषज्ञकी हैसियतसे बार्सिलोना गये थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वहाँ पर जाकर आपने असीम ख़तरेमें अपनेको डाला था। जिन दिनों आप बार्सिलोनामें थे आपके साथ एक बड़ी मज़ेदार घटना घटी थी जिसका यहाँ ज़िक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा।

जिस होटलमें हाल्डेन कुछ दिनोंके लिये ठहरे हुए थे उसी होटलमें एक दूसरा विदेशी भी ठहरा हुआ था। इस पढ़े लिखे सभ्य व्यक्तिसे हाल्डेनकी थोड़ी बहुत घनिष्ठता भी हो गयी थी। इतनेमें एक दिन सुबहको स्पेन सरकारके सी० आई० डी० विभागका एक कर्मचारी हाल्डेनके कमरेमें आया और उनसे कहा कि जिस विदेशीसे से आपकी इतनी घनिष्ठता थी वह शत्रु-दलका जासूस निकला। अब आप भी पुलिस हेड क्वार्टर पर तशरीफ़ ले चलिये। हाल्डेनने बहुतेरा हाथ-पाँव मारा कि मैं एक अंग्रेज़ प्रोफेसर हूँ, गवर्नमेण्टको विस्फोटक पदार्थके सम्बन्धमें परामर्श देनेके लिए यहाँ विशेष रूपसे आमंत्रित किया गया हूँ। किन्तु नक्कारख़ानेमें तूतीकी आवाज़ कौन सुनता है। धर-पकड़ कर पुलिसके आदमी प्रो० हाल्डेनको हेड क्वार्टर पर ले गये, और उन्हें लॉकअपमें बन्द कर दिया। जाते वक्त सी० आई० डी० के अफसरने प्रो० हाल्डेनको चेतावनी दी कि सुबह तक तुम अपना अपराध कबूल कर लो कि शत्रु-दलने तुम्हें जासूस बनाकर भेजा है। वरना तुम्हारी खूब दुर्गति की जायगी।

किन्तु सुबह होनेके पहले ही स्पेन-सरकारने अपने प्रतिष्ठित अतिथिको सम्मान-पूर्वक लॉकअपसे बाहर निका-लनेका हुक्म दे दिया। साथ ही उक्त अधिकारीकी जल्द-बाज़ी और ग़लतीके लिये क्षमायाचना भी की। लॉकअपसे जब प्रो० हाल्डेन बाहर निकले तो अपनी झेंप मिटानेके लिये उस सी० आई० डी० के अफसरने प्रो० हाल्डेनसे कहा "बहुत दूर मत जाइयेगा आपसे अभी अनेक और सवालात पूछने हैं" अवश्य ही उक्त अफ़सरने इस तरहकी बात कह कर अपने लिये परेशानीका बीज बो दिया, क्योंकि प्रो० हाल्डेन भूलको क्षमा कर सकते हैं लेकिन उद्दण्डता और शेख़ीको नहीं।

दूसरे दिन तड़के ही प्रो० हाल्डेन हेड क्वार्टर पर पहुँचे और विज़िटिङ्ग कार्ड आफिसमें भेजा कि मैं उस अफसर से मिलना चाहता हूँ जिन्हें मुझसे कई सवाल पूछने हैं। उस अफसरने कहला भेजा कि कामकी ज़्यादतीके कारण आज मैं मिल नहीं सकता। फिर दूसरे दिन और इस तरह पूरे सात दिन तक तड़के हाल्डेन हेड क्वार्टर पर जाते और उस अफसरसे मिलनेकी इच्छा प्रगट करते। आखिर आठवें दिन वह अफसर झुँझलाया हुआ आफिस-से बाहर निकला और इस अंग्रेज़ प्रोफ़ेसरसे अपने उन शब्दोंके लिये माफी माँगी और इस बातकी प्रार्थना की कि अब आइन्दा वे हेड क्वार्टर पर न आयें, क्योंकि सारे आफ़िसके लोग उसी घटनाको लेकर उसका मज़ाक उड़ाते हैं।

प्रोफ़ेसर हाल्डेनकी नस-नसमें जैसे बाल्यकालसे ही अनुसन्धानकी एक तीव्र लालसा भरी हुई है। आपके पिता भी एक उच्च कोटिके वैज्ञानिक हैं। पिताके वैज्ञानिक दृष्टि-कोणने आपकी अनुसन्धानकारी प्रवृत्तियोंको पनपनेको खूब

मौका दिया। सन् १९०२ की बात है कि खानके कुओंसे एक प्रकारकी विषैली गैस निकल रही थी। पता लगाना था कि इस गैसका मनुष्यों पर कैसा प्रभाव पड़ता है तथा इसका उपचार क्या हो सकता है। आपके पिताजी को इस जाँच-का भार सौंपा गया। पिताने अपने १० वर्षके बच्चेको उपर्युक्त आदेश देकर उस कुएँके अन्दर रस्सीके ज़रिये डाल दिया। रास्ते भर हाल्डेन अंग्रेज़ोंकी एक गीत गाता रहा किन्तु कुछ दूर अन्दर पहुँचने पर गैसके प्रभावसे वह चेतनाहीन हो गया। फ़ौरन ही पिताने उसे चुप सुन कर बाहर खींच लिया।

उसके कुछ ही साल बाद सबमेरीनके अन्दर बन्द होकर हाल्डेनने नाविकोंके दम घुटने जैसी यंत्रणाका अनुभव किया। इस सिलसिलेमें वर्षों तक इनके प्रयोग जारी रहे और इनके बहुमूल्य खोजोंका इस्तेमाल गत जर्मन महायुद्धमें प्रचुरतासे किया गया।

गत जर्मन महायुद्धमें शत्रुने ज़हरीली गैसोंका प्रयोग किया, और फ़ौरन ही प्रोफेसर हाल्डेनको धुन सवार हुई कि इन ज़हरीली गैसोंसे बचनेके लिये पुरअसर गैसमास्क तैयार किये जाने चाहिये। उस रोज़ ही हाल्डेन नयी-नयी डिज़ाइनके गैसमास्क बनाते और उन्हें चेहरे पर चढ़ा कर ज़हरीली गैसें सूँघते। नतीजा प्रायः यही होता कि लड़खड़ाते हुए आप ज़हरीली गैससे भरी हुई प्रयोगशालासे बाहर कुछ देरके बाद निकल जाते। घण्टों बाद तक आँखें जलती रहतीं, सिर चक्कर खाता रहता। किन्तु प्रयोग आपके निरन्तर जारी रहे और आखिर आपने ऐसे गैसमास्क भी तैयार ही कर लिये जिन्हें पहन कर विषैली गैसके आक्रमणमें सैनिक शत्रुके खिलाफ़ टिकनेमें समर्थ हो सकता है।

इन विचित्र प्रयोगोंके पीछे प्रोफ़ेसर हाल्डेनकी एक खास मनोवृत्ति काम करती है। संसारके प्रत्येक प्रश्नके प्रति प्रोफेसर हाल्डेनका दृष्टिकोणपूर्णतया वैज्ञानिक है। स्वयं प्रोफेसर हाल्डेन ने ही अपनी एक ब्राडकास्ट स्पीचमें कहा था "एक जीव-विज्ञानके विशेषज्ञकी हैसियतसे अपने शरीरके बारेमें मेरी खास दिलचस्पी है। अपने शरीरके अंग-अंगकी हरकतका अध्ययन उसी दिलचस्पीके साथ करता हूँ जिस दिलचस्पीके साथ मेरे मित्र मोटरके कलपुर्जोंका अध्ययन करते हैं। मुझे इस बातका पता लगानेमें बड़ा मज़ा आता है कि जब मैं दौड़ कर सीढ़ियों पर चढ़ता हूँ तो मेरे हृदयकी गतिमें क्या अन्तर पड़ता है या यह कि मेरे नाखून किस रफ़्तारसे बढ़ते हैं। सच तो यह है कि जीव-विज्ञानके विद्यार्थीके लिये उसके दाँतका दर्द भी उसके मन में कौतूहल उत्पन्न कर सकता है। जीवनमें स्वास्थ्यको मैं बहुत ऊँचा स्थान देता हूँ औरमैं अपने जीवनको सार्थक मानूँगा यदि शिक्षा तथा अनुसन्धान-द्वारा इस युगके प्राणियोंके स्वास्थ्यमें समुचित उन्नतिका समावेश कर सका।"

प्रोफ़ेसर हाल्डेनकी राय है कि गवर्नमेण्टको कानून बनाकर टानिक और स्वास्थप्रद औषधियोंके भड़कीले विज्ञापनोंका छपना जुर्म करार देना चाहिये क्योंकि इस तरहके भड़कीले विज्ञापन आम जनताके अन्दर हर तरहकी गलत फहमियाँ फैलाते हैं। नतीजा यह होता है कि स्वास्थ्य-लाभकी आशामें सही रास्तेको छोड़ कर जनता ग़लत रास्ते पर चलने लगती है।

शिक्षाके बारेमें भी प्रोफ़ेसर हाल्डेन मौजूदा रीति-नीति से सन्तुष्ट नहीं हैं। उच्च शिक्षा-प्राप्त करनेके साधन केवल धनी व्यक्तियोंको ही लभ्य हैं यह बात प्रोफ़ेसर हाल्डेनको बहुत अखरती है। आपका कहना है कि मन्द बुद्धि किन्तु धनी पिताके लड़के उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये आकर यूनिवर्सिटियाँ भर देते हैं और ग़रीब किन्तु कुशाग्रबुद्धि वाले लड़के फ़ीस अदा न कर सकनेके कारण यूनिवर्सिटी शिक्षा-से वंचित रह जाते हैं। योग्य व्यक्तिओंको मानसिक भोजन-से वञ्चित रखना आधुनिक सभ्यताका सबसे बड़ा कलङ्क है।

प्रो० हाल्डेनके ख़्यालमें समाजकी इन विषमताओंका मूल कारण समाजके लोगोंकी विज्ञानके प्रति उदासीनता है। आप इस बात पर पूरा ज़ोर देते हैं कि समाजका हर एक व्यक्ति अपने दैनिक पेशेके बारेमें अपने कर्त्तव्यको अच्छी तरहसे पूरा करते हुए भी इतना समय निकाल सकता है कि विज्ञानकी साधारण बातोंके बारेमें वह काफी जानकारी हासिल कर ले, और इस तरह अपना दृष्टि कोण अपने आस पासकी चीज़ोंके प्रति वे पूर्णतया वैज्ञानिक बनाये रख सकते हैं।

आधुनिक कालके साहित्यमें कृत्रिमताकी पुट जो नज़र में आती है उसके लिये भी प्रोफ़ेसर हाल्डेनने कवियों और

लेखकोंकी विज्ञानके प्रति उदासीनताको उत्तरदायी ठहराया है। आपका ख़्याल है कि विज्ञानको जानकारीके बग़ैर हम ज़िन्दगीको भली भाँति समझ नहीं सकते और जो लेखक ज़िन्दगीके हर पहलूसे परिचित नहीं वह जीवनकी समस्याओं पर समुचित प्रकाश भला कैसे डाल सकता है ?

प्रोफ़ेसर हाल्डेन आधुनिक विज्ञान जगत्के एक जगमगाते हीरे हैं। दुनियासे नाता तोड़े कह प्रयोगशालाकी तंग कोठरीके अन्दर अपनेको सदैवके लिये बन्द कर लेना आपको कबूल नहीं। समाजके पुनर्निर्माणके लिये आप सरीखे ही जागरूक वैज्ञानिकोंकी ज़रूरत है।

धूप नापनेका यंत्र

[लेखक — श्री० बाबूरामजी पालीवाल]

धूप नापने अथवा उसे अंकित करनेके लिये निम्नलिखित तीन प्रकारके यंत्रोंमेंसे किसी एक प्रकारके यंत्रका प्रयोग किया जा सकता है।

(१) सूर्यकी किरणसे आतिशी शीशे-द्वारा कागज जला कर लेख करने वाला यंत्र
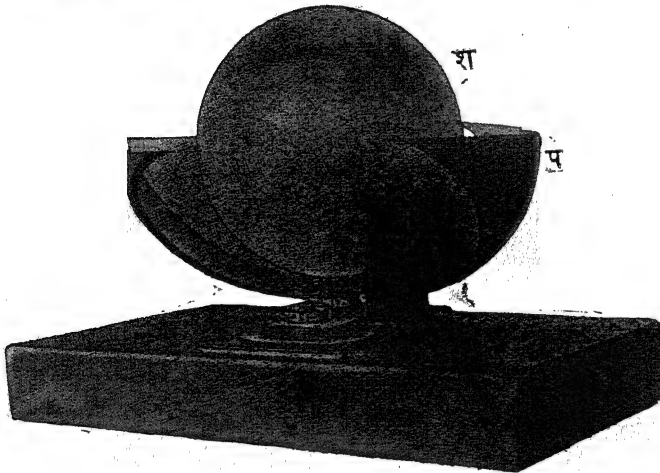
चित्र १—केम्पबेल स्टोक्सका धूप-लेखक यंत्र

(२) फोटोग्राफ-द्वारा लेख करने वाला यंत्र

(३) बिजली-द्वारा लेख करने वाला यंत्र

इनका विवरण नीचे दिया जाता।

(१) सूर्यकी किरणसे आतिशी शीशे द्वारा कागज़ जला कर लेख करने वाला यंत्रः—इस प्रकारका यंत्र केम्पबेल स्टोक्सका धूप नापनेका यंत्र है जिसका एक चित्र यहाँ दिया जाता है। (चित्र १)

अधिकतर वायुमंडल निरीक्षणालयोंमें इसी यंत्रका प्रयोग किया जाता है। इसमें एक गोल आतिशी लेन्स वाला शीशा 'श' होता है जो इस प्रकार लगा होता है कि यह सदैव सूर्यकी किरणोंको एक चार्टपर केन्द्रित करता है। यह चार्ट एक पीतलके प्यालेकी शक्लकी वस्तु 'प' में एक साँचेके भीतर सटा होता है। पीतलके कटोरेके भीतर उसके बिल्कुल समानान्तर शीशेका एक गोलीय लेन्स रक्खा होता है। इस प्रकार कटोरा और लेन्स दोनों एक-केन्द्रिक होते हैं।

सूर्यकी किरणें इस प्रकार केन्द्रित हो कर चार्टपर पहुँचती हैं। तब चार्टपर एक जलनेका काला निशान बनाती जाती हैं। इस प्रकार इस जले हुये काले निशानके लेखसे यह मालूम किया जा सकता है कि धूप कितनी देर किस समयसे किस समय तक रही।

इस बातका इस यंत्रमें पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि यंत्र ऐसी जगह लगाया जाय कि सूर्यकी किरणें आतिशी शीशेमें हो कर चार्टपर सुबहसे शाम तक बराबर प्रत्येक ऋतुमें पड़ती रहें। यह आसानीसे समझा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर कटोरेको भिन्न-भिन्न स्थितियोंमें रखना पड़ता है। यहाँ पर एक चित्र दिया जाता है [चित्र २] जिसमें केम्पबेल स्टोक्सके धूप नापने वाले यन्त्रका दूसरी तरफका दृश्य दिखाया गया है। इसमें देखा जा सकता है कि पीतलके कटोरेकी स्थिति अक्षांशोंके अनुसार

ठीक करनेकी व्यवस्था यंत्रमें की गई है। इसके अलावा भिन्न-भिन्न ऋतुओंके लिये भिन्न-भिन्न वक्रताओंके चार्टों का

चित्र २

केम्पबेल स्टोक्समें धूप-लेखक यन्त्रका दूसरी तरफसे दृश्य जिसमें यन्त्रकी स्थिति अक्षांशोंके अनुसार ठीक करनेकी व्यवस्था दी हुई है।

प्रयोग किया जाता है क्योंकि सूर्यका झुकाव भी ऋतुओंके साथ-साथ बदलता रहता है।

इस प्रकारके यन्त्र-द्वारा प्राप्त एक चार्टका चित्र यहाँ दिया जाता है, चित्र ३। इसमें ९ बजे सुबहसे शामके ४॥ बजे तकका लेख दिया गया है। इसके बीचका सीधा सफेद निशान सूर्यकी किरणों-द्वारा आतिशी शीशेमें होकर चार्टके जलनेका है और जिस समय बीच-बीचमें चार्ट नहीं जला उस समय सूर्य बादल आदिसे ढका था और धूप नहीं थी।

(२) फोटोग्राफ द्वारा लेख करने वाले यंत्रः -- इस यन्त्रको बहुधा जोरडन रेकार्डर कहते हैं। इसमें एक बेलननुमा प्रकाशाभेद्य बक्स होता है जिसमें फोटो खींचनेका काग़ज़ लगा होता है जिसके ऊपर सूर्यकी किरणें एक छोटेसे छेदमें होकर पड़ती हैं। इस प्रकारका यन्त्र भारतमें बहुत कम व्यवहारमें आता है।

(३) बिजली-द्वारा लेख करने वाला यंत्रः--इस प्रकारके यन्त्र केवल अमरीकामें व्यवहारमें लाये जाते हैं और इनमें सूर्यको किरण-द्वारा प्राप्त थर्मामीटरके बल्बकी गर्मीसे काम लिया जाता है।
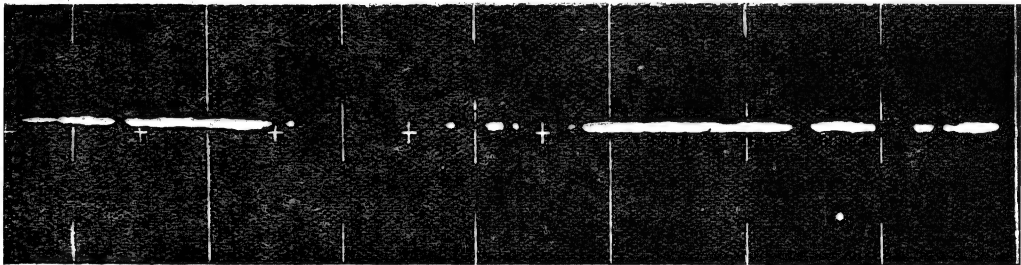
चित्र ३

केम्पबेल स्टोक्सके धूप-लेखक यन्त्र-द्वारा लिखित एक चार्ट

मनुष्य भोज्य और पेयको किस तरह सुरक्षित रखता है ?

[ले०—श्री जगमोहन]

मनुष्य किन तरीकोंसे अपने भोजनको सुरक्षित रखता है ?

प्रचीन कालसे, जब मनुष्यको इस बातका ज्ञान भी न था कि भोजन जीवाणुओं-द्वारा सड़ता है, भोजन सुरक्षित रखनेके तरीके लोगोंको मालूम थे और इनका प्रयोग सार्वभौम था। हिन्दुस्थानमें गाँवोंमें जहाँ प्रत्येक ऋतु या स्थानमें ताज़ी तरकारियाँ और फल सुलभ नहीं होते तरकारियों और फलोंको सुखाकर रख लिया जाता है, मसलन जब आमका बाहुल्य होता है तो इसके रसको निचोड़कर रोटियाँ बना कर सुखा लेते हैं। मेथी, भिंडी इत्यादि तरकारियोंको भी सुखा लिया जाता है और ज़रूरतके वक्त इन्हें काममें लाया जाता है। गोश्त और मछलियाँ भी सुखाकर ऐसे स्थानों पर भेज दी जाती हैं जहाँ यह कम मिलती हैं। किसमिस, मुनक्का, आड़ू इत्यादि सूखे फल हमारे पास ऐसे स्थानसे आते हैं जहाँ इनका बाहुल्य होता है। आजकल इसी सिद्धान्त पर दूधको सुखाकर सफ़ूफकी हालतमें बाज़ारमें बेंचा जाता है और इसी तरह अंडोंका सफ़ूफ भी तैयार किया जाता है। जब तक इन चीज़ोंको डिब्बोंमें बन्द करके न रख लिया जाय सुखाने मात्रसे इन्हें मैल और मक्खियोंसे सुरक्षित नहीं रक्खा जा सकता। सुखानेसे जीवाणु नष्ट नहीं होते मगर इसका प्रभाव यह अवश्य होता है कि जीवाणु बढ़ने नहीं पाते और न इनकी वंश-वृद्धि ही होती है। जीवाणु भोजनको चूस कर खाते हैं मगर सूखी हुई चीज़ोंमें इतना पानी नहीं होता कि वे भोजन चूस सकें।

नमक भी कालान्तरसे भोजन सुरक्षित रखनेके लिये प्रयोग किया जाता है। कुछ काल पूर्व जब लोग लम्बे-लम्बे जहाज़ी सफ़र पर निकलते थे तो अपने साथ गोश्त रख लेते थे। पीपोंमें गाढ़ा नमकीन पानी भर लिया जाता था जिनमें गोश्त डाल कर पीपे बन्द कर दिये जाते थे। ऐसा करनेसे गोश्त सुरक्षित बना रहता था।

सत्रहवीं शताब्दीके आरंभिक कालमें फ्रांसिस बेकन ने एक मुर्गेको मार कर बर्फ़में रख दिया और यह साबित किया कि शीत भोजनके पदार्थोंको सुरक्षित रखती है। आज कल भी भोज्य पदार्थोंको सुरक्षित रखनेके लिये शीत-रक्षण-विधिका प्रयोग किया जाता है। कम तापक्रम पर जीवाणु वंश-वृद्धि नहीं करते। अतएव यदि तापक्रम सदा कम बना रहे तो भोजन-सामग्री बहुत दिनों तक नहीं बिगड़ती। जाड़ोंके दिनोंमें भोजन इसीलिये अधिक समय तक ख़राब नहीं होता। फलों और तरकारियोंको ताज़ी हालतमें रखनेके लिये ठोस कारबन डाइऑक्साइडका इस्तेमाल किया जाता है। यह प्रयोग अंगूरों पर बहुधा किया जाता है। अब ऐसे कमरे भी बनाये गये हैं जिनमें शीत उत्पन्नकी जाती है और इनमें बड़ी मिकदारमें चीज़ें सुरक्षित रक्खी जाती हैं।

सिरका, सरसोंका तेल, शकरका गाढ़ा शीरा भी फलोंको सुरक्षित रखनेके लिये व्यवहृत होते हैं। हम घरों-घर आचार और मुरब्बोंको इस प्रकार सुरक्षित रखते हैं। इन चीज़ोंकी मौजूदगीमें जीवाणु पनपते नहीं क्योंकि ये चीज़ें ख़फ़ीफ सी रक्षण-विरोधी होती हैं और इनमें यह खूबी पाई जाती कि मनुष्यकी भोजन-नालीके लिये हानिकर नहीं होती।

डिब्बोंमें भोजन-पदार्थोंको बन्द करनेके लिये कुछ व्यापारी कभी-कभी रासायनिक पदार्थ मसलन बेंज़ोएट ऑफ़ सोडा (Benzoate of soda) काममें लाते हैं। इस क़िस्मकी चीज़ें अगर अधिक मात्रामें काममें लाई जायँ तो खानेमें अहितकर होती हैं। इस प्रकारके रासायनिक पदार्थोंके मिलानेका काम कुछ वर्ष पूर्व इतना सार्वभौम हो गया था कि सरकारकी तरफ़से एक क़ानून जारी किया गया। इस क़ानूनके आधार पर कुछ रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग करना रोक दिया गया और कुछका प्रयोग सीमित कर दिया गया और इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि डिब्बेके अन्दर जो चीज़ें बन्द हैं उन्हें डिब्बेके ऊपर लिख दिया जाय।

जीवाणुओंसे भोजन-सामग्रीको सुरक्षित रखनेका एक तरीक़ा यह भी है कि इन चीज़ोंको १५०° फ तक गरम किया जाय। बहुतसे जीवाणु तो इस क्रियासे मर जाते हैं।

भोजनको कीटाणु-रहित करनेके लिये इसे पहले डिब्बेमें रक्खा जाता है, फिर खूब गरम किया जाता है। गरमीसे जीवाणु मर जाते हैं और भाप, जो इस क्रियासे बनती है, डिब्बेके छेदसे हवाको निकाल देती है। इसी दशामें जब कि भोजन-सामग्री गरम होती है छेदको झलकर बन्द कर दिया जाता है। जब डिब्बा ठंडा होता है तो भाप जम जाती है और कुछ जगह ख़ाली हो जाती हैं। ऐसी हालतमें भोजन-सामग्री वर्षों सुरक्षित बनी रहती हैं। धाती डिब्बोंमें भोजन-समाग्री बन्द करनेमें एक दोष यह है कि कुछ समय व्यतीत होने पर धातुकी कुछ मिक़दार भोजनमें मौजूद रासायनिक चीज़ोंमें घुल जाती है। साधारणतः इसका असर भयावह नहीं होता क्योंकि धातुकी बहुत मिक़दार घुली होती है, परन्तु कभी-कभी धाती विषकी घटनायें होती हैं। इस दोषको मिटानेकी सर्वोत्तम विधि यह है कि धाती डिब्बोंकी जगह शीशे काममें लाये जायँ

कभी-कभी भोजन डिब्बोंमें बिगड़ जाता है जिसका सबब यह है कि डिब्बोंमें बन्द करते समय भोजन-सामग्री ताज़ी नहीं होती अथवा डिब्बेके अन्दर कुछ हवा शेष रह जाती है। इसका पता भोजनके स्वादसे चलता है। जब कोई डिब्बा बाहरसे उभरा हुआ दिखाई दे तो इस बातका संदेह करना चाहिये।

जीवाणुओंसे भोजनको सुरक्षित करनेके लिये एक अच्छी तरकीब यह है कि सब भोजन-सामग्री ढक कर रक्खी जाय। बाज़ारकी मिठाइयाँ इत्यादि शीशोंके अन्दर बन्द रक्खी जायँ। भोजन करनेके पूर्व हाथोंको अच्छी तरह साफ़ कर लिया जाय। भोजन करनेके पश्चात् रकाबियों और प्यालों इत्यादिको साफ़ करके रख दिया जाय।

दूध जीवाणुओंसे किस तरह सुरक्षित रक्खा जा सकता है ?

भोजनकी सामग्रीको सुरक्षित रखनेके तरीक़ोंका वर्णन ऊपर किया जा चुका है परन्तु दूध एक ऐसी वस्तु है कि यह जीवाणुओंसे सहज ही आक्रान्त हो जाता है। सूक्ष्म जीव अन्य भोजन-सामग्रीमें शीघ्रतासे नष्ट हो जाते हैं, मगर दूधमें अच्छी तरह बढ़ते और वंश-वृद्धि करते हैं। कभी-कभी वें गायें भी रोग-ग्रस्त होती हैं जिनका हम दूध पीते हैं। रोग-ग्रस्त गायसे कीटाणु दूधमें प्रवेश कर जाते हैं। राज-यक्ष्माके शलाकाकार कीटाणुओंके लिये यह अक्षरशः सत्य है। बहुतसे लोग कच्चे दूधको ही पी लेते हैं। बालकोंमें जो राजयक्ष्माका रोग पाया जाता है उसका यही कारण है। चिरकालसे दूध रोग-प्रसारका एक कारण समझा जाता है। इस उद्देश्यसे दूधको उबाला जाने लगा परन्तु इसके कारण दूधका मज़ा बदल जाता है। अतएव पाश्चर ने दूधको सुरक्षित रखनेके लिये उस विधिका अनुकरण किया जिसके द्वारा मदिराको बिगड़नेसे रोका जाता है। इस क्रियाको पाश्चरके नाम पर पाश्चरीकरण कहते हैं। पाश्चरीकरणके लिये दूधको आध घंटे तक १५०° फ़ तक गरम किया जाता है। दूधके क्वथनाङ्कसे यह बहुत नीचा तापक्रम है और इस तापक्रम पर दूध सहज हो पचनशील होता है और उसका मज़ा भी नहीं बिगड़ने पाता। यह तापक्रम रोगोत्पादक कीटाणुओंको मारनेके लिये पर्याप्त होता है। इस प्रकार गरम करनेसे दूधको खट्टे करने वाले कीटाणु नष्ट नहीं होते परन्तु कुछ घंटों तक इनका बढ़ना बंद हो जाता है। अतएव यदि दूधमें बर्फ़ तुरन्त डाल दी जाय और उसे ठंडी जगह रख दिया जाय तो यह खट्टा नहीं होता।

पीनेका पानी किस तरह सुरक्षित रक्खा जाता है ?

पीनेके पानीमें रोगोत्पादक कीटाणु बहुत कम क़िस्मके होते हैं परन्तु यही थोड़ेसे कीटाणु यदि शरीरमें प्रवेश कर जायँ तो बहुत हानि करते हैं। ये कीटाणु आँतोंमें अड्डा जमाते हैं और मलके साथ निकल जाते हैं। जब तक मोरियोंके गंदे पानीको दूर न निकाल फेंका जाय इस बातका अंदेशा है कि गंदा पानी निकटके कुँओं अथवा नदीमें वर्षा-द्वारा पहुँच जाय। ऐसा पानी गंदा और अपवित्र हो जाता है। सड़ते हुये पदार्थों के कणोंके साथ ये कीटाणु महीनों तक पानीमें बने रहते हैं। पानी जम जाने पर भी ये जीवित रहते हैं। पानी पिघलने पर वे फिर सक्रिय हो जाते हैं। कभी कुओं, नलों और तालाबों पर मंथरज्वरसे पीड़ित और विसूचिका रोगसे ग्रस्त रोगियोंके मल-मूत्रके कपड़े धोये जाते हैं जिसकी वजहसे इनका पानी दूषित हो जाता है। अतएव पानी-द्वारा फैलने वाले रोगोंको रोकनेके लिये समाजके दो कर्तव्य हैं। पहला उत्तरदायित्व यह है

कि मोरियोंके गंदे पानीको नदी या तालाबमें ले जाना हानिकारक है क्योंकि इस गंदे पानीमें स्नान करने वालोंको ये रोग हो सकते हैं। दूषित कपड़े इत्यादिको ऐसे स्थानों पर धोनेकी आज्ञा न दी जाय जहाँसे जनता पीनेके लिये पानी प्राप्त करती है। समाजका दूसरा कर्तव्य यह है कि पीनेके पानीको सुरक्षित रक्खा जाय। बड़े-बड़े नगरोंमें पानीको कीटाणु-रहित रखनेके लिये बड़े-बड़े तालाब नगरोंसे दूर बनाये जाते हैं, फिर पानीको साफ़ किया जाता है। बालूसे छाना जाता है और क्लोरीन मिलाकर कीटाणुओंको नष्ट किया जाता है। गाँवमें भी पोटैसियम परमेंगनेट इत्यादि रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग इस कामके लिये किया जाता है अथवा पानीको उबाल लिया जाता है।

कृत्रिमता

[ले०—श्री प्रकाश]

किसी भी देश की अतुल सम्पत्ति खानोंमें रहती है। खनिज ही देश के पालक हैं, स्वामी हैं। खनिजोंको ही देखने से हम कहते हैं कि 'वह देश धनाढ्य है' और वहाँ पर दरिद्रों ने निवास किया है।' आजकलके बहुमूल्य खनिज सोना, चाँदी, लोहा, पेट्रोल, कोयला आदि हैं जिनमें ये खनिज प्रचुर मात्रामें मिलते हैं उस देशका प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ता है। आज संयुक्त राष्ट्र, अमेरिकाकी उतनी शक्ति नहीं है जितनी कि जर्मनी या रूस की, परन्तु वे सब देश उससे भय खाते हैं, क्योंकि उसके पास खनिजोंकी कमी नहीं है। वह एक माहके भीतर ही जर्मनी से अधिक शक्ति पैदा कर सकता है। परन्तु ऐसे भी देश पाये जाते हैं जहाँ खनिजोंका एक दम अभाव रहता है। ऐसे स्थानोंमें कृत्रिमताको स्थान मिलता है। वहाँके गरीब निवासी भिन्न-भिन्न प्रकारकी कृत्रिम वस्तुयें बनाकर अपने मनको बहला लेते हैं। हमने भी अपनी गाँवके निवासियोंको केमिकल गोल्ड (chemical gold) के आभूषण पहने हुये देखा है। इस सोनेका मूल्य अत्यन्त ही कम होता है और इसके आभूषणोंको ८ रु० माहवार पाने वाली एक स्त्री भी खरीद सकती है।

कृत्रिमताका प्रयोग तब भी होता है जब कि एक राष्ट्रको अन्य शत्रु-राष्ट्र चारों ओरसे घेर लेते हैं। रसदका पहुँचना कठिन हो जाता है और भीतर वस्तुओंका अभाव होने लगता है। गत् महायुद्धको ही ले लीजिये। उसमें जर्मनी शस्त्रोंकी मारसे उतना घायल नहीं हुआ था, जितना कि आर्थिक मारसे। उस समय कृत्रिम विज्ञानका विकास नहीं हुआ था, नहीं तो जर्मनीके पराजय होनेमें कुछ सन्देह अवश्य ही रह जाता और कुछ कहा नहीं जा सकता, शायद पाँसा उल्टा ही पड़ता। परन्तु आधुनिक जर्मनी ने अपने राष्ट्रके भीतर कृत्रिमताका जाल फैला दिया है। खनिजों तकमें ही नहीं, कृत्रिमता ने मनुष्यों पर भी अपना आधिपत्य जमाया है और आज गोरिंग, गोबेल्स आदि नाज़ी-नेताओं ने एक कृत्रिम हिटलर, चेहरे व बनावटमें एक, हिटलरके सम्मुख रख दिया है।

हिटलरके सूत्रधार बनते ही उसने औद्योगिक स्वावलम्बनके नये साधन प्रयोगमें लाने आरम्भ कर दिये हैं। उसने 'एरसत्स (ersatz) नामक एक प्रणालीको अपना लिया है। 'एरसत्स' के अर्थ होते है स्थानापन्न। आज जर्मनीके भीतर हम काफी वस्तुओंके कृत्रिम या स्थानापन्न पावेंगे। यह हिटलर और उसके साथियोंके दिमाग़की ही उपज है, क्योंकि वे कई वर्षों से इंग्लैण्डके साथ महा समरका स्वप्न देखते आ रहे थे। उन्होंने आज जर्मनीको स्वावलम्बी बना लिया है और आज यदि जर्मनीको चारों ओरसे घेर ही क्यों न लिया जावे, उसके परास्त होनेमें आशंका ही लगी रहती है।

तेल :—वर्तमान युद्ध-प्रणालीके अनुसार तेलकी कितनी आवश्यकता है, कहा नहीं जा सकता। मोटर साइकिलमें, मोटरकारमें, टैंकमें, वायुमंडलमें, प्रत्येक स्थानमें

तेलके बिना कार्य्य चलना असम्भव है। जर्मनीको तेलके लिये सदैव दूसरोंका मुँह ताकना पड़ता था, परन्तु तीन वर्षों में ही जर्मनी ने तेलको अन्य पदार्थों से बनानेके साधन ढूँढ़ निकाले। कोयलेसे तेल बनानेकी रासायनिक प्रक्रियाकी खोज करके जर्मन वैज्ञानिकोंने कमाल कर दिया। युद्धके पूर्व जर्मनीको साठ लाख टन तेल तथा उससे उत्पन्न पदार्थों की आवश्यकता थी, परन्तु अब उसने 'एरसत्स' प्रणाली द्वारा पैंतालीस प्रतिशत पूर्ति कर डाली। फिशर ट्राप्स (Fisher Tropseh) प्रणालीका प्रयोग किया जाता है और उसके द्वारा पत्थरके कोयले तथा भूरे कोयले (लिगनाइट) में से तेल निकाला जाता है। ये कोयले जर्मनीके भीतर काफी परिमाणमें हैं।

वैज्ञानिकोंने आलूको भी न छोड़ा। उस पर भी प्रयोग करने लगे और अन्तमें उसमेंसे एक द्रव्य ढूँढ़ ही निकाला जिसे कि पेट्रोलमें मिला कर एंजिनोंमें प्रयोग कर सकते हैं।

लोहा:—यह किसीसे भी छिपा नहीं है कि जर्मनीमें लोहेकी बहुत ही कमी है। निम्न श्रेणीका लोहा तो मिल जाता है पर उच्च श्रेणीका कम मिलता है। कई वर्षों की परिश्रमके पश्चात् वैज्ञानिक अब सफल हुये हैं और उन्होंने निम्न श्रेणीके कच्चे लोहेको उच्च श्रेणीमें निर्माण करना आरम्भ कर दिया है। इस अनुसन्धानके पश्चात् केन्द्रीय जर्मनीमें सुप्रसिद्ध हरमैन गोरिंग कारख़ाने बनाये गये। लोहे और इस्पातके इन विशालकाय जर्मन कारखानोंको सुरक्षित रखा गया है।

अल्यूमीनियम:—लोहेकी भाँति अल्यूमीनियम भी एक उपयोगी धातु है। यह अल्यूमीनियम बौक्साइटसे उत्पन्न होता है। पर यह बौक्साइट जर्मनी हंगरी तथा यूगोस्लेवियासे खरीदती है। 'एरसत्स' प्रणालीके अनुसार जर्मन वैज्ञानिक चिकनी मिट्टीसे अल्यूमीनियमको बनाने लगे हैं।

कपड़ा:—कपड़ेकी समस्या और विशेष प्रकारसे शीत प्रदेशमें बड़ी ही गम्भीर है। परन्तु जर्मनी ने इसे भी हल कर दिया हैं। जर्मनीको प्रत्येक वर्ष रूई तथा ऊनके कपड़े बाहरसे मँगाने पड़ते थे। परन्तु 'एरसत्स' प्रणालीके अनुसार रेशम तथा अन्य कपड़ोंको सेलूलोज़ (cellulose) से बनाया जाता है। स्त्रियोंकी टोपोंको काड मछलीकी खालसे बनानेका प्रयत्न किया जा रहा है और मुर्गियोंके पंखोंसे भी वस्त्र बनाने जानेकी योजनायें की जा रही हैं।

कृत्रिम रबर:—जर्मनीमें प्रति वर्ष लगभग ५० हज़ार टन कृत्रिम रबर जिसे ब्यूना कहते हैं बनाया जाता है। यह कोयले तथा चूनेसे तैयार होता है। ब्यूना कृत्रिम चमड़ेको बनानेमें भी काम आता है। अन्य प्रकारसे भी चमड़ा बनाये जाने लगा है।

अन्य कृत्रिम वस्तुयें:—साधारणतः कागज़को लकड़ीके गूदेसे तैयार किया जाता है, परन्तु जर्मनीमें आलूके पौधोंकी पत्तियोंसे भी कागज़ बनाया जाता है। लोहे और इस्पातके स्थानको कहींकहीं काँच ने ले लिया है। यह काँच भी ख़ूब मज़बूत होते हैं। प्याले, तश्तरियाँ, तम्बाकू पीनेके पाइप आदि भी मजबूत काँच, कोलतार तथा सेलूलोज़से बने हुये कृत्रिम राल (resin) से बनाये जाने लगे हैं। फिशर ट्राप्स प्रणालीमें पेट्रोल बनाते समय पैराफ़ीन नामक उपपदार्थ निकलता है। इससे वसीय अम्ल (fatty acid) बनाया जाता है और इससे साबुन तैयार होता है।

कृत्रिमताके विषयमें अधिक क्या लिखें? वैज्ञानिकों ने संसारकी काया पलट दी है। भगवान् ही इनसे बचावे।

लकड़ीपर पॉलिश

[ले०—डा० गोरख प्रसाद डी० एसी-सी० और श्री रामयत्न भटनागर एम० ए०]

पॉलिशका सौंदर्य—फ्रेंच पॉलिश और स्पिरिट-वार्निश के द्वारा लकड़ी के सामान और अन्य वस्तुओं पर लाख (लाह या चपड़ा) की एक तह चढ़ा दी जाती है। इससे सतह शीशेकी तरह चमकने लगती है और लकड़ीकी सुन्दरता और उसके रेशे सबसे अच्छे रूपमें सामने आते हैं।

स्टेन करना—लकड़ीके रंगको बदलकर उसे अधिक सुन्दर करने के लिए उसे साधारणतः रंगोंके रङ्गोंसे रंगा

जाता है। इसे स्टेन करना कहते हैं। ऐसे रंगनेकी प्रक्रियाको तीन विभागोंमें बाँटा जा सकता है।

(क) चीड़ अथवा अन्य साधारण लकड़ी को रंगना जिससे वह अच्छी किस्मकी लकड़ी (शीशम, सागौन (टीक) आदि) लगने लगे।

(ख) प्राकृतिक रङ्गको अच्छी लकड़ीकी नक़लके लिए साधारण लकड़ीका रङ्ग गाढ़ा कर दिया जाय, जैसे सी० पी० टाक (सागौन) को बरमा टीकके रङ्गका कर देना।

(ग) सजावटके कामके लिए रङ्गनेको प्रक्रिया, जैसे कुछ विशेष काष्ठोंके रेशोंकी नक़लकी जाय।

स्टेनोंकी जातियाँ— साधारणतः स्टेनोंके नाम उस तरल पदार्थके नामपर रक्खे जाते हैं जिसमें रंग घोला जाता है, जैसे जल-स्टेन, स्पिरिट-स्टेन इत्यादि। इन दिनों चार प्रकारके स्टेन काममें आते हैं—

(१) जल-स्टेन। ये चार प्रकारके होते हैं—

(क) बुकनी वाले (कोलटार या ऐनिलीनसे निकले) रङ्गके घोल।

(ख) रासायनिक घोल।

(ग) वे जिनमें कोई अघुलनशील रङ्ग (साधारणतः कोई रङ्गीन प्राकृतिक मिट्टी) पड़ता है।

(घ) फूल, काष्ठ आदिसे निकाले गये रङ्गका घोल।

(२) स्पिरिट-स्टेन। यह स्पिरिटमें कोई बुकनी वाला रङ्ग घोल कर बनता है।

(३) तेल-स्टेन। ये दो प्रकारके होते हैं।

(क) बुकनी वाले किसी रङ्गका तेलमें घोल।

(ख) अघुलनशील (साधारणतः खनिज) रङ्गका मिश्रण।

(४) पॉलिश या वार्निश-स्टेन। पॉलिश-स्टेव स्पिरिटमें चपड़ा घोलकर और उसमें रङ्ग मिलाकर बनता है। वार्निश-स्टेन वार्निशमें रङ्ग डालनेसे बनता है।

जल-स्टेन बनानेका नुसखा—(१) जब आप बाज़ारमें रंग खरीदने जायँगे तब आप देखेंगे कि डिब्बों पर अकसर तरह-तरहके फ्रैंसो नाम लिखे रहते हैं जिनसे पता ही नहीं लगता कि वे वस्तुतः कौनसे रङ्ग हैं, परन्तु किसी भी बड़ी दूकानसे ऑर्डर करने पर निम्न रंग मिल सकते हैं। इनके नाम प्रायः सर्वमान्य हो गये हैं और इसलिए फ्रैंसी नामोंके साथ-साथ ये नाम भी बहुतसे डिब्बों पर रहते हैं। यदि ये ही रँग न मिलें तो जो भी रङ्ग मिले उससे फालतू लकड़ीको रङ्गकर और पॉलिश करके इसे धूपमें रखकर जाँच करनी चाहिए। आधे भागको दफ़्तीसे ढक दिया जाय तो और भी अच्छा है। इससे कुछ दिनोंमें पता चल जायगा कि कौनसा रँग कहाँ तक पक्का है।

निम्न रँगोंको आपसमें मिलाकर प्रायः कोई भी रंग उत्पन्न किया जा सकता है। ये सभी रंग पानीमें घोल कर स्टेन बनाने लायक अच्छे हैं।

महोगनी फ़ास्ट रेड	ऑरेञ्जवाई
महोगनी फ़ास्ट ब्राउन	स्कालेट २ आर. बी.
वालनट	ग्रीन एम. एक्स क्रिस्टल्स
बिसमार्क ब्राउन	मेथिलीन ब्लू २ बी.
ब्लैक विग्रोसोव जे.	क्यूकिन मैजेन्टा आर. टी.
येलो ऐसिड एच. एम.	वॉयलेट ३ बी. पी. एन.

नुसखेका एक नमूना निम्न है।

सूखो बुकनी (रँगकी)	२ से ५ तोला तक
पानी (खौलता हो तो अच्छा)	५ सेर
सिरका	आधा बोतल

(२) यदि सरेस भी डालना हो तो उपरोक्त नुसखेमें सिरकाके बदले थोड़ा सरेसका गरम घोल डालना चाहिए।

रासायनिक स्टेन— रासायनिक घोलोंको शीशे या जबलपुरी मिट्टीके बरतनोंमें रखना चाहिए। यदि बनाकर रखना हो उन्हें बोतलोंमें रख कर अच्छा काग लगा देना चाहिए। रासायनिक घोल एक दूसरेमें नहीं मिलाये जा सकते। मिलानेका परिणाम अकसर यही होता है कि दोनों रासायनिक पदार्थ एक दूसरेको काट डालते हैं। कड़ी लकड़ियों पर रासायनिक घोल लगाने के पहले उनको पानीसे भीगे कपड़े या स्पंजसे पोंछ लेना अच्छा है। इससे स्टेन अधिक बराबर उतरता है। नीचे एक अच्छा रासायनिक स्टेन दिया जाता है।

पोटैसियम परमैंगनेट— स्टेन बनानेके लिये यह बहुत अधिक इस्तेमालमें आता है। यह सस्ती चीज़ है (वस्तुतः

वह वही दवा है जो कुओंमें कीटाणुनाशके अभिप्रायसे डाली जाती है) । इसके रवे गहरे बैगनी रंगके होते हैं । इसके फीके घोलसे लकड़ियों पर सुन्दर पारदर्शक खाकी या भूरा रँग आता है । कुछ गाढ़ा इस्तेमाल करनेसे बहुत गाढ़ा रंग भी आ सकता है । इसलिए सागौन, साखू और शीशम आदि लकड़ियोंको अधिक गाढ़े रँगका करनेके लिए भी यह काममें लाया जाता है । साधारणतः

पोटैसियम परमैंगनेट	६ आउंस
पानी	१ गैलन

से बना घोल काफ़ी गाढ़ा होता है । यदि बहुत गहरे रंग की आवश्यकता हो तो दो बार पुताई करनी चाहिए । यदि कभी रंग आवश्यकता से अधिक गहरा हो जाय और उसको हलका करना पड़े तो लकड़ी पर हाइपोका फीका घोल पोतना चाहिए । गाढ़ा घोल पोतनेसे परमैंगनेटका असर बिलकुल काट भी दिया जा सकता है । हाइपो प्रत्येक फ़ोटोग्राफ़ीको दूकानमें बिकता है और बहुत सस्ती चीज़ है । इन दोनों रासायनिक पदार्थों से कुरसी-मेज़ आदि पर पॉलिश करने वालोंको बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि यदि विविध अंगोंके रँग एक ही गाढ़ेपनके न रहें तो उनको एक रंगका किया जा सकता है । सुन्दरताके लिये अकसर परमैंगनेटसे गाढ़ा कर लेनेके बाद स्टेंसिल (कटे काग़ज़) की सहायतासे इच्छित स्थानोंपर हाइपो लगाकर कर लकड़ीपर बेल-बूटे या किनारी बनाई जा सकती है ।

स्टेन करनेकी रीति—स्टेन लगानेमें साधारणतः निम्न कार्य-क्रम रहता है ।

लकड़ीको पहले बहुत अच्छी तरहसे साफ कर लेना चाहिए (तेल लगे स्थानोंको पेट्रोलसे साफ़ करना चाहिए) यदि कहीं मुरचे आदिका दाग हो तो उसे रासायनिक रीति से मिटाना पड़ेगा, जैसा एक आगामी अध्यायमें बतलाया गया है । रेशोंकी ही दिशामें रेगमाल (नंबर $\frac{1}{2}$ या नम्बर ००) रगड़ कर चिकना कर लेना चाहिये । यदि काम पहलेसे काफ़ी चिकना न हो तो पहले मोटे (नम्बर १ के) रेगमालसे रगड़कर पीछे महीन रेगमालसे रगड़ना अधिक उचित होगा । इसके बाद कामको कपड़े या ब्रशसे अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए । बुरादेके कुछ भी कण लकड़ी पर न रहें ।

स्टेन लगानेसे पहले यह आवश्यक हैं कि कीलसे या अन्य किसी तरहसे काष्ठमें जो छेद हो गये हैं उन्हें भर दिया जाय । इसके लिए बारीक पिसी व्हाइटिंग (यह पुटीन बनानेके लिये बाज़ारमें इसी नामसे बराबर बिकती है) को वांछित रंगसे मिलते हुए किसी खनिज रंग और सरेससे मिलाकर काममें लाओ । उदाहरणके लिए, जब लकड़ीको पीला रंग देते हो तो पीली मिट्टी (रामरज) और बारीक व्हाइटिंग इस तरह सरेसके घोलमें मिला लो कि लेई-सी बन जाये । इसको भरकर सब छेद और दरारें बन्द कर दो ।

घरेलू डाक्टर

[संपादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरखप्रसाद आदि]

अपेंडिसाइटिज़ या उपांत्र-प्रदाह (appendicitis)—बृहदंत्र और क्षुद्रांत्रकी संधि-के पास बृहदंत्रमें दो-तीन इंच लम्बी एक नली लगी रहती है जिसे उपांत्र (या अंग्रेज़ीमें अपेंडिक्स, appendix or vermiform ahpendix) कहते हैं (देखो अँतड़ी) ।

उस रोगको जिसमें उपांत्रमें प्रदाह (सूजन) हो जाता है उपांत्र-प्रदाह (अँग्रेज़ीमें अपेंडिसाइटिज़) कहते हैं । अभी तक ठीक पता नहीं चल सका है कि उपांत्र-प्रदाह क्यों होता है । अधिकतर ऐसा ज्ञान पड़ता है कि स्ट्रेप्टोकोकाई आदि जीवाणुओं (कीटाणुओं) के कारण यह रोग होता है । ये जीवाणु अँतड़ीसे उपांत्रमें पहुँचते हैं ।

लक्षण—पहले दो-चार दिन तबीयत कुछ ख़राब जान पड़ती है और तब नाभीके पास पीड़ा उत्पन्न होती है। कुछ समय बाद यह पोड़ा नाभोसे छः-सात अंगुल हट कर दाहिनी ओर होने लगती है। पीड़ा मरोड़की तरह होती है, परन्तु चलने-फिरने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई छुरीसे कोंचता हो। दर्द भी तब कुछ अधिक नीचे (लगभग दाहिने ऊरुसंधिके पास) जान पड़ता है। मिचली आती है, वमन भी हो सकता है। या तो कब्ज़ रहता है, या पेट झरता है (अतिसार रहता है)। हलका बुख़ार रहता है और नाड़ी बहुत तीव्र चलती है। पारी-पारीसे पेटके विविध स्थानोंको दबाने पर चित्रमें दिखलाये गये स्थानमें पीड़ा जान पड़ती है।

अकसर कुछ दिनोंमें पीड़ा मिट जाती है। परन्तु कुछ दिनोंके बाद पीड़ा फिर उभड़ती है और ऊपर बतलाये लक्षण फिर लौट आते हैं। ऐसा बार-बार हो सकता है। फिर एक बार पीड़ा बढ़ती ही जाती है (कभी-कभी ऐसा पहली ही बार होता है) और यदि उचित चिकित्सा तुरन्त न हो सकी तो अन्तमें मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—कोई ऐसी दवा नहीं है जिसके खानेसे उपांत्र-प्रदाह अच्छा हो जाय। सब से अच्छा उपाय यही है कि पेट चीर कर उपांत्र निकाल दिया जाय। यदि ऐसा प्रारम्भमें ही कर लिया जाय तो किसी बातका डर नहीं रहता है, परन्तु यदि उपांत्र इतना सड़ जाय कि उसमें छेद हो जाय या वह फट जाय और उसके भीतरकी सड़ी चीज़ें सारे पेटमें फैल जायँ तब शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) करने पर भी बचना कठिन हो जाता है।

उपांत्रमें प्रदाह होने पर यह फूल कर अँगुलीके समान मोटा हो जाता है और बहुत लाल हो जाता है। यदि प्रदाह बहुत उग्र रूप धारण करता है तो उपांत्र सड़ जाता है। इसमें बड़ी बदबू आ जाती है। घाव अकसर इतना बढ़ जाता है कि उपांत्रकी दीवारमें छेद हो जाता है या दीवार कहींसे फट जाती है। तब सड़ी चीज़ें सारे पेटमें बिखर जाती हैं, जिससे उदरक-कला-प्रदाह (peritonitis) उत्पन्न हो जाता है और सारे पेटकी दीवार सड़ जाती है। कभी-कभी ये क्रियाएँ बड़ी तेज़ीसे होती हैं। तो भी पीड़ा उभड़नेके चौबीस घंटेके भीतर ही उदरक-कला-प्रदाह होते नहीं देखा गया है। इस लिये यदि रोग आरंभमें ही ठीक-ठीक पहचान लिया जाय तो शल्य-चिकित्सा करके रोगीको बचा लेनेके लिए काफ़ी समय मिल जाता है।

यदि रोग इतना उग्र न हुआ कि रोगीकी मृत्यु तुरंत हो जाय तो बार-बारके आक्रमणसे उपांत्रमें गैंग्रीन (gangrene) हो जाता है, अर्थात् तंतु (tissues) मर जाते हैं। कभी-कभी रोग यहीं तक होकर रुक जाता है। परंतु अकसर पेटके अन्य भागोंमें भी सड़ी चीज़ें पहुँच जाती हैं जिसका परिणाम ऊपर बतलाया जा चुका है। कभी-कभी उदरक-कला-प्रदाह सर्वत्र न हो कर स्थानीय ही होता है और वहाँ फोड़ा हो जाता है। यह फोड़ा धीरे-धीरे बढ़ कर पेटके बाहर तक आ जाता है, या अन्य कोई उपद्रव हो सकता है।

जब उपांत्र-प्रदाह बहुत ही हलका होता है तो शरीरकी प्राकृतिक शक्तियाँ रोगीको बचा लेती हैं। उसके ऊपर कड़े तंतु बन जाते हैं और रोग आगे नहीं बढ़ने पाता (नीचे स्थायी उपांत्र-प्रदाह शीर्षक पैरा भी देखो)।

इसमें संदेह नहीं कि उपांत्र-प्रदाह होने पर बिना उपांत्र कटाये ही कई व्यक्ति अपने-आप या कोई दवा खा कर अच्छे हो गये हैं, परंतु इसमें भी संदेह नहीं कि बहुतसे व्यक्तियोंकी जान केवल इसीलिए चली गई है कि उन्होंने ऑपरेशन नहीं कराया है या ऑपरेशन करानेमें बहुत देर कर दी है। इसलिए उचित यही जान पड़ता है कि उपांत्र-प्रदाह होने पर जब डाक्टर लोग सलाह दें कि ऑपरेशन कराना चाहिए तो ऑपरेशन तुरंत करा ही लिया जाय।

जब तक डाक्टर आये तब तक रोगीकी पीड़ाको कुछ शांत करनेके लिए पेटके बग़लमें या तो गरम पानीका या बरफ़की बोतल रखनी चाहिये। यदि यह बोतल पेटके ऊपर इस प्रकार लटकाई जा सके कि वह पेट को छू भर ले परन्तु पेट पर बोतलका भार न पड़े तो और भी अच्छा है।

बचने के उपाय—कब्ज़से बचना चाहिए (देखो 'कब्ज़')। बिना चोकर निकाला हुआ आटा, बिना छिलका निकाली दाल, हरी तरकारियाँ, और ताज़ा फल बराबर खाना चाहिए। उपांत्र-प्रदाह होनेके बाद मांस, मछली नहीं खाना चाहिए। कभी भी पेटमें घंटे-दो घंटेसे अधिक समय तक दर्द होता रहे तो डाक्टरकी सलाह लेनी चाहिए।

उपांत्र-प्रदाहमें रेचक औषधोंसे हानि होती है। इसलिए यदि उपांत्र प्रदाहका संदेह हो तो जुलाब नहीं लेना चाहिए।

स्थायी (chronic) उपांत्र-प्रदाह—ऊपर बतलाया गया है कि हलका उपांत्र-प्रदाह अकसर आप-से-आप बैठ जाता है। परंतु साधारणतः एक बार उपांत्र-प्रदाह हो जाने पर दूसरे आक्रमणकी संभावना अधिक हो जाती है और प्रत्येक आक्रमण उपांत्रको अधिक अस्वस्थ दशामें छोड़ता है। भीतर कहीं-कहीं घाव रह जाते हैं या तंतु मर जाते हैं। स्वस्थ दशामें उपांत्र बाहरसे खूब चिकना होता है; परंतु इसमें प्रदाह होने पर इसकी बाहरी सतह खुरदरी हो जाती है। इसकी रगड़से उदरक-कला तथा अन्य अवयवोंकी बाहरी सतह भी खुरदरी हो जाती है जिसके कारण यह अन्य अंगोंमें चिपक जाता है। इसके कारण उपांत्र-प्रदाह कुछ दब जाता है जिससे पेटमें मंद-मंद पीड़ा हुआ करती है, विशेषकर नाभिकी दाहिनी ओर। स्त्रियोंमें उपांत्र कभी-कभी डिंब-प्रणाली (Fallopian tubes) में या जनन-संबंधी किसी अन्य विशेष अंगमें चिपक जाता है; तब मासिक धर्मके समय पेटकी पीड़ा अधिक बढ़ जाती है। सभी रोगियोंमें, जब पेट भरता है तब थोड़ी-बहुत पीड़ा जान पड़ती है। अकसर झुकने पर पेटकी पीड़ा बढ़ जाती है। चिपकनेके कारण अँतड़ी साधारण रीतिसे चल नहीं पाती। इसलिए कब्ज़ रहता है। आमाशय भी कभी-कभी अपनी साधारण गतिसे चल नहीं पाता, जिससे अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है।

ये सब लक्षण उपांत्रको काट कर निकलवा देनेसे मिट जाते हैं। जब स्थायी उपांत्र-प्रदाह रहता है तो यह भी डर रहता है कि न जाने कब यह उग्र रूप धारण कर ले और तुरंत ऑपरेशनकी आवश्यकता पड़े।

अपरस— शब्दसागरके अनुसार अपरस एक चर्म रोग है जो हथेली और तलवेमें होता है; इसमें खुजलाहट होती है और चमड़ा सूख-सूख कर गिरा करता है। अपरस त्वचा-प्रदाह (dermatitis) का एक भेद है। देखो 'त्वचा-प्रदाह'।

अपस्मार (epilepsy)—अपस्मार, अंग-विकृति या मिरगीमें रोगी एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है और हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं। परन्तु जब रोग बहुत हलका रहता है तो ऐसा भी हो सकता है कि वह न तो गिरे और न उसका हाथ-पैर ऐंठे। वह केवल पीला पड़ जाता है, अपने सामने घूरता है, कोई काम करता रहा हो तो रुक जाता है। यदि हाथमें वह कुछ पकड़े हो तो वह वस्तु गिर पड़ती है। फिर क्षण भरमें वह अपना काम आरंभ कर देता है। केवल क्षण भरके लिए ही वह मूर्च्छित हो गया था।

इसे छोटी मिरगी (minor epilepsy) कहते हैं। जब मूर्च्छा ऐसी होती है कि व्यक्ति गिर पड़ता है तो उसे बड़ी मिरगी (major epilepsy) या केवल मिरगी कहते हैं।

परन्तु अपस्मार या मिरगीमें उस अवस्थाकी भी गणना होनी चाहिए जिसमें केवल अंशतः मूर्च्छा या अर्द्ध-निद्रा-सी होती है। ऐसी अवस्थामें वह व्यक्ति मूर्च्छित-सा नहीं जान पड़ता। देखनेमें वह अपनी साधारण अवस्थामें ही जान पड़ता है, तो भी उस व्यक्तिका असली व्यक्तित्व दबा रहता है। वह कोई ऐसा काम कर सकता है जो वह अपने साधारण अवस्थामें कभी न करता। ऐसी अवस्था साधारणतः बड़ी या छोटी मिरगीके आक्रमणके बाद ही उत्पन्न होती है, परंतु कभी-कभी बिना ऐसे आक्रमणके भी उत्पन्न हो सकती है। वह व्यक्ति ऐसी असाधारण अवस्थामें बहुत दिनों तक रहकर साधारण अवस्थामें लौट जा सकता है। तब उसे अपनी असाधारण अवस्थामें किये गये कर्मोंका तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार जैसे छोटी और बड़ी मिरगियोंमें मूर्च्छाकी अवस्थामें किये गये कर्मोंका कुछ ज्ञान नहीं रहता।

लक्षण—मिरगीके रोगियोंको मूर्च्छा आनेके पहले अकसर कोई विशेष अनुभव (aura) होता है, जैसे आँखोंमें बिजलीकी तरह रोशनी चमक जाना, या कानोंमें आवाज़, कहीं पर झुनझुनी, या किसी विशेष अंगमें खुजली, या किसी अंगमें गरमी या सरदी जान पड़ना, या कोई विशेष गंध या स्वाद जान पड़ना, या कोई विशेष विचार उभड़ना। ये अनुभव विभिन्न व्यक्तियोंके लिए भिन्न-भिन्न होते हैं, परंतु किसी एक व्यक्तिके लिए वे साधारणतः

बार-बार एकही प्रकारके होते हैं। एक बार पहचान मिल जानेके बाद रोगी इससे लाभ उठा सकता है, क्योंकि वह बैठ या लेट जा सकता है। कुछ लोग मूर्च्छा आनेके पहले विशेष चिड़चिड़े हो जाते हैं, कुछ लोग विशेष शांत।

साधारणतः मूर्च्छा आनेके पहले रोगी ज़ोरसे चिल्ला उठता है और तुरंत धड़ामसे ज़मीन पर गिर पड़ता है। उसका मुख पीला पड़ जाता है और हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं। मुँह कसकर बन्द हो जाता है और पुतलियाँ ऊपर ऐंठ जाती हैं। मुट्ठी कसकर बँध जाती है। पैर फैल जाते हैं। अंग इस प्रकार लगातार २०-३० सेकंड तक अकड़े रहते हैं। तब रह-रह कर अकड़न आती है। मुख रह-रह कर विकृत हो जाता है। आँखें नाचने लगती हैं। सिर, हाथ, पैर झटकेके साथ चलते हैं। मुट्ठियाँ बंद होती हैं और खुलती हैं; नीचेका जबड़ा भी चलता है। मुखके कोनों पर फेन निकल आता है। अकसर दाँतोंके बीच पड़ जानेसे जीभ कट जाती है और इसलिए फेनमें रक्त भी मिला रहता है। अकसर मल-मूत्र का त्याग आप-से-आप हो जाता है। ऐसी अवस्था एक-दो मिनट या कुछ अधिक समय तक रहती है। तब अंगोंका झटकना धीरे-धीरे बंद हो जाता है। रोगी शिथिल हो जाता है और साँस ज़ोर-ज़ोर चलने लगती है। इस समय भी रोगी पूर्ण रूपसे मूर्च्छित रहता है। इस अवस्थासे वह अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था में उठ सकता है, या (यदि उसे सोने दिया जाय और यही उचित है) तो कुछ घंटे तक गहरी नींदमें सो सकता है। ऊपर साधारण लक्षणोंका वर्णन किया गया है। विभिन्न रोगियोंके लक्षणोंमें थोड़ा बहुत अन्तर भी हो सकता है। कभी-कभी मूर्च्छा केवल रातमें ही आती है। तब रोगी और उसके सम्बन्धी जान ही नहीं पाते कि रोग मिरगी है। केवल बिस्तरमें मल-मूत्र हो जानेके कारण ही उनको पता चलता है कि कोई रोग है, परंतु अकसर वे मल-मूत्र-त्यागको किसी अन्य रोगका लक्षण समझ लेते हैं।

अपस्मारी अवस्था (status epilepticus)—कभी-कभी मिरगीके आक्रमण एकके बाद-एक जल्द-जल्द आते हैं और यह अवस्था घंटों या कभी-कभी कई दिन तक रह सकती है। इसे अपस्मारी अवस्था कहते हैं। इसका अंत मृत्युसे ही होता है।

साधारण मिरगीमें दो आक्रमणों के बीच कई दिनों-का अन्तर पड़ता है, जैसे एक पखवारा या एक महीना; परन्तु इससे कम या अधिक समय भी लग सकता है। मिरगीके आक्रमणके बाद कुछ लोग थोड़े ही समय बाद अपना प्रति दिनका काम करनेके योग्य हो जाते हैं; परन्तु कभी-कभी रोगीमें मानसिक विकारके लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं जिससे अंतमें पागलपन तक उत्पन्न हो जा सकता है।

आयु आदि—असली मिरगी साधारणतः लड़कपनसे ही आरंभ होती है। कभी-कभी तो नन्हे बच्चे भी मिरगी-के शिकार होते हैं। इसलिए यदि किसी बच्चेको बार-बार कँपकँपी हो तो किसी विशेषज्ञको दिखलाना चाहिए। मिरगी लड़कों और लड़कियों दोनोंको होती है, परन्तु लड़कोंको ही अधिक होती है। कुछको मिरगी इसलिए होती है कि उनकी माँ या बापको भी यही रोग था। ऐसा भी हो सकता है कि रोगीका पिता बहुत शराब पीता रहा हो, परंतु सभी अधिक शराब पीने वालोंके बच्चोंको मिरगी नहीं होती।

स्मरण रखना चाहिए कि मिरगीके अतिरिक्त कुछ अन्य रोग भी हैं जिनमें मिरगीकी तरह ही मूर्च्छा आती है, जैसे हिस्टीरिया, रक्ताल्पता (anæmia), बहुमूत्र (diabetes), मस्तिष्कका उपदंश (general paralysis of the insane), उन्माद (dementia præcox), इत्यादि।

जैकसोनियन मिरगी (Jacksonian epilepsy)—असली मिरगी किस कारणसे उत्पन्न होती है यह तो पता नहीं है, परन्तु कुछ व्यक्तियोंमें मिरगी मस्तिष्क पर दबाव पड़नेके कारण उत्पन्न होती है। इसे जैकसोनियन मिरगी कहते हैं क्योंकि इसका पता डाक्टर जैकसनने लगाया था। यदि किसी टेढ़ी हड्डीसे, या मस्तिष्कके पासके अंगोंके सूजनसे, या खोंपड़ीके चोटके अच्छे होने पर उभड़े हुए क्षत-चिह्न बननेसे मस्तिष्क पर दबाव पड़े तो मिरगीके लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। अकसर ऐसी मिरगीमें केवल एक ही अंगमें ऐंठन और झटके उत्पन्न होते हैं—किस अंगमें यह इस पर निर्भर है कि मस्तिष्कके किस विशेष भाग पर दबाव पड़ रहा है। ऐसी

दशामें शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) करानेसे रोगी सदाके लिए अच्छा हो सकता है।

असली मिरगी अधिकतर कम उम्रमें दिखलाई पड़ जाती है। इसलिए यदि २० वर्षकी आयुके बाद एकाएक मिरगी उत्पन्न हो तो बहुत संभव है कि वह जैकसोनियन मिरगी है।

चिकित्सा—कुछ ऐसी दवाएँ हैं जिनसे मिरगीका आक्रमण दबा रहता है, परन्तु यह आवश्यक है कि बराबर दो-तीन वर्ष तक उनका सेवन किया जाय और उसके बाद भी दवा धीरे-धीरे छोड़ी जाय। इन दवाओंमेंसे पोटैसियम ब्रोमाइड बहुत उपयोगी है। अकसर इसे सोडियम ब्रोमाइड या अमोनियम ब्रोमाइडके साथ देते हैं, क्योंकि केवल पोटैसियम ब्रोमाइड कुछ लोगोंको बरदाश्त नहीं होता। इन दवाओंको बहुत-सा पानीमें घोल कर पिया जाता है। अन्य दवाओंमेंसे नई ईजादकी गई दवा लुमिनल (luminal) अत्यंत लाभदायक है। ये दवायें तेज़ हैं। इसलिए इनका सेवन डाक्टरकी देख-रेखमें ही करना चाहिए जिसमें दवाके कारण कोई उत्पात होने से वह दवामें हेर-फेर कर सके। दवा एकाएक छोड़ देना हानिकर है।

कभी-कभी लोगोंकी यह धारणा रहती है कि इन दवाओंके खानेसे बुद्धि मन्द हो जाती है। परन्तु सच्ची बात यह है कि मिरगी रोग से ही बुद्धि धीरे-धीरे मन्द हो जाती है। हज़ारों रोगियोंमें देखा गया है कि जिनको ब्रोमाइड आदि दवाएँ तीन-तीन चार-चार वर्षों से दी गई हैं उनकी बुद्धि अधिक मन्द नहीं होने पाई है, परन्तु उनको बुद्धि जो डाक्टरकी अवहेलना करके यह दवा नहीं खाते हैं शीघ्र बहुत मन्द हो गई है।

दवाके साथ-साथ भोजनमें भी परहेज़ करना चाहिए। भोजन सरल हो। मसाला खाना एकदम बन्द कर देना चाहिए। मांस भी नहीं खाना चाहिए। मदिरा, चाय और कहवा भी छोड़ देना चाहिए। केवल दो बार भोजन और एक बार हलका नाश्ता करना चाहिए। फल खूब खाना चाहिए। खुली हवामें रहना, हलका व्यायाम, चिंता-मुक्त जीवन, ये सभी लाभदायक हैं।

जैकसोनियन मिरगीमें अच्छे अस्पतालमें होशियार डाक्टरसे ऑपरेशन कराना चाहिए। यदि हिस्टीरिया आदि कारणोंसे मूर्च्छा आती हो तो मनोविज्ञान (psychotherapy) के अनुसार उसकी चिकित्सा करानेसे रोग दूर हो सकता है।

जिस समय रोगीको मूर्च्छा आये उसे चित लिटा देना चाहिए। अपने हाथोंका सहारा देकर ऐसा उपाय करना चाहिए कि रोगीके छटपटाने पर उसे चोट न लगने पाये। जबरदस्ती उसके अंगोंको स्थिर रखनेकी चेष्टा न करनी चाहिए। उसके दाँतोंके बीचमें दतुअन या अन्य कोई लकड़ी या रूमालसे लपेट कर कलछुलकी डाँड़ी डाल दी जाय तो अच्छा; इससे जीभ कटने नहीं पाती। इन वस्तुओंको चौभड़ (चबाने वाले दाँतों) के बीच रखना उचित होगा। रोगी कोई चुस्त कपड़ा पहने हो तो उसे ढीला कर देना चाहिए, विशेषकर गले और छाती पर के कपड़ोंको। यदि रोगी वमन (कै) करे तो उसे करवट लेटा देना चाहिए। ऐसा न करनेसे वमन मुँहमें हो रह जाता है और अकसर दम घुटने लगता है। होश आने पर उससे इस प्रकार बात करनी चाहिये कि उसकी घबराहट दूर हो। साथ ही चौकन्ना रहना चाहिए। संभव है रोगी अर्द्ध-निद्रामें हो और वह आक्रमण कर बैठे। यदि रोगीको नींद मालूम पड़ती हो तो उसे सोने देना चाहिये। न सोनेसे या भरपूर न सोनेसे सरमें ज़ोरका दर्द पैदा हो जाता है।

मिरगी वालेको मशीन या भट्टी आदिका काम न करना चाहिए, क्योंकि मूर्च्छा आने पर वह मशीनोंमें कुचल जा सकता है या आगमें गिर सकता है। उनको नदीमें नहाना भी न चाहिए। जिन औरतोंको मिरगीका रोग हो यदि वे रसोई न पकाया करें तो अच्छा है। रातको मूर्च्छा आनेका डर हो तो घोड़ेके बाल या पुआल या नारियलकी जटासे भरा तकिया इस्तेमाल करना अच्छा है, क्योंकि रूईके तकियेमें नाक-मुँह दब जानेसे दम घुट कर प्राण निकलनेका डर रहता है।

मिरगी वालोंके लिए खेती-बारी अच्छी है। मिरगी रोग वाले स्त्री-पुरुष विवाह न करें तो उत्तम हो, क्योंकि मिरगी रोग वाली माँ या बापके बच्चोंको अकसर मिरगीका रोग होता है या वे मूढ़ होते हैं। स्त्रियोंमें मिरगीका आक्रमण गर्भवती रहनेकी अवस्थामें साधारणतः बंद हो जाता है।

इससे कुछ लोगोंकी यह धारणा हो जाती है कि विवाह कर देनेसे मिरगी अच्छी हो जायगी। परंतु ऐसा विचार ग़लत है।

अफरा (tympanitis)—वायुके कारण पेट फूलनेको अफरा कहते हैं। शब्दसागरके अनुसार यह शब्द संस्कृतके स्फार (=प्रचुर) शब्दसे निकला है। अँतड़ीमें साधारणतः कुछ वायु बराबर रहता है; परंतु कभी-कभी किसी विशेष कारणसे वायु या गैसकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि अफरा हो जाता है। कब्ज़ (कोष्ठबद्धता) में भोजन अँतड़ीमें जाकर सड़ने लगता है और उससे बहुत-सी गैसें निकलती हैं। फिर, कुछ आहार ऐसे हैं जिनसे बहुत-सी गैस बनती है, जैसे चना या मटर। साधारणतः पादके रूपमें यह गैस निकल जाती है. परंतु जब पेटकी मांसपेशियाँ कमज़ोर रहती हैं तब अफरा होता है। ये मांसपेशियाँ या तो विषाक्त पदार्थोंके कारण, या उदरक-कला-प्रदाह (peritonitis) या आंत्रिक ज्वर (टाईफ़ॉयड फ़ीवर) के कारण कमज़ोर हो जा सकती हैं। कभी-कभी पेटके किसी ऑपरेशनके बाद भी ऐसा होता है। अँतड़ीका भीतरी रास्ता किसी कारण बंद हो जानेसे भी अफरा हो सकता है। हिस्टीरियामें भी अफरा होता है।

लक्षण—अफरामें पेट फूल आता है। अँगुलियोंसे ठोंकने पर ढोलककी-सी आवाज़ निकलती है। यदि पेट बहुत अधिक फूल जाय तो हृदय और फुफ्फुस (फेफड़े) के कार्योंमें बाधा पड़ सकती है।

चिकित्सा—यथासंभव शीघ्र डाक्टरकी राय लेनी चाहिए, क्योंकि अफरा साधारणतः किसी अन्य गंभीर रोग-के कारण होता है। जब तक डाक्टर आये तब तक पेटको सेंकना चाहिए। तारपीनसे मालिश करना भी लाभदायक है। साबुन और पानीके एनेमासे (उसे देखो) बहुत आराम मिलता है। साबुनका पानी आधा सेर लेकर उसमें एक चम्मच (चाय वाला चम्मच) भर तारपीन डाल दिया जाय तो और भी अच्छा है। पिपरमिंट, दारचीनीका तेल (२ से ५ बूँद तक) या, अमोनियम कारबोनेट ५ ग्रेन खिलानेसे फायदा होता है।

अफ़ीम (opium)—अफ़ीम पोस्तकी ढेंढ़ की गोंद है जो काछ कर इकट्ठीकी जाती है। नींद लाने वाली ओषधियोंमें यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। पीड़ा कम करनेमें भी यह बहुत उपयोगी है। रासायनिक विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि इसमें कई एक ऐलकलायड (alkaloid) हैं, जिनमेंसे मॉरफ़ीन (morphine) मुख्य है। अच्छी अफ़ीममें मॉरफ़ीनकी मात्रा लगभग दस प्रतिशत होती है। रासायनिक रीतियोंसे मॉरफ़ीन या मॉरफ़िया (morphia) अलग करके भी बिकती है और काममें लाई जाती है।

बिना लाइसेंसके कोई अफ़ीम बेंच नहीं सकता और एक नियत मात्रासे अधिक अफ़ीम कोई खरीद नहीं सकता। थोड़ी-थोड़ी अफ़ीम कुछ समय तक खाते रहने पर ऐसी लत लग जाती है कि बिना अफ़ीमके किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता। प्रति दिन अफ़ीम खाना स्वास्थ्यके लिए बहुत हानिकारक है। जिन्हे अफ़ीम खानेकी आदत नहीं है अधिक अफ़ीम खा लेनेसे उनकी मृत्यु हो जा सकती है।

अफ़ीम कई एक ओषधियोंमें पड़ती है। थोड़ीसी अफ़ीम खानेसे पहले मानसिक उत्तेजना होती है, परन्तु उसके बाद शीघ्र ही नींद आती है। अकसर सुन्दर सपने दिखलाई पड़ते हैं। पीड़ा दूर करनेके लिए अफ़ीमका उपयोग बहुत किया जाता है और जब सुईसे हाइपोडर्मिक इनजेक्शनके रूपमें मॉरफ़ीन दी जाती है तब बहुत शीघ्र असर होता है। पेटकी पीड़ामें अफ़ीम देना बुरा है, क्योंकि इसे देने पर उपांत्र-प्रदाह (अपेंडिसाइटिज़) का पता ठीक नहीं चल पाता। इससे ऑपरेशन करनेमें अकसर देर हो जाती है और परिणाम बहुत बुरा होता है। कफ-की ओषधियोंमें भी अकसर अफ़ीम पड़ती है क्योंकि कफके कारण उत्पन्न हुए छातीके दर्दको यह कम कर देती है; परंतु जब कफको बाहर निकालनेसे लाभ होने वाला हो तब अफ़ीम देनेसे हानि होती है। पेटफरोंमें भी अफ़ीमसे लाभ होता है, परंतु बहुत दिनों तक अफ़ीम खाते रहनेसे कोष्ठबद्धता और अजीर्ण होता है।

अफ़ीमसे कई एक दवायें बनती हैं। अफ़ीमके टिंकचर (मद्यसार अर्थात् ऐलकोहलमें घुली अफ़ीम) को लॉडेनम (laudanum)कहते हैं। यदि इसमें कपूर भी मिला

हो तो उसे पैरेगोरिक (paregoric) कहते हैं। डोवर्स पाउडर (Dover's powder) में भी अफ़ीम पड़ी रहती है।

मालिशके लिए अफ़ीम डाल कर तेल और मरहम बनते हैं।

कुछ पेटेंट दवाओंमें और क्लोरोडाइनमें अफ़ीम पड़ी रहती है। बच्चोंको ऐसी दवा अधिक मात्रामें देने पर मृत्यु तक हो गयी है। इसलिए ऐसी ओषधियोंका सेवन बड़ी सावधानीसे करना चाहिये।

अफ़ीमसे मृत्यु—इतनी अधिक अफ़ीम खा जाने पर कि अफ़ीम विष-सा काम करे पहले तो गहरी नींद लगती है और फिर मूर्च्छा आ जाती है। नींदसे रोगीको जगाया जा सकता है, परन्तु मूर्च्छासे नहीं। शरीर ठंढा हो जाता है और अकसर पसीना भी खूब होता है। साँस धीरे-धीरे चलती है और आँखकी पुतलियाँ संकुचित हो जाती हैं। यदि उचित उपचार न हो तो मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—यथासंभव रोगी को सोने न देना चाहिए। उसे टहला कर, चिकोट कर, या ठंढे पानीके छींटे से जब तक हो सके जगाये रखना चाहिए। उसे राई पीस कर और पानीमें मिला कर पिलाना चाहिए जिसमें वमन हो जाय। आवश्यकता पड़े तो गलेके भीतर पर या अँगुली डाल कर वमन कराना चाहिए। पोटैसियम परमैनगनेट (कुएँमें डाली जाने वाली लाल दवा) पानीमें इतना घोलना चाहिए कि गहरे लाल रंगका घोल बने और इसका लगभग आधा गिलास (१ पाव) रोगीको पिला देना चाहिए। इससे विषका असर बहुत कुछ कम हो जाता है। इसके बाद रोगीको गरम कहवा (कॉफी) खूब पिलाना चाहिए। यदि रोगी बेहोश हो तो गुदा-द्वारा इसे उसकी अँतड़ियोंमें पहुँचा देना चाहिए। यदि साँस बहुत मन्द चलती हो तो कृत्रिम रीतिसे साँस चलानी चाहिए (देखो कृत्रिम श्वास)।

अफ़ीमकी लत—अफ़ीमका सेवन तीन प्रकारसे किया जा सकता है। मुँहसे खाकर, तम्बाकूकी तरह इसके धुएँको पीकर (इसे चंडू कहते हैं) और त्वचाके नीचे इसके घोलको खोखली सुईसे डाल कर। तीनोंका परिणाम एक-सा ही होता है, परन्तु खानेसे अधिक नशा चंडूमें और उससे भी अधिक नशा सुईमें होता है। अफ़ीमकी लत जिसे एक बार पड़ जाती है वह फिर इसे छोड़ नहीं सकता। वह दूसरा ही व्यक्ति हो जाता है। झूठ बोलना या चोरी करना (विशेष कर अफ़ीम पानेके लिए) उसके लिए साधारण-सी बात हो जाती है। इसलिए अफ़ीमसे दूर ही रहना चाहिए। अब डाक्टर लोग भी अफीमके बदले यथासंभव दूसरी-दूसरी ओषधियोंसे काम लेते हैं जिसमें अफीमकी लत न पड़ने पावे।

अफीम खाने वालोंको भूख ठीकसे नहीं लगती। उनकी पाचन-शक्ति भी खराब हो जाती है। आदत छुड़ाने की सिर्फ़ एक ही तरकीब है—वह दिन रात किसी दूसरेके क़ाबूमें रहे जो प्रति दिन अफ़ीमकी मात्राको कम करता जाय। जब अफीम खाना एक दम छूट जाय तब भी वह कुछ महीनों तक दूसरेकी निगरानीमें रहे, अन्यथा अफ़ीम खानेकी इच्छा उसे कभी कदाचित् विवश कर देगी।

अभिघात (trauma)—चोट लगने या कट जानेको अभिघात कहते हैं। इससे उत्पन्न हुए विकारोंको अभिघात-विकार कहते हैं। उदाहरणतः यदि चोट लगनेके कारण हाथमें लकवा हो जाय तो उसे अभिघात लकवा (traumatic paralysis) कहेंगे, यदि सर फूट जानेके कारण अपस्मार हो जाय तो उसे अभिघात अपस्मार (traumatic epilepsy) कहेंगे, इत्यादि।

अभिघातके कारण सदा थोड़ा-बहुत मानसिक धक्का लगता है। कुछ समय बाद हलका ज्वर भी चढ़ आता है। छत्तीस घंटेके भीतर जो ज्वर हो आता है उसे अभिघात ज्वर (traumatic fever) कहते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि टूटी-फूटी तन्तुओं और प्रदाह-जनित पदार्थोंके रक्तधारामें धीरे-धीरे सोख लिए जानेके कारण यह ज्वर उत्पन्न होता है।

भारी दुर्घटनाओंके बाद, जैसे रेलगाड़ियोंके लड़ जाने पर, ऐसा मानसिक धक्का लगता है कि कई दिनों तक तबीयत ठीक नहीं रहती, चाहे शरीरको कुछ भी चोट न

लगी हो। इसे अभिघात स्नायु-विकार (traumatic neurosis) कहते हैं।

अभुआना (hysterical fits)—शब्द-सागरके अनुसार हाथ-पैर पटकने और ज़ोरसे सिर हिलाने को जिससे सिर पर भूत आना समझा जाता है, अभुआना कहते हैं। यह शब्द संस्कृत 'आह्वान' से निकला है। बनारस, इलाहाबाद आदि स्थानों में इसे लोग अकसर 'हबुआना' कहते हैं। अभुआना हिस्टीरियाका एक लक्षण है। देखो 'हिस्टीरिया'।

अमृत (elixir)—अमृत वह कल्पित वस्तु है जिसके पीनेसे जीव अमर हो जाता है। आधुनिक विज्ञान को किसी भी वस्तुका पता नहीं है जिसमें अमृतके गुण हों। अब अँग्रेज़ी शब्द elixir (एलिक्सर) मीठा और शराब पड़े किसी भी ऐसे पेय पदार्थके लिए प्रयुक्त होता है जिसमें किसी ओषधि विशेषका सत हो। उदाहरणतः सनायका एलिक्सर (elixir of senna)।

अमोनिया (ammonia)—अमोनिया वस्तुतः एक गैस है जिसकी गंध बड़ी तीखी होती है। यह रंग-रहित है, इसलिए दिखलाई नहीं पड़ती। पानीमें यह खूब घुलती है। गाढ़े घोलको लिकर अमोनिया कहते हैं, और यह दवाखानोंमें बिकती है। बिच्छू या बर्रेके काटने पर अमोनिया लगानेसे बहुत जल्द पीड़ा मिट जाती है। नरम स्थानों पर लगानेके पहले लिकर अमोनियामें उतना ही पानी मिला लेना चाहिए। अमोनियासे बनी ओषधियाँ हृदय-उत्तेजन या पाचन-शक्ति बढ़ानेके लिए दी जाती हैं। सरदी-जुकाममें भी ऐसी वस्तुएँ सूँघी जाती हैं जिनसे अमोनिया गैस निकलती है। अच्छा लगनेके लिये उसमें कोई इत्र (अकसर लैवेंडरका इत्र) मिला दिया जाता है। यही स्मेलिंग साल्ट (smelling salt) है। नौसादर और चूना बराबर-बराबर मिला कर उसमें ज़रा-सा पानी छोड़ने पर भी अमोनिया गैस निकलती है। अमोनियाके घोलमें बहुत कुछ वे ही गुण हैं जो कास्टिक सोडा या कास्टिक पोटाशमें हैं और इसलिए यह बरतन या कपड़ा साफ़ करनेके काममें भी लाई जाती है। इसमें विशेष गुण यह है कि सूखनेके बाद पानी और अमोनिया दोनों उड़ जाते हैं और किसी प्रकारका धब्बा नहीं रह जाता है। खुले बरतनोंमें रखनेसे अमोनियाका घोल फीका पड़ जाता है। इसलिए अमोनियाकी शीशीको अच्छी तरह बन्द रखना चाहिए।

अमोनिया विष है—यदि कोई लिकर अमोनिया पी ले या ज़ोरसे सूँघ ले तो मृत्यु तक हो जा सकती है। अमोनियासे शरीरके भीतर वायु जानेके रास्ते खत (क्षत) हो जाते हैं और सूज आते हैं; इसलिए साँस लेनेमें बड़ा कष्ट होता है। उपचार यह है कि नींबूका रस या सिरका पानीमें मिला कर पीनेको दिया जाय। इससे अमोनिया मर जाती है। इसके बाद दूध या अरारोट या घी पीनेको देना चाहिये। पीड़ा अधिक हो तो डाक्टरको बुलाना चाहिए; वमन (कै) नहीं कराना चाहिए।

अम्ल या तेज़ाब (acid)—तेज़ाबोंमें यह गुण होता है कि उनका स्वाद खट्टा होता है। इसीलिए वे अम्ल कह- लाते हैं। गंधकका तेज़ाब (सलफ्यूरिक ऐसिड, sulphuric acid), नमकका तेज़ाब (हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड, hydrochloric acid) और शोरेका तेज़ाब (नाइट्रिक ऐसिड, nitric acid) ये तीन प्रसिद्ध तेज़ाब हैं। सिरकेका तेज़ाब (ऐसेटिक ऐसिड, acetic acid) नींबूका तेज़ाब (साइट्रिक ऐसिड, citric acid) आदि कई अम्ल वनस्पति-संसारसे उत्पन्न होते हैं।

अम्ल विष हैं— यदि कोई तेज़ तेज़ाब पीले तो मुँह, गला, और आमाशयमें तुरन्त जलन मालूम होती है और पीछे बड़ी पीड़ा होती है। मृत्यु तक हो जा सकती है। तेज़ाब पिये हुए व्यक्तिको बचानेके लिए खड़िया मिट्टी (चॉक), खानेका सोडा, या दीवारसे खुरचा हुआ चूना (वस्तुतः यह खड़िया- कैलसियम कारबोनेट—ही होता है) पानीमें पीसकर पिलाना चाहिए। इससे तेज़ाब मर जाता है। वमन नहीं कराना चाहिए। डाक्टरको यथासंभव शीघ्र बुलाना चाहिए। खड़िया पिलानेके बाद दूध या अरारोट या घी पिलाया जा सकता है। यदि साँस लेनेमें कठिनाई हो तो गरम पानीमें भिगो कर और फिर निचोड़ कर तौलियेसे गला सेंकना चाहिए।

अम्लपित्त (acidity)– इस रोगमें गलेमें खट्टा स्वाद या जलन-सी जान पड़ती है। खट्टे डकार भी आते हैं। यह या तो अम्लाधिक्य या अम्लाल्पतासे उत्पन्न होता है। अजीर्ण शीर्षक लेखमें ये बातें ब्योरेवार समझाई गई हैं और इसकी चिकित्सा भी बतलाई गई है। आयुर्वेद के अनुसार यह पित्तके दोषसे उपन्न होता है। इसीलिए इसका नाम अम्लपित्त पड़ा है।

अगरट (ergot)—गेहूँकी जातिके राई (rye) नामक अनाज पर एक प्रकारकी भुकड़ी (फफूँद) लगती है। उसीके बीजको अरगट (ergot) कहते हैं। यह अत्यंत उपयोगी दवा है। इससे रक्त-वाहिनियोंकी चिकनी मांसपेशियोंका संकोच होता है। इसलिए रक्त-स्रावमें इस दवासे लाभ होता है। प्रसवके बाद यह दवा अकसर दी जाती है जिसमें जमा हुआ खून निकल जाय और ताज़ा खूनका निकलना बंद हो जाय।

अरगट विष है—यदि अधिक अरगट खा लिया जाय, या बराबर ऐसी रोटी खाई जाय जो अरगट नामक भुकड़ी लगे अन्नसे बनी हो तो मृत्यु तक हो सकती है। अधिक अरगट एक बार खा लेनेसे मिचली, सर-दर्द, पेट-झरी, चक्कर, ऐंठन, बेहोशी और अंतमें मृत्यु होती है। धीरे-धीरे बहुत दिनों तक अरगट खानेसे हाथ-पैरमें खुजली जान पड़ती हैं, अकसर झुनझुनी उत्पन्न होती है, फिर वे सुन्न हो जाते है और कभी-कभी तो अँगुलियाँ मर जाती हैं (गैंग्रीन हो जाता है)। कभी-कभी आँखकी रोशनी कम हो जाती है और सुनाई भी कम पड़ता है, दिमाग, कमज़ोर हो जाता है और मिरगीकी तरह बेहोशी आ जाया करती है। मिचली और पेटझरीसे भी बड़ी परेशानी रहती है।

यदि अरगट पड़ी दवा कोई अधिक पी गया हो तो वमन कराना चाहिये। फिर एक खुराक रेंड़ीका तेल देना चाहिए और तेज़ चाय खूब पिलानी चाहिए। रोगीको ठंढ न लगने पाये।

अरारोट (arrowroot)—शीघ्र पचनेके कारण अरारोट रोगियोंके लिये बहुत उपयोगी आहार है। यह प्रायः शुद्ध श्वेतसार (starch) है। इसलिये केवल इसीको खा कर कोई व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता। थोड़ा दूध भी लेना चाहिए। इसे पकानेके लिए दो चम्मच अरारोटको पहले थोड़ेसे पानीमें अच्छी तरह फेंटना या मलना चाहिए। तब इसमें खौलता हुआ दूध, या पानी और दूधका मिश्रण धीरे-धीरे डालना चाहिए और बराबर चलाते रहना चाहिए। पाव भर या सवा पाव दूध (या पानी मिला दूध) काफ़ी होगा। इच्छानुसार मात्रामें चीनी डाली जा सकती है। यदि नीबूका छिलका भी डाल दिया जाय तो इसमें अच्छी सुगंध आ जायगी (छिलका पीछे निकाल कर फेंक दिया जाता है)।

अर्बुद (tumour)—शब्दसागरके अनुसार यह एक रोग है जिसमें एक प्रकारकी गाँठ शरीरमें पड़ जाती है। अर्बुदको रसौली या बतौरी भी कहते हैं। अर्बुद नवीन सेलों (cells) अर्थात् कोष्ठोंके बन जानेसे उत्पन्न होता है। ये सेल उस अंगके सेलोंकी जातिके होते हैं जहाँ अर्बुद बनता है; तो भी इन नवीन सेलोंमें कोई उपयोगिता नहीं होती। उनकी वृद्धि शरीरके माथे होती है। आतशक और तपेदिककी तरह रोगोंमें भी नवीन सेलोंकी अतिवृद्धि होती है, परन्तु ये सेल शरीरके साधारण सेलोंकी तरह नहीं होते और उनके बननेसे शरीरकी रक्षा होती है।

शरीरके किसी भी तंतुमें अर्बुद उत्पन्न हो सकता है और इसलिये अर्बुद अनेक प्रकारके होते हैं। उनके नाम भी इन्हीं तंतुओंके अनुसार पड़ जाते हैं, जैसे वसार्बुद (lipoma or fatty tumour), सूत्रार्बुद (fibromas or fibrous tumour), रक्तार्बुद (angiomas or blood-vessel tumour), नाड्यार्बुद (neuroma or nerve tumour), इत्यादि। मांसार्बुद (sarcoma) का नाम इसलिए पड़ा है कि वह देखनेमें अन्य अर्बुदोंकी तरह ही लगता है। कर्कटार्बुद (carcinoma) का नाम ऐसा इसलिये पड़ा है कि प्रधान अर्बुदमें गौण अर्बुद उत्पन्न हो जाते हैं जो देखनेमें केकड़ेके पंजोंकी तरह लगते हैं। यह वस्तुतः कैनसर रोग है।

जॉन केपलर (१५७१-१६३०)

[ले०—श्री रामचन्द्र तिवारी]

केपलर गेलीलियो (१५६४-१६४२) के जन्मके पश्चात् उत्पन्न हुआ और उससे पहिले ही अपनी संसार-यात्रा समाप्त की। इन दोनों समकालीन विद्वानोंके मिलने का अवसर कभी न आया। इनकी चिट्ठी-पत्री देखनेसे पता चलता है कि अबोध मनुष्योंके बीचमें दोनों महापुरुष एक दूसरेको समझते और परस्पर आदर-भाव रखते थे। यह वह समय था जब विद्वानोंमें परस्पर सहन-शीलता तथा प्रशंसा-भावका प्रचार न था। केपलरका मस्तिष्क अत्यन्त कोमल तथा संस्कृत था इसलिये उसने खुले दिलसे अपने समकालीन तथा प्राचीन विद्वानोंकी योग्यताको सराहा।

केपलरका व्यक्तित्व गूढ़ व्यक्तित्व था। उसकी पुस्तकों की रचना-क्रमके अनुसार देखनेसे उसके व्यक्तित्वके विकास का पता चलता है। पहिली पुस्तकोंमें रहस्यवादिताको प्रधानता है। यह रहस्यवादिता वैज्ञानिकताके साथ विशेष मेल नहीं खाती। पीछेके लेखोंसे जान पड़ता है कि उसमें एक महान् जिज्ञासा उत्पन्न हो गई है और वह ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उतावला हो गया है। यह दृष्टि-कोण दार्शनिक दृष्टिकोणके साथ नहीं खपता। इसके आगे-का जीवन उसी जिज्ञासा-द्वारा परिचलित क्रिया-शीलताका परिणाम है।

केपलरने वस्तुओंमें प्रकाशके मार्ग तथा कोपरनिकसकी ग्रहयोजना-सम्बन्धी विचारोंमें बहुत अनुसन्धान किया है। प्रथम क्षेत्रमें उसने ज्यामिति-प्रकाश-शास्त्रकी नींव डाली अर्थात् प्रकाशके सरल-रेखा-चलन, परावर्तन, तथा बलनके विषयमें प्रारम्भिक खोजें कीं। दूसरे क्षेत्रमें उसने भविष्यके सारे आकाशीय-गति शास्त्रके आधार-भूत तीन ग्रह-नियमों का पता लगाया। उन दिनों एक ओर तो जन-साधारणको धर्माधिकारियोंकी ओर पृथ्वीको अपनी कक्षा पर घूमते हुये सोचनेकी भी आज्ञा न थी और दूसरी ओर केपलरने केवल सूर्यके चारों ओर पृथ्वीके सही मार्गका ही पता लगा लिया था, वरन् उसने अन्य ग्रहोंके मार्ग अपनी-अपनी कक्षों पर उनकी चलन-रीति और उनके कालोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी जान लिया था।

केपलरके तीन प्रसिद्ध नियम ये हैं।

१—ग्रहोंके मार्ग दीर्घवृत हैं, जिसका एक रश्मि-केन्द्र (नाभि) सूर्य है।

२—सूर्यसे ग्रहों तक खचित रेखा समान समयोंमें क्षेत्रफलों पर घूमती है।

३—विभिन्न ग्रहोंके चक्र-कालोंका वर्ग उसी अनुपात में है जिसमें कि सूर्यसे उसकी औसत दूरीके घन।

ज्ञानका यह संस्कार केपलरने टाइको ब्राहेके सुन्दर निरीक्षणोंकी सहायतासे किया। उसने जितना परिश्रम और मनन इस पर व्यय किया उससे पहिले उतना कभी नहीं किया गया था और पीछे भी बहुत दिनों तक नहीं देखा गया। सत्तर वर्ष तक इस ज्ञानमें और वृद्धि नहीं हुई। जब केपलरके कार्य्यके आधार पर न्यूटनने ग्रहोंकी आकर्षण-शक्तिका पता लगाया तभी मनुष्यने अज्ञात्की ओर एक बुद्धिगम्य महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया।

गेलीलियोको अपने ज्ञानके कारण जो महान् कष्ट उठाना पड़ा। केपलर उससे बचा रहा। लूथरके कार्यने उसकी रक्षाकी। वह प्रॉटेस्टैंट था।

परन्तु प्राटेस्टैंट होनेके कारण ही उसे पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा उसका जीवन शन्ति-पूर्वक न बीता। जब वह उनचास वर्षका था यूरोप में तीस वर्षीय युद्ध प्रारम्भ हो गया। दुःख और दरिद्रता उसके जीवन पर छा गई।

केपलरका जन्म २७ दिसम्बर १५७१ को बुर्टेम्बर्गके वाइल नगरमें एक उच्च परिवारमें हुआ। वह एक बेमेल विवाहका सबसे बड़ा पुत्र था। उसका पिता हेनरी केपलर सिपाही था। वह विशेष आगा-पीछा न सोचता था। उसकी माँ कैथराइन भी विशेष शिक्षित और संस्कृत न थी। अपनी माता-पिताके अनाचरणके कारण केपलरको

बालपनेमें काफी दुःख उठाना पड़ा। जब यह चार वर्षका था तो उसके चेचक निकली जिसने उसके हाथ और आँखें सदाके लिये खराब कर दीं। उसका पिता सांसारिक असफलतासे कारण सन् १५८६ में अपने परिवारको छोड़ कर भाग गया।

१५७७ में उसका पाठशाला जाना प्रारम्भ हुआ। परंतु पारिवारिक दरिद्रताके कारण उसे खेत पर भी काम करना पड़ता था। उसको मानसिक रुचि धर्म-शिक्षाकी ओर जान पड़ी। शारीरिक दुर्बलताके कारण जब वह अन्य व्यवसायों के अयोग्य समझा गया तो उसे ट्यूबिनजनके विश्वविद्यालयमें पढ़नेकी आज्ञा मिल गई। सोलहवें वर्षमें वह विद्यालयमें प्रविष्ट हुआ और अपनी योग्यतासे छात्रवृत्ति पाई। सौभाग्यसे उसे मेस्टालिन जैसा योग्य गणित अध्यापक मिला। कोपरनिकसकी खोजको पूर्णतया प्रकाश रूपसे अपनानेका साहस ट्यूबिनजनमें भी किसीको न था। मेस्टालिनने केपलरको इन खोजोंका भी ज्ञान प्राप्त कराया। दो वर्षमें उसने विशेष योग्यतासे उपाधि प्राप्तकी। मेस्टालिन आजीवन उसका मित्र बना रहा।

अब उसने धर्मशास्त्रका अध्ययन प्रारम्भ किया। परन्तु इस अध्ययनको पूर्ण करनेसे पहिले ही उसे ग्रात्सकी धार्मिक पाठशालामें गणित-अध्यापकका स्थान मिल गया और वह वहाँ चला गया।

२३ वर्षकी अवस्थामें उसने अपना कार्य प्रारम्भ किया, केपलरका कार्य ग्रात्समें फलित ज्योतिषसे सम्बन्धित था, इसलिये उसने टोलमी तथा कार्डनके सिद्धान्तोंका अध्ययन कर उन पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उसे वहाँ प्रति वर्ष एक पत्रा बनाना पड़ता था जिसमें मौसम तथा राजनैतिक घटनाओंकी भविष्य-वाणी करनी होती थी। फलित ज्योतिष इस प्रकार उसके जीवनका साधन रहा। परन्तु इसकी सचाई पर वह विश्वास न कर सका। उसने इसकी सत्यता का निर्णय करनेके लिये अपने जीवनकी घटनाओंमें ग्रहोंकी चालका प्रभाव खोजना प्रारम्भ किया। उसने अपने जीवन के प्रति वर्षकी घटनाओंका एक विवरण दिया है। वह फलित ज्योतिष तथा अपनी जीवनकी घटनाओंमें कोई संबंध न बूझ सका। इसको तथा अपनी जीविकाके साधनको लक्ष्यमें रखकर उसने लिखा है कि फलित ज्योतिष गणित ज्योतिषकी मूर्खा तथा नीच कन्या है, परन्तु उसकी सहायता बिना बेचारी बुद्धिमती माँ भूखों मर जाती।

ग्रात्समें केपलरने ग्रह-योजनाके नियमोंकी खोज प्रारंभ की। उसने यहाँ बारबारा नामक एक धनाढ्य स्त्री से २७ अप्रैल १५६७ में विवाह कर लिया। जब ग्राण्ड ड्यूक फर्डीनेंड सिंहासन पर बैठा तो प्रोटेस्टेंट चर्चों तथा स्कूलों के सभी कार्य-कर्त्ताओंको देशसे निकाल दिया गया और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। केवल केपलरको ही वापस आनेकी आज्ञा मिली। उसकी योग्यताकी प्रतिष्ठाकी जाती थी। शीघ्र ही यह पता लग गया कि ड्यूक उससे रोमन कैथोलिक बन जानेकी इच्छा रखते हैं। उसकी आत्मा इसके विरुद्ध थी। उसने यह भेद प्रकाशित कर दिया इसलिये सब प्रकारके नियंत्रण उसके विरुद्ध लगाये जाने लगे। इस दमनके कालमें उसके दो बालक मर गये थे। सन् १६०० में उसे कारागार तथा महान् दुर्गतिका भय दिखाया गया।

इन्हीं दिनों टाइको ब्राहेने प्रेगकी नई वेधशालामें उसे निमंत्रित किया। केपलरको ग्रात्सकी कठिनाइयोंसे छुट्टी मिली और टाइकोके सहायकके रूपमें प्रेगमें काम करने लगा। २५ अक्टूबर १६०१ को टाइकोकी अप्रत्याशित मृत्यु हो गई। अब केपलरके सम्मुख सफल जीवन दिखाई देने लगा। सम्राट् रोडोल्फ द्वितीयने उसे तत्क्षण ५०० फ़्लोरिन वेतनकर राज्य-गणितज्ञ नियुक्त किया। टाइकोको १५०० फ्लोरिन मिलते थे। केपलर इस पदकी प्राप्तिसे प्रसन्न हुआ। टाइकोके निरीक्षणोंका अमूल भण्डार उसके हाथ आया और ज्योतिष-सम्बन्धी रोडोल्फाइन तालिकाको पूर्ण करनेका कठिन पर मनचाहा काम उसे सौंपा गया। इस तालिकाकी सहायतासे भविष्यमें ग्रहोंके स्थान सही-सही जाने जा सकते थे।

केपलरने ग्रहोंकी चालकी समस्याका अध्ययन अत्यंत लग्नके साथ किया। उसे शीघ्र पता लग गया कि अब तक प्रचलित ग्रहोंके एक स्थाई गतिसे वृत्याकार मार्ग पर घूमनेके सिद्धान्तसे काम न चलेगा। इस विषयमें यहाँ प्रगति बहुत कठिन थी। क्योंकि ग्रहोंकी चाल घूमती पृथ्वीसे देखी जाती थी। पृथ्वीके शुद्ध मार्ग तथा चलन-रीतिसे वह

उतना ही अनभिज्ञ था जितना कि अन्य ग्रहोंकी इन बातोंसे।

केपलरने छः वर्ष अकेले मंगलके मार्ग पर अथक परिश्रम किया। उसने सूर्यके चारों ओर मंगल तथा पृथ्वी के लिये सब प्रकारके विकेन्द्रीय मार्गोंको जाँचा। इस क्रिया में मार्गोंका व्यास अटकलसे बारम्बार बदलना पड़ता था। जब ऐसे सफलता न हुई तो विभिन्न प्रकारके विषम चलन एक दूसरेके बाद जाँचे गये। इनमेंसे एक मार्ग संतोषजनक पाया गया। वह यह था जिसमें सूर्य और ग्रहको मिलाने वाली रेखा समान समयमें समान तल पार करती थी। इस प्रकार दूसरे नियमका मूलतत्व हाथ आया। परन्तु इस खोजकी प्रसन्नता अधिक समय तक न रह पाई। टाइकोके निरीक्षणों-द्वारा प्राप्त यथार्थतासे यह अब तक सबसे अधिक मिलान था परन्तु यह मिलान एक दम सही न था। थोड़ा अन्तर रह ही जाता था। केपलर अधूरी सफलतासे संतुष्ट होने वाला जीव न था।

गणितके फलों तथा निरीक्षण-द्वारा प्राप्त यथार्थता का अंतर किस प्रकार जाँचा जाना चाहिये विज्ञानके इतिहासमें इसका पहिला बड़ा उदाहरण भी उसी ने प्रस्तुत किया। वैसे अन्तर अधिक न था पर मुख्य बात यह थी कि वह टाइकोके निरीक्षणकी सम्भाव्य अशुद्धिसे अधिक था। ऐसी दशामें यही समझा जा सकता है कि ग्रह-योजना में कोई और अज्ञात तत्व है। केपलरने ग्रहोंकी कक्षाके रूपमें इस नवीन तत्वकी खोज की। अब तक आकाशीय पिण्डोंका मार्ग साधारणतया वृत ही समझा गया था। हाँ, पुच्छल तारोंके यह जान पड़ता था कि दूसरे मार्ग भी सम्भव हैं। केपलरने विभिन्न गोलाइयोंके सब प्रकारके बन्द मार्ग एक-एक करके मंगलके लिये जाँचे। दीर्घ वृत्त उस समय अन्य सम्भव मार्गोंकी भाँति था। सूर्यको एक नाभि मानकर दीर्घ वृत कक्ष ही टाइकोके निरीक्षणसे ठीक मिलान हो पाई। यह मिलान उस समय पूर्ण हो गया जब त्रिज्याके समान तलोंका नियम भी गणितमें सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार छः वर्षमें मंगलके मार्गकी समस्या हल हुई और प्रथम दो नियम ज्ञात हो गये। इसका पूरा विवरण १६०९ में उसकी "सच्चे कारणों पर स्थिति नवीन ज्योतिष" में छपा।

१६०४ में उसने नोवा ओफिन्की (एक तारा) को देखा और इसका वृतांत १६०६ में "दी स्टेला नोवा" नामसे प्रकाशित किया। इस पुस्तकमें तोले भर वैज्ञानिक सूचना के साथ-साथ मन भर व्यर्थकी बातें हैं। यह पुस्तक उस समयकी साधारण जनताको लक्ष्यमें रख कर लिखी गई है। बृहस्पति, शनि और मंगलको संक्राति (conjunction) के फलका वर्णन भी उसने इसीलिये बड़े विस्तार से किया है। उसने आवश्यकताको अंधविश्वास तथा विज्ञानमें मेल करनेका कारण बनाया। वह भावुक था। एक प्रकारके अंध-विश्वासका ठीक विरोध करनेके पश्चात् वह स्वयम् ही अत्युक्तियोंमे लग जाता था। नाक्षत्रिक ज्योतिषके विषयमें उसके विचार अत्यन्त प्राचीन थे। गियोरडैनो ब्रुनोके विचारोंसे वह घबड़ाता था। गियोरडैनो के विचार (प्रत्येक तारेको एक संसार और आकाशमें महान् दूरियों पर बिखरे हुये मावन) उसने इंङ्गलैंड-यात्राके समय कदाचित् डिग्सकी पुस्तक "पर फोट डिस्क्रिपशन आफ दी सेलेशोल आर्बस" (१५७६) से लिये थे। अधिक लिखने वाला कोई लेखक सदा सुन्दर पुस्तकें नहीं लिख सकता। केपलर अपनी पुस्तकोंको एक नियत समयमें समाप्त करनेका निश्चय कर लिखना प्रारम्भ करता था। इसलिये उसे जल्दी करनी पड़ती थी। इसी कारण उसकी कुछ पुस्तक सुन्दर बन पड़ी हैं पर शेष बहुत ही हल्की हैं।

तारोंके निरीक्षणके लिये ज्यामिति-प्रकाश-शास्त्रका अध्ययन आवश्यक था क्योंकि आकाशीय बलनके शुद्ध ज्ञान पर ही ज्योतिषके निरीक्षणोंकी शुद्धता निर्भर है। केपलर ने इसीलिये प्रकाशके धर्म पर भी खोज की। वह भौतिक वैज्ञानिक न था। प्रकाश पर प्रयोगके साधन भी उसके पास न थे और न आधार-भूत निरीक्षण सामग्री प्राप्त करनेकी कोई विशेष सुविधा थी। अपनी इन सीमाओंका ध्यान केपलरको अवश्य रहा होगा।

उसने गेलीलियोके दूर-दर्शकमें प्रकाश-रश्मियोंके मार्गका अध्ययन किया। केपलर दूरदर्शकको नवीन वस्तु समझता जान पड़ता है परन्तु वह उसके पहिले हालैंड और इंगलैंडमें ज्ञात था। केपलरने प्रकाश-रश्मियोंके साधारण धर्मका अध्ययन किया। उसने अपने अध्ययन पुस्तक रूपमें छापे हैं। पुस्तकमें केवल पिनहोल कैमेरामें

प्रतिबिम्ब कैसे बनता है यही नहीं समझाया गया, वरन् सरल-रेखा-चलनमें प्रकाशकी शक्ति दूरीके वर्गके उल्टे अनुपातमें घटनेका नियम भी प्रथम बार दिया है। दर्पणमें प्रतिबिम्बका शुद्ध गणित, लेखमें बलनका सिद्धान्त, नेत्रमें प्रकाशका मार्ग, दृष्टि-सम्बन्धी अन्य बातें तथा दोनों नेत्रों से बेस एक वस्तु दीखनेका सही सिद्धान्त इसकी पुस्तकमें दिया गया है। केपलरके मोटे सिद्धान्तका प्रयोग किया है फिर भी सम्पूर्ण परावर्त्तन उसकी दृष्टिसे बच न पाया। अन्तमें उसने दो उन्नोदर लेंसोके दूरदर्शकका सिद्धान्त दिया है। आज भी उसी प्रकारके दूरदर्शक वेधनके कार्य में आते हैं। वर्तमान दूरदर्शकके वास्तुलेंसका वर्णन भी दिया गया है।

वस्तुओंकी वलन-सूचक स्थायी संख्या (refractive index) को केपलर उनके घनत्व (density) के अनुपातमें समझता था। न्यूटन उसे उनकी प्रकाश विश्लेषण-शक्ति (dispersive power) के अनुपातमें मानता था। आगेकी अधिक खोजसे ये दोनों विचार अशुद्ध प्रमाणित हुये।

केपलरने बलनके लिये

अ-ब = क अ सेक ब

गुर बनाया। जिसमें

अ—वस्तु पर प्रकाश पड़नेका कोण है।

ब—बलन कोण है।

क—स्थायी है

यदि (१ = क)$^{-१}$ = न (जहाँ न बलन-सूचक स्थायी अंक है) हो तो इसका फल छोटे बलनके नियम (साइन अ = न साइन ब) के समान ही आता है जल और वायुके लिये केपलरका स्थायी क कल्पित संख्याओं पर निर्भर है। उसने अ को ८०° और ब को ५०° माना। इस कल्पनामें २° से अधिकको अशुद्धि है। यह गुर केवल अटकल पर निर्भर है, भौतिक प्रमाण इसके पक्षमें नहीं। यह किरणोंको उलटनेकी साधारण क्रिया द्वारा भी समर्थित नहीं।

बलनकी समस्याके अध्ययनमें सबसे बड़ी कठिनता वायुमंडलके विषयमें अज्ञान था। अब तक वायुमंडल एक रस और लगभग २½ मील ऊँचा समझा जाता था। ब्राहेने सूर्य, चन्द्र तथा ताराओंके बलनकी तालिकायें तैयारकी थी। परन्तु केपलरके कार्यके लिये वह पर्याप्त न थी। इसलिये उसने स्वयं निरीक्षण प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप उसे अपनी कठिनता दूर करनेकी सामग्री मिल गई और उसने ब्राहेसे अच्छी तालिकायें प्रस्तुत कर लीं। प्रकाश शास्त्र पर केपलरकी खोज वास्तवमें ज्योतिषकी ही उन्नति है, प्रकाश-शास्त्रकी उतनी नहीं।

केपलरने यद्यपि विज्ञान पर अथक परिश्रम किया तथापि वह अपनी भावुकताको पूर्णतया जीत न पाया था। हैरियटने जब चौदह वस्तुओंके लिये ३०° पर प्रकाश डाल कर बलनकी तालिका तैयारकी और उसके साथ सापेक्षिक घनत्व देकर यह प्रमाणित किया कि बलन घनत्वके अनुपातमें नहीं है तो केपलरने अपनी भावुकताके वश इन निरीक्षणोंके विरुद्ध तर्क किया। इस प्रकार वैज्ञानिक जिज्ञासा तथा भावुकताने मिलकर उसके चरित्रको जटिल बना दिया है जिससे उसने एक ओर तो महत्वशाली वैज्ञानिक अनुसंधान किया और दूसरी ओर साधारण अंधविश्वासोंका बलपूर्वक समर्थन किया।

इसी बीचमें प्रेग उसके लिये असह्य हो चला। उसके पास खानेको न था। परन्तु सम्राट् रोडोल्फ द्वितीय उसे भागने न देता था। उसकी स्त्री तथा पुत्र भी मर गये। अब उसने अपनी जन्म-भूमिकी ओर मुँह फेरा। स्टूगार्ट-का दरबार उसे विश्वविद्यालयमें रखना चाहता था परन्तु वह अपने मस्तिष्ककी स्वतंत्रताके कारण लूथरके अनुयायिओंके लिये भी आपत्तिजनक था। वह सन् १६१२ में लिंप्सके स्कूलमें गया और चौदह वर्ष तक वहा रहा। यहाँ उसने दूसरा विवाह किया। यहाँ भी उसे चैन न मिला। उसकी मां पर लोगोंने डाइन होनेका अभियोग लगाया। केपलर घर गया। उसकी माँ तेरह मास कारागार में रहनेके पश्चात् उसके कठोर परिश्रमके पश्चात् मुक्ति प्राप्त कर सकी।

१६१३ में अगूरोंकी फ़सल बहुत अच्छी हुई और यह आवश्यक्ता पड़ी कि विभिन्न बर्तनोंमें आने वाले तरलका घनफल मालूम किया जाय। केपलरने यह काम अपने हाथमें लिया। इस विषयमें उसका लेख अत्यंत महत्वपूर्ण

है और केपलरको उन महा पुरुषोंमें स्थान देता है जिनके कार्य-से चलन-कलन (infinitesimal calculus) बना।

यहाँ उसने रोडोल्फाइन तालिका पूर्णकी और अपनी बड़ी पुस्तक (हारमोसिस मुंडो) पाँच भागोंमें लिखी। इस पुस्तकका पाँचवाँ भाग ग्रह-बलनके तीसरे नियमके कारण अमर है। केपलर ने इसे कोपरनिकस और टाइकोके निरीक्षणोंमें ढूँडा। उसके कथनानुसार यह उसके १७ वर्षोंका फल है। केपलरको ज्ञात था कि वह अपने समयसे एक शताब्दी आगे है। हारमोनिससके अन्य भागोंमें ज्योतिष, संगीत और उसके नियम, मानव-जीवन तथा ग्रहोंकी चालोंका विवरण है। केपलरने सदा निष्पक्ष मस्तिष्क और बुद्धिसे जीवके स्वभाव तथा प्रकृतिसे अभिन्न महान् संसारीय आत्माको खोजनेकी चेष्टा की है।

केपलर ने दिखाया कि सब ग्रहोंके कक्षोंके तल सूर्यके केन्द्रमें होकर गुज़रते हैं और सूर्य ही इस सब ग्रह-योजनाको घुमाने वाला है। यह कार्य उसे भौतिक ज्योतिषके पिताका पद दे सकता है। कल शास्त्रकी उस समय विशेष उन्नति न होनेके कारण उसने ग्रहोंकी चाल तथा उनकी दूरियोंकी तुलना संगीतके स्वर-अन्तरोंसे की और भवरोंके सिद्धांत से ग्रहोंकी चालको समझनेकी चेष्टा-की। इन कल्पनाओंमें यद्यपि कोई तथ्य न था तथापि केपलर इन्हें महत्वपूर्ण मानता था।

लिंप्समें केपलरके अंतिम दिन युद्धके कारण दुःख पूर्ण हो गये। उसके पाँच बालक मर गये और वेतन एक दम बन्द हो गया। फर्डीनेंड द्वितीयने उसके मित्र वाले स्टाइनके १२०० गिल्डर उसे दे दिये और वह वाले-स्टाइनकी रक्षामें साँगा चला गया। एक बार केपलरने वालेस्टाइनको ज्योतिषका एक महत्वपूर्ण फल दिया था। इसलिये वालेस्टाइन उसे मानता था। सांगामें अपेक्षाकृत शांति थी। उसका वेतन उसे न मिला। जब वालेस्टाइन नौकरीसे पृथक कर दिया गया तो वह वेतनके लिये व्यक्ति प्रार्थना करने रेजेन्सवर्ग पर राइशनागको चला। घोड़ेकी पीठ पर लम्बी यात्राकी थकान वह सहन न कर सका। वहाँ पहुँच कर वह बुरो तरह बीमार पड़ा और १५००० नम्बर १६३० को अपनी इहलोक-लीला समाप्त की। किलेकी दीवारके पास गिर्जेमें गोलाबारीके कारण उसकी क़ब्र ऐसी दबी कि अब उसका पाया जाना असम्भव हो गया।

चन्द्र-दर्शन

(ले०—स्वामी सुदर्शनाचार्यजी)

प्रत्येक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको चन्द्रमाका उदय हुआ करता है। यद्यपि चन्द्रमाका उदय और-और दिन भी होता है किन्तु इस दिनका उदय कुछ महत्व विशिष्ट है। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं।

१— अमावास्या (अमावस) का नाम दर्श है क्योंकि इस दिन सूर्य और चन्द्रमा एकराशि पर रहते हैं। सूर्यके समीप कोई भी ग्रह आ जाता है तो वह अदृश्य हो जाता है। इसी नियमसे चन्द्रमा भी अमावास्या के दिन दिख-लाई नहीं देता। कुछ कालके लिये अदृश्य चन्द्रमाका दर्शन शुक्लपक्षीकी द्वितीयाको हुआ करता है। अब भी हिन्दू जनता शुक्ल-पक्षकी द्वितीयाके दिन चन्द्रमाका दर्शन करती है और दर्शन करके आपसमें यथायोग्य अभिवादन आशीर्वाद आदि करती है। पुराणान्तरमें भी इस तिथिको शुन्द्रदर्शन करनेसे शुभ फलकी प्राप्तिका उल्लेख है।

२ – मुस्लिम जनता चन्द्रमाके दर्शनसे अगले दिनसे ही अपने महीनेका प्रारम्भ मानते हैं।

कभी-कभी चन्द्रमाके उदय जाननेमें गड़बड़ी हो जाती है। प्रायः लोग इस प्रचलित बातके आधार पर चन्द्रमाके उदयका अनुमान लगा लेते हैं कि जिस दिन शुक्ला प्रतिपदा (पड़वा) थोड़ी होगी और संध्याकालसे पूर्व द्वितीया (दोयज) आ जायगी उसी दिन चन्द्र-दर्शन होता है। यद्यपि यह अनुमान अधिकांशतः सत्य होता है किन्तु कभी-कभी मिथ्या भी हो जाता है।

उदाहरण— हमारी सुदर्शनजंत्री जो दिल्लीको अक्ष-

प्रभा ※ ०६ । ३० पर संस्कार देकर बनाई जाती है, उसमें भाद्रपदा शुक्ला प्रतिपदा बुधवार दिल्लीके स्थानीय समय (local time) के अनुसार २२ घड़ी १४ पल है। जो दोपहर को २ बज कर १४ मिनट तक है इसी दिन (२६ अगस्त सन् ३८) सूर्यका उदय प्रातः ५ बज कर ३८ मिनिट पर है और सूर्यका अस्त सायंकाल ६ बज कर २१ मिनट पर है। दिनमान ३१ घड़ी ४७ पल है।

इस दिन दोपहरके २ बज कर १४ मिनटसे द्वितीया आगई। अतः इस दिन चन्द्रमाका उदय हो जाना चाहिये था किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत भाद्रपद शुक्ला द्वितीया शुक्रवार १८ घड़ी ०० पल जो मध्याह्नके १२ बज कर ५३ मिनट तक है। इसी दिन २७ अगस्त सन् ३८ को चन्द्रमाका उदय हुआ।

अब चन्द्रमाके उदय जाननेका गणित साध्य एक सरल क्रम लिखते हैं जिस क्रमसे चन्द्रमाका उदय निभ्रांत तौर पर जाना जा सके।

चन्द्र-दर्शन चक्र

		मेष १	वृष २	मिथुन ३	कर्क ४	सिंह ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धन ९	मकर १०	कुम्भ ११	मीन १२
		राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु	राहु
मेष १	सूर्य	४३	५४	५५	५२	५६	५५	५४	५३	५२	५५	५३	५२
वृष २	सूर्य	४८	५१	५४	५८	५७	५७	५५	५३	५०	४६	४७	४७
मिथुन ३	सूर्य	४४	४७	५६	५७	५९	६३	६३	६१	५६	५१	४९	४४
कर्क ४	सूर्य	४८	४९	५३	६०	६४	७३	७७	७७	७२	६६	६२	५२
सिंह ५	सूर्य	६४	५८	५९	६४	७१	८२	८९	९४	९३	८२	८२	७२
कन्या ६	सूर्य	७९	६९	६५	६५	६८	७८	८८	९७	१०२	१००	९७	८९
तुला ७	सूर्य	८४	७०	६६	६२	६४	६६	७५	८४	८२	९७	९७	९२
वृश्चिक ८	सूर्य	७८	७१	६३	५७	५४	५४	५७	६४	७३	७८	८२	६६
धन ९	सूर्य	६६	६३	५७	५२	४८	४५	४२	४८	५३	५९	६३	६६
मकर १०	सूर्य	५८	५८	५६	५३	५०	४७	४६	४६	४८	५१	५५	५६
कुंभ ११	सूर्य	५३	५६	५५	५४	५३	५२	५१	४९	५०	५१	५२	५३
मीन १२	सूर्य	५५	५३	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५३	५३	५४	५४

※ अक्षप्रभाको पलभा भी कहते हैं इसी पलभाके

जिस मासकी शुक्ला प्रतिपदासे यह जानना हो कि इस दिन चन्द्र दर्शन होगा या नहीं तब उस दिन देखो कि सूर्य और राहु किस-किस राशि पर हैं। ज्यौतिषमें प्रायः राशियोंके और लग्नोंके अङ्क (हिन्दसे) लिखे जाते हैं। जैसे मेषराशिका या मेशलग्नका (१) इसी तरह और राशियोंके नक्शेसे समझियेगा।

मेष १। वृष—२। मिथुन—३। कर्क—४। सिंह—५। कन्या - ६। तुला - ७। वृश्चिक—८। धन—९। मकर—१०। कुम्भ—११ मीन—१२

इस प्रकार बारह राशियोंके यथाक्रम एकसे लेकर बारह अङ्क होते हैं और सभी ग्रह इन्हीं राशियोंके अंकों पर पत्रे या जंत्रोमें लिखे रहते हैं। ग्रहोंके नामके आदिका एक-एक अक्षर लिखा रहता है। जैसे सूर्य या रविका सू० या र० इत्यादि। पीछे जो चन्द्र-दर्शन-चक्र आया है उसमें ऊपरकी पंक्ति राहुकी है और तिरछी पंक्ति सूर्यकी है। राहुकी राशिके नोचे और सूर्यकी राशिके सामनेके कोठेमें जो अङ्क लिखे हों उन्हें ग्रहण करो फिर अमावस्याके जितने घड़ी पल हो उनको ६० में घटाओ जो शेष हो उसे प्रतिपदाका दिनमानमें जोड़ो। इस प्रकार प्राप्ति घड़ियाँ यदि चन्द्रदर्शन-चक्रसे प्राप्ति घड़ियोंसे अधिक होंगी तो शुक्ला प्रतिपदाके दिन चन्द्रमा दिखाई देगा और यदि घड़ियाँ कम होंगी तो चन्द्रमा उस दिन दिखलाई न दे कर अगले दिन द्वितीयामें दिखाई देगा। सूर्य और राहु की राशि, अमावास्याके घड़ी पल, और दिनमान, प्रायः सभी पञ्चाङ्ग और जंत्रियोंमें लिखे रहते हैं।

यह तो हमने सिद्धान्त लिखा है अब इसका एक उदाहरण भी दिखाते हैं।

संवत् ११९७ आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा शनिवार, ६ जुलाई सन् ४१ को चन्द्र दर्शन होगा या नहीं। इस पर पूर्व सिद्धान्तानुसार विचार करना है। इस दिन सुदर्शन जंत्रीमें दिनमान ३४ घड़ी और २० पल लिखा है। इससे पहिले दिन शुक्रवार अमावस्याके दिन २७ घड़ी और २१ पल लिखे हैं। सूर्य मिथुन (३) राशि पर है और राहु कन्या (६) राशि पर है। इन दोनोंकी राशियोंके सामनेके कोठेमें चन्द्र-दर्शन चक्रसे ६३ अंक लिये है अब अमावस्याके घड़ी पलोंको ६० में घटाना है। ज्योतिषमें ६० घड़ियोंका एक दिन रात है। घड़ियोंके ऊपर ५९ और पलोंके ऊपर ६० लिखे जाते हैं। पलोंको घटानेके लिये ६० घड़ीमेंसे एक घड़ोली तो ५९ घड़ी रह गई और एक घड़ीके ६० पल हो गये।

५९—७० में से २७-२१ को घटाया तो ३२। ३९
२७ — २१　शेष रहे। इन्हें दिनमान ३४। २०
३२—३५　　३२। ४९
　　६७। ५९

में जोड़ा तो ६६ घड़ी और ५९ पल हुये।

पहिले चन्द्र-दर्शन चक्रसे आयी हुई घड़ियोंके ६३ अंक हैं और अब यहाँ ६६ अंक घड़ियोंके आये हैं। अतः ये अंक पूर्वके अंकोंसे अधिक होनेके कारण फल निकला कि आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा शनिवार, ६ जुलाई सन ४१ को ही चन्द्र-दर्शन होगा।

द्वितीयाका चन्द्रमा धनुषको आकृति जैसा होता है। उसका कभी एक शृंग दक्षिणकी ओर, और कभी एक शृंग उत्तरको ओर कुछ ऊँचा उठा हुआ रहता है। एवं कभी दोनों शृङ्ग बराबर रहते हैं। इन बातोंका ज्ञान भी ज्योतिषके द्वारा सरलतासे हो जाता है—

शुक्ला द्वितीयाको यदि मेष या मीन राशिमें चन्द्रमाका उदय होगा तो उसका दक्षिण शृङ्ग उन्नत रहेगा। मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक धन और मकर राशियोंमें चन्द्रमाका उदय होनेसे उसका शृङ्ग उत्तर दिशा को ओर ऊँचा रहता है। वृष या कुंभ राशिमें उदय होगा तो दोनों शृङ्ग बराबर रहेंगे।

दक्षिण शृङ्ग ऊँचा होनेसे उस महीनेमें अशुभ फल, उत्तर शृङ्ग ऊँचा होनेसे शुभफल और दोनों शृङ्ग समान रहनेसे सामान्य फल होता है।

अब प्रसङ्ग प्राप्त कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाके उदयका समय और शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके अस्तका समय जाननेका सरल सिद्धान्त लिखते हैं।

वर्तमान तिथिको ❀ रात्रिमान (दिनमानको ६० में

❀ पत्रे या जंत्रीमें ज्योतिष-सिद्धान्तके अनुसार तिथियोंके अंक लिखे रहते हैं।

तिथिके नाम - अंक
प्रतिपदा—१।

घटानेसे शेष रात्रिमान होता है) की घड़ियोंसे गुणा करना। कृष्णपक्ष हो तो २ घटाना और शुक्लपक्ष हो तो २ मिलाना फिर प्राप्त संख्यामें १५ का भाग देना जो लब्धि हो उतनी ही घड़ी पर कृष्णपक्षमें रात्रिके समय चन्द्रमाका उदय और शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका अस्त होगा।

कल्पित उदाहरण—

कृष्णपक्षकी षष्ठी तिथिको किस समय चन्द्रमा निकलेगा यह जानना है तब ६ को रात्रिमानकी ३१ घड़ियोंसे गुणा किया तो १८६ हुये। इनमें २ घटायें तो १८४ हुये। १५ का भाग दिया तो १२ लब्धि और ४ शेष रहे। यह फल निकला कि १२ घड़ी ४ पल रात्रि व्यतीत होने पर चन्द्रमा का उदय होगा।

शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको किस समय चन्द्रमाका अस्त होगा यह जानना है तब ६ को ३१ से गुणा करें तो १८६ हुए। इनमें २ मिलायें तो १८८ हुये। १५ का भाग दिया तो १२ लब्धि और ८ शेष रहे। यहाँ यह फल निकला कि १२ घड़ी ८ पल रात्रि व्यतीत होने पर चंद्रमा का अस्त होगा।

घड़ियोंके घंटे बनानेका क्रम यह है कि घड़ीके अंकोंको दूना कर ५ का भाग देनेसे लब्धि मिनट होते हैं।

जैसे यहाँ १२ घड़ी ४ पलके घंटे मिनट बनाने हैं तो १२ को २ से गुणा करने पर २४ हुये और ४ को २ से गुणा करें तो ८ हुये। २४ में ५ का भाग दिया तो ४ लब्धि और ४ शेष रहे। ४ को ६० से गुणा किया तो २४० हुये। इनमें ८ मिलाये तो २४८ हुये फिर ५ का भाग दिया। ४६ लब्धि और ३ शेष रहे। ३ शेषको ६० से गुणा किया तो १८० हुये। इनमें ५ का भाग दिया तो ३६ लब्धि आये। यह फल निकला कि १२ घड़ी ४ पलके ४ घंटे ४६ मिनट और ३६ सेकंड हुये।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५१	प्रयाग, कन्या संवत् १९९७ विक्रमी	सितम्बर, सन् १९४० ई०	संख्या ६

सोवियट रूस में बिजली

(ले०—डा० गोविन्दराम तोषनीवाल, डी० एस-सी०, एम० आई० आर० ई०, प्रयाग विश्वविद्यालय)

आधुनिक कालमें किसी देशकी औद्योगिक उन्नतिका अनुमान करनेके लिए उस देशकी विद्युत्-व्यवस्थाका जानना परम आवश्यक है। इसके अलावा जितनी विद्युत्-शक्ति जिस देशमें प्रति मनुष्य ख़र्च होती है, वह उस देशकी सभ्यताका बोध कराती है।

रूसमें विद्युत्-शक्ति क्रान्तिकारी युग के पहले कहने भरको थी। वह सभ्य कहलाने वाले अन्य देशोंसे काफ़ी पिछड़ा हुआ था। उस समय वहाँ विद्युत्की खपत उतनी ही थी, जितनी आज हमारे भारतमें है। तब लगभग ७० प्रतिशत रूसी खेती-बारी करते थे और हमारे देशके कृषकोंकी तरह काफ़ी ग़रीब थे। वहाँ विद्युत् उत्पन्न करने वाली कलें बिलकुल निकम्मी थीं और प्रति किलोवाट-घंटा बिजलीके पैदा करनेमें काफ़ी ख़र्च बैठ जाता था। खपतके बहुत कम होनेसे विद्युत्के प्रति यूनिट पर ढाई आनेका औसत बैठ जाता था और-कहीं-कहीं तो ६½ आने तक लग जाते थे। ऐसी दशामें रूसमें किसी तरहकी औद्योगिक उन्नतिका होना बिलकुल असंभव सा था। रूसके शासकोंको इस बातका पता ही न था कि उनके पास संसारकी सबसे बड़ी शक्तियाँ मौजूद हैं। रूसकी औद्योगिक अधोगतिका दूसरा कारण यह था कि कल-कारख़ाने बिजलीकी शक्तिके केन्द्रोंसे बहुत दूर थे। उस समय रूसमें मास्को तथा सेंटपीटर्सबर्ग ही मिलोंके प्रधान केन्द्र थे, पर उनको चलानेके लिए डोन्ट्ज़से कोयला तथा काकेशशसे तेल लाना पड़ता था, जो इन केन्द्रोंसे हज़ारों मील दूर थे।

उधर विदेशी पूँजी-पतियोंके हाथोंमें, जिनमें विशेषकर जर्मन, फ्रांसीसी तथा अँग्रेज थे, तमाम रूसका ईंधन तथा विद्युत्-शक्ति थी। रूसमें मशीनें बनानेका कोई भी बड़ा कारख़ाना न था। इसका परिणाम यह होता था कि रूसियोंको कल-पुर्जोंके लिए विदेशियोंका मुँह ताकना पड़ता था।

जब यूरोपीय महाभारत शुरू हुआ तथा रूसमें गृहयुद्ध-की आग सुलगी तब रूसकी और भी बुरी दशा हो गई।

तमाम शक्ति-संचालकोंको बहुत गहरा धक्का लगा। सन् १९२० में मास्कोके स्टेशनोंकी शक्ति १९१६ के १७१ मिलियन यूनिट से ३ मिलियन यूनिट तक गिर गई। कलकत्तेकी मौजूदा शक्तिकी चौथाई ही रह गई, जब कि मास्को क्षेत्रफलमें कलकत्तेसे दुगना है। इसमेंसे भी आधी विद्युत्-शक्ति तो रोशनीके काममें लाई गई, जब कि सन् १९१६ में इस कार्यके लिए केवल चौथाई ही ख़र्च हुई थी। सन् १९२० में रूसकी कुल शक्ति ५०० मिलियन यूनिट थी, जब कि वह गृह-युद्धके पहिले इससे चौगुनी थी। उधर कोयला भी सन् १९२० में ८.५ मिलियन टन निकाला गया, जो कि १९१३ का २९.४ प्रतिशत ही था। लोहे तथा इस्पात अंक भी १९१३ से २.५ प्रतिशत गिर गये।

इन्हीं महासमर तथा गृहयुद्धके दिनोंमें लेनिन ने रूस की आर्थिक उन्नति के लिए एक ऐतिहासिक कार्यक्रम बनाया, जो कि दुनियाँके सबसे बड़े सिद्धान्त पर निर्भर करता था "विद्युत्-प्रबन्ध।"

सन् १९१९ में जब कि रूसमें चारों ओर गृहयुद्धकी दुन्दुभी बज रही थी लेनिन ने रूसकी एक वैज्ञानिक संस्था (रशियन एकेडेमी ऑफ सायन्सेज़) से कल-कारख़ानोंका पुनः निर्माण करने तथा देशके छिपे हुए खजानोंको वैज्ञानिक रीतिसे ढूँढ़ निकालनेके लिए सहायता माँगी। उसने एकेडेमीको एक ख़ास आदेश दिया कि वह इस कार्यमें जहाँ तक हो सके कारख़ानों, आवागमन तथा कृषिकी योजनाओंमें विद्युत्को पूरा स्थान दें।

सन् १९२० में इस कार्यके लिए प्रो० क्रिज़नोस्की (Prof. Krzhinzhanovsky) की अध्यक्षतामें २०० वैज्ञानिकों तथा इञ्जीनीयरोंकी एक सम्मिलित कमेटी बैठाई गई। कमेटी ने एक मसविदा तैयार किया जो कि "गैलरो प्लान" (Goelro-plan) के नामसे प्रसिद्ध है। इसके अनुसार रूसी सरकारको १७ बिलयन रूबल्स (लगभग २,५०० करोड़ रुपये) की लागतसे १०-१५ वर्षोंमें गत महायुद्धके पहिलेकी शक्तिसे १९०—२०० प्रतिशत उन्नतिका आश्वासन मिला।

इस कार्यक्रमके बारेमें सन् १९२० में लेनिन ने लिखा था—

"आगामी कांग्रेसकी बैठकके एजेण्डामें रूस के विद्युत्-प्रबंधकी भी रिपोर्ट है। यह वह रिपोर्ट है, जो हमारे देशको आर्थिक उन्नति करनेमें भारी सहायता करेगी। रूसकी औद्योगिक उन्नति करनेके पहिले देशकी आर्थिक उन्नति तथा कम्यूनिज़्मके बारेमें कुछ भी सोचना बिलकुल बेकार है। कम्यूनिज़्म रूसको एक महान् शक्ति है लेकिन यह तभी पूर्ण हो सकती है जब देशमें पूर्णतया विद्युत्-प्रबंध भी हो जाता है, क्योंकि इसके बिना देशमें औद्योगिक उन्नति करना निरा असम्भव है।

सन् १९२१ में स्टेलिन ने भी कहा था, "देशकी आर्थिक उन्नतिके लिये 'गैलरो प्लान' परम आवश्यक अंग है। पिछड़े हुये रूसको यही प्लान मालामाल कर सकेगा।"

इस 'गैलरो प्लान' के दो अंग हैं—'क' तथा "ख"

'क' के अनुसार गत् महायुद्धके पहलेकी विद्युत्-शक्ति को फिरसे प्राप्त करना तथा वर्तमान विद्युत्-स्टेशनोंको बढ़ा कर उनसे पूरा काम लेना और देशमें चारों ओर विद्युत्-शक्तिका जाल फैला देना।

'ख' के अनुसार देशमें ३० ऐसे नये स्टेशन बनाना जो १५ लाख किलोवाट विद्युत्-शक्ति पैदा कर सकें।

'गैलरो प्लान' के अनुसार देशकी विद्युत्-उन्नतिके लिये निम्न मुख्य सिद्धान्त बनाये गये।

नये-नये स्टेशन बनाकर विद्युत्-शक्तिका पैदा करना और इन स्टेशनोंको ऊँचे वोल्टेज (voltage) के जालसे एक दूसरेसे जोड़ना। इस उपार्जित शक्तिको तमाम देशमें बाँटना और ख़ास करके पिछड़े हुये स्थानोंका विशेष ध्यान रखना। जो कुछ मौजूदा शक्ति है उसका पूरा-पूरा उपयोग करना तथा कोयले, जल-शक्ति, पीट कोयलेकी बुकनी तथा तेलकी भी इस काममें पूरी मदद लेना।

इस 'प्लान' को काममें लानेके लिये रूसकी उस वैज्ञानिक संस्थाको कोयला, पीट, तेल, जल-शक्ति आदिके अन्वेषण का कार्य सौंपा गया। इस छानबीनका नतीजा यह हुआ कि सन् १९२४ में ५ लाख टन और सन् १९३५ १२½ लाख टन कोयला ढूँढ निकाला गया, जब कि सन् १९१३ में २½ लाख टनसे अधिक अनुमान नहीं लगाया जाता था। तेलके कई स्रोतोंका पता चला। जिन स्रोतों

को अभी तक कोई ख़ास महत्व नहीं किया जाता था, वे तेलके बड़े-बड़े स्रोत पाये गये।

इस खोजके लिये प्रधान बोर्डके खर्चेके लिये सन् १६२४ में ५ लाख और सन् १६३३ में ४ करोड़ रुपयेके बजट बनाये गये। सन् १६३५ में ५,२०० स्टेशनों पर जल-शक्ति द्वारा बिजली पैदाकी गई।

सन् १६१६ में रूसके कृषि-विभागने राष्ट्रकी जल-शक्ति १४½ मिलियन किलोवाट बतलाई थी। लेकिन इस खोजके पश्चात् सन् १९२४ में वह ४७ मिलियन किलोवाट पाई गई। सन् १६३७ के शुरूमें यह २८० मिलियन किलोवाट हो गई।

'गैलरो प्लान' १० वर्षमें पूरा हो गया। इसे अब दो पंचवर्षीय योजनाओंमें बढ़ा कर वितरण किया गया। प्रथमके अनुसार रूसकी पंचम कांग्रेसमें '५ मिलियन किलोवाटसे ३'२ मिलियन किलोवाट तक शक्ति बढ़ानेकी अनुमति प्रदान की। द्वितीयके अनुसार ६९ पावर स्टेशन बनाये गये। प्रत्येक स्टेशनको १,००,००० किलोवाटसे अधिक शक्ति पैदा करना था।

'गैलरो' तथा पंचवर्षीय योजनाओंके निम्न मुख्य विभाग थे :—

(क) विद्युत्-शक्ति कम-से-कम ख़र्चमें पैदा करके उसे एक जगह एकत्रित करना। एक दूसरे स्टेशनसे लगाव स्थापित करके देशमें चारों ओर ऊँची विभवत्वका जाल (Grid system) बिछा देना।

(ख) विद्युत् तथा तापशक्ति स्टेशनोंका बढ़ाना।

(ग) जल-विद्युत् तैयार करना।

(घ) बिजलीके लिये सस्ते ईंधनका पूरा उपयोग करना। अब तो यह अंग इस कार्यक्रमका एक ख़ास साधन बन गया है।

सोवियट रूसका शक्ति-स्रोत

रूसका शक्ति-स्रोत दुनियाँमें सबसे अधिक समझा जाता है।

तालिका नं० १

शक्ति-स्रोत	कुल जमा
कोयला (रिज़र्वका अनुमान)	१२,४०,००,००,००,००० टन
तेल (रिज़र्वका अनुमान)	३,२१,००,००,००० टन
प्राकृतिक गैस (रिज़र्वका अनुमान)	६,८६,००,००,००,००० सी. एम.
तेलकी मिट्टी रिज़र्वका अनुमान)	५५,००,००,००,००० टन
पीट	६५,३०,००,००,००० टन
लकड़ी जंगल	५६,००,००,००० हेक्टर
कुल लकड़ीका रिज़र्व	३५,००,००,००,००० सी.एम.
ईंधनकी लकड़ीका रिज़र्व	२०,००,००,००,००० सी.एम.
जल-शक्तिका रिज़र्व	३३,४४,००,०००

कोयलेमें रूसका दुनियाँमें अमरीकाके बाद नम्बर आता है। दुनियाँ में कोयलेका रिज़र्व ७'६ × १¹² टन लगाया गया है और इसमेंसे रूसके पास १५'७ प्रतिशत है। जल-शक्तिमें रूस सबसे धनवान है। दुनियाँकी चौथाई जल-शक्ति इसीके पास है। नम्बर दो तालिकामें रूसकी जन-संख्या, क्षेत्रफल, शक्ति-स्रोतकी स्थिति दी गई है।

तालिका नं० २

सूची	रूसका दुनियामें प्रतिशत हिस्सा	रूसकी दुनियाँमें गणना
क्षेत्रफल	१६	दूसरी
जन-संख्या	६	तीसरी
कोयलेका रिज़र्व	१५'७	दूसरी
तेलका रिज़र्व	३२'१	पहली दूसरी
पीटका रिज़र्व	४८'५	पहली
जंगल	२०	पहली
जल-शक्ति	२८	पहली

और ये अंक भी कम ही हो सकते हैं। यहाँकी शक्ति-स्रोतकी खोज वास्तवमें क्रान्तिके बाद ही हुई और वह भी सुचारु रूपसे पहली तथा दूसरी पंचवर्षीय योजनाओंके पश्चात्।

इस खोजने तो रूसमें क्रान्ति मचा दी है। भू-परीक्षासे रूसमें सन् १६१३ में २,३१००० मिलियन टन, १६२४ में ४,२६,००० मिलियन टन तथा सन् १६३५ में १'२४ मिलियन टन कोयलेका अनुमान लगाया गया। यह सब पूर्वी भागकी खोजका परिणाम है।

इस खोजके पहिले तेलके रिज़र्वका कोई अनुमान नहीं था, पर अब यूराल, उत्तरी सोमा, मध्य एशिया तथा अन्य स्थानोंमें कई नये सोतोंका पता लगा है। कैस्पियन सागर

के उत्तरी मैदान ऐम्बामें तेलको बहुत ही कम महत्त्व दिया जाता था, पर अब वहाँ ६०० मिलियन टनसे कम तेल नहीं समझा जाता।

जल-शक्तिमें भी क्रान्तिकारी उन्नति हुई है। सन् १९१६ में रूसके सरकारी कृषि-विभाग ने देशकी जल-शक्ति १४'६ मिलियन किलोवाट बतलाई थी। सन् १९२४ की 'वर्ल्ड पावर कान्फ्रेंस' में रूसकी जल-शक्तिका अनुमान ४७'७ मिलियन किलोवाट लगाया गया था और सन् १९-३५ में तो ये अंक २८० मिलियन किलोवाटसे भी बढ़ गये।

दुनियाँके सबसे बड़े कोयलेकी खानोंमें रूसकी कूज़नेट (Kuzentask) की खानें भी हैं। इनका रिज़र्व ४ मिलियन-मिलियन टनका है, जो कि बहुत ही बढ़िया श्रेणी का है और आधा तो १,५०० फुटकी गहराईसे ही निकाला जा सकता है। इसके बाद डॉनके, जिसमें ७२,००० मिलियन टन और कारगैण्डाके, जिसमें ५०,००० मिलियन टन कोयला है, नम्बर आते हैं।

देशकी विद्युत्-उन्नति

प्रथम पंचवर्षीय आयोजनाके पहिले सन् १९२८ में रूसके पास अपने युद्ध-कालसे पहले ७० प्रतिशत बिजली ज़्यादा पैदा करनेकी शक्ति थी और जो बिजली पैदाकी जाती थी वह १६० प्रतिशत ज़्यादा थी। ये अंक इटलीके ५५, फ्रांसके ४०, इङ्गलैण्डके ३५, जर्मनीके २०, कनाडाके ३० प्रतिशत थे और वह अमरीकासे ५ प्रतिशत कम थे। स्वीट-ज़रलैण्ड जैसा देश रूससे आगे बढ़ा हुआ था। इन दो पंचवर्षीय योजनाओंने रूसकी एकदम काया-पलट दी। सन् १९३६ से शुरूमें यह शक्ति ६.८८ मिलियन किलो-वाट तक पहुँच गई, यानी यह युद्ध-कालसे ६'३ तथा प्रथम पंचवर्षीय योजनासे ३ गुनी अधिक हो गई। जो वास्तवमें पैदाकी गई वह १९३५ में २५,६०० मिलियन यूनिट थी, यानी युद्ध-कालसे १३'३ तथा १९२८ से ५'२ गुनी अधिक थी।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है रूसकी विद्युत्-उपज तेज़ीसे बढ़ती जाती है। उधर अन्य देशोंकी गति काफ़ी धीमी है और सन् १९३२ में तो यह शून्यके बराबर हो जाती है।

इन्हीं वर्षों (१९२९-३३) में रूसकी विद्युत्-आयोजना इतनी बढ़ी कि उसने १०,२०० मिलियन यूनिट बिजली पैदा की जो कि १६५ प्रतिशत उन्नति दर्शाते हैं। दुनियाका सबसे बड़ा विद्युत्-शक्ति वाला देश भी इसकी बराबरी न कर सका और उसके अंक ११,२०० मिलियन यूनिटसे गिर गये। जर्मनी भी सन् १९३३ में २४ प्रतिशत ही पैदा कर सका। उधर रूस तो बराबर उन्नति करता ही गया।

रूसकी इस गति पर भी एक सरसरी नज़र डाल लेना अनुचित न होगा। ८,००० मिलियन यूनिटसे २१,००० मिलियन एकांक पहुँचनेमें रूसको ४ वर्ष (१९३०-३४), जर्मनीको ११ वर्ष (१९१४-२५), और ग्रेटब्रिटेनको १३ वर्ष १९२१-३४) लगे। अतः रूस इन उन्नत देशोंसे तिगुनी बाज़ी मार ले गया।

'गैलरो प्लान' के १५ वर्ष (१९२०-३५) बाद रूस में हज़ारों ही नहीं बल्कि लाखों यूनिट शक्ति उत्पन्न करने की ताक़त बढ़ी। यूरोपमें आज मास्कोकी बिजली उत्पन्न करनेमें सबसे बड़ा मैदान समझा जाता है। इसकी ताक़त २,००,००० किलोवाटकी है और यह ४,००० मिलियन किलोवाट उत्पन्न करता है। मास्को, शेचर तथा काशिरा मिलकर रूसके गृहयुद्धके पहिलेके अंकोंसे भी अधिक विद्युत् उत्पन्न करते हैं।

रूसकी विद्युत् बचत

इस विद्युत्-प्रबन्धका असर देशके कल-कारख़ानों पर क्रान्तिकारी हुआ है। सन् १९३५ में इनमें १२,००० मिलियन यूनिट बिजलीकी खपत थी, जोकि सन् १९२६ के अंकोंसे ६५० प्रतिशत अधिक होती है। इसी कालमें हज़ारों नये-नये कारख़ाने खोले गये हैं जहाँ लाखों आद-मियोंको दनादन काम मिल रहा है।

सोवियट रूसमें बिजलीकी खपत, खेती-बारी और विद्युत्-शक्ति

क्रान्तिके पहिले रूसमें खेतीका सारा काम स्त्री-पुरुष ख़ुद करते थे। हाँ, उन्हें जानवरोंसे भी काफ़ी सहायता मिल जाती थी। सन् १९२१ तक ९८'५-९९'५ प्रतिशत मैदानोंमें इन्हींका पूरा हाथ था। लेकिन अब इनका रङ्ग बदला। सन् १९३५ में ५० प्रतिशतसे भी ज़्यादा बिजली

काममें लाई जाने लगी। नतीज़ा यह हुआ कि इस ओर भी क्रान्तिकारी उन्नति हुई।

इस भारी आर्थिक विद्युत्-प्रबन्धने रूसकी बिल्कुल कायापलट कर दी। वह एक गिरे खेतिहर देशसे पूरा औद्योगिक देश हो गया। जो गत् १८ वर्ष पहिले आधा मूर्ख और आधा नंगा राष्ट्र था आज विद्युत्-प्रबन्धके कारण चैनकी बंसी बजा रहा है। तभी तो वहाँ बेकारीका नामो-निशान नहीं है।

इस विद्युत्-प्रबन्धकी ओर हमारी 'नेशनल प्लानिङ्ग कमेटी' को पूरा ध्यान रखना आवश्यक है।

यंत्रसे बने मनुष्य

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ, बी० एस-सी०]

कुछ समय पहले यन्त्रों द्वारा मनुष्य बनाना एक कोरी कल्पना ही समझती जाती थी। इस स्वप्नको अब सत्यता-का रूप दे दिया गया है। अमरीकामें स्थित न्यूयार्कमें संसारका बहुत बड़ा मेला प्रति वर्ष होता है और नये-नये विज्ञानके अनुसन्धान दर्शकोंके सामने रक्खे जाते हैं। इस वर्षके मेलेके लिये बहुतसे ऐसे यांत्रिक मनुष्य बनाये गये हैं जो कलों-द्वारा चल फिर सकते हैं, बातचीत करना, गाना, सिगरेट पीना; गणितके अंकोंको जोड़ना और कुछ गणितके प्रश्नोंका भी उत्तर देना, आगामी जीवनके विषयमें भी बतलाना, और भी बहुतसे प्रश्नोंका उत्तर देना और बोलते समय प्रत्येक प्रकारकी इन्द्रियको भी चलाने आदिका कार्य करते हैं। अब पाठकोंको यह तीव्र इच्छा होगी कि ऐसा किस प्रकार हो सकता है। यह बतानेके पहले हम इस अनुसन्धानका इतिहास देंगे।

बाँसुरी बजाने वाली मूर्ति

इसके सबसे पहले अनुसन्धानकर्त्ता जे० डो० वौकनसन फ्रांस-निवासी थे। उन्होंने अपने गुणोंको चौदह वर्षकी अवस्थामें ही संसारके सामने कार्यरूपमें उपस्थित किया। उनकी यांत्रिक बुद्धि इतनी तीव्र थी कि घड़ीकी कलोंको एक बारके निरीक्षणमें ही फिरसे खूब बारीकीके साथ ठीक-ठीक लगा देते थे। १७ वीं शताब्दीमें अर्थात् लगभग अबसे ढाई सौ वर्ष पहले वे ट्यूलेरीज़में भ्रमण करते थे। उनकी दृष्टि सौभाग्यवश ग्रीक देशके गान-विद्याके देवताकी मूर्ति पर पड़ी जिसके मुँहमें बाँसुरी भी लगी थी। इसी को देखकर उन्हें यांत्रिक मनुष्यके निर्माण करनेका विचार हुआ। इस मूर्तिको नमूना मानकर इन्होंने लोहे, लकड़ी तथा कपड़ोंका एक ऐसा ही बाँसुरी वाला बनाया। इसका गुण यह था कि वह बारह प्रकारकी ध्वनियोंके राग बजा सकता था। यह बजाते समय जीवित मनुष्यके प्रकार अपनी बाँसुरीके छेदों पर अँगुली रखकर भाँति-भाँतिके राग बजाता था और उसकी जिह्वा और होठ भी साथ-साथ चलते थे। इसी प्रकार उन्होंने एक यांत्रिक शिकारी, कपड़ा बुनती हुई स्त्री और एक ढोल बजाने वालेका भी निर्माण किया। इनमेंसे दो तो अभी तक पेरिसके अजायबघरमें रक्खे हुये हैं और वहाँ देखे जा सकते हैं। परन्तु अब पाठकके हृदयमें विचार होगा कि यह तो यांत्रिक रूप के हैं इनको कान पकड़के बैठा दिया बैठ गये, जैसे इनसे काम कराना चाहे करा लिये। इनमें बुद्धि वा मस्तिष्ककी कमी है। इनको भी पूरा करनेमें अब बहुत परिश्रमके बाद सफलता प्राप्त हो गई। अब हम अपने शब्द उच्चारण करके उनको वशमें कर सकते हैं। आशा देकर उनसे नौकर-चाकरकी भाँति काम ले सकते हैं।

चाभीदार खिलौने

उनके बनानेकी विधिमें इस प्रकार उन्नतिकी गई है कि पहले यांत्रिक पुरुषमें तो एक स्प्रिंग होती थी, उसमें चाभी भर कर जो काम चाहा करा लिया। स्प्रिंगकी शक्ति दौड़ने, चलने, बोलने, गाने आदि किसीमें भी लगाई जा सकती थी। इनको अब भी बाज़ारोंमें देखते हैं। बच्चोंके खेलनेके लिये मोटर, या सिपाही आदिकी सूरत बनाकर उनके पैरोंमें स्प्रिंग लगा देते हैं। स्प्रिंगमें चाभी भरकर इसे छोड़ने पर वस्तु चलने लगती है। जिस प्रकार ग्रामो-फोनमें स्प्रिंगकी चाभी भरकर रेकार्ड घूमने लगता है और

उसके ऊपरके ध्वनि-पेटिकाकी झिल्ली सुईके चलनेसे मिलकर आवाज़ पैदा करती है जिसे हम सुनते हैं उसी प्रकार ऐसे ग्रामोफोनको बहुत छोटे रूपमें किसी मनुष्यका शरीर बनाकर उसके पेटमें रख दिया जावे तब वह भी इसी प्रकार बोलने लगेगा। इसी प्रकार ढोल बजाने वाले पुरुषों के रूपके खिलौने तो बाज़ारमें बहुत ही देखनेमें आते हैं। वे छोटे होते हैं। उन्हें ही पूरे मनुष्यके शरीरके बराबर बनाकर झूँठे ढोलके बजाय सच्चा ढोल उनके हाथोंके नीचे रक्खा जा सकता है। उनके हाथोंमें स्प्रिंगसे चाभी भरनेपर वे ढोलको बजा सकते हैं। स्प्रिंगमें अनेक प्रकारकी शक्ति भरी जा सकती है और इस तरह अनेक प्रकारकी ध्वनि पैदाकी जा सकती है। इसी प्रकार शिकारीके रूपके खिलौने भी देखनेमें आते हैं। उन्हें भी इसी प्रकार बड़ा बनाकर सच्ची बन्दूक उनके हाथमें देकर सच्चे कारतूस चलाये जा सकते हैं। यह ऐसे अवसरोंके लिये बिलकुल उपयुक्त हो सकते हैं जहाँ पर कि सिर्फ़ गोली ही चलानी है, उनका कोई ध्येय न हो, जैसे बड़े-बड़े जलूसोंके अन्दर तथा किसी के आदर-सत्कारमें। उनकी बन्दूकोंकी दिशाको पहले ठीक किया जा सकता है। परन्तु इन सबमें यही कमी रहेगी कि यह आज्ञानुसार काम न करेंगे। अगर हम चाहें कि जब इनको गोली चलानेकी आज्ञा दी जावे तब ही यह काम करें तो ऐसा इनसे सम्भव नहीं। परन्तु अब ऐसा भी हो गया है। अब हम उनको किसी प्रकारकी आज्ञा दे सकते हैं और वे उसके अनुसार ही कार्य करेंगे। हम उनसे कहें 'जाओ' वे चले जायेंगे। हम उन्हें आज्ञा देवें 'सिगरेट सुलगाओ' वे दियासलाईको जला कर ऐसा करेंगे। इस प्रकार वाक्-शक्ति द्वारा भी हम उनसे अब कार्य ले सकते हैं।

मस्तिष्कवान यंत्र

उनके अब एक मस्तिष्क भी लगा दिया गया है जो वाक्-शक्ति द्वारा दी हुई आज्ञाको उनकी इन्द्रियों द्वारा आज्ञा-पालन कराता है। मस्तिष्कमें बहुतसे रेले रूपके स्विच लगे होते हैं और इन्द्रियोंकी मांसपेशियोंमें बिजलीके मोटर लगे होते हैं। जब स्विच द्वारा किसी मोटरको बिजली के तारोंको जोड़ दिया जाता है तब वह मोटर काम करने लगता है और ऐसा मालूम होता है कि वह इन्द्रिय काम करती है। हम ऐसे पुरुषसे चलनेके लिये कहते हैं। हमारे मुखसे निकली हुई ध्वनि 'जाओ' उसके कान पर पड़ती है। कानमें एक माइक्रोफोन* लगा होता है। इस तेज़ और ज़ोर की ध्वनिमें जो शक्ति होती है उसे एक टेलीफोन† द्वारा विद्युत्-शक्तिमें परिणत किया जाता है। यह विद्युत्-शक्ति रेलवे स्टेशनके स्विचको दबा देती है। उसके दबनेसे उससे लगा हुआ मोटर चलने लगता है। मोटरकी गतिसे उसके ऊपरकी इन्द्रिय भी उसी प्रकार गति करती है। इस 'जाओ' कार्य के लिये एक विशेष ध्वनि होती है। जिसमें एक विशेष शक्ति द्वारा ही स्विच खुल कर पैरोंमें लगे हुये मोटरको चला देता है और मोटरके चलनेसे पैर उठ कर आगेको बढ़ने लगते हैं। यहाँ पर पाठकोंको यह शङ्का होगी कि मोटरके चलनेसे तो वह चारों ओर गोलाईमें घूम सकता था और पैर नहीं उठा सकता? परन्तु नहीं, मोटरके घूमने की गतिको उस रूपमें बहुत सरलतासे परिणत किया जा सकता है। इसी प्रकार उसे रोकनेके लिये कहना होगा 'रुको'। इस शब्दकी दूसरी ध्वनि निकल कर रेलेके स्विच को बन्द कर देगी। मोटर रुक जावेगा। मनुष्य भी चलते-चलते रुक जावेगा। इसी प्रकार किसी ने उस मनुष्यको

---

* माइक्रोफोन लाउड स्पीकरके काममें आता है। माइक्रोफोन किसी ध्वनिको अधिक तेज़ और ज़ोरकी कर देता है।

† टेलीफोनको काममें हर एक लाते हैं परन्तु उसके कार्य करनेकी विधिको बहुत कम सज्जन जानते हैं। एक लोहेके चुम्बकके ऊपर एक बारीक झिल्ली लगी होती है। जब कोई शब्द-ध्वनि उस झिल्ली पर आती है तब ध्वनिके भारसे वह झिल्ली अपने स्थान पर हिलती है। चुम्बककी आकर्षित अथवा अलग फेंक देनेकी विद्युत्-शक्तिमें घटोत्तरी और बढ़ोत्तरी होती है। उसके कारण यह विद्युत्-शक्ति उस ध्वनिके अनुसार ही बन जाती है। दूसरे स्थान पर जहाँ दूसरे टेलीफोनसे सुना जाता है वहाँ यह विद्युत्-शक्ति तारों-द्वारा पहुँचकर उस चुम्बककी शक्तिमें घटती-बढ़ती पैदा करती है। इस घटती-बढ़तीसे उसके ऊपर लगी हुई झिल्ली भी हिलने लगती है। उसके हिलनेसे वायुमें वहीं लहरें पैदा होकर ध्वनिके रूपमें निकल आती है।

आज्ञा दी 'जाओ'। इस ध्वनिमें 'जाओ' ध्वनिकी भाँति शक्ति न होकर शक्तिमें कुछ अन्तर होना चाहिये जिससे कि ग्रामोफोनके मोटरका स्विच खुलकर मोटरको चला देता है और उसमें लगा हुआ रेकार्ड घूमकर गानेकी आवाज़ निकलने लगती है। अब यह शङ्का होती है कि एक रेकार्ड पूरा बजानेके बाद ग्रामोफोन रुक जावेगा उसके बदलनेके लिये और फिर नया रेकार्ड चढ़ानेके लिये क्या प्रबन्ध है? उसके लिये पाठकोंको मालूम होना चाहिये कि बिजली-द्वारा चलने वाले अब ऐसे ग्रामोफोन आते हैं जिनमें रेकार्ड को बदलने और उसे दूसरी ओरके बदलनेका प्रबन्ध कल द्वारा ही हो जाता है। आठ-नौ रेकार्ड एक बार उसमें चढ़ा दिये जाते हैं और वे अपने-आप चलते रहते हैं; न चाभी भरनेकी, न सुई बदलनेकी और न उनको पलटने आदिकी आवश्यकता पड़ती है। किसी नाटक आदिके बजानेमें इसमे ज़्यादा सरलता होती है क्योंकि उसमें तो सबको लगातार एक ही रीतिसे बजाना होता है। इसी प्रकार उनकी नाक से भी काम लिया जा सकता है। मनुष्यको नाकसे यही फ़ायदा है कि वह सुगन्धि, दुर्गन्धि आदिमें अन्तर मालूम कर सके। अच्छे-बुरे अंडोंकी पहचानका कार्य इस यांत्रिक युवकसे भी कराया जा सकता है। ताज़े या रक्खे हुये या सड़े हुये अंडोंकी पहचानके लिए भी इनमें एक यन्त्र होता है। इसी प्रकार नेत्रोंका कार्य देखनेका होता है। इस इन्द्रिय का कार्य उस यांत्रिक मनुष्यमें यही हो सकता है कि रङ्गों को देखकर उनका नाम बतलावे अथवा अच्छे-बुरेका ज्ञान करावे। नेत्रके सब कार्योंका करना तो बहुत कठिन है परंतु रङ्गोंके नाम इस यांत्रिक पुरुष द्वारा बतलाये जा सकते हैं। सूर्यके प्रकाशमें सात रङ्ग मिले होते हैं जो आकाशमें इन्द्र-धनुषके समय दिखाई देते हैं। सूर्यकी किरणें प्रत्येक वस्तु पर पड़ती हैं जो उनके रास्तेमें आती है। मान लीजिये एक पेड़ हमें हरा दिखाई देता है। फिर प्रश्न यह उठता है कि सूर्यके शेष छः रंग कहाँ छिप गये; सिर्फ़ एक हरे रंग ने ही हमारे नेत्र पर क्यों प्रभाव किया। इसका कारण यह माना गया कि पेड़ने शेष छः रङ्गोंको अपने अन्दर समा लिया और सिर्फ़ हरे रङ्गको हमारे नेत्रों तक पहुँचने दिया। इसी प्रकार प्रत्येक रङ्गीन वस्तुके लिये ऐसा ही माना जाता है। अब प्रयोग करनेसे यह मालूम हुआ है कि भाँति-भाँतिके रङ्गीन प्रकाशोंकी शक्तिमें अन्तर होता है। प्रकाश लहरोंमें अथवा छोटे-छोटे कणोंके रूपमें आगे बढ़ता है। इनमें शक्ति होती है, प्रत्येक प्रकारके प्रकाश-कणकी शक्तिमें अन्तर होता है। इसी को फोयेएलकट्रिक सेल या बिजलीकी आँख-द्वारा विद्युत्-शक्ति में परिणत करके उनमें लगे हुये स्विच को खोला जा सकता है। प्रत्येक स्विचको ऐसा बनाया जाता है कि उसके खोलनेके लिये एक अमुक शक्ति ही चाहिये। इसी प्रकार जितने रङ्ग होते हैं उतने ही स्विच अमुक-अमुक शक्ति के लगा दिये जाते हैं। अमुक रङ्गसे पैदा हुई अमुक विद्युत-शक्तिसे उसी शक्ति वाला स्विच खुल जाता है, उसके खुलनेसे उसमें लगे हुये रङ्गका नाम लिखा हुआ चिह्न ऊपर आ जाता है जिसको कि दर्शक पढ़ कर रङ्गका नाम मालूम कर सकते हैं। अगर यही चाहिये कि यह यांत्रिक महोदय अपनी जिह्वासे उसका उच्चारण करें जैसा कि जीवित मनुष्य करते हैं तब यह भी सम्भव है। उस स्विच में कोई वाक्-शक्ति पैदा करनेका यन्त्र जैसे माइक्रोफोन अथवा ग्रामोफोनसे उस रङ्गकी ध्वनि निकाली जा सकती है।

आदि-मानव

(ले०—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, ओरई, यू० पी०)

'मानव समाज' के विकासके सम्बन्धमें दो ही उपपत्तियाँ हो सकती हैं। एक तो यह कि सम्पूर्ण नर-समाज जिस रूपसे हमें आज दिखाई दे रहा है अनादि कालसे उसी रूपमें चला आ रहा है। दूसरी यह कि आरम्भमें इसका रूप सीधा-सादा था--गुम्फित न था। युग-युगान्तरों के संशोधन और परिवर्द्धनके पश्चात् वर्तमान रूप प्राप्त हो पाया है। उन्नीसवीं शताब्दी तक अधिकांश व्यक्ति प्रथम सिद्धान्तकी पुष्टि करते आये क्योंकि समय-सागरकी उस गहरी तह तक पहुँच सकना उनकी शक्तिसे परे था जब कि मानव-समाजका प्रादुर्भाव ही न हुआ था। मानव-विकास

ही क्यों वे तो धरा-विकासके विषयमें भी यही कहा करते थे कि जो पशु, पक्षी, वृक्ष, लतादि आज दीख रहे हैं आदि कालसे हैं और अनंत काल तक रहेंगे। न इनका प्रारम्भ हुआ था न अन्त होगा। संसार चक्रवत् है जिसका न आदि मिलता है न अन्त। यदि कुछ व्यक्ति इस प्रकृतिका प्रारम्भ स्वीकार भी करते थे तो इस रूपमें कि सहसा किसी महान् शक्ति ने प्रकट होकर छः दिनमें समस्त रच डाला, सातवें दिन, विश्राम लिया, आदि। जब तक यह विषय धर्माचार्यों अथवा दार्शनिकोंके चंगुलमें रहा, मनमानी भरी गई। उन्होंने प्रस्तुत सृष्टिके अध्ययन द्वारा इतना तो जान लिया कि प्रकृति पाँच तत्वोंसे बनी है। पर कैसे बनी, इसका संतोषजनक उत्तर तब तक न मिल सका जब तक वैज्ञानिकोंने कमर न कसी। खोज, पड़ताल, शोध, प्रयोग, गणना आदि द्वारा वैज्ञानिकोंने इस गुम्फित विषय को महा सरल बना दिया। उनका कहना है कि अरबों खर्व वर्ष पहले एक विशाल नीहारिकामें तीस अरब सूर्योंका जन्म हुआ। दो अरब वर्ष हुये कि इन सूर्योंमेंसे एकने नौ पुत्रों (बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो) को पैदा किया। (जेम्स जीन्सके मतानुसार) पृथ्वी अग्निके स्फुलिंगसे शनैः-शनैः शीतल हुई। क्रमसे वायुमंडल, मेघ, जल, समुद्र, पर्वत, नदी, मैदान, और चिकनी मिट्टीका प्रादुर्भाव हुआ। कई लाख वर्षों के पश्चात् समुद्रमें जीव-सृष्टि प्रारम्भ हुई। इस सृष्टिकी दो जातियाँ हुईं, वनस्पति शाख व प्राणी शाख। वनस्पति शाख धरातलकी ओर यात्रा करती गई और जब तक प्राणी शाख धरातलकी ओर आवे तब तक वायुमंडलका सारा विष सोख उसे श्वास योग्य बना दिया। प्राणियोंने भी कई रूप पलटे। यहाँ उनका वर्णन नहीं करना है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि पहले समुद्रमें तैरने वाले अस्थि-हीन प्राणी हुये। फिर मत्स्य, नक्र, कच्छप, सरीसृप आदिकी सहस्रों जातियाँ हुईं। जब यह रेंग-रेंग कर रेतीले मैदानों व जंगलोंमें पहुँचीं तब दो भागोंमें बँट गईं। एक तो उड़ने वाली दूसरी चार पैरसे भागने वाली। इन्हीं चार पैर वालोंमेंसे दुग्ध-पशु विकसित हुये। तब कहीं जाकर मानव प्राणीका प्रादुर्भाव हुआ। यह है वैज्ञानिकोंका सृष्टि-विश्लेषण। इस क्रमिक-विकासको छः दिनमें ही अथवा एक रात्रिमें ही सम्पादित हो जाना मानना बुद्धिग्राह्य नहीं। सम्भव है ईश्वरको महाशक्तिशाली प्रमाणित करनेके लिये धर्मके ठेकेदारोंने ऊपर कथित अल्प कालमें सृष्टि-सृजन वाली धारणा प्रचलित कर दी हो। जबसे जो हो, धरागर्भ और कन्दराओं में पाये गये लाखों वर्ष पूर्वके अवशेषोंका अध्ययन प्रारम्भ हुआ तबसे तो क्रमिक-विकासकी स्थापना और भी दृढ़ रूप से प्रमाणित हो गई। आज दूसरी उपपत्ति (देखिये इसी लेखकी प्रारम्भिक चौथी पंक्ति) इतनी स्पष्ट हो गई है कि प्रथम उपपत्ति हास्यपूर्ण व कुछ अंशों तक मूर्खतापूर्ण जँचने लगी है।

ज्ञातसे अज्ञातकी ओर

पाई गई सामग्रीका आश्रय न लें तो भी तर्क द्वारा दैनिक अनुभवोंकी सहायतासे 'क्रमिक विकास' प्रमाणित हो जाता है। किसी प्रौढ़ व्यक्तिको देखकर यदि हम कहने लगें कि वह तो प्रारम्भसे ही ऐसा रहा है जैसा आज है तो कितना झूँठ व भद्दा जचेगा। सभी जानते हैं कि एक समय वह था जब कि यह शिशु था। किसी प्रकारकी भाषा न बोल पाता था। यहाँ तक कि दो पैरों पर खड़ा होना भी दूभर था। आज मनुष्य-बालकको भाषा, लिपि, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, विज्ञान प्रभृति अगणित बातें सीखनेमें कुछ भी कष्ट व समय नहीं लगता क्योंकि ये सब बातें उसे समाजमें संचित मिल जाती हैं। यदि चार-छः बालकोंको जन्मसे ही ही निर्जन बनमें रक्खा जाय उन्हें भाषा-भाषियों, नगर, समाज आदिसे दूर-बहुत दूर रक्खा जाय तब पता चले कि उनका जीवन कैसा होगा। यह सोचना असंगत न होगा कि उनकी भाषामें शब्द-वाक्य न होंगे, केवल संकेत होंगे, वस्त्र-निर्माणकी कौन कहे, वस्त्र-प्रयोगकी ओर ध्यान भी जायगा या नहीं अनिश्चित है। स्वयं अनाज न उगाकर उगे उगाये अनाज फल-फूल, पक्षी, आदि खायेंगे, आदि। इससे इतना तो स्पष्ट है कि हम लाखों बातें अनायास ही सीख जाते हैं क्योंकि वे सब हमारे आस-पास चारों ओर पहलेसे ही मिल जाती हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या इस 'सामाजिक परम्परा' (Social Heritage) का भी प्रारम्भ है— क्या

कोई ऐसा भी दिन था जब कि मनुष्यके आस-पास चारों ओर लाखों बातें पहलेसे ही विद्यमान न थीं? उत्तर निस्सन्देहात्मक स्वरमें दिया जा सकता है कि हाँ, एक समय था जब मनुष्य अंग ढाकनेकी विद्या न जानता था। आग को देखते ही दूरसे भागता था। उसे पशु-पालन, अन्न-उत्पादन, दुग्धपान करनेकी कलायें विदित न थीं। विवाह तथा कौटुम्बिक जीवन, पतिव्रत या पत्नीव्रत आदिकी ओर उसका ध्यान स्वप्नमें भी न गया था। आदि। सारांश यह है कि एक समय था जब केवल आकृति भर मनुष्यवत् थी, पर आज मनुष्यमें पाई जाने वाली बातों (भाषा, लिपि, स्थापत्य, वस्त्र, कृषि, ज्योतिष, राजनीति, वैद्यक, संगीत, विज्ञान, धर्म, दर्शनादि) की झलक भी न थी। शरीर पर बड़े-बड़े बालोंयुक्त दिगम्बर प्राणी बीहड़ जंगलोंमें भयंकर पशुओंके बीच प्राण-रक्षाके निमित्त लुकता-छिपता फिरा करता था।

वह समय आजसे कितने वर्ष पूर्व था?

इस विषयमें वैज्ञानिकोंने बड़ी-बड़ी खोजें व तर्कें की हैं। आज तक की खोज-पड़तालोंका परिणाम बतलाता है कि सबसे प्राचीन मानव जावाद्वीप-निवासी (Pithecanthropus) अर्थात् एप-मानव है। कहा जाता है कि यह मनुष्य ५००,००० (पाँच) और दस लाख वर्ष पूर्वके बीच जीवित था। पीनके पुरातत्व विभागकी रिपोर्ट बतलाता है कि वहाँ का 'पैकिङ्ग-मानव' (Peckingman) भी अत्यन्त प्राचीन है। रोडेशियन मनुष्यका युग ढाई लाख वर्ष पूर्व आँका जाता है। फ्रेडरिक टिलनेके मतानुसार हैडलबर्गमें पाई गई नर-खोपड़ियाँ १५०,००० या २,०० ००० वर्ष पूर्वकी हैं। और भी अन्य आँकड़ोंके देखनेसे पता चलता है कि जावा-मानव सर्वप्राचीन है। किन्तु अभी हाल ही में हिमालयकी तराईमें होने वाली खुदाईसे पता चला है कि यहाँ पाई गई नर-खोपड़ियाँ जावा-मानव से भी पहलेकी हैं। कितने पहलेकी हैं, विवाद-ग्रस्त है। खुदाई होती जा रही है। वास्तविक निर्णय भविष्य करेगा।

उपर्युक्त विवरण पढ़ते समय अवैज्ञानिक व्यक्तियोंके मस्तिष्कमें दो प्रश्नोंका उठना अस्वाभाविक नहीं है। एक तो यह कि कैसे जाना कि अमुक खोपड़ी पाँच ही लाख वर्ष पूर्वकी है—कम या अधिककी नहीं। स्मरण रखना चाहिये कि वैज्ञानिक कल्पनाका आधा मनचाही उड़ान नहीं होता वरन् गणना द्वारा निर्णीत निष्कर्ष ही होता है। नर-कंकाल की समय-निर्युक्ति उस स्थानके आस-पासकी सामग्री पर निर्भर है जहाँ नर-कंकाल दबा पाया जाता है। कितनी मोटी सतह या चट्टानके नीचे पाया गया—उस सतह या चट्टानकी धातु किस चालसे निर्मित होती है, आदि। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या प्रमाण है कि पाँच लाख या दस लाख वर्ष पूर्वका मानव बोलना तक न जानता था? इसका प्रमाण यह है कि तत्कालीन मानवोंकी खोपड़ियोंमें नेत्र-केन्द्र, श्रवण-केन्द्र, घ्राण-केन्द्र, आदि सब केन्द्र पाये जाते हैं, परन्तु भाषा-केन्द्र नहीं पाये जाते। दूसरा प्रमाण यह है कि उनके जबड़े बहुत लम्बे थे। दाँत भी इतने बड़े-बड़े थे कि बोलनेमें अड़चन ही न पड़ा करती थी, अपितु असम्भव था। अधिक बोलनेकी आवश्यकता ही न पड़ा करती थी।

महान् आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस युगकी नर-संख्या अत्यन्त अल्प, इतनी अल्प कि कल्पनातीत थी। आज समस्त धरापृष्ठ पर मनुष्य छितराया हुआ है किन्तु उस समय एक सीमित दायरेमें था। कुछ इने-गिने मुट्ठी भर व्यक्तियोंसे बिखर कर इतने नर हो गये। एक बीजसे बढ़ते-बढ़ते जंगल तैयार हो गया है।

भाषा-विकास-विशारदोंका मत है कि संसारकी समस्त भाषाओंको मूल धातुयें मिलती-जुलती हैं जिससे पता चलता है कि बहुत पहले आदि कालमें सब मनुष्य एक साथ रहते व एक ही भाषा बोलते थे। जैसे-जैसे दूर यात्रायें करते गये भौगोलिक परिवर्तनोंके कारण आदिम मूल भाषाके उच्चारण, प्रयोग, शब्द-निर्माणमें घटा-बढ़ी होती गई यहाँ तक कि आज सर्वथा भिन्न दीख पड़ती है। जिस प्रकार एक ही शब्द 'गतः' के स्वरूप गवा, गओ, गयो, गौ, गया, गेलो आदि-आदि एक होते हुये भी भिन्न दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार लम्बे पैमाने पर लेकर जाँचा गया तो पता चला चला है कि संसार भरकी भाषायें एक भाषाके विभिन्न रूप हैं और वह एक ही भाषा है-आदिम संस्कृत। यह आजकी संस्कृतसे कुछ भिन्न थी। इसकी कुछ झलक धरातलके प्रथम ग्रंथ ऋग्वेदमें देखनेको मिलती है।

संसारके समस्त प्राचीन धर्मोंके तुलनात्मक अध्ययनसे पता चलता है कि उन सबकी पृष्ठ-भूमि (back-ground) एक-सी है। सभीमें नैसर्गिक शक्तियों जैसे सूर्य, अग्नि, वायु, वर्षा, तूफान, बिजली, महामारी, मृत्यु, और नागसे भय तथा उनकी पूजाका उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि आज भिन्न व विपरीत दीख पड़ने वाले धर्म आदि कालमें दूर-दूर न थे, अपितु एक ही में निहित थे। सारांश यह है कि एक समय वह था जब कि सब व्यक्ति एक ही स्थान पर रहते व एकसे ही धार्मिक भावों द्वारा ओत-प्रोत थे।

संस्कृति, भाषा और धर्मके उपर्कथित विश्लेषणसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज धरातल पर बगरे हुये मनुष्योंका विकास कुछ इने-गिने मुट्ठीभर व्यक्तियोंसे हुआ। वे लोग लाखों वर्ष पहले एक ही स्थान पर रहते थे, एक ही भाषा बोलते थे, और एक ही धर्मका अनुसरण करते थे, आदि।

वह सौभाग्यशाली धरा-खण्ड कौन था जहाँ इस प्रस्फुटित मानवताके शैशवका लालन-पालन हुआ ?

इस विवादग्रस्त रोचक प्रश्नका यदि सविस्तृत उत्तर लिखा जाय तो पूरा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। हमें यहाँ उन सबके निर्णयसे ही संतोष करना अच्छा होगा। प्रमाणित हो चुका है कि वह पुण्य भूमि जहाँ शिशु-मानव पालनेमें झूला, पामीर और तिब्बत (त्रिविष्टुप) का ऊँचा पठार है। यह स्थान यूरेशियाके ठीक मध्यमें पड़ता है। ऋग्वेदके वर्णन पामीर व हिन्दुस्तानके गिरि-प्रदेशोंसे मेल खाते हैं। काश्मीरके मनोहर उद्यान नन्दनवनके रूपमें, केशरवर्णी नवनीत बालायें अप्सराओंके रूपमें, गौरवर्ण प्रशस्त वक्ष युक्तहृष्ट-पुष्ट महत्वाकांक्षी व्यक्ति देवताओंके रूप में वर्णित हुये हैं। मैसोपोटामिया व असीरिया आदिके स्वामीको असुर कहा जाता था। वेदोंमें देवासुर-संग्राम का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। वेदोंका असुर यही असीरियाका अधिपति असुर था (राधाकुमुद मुकर्जी तथा जयचन्द विद्यालंकारके मतानुसार) जिसकी हाहाकारी सेनासे रक्षा पानेके लिये काश्मीराधिपति इन्द्र प्रायः मैदानी राजाओं (जैसे दुष्यन्त, दशरथ, अग्निमित्र, विक्रम, आदि) को बुलाया करता था।

हाँ, तो यह कहा जा रहा था कि तिब्बत व पामीरके पठारसे ही चारों दिशाओंकी ओर मानव-टोलियोंकी शाखायें फूटीं। एक शाख उत्तरकी ओर साइबीरिया होती हुई अमेरिकाके मेक्सिको व पीरू आदि तक चली गई। दूसरी पश्चिमकी ओर फ़ारस, अरब, तुर्किस्तान, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन आदि गई। तीसरी शाख दक्षिणकी ओर भारतमें उतरी, आदि। पर इतना स्मरण रखना चाहिये कि नर-शाखा प्रस्फुटनकी घटना देवासुर-संग्राम वाले युगसे बहुत पहले की है। देवासुर-संग्रामके विवरण पढ़नेसे पता चलता है कि मनुष्य इधर उत्तरी भारत तक उधर मिश्र, व टर्की तक फैल चुका था—सभ्यताका पूर्ण प्रकाश हो चुका था। मनुष्यको अपनी गऊ, सम्पत्ति व स्त्रीको शत्रुसे बचानेके लिये अग्निवास, बन्दूक, शतघ्नी (तोप) अग्नि-चूर्ण, (बारूद) आदिका प्रयोग विदित हो गया था। पशु-पालन ही एक मात्र जीविका-साधन न था, बल्कि कृषि, शिल्प, स्थापत्य, वाणिज्य आदि भी थे। तात्पर्य यह है कि ऋग्वेदके निर्माण-काल तक स्थिर अचल संस्कृतिकी पूर्ण स्थापना हो चुकी थी। ग्राम, नगर व साम्राज्यका अस्तित्व ही इस बातके प्रबल साक्षी है। उस संस्कृतिका अन्त हो चुका था जिसमें बनजारोंकी भाँति सदा चलना-ही-चलना रहता है—जमकर एक स्थान पर टिकना नहीं होता। बनजारा-संस्कृति (चलायमान संस्कृति) वैदिक (अर्थात् स्थिर) संस्कृतिसे बहुत पहलेकी है। दोनोंके बीच समयका बहुत बड़ा खड्ड है, शायद उतना ही बड़ा जितना कि वैदिक संस्कृति व आजकी संस्कृतिके बीच। बनजारा-संस्कृतिको वैदिक संस्कृतिकी जननी कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। बनजारा युगमें वे सब बातें न थीं जो आगे चल कर वैदिक युगमें हुईं, यथा कृषि, नगर साम्राज्य-योजना, विवाह व उत्तराधिकार-प्रथा आदि। बनजारा-युगका मनुष्य केवल एक बात जानता था-सैकड़ों-हजारों पशुओंका झुंड नदियोंके किनारे-किनारे (जहाँ पर घास व पानी दोनोंकी सुविधा थी) लिये फिरना। विकासवादियोंका अनुमान है कि पशुओंके दलको चरानेके लोभने ही पामीर या तिब्बत-निवासी एक भाषा-भाषी, एक धर्मी-भाइयोंको पठारके चारों ओर उतरने वाली नदियोंके किनारे-किनारे जाकर विलग हो जानेको विवश किया।

इस बनजारा युग (पशु-पालन) के पूर्व एक समय अवश्य रहा होगा जब कि मनुष्यको सहस्रों पशुओं पर नियंत्रण और स्वामित्व पा लेनेकी कला विदित न रही होगी। उस समय आखेटकी प्रधानता रही होगी। नदीसे पानी पीकर लौटने वाली पशु-पंक्तिके पिछले सदस्यको निर्बल पाकर दस-पाँच व्यक्तियोंने घेर लिया व मोथरे हथियारों द्वारा मारकर उसे अपने निवास-स्थान प्रकृति-निर्मित निवास (एक कन्दरा) तक ले आये। बस इतना पर्याप्त था। पशुपालन तो तभी सम्भव हो सका होगा जब कि कन्दरा-व्यक्तिने जंगली पशुओंके स्वभाव, प्रवृत्ति, बल आदि का निरीक्षण भली-भाँति कर लिया होगा। आखेट-युगका केन्द्र कन्दरा-जीवन रहा होगा।

कन्दरा-प्रवेशकी समस्या अनायास ही हल न हो गई होगी। युद्ध, गदा, पत्थर, द्वन्द्व आदि द्वारा कन्दराचारी जन्तुओं (जैसे भेड़िया, रीछ, धर्रा सिंह आदि) को निकाल कर स्वयं रहने लगना सम्भव न हो सका होगा। यह तो तभी सम्भव हो सका होगा जब कि नङ्ग-धड़ङ्ग भयंकर शीतसे पीड़ित मानव हाथमें जलती लकड़ीकी मसाल लिये कन्दराओंमें पिल पड़ा होगा। किसी आयुधसे न डरने वाले हिंसक पशु अग्निकेतु देखकर अवश्य ही निकल भागे होंगे और मनुष्य उन रिक्त कन्दराओंका स्वामी बन बैठा होगा।

यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्यको अग्नि-प्रयोग आदि कालसे विदित था। अग्नि-दर्शन, अग्नि-भय, अग्नि-साहचर्य, अग्नि-प्रयोग व अन्तमें अग्नि-उत्पादन आदि घटनाओंकी तिथियाँ हैं। प्रत्येक दो घटनाओंके बीच सहस्रों वर्षका खड्ड है। हमारी आजकी संस्कृतिका सारा श्रेय अग्नि-प्रयोग विदित होनेकी घटना पर है। यदि अग्नि-मैत्री न हुई होती तो निरस्त्र व नग्न मानवके हृदयसे सिंह व बघरीकी पैनी दाढ़ोंका भय किसी प्रकार भी दूर न हो पाता और न कन्दरा-प्रवेश हो पाता और न आज के दिन ही देखनेको मिलते। किन क्रमिक घटनाओंके फल-स्वरूप अग्नि-प्रयोग विदित हो सका होगा अगले लेखोंमें देखेंगे। यहाँ केवल इतना कह देना काफी होगा कि एक समय वह था जब कि मनुष्य अग्नि-ज्ञानसे शून्य था।

उस समय मनुष्य बेचारा कितना असहाय रहा होगा—कितना भयभीत रहता होगा। अन्य जीवोंके पास तो रक्षाके साधन थे भी, किन्तु हमारे कथा-नायकके पास मांसके दो हाथ, दो पैर और दो आतुर आँखोंके अतिरिक्त कुछ न था। गेंडा, हाथी तीव्र दन्त व प्रचण्ड सूँडके बल पर अपने भीमकाय शरीरसे वनस्पति रौंदते रहते। गाय, बैल, भैंस, आदि अपनी नुकीली सींगोंसे सिंहका सामना करते। शेर, चीता, और बाघके नख व दन्तका तो कहना ही क्या था। जिनके पास प्रबल अंगोंका अभाव था वे दौड़ने में इतने तेज़ थे कि शत्रु पकड़ न पाता। चूहा अपने विवरमें और शशक अपनी झाड़ीमें सुरक्षित था। बिल्लोके भाई-बन्धु उछलकर वृक्षोंपर चढ़ जाते और पक्षी आकाश में उड़ जाते। इस प्रकार सबके पास कुछ न कुछ सहारा था। बेचारा मानव ही असहाय था। सच पूछा जाय तो उसे खाना पानेकी उतनी अधिक चिन्ता न थी जितनी खा लिये जानेकी। हिंसक पशुओंके आक्रमणसे बचनेके लिये न तो वह द्रुत गतिसे भाग ही सकता था और न आकाशमें ही उड़ सकता था। उसके लिये केवल एक मार्ग खुला था—वृक्ष-शाखा-निवास।

धरातल पर अहर्निशि भीषण जन्तुओंका तुमुल युद्ध हुआ करता; हृदयकम्पी दहाड़े जंगलोंमें प्रतिध्वनित हुआ करते। तीव्र दाँत, नख, विषाक्त डंक, सशक्त सूंड, प्रबल पाश और रातमें चमकने वाली नुकीली आँखें मनुष्यको वृक्षोंसे नीचे न उतरने देतीं। वृक्षों पर ही सोता, उठता, बैठता, चलता, फिरता, दौड़ता, सहवास करता, पुत्र उत्पन्न करता, आदि। सब व्यापार वृक्षों पर ही हुआ करते, नीचे उतरनेको आवश्यकता ही न पड़ती, भोजनादि सब ऊपर ही मिल जाया करता। इस युगको यदि 'वृक्ष-निवास युग' कहें तो अनुचित न होगा।

वृक्षोंके ऊपर रहते समय सब आवश्यकताओंकी पूर्ति तो हो जाती थी केवल एक आवश्यकताकी पूर्ति न हो पाती थी—जलकी। इसके लिये उन्हें नीचे उतरना ही पड़ता था। यही कारण था कि वे प्रायः उन जंगलोंमें रहा करते थे जो जलाशयों, झीलों, सरिताओंके निकट होते। अगले लेखोंमें हम देखेंगे कि इस घटना–'सरितातट-वृक्षनिवास' ने नग्न मनुष्यको कितनी बातें सिखा दीं। जलाशयोंमें जंगल भरके पशु-पक्षी गोल बाँध कर पानी पीने आया

करते—सदा मेला-सा लगा रहता। मनुष्य शाखाओं व पत्तों-की ओटसे सब क्रीड़ायें देखा करता—प्रच्छन्न रूपसे कुछ बातें मस्तिष्कमें घर करती जातीं। प्रकृतिकी इस पाठशाला में हमारे नायककी ऐंद्रिक शिक्षा (sense training) हुआ करती—अनायास गुप्त रीतिसे शनैः-शनैः। यही था उसका किंडर गार्टन या मांटेसरी।

बस यही है हमारा आदि-मानव तथा उसका निवास-स्थान। इससे अधिक पीछे जाना मानवत्वकी सीमासे पीछे जाना है। बेचारेसे और अधिक छीना भी क्या जा सकता है। शरीर पर न छाल है न चमड़ा, जिह्वा पर न शब्द है न ध्वनि; हाथमें न लकड़ी है न पत्थर; साथमें न स्त्री है न पुत्र, रहनेको न घर है न गुफा आदि। आगामी लेख-मालामें हम देखेंगे कि इस असहाय भयार्त्त मानव, वृक्ष-निवासी मानव -- आदि मानवने किन घटनाओंके फल-स्वरूप शक्ति पाई? किस प्रकार उन हिंसक जन्तुओं पर प्रभुत्व पाया जिनसे डर कर वृक्ष-शाखाओं पर रहना प्रारम्भ किया था। सम्भवतः इसी युग व इसी मानवको मानसिक भावनाओंका चित्रण कवि प्रसादने कामायिनीमें किया है। पुराणकारों ने भी शायद इसे ही वट-पत्रशायी (सघन बरगदके पत्तों पर सोने वाला) कह कर पुकारा है। यह विषय कोई नया विषय नहीं है। सभी धर्मोंमें इस प्रकारकी समस्या पर विचार प्रकट किये हैं। कोई कहता है आदि मानव थे—बाबा आदम जिनकी संतति आदमी कह-लाई। कोई कहता है कि आदि-पुरुष-था-मनु जिसकी संतान कहलाई मानव। कुछ हो, इन सबमें थोड़ा-बहुत सच्चाईका अंश अवश्य है। सच्चाईका अंश यह है कि आजके अखिल मानव-वंशका विकास (कुछ इने-गिने मुट्ठी भर व्यक्तिसे, और उन इने-गिने मुट्ठी भर व्यक्तियोंका विकास) केवल एक पुरुष व एक स्त्रीसे हुआ। उस व्यक्तिका नाम कुछ भी दिया जा सकता है पर तथ्य यही है।

प्रश्न उठ सकता है कि वह एक पुरुष और एक स्त्री कहाँसे आये। यदि एक दम्पतिका होना सम्भव था तो कई दम्पतियोंका होना भी सम्भव हो सकता था। इसका उत्तर दो रूपोंमें दिया जा सकता है एक तो भूगर्भ-वेत्ताओं के शब्दों द्वारा दूसरे त्रिकालदर्शी ऋषियोंके शब्दों द्वारा। मैंने, बहुत दिन हुये, भूगर्भ-वेत्ताओंकी पुस्तकों में पढ़ा था कि धरातल पर जीव-सृष्टि प्रारम्भ हो जानेके क्षणसे लेकर आज तक चार या पाँच (ठीक स्मरण नहीं) 'हिम युग' (ice ages) आ चुके हैं। अर्थात् प्रति कई लाख वर्षों पश्चात् एक लम्बा युग ऐसा आता रहा है जिसमें समस्त धरा पृष्ठ हिमाच्छादित और जल-मग्न हो जाता रहा है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंसे मीलों लम्बे हिमशैलोंकी बाढ़ विषवत रेखाकी ओर प्रवाहित हुआ करती, समस्त वनस्पति प्राणी पशु, पक्षियोंको अपने नीचे दबाती, उन्हें निर्जीव करती चली जाती रही है। प्रत्येक हिमयुगकी समाप्तिके पश्चात् एक नवीन पहलेसे भिन्न सृष्टिका विकास होता आया है। यह कल्पना नहीं है, अपितु विश्व-विख्यात प्रमाणिक तथ्य है। दिव्य चक्षु वाले समाधि-मग्न अन्तर्मुखी ऋषियोंका कथन भी यही बतलाता है कि आज तक कई जल-बाढ़ें—प्रलय-आ चुकी हैं। इस अंतिम प्रलयमें सारी संस्कृतिके जलमग्न हो जाने पर केवल एक व्यक्ति शेष रह गया उसका नाम ही शेष पड़ गया। अन्तर केवल इतना है कि विकासवादी इसे आदि पुरुष कहते हैं और हमारे ऋषि शेष। किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वास्तविकता कुछ और है वह व्यक्ति शेष भी है और आदि भी। जहाँ वह पहली संस्कृतिका शेष (अंतिम) वह अगली संस्कृतिका प्रथम है। हमारे ऋषियोंने प्रथम पुरुषकी कल्पना तो सफलतापूर्वक करते हैं किन्तु उसके पश्चात् क्या हुआ इसका क्रमिक विवरण नहीं दिया और न सूत्र रूपमें बोलने वाले मितभाषी महर्षियोंके लिये ऐसा करना स्वाभाविक ही था। विकास-वादियों ने कन्दराओंमें पाये गये अवशेषोंको पढ़कर अलिखित इतिहासको पूरा रच लिया। अगले लेखोंमें उनके ही अनुसार मानव-विकासकी रोचक कहानी कही जायगी।

नक़ली सोना

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

नक़ली सोनासे हमारा अभिप्राय उन धातुसंकरोंसे है जो देखनेमें सोनेके समान चमकते हुये प्रतीत होते हैं। इनमेंसे कुछकी चमक तो बहुत दिनों रहती है, पर कुछ थोड़े दिनोंमें ही काले पड़ने लगते हैं। नक़ली सोनेके गहने हमारे यहाँ बहुत बनने लगे हैं। रुपये दो रुपयेमें गलेका हार मिल सकता है। दो-चार आनोंमें कानके कुंडल मिल जाते हैं। ग़रीब लोग इनको पहिन कर सन्तोष कर सकते हैं।

रासायनिक साहित्यमें अनेक पुराने और नए नुसख़े इस प्रकारके मिलते हैं जिससे नक़ली सोना तैयार किया जा सकता है। इनमेंसे कुछ नुसख़ोंका संकलन यहाँ दिया जाता है। ये सभी नुसख़े बहुधा सच्चे उतरते हैं, पर हाथकी सफ़ाई, गरमीकी मात्रा, और धातुओंकी मात्राका थोड़ा हेर-फेर सदा आवश्यक रहता है। प्रयोग करने वाले अपने अनुभवसे इनमें थोड़ा-सा परिवर्तन कर सकते हैं।

१— ताँबा और जस्ताके मिलानेसे पीतल बनती है। संकरमें दोनों धातुओंकी मात्रायें घटाने-बढ़ानेसे पीतलका पीला रङ्ग घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

ताँबा ११ भाग और जस्ता २ भाग मिलकर जो संकर बनता है उसके पत्रोंमें चटक सुनहरा रंग होता है।

२—ताँबा ७७-८५ भाग } दोनोंका संकर
जस्ता २३-१५ भाग }

३—ताँबा ९४.८ भाग, जस्ता २.८ भाग, सीसा १.६७ भाग और लोहा १.३४ भाग। कहा जाता है कि यह संकर वायुसे खराब न होगा, वस्तुओंको नाइट्रिक एसिडमें डुबोओ, और अम्ल उनमें मिलने दो, फिर सुखाकर पॉलिश कर लो।

४ – शीरा, नौसादर, और पिसे कोयलेके साथ निम्न धातुओंको गलाओ—

प्लैटिनम ४ भाग　　　टिन २ भाग
शुद्ध ताँबा २½　　　शुद्ध सीसा १½
शुद्ध जस्ता १

यह बिलकुल सोना ऐसा बनता है।

५—प्लैटिनम २ भाग, चाँदी १ भाग, ताँबा ३ भाग। विधि नुसखा ४ के समान है।

६—१०० भाग (तौलमें) शुद्ध ताँबा

१४ भाग	टीन या जस्ता
६ भाग	मैगनीशिया
५६ भाग	नौसादर
१८ भाग	दाहक चूना
९ भाग	क्रीम आव् टार्टार

तांबेको गलाओ और धीरे-धीरे मैगनीशिया, नौसादर दाहक चूना, और क्रीम आव् टार्टार अलग-अलग पीसकर मिलाओ। आधे घंटे तक टारो, अब टीन या जस्ताको टुकड़े-टुकड़े करके डालो, और टारते जाओ जब तक कि सब न गल जावे, घरियाको ढाँक दो और मिश्रणको ३५ मिनट तक गली हालतमें रक्खा रहने दो, ऊपरकी मैलको अलग करके साँचोंमें ढाल लो। यह अच्छा तनेदार, घनवर्धनीय है और इसका रंग खराब नहीं होता।

७—शुद्ध ताँबा	१०० भाग
जस्ता या टीन	१७ "
मैगनीशिया	६ "
नौसादर	३.६ "
दाहक चूना	१.८ "
क्रीम आव् टार्टार	९ "

विधि नुसखा ६ की भाँति।

८— क्राइसो चौक—या सुनहरा ताँबा—

	१	२
ताँबा	९०.५	५८.६८
जस्ता	७.९	४०.२२
सीसा	१.६	१.९

इसका रङ्ग सोनेका-सा है, पर हवामें रखने पर ख़राब हो जाता है।

९—ताँबा ९५ भाग　　　टीन ५ भाग

१०— ताँबा और एण्टीमनीका संकर—

ताँबा　　　१०० भाग

एण्टीमनी ६ भाग

पहले ताँबाको गला लो और फिर उचित मात्रा तक गरम करनेके उपरान्त एण्टीमनी मिलाओ, जब एण्टीमनी गलाकर ताँबेमें एकरस हो जाय तो इसमें कुछ कोयलेकी राख, मैगनीशियम और लाइमस्पार मिलाओ, बस सोनेके समान धातु बन जावेगी।

११—ताँबा १६ भाग
प्लैटिनम ७ भाग
जस्ता १ भाग

इन तीनोंके धातुसंकरमें सुनहरी चमक होती होती है। मामूली नाइट्रिक ऐसिडका प्रभाव भी इस पर नहीं पड़ता।

१२—चाँदी २.४८ भाग
प्लैटिनम ३२.०२
ताँबा ६५.५०

इस संकरमें ६ कैरट गोल्डका चमक होती है, और गरम तीव्र नाइट्रिक ऐसिडका प्रभाव नहीं पड़ता।

१३—ताँबा ७२० भाग
निकेल १२५
बिस्मथ ६
जस्ता ६०
गरम लोहा २०
टीन २०

१४—सौवेजका नुसखा—

ताँबा	५८ भाग	टिन	२ भाग
जस्ता	२७	एल्यूमिना	०.५
निकेल	१२	बिस्मथ	०.५

सबको अलग-अलग गलाओ और फिर मिलाकर एक बर्तनमें उंडेल लो, इसमें अच्छी रूपहली चमक है और ख़राब भी नहीं होता।

१५—नक़ली सोनेका वर्क़ (लीफ़-ब्रास) यह डचगोल्ड भी कहलाती है।

ताँबा ७७.७५ ८४.५ भाग
जस्ता १५.५—२२.२५ भाग

मात्राके अनुसार इसमें सुनहरापन होता है।

१६—

	चटकीला	शुद्ध सोनासा	पीला सोना
ताँबा	८४.५	७८	७६
जस्ता	१५.६	२२	१४
ताँबा	९१	८६	८३
जस्ता	५	१४	१७

१७—मैनहाइम गोल्ड—इसमें ताँबा, जस्ता और टीन होते हैं।

	१	२	३	४
ताँबा	८३.७	८९.८	८८.९	७५
जस्ता	९.३	९.६	१०.३	२५
टीन	७.०	०.६	०.८	—

कुछ दिन हुये पीले बटनोंके बनानेमें इसका व्यवहार बहुत किया जाता था। पर अब इससे भी अच्छे धातु-संकर बन गये हैं।

१८.—मौक गोल्ड—

(क) ताँबा १६ भाग
प्लाटिनम ७ भाग
जस्ता १ भाग

(ख) ताँबा १०० भाग, टीन १७ भाग, मैगनीशिया ६ भाग, नौसादर ३.६ भाग, दाहक चूना १.८ भाग, पोटाश बाइटार्ट्रेट ९ भाग।

ताँबा पहले गलाया जाता है, और एक-एक करके सब चीज़ें छोड़ी जाती हैं और सबसे बादको टीन। सबको ३५ मिनट तक गलाया जाता है।

१९—मोज़ेक गोल्ड—(हैमिल्टन धातु)

ताँबा १०० भाग, जस्ता ५०-५५ भाग, घरियामें पहला आधा जस्ता रखो, और फिर इसपर सब ताँबा। इसपर फिर सुहागाकी तह जमा दो। अब कमसे कम आँचसे इसे गलाओ। शेष आधे जस्तेके टुकड़े अलग गलाओ और अब पहले गले हुए मिश्रणमें थोड़ा-थोड़ा करके मिला दो और बराबर टारते जाओ।

इसका रङ्ग बिलकुल सोनेका सा होता है।

२०—फ्रैंच गोल्ड—

१०० भाग बातौं गलाओ। इसमें टारते हुए ६ भाग मैगनीशिया, ३.६ भाग नौसादार, १.८ भाग चूना और ९ भाग टार्टार मिलाओ। अच्छी तरह टारनेके बाद १७ भाग दानेदार जस्ता मिला दो। सबको १ घंटे गला रहने

दो, और बादको ऊपरका फेन अलग करके संकरको ठंडे बर्तनमें उँडेल लो।

पॉलिश करने पर यह संकर बिलकुल सोनेका-सा लगता है, और ढलाईके कामका भी खूब है।

२१—ओरमोलू—

तॉँबा ५८·३

टीन १६·७

जस्ता २५·३

एनेमेलके बर्तनों पर सुनहरा रङ्ग चढ़ानेके काम में यह विशेष आता है।

२२—पिञ्चबेक—

	१	२
(१) तॉँबा	८८·२	९३·६
जस्ता	११·२	६·४
अथवा		
(२) तॉँबा	२०·	१·२८
जस्ता	—	१·७
पीतल	१.०	०·७

(३) तॉँबा ५ पौंड, जस्ता १ पौंड।

२३—प्लैटिनम और तॉँबेकी संकरधातुयें भी बहुधा पीले सुनहरे रङ्गकी होती हैं और हवामें मैली नहीं पड़तीं।

१० भाग चाँदीको ४५ भाग तॉँबेके साथ गलाओ। इसमें १८ भाग पीतल और ६ भाग निकेल छोड़ दो। अब जितना अधिक तापक्रम कर सको करो, और फिर १८ भाग प्लैटिनम ब्लैक मिला दो।

केंचुआ

(ले०—श्री रमेशचन्द्र शर्मा)

आज कल बरसातके दिनोंमें ज़रा पानी बरसनेके बाद किसी बाग-बगीचे, खेत अथवा कच्ची ज़मीनमें घूमने जाइए आपको सैकड़ों केंचुए ही केंचुए ज़मीन पर रेंगते हुए मिल जायँगे। कभी-कभी तो उनसे बचकर रास्ता चलना भी एक समस्या हो जाती है। अपने मटमैले रङ्ग तथा गिजगजे शरीरके कारण केंचुआ अनेक मनुष्योंके हृदयमें एक घृणा-का भाव उत्पन्न कर देता है। उसे छूने या देखनेकी भी इच्छा नहीं होती। परन्तु ईश्वरकी सृष्टिमें कोई भी चीज़ बेकार नहीं है। किसानोंका वह परम मित्र है। अपने बिलों से वह ज़मीनको पोली कर देता है, जिससे कि पेड़ोंकी जड़ें ज़मीनके अन्दर आसानीसे फैल सकें। इसके अलावा अपना बिल खोदते समय अपने मलके साथ-ही-साथ वह कितनी ही नीचेकी मिट्टी ऊपर निकाल देता है। डारविन ने हिसाब लगाया था कि प्रति एकड़ लगभग २८० मन मिट्टी प्रति वर्ष केंचुओं द्वारा ऊपर लाई जाती है। एक एकड़में प्राय: ५३,००० केंचुए होते हैं। मिट्टीमेंसे सड़ी-गली चीज़ें खा कर—जो कि उसका एक मात्र भोजन है—वह एक प्रकारसे सफाई भी रखता है। अब हमें शायद मानना पड़े कि प्रकृतिमें कोई भी प्राणी व स्तवमें घृणाके योग्य नहीं है।

साधारणतः लोग समझते हैं कि केंचुए बरसातमें ही होते हैं। कुछ अनजान भाई इससे भी आगे बढ़े हुए हैं, और कहते हैं कि केंचुए पानीके साथ बरसते हैं। शायद इसका कारण यह है कि वे उनको केवल बरसातमें ही देखते हैं। इसीसे मिलता-जुलता ख्याल लोगोंको मेढकके बारेमें था। मेंढककी तरह केंचुआ भी बारहों मास मिलता है, परन्तु कहीं गीली ज़मीनके अन्दर अपने बिलोंमें ही छिपा पड़ा रहता है, और केवल रातमें निकलता है। बरसातके दिनोंमें उनके बिलोंमें पानी भर आता है इसलिए बेचारों को लाचार बाहर निकलना पड़ता है। दिनमें उनके शत्रु, उनको देखते ही गप्प कर जाते हैं। निर्बल केंचुएके पास शत्रुका मुकाबला करनेका कोई साधन नहीं हैं। इसलिए बचनेका और कोई उपाय न देख कर बेचारोंको रात्रि हीकी शरण लेनी पड़ती है। बरसातमें निकलनेके बाद उनकी क्या दशा होती है, यह सभी जानते हैं।

भारतवर्षमें केंचुआकी अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। फैरीटाइमा पौसथुमा भारतवर्षमें प्रायः हर जगह पाया जाता है, तथा वही भारतीय केंचुओंकी मुख्य जाति है। इसके अलावा हैलोड्रिलस जातिके केंचुए भी काफी पाये जाते हैं। अँग्रेजी केंचुओंकी मुख्य जाति लम्ब्राइकस है।

फैरीटाइमा पौसथुमाके शरीरकी लम्बाई ४″ से लेकर ६″ तक होती है। उसका रंग मटमैला भूरा होता है। नीचेकी ओर रंग कुछ पीलापन लिए हुए होता है। शरीर के अगले सिरे पर मुँह तथा पिछले सिरे पर गुदाद्वार होता है। केंचुओंमें कोई एक मूत्र-द्वार नहीं होता। मुँहके ऊपर एक छोटासा मांस का लोथड़ा लटका रहता है, जो मुँहको ढके रहता है। इसे प्रौसटोमियम कहते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर पर और भी अनेक छोटे-छोटे छेद होते हैं, जिनमेंसे
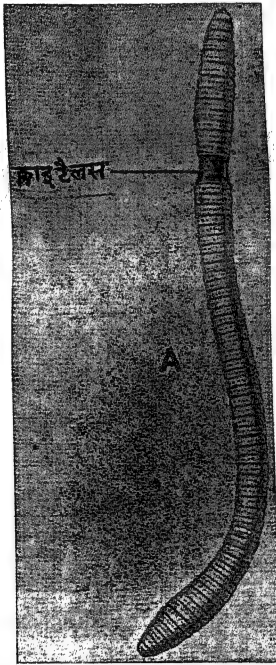
अधिकांश तो शरीरके भीतर की जगह 'औदरीय गुहा' (coelome) से सम्बन्धित होते हैं, तथा कुछ जननेन्द्रिओंसे। शरीरके अगले हिस्सेमें एक मज़बूतसी पट्टी होती है, जिसे कि क्लाइटैलम (Clitellem) कहते हैं। यह रति-क्रिया तथा ककून बनानेसे सम्बन्ध रखती है।

शायद हमारे पाठकोंको यह जान कर आश्चर्य हो कि इस तनिकसे जीवके शरीरमें भी पाचक, रक्तवाहक, मूत्र वाहक, मस्तिष्क इत्यादि सब अंग तथा अवयव होते हैं। इस छोटेसे लेखमें उन सबका वर्णन कर सकना प्रायः असम्भव-सा ही है, परन्तु फिर भी मैं यथासम्भव उनका वर्णन करनेका प्रयत्न करूँगा।

पाचन-संस्थान :—अब आप ज़रा अपनी कल्पना-शक्ति दौड़ाइये। अन्दाज़ लगाइये कि एक चौड़ी-सी नली के अन्दर एक पतली-सी नली पड़ी हुई है, जैसे कि पेन्सिलकी लकड़ीके भीतर उसका लेड। केंचुएकी शरीर-रचना भी इससे मिलती-जुलती है, परन्तु वह पेन्सिलकी तरह ठास नहीं है। उसकी ऊपरकी खाल तो ऊपरी नली अथवा पेन्सिलकी लकड़ीके समान है, तथा भीतरकी नहना भोजनकी पाचन-नलिका अथवा भीतरी नली पेन्सिलके लैडके समान है। खाल और पाचन-नलिकाके बीचमें एक खाली जगह होती है, जिसे औदरीय गुहा (coelome) कहते हैं। औदरीय गुहामें एक तरल पदार्थ तथा अनेक अंग जैसे जननेन्द्रिय इत्यादि रहते हैं।

परन्तु ऊपरके विवरणसे यह न समझ लेना चाहिये कि केंचुएकी पाचन-नलिकाकी चौड़ाई हर जगह एक-सी ही होती है और जानवरोंकी तरह इसके भी अनेक भाग होते हैं, तथा उन सबका अलग-अलग लम्बाई तथा चौड़ाई होती है, यद्यपि सब एक ही सीधमें होते हैं।

पाचन-नलिका (alimentary canal) के पास

१—मुख गुहा (buceal cavity)

२—ग्रसनिका (pharynx) यहाँ पर आकर भोजनमें एक प्रकारका पाचक रस मिलता है।

३—अन्न प्रणाली (oesophagus)

४—गिजर्ड (gizzard) यह केंचुएकी "पाचन-नलिका" का एक विशेष भाग है, जो भोजन कुचलनेमें वही काम करता है, जो दाँत, और इसलिए इसकी माँस-पेशियाँ बहुत कड़ी तथा मजबूत होती हैं।

परन्तु प्रकृतिमें केवल ऊपरके ढङ्गसे सन्तानोत्पत्तिका कार्य नहीं चल सकता, क्योंकि न तो यह सदा सम्भव ही है, और न उतना अच्छा ही है, जितना रज-कीटाणु और

शुक्र-कीटाणुके संयोगका । अतः केंचुओंके साधारणतः सन्तानोत्पत्तिका कार्य दूसरे वाले ढङ्गसे ही हुआ करता है।

केंचुओंमें भी स्त्री और पुरुषके अंग अलग-अलग होते हैं, परन्तु नर और मादा केंचुए अलग-अलग नहीं होते। एक ही केंचुएमें, स्त्री और पुरुष अंग दोनों होते हैं। वनस्पति-जगतमें तो यह एक साधारण बात है, परन्तु जन्तु-जगतमें ऐसे जानवर थोड़े ही मिलेगें। ऐसे प्राणियोंको जिनमें दोनों लिङ्ग हों, हरमाफ्रोडाइट कहते हैं।

प्रत्येक केंचुएमें दो जोड़े अंडकोश (testes) तथा एक बीजकोष (ovary) होता है। प्रकृतिने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि एक ही केंचुएके शुक्र-कीटाणु और रत-कीटाणु न मिल सकें क्योंकि यदि ये दोनों दो भिन्न-भिन्न प्राणियोंमेंसे आते हैं तो प्रायः उत्तम सन्तान पैदा होती है। उत्तम संतानका कारण यह है कि जब शुक्र-कीटाणु और रतः-कीटाणु एक ही प्राणीमेंसे आयेंगे तो उनसे उत्पन्न संतानमें एक ही प्राणीके गुण रहेंगे। दूसरी तरफ जब वे दो प्राणियोंमेंसे आयेंगे तो उनसे उत्पन्न संतानमें दो प्राणियोंके गुण होंगे। अस्तु, केंचुओंमें भी रति-क्रिया होती है जिससे कि शुक्र-कीटाणुओंका आदान-प्रदान होता है।

रति-क्रियाके बाद क्लाइटैलममेंसे एक तरल पदार्थ निकलता है, जो सूखने पर केंचुएके शरीरको चारों ओरसे एक नली-सी बन कर घेर लेता है। केंचुआ इस नलीको केंचुलकी भाँति छोड़ देता है। इसके छोड़नेके साथ-ही साथ अपने रज-कीटाणु और दूसरे केंचुएसे लिये हुए शुक्र-कीटाणु भी निकाल देता है, जो उसी नलीके अन्दर बन्द हो जाते हैं। केंचुएके शरीरमेंसे छूटते ही यह नली रबर की तरह सिकुड़ कर एक छोटेसे अंडाकार रूपमें परिणत हो जाती है जिसे "ककून" कहते हैं। इसी "ककून" के अन्दर एक छोटेसे केंचुएका विकास होता रहता है, जो समय आने पर उसमेंसे निकल पड़ता है। मेंढकोंकी तरह इनमें काया-पलट (metamorphosis) नहीं होती।

५—अँतड़ी (intestine) :—यह पाचन नलिका का सबसे चौड़ा, लम्बा तथा आखिरी भाग है। पाचन-क्रियाका अधिकांश कार्य यहीं पर होता है। भोजनको पचानेके बाद इसकी दीवारें भोजनके रसको आत्मसात् कर लेती हैं। बचा-खुचा भोजन तथा उसके साथ ली हुई मिट्टी गुदा-द्वारके रास्ते बाहर निकाल दी जाती है जो प्रायः केंचुओंके बिलोंके मुँह पर दिखलाई देती है।

मूत्र-वाहक संस्थान :—केंचुओंमें अन्य उन्नत जीवों की तरह वृक्क (kidney) नहीं होते। उनके बदले सफ़ाईका कार्य सैकड़ों छोटी-छोटी नलियों द्वारा होता है जिनको नैफरीडिया कहते हैं और जो कितने ही छिद्रों द्वारा बाहरको खुलती है।

नाड़ी-संस्थान :—केंचुओंका मस्तिष्क बहुत ही साधारण होता है। यह एक छोटेसे छल्लेके रूपमें होता है। उसके आँखें नहीं होतीं परन्तु उसमें अँधेरे और रोशनीका ज्ञान प्राप्त कर सकनेकी शक्ति होती है।

रक्तवह संस्थान :—केंचुएके खूनकी नलियोंमें तीन मुख्य होती हैं, जिनमेंसे एक तो ऊपर तथा दो नीचे होती हैं।

डौरसल ब्लड वेसेल—यह अँतड़ीके ऊपर होती है, तथा सबसे बड़ी खूनकी नली है। यदि हम केंचुएकी पीठ को ध्यानपूर्वक देखें। तो यह खूनकी नली एक चौड़ी-सी लाल रेखाके रूपमें दिखलाई पड़ती है। काफ़ी मोटी तथा खालके नज़दीक होनेके कारण यह बाहरसे भी चमकती है।

(१) वैन्ट्रल ब्लड वेसेल—यह अँतड़ीके नीचेकी ओर होती है।

(२) सब-न्यूरल ब्लड वेसेल—यह वैन्ट्रल ब्लड वेसेलके नीचे एक स्नायु (वैन्ट्रल नर्व कॉर्ड) तथा खालके बीचमें होती है।

सन्तानोत्पत्ति :—केंचुओंमें सन्तानोत्पत्तिका ढङ्ग बड़ा ही विचित्र है।

यदि संयोगवश किसी केंचुएके दो टुकड़े हो जायँ तो वह मरेगा नहीं, बल्कि कुछ समय बाद दोनों टुकड़े एक-एक पूर्ण केंचुएमें परिवर्तित हो जायँगे। इस क्रियाको अँग्रेज़ीमें रीजेनरेशन कहते हैं।

लकड़ीपर पॉलिश

[ले०—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री रामयत्न भटनागर, एम० ए०]

स्टेन लगानेके लिए भारतवर्षमें साधारणतः चिथड़ोंका प्रयोग किया जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि ये धुले हों, इनमें तेल या अन्य चिकनाहटका नाम भी न रहें, नहीं तो स्टेन लगानेमें कठिनाई पड़ सकती है।
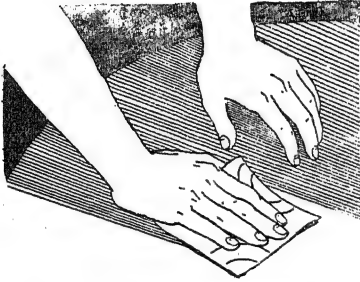
चित्र १—रेगमालसे रगड़ना।
पॉलिश करनेके पहले वस्तुको अच्छी तरह बारीक रेगमालसे रगड़ लो।

विदेशमें स्टेन बराबर बुरुशसे लगाया जाता है। इससे काम भी साफ उतरता है और हाथ भी साफ़ रहता है। चौड़े चिपटे बुरुशका इस्तेमाल करना चाहिए। ४, ४½ या ५ इञ्च चौड़ा बुरुश बड़े कामोंके लिए ठीक होगा (जैसे दरवाज़ोंके लिए)। छोटे कामोंके लिये छोटे बुरुशकी आवश्यकता पड़ती है। बुरुश ज़रा बड़ा ही रहे तो अच्छा है।
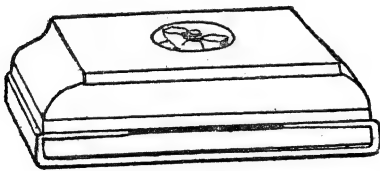
चित्र २—रेगमाल करनेका बट्टा।
बड़े कामोंके लिये यह बहुत उपयोग होता है। इसे स्वयं लकड़ीसे बना लेना आसान है। इसकी पेंदीमें रेगमालकी कई तहें बँधी रहती हैं। जैसे-जैसे रेगमाल खराब होता चलता है तैसे-तैसे एक-एक परत निकाल दिया जाता है।

बुरुशोंकी सफ़ाई—रासायनिक घोलोंको, विशेषकर-के कास्टिक पड़े घोलोंको, साधारण बुरुशसे नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि इससे बाल खराब हो जाता है। मूँज, खस, या विशेष फाइबर (कृत्रिम मूँज) के बने बुरुशका इस्तेमाल करना चाहिए। यदि बिना कॉस्टिक वाले रासाय-

चित्र ३—गर्द झाड़ना।
रेगमाल करनेके बाद सब गर्दको अच्छी तरह दूर कर देना चाहिए। इसमें बुरुशसे बड़ी सहायता मिलती है।

निक घोलोंमें बालके बुरुश इस्तेमाल किए जायँ, विशेषकर यदि घोल फीके हों तो उचित सेवासे बुरुश बहुत दिन
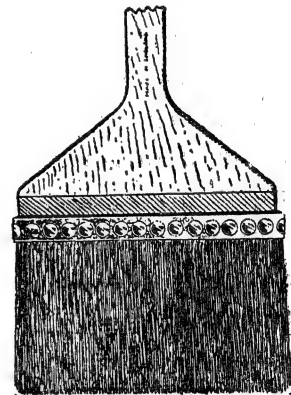
चित्र ४—स्टेन पोतनेका बुरुश
स्टेनको चौड़े बुरुशसे पोतना चाहिए जिसमें रंग सब जगह एक-सा उतरे।

चलेंगे। इसलिये काम हो जाने पर बुरुशको तुरन्त स्वच्छ

पानीसे अच्छी तरह धोना चाहिए। फिर उसे पोंछकर सूखने देना चाहिए और अन्तमें बुरुशके बालोंमें कोई न चिकटाने वाला तैल (वेसलिन, या पैराफिन ऑयल) ज़रा-सा लगा देना चाहिए फिर काम पड़ने पर बुरुशको पहले कागज़पर चलाकर सब तेल पोंछ डालना चाहिए।

अन्य बुरुशोंको भी धो-पोंछ कर रखना चाहिए। जल-स्टेन वाले बुरुशोंको पानीसे, स्पिरिट-स्टेन वाले बुरुशोंको स्पिरिटसे और तेल-स्टेन वाले बुरुशोंको मिट्टीके तेल या पेट्रोलसे धोना चाहिए।
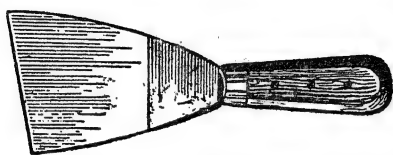
चित्र ५—पुटीन खुरचनेका चाकू।

बहुत रूखे कामपर पतली पुटीन पोतकर जमने दिया जाता है और तब उसे इस प्रकारके चाकू से खुरच दिया जाता है

अस्तर—लकड़ीपर स्टेन लगाने और रेगमाल करनेके बाद उनके असंख्य छोटे-छोटे रंध्रोंको भरनेके लिए कोई मिट्टी या अन्य वस्तु लगानी पड़ती है। सभी लकड़ियोंमें रेशे और कोष (सेल) होते हैं। जब वृक्ष जीवित रहता है तब इन कोषोंमें जल, रस या रजन भरा रहता है। जब लकड़ी काटकर सूखनेके लिए रख दी जाती है तब ये कोष खाली हो जाते हैं और उनमें केवल हवा रह जाती है। जो कोष लकड़ीकी सतहपर पड़ते हैं वे हमें नन्हें-नन्हें रन्ध्रके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। कुछ लकड़ियोंमें (जैसे सागौन, महोगनी, अखरोट आदिमें) ये रंध्र कुछ बड़े होते हैं। घने रेशे की लकड़ियोंमें (जैसे शीशम, जामुन, साखू आदिमें) ये रन्ध्र बहुत छोटे होते हैं। इन रंध्रोंको भरनेकी आवश्यकता पड़ती है।

रन्ध्रोंके भरनेकी क्रियाको उत्तरी भारतवर्षमें अस्तर करना कहते हैं। 'अस्तर' फ़ारसी शब्द है जिसका अर्थ है नीचेकी तह, या दोहरे कपड़ेमें नीचेका कपड़ा। इसलिये 'अस्तर' शब्दके प्रयोगसे ऐसा बोध होता है कि पॉलिशके नीचे कोई दूसरी तह फैला या बिछा दी जाती है। परन्तु बात ऐसी नहीं है।

अंग्रेज़ीमें इसी क्रियाको 'फ़िलिङ्ग' कहते हैं जिसका अर्थ ही 'भरना' है। भरनेवाले मसालेको 'फिलर' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'भरनेवाला'। इसलिये ये शब्द अधिक उपयुक्त हैं।

तो भी हम इस पुस्तकमें अस्तर शब्दका ही प्रयोग करेंगे। अभिप्राय और करनेके ढङ्गको जान लेने पर पाठकको कोई कठिनाई न होनी चाहिए, क्रियाका नाम चाहे कुछ भी हो।

अस्तर करनेके मसाले (फिलर) दो प्रकारके होते हैं, लेईकी तरह गाढ़े और तरल। गाढ़े मसाले साधारणतः अर्धपारदर्शक, परन्तु कभी-कभी अपारदर्शक होते हैं। तरल मसाले सदा पारदर्शक होते हैं। गाढ़े मसाले खुले रेशेकी लकड़ियोंपर लगाए जाते हैं। तरल मसाले साधारणतः घने रेशेकी लकड़ियों पर लगाए जाते हैं।

अस्तर करनेका अभिप्राय यह है कि लकड़ीके सब रंध्र भर जायँ जिसमें पॉलिश या वार्निश उनमें न घुसे। यदि अस्तर न किया जाय और लकड़ी पर पॉलिश या वार्निश लगाई जाय तो रेशों पर की पॉलिश ऊपर ही रहेगी, परंतु कोषोंपरकी पॉलिश अन्दर घुस जायगी। जहाँ पॉलिश भीतर चली जायगी वहाँ चमक नहीं आएगी। यदि बार-बार पॉलिश लगाई जाय तो चमक तो सब जगह आ जायगी, परन्तु लकड़ी कहीं ऊँची, कहीं नीची हो जायगी—उस पर छोटी-छोटी लहरें-सी दिखलाई पड़ेंगी। हाँ, यदि बीच-बीचमें कई बार रेगमाल करके उभरी पॉलिशको बार-बार काट दिया जाय तो बात दूसरी है। तब अच्छी पॉलिश आ सकती है। यह भी अस्तर करनेका एक ढङ्ग है और ऐसे कभी-कभी किया भी जाता है, विशेषकर घने रेशे की लकड़ियों पर, परन्तु पैसेको और समयकी बचतके ख्यालसे अस्तर कर लेना ही ठीक होता है।

परन्तु अस्तर यथासंभव पूर्णतया पारदर्शक हो जिसमें लकड़ीकी स्वाभाविक सुन्दरता छिपने न पाए।

बढ़िया काममें स्टेन करनेके बाद अस्तर किया जाता है। परन्तु सस्ते काममें स्टेन और अस्तरको एक साथ ही लगाया जाता है। ऐसा करनेसे स्टेन बहुत दूर तक तो

नहीं घुस पाता, परन्तु जितनी दूर भी यह घुसता है वह सस्ते कामोंके लिए काफ़ी है।

अच्छे कामोंमें अस्तर करनेके बाद होशियार कारीगर प्रवर्द्धक-ताल (मैगनीफ़ाइङ्ग ग्लास या आतिशी शीशा) से लकड़ीको देख लेते हैं। यदि वे देखते हैं कि रंध्र ठीक-से नहीं भरे हैं तो उस पर एक बार फिर अधिक सावधानी-से अस्तर करते हैं।

अस्तर लगानेकी रीति—अस्तर बनानेके नुसखे आगे दिए गए हैं। पहले उनके लगानेकी रीति बतलाई जायगी।

अस्तरमें आवश्यकतानुसार रङ्ग मिलाओ जिसमें वह लकड़ी (स्वाभाविक या स्टेनकी हुई) के रंगकी हो जाय।
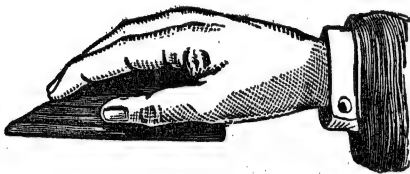
चित्र ६—नुकीली पोटली।

कोने-अँतरे वाले कामोंके लिए नुकीली पोटली चाहिए। इसके बनानेकी रीति आगामी दो चित्रों में दिखलाई गई है।

फिर अस्तरमें बेनज़ीन या पानी (जैसी इसकी बनावट हो, आगे देखो) इतना डालो कि यह गाढ़ा ही रहे, परन्तु ब्रशसे लगाया जा सके। यह बहुत आवश्यक है कि अस्तर न बहुत ढीला हो और न बहुत गाढ़ा। इसलिए अस्तरको पहले लकड़ीके किसी छिपे भाग पर या उसी जाति की लकड़ीके एक टुकड़ेपर लगाकर देख लो। घने रेशेकी लकड़ियों पर पतले मसालेकी आवश्यकता होती है, खुले रेशेकी लकड़ियों पर गाढ़ेकी।

कड़े ब्रशसे अस्तरके मसालेको लकड़ी पर लगाओ और अच्छी तरह रगड़ो। पहले इसे रेशोंकी दिशामें लगाओ और फिर रेशोंके आर-पार (देखो चित्र १८ और १६)। यदि मसाला अच्छी तरहसे रगड़ा न जायगा तो लकड़ीके कोषों (रन्ध्रों) में यह घुस न पाएगा, उनमें हवा ही भरी रह जायगी। जब मसाला ठीक गाढ़ा रहता है तब यह लकड़ीके रन्ध्रोंमें बड़ी आसानीसे घुसता है और रंध्र भरते चले जाते हैं।

अस्तर लगानेके कुछ मिनट बाद वह जम-सा जाता है और उसकी तरल रहनेवाली झलक मिट जाती है। उस समय उसे पोंछ डालना चाहिये। इसके लिए लकड़ीका घूआ या लच्छ एकसेलसियर, या बोरे या घोड़ेकी दुमके बालका इस्तेमाल करना चाहिये। लकड़ीके रेशोंके आर-पार ही हाथ चलाना चाहिए और सो भी इस तरह कि गड्ढों और रन्ध्रोंमेंसे अस्तर उखड़ने न पाए, केवल फालतू अस्तर (जो लकड़ीके रेशोंके ऊपर हो) साफ़ कट जाए। यदि फालतू अस्तर लगा रह जायगा तो पॉलिश धुँधली आएगी। इसके बाद लकड़ीको कपड़ेसे भी पोंछ दिया जाता है। ऐसा कर देनेसे पीछे रेगमालसे अधिक रगड़ना नहीं पड़ता।

बेनज़ीन पड़े अस्तरमें कभी-कभी देर हो जानेके कारण अस्तर इतना कड़ा हो जाता है कि बोरे आदिसे रगड़ने पर कटता नहीं। ऐसी दशामें उस पर बेनज़ीन पोत कर उसे बोरे आदिसे रगड़ना चाहिए। फिर अन्य स्थानोंमें थोड़ी-ही-थोड़ी दूर तक अस्तर लगा कर उसे पोंछते चलना चाहिए; या उसमें अधिक बेनज़ीन मिला लेना चाहिए।

चित्र ७—नुकीली पोटली बनानेकी रीति।

रुईकी एक परत लो जो लगभग चौकोर हो और उसे बीचसे मोड़कर तिकोनी कर लो।

जब अस्तर सूख कर खूब कड़कड़ा हो जाय तो उसे महीन रेगमाल (नम्बर $\frac{1}{2}$) से रगड़कर साफ कर डालना चाहिए। यदि असावधानीके कारण लकड़ीके रेशोंपर अधिक मसाला जमा रह गया हो तो पहले १ नम्बरके रेगमालसे साफ़कर अन्तमें महीन रेगमालसे साफ़ करना चाहिए। फिर कामको झाड़ना और बुरुशसे साफ़ कर डालना चाहिए।

सस्ता काम—सस्ती श्रेणीकी चीज़ोंके लिये बहुतसे पॉलिश करने वाले बढ़िया सरेस या साधारण सरेसके घोल-की एक या दो तहें देकर समाप्त कर देते हैं। इस घोलमें सूखे खनिज रंगोंका चूर्ण इतना पड़ा रहता है कि गहरा रंग आये। महोगनीके लिए हिरमिजी मिट्टी या विनीशियन रेड मिलाओ यहाँ तक कि उससे स्पष्ट लाल रङ्ग आने शीशम आदिकी नकल करनेके लिए भूरा अंबर मिलाओ, पीले रङ्गके लिए रामरज।
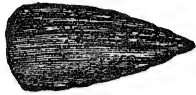
चित्र ८—नुकीली पोटली बनानेकी रीति। इसके पहले वाले चित्रमें दिखलाई गई रीतिके बनी तिकोनी रुईको हाथमें दबा-दबाकर इस चित्रमें दिखलाये गए आकारकी कर लो और उसे नरम कपड़ेमें इस प्रकार लपेटो कि नोक बनी रहे।

गरम सरेसके घोलमें उपरोक्त रङ्ग मिलाकर उसे ब्रुश से लगाओ और किसी चिथड़ेसे हलका हाथ देकर रङ्ग दो। रेशोंकी दिशामें हाथ चलाना चाहिये और खरादी हुई चीज़ पर काम करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि गहरे भागों में भी अस्तर अच्छी तरह लग जाय।

अवश्य ही जिस चीज़पर कभी सरेस लगाया जा चुका हो उस पर दुबारा अस्तर करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

अस्तरके नुसखे.—(१) जो अस्तर बाज़ारमें मिलते हैं उनमे बहुत-सी किस्मकी लकड़ियों पर काम हो सकता है। उन्हें केवल तारपीनके तेलमें मिलाकर पतला करना रहता है। बना हुआ अस्तर बाज़ारसे खरीदना न चाहो और उसे आप बनाना चाहो तो इस तरह चलो।

(२) थोड़ीसी चीनी मिट्टी लो या मकईका आटा ❀ लो, उसमें अलसीका पक्का तेल मिलाओ और उसे चलाते रहो जब तक कि एक-सा और गाढ़ा घोल न बन जाय। तब जापान ड्रायर या वार्निश डालो और अंतमें तारपीन मिला कर पतला कर लो। यदि लकड़ीको हलके रंगकी रचना है तो कच्चा तेल काममें लाओ और बहुत ही हलके रङ्गका ड्रायर प्रयोगमें लाओ।
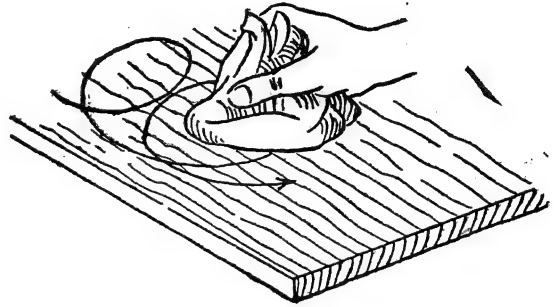
चित्र ९—हाथ चक्कर खाता चले। पॉलिश लगाते समय हाथको गोल-गोल चक्कर काटते हुए आगे बढ़ना चाहिए, जैसा चित्रमें दिखलाया गया है।
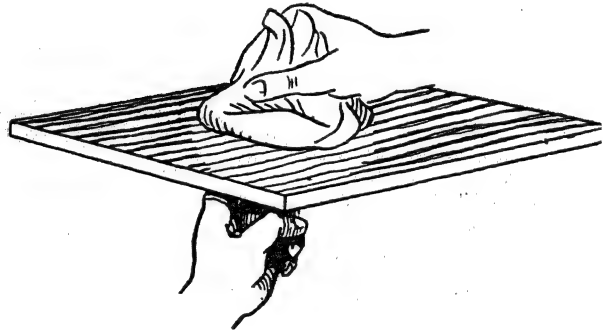
चित्र १०—छोटे कामों पर पॉलिश। बहुत छोटे कामों पर पॉलिश करनेके लिए उनको उलटी ओर कोई हैंडल चिपका लेनेमे सुविधा होती है।

पोटली—जिस पोटलीसे फ्रेंच-पॉलिश लकड़ीमें लगाई जाती है उसे अँग्रेज़ कारीगर 'रबर' कहते हैं। हम इसे पोटली ही कहेंगे। तेल लगाने और पानीके रंगोंसे रँगनेके प्रारम्भिक कार्योंमें चाहे इसकी आवश्यकता न भी पड़े, परन्तु पॉलिश करनेका काम इसके बिना कुछ भी नहीं हो

❀ यह वही अन्न है जिसकी हरी बालको भुट्टा कहते हैं।
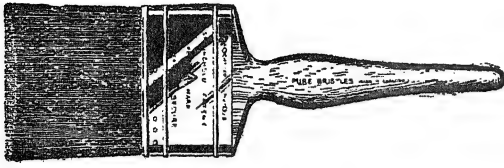
चित्र ११—वार्निश करनेका चिपटा बुरुश। वार्निश करनेके बुरुशके बाल कड़े और लचीले होते हैं और मँहगे बिकते हैं। अगला चित्र भी देखो।

सकता। पोटली कितने ही सरल ढङ्गसे क्यों न बनी हो, यह आवश्यक है कि उसे बहुत होशियारी और ठीक ढङ्गसे बनाया जाय, नहीं तो उससे अच्छा काम न हो सकेगा। जिन्होंने पॉलिश करने वालोंको काम करते देखा है, वे कदाचित् यह समझें कि इस बातका इतना महत्त्व नहीं है। उन्होंने अकसर गंदी-सी रुईको मैले-कुचैले कपड़ेसे बँधा देखा होगा। परन्तु यदि वे जाँच करें तो मालूम
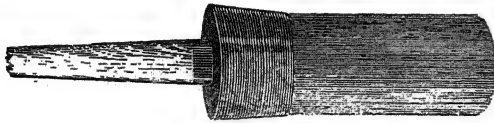
चित्र १२—वार्निश करनेका गोल बुरुश वार्निश करनेके बुरुश चिपटे और (अंडाकार कहना कदाचित अधिक उचित होगा) दो आकार के बिकते हैं। दोनोंसे अच्छा काम हो सकता है।

होगा कि उनकी आशासे कहीं अधिक निपुणतासे पोटली बनानी होगी। निपुण कारीगर अच्छी दीखने वाली चीज़की अपेक्षा, जिसे नया आदमी पसन्द करेगा, अपनी पुरानी, बेढंगी लेकिन ठीक-रीतिसे बनी चीज़ पसंद करेगा। जो भी हो, गंदी पोटली नहीं चाहिए क्योंकि धूल और मैल होनेसे ऊँची श्रेणीका काम नहीं हो सकता। इससे पॉलिश करनेवालेको अपनी पोटली खूब साफ रखनी चाहिए। पॉलिश करनेसे पोटली अवश्य रँग जायगी और मैली दिखाई पड़ेगी। परन्तु धूल आदिसे गंदा होना दूसरी ही बात है। नयी पोटलियोंसे पुरानी पोटलियाँ कहीं अच्छी होती हैं; हाँ, यदि वे अच्छी तरहसे रक्खी गयी हों और कठोर न पड़ने पायी हों।

सपाट कामोंके लिए पोटली—सपाट (सम) धरातल या जालोंके सपाट कामके लिए ऊनी कपड़ेमें से १ इंचसे लेकर २ इंच तककी चौड़ी पट्टी फाड़कर और उसे लपेटकर पोटली बनायी जा सकती है। कैंचीसे कटी हुई पट्टी नहीं चाहिए, वह अधिककड़ी होतीहै। पट्टीको कसकर लपेटो यहाँ तक कि १ इंच,२ इंच या ३ इंचके व्यासका (जिस सामानपर पॉलिश
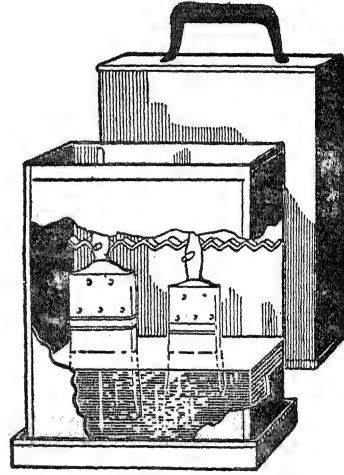
चित्र १३—बुरुश लटकानेका डिब्बा। काम कर चुकनेके बाद वार्निशके बुरुशको विशेष वार्निश (ब्रश-कीपर वार्निश) या साधारण वार्निश या अलसीके तेलमें इस प्रकार लटकाकर रक्खा जाता है कि बालमें लगी वार्निश सूखकर कड़ी न होने पाये। पीछे इस डिब्बेका ढक्कन है।

करनी हो उसके आकारके अनुसार) गद्दी-सी बना लो। पतले डोरेसे (या फीतेसे) कस कर बाँध लो। इस ढङ्गसे पोटली तैयार हो जायगी। इस गद्दोको बारीक मलमलके टुकड़ेकी दो तहोंमें रक्खा जाना चाहिए और कपड़ेके किनारोंको समेटकर एक पोटली बना लेनी चाहिए। काम करते समय इन छोरोंको बाँध नहीं लिया जाता वरन् उन्हें हाथमें पकड़ रक्खा जाता है। इस प्रकारकी पोटली बीड, रेलिंग, खरादे हुए काम आदिके लिए ठीक नहीं पड़ती। जब दरवाज़ों पर पॉलिश करनी रहेगी तब भी इससे दिक्कत पड़ेगी, क्योंकि

नोकीला न होनेके कारण यह दिलाहोंके कोनों तक न पहुँच सकेगी।

सब कामोंके लायक पोटली—अच्छे ढङ्गसे बनी, मुलायम, सरलतासे मुड़ने वाली पोटली जिसके ऊपरके कपड़ेमें शिकनें न हो फ्रेंच-पॉलिश करनेवालेके लिए उतनी ही आवश्यक है जितना बढ़ईके लिए तेज़, अच्छ़ रंदा। चित्र ८ में आम-तौर पर इस्तेमाल होने वाली पोटली दिखायी गयी है। इस प्रकारकी पोटलीसे कोनोंमें पहुँचा जा सकता है, मुड़े हुए या उभरे हुए किनारोंको इससे रँगना आसान है, कठोर पोटलीसे यह सब काम एक प्रकार से असम्भव ही है। इससे बनानेके लिए धुनी हुई रुईको मोटी परतका एक टुकड़ा लो—६ इंच चौड़ा और ६ इंच लम्बा टुकड़ा उसमेंसे फाड़ो। इससे ऐसी पोटली बन जायगी कि बड़े कामोंके लिए आसानीसे प्रयोगमें लायी जा सके। परन्तु छोटे-मोटे सामानके लिए इससे कम नापकी गद्दी काममें लाओ। रुईको दुहरा लो, जिसमें वह ६ इञ्च × ४½ इञ्चकी हो जाय। फिर उसे हाथसे दबा-दबाकर एक ओर नुकीला बनाओ जिसमें वह तिकोनी हो जाय।
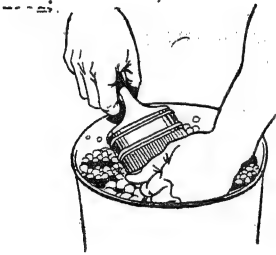
चित्र १४—बुरुशोंको सफ़ाई।

यदि बुरुशको बहुत दिन तक इस्तेमाल न करना हो तो कपड़ेपर पोंछनेके बाद उसे सँभालकर साबुनसे धो डालना चाहिए। अगला चित्र भी देखो।

६,७,८ नम्बरके चित्रोंसे इसे बनानेकी रीति समझमें आ जायगी और उसको किस तरह पकड़ा जाय, यह भी। तब रुई पर पॉलिश लगानी चाहिये और उसे साफ़ कपड़ेसे ढक लेना चाहिए। मोड़नेके बाद कपड़ेको ऊपरको ओर उमेठ लेना चाहिए। प्रत्येक बार जब कपड़ेको थोड़ा-सा ऐंठोगे तो नोक अधिक बारीक हो जायगी और उसकी सतह पर पॉलिश आ जायगी। पोटलीका ऊपरी कपड़ा कहींसे फट न जाय, नहीं तो जिस चीज़ पर पॉलिशकी जा रही है उस पर धारियाँ पड़ जायँगी।

यद्यपि गद्देको ढकनेके लिए किसी भी प्रकारके कपड़ेका प्रयोग किया जा सकता है परन्तु फिर भी चुनाव करनेमें थोड़ा-सा ध्यान देना चाहिए। अगर कपड़े पर सीवन है तो वह पोटलीका काम नहीं देगा। कोई भी चीज़ जिससे पॉलिशकी हलकी तह खुरची जा सके कपड़े पर या पोटली-में न रहे। कपड़ा बिलकुल नरम और पतला हो और कम-से-कम गाठें या सिकुड़नें न पड़ी हों। पुरानी कमीज़, धोती या छींट कई बार धोकर काममें लाई जा सकती है। नया कपड़ा भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे काममें लानेके योग्य बनानेके लिए कलप अच्छी तरह धो डालना चाहिये और जितना भी हो सके, माँड़ी निकाल देनी चाहिए।

पॉलिश करनेकी पोटली बनानेके लिए जो भी चीज़ काममें लाई जाय वह खूब सूखी हो। सीड़को बिलकुल आने न देना चाहिए। इस बातको हमेशा ध्यानमें रखना आवश्यक है। पोटलीके लिए सफेद रुई सबसे अच्छी है और किसी डाक्टरी दूकानसे मिल सकती है। जिन स्थानों-पर रुईकी कताई-बुनाई होती है वहाँ कच्ची रुई (धुनी हुई) से काम लेना ठीक है। बाज़ारोंमें जो रुई मिलती है और जो कुर्सियों और कोचोंके गद्दे बनाने (भरने) के काममें आती है, वह ठीक नहीं; केवल सस्ती लकड़ीपर उससे काम लिया जा सकता है, अच्छी लकड़ीपर नहीं। फिर भी ऐसी लकड़ियोंके लिए भी यदि अच्छी किस्म मिल सके तो बुरी चीज़का प्रयोग उचित नहीं है। फलालैनकी बनी पोटलियाँ ख़ास-ख़ास चीज़ोंपर ही पॉलिश करनेके लिए ठीक कही जा सकती हैं। जैसे—चौड़ी-चपटी सतहों पर पॉलिश करनेके लिये ये ठीक बैठती हैं, अधिक लाभ इनसे नहीं। शुरू करने वालेको पहले रुई भरी पोटलियोंसे ही काम लेना चाहिए और जब उसका हाथ उससे सध जाय तो फिर चीज़ काममें लाए।

पोटलीकी नाप—पोटली कितनी बड़ी हो, यह किसी हद तक कामको रूप-रेखा और सामानके आकार-प्रकारपर

निर्भर रहेगा। परन्तु ऊपर बतलाया आकार-प्रकार साधारणतया ठीक होगा। पहले-पहल ही बड़ी-सी पोटली नहीं इस्तेमाल करनी चाहिए और इस दिशामें पॉलिश करने वाला अपने अनुभवसे काम ले। उसको किस तरह पकड़े यह भी वह अनुभवसे सीखेगा। यों मामूली बड़ी पोटली अँगुलियोंके पोरों और अंगूठेके बीचमें पकड़ी जा सकती है परन्तु पॉलिश करने वालेको यह पता चल जायगा कि बड़ी पोटली को हथेलीमें जमाकर पॉलिश करना आसान है।

चित्र १५- बुरुशोंकी सफाई। साबुनसे धोने और पोंछनेके बाद बुरुशके बालों को कंघी (या बाल झारनेके बुरुश) से झड़कर सीधाकर देना चाहिए।

पॉलिश पोतना– पोटलीमें पॉलिश लगा लेनी चाहिए परन्तु ऐसा करनेमें सावधानीकी आवश्यकता है। पोटलीके ऊपरकी तह इस तरह पर खोली जाती है कि गद्देपर थोड़ी-सी पॉलिश डाली जा सके। ऐसा करनेका एक सुगम तरीका यह है कि पॉलिश किसी बोतलमें रक्खी जाय। बोतलकी कागमें यह पतली नाली-सी कटी हो जिससे एक बारमें बहुत थोड़ी सी पॉलिश—एक-एक बूँद करके —निकल सके। कुछ पॉलिश करने वाले पोटलीके एक भागको पॉलिशमें डुबो लेते हैं परन्तु पहली ही ढङ्गका अधिक रिवाज है। पोटलीको भरपूर पॉलिशसे भर न देना चाहिए; इतनी पॉलिश एक बारमें लेनी चाहिए जितनी गद्देको तर कर दे, नहीं तो थोड़ा-सा भी दबाव पड़नेपर पॉलिश ऊपरके कपड़ेमेंसे बाहर छन आएगी और टपकने लगेगी। पोटलीपर जब ठीक तरह पॉलिश लग जाय तो कपड़े को समेट लो। तब पॉलिशको सब जगह बराबर करनेके लिए पोटलीको हाथकी हथेलीमें रखकर हलकेसे दबाओ। इस प्रकार अब पोटली पॉलिश करनेके लिए तैयार हो जायगी।

लकड़ी भरपर अच्छी, साफ़ और एक मोटाईकी पॉलिश की जाय। रीति परिस्थिति पर निर्भर है। किसी भी तरहसे हो, यह बात हो जाय। किस ढंगसे ऐसा हो, यह महत्वकी बात नहीं। मान लीजिए कि छोटी-सी चपटी सतहपर पॉलिश करनी है। पोटलीपर थोड़ा-सा हलका दबाव देते हुए शीघ्रतासे रगड़ जाओ पहले रेशोंकी दिशामें, फिर उसके आर-पार। फिर देर न करके हलके-हलके प्रत्येक भागपर ध्यान देते हुए चलो। पहले दबाव बहुत ही कम हो, परन्तु जैसे-जैसे पॉलिश कम होती जाय और पोटली सूखे, वैसे-वैसे दबाव बढ़ाते जाओ। यों ही बेढंगे और अव्यवस्थित रूपसे कभी मत रगड़ो। एक ढंग रहे। जब तक पोटली लकड़ी पर रहे तब तक उसे हिलाते चलाते रहो। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि पोटली लकड़ीपर एक जगह ही रक्खी न रह जाय। काम समाप्त होते ही उसे उठा लेना चाहिए। यों ही बीच-बीचके अवकाशमें, या काम समाप्त होनेपर पड़ी न रहे। काम करते समय जब-जब पोटली सूख जाय तब-तब उस पर फिर पॉलिश लगा लिया करो। केवल यह ध्यान प्रत्येक बार रहे कि पॉलिश अधिक न भर जाय।

पोटली रखना—नई पोटलीसे पुरानी पोटली ज्यादा अच्छी है। इसलिये जब पोटलीसे काम कर चुको तो उसे डिब्बे या बिस्कुटके बक्समें बन्द करके रख दो। इस प्रकार रखनेसे पोटली खराब नहीं होती। हाँ, जब उसे यों ही हवामें छोड़ दिया जायगा तो ज़रूर खराब हो जायगी क्योंकि स्पिरिट उड़ जाती है, सिर्फ चपड़ा रह जाता है और कड़ा पड़ जाता है। यदि बहुत देर तक बाहर पड़ी रहे तो पोटली पत्थर हो जायगी चाहे फिर सन्दूकमें ही क्यों न रक्खो। परन्तु यह बात कठिन है। अलबत्ता यदि सन्दूकके अन्दर यदा-कदा स्पिरिटकी कुछ बूँदें डाल दी जायँ तो पोटली नरम बनी रहेगी।

पॉलिश बनाना—औसत दरजेकी अच्छी पॉलिश बनानेके लिए जो न बहुत गाढ़ी हो, न बहुत पतली, प्रत्येक पाइंट स्पिरिटमें छः औंस चपड़ा मिलाना चाहिए अर्थात् प्रत्येक गैलन स्पिरिटमें ३ पाउंड चपड़ा, परन्तु इस अनुपातमें बहुत अधिक बारीकीको आवश्यकता नहीं। पॉलिश

करने वालेकी इच्छा और रुचि और किसी हद तक सामान-की विशेषताके अनुसार अनुपात बदल सकता है। यदि पॉलिश बहुत गाढ़ी हो जाय तो थोड़ी-सी स्पिरिट और डाल कर उसे पतला किया जा सकता है; यदि बहुत पतली हो तो थोड़ा-सा अधिक चपड़ा इस कमीको पूरा कर देगा। अनुपात नापनेका एक मोटा-सा और सरल-सा ढंग यह है कि तोड़े हुए चपड़ेसे बोतलको आधा भर लो और फिर मामूली स्पिरिट (मेथिलेटेड स्पिरिट) से पूरा भर लो।
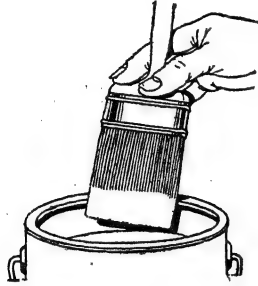
चित्र १६—वार्निश करना।

वार्निशमें बुरुशको डुबाकर निकालते समय फालतू वार्निश काछ देनी चाहिए। अगला-चित्र देखो।

चित्र १७—वार्निश करना।

एक ओरकी वार्निश काछ देनेके बाद दूसरी ओर की वार्निश भी काछ देनी चाहिए। बुरुश वार्निश से भरा हो रहे, परन्तु इतना नहीं कि रास्ते भर वार्निश टपकती रहे।

चपड़ा धीरे-धीरे घुल जाता है और थोड़ी देरके बाद बोतलको हिलाने या लकड़ीसे चलानेसे घुलनेकी क्रिया और भी तेज़ीसे होती है। गरम करनेकी ज़रूरत नहीं है। सच तो यह है कि आगपर गरमी पहुँचाकर पॉलिश तैयार करना बहुत खतरनाक साबित हो सकता है।

पॉलिश करना

कार्यारंभ—अब तक वस्तुओंके विषयमें काफ़ी कहा जा चुका है। अब हमें सीधी तहो चढ़ानेकी प्रक्रियाकी ओर आना चाहिए। पहले तो लकड़ीको ऊपर बताए हुये ढङ्गपर किसी एक अस्तरसे भर लेना और महीन या पुराने रेगमालसे हलके हाथसे चिकना कर लेना चाहिए। इससे लकड़ी पॉलिश लेने योग्य हो जायगी, क्योंकि खुरदरी सतह-पर बहुत ऊँचे दरजेकी पॉलिश नहीं हो सकती। पोटली-के विषयमें ऊपर काफ़ी लिखा गया है और यहाँ वह सब दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है। सामान, पोटली, पॉलिश और थोड़ा-सा कच्चा अलसीका तेल इकट्ठा करनेके बाद नीचे लिखे ढङ्गपर काम शुरू कर देना चाहिए।

पोटलीको पॉलिशसे तर कर लो, उसके ऊपरके कपड़े-को होशियारीसे उसपर रक्खो, ऐसा कि उसपर किसी प्रकार की सिकुड़न न पड़े। बायें हाथकी हथेलीमें पोटली लो और पॉलिशको अँगुलीसे एक-सा कर दो और कपड़ेमें बिलकुल खपा दो। यदि लकड़ीके पल्लेपर या सपाट सतह पर काम करना है तो नीचे लिखा ढङ्ग ठीक होगा और इसी ढङ्गपर ही अनुभवी पॉलिश करने वाले चलते हैं—रेशोंके आर-पार रगड़ो कि सतह पॉलिशसे ढक जाय। तब कई चक्कर-दार हरकतोंसे (जैसा चित्र ९ में दिखाया गया है) पूरे धरातलपर एकसे अधिक बार चले जाओ। हलका-सा दबाव रखना चाहिए और जैसे-पोटली सूखती जाय, उसे अधिक दबाते चलो। ध्यान यह रहे कि हाथकी हरकत चक्कर देती हुई (गोलाकार) रहे, केवल इधर-उधर मलना मात्र न रह जाय। पोटलीपर थोड़ा-सा (नाम-मात्र) कच्चा अलसीका तेल लगा लेना चाहिए जिससे वह कहीं रुके नहीं। जितना भी कम तेल लिया जा सके, उतना अच्छा और अगर इसका प्रयोग न भी किया जाय, तो भी कोई हानि नहीं होगी। पोटलीको चिकना बना देनेके लिए बहुत थोड़ा तेल काफ़ी होगा। अँगुलीके सिरेको तेलसे

भिगो लो और उसे पोटलीपर हलकेसे मल दो; बस काफ़ी होगा। पोटलीको तेलमें डुबोना न चाहिए, न उसपर बोतलसे तेल डालना चाहिए क्योंकि इस तरह आवश्यकतासे अधिक तेल पहुँच जायगा और अच्छे कामके लिए यह नाशक सिद्ध होगा।
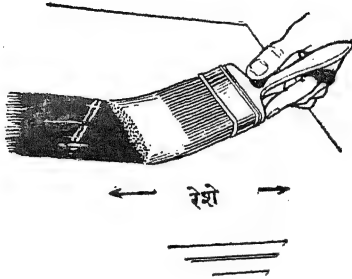
चित्र १८—वार्निश करना।
वार्निशको पहले लकड़ीके रेशोंकी दिशामें लगाना चाहिए (अगला चित्र देखो)।

फ्रेंच पॉलिशके लिए कच्चा अलसीका तेल ही मानाजाना तेल है। इसे प्राकृतिक (नई, बेरंगी) लकड़ियोंपर पॉलिश लगानेके पहले भी लगाया जा सकता है जिससे एक अजीब-सी सजीवता आ जायेगी जो किसी भी दूसरी तरह नहीं आ सकती। पॉलिशके साथ जितना भी कम तेल काममें आयेगा उतना ही सामान अधिक टिकाऊ होगा यह ध्यानमें रखना चाहिए कि तेल स्वयं पॉलिशका कोई भाग नहीं है; पोटली सरलतासे अपना काम करे, इसलिए यह प्रयोगमें आता है। इसकी सहायताके बिना पॉलिश या तो चिपट जायगी या घिसटेगी और तह टूट-टूट जायगी, एक-सी मोटाईकी नहीं रहेगी। जिस तह देनेमें स्परिट-वार्निश (स्पिरिटमें चपड़ेके गाढ़े घोल) से भी काम लिया गया होगा, वहाँ यह बात विशेषतासे देखनेमें आयेगी और वहाँ किसी भी हालतमें बिना कुछ थोड़ासा तेल इस्तेमाल किये सुन्दर एक मोटाईकी तह पैदा करना असंभव हो जायगा।

जैसे-जैसे पोटली सूखती जाय, वैसे-वैसे उसपर पहलेके ढङ्गपर, थोड़ी-सी पॉलिश और लगा लेना चाहिए। तेल भी आवश्यकतानुसार ले लेना ठीक है। थोड़ी-सी पॉलिशसे बहुत-सा काम लिया जा सकता है और नए सीखने वालेको यह ध्यान रखना चाहिए कि पोटली बहुत भीगे नहीं। वह केवल थोड़ा-सा नम भर हो जाय।
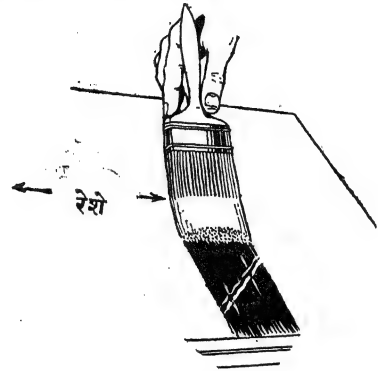
चित्र १६—वार्निश करना।
फिर बुरुशको लकड़ीके रेशोंके आर-पार फेरना चाहिए।

बहुतसे विद्यार्थी यह देखकर कि सूखी पोटलीसे काम करना कितना कठिन है कदाचित् यह सोचें कि यदि पॉलिश अधिक इस्तेमाल की जाय तो काम जल्दी हो जायगा। यदि मतलब सिर्फ लकड़ीपर तह देना होगा तो यह एक प्रकारसे ठीक होता परन्तु अत्यधिक पॉलिशके प्रयोगका फल यह होगा कि स्पिरिटके जल्द उड़ जानेसे जो चपड़ा रह जायगा वह ऊबड़-खाबड़ होगा और हर जगह एक-सा नहीं होगा; पतली, समतल तह नहीं बनेगी। पोटलीसे यदि किसी भी भागमें अधिक पॉलिश निकलने लगे तो ऐसा नहीं होने देना चाहिए। जब पोटलीमें काफ़ी पॉलिश नहीं होती है, तो तह चढ़ानेका काम बेकार बढ़ जाता है या यदि पॉलिश लकड़ीपर लगे ही नहीं तो फिर असम्भव-सा ही हो जाता है।

पहली तह देनेका काम तब रोकना चाहिए जब यह समझा जाय कि लकड़ी और अधिक पॉलिश नहीं सोखेगी। सतह पर थोड़ी-सी चमक दीख पड़ेगी पर वह ऊँची-नीची होगी और पोटली चलानेके चिह्न उस पर साफ़ दिखाई देंगे। ये सब चिह्न बादको हटा दिये जाएँगे। यह सोचा जा सकता है कि यदि पॉलिश बहुत गाढ़ी हुई या बहुत हलकी तो नतीजा वही होगा जो उस हालतमें जब पोटली बहुत गीली या बहुत सूखी हो। परन्तु बात ऐसी

नहीं है। पॉलिश बहुत पतली होनेमें सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसमें लकड़ीपर अच्छी तह चढ़ानेमें बहुत समय लगेगा। फिर भी बहुत गाढ़ी पॉलिश लेनेसे यह कम हानिकर है। अनुभवी पॉलिश करने वालेको दोनों ही गलतियाँ मालूम हो जायँगी परन्तु नौसिखिएको सदा इस खोजमें रहना चाहिए कि गुत्थियाँ या सिकुड़नें न पड़ें और थोड़ा-सा भी ध्यान देने पर वह बड़ी कठिनाइयों और भूल-चूकोंसे बच जायगा।

दूसरी पुताई—जिस सामान पर पॉलिश कर रहे थे उसे कम-से-कम एक दिन तक योंही धूलसे बचाकर पड़ा रहने दो। फिर उसको जाँच करने पर देखोगे कि उसका रूप बहुत बदल गया। कितना बदल गया यह इस बात पर अवलम्बित रहेगा कि लकड़ीमें कितनी पॉलिश घुस गई है। उस पर एक बार फिर पहलेकी तरह पॉलिशकी तह चढ़ाओ (पहली तहके खूब सूख जानेके बाद और रेगमाल करनेके बाद, नीचे देखो)। यह ध्यान रहे कि
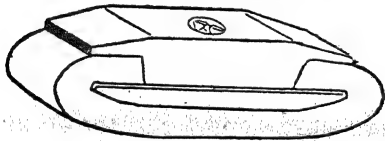
चित्र २०—वार्निश रगड़नेका बट्टा।
यदि वार्निशको प्यूमिस पाउडरसे रगड़ना हो तो इस प्रकारके नमदा चढ़ी लकड़ीके बट्टेका इस्तेमाल करना चाहिए।

जितना सम्भव हो सके, उतना कम तेल लगाओ। फिर उसे एक तरफ पड़ा रहने दो और पॉलिश करना और लकड़ीको पॉलिश सोखने देना उस समय तक जारी रक्खो जब तक कि पॉलिशकी तह सामानको कई दिन तक पड़ा रहने देने पर भी धँसे नहीं। जब यहाँ तक पहुँच जाय तो तह देनेका काम ख़त्म समझना चाहिये और पहली पॉलिशके लिए सामान तैयार हो गया समझो। इसकी प्रक्रिया जाननेसे पहले निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

कितनी बार?——लकड़ी पर तह देनेका काम कितनी बार किया जाय यह परिस्थिति पर निर्भर है। अच्छी, घने रेशेकी लकड़ीमें इतनी बार ज़रूरत न पड़ेगी जितनी खुली, प्यासी लकड़ियोंमें। परन्तु अच्छेसे अच्छे सामान पर जो यथासंभव बहुत ही टिकाऊ बनाया जाता है, चार बारसे शायद ही अधिक चाहिये। दो तह देनेमें एक या कई दिनोंका अन्तर हो सकता है; प्रतीक्षा करनेका कारण यह है कि तहें जितना भी इस बीचमें हो सके भीतर सोख ली जायँ। यदि कई दिन तक पड़ा रखनेके बाद भी पॉलिश "डूबे" (धँसे या बैठे) नहीं तो दूसरी तह देनेसे विशेष लाभ नहीं। पहली तह शायद ही कभी-काफी होती है, परन्तु सस्ते दाम या समयकी कमीके कारण अकसर एक ही तह दो जाती है। इसलिए जो लोग पॉलिश करना चाहते हैं, उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि जल्दी करनेकी कोई तरकीब नहीं।

फिर भी नाकाफ़ी पॉलिश ठीक नहीं, क्योंकि इस दशामें फिर थोड़े दिनों बाद तह देनेकी आवश्यकता पड़ जायगी जब सामान बेचनेके लिये ही बना हो तो एक ही तह बहुत हलकी-सी काफ़ी है—यदि ग्राहकके दृष्टिकोणसे नहीं तो विक्रेताके दृष्टिकोणसे ही।
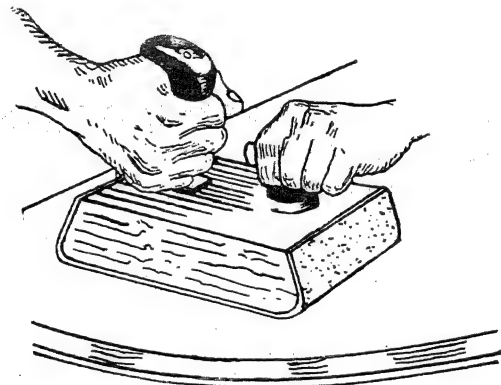
चित्र २१—वार्निश रगड़नेका बड़ा बट्टा।
बड़े कामोंके लिए हैंडिल लगे बट्टेके वस्तेमालमें सुविधा होती है (पिछला चित्र देखो)।

रेगमाल करनेकी आवश्यकता—बढ़िया कामके लिए आठ तह चढ़ाना उचित होगा। प्रत्येक तह पतली हो और खूब सूख जाय तब उस पर दूसरी तह चढ़ाई जाय। प्रति तहको कम-से-कम दो दिन सूखने दिया जाय। चौथी और आठवीं तहोंको रगड़ा जाय। इस प्रकार बहुत बढ़िया काम बनता है। तह देनेके बीच बीचमें बारीक रेगमालसे

सतह रगड़ डालना चाहिए विशेषकर पहली तह देनेके बाद। परन्तु इतना नहीं रगड़ना चाहिये कि सतह ही उड़ जाय केवल इतना कि सतह चिकनी हो जाय। यहाँ यह बता देना उचित है कि थोड़ा-सा प्यूमिस-पाउडर सतहकी विषमता दूर करनेके लिए बहुत उपयोगी होती है। पहली और दूसरी तहोंके बाद रेगमाल करनेको कहा गया है, परंतु किन्हीं भी तहोंके बाद यह हो सकता है। यदि पॉलिशकी तह होशियारीसे दी गई है तो इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

कुछ फुटकर बातें—पहलेकी हुई तह पर एक दूसरी तह देनेके पहले अच्छा हो यदि सतहको धीरेसे गुनगुने पानीसे धो डाला जाय (बहुत अधिक पानीसे नहीं) जिससे चिकनाहट (तैल) छूट जाय और पोटलीके काममें अड़चन न हो। चटपट धोनेसे कोई हानि नहीं होती और बहुधा इससे लाभ ही होता है यद्यपि सदा ही यह बात आवश्यक नहीं। जब पहले दी गई तहको काफ़ी समय हो गया हो तो धोनेकी प्रक्रियाको बिल्कुल भुला न देना चाहिए, क्योंकि सामान पर सदा धूल जम जाती है। यह तो करनेकी आवश्यकता नहीं कि पॉलिश करते समय धूल भी न चढ़ा दी जाय। पॉलिशका काम सदा धूल-रहित स्थानोंमें होना चाहिए।

जब तह देना हो तो पॉलिश करने वालेको यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके हाथ साफ़ रहें और पुरानी पॉलिश उनमें न लगी रहे। यदि पुरानी पॉलिश या चपड़े चिमटे
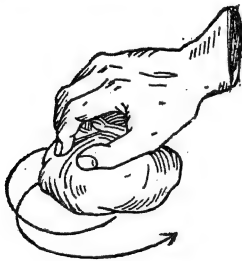
चित्र २२—चमक लाना।
रगड़े हुए वार्निशकी सतह पर चमक लानेके लिये उसे रॉटन स्टोन और तेलसे रगड़ना पड़ता है। हाथ चक्कर काटता चले, जैसा इस चित्रमें दिखलाया गया है।

हों तो अवश्य ही उसके टुकड़े छूटेंगे और पॉलिशकी नई सतहको बिगाड़ देंगे। कदाचित् इस स्थान पर यह कहना ठीक होगा कि हाथमें जो पॉलिश चिमट जाय उसे गरम पानी और सोडेसे धो दिया जाय, या स्पिरिटसे धो डाला जाय।

तह पतली हो क्योंकि यह महत्वपूर्ण नहीं कि लकड़ी पर कितनी मोटी तह है वरन् यह कि वह कितनी अच्छी और बराबर बन पड़ी है। यह भी ज़रूरी है कि भिन्न-भिन्न तह देनेके बीचमें इतने समयका अंतर हो कि तह खूब डूब जा सके।

दूसरा आवश्यक काम यह है कि पोटलीको प्रत्येक बार तह देते समय इतना रगड़ा जाय कि वह सूख जाय और उसे बार-बार भिगोया न जाय। इस तरह चलनेसे चपड़ेकी परत पतली ही रहती है। जिस सतह पर पॉलिश हो रही हो सूखी या गीली पोटलीको किसी भी दशामें उस पर रोक रखना न चाहिये। उसे चलाते (स्थान बदलते या हरकत करते) रहना चाहिए। यह सामान पर धीरे-धीरे फिसलती रहे। पहली बार तह देनेमें तो यह बात इतनी महत्वकी नहीं है जितनी बादको; तब यह ज़रूरी हो जाती है। सतहसे पोटलीको उठाते हुए भी इसी बातका ध्यान रखना चाहिए। बीचमेंसे ही अचानक उठा लेना ठीक नहीं। उसी तरह चक्कर बनाते हुए किनारे पर ले जाकर छोड़ना उचित है।

नए विद्यार्थीके पथ-प्रदर्शनके लिए यह कहा जा सकता है कि यदि वह किनारे पर विशेष ध्यान रक्खेगा तो बीचकी सतह खुद ठीक रहेगी। कारण यह है कि किनारोंको बहुधा भुला दिया जाता है और वहाँ पॉलिश और स्थानोंसे कम होती है। अच्छी, टिकाऊ पॉलिशका रहस्य यह है कि सब जगह सम तह जमे और फिर इसे 'डूबनेके लिए" काफ़ी समय मिले।

चमक लाना—फ्रेंच-पॉलिशमें सबसे अंतिम काम यह है कि चपड़ेकी तह चमकाई जाती है। इस प्रक्रियामें पोटलीके चिन्ह और हर तरहके धब्बे निकल जाते हैं और सतह सुन्दर हो जाती है। टिकाऊपनके लिहाज़से चपड़ेकी बढ़िया तह देना महत्त्वपूर्ण है परन्तु अंतिम क्रिया चमकके लिए अधिक महत्वकी है। यदि कारीगर चमक न दे सके,

तो फिर उसकी पहलेकी मेहनत बहुत कुछ बेकार चली जाय। पानीके स्टोनमें रँगने, लकड़ीके रंगको गहरा करने और दूसरी आवश्यक क्रियाओंको, जिन्हें अच्छी पॉलिश करने वालेको जानना ही चाहिए, छोड़कर कदाचित यह चमक लाना ही सबसे कठिन और कष्टसाध्य है। जो मनुष्य इसे सचमुच ही अच्छी तरह कर सके, उसे अच्छा और निपुण पॉलिश-कर्त्ता समझना चाहिए।
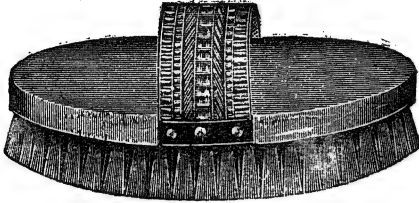
चित्र २३—वार्निश रगड़नेका बुरुश।
साधारण कामोंके लिए चित्र २० में दिखलाये गये बट्टेके बदले बुरुशका प्रयोग किया जाता है। इससे काम जल्द होता है (परन्तु उतना बढ़िया नहीं)।

इस चमकानेको प्रक्रियामें पहले जिस क्रियाका वर्णन होगा वह कुछ तह देने जैसी ही है; प्रारम्भमें तह देना, फिर अंतमें चमकाना—दोनों क्रियाएँ मिल जाती हैं। कोई विशेष समयका अन्तर बीचमें इस प्रकारका नहीं है जैसे भरने और तह देनेमें है। फिर भी ये प्रक्रियाएँ भिन्न हैं, ढंगमें और फलके अनुसार भी। बीचकी प्रक्रिया सदैव नहीं करनी होती, परन्तु ऊँचे दरजेका सामान होनेपर इन्हें करना चाहिए। थोड़े शब्दोंमें, चमक लानेमें तह धरातलको स्पिरिटसे धोना होता है। यदि यह बात अच्छी तरह समझ ली जाय तो इस ढंगको चाहे अंतिम बार तह देने या पहली बार स्पिरिट लगानेके नामसे पुकारा जाता है, यह बड़ा सीधा-सादा। इसमें पोटलीकी पॉलिशको धीरे-धीरे कम कर दिया जाता है और धीरे-धीरे उसकी जगह स्पिरिट डाल दी जाती है। धीरे-धीरे स्पिरिट मिलाकर स्पिरिटकी मात्रा अधिक कर दी जाती है यहाँ तक कि पोटलीकी तमाम पॉलिश चुक जाती है। पहले पोटलीको तीन हिस्से पॉलिश और एक हिस्सा स्पिरिटमें भिगोना चाहिए, फिर बराबरकी मात्रामें लेना चाहिए, तीसरी बार तीन हिस्सा स्पिरिट और एक हिस्सा पॉलिश; चौथी बार केवल स्पिरिट रहे। इसके यह माने नहीं निकलता कि ये अनुपात बिल्कुल ठीक-ठीक ही रहें नाप तौल करना अव्यावहारिक होगा। केवल ढङ्ग बतला दिया गया है। अनुमानसे काम करना चाहिए। अंतिम बार पोटलीमें पॉलिश बिल्कुल नहीं रहेगी और उसको उस समय तक रगड़ा जाय जब तक वह पूरी-पूरी सूख न जाय या लगभग सूख न जाय।
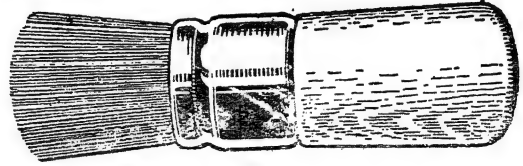
चित्र २४—स्टेनसिल करनेका बुरुश।
स्टेनसिल द्वारा चित्र रँगनेके लिए कड़े और छोटे बालोंके बुरुशकी आवश्यकता पड़ती है।

इस अवस्थामें पहुँचकर केवल स्पिरिट लगानेकी क्रिया ठीक-ठीक शुरू होगी। पोटलीको बदलकर दूसरी पोटली लो। यह आवश्यक नहीं है कि वह नई हो। परंतु यह ज़रूर है कि उसपर पॉलिश कुछ भी न लगी हो। स्पिरिट लगानेके लिए ही एक पोटली अलग रख ली जाय तो ठीक होगा। अच्छा हो यदि उसपर तीन-चार कपड़े लिपटे हुये हों। जैसे-जैसे ये कपड़ेकी तहें सूखती जायँ वैसे-वैसे उन्हें एक-एक करके हटाया जा सकता है। यदि एक ही तह काममें लाई जाती है तो यह आशंका है कि स्पिरिट एक दम भाप बनकर उड़ न जाय। लकड़ीके ऊपर चपड़े ही की जो तह लगी होती है उसे स्पिरिट थोड़ा-सा घुलाकर छुड़ा देती है। परन्तु बहुत थोड़ा चपड़ा घुलता है। पोटलीमें स्पिरिट यों ही बहुत-सी ले ली जाय तो और बात है। यदि बहुत-सी स्पिरिट ली जायगी तो यह भी आशंका रहेगी कि तहकी तह ही घुल न जाय और लकड़ी नङ्गी रह जाय। इसके लिए सदैव सतर्क रहना होगा। स्पिरिट इतनी हो कि तहके ऊपरका हिस्सा नरम और चिकना हो जाय, ज्यादा ज़रा भी न हो। रगड़नेमें भी यह ध्यान रखना चाहिए कि सब स्थानोंपर एक ही सा दबाव पड़े और ऐसा न हो कि कहीं अधिक रगड़ जाय, कहीं कम।

स्पिरिट थोड़ी हो तो अचानक कोई हानि हो जानेका डर नहीं है, इसलिए जितनी कम हो उतना अच्छा। पहले धीरे हाथसे रगड़ो, जैसे-जैसे स्पिरिट सूखती जाय, वैसे-वैसे दबाव ज़्यादा करते जाओ। तेल नहीं लगाना चाहिए। तेल चाहे उस सामानपर हो जिसे रगड़ रहे हो या पोटलीपर लगा हो, उसकी मौजूदगीमें पॉलिश लाना सम्भव नहीं होगा। असफलताका प्रधान कारण यह है कि पोटली स्पिरिटसे अधिक भिगो ली जाती है। इससे चपड़ा मुला-

चित्र २५—स्प्रे-गनके लिए संकुचित वायु।
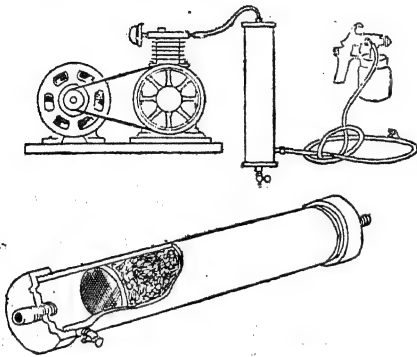
सबसे बाँई ओर ½ अश्वबलकी बिजलीकी मोटर है, उसके बगलमें हवा दबानेका पंप। आधे गेंदके आकारवाले भागसे हवा आती है और खूब दबकर रबड़की नली द्वारा कंडेंसरमें पहुँचती है। कंडेंसर पंपकी बगलमे दिखालाया गया है। इसकी भीतरी बनावट पंपके नीचे वाले चित्रमें दिखलाया गया है। यह २ इंच व्यासका और १४ इंच लम्बा लोहेका पाइप है जिसमें दोनों ओर टोपी लगा कर छोटी-छोटी नलियाँ लगा दी गई हैं। इनमेंसे एकमेंसे हवा भीतरसे आती है और दूसरेमेंसे बाहर निकलती है। इसमें लकड़ीका घूआ (लच्छा) भर दिया जाता है जिसमें हवा छन जाय। एक ओर (पेंदी की तरफ) पंपसे आये तेल आदिको कभी-कभी निकाल बाहर करनेके लिए टोंटीदार नली भी लगानी पड़ती है। कंडेंसरसे निकलनेपर संकुचित हवा रबड़की नली द्वारा स्प्रे-गनमें जाती है।

यम हो जाता है। और निकल आता है। बहुतसे पोटलीको छोड़ देने पर सफल हो जाते हैं। वे इसके स्थानपर स्पिरिट में डालकर निचोड़ा और साफ नरम कपड़ा काममे लाते हैं।

यदि यह प्रक्रिया ठीक की जा रही होगी तो चमक आना बहुत जल्द शुरू होगा और जब पूरी-पूरी चमक आती मालूम पड़े तो पोटली या कपड़ेको रेशोंकी दिशामें ही चलाना चाहिए, चक्करदार हरकतसे या रेशोंके आर-पार नहीं। अब केवल पोटलीके कपड़ेको ही फेरकर काम ख़त्म कर देना चाहिए।

अब कामको सूखनेके लिए छोड़ दो। यह ध्यान रहे कि सतह (जो स्पिरिटसे मुलायम पड़ गई होगी) खुरच न जाय। सतह धीरे-धीरे कड़ी पड़ जायगी परन्तु कुछ समय तक उसे होशियारीसे बरतना चाहिए और उससे कोई चीज़ नहीं लगने देना चाहिए, नहीं तो उस पर चिन्ह पड़ जायँगे। धूलसे भी उसे बचाना चाहिए क्योंकि उसपर कुछ भी पड़ जायगा तो पालिशके साथ जम जायगा और चमक बहुत कुछ मारी जायगी।
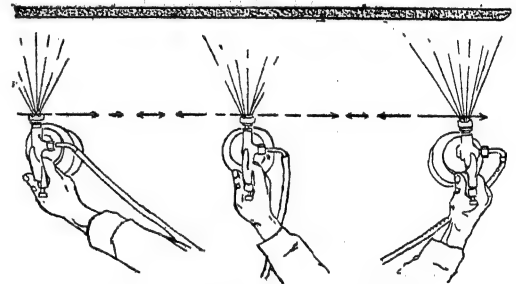
चित्र २६—स्प्रे-गनका उचित प्रयोग।
हाथ कामकी सतहके समानांतर चले और रंगकी धार सतहसे समकोण बनाती रहे।

वार्निश करना—आजकल वैज्ञानिक अनुसंधानके कारण प्रायः पूर्णतया निर्दोष और अपने-अपने विशेष कामोंके लिए, पुराने ज़मानेकी वार्निशोंसे कहीं अच्छी, वार्निशें बनती हैं, परन्तु उनके लगानेमें अवश्य कई बातों पर ध्यान रखना चाहिए। इन पर अब विचार किया जायगा।

वार्निश लगानेका काम देखनेमें बहुत आसान जान पड़ता है, परन्तु जब कोई इसे स्वयं पहली बार करता है

तब इस कामकी कठिनाइयाँ दिखलाई पड़ती हैं। बराबर तह आती ही नहीं।

बढ़िया बुरुश लो और बढ़िया वार्निश। वार्निशको कभी झकझोरना नहीं चाहिए, अन्यथा इसमें हवाके बुलबुले बन जायँगे जिनसे छुटकारा पाना कठिन हो जायगा। थोड़ी-सी वार्निश कटोरीमें लो और बुरुशको इसमें डुबाकर उठाओ। बुरुश वार्निशसे भरा रहे, परन्तु इतनी वार्निश उसमें न रहे कि वह टपकती रहे। कटोरीके किनारे पर आवश्यकतासे अधिक वार्निश काछना अच्छा नहीं है क्योंकि ऐसा करनेसे उसमें हवाके बुलबुले बनते हैं। बुरुशको केवल इतना डुबाना चाहिए कि उसे काछना ही न पड़े।
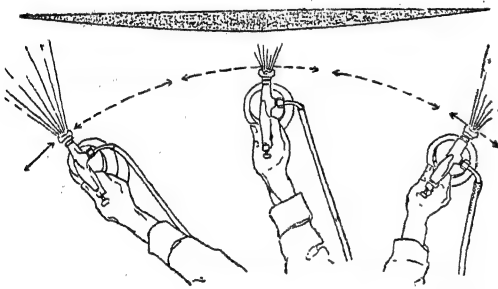
चित्र २७—स्प्रे-गनका अनुचित प्रयोग। हाथको घुमानेसे और कामसे इसकी दूरी घटने-बढ़नेसे वार्निश कहीं मोटी, कहीं पतली, लगती।

बुरुशको लकड़ीके पास ले जाओ और किसी छोटे भाग (जैसे दिलाहा या फ्रेम) के बीचके पाससे आरम्भ करो। हाथ जल्द-जल्द रेशोंकी दिशामें चलाओ और जहाँ तक वार्निश चले वहाँ तक रंग डालो। इसके बाद उसी खाली बुरुशसे (बिना और वार्निश उठाये) रेशोंके आर-पार वार्निशको रगड़ो। अंतमें बुरुशके बालोंके छोरसे हाथको रेशोंकी दिशामें चलाकर वार्निशको बराबर कर दो।

अब बुरुशमें फिर पहलेकी तरह वार्निश उठाओ और थोड़ी लकड़ी और रंगो (अर्थात् उसपर वार्निश लगाओ)। कुछ समयमें पता चल जायगा कि वार्निश कहीं अधिक तो नहीं लगी है, क्योंकि वार्निश बहने लगेगी या कमसे कम वहाँकी वार्निश लटक आयेगी या झुर्रियाँ पड़ जायँगी (यह बात मान ली गई है कि लकड़ी खड़ी है, पड़ी लकड़ीपर ये बातें न दिखलाई पड़ेंगी)। वार्निश इतनी कम लिया करो कि ये सब दोष न उत्पन्न हों, परन्तु यदि कभी ऐसा हो जाय तो प्रायः सूखे बुरुशको रेशोंकी दिशामें चलाकर कुछ वार्निश उठा लो परन्तु यह काम वार्निशके चिपचिपा हो जानेके पहले ही करना चाहिये।

वार्निश लगानेमें अंतिम बार बुरुश फेरते समय लम्बा और फुलफुला हाथ चलाना चाहिए, परन्तु वार्निश इतना धीरे-धीरे न लगाना चाहिए कि उसे चिकनानेके पहले ही वह चिपचिपी हो जाय।

वार्निश लगानेके बाद लकड़ीकी जाँच अच्छी तरह कर लेनी चाहिये कि कहीं छूट तो नहीं गयी है। तिरछी दिशासे देखने पर छूटे स्थान स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। वार्निश करते समय कामके स्वाभाविक भागों पर अलग-अलग वार्निश करनेमें सुविधा होती है। जैसे प्रत्येक दिलाहे पर अलग, फ्रेम की अलग-अलग लकड़ियों पर अलग-अलग, इत्यादि। ऐसा करनेसे वार्निश करनेकी संधियाँ छिप जाती हैं।

पहली बार वार्निशको रगड़कर लगाना चाहिए जिसमें खूब पतली तह जमे। पीछे भी आवश्यकतासे मोटी तह न लगने देनी चाहिए। ऐसी तह ठीकसे सूखती नहीं और सूखनेके पहले अकसर कहीं बह चलती है या लटक पड़ती है।

रगड़ना और चमकाना—पहले लोग खूब चमकीला फरनिचर पसन्द करते थे, अब बहुतसे लोग चमक-रहित फरनिचर पसन्द करते हैं। केवल फरनिचर ही नहीं, दरवाजे आदि पर भी लोग ऐसी ही सतह चाहते हैं। बहुतसी लकड़ियाँ, जैसे महोगनी आदि, चमकरहित वार्निश कर देने पर बहुत सुन्दर भी लगती हैं, विशेषकर यदि वार्निशकी चमक हाथसे रगड़ कर मारी गई हो। अत्यन्त अधिक चमकमें लकड़ीका असली सौंदर्य छिप जाता है।

चमकरहित फ़िनिश प्राप्त करनेके कई ढङ्ग हैं (१) रगड़ना, (२) सूखनेपर चमकरहित हो जाने वाली वार्निशका प्रयोग, (३) मोम पोतना। फिर रगड़नेकी भी कई रीतियाँ हैं, जैसे (क) प्यूमिस पत्थरके बारीक चूर्ण और पानी या तेलसे रगड़ना, (ख) तेल और रेगमालसे रगड़ना, (ग) पानी और जलअभेद्य रेगमालसे रगड़ना, (घ) इस्पात

के घुएसे रगड़ना या (ङ) मशीनसे रगड़ना (इसमें प्यूमिस पाउडर और पानी या तेलका इस्तेमाल होता है)।

चपड़ा और प्रायः सभी तरहकी वार्निशें रगड़ी जा सकती हैं, परन्तु उन वार्निशोंको छोड़कर जो इसी कामके लिए बनाई जाती हैं, असुविधा होती है क्योंकि वार्निशके इतना सूखनेमें कि वह रगड़ी जा सके बहुत समय लगता है और फिर चिमड़ी होनेके कारण उनके घिसनेमें भी अधिक समय लगता है।

प्यूमिससे रगड़नेके लिए सामान—रगड़ी गई और रगड़कर चमकाई हुई सतहोंमें सबसे सुन्दर काम प्यूमिस और पानीसे बनता है। अंतिम तहको प्यूमिस और तेलसे रगड़ा जाता है।

रगड़नेके लिए जिस प्यूमिसका इस्तेमाल किया जाता है वह बहुत कड़ी होती है और कई एक बारीकियोंमें बिकती है। कुछ कम्पनियाँ केवल दो जातिका प्यूमिस पाउडर बेचती हैं—एक नम्बर (अर्थात् फ़ाइन = सूक्ष्म) और एफ़-एफ़ (अर्थात् वेरी फ़ाइन = अति सूक्ष्म)। कुछ कम्पनियाँ आठ-आठ तरहका प्यूमिस बेचती हैं—

एकस्ट्रा-एकस्ट्रा फ़ाइन, एकस्ट्रा फ़ाइन, फ़ाइन, नम्बर ० (साधारण), नम्बर १ (मोटा), नम्बर $\frac{१}{२}$ (दानेदार) छोटा ढेला, बड़ा ढेला।

वार्निश रगड़नेके लिए एफ एफ या एकस्ट्रा फ़ाइन प्यूमिस पाउडर ठीक होता है। इसके अतिरिक्त $\frac{१}{४}$ से १ इंच तक किसी भी मोटाईका थोड़ा सा नमदा चाहिए। कुछ लोग पुराने फेल्ट कैप या हैटके टुकड़ेसे काम चलाते हैं, परन्तु यह बहुत पतला पड़ता है। ३″ × ५″ का टुकड़ा लो और उसे ३″ × ४″ की लकड़ीपर (लकड़ी क़रीब २″ मोटी हो) कीलसे जड़ लो। इसके लिए नमदेको मोड़ लो जिसमें कीलें बगलमें पड़ें, बाज़ारमें नमदा पकड़नेके विशेष हैंडिल भी बिकते हैं। एक चित्र २० में दिखलाया गया है।

रगड़नेकी रीति—पहले यह निश्चित रूपसे देख लो कि वार्निश (या एनामेल) सूखकर खूब कड़कड़ा हो गया है या नहीं। यदि यह खूब सूख गया हो तभी उसे रगड़ना चाहिये। प्यूमिसको किसी खुली थाली या तश्तरी में रख लो। नमदेको पानीमें तर करो और काम पर भी पानी छिड़क लो। हो सके तो कामको पड़ा रक्खो। उसे इतनी ऊँचाई पर रक्खो कि बहुत झुकना न पड़े। नमदेको सूखे प्यूमिस पर छुआ दो जिसमें इस पर एक तह प्यूमिसकी चपक जाय और कामको पहले बहुत हलके हाथसे रगड़ना शुरू करो। धीरे-धीरे दबाव बढ़ाते जाओ, परन्तु कभी भी नमदेको बहुत ज़ोरसे नहीं दबाना चाहिए। हाथ हमेशा रेशोंकी दिशामें चले। रेशोंके आर-पार हाथ चलानेसे काम पर खरोंच पड़ जायँगे जो फिर कभी न मिटेंगे। हाथ लम्बा और सीधा चलाओ। चक्करमें मत चलाओ।

सफलताका गुरु यह है कि काम बाकायदे किया जाय। सतहका प्रत्येक इंच एक-रूप घिसे और सब जगह हाथ प्रायः उतनी ही बार चले। इसमें गिननेकी कोई आवश्यकता नहीं है; बहुत शीघ्र अंदाज़ लग जायगा कि चमक कब कट जाती है। इसके बाद अधिक रगड़नेमें कोई लाभ नहीं, हानि ही होगी। सब जगह एक-सी चमकरहित और समथल सतह आये।

उभरी नक्काशी, कोने आदि स्थानों पर हाथ बहुत सँभालकर चलाना चाहिये जिसमें वहाँ की वार्निश आवश्यकतासे अधिक न घिसने पाये। यदि कभी इसमें भूल हो जाय तो कामके सूखने पर वहाँ वार्निश (या समय की कमी हो तो चपड़े पॉलिश) लगाकर सूखने पर फिरसे रगड़ना चाहिए।

समय-समय पर पानी डालते रहना चाहिए, परन्तु नया प्यूमिस नहीं लेना चाहिए। पहली बार ही एक दिलाहे या फ्रेमके एक भाग भरके लिए काफी प्यूमिस ले लेना चाहिए। कुछ समय तक काम करते रहने पर यह अधिक बारीक हो जाता है। यदि पीछे नया प्यूमिस लिया जायगा तो चिकनी हो गई सतह पर नये दरदरे प्यूमिससे खरोंच पड़ जायँगे।

नमदा भठ (वार्निशसे भर) न जाय या चिटचिटा न हो जाय, नहीं तो वार्निशको कहींसे यह तोड़ देगा। यदि कभी ऐसा मालूम पड़े कि नमदा भठ गया है तो उसे पानीसे अच्छी तरह धो डालना चाहिए। यदि फिर रगड़नेपर नवीन प्यूमिसकी आवश्यकता जान पड़े तो एक नंबर अधिक बारीक प्यूमिस लगाना चाहिए जिसमें खरोंच न पड़े।

केवल दो बार वार्निश की गई लकड़ी पर बहुत रगड़ाई नहीं हो सकती। छः-सात हाथ चलाना ऐसी लकड़ी

पर काफी होगा। बढ़िया कामके लिए चारसे छः बार वार्निश करनेकी आवश्यकता रहती है।

यदि वार्निश खुरदरी लगी होती तो शायद उसे इतना रगड़ना पड़ेगा कि प्रायः दो बारको तहें घिस जायँगी। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि कमसे-कम चार बार वार्निश लगानेकी आवश्यकता रहती है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वार्निश यथासंभव स्वच्छ और समतल लगे।

अकसर पहले कुछ कम बारीक (फाइन) प्यूमिस और कड़े नमदेसे कामको रगड़ा जाता है। फिर अत्यन्त बारीक (एकस्ट्रा फाइन) प्यूमिस और नरम नमदेसे कामको रगड़ा जाता है। यदि किसी काममें अधिक रगड़ाई करनी हो तो ऐसा ही करना चाहिए। पहले ही बहुत बारीक प्यूमिससे काम आरम्भ करनेसे बहुत समय लगता है। परन्तु पहली बारके प्यूमिसको अच्छी तरह धोकर बहा देने पर ही दूसरा नमदा उठाना चाहिए। यदि इसमें एक भी मोटा कण लग जायगा तो काम पर खरोंच पड़ता चला जायगा।

प्यूमिस और तेलसे रगड़ना—इसे अकसर बारीक रगड़ कहते हैं क्योंकि इसमें अति सूक्ष्म प्यूमिस पड़ता है और पानी और प्यूमिसकी रगड़से तैयार की गई सतहको अधिक समतल, चिकनी और खरोंचरहित करनेके अभिप्रायसे प्रयुक्त होता है। अकसर सूक्ष्मतम प्यूमिस और तेलके बाद अत्यन्त सूक्ष्म रॉटन और तेलसे कामको रगड़ा जाता है। रॉटन स्टोनका चूर्ण अति सूक्ष्म प्यूमिससे सूक्ष्म होता है।

ऐसी बारीक घिसाई वार्निशकी केवल ऊपरी तहमें की जाती है। यदि नीचेकी तहोंमें यह क्रिया की जायगी तो फिर उस पर वार्निश अच्छी तरह न चिपकेगी।

यह बारीक घिसाई घने, पतले, कड़े नमदेसे की जाती है। तेलके बदले पानीका भी प्रयोग किया जा सकता है।

जिस काम पर इतनी बारीक घिसाई करनी हो उस पर अन्तिमसे पहली वाली तहको ही काफ़ी घिस लेना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि वार्निशकी अन्तिम तह को इतना न घिसना पड़े कि यह कहीं कट जाय, अन्यथा वस्तु बहुत चिकनी न बन सकेगी।

यों तो रगड़ते समय किसी भी तेलका इस्तेमाल किया जा सकता है, कच्चा अलसीका तेल या तिलका तेल, परंतु अब न चिकटाने वाले (मशीनों या मोटरकारमें पड़ने वाले) तेलमें बेनज़ोन मिलाकर काममें लाया जाता है। इसके बदले सिलाईकी मशीनमें डालनेके लिए जो तेल इस्तेमाल होता है उसको काममें लाया जा सकता है। कुछ कारीगर मिट्टीका तेल पसन्द करते हैं।

तेल और प्यूमिससे रगड़नेकी क्रिया उसी रीतिसे की जाती है जिस तरह पानी और प्यूमिससे, अन्तर इतना ही रहता है कि बहुत थोड़े तेलसे ही काम चल जाता है। घिसाई समाप्त होनेके बाद पहले सूखे कपड़ेसे पोंछकर, फिर बेंनज़ीनकी सहायतासे कामको पूर्णतया स्वच्छ कर देना चाहिये।

इसके बाद कामको कड़ा होने देना चाहिए। किसी भी हालतमें २४ घंटेके पहले इस पर चमक लानेकी चेष्टा न करनी चाहिए।

बुरुशसे रगड़ना—सस्ते कामोंके लिए जूतेके बुरुश के समान बुरुशसे काम किया जाता है (देखो चित्र २३)। छोटे कामोंमें गोल बुरुशका भी इस्तेमाल किया जाता है। प्यूमिसको तेलमें मिला लेते हैं और इन बुरुशोंसे तेज़ीसे रगड़ते हैं। काम जल्द तो होता है, परन्तु काम बहुत बढ़िया नहीं होता क्योंकि वार्निश घिसकर समतल नहीं होने पाती।

रेगमाल आदिसे रगड़ना—बहुत सस्ते कामोंको तेल लगे खूब बारीक रेगमालसे रगड़ते हैं। जब काग़ज़ भठ जाय तो उसे बेंनज़ीनमें धो डालना चाहिए। अब जल-अभेद्य रेगमाल भी बनते हैं। इनसे रगड़ते समय पानीका इस्तेमाल किया जा सकता है। काग़ज़को साफ करनेके लिए उसे अकसर धो लेना चाहिए।

रेगमालके प्रयोगमें जब कामको समतल भी करनेकी इच्छा हो (और नक्काशीके कामको छोड़ हमेशा ऐसा किया जा सकता है) तो रेगमालको गद्दीदार लकड़ी पर तान लेना चाहिए। ऐसी गद्दियाँ बाज़ारमें बिकती भी हैं (चित्र २) और आसानीसे बनाई जा सकती हैं। बड़े कामके लिए हैंडिल युक्त लकड़ीमें रेगमाल लगाना चाहिए। चित्र (२१)।

अब तरह-तरहके मसाले चढ़े और अनेक सूक्ष्मताके मसाले चढ़े रेगमाल मिलते हैं। यद्यपि ये अब भी सैंडपेपर (बालूका काग़ज़) कहलाते हैं तो भी किसीमें गार्नेट, किसीमें अल्युमिनियम ऑक्साइड, किसीमें कुछ पड़ा रहता है और एफ-एफसे ४½ नम्बर तकके काग़ज़ बनते हैं।*

रेगमालके बदले इस्पातके चूरासे भी काम किया जाता है। बिना तेलके (सूखा) और तेलके साथ भी इसका इस्तेमाल हो सकता है। नम्बर ०० करीब एफ-एफ नम्बर के प्यूमिसके बराबर काम करता है और नम्बर ० करीब एफ नम्बरके प्यूमिसके बराबर। नम्बर ३ वाला चूरा दर-दरे रेगमालका काम देता है।

रगड़नेका काम करनेके लिए मशीनें भी बिकती हैं, परन्तु भारतवर्षमें अभी इनकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती क्योंकि यहाँ मज़दूरी अभी सस्ती है और यहाँ अभी फरनिचरकी बहुत बड़ी दूकानें नहीं हैं।

चमक लाना

पियानो-फ़िनिश—साधारण टट्टीका शीशा चिकना और चमकदार अवश्य होता है, परन्तु यदि इस पर क़लई करके इसका दर्पण बनायें (सस्ते दर्पण इसी प्रकार बनते हैं) तो इसमें मुँह सच्चा न दिखलाई पड़ेगा। सतहके कुछ ऊँचा-नीचा होनेके कारण प्रतिबिम्ब कुछ विकृत हो जायगा।

अच्छा दर्पण बनानेके लिए मोटा शीशा लिया जाता है। फिर इसको कुरन या एमरी पत्थरसे इतना घिसा जाता है कि यह पूर्णतया समतल हो जाय। इस प्रकार सतह समतल तो हो जाती है, परन्तु साथ ही शीशा अंधा हो जाता है। इसकी तह चमकरहित हो जाती है।

अंधे शीशेके अंधेपनको मिटानेके लिए इसे कुछ और बारीक एमरीसे घिसा जाता है, तब फिर कुछ और बारीक एमरीसे। इस प्रकार घिसने वाले पदार्थको उत्तरोत्तर बारीक करते-करते शीशा प्रायः अपनी पुरानी चमकको प्राप्त कर लेता है।

अंतमें रूज़हसे शीशेको घिसा जाता है। तब इसका अंधापन बिलकुल मिट जाता है। इसके आर-पार स्पष्ट दिखलाई देने लगता है। साथ ही उपरोक्त घिसाईके कारण इसकी सतह सच्ची और समतल हो जाती है। शीशेको दोनों ओर समतल करनेके बाद यदि उस पर क़लई की जाय तो प्रतिबिम्ब बिलकुल सच्चा बनेगा।

ठीक इसी प्रकार वार्निश लगी सतहें भी होती हैं। पहले वे चमकीली अवश्य होती हैं, परन्तु उनकी सतह सच्ची समतल नहीं होती। पिछले पृष्ठोंमें बतलाई गई रीतिसे घिसे जानेके बाद उनकी सतह समतल तो हो जाती है, परन्तु साथ ही वह चमकरहित भी हो जाती है।

बहुतसे लोग इसी सतहको पसन्द करते हैं, परन्तु कुछ लोग चमकदार सतह चाहते हैं। चमक-रहित सतह-पर चमक लानेके लिए उनको अधिकाधिक बारीक चूर्णोंसे रगड़ा जाता है, इससे उन पर चमक आ जाती है।

यह चमक बड़ी ही तेज़ होती है। इसको अकसर पियानो-फ़िनिश कहते हैं, क्योंकि इस प्रकारकी फ़िनिश (चमक या पॉलिश) पियानो नामके बहुमूल्य बाजों पर की जाती है।

चमक लानेका ढंग—यदि लकड़ीमें पहले अच्छा अस्तर नहीं लगाया गया था और लकड़ी ख़ूब चौरस नहीं की गई थी तो अंतमें बढ़िया चमक आ ही नहीं सकती। फिर यदि अन्तमें चमक लाना हो तो इसी कामके लिए बनी वार्निशका प्रयोग करना चाहिए। फिर यदि वार्निश ख़ूब कड़ी न हो गयी हो तो इस पर चमक न आयेगी, चाहे लाख उपाय किया जाय। यदि नाख़ून गड़ाने पर वार्निशमें गढ़्ढा हो जाय तो अवश्य वार्निश सूखी नहीं है।

अच्छा अस्तर, उचित वार्निश और ठीक तरहसे घिसाईके बाद दो रीतिसे काम हो सकता है, एक तो तेलसे, दूसरे पानीसे।

१—तेलसे चमक—इसीमें समय कम लगता है। वार्निशको सूक्ष्म और अति सूक्ष्म प्यूमिससे रगड़ने और

---

* ये अमरीकाकी कंपनियोंके नम्बर हैं। अन्य कंपनियों के भिन्न नम्बर होते हैं।

साफ़ करनेके बाद उसे अति सूक्ष्म रॉटन स्टोन और विशेष तेलसे रगड़ा जाता है। विशेष तेलके बदले किसी भी मीठा तेल और मेथिलेटेड स्पिरिटको बराबर-बराबर मात्रामें लेनेसे काम चल सकता है। कुछ वर्ष हुए केवल ताजे बिनौलेका तेल इस्तेमाल किया जाता था। अब वार्निश वाली कम्पनियाँ इस कामके लिए स्वयं विशेष तेल बेचती हैं। उनके अभावमें निम्न मिश्रण काममें लाया जा सकता है। इसे पियानो फ़िनिश बनानेवाले अकसर इस्तेमाल करते हैं—

मिट्टीका तेल	$\frac{1}{8}$ गैलन
शुद्ध तारपीन	$\frac{1}{8}$ गैलन
सीडर वुड ऑयल	५ आउंस
सिट्रोनेला ऑयल	३ आउंस

अच्छी तरह मिलाओ और दो-चार दिन बाद इस्तेमाल करो। इसमें जल मिलाओ नहीं तो परन्तु उपरोक्त मात्रामें करीब १$\frac{1}{2}$ आउंस पानी डालकर काम करते समय झकझोर लिया जाय तो अच्छा है।

कुछ कारीगर नरम नमदासे, कुछ रुईसे और कुछ कपड़ेसे चमक लानेके लिए रगड़ते हैं। चाहे कुछ भी इस्तेमाल किया जाय उसे तेलमें डुबाकर निचोड़ डालना चाहिए। इससे वस्तुपर तेल लगा देना चाहिए और उस पर ज़रा-सा अति सूक्ष्म रॉटन स्टोन छिड़क देना चाहिए। हाथ चक्कर मारते हुए चलाना चाहिए। सब जगह बराबर रगड़ाई हो और सब जगह बराबर दबाव डाला जाय। चमक आनेमें समय लगता है।

जब सब जगह चमक आ जाय तो नरम कपड़ेसे तेल पोंछ डालो। फिर बेंनजीनसे शामी चमड़ा नम करो और उससे पोंछो। चाहो तो मक्कईका आटा ज़रा-सा छिड़ककर कपड़ेसे पोंछ दो जिसमें तेलका नामोनिशान भी न रह जाय। अंतमें नरम कपड़ेसे जल्द-जल्द और फुलफुला हाथ चलाकर बढ़िया चमक लाओ।

२—पानीसे चमक—इस रीतिमें समय अधिक लगता है। इसके लिए यह परमावश्यक है कि अंतिम बार वाली वार्निश पॉलिशिंग या फिनिशिंग वार्निश अवश्य हो। इस अभिप्रायसे कि यह तह कहींसे कट न जाय इसके नीचे वाली तहको हो अच्छी तरह प्यूमिस और पानीसे रगड़ लिया जाता है तब वार्निशकी अंतिम तह लगाई जाती है। बस, अंतिम तहके खूब सूख जानेपर उसे खूब बारीक (एफ-एफ नम्बरके) प्यूमिस-पाउडर और पानीसे रगड़ो। जब सतह समतल और चमकरहित हो जाय तो अच्छी तरह धो डालो। तब हथेलीमें पानी लगाओ और ज़रा-सा अति सूक्ष्म रॉटन स्टोन भी। हथेलीसे ही कामको अच्छी तरह रगड़ो। कामपर पानी छिड़कते रहो जिससे वह सूखने न पाये और हाथको तेज़ीसे चक्कर देते हुए चलाओ। जब करीब-करीब चमक आ जाय तो धीरे-धीरे रॉटन स्टोनकी मात्रा कम कर दो, यहाँ तक कि अंतमें केवल हाथसे ही रगड़ना पड़े कामको अब भीगे शामी चमड़ेसे पोंछकर सूखने दो। जो कुछ सफेद बुकनी काम पर दिखलाई पड़े उसे हथेलीसे पोंछ डालो। अंतमें नरम रेशमी कपड़ेसे या नरम सूखे शामी चमड़ेसे फुलफुले परन्तु तेज़ हाथसे चमक लाओ। तेल वाली रीतिकी अपेक्षा इस रीतिसे अधिक अच्छी चमक आती है।

पृथ्वीपर जीवोंकी उत्पत्ति और उनका अन्त

(लेखक – श्री अब्सार अहमद, बी०एस-सी.)

रात्रिके समय आकाशमें हमें असंख्य तारे या नक्षत्र दिखलाई पड़ते हैं। उनमेंसे कुछ औरोंसे बड़े तथा अधिक प्रकाशमान जान पड़ते हैं। हमारे सूर्यकी अपेक्षा उनके इतने छोटे जान पड़नेका कारण यह है कि वे हमसे अरबों मील बल्कि और भी अधिक दूरी पर है। हज़ारों तारे या नक्षत्र तो इतने बड़े हैं, कि उनमें हमारी पृथ्वीके समान सहस्रों पृथ्वी समा सकती है फिर भी बहुत-सी जगह बच जायेगी। हमसे उनकी दूरीका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि प्रकाशकी किरणें, जो १८,६०० मील प्रति सेकण्डकी चालसे वहाँसे चलती हैं, पृथ्वी पर कई

लाख वर्षों में पहुँचती हैं। वैज्ञानिक शब्दोंमें हम सकते हैं कि ये नक्षत्र हमसे कई लाख 'प्रकाश वर्ष' की दूरी पर हैं। इसका अर्थ है कि आज जिन नक्षत्रोंको हम देखते हैं, मानों लाखों 'प्रकाश वर्ष' पूर्वका उनका इतिहास हम पढ़ते हैं। आज तो वे हमसे और अधिक दूर बड़ी वेगसे भागते चले जा रहे हैं।

ये तारे 'ब्रह्माण्ड' में एक दूसरेसे दूर बड़ी तेज़ी से घूम रहे हैं। इनके एक दूसरेसे टकरानेकी सम्भावना बहुत ही कम है, जैसे एक महासागरमें दो जहाज़ एक दूसरेसे लाखों मीलकी दूरी पर जा रहे हों और उनका आपसमें टकरा जाना अधिक सम्भव नहीं है। फिर भी हम बिल्कुल 'नहीं' नहीं कह सकते। लाखों बल्कि अरबों सालके बाद ऐसी घटना हो सकती है कि दो बड़े नक्षत्र एक दूसरे से टकरा जायँ या कमसे-कम एक दूसरेके बहुत ही निकट आ जायँ। उदाहरणके लिए प्रो० हक्सलेके शब्दोंमें, यदि छः बन्दर भी आँख बन्द करके दिन रात लाखों वर्ष मनमानी टाइप करते रहें तो यह कोई असम्भव बात नहीं कि एक समयके उपरान्त हम देखें कि उन्होंने ब्रिटिश म्युज़ियमकी तमाम पुस्तकें टाइप कर डालीं इसी आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि करीब २००,००,००,००० वर्ष पूर्व हमारे सूर्यके बहुत ही निकट आ पहुँचा। फलस्वरूप सूर्यकी धरातल पर बड़ी ज्वर-तरंगें उठने लगीं। ज्यों-ज्यों नक्षत्र अधिक निकट आता गया उसकी आकर्षण-शक्ति बढ़ती गई और तरंगें अधिक भयंकर रूप धारण करती गईं। अन्तमें सूर्यका पिघला हुआ द्रव्य फूट निकला जैसे समुद्रमें ऊँची लहरें दूर-दूर तक पानीके छींटे फेंकती हैं। द्रव्यके यही टुकड़े ग्रह कहलाये। हमारी पृथ्वी भी इन्हींमेंसे एक है।

इस प्रकार हमारी पृथ्वीका जन्म केवल एक आकस्मिक घटनाके फलस्वरूप (accidental) हुआ। अब हम यह जाननेका प्रयत्न करेंगे कि पृथ्वी पर जीव-जन्तु क्योंकर पैदा हो गये। हमारा सूर्य तथा अन्य नक्षत्र बहुत गरम हैं—इतने गरम कि उनकी धरातल पर किसी प्रकारका जीवन असम्भव है। इसी प्रकार द्रव्यके वे टुकड़े भी जो सूर्यसे फूटकर अलग हुए प्रारम्भमें आगके गोले थे। आज भी अनुमान लगाया जाता है कि सूर्यके बीच वाले भागका तापक्रम ५०,०००,०००° के लगभग है। परन्तु समयके साथ-साथ ये ग्रह भी धीरे-धीरे ठंडे होने लगे और एक अनन्त कालके बाद इस पृथ्वी पर जीवोंकी उत्पत्ति हुई। पहले पृथ्वी पर केवल साधारण जीव-जन्तु पैदा हुए जिनका काम केवल नये जीवोंको पैदा करके मर जाना था। धीरे-धीरे उनमें और उन्नति हुई और आज वही जीव-जन्तु बढ़कर मनुष्योंके रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

यह भी केवल एक आकस्मिक घटना ही कही जा सकती है कि इस पृथ्वी पर जीवोंकी उत्पत्ति हुई। हम ऊपर बता चुके हैं कि सूर्य तथा अन्य तारे अत्यन्त गरम हैं। इसी के साथ 'ब्रह्माण्ड' (universe) में इन तारोंसे दूर तापक्रम बहुत ही कम है। यहाँ तक कि अधिकांश भागका तापक्रम ५००° फारेनहाइट बर्फके तापक्रमसे नीचे है। आकाश-गंगा या संस्थानके परे तो इससे भी अधिक ठंडा है। ऐसे भागोंमें जीवोंका हो सकना भी असम्भव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तापक्रमकी एक बहुत छोटी-सी अवधि है जिसमें जीवन सम्भव है। यह केवल हमारा भाग्य समझिये या यों कहिये कि यह भी एक घटना ही है कि हमारी पृथ्वी इस समय तापक्रमकी उसी अवधि में है जिसमें जीवन सम्भव हो सकता है। परन्तु क्या यही दशा चिर-स्थायी रहेगी ? इस प्रश्नका उत्तर हम आगे देंगे।

पृथ्वी पर जीवोंकी उत्पत्तिके क्या कारण हैं, इसके बारेमें मतभेद है। कुछ लोगोंका मत है कि ज्यों-ज्यों पृथ्वी ठंडी होती गई, यह स्वाभाविक ही था कि इस पर जीव-जन्तु पैदा होते। कुछ दूसरे वैज्ञानिकोंका विचार है कि जिस प्रकार पृथ्वीकी उत्पत्ति एक घटनाके फलस्वरूप हुई उसी प्रकार उस पर जीवोंका पैदा होना भी, यदि भूल नहीं, तो एक घटनासे अधिक महत्व नहीं रखता। हम भली-भाँति जानते हैं कि मनुष्यके शरीरके प्रमुख तात्त्विक अंश आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कार्बन हैं। पहले तीनोंके कणु बहुत कम संख्यामें मिलते हैं। उदाहरणके तौर पर हाइड्रोजन और ऑक्सीजन रासायनिक रूपसे मिल कर अधिक-से-अधिक हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) बना सकते हैं जिसके एक अणु (molecule) में केवल चार परमाणु (atoms) होते हैं। नाइट्रोजनके मिलनेसे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु आश्चर्यको बात है कि

कार्बन इनसे मिलकर ऐसे-ऐसे अणु (molecules) बनाता है जिनमें सहस्रों परमाणु हो सकते हैं। मालूम होता है कि मनुष्यका शरीर कार्बनकी इसी अद्भुत विशेषताकी लीला है। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि क्या केवल इन रासायनिक वस्तुओंके एकत्र होने ही से यह चलता, फिरता और बोलता शरीर बन गया ? यदि ऐसा है तो फिर वैज्ञानिक क्यों नहीं अपनी प्रयोगशालाओंमें जीवित मनुष्य बना लेते ? एक ज़माने तक लोगोंका विश्वास था कि जीवित शरीरमें पाई जाने वाली चीज़ोंके बनानेमें किसी 'शक्ति' (Vital force) का हाथ है। परन्तु जर्मन वैज्ञानिक वोहलर (Wohler) ने यूरिया तथा जीवित शरीरकी अन्य वस्तुओंको प्रयोगशाला ही में बना कर सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्यका शरीर किसी शक्ति (Vital-force) का बनाया हुआ नहीं, बल्कि वह रसायन और भौतिक विज्ञानके साधारण नियमोंके अनुसार ही बना है और यह सब चलती-फिरती तसवीर कार्बनकी विचित्र माया है।

परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह समस्या इतनी आसान नहीं जितना हम समझ रहे हैं। इसमें अभी न मालूम कितने गूढ़ रहस्य होंगे जिन्हें हम अभी पूरी तौरसे हल नहीं कर पाये। परन्तु आशा है कि विज्ञानमें उन्नति के साथ-साथ यह भेद और खुलते जायेंगे। अब हमें इस प्रश्नका उत्तर देना है कि आख़िर पृथ्वी पर जीवोंका अन्त भी कभी होगा या योंही यह कारख़ाना जारी रहेगा।

सन् १८७३ में महावैज्ञानिक मैक्सवेलने गणित-विज्ञानसे सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश जिन वस्तुओं पर पड़ता है उन पर वह दबाव डालता है, जिसका अर्थ है कि 'विकीरण' में भार होता है और वह 'पदार्थ' की तरह काम करता है। मैक्सवेलके विचारकी पुष्टि बादमें निकल्स और लेब्ड्यूने प्रयोग द्वारा की। हम जानते हैं कि सूर्य लगातार अपने हर तरफ़ प्रकाश फेंकता रहता है। इसमें से केवल $\frac{१}{१०,०००}$ आउंस प्रकाश पृथ्वीके हर वर्ग मील पर प्रति मिनट पड़ता है। अनुमान लगाया गया है कि सूर्य प्रति मिनट कुल २५०,०००,००० टन प्रकाशकी वर्षा करता है। इसका अर्थ है कि वह इस हिसाबसे प्रति मिनट घटता जाता है। दूसरे नक्षत्रोंसे भी 'विकीरण' सूर्य पर पड़ता है परन्तु उसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। इस लिये सूर्यका अपना भार तभी स्थिर रह सकता है जब कि इसी २५०,०००,००० टन प्रति मिनटके हिसाबसे पदार्थ उसमें बाहरसे प्रवेश करता रहे। शेपलेने अनुमान लगाया है कि इस प्रकार सूर्यमें बाहरसे आने वाले पदार्थ की मात्रा २,००० टन प्रति सेकण्डसे अधिक नहीं, अर्थात् हमारा सूर्य धीरे-धीरे उसी प्रकार नष्ट हो रहा है जैसे समुद्रमें बर्फका एक बड़ा पहाड़। स्वभावत: दिन प्रति सूर्यके प्रकाशकी वह मात्रा जो हमने शुरूमें पाई थी, कम होती जा रही है। इसीलिये तापक्रमकी वह अवधि जिसमें रह कर आज हम जीवित हैं, हमसे बराबर सूर्यकी ओर हटता जा रहा है। यदि उसी वेगसे पृथ्वी भी सूर्यके निकट होती जाती तो इस पर जीवोंका रह सकना सम्भव होता। परन्तु हम एक ऐसे 'ब्रह्माण्ड' में रहते हैं जो बराबर फैलता जाता है और इसलिये हमारी पृथ्वी भी सूर्यसे दूर हटती जाती है। स्पष्ट है कि इसका एक ही परिणाम होगा, और वह यह कि एक दिन हमारी पृथ्वी तापक्रम की उस अवधि से, जिसमें जीवन सम्भव हो सकता है, बाहर निकल चुकी होगी और तमाम जीव-जन्तु ठंडसे मर चुके होंगे। उस समय हमारे इस जीवित संसारका प्रलय हो चुका होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा संसार कितना तुच्छ है। भूलसे या किसी घटनाके फलस्वरूप हम एक ऐसे 'ब्रह्माण्ड' में भेज दिये गये जहाँ शायद हमारी कोई ज़रूरत न थी। फिर भी मनुष्य कितना अभिमानी है। देखिये न, इस महासागर रूपी 'ब्रह्माण्ड' के किनारेकी रेतके एक कण पर बैठा हुआ अपने को कितना अद्वितीय और महान् समझता है, नाना प्रकारकी आशायें रखता, अपनी समझमें बड़े-बड़े कार्य करता है; परन्तु मूर्ख यह नहीं जानता कि एक दिन तमाम जीवों और उनकी आशाओंका अन्त होने वाला है और यह ब्रह्माण्ड ऐसा मालूम पड़ेगा मानो वह मूर्ख मनुष्य यहाँ कभी था ही नहीं।

वानस्पतिक औषधियाँ और उनके नाम

[ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

वनस्पतियोंके अध्ययनमें नाम बहुत महत्व रखते हैं। भारतीय विभिन्न भाषाओंके नामोंकी आलोचनात्मक परीक्षा और संस्कृत या अन्य धातुओंसे उनके उद्भवका अध्ययन बहुत मनोरञ्जक और महत्वपूर्ण होता है।

भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें प्रचलित भाषाओंमें एक पौधेके विभिन्न नाम होना बड़ी भारी कमी है। पौधोंका वैज्ञानिक नाम जिस तरह समस्त वैज्ञानिक जगतमें एक होता है उसी प्रकार यहाँ भी एक ही नाम होना चाहिए। बंगाल या मद्रासमें शिक्षा प्राप्त वैद्यको पञ्जाबमें बूटियोंके सम्बन्धमें बड़ी दिक़्क़त पड़ती है, क्योंकि दोनों प्रान्तोंके नाम एक दूसरेसे बहुत भिन्न-भिन्न हैं। इन नामोंको अधिक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक बनानेकी बहुत अधिक आवश्यकता है और इस दिशामें सबसे पहला क़दम नियत नामोंका रखना होना चाहिये। ये नियत नाम सब प्रान्तोंके वैद्यों और जड़ी-बूटियोंका काम करने वालोंको अपना लेना चाहिए। इससे आपसमें व्यवहारमें बहुत सरलता हो जायगी।

श्रीयुत डी० ब्रैण्डिस 'फॉरेस्ट फ्लोरा" की भूमिकामें वनस्पतियोंके भारतीय नामोंके सम्बन्धमें लिखते हैं—"भारतीय वनस्पतियोंका अध्ययन करने वालेको भारतीय नामोंको उपेक्षासे नहीं देखना चाहिये क्योंकि कई उदाहरणोंमें इनमें निश्चितता होती है जो कि वैज्ञानिक नामोंमें भी नहीं मिलती। हम सब सदा हरे खिरनी वृक्षको जानते हैं और इसके सम्बन्धमें कोई ग़लती नहीं हो सकती, परन्तु बॉटनिस्ट अब तक एक मत नहीं हो पाये हैं कि इसको माइयोसोप्स इण्डिका, हेग्ज़ेण्ड्रा या कौकी कहा जाय। कम्बीला या कम्पिल्ल सुप्रसिद्ध छोटा वृक्ष है। भारतीय वनस्पतियों पर काम करने वाले बॉटनिस्टोंमें आधी शताब्दीसे अधिक समय तक इसका वैज्ञानिक नाम का रौटलीरा टिंक्टोरिया (Rottlera tinctoria) और अब इसे बदल कर मैलोटस फिलिपिनेन्सिस (Mallotus philipinensis) ठीक नाम दे दिया गया है। इसी तरहसे जिसे कागो या काग कहते हैं उसे कई बॉटनिस्ट ओलिका यूरोपोया (Olca Europœ) दूसरे ओलिका कस्पिडेटा (Olca Cuspideta) और कुछ ओलिका फ़ेरुजीनिया Olca ferruginea) कहते हैं। यद्यपि वैज्ञानिक नामोंमें ये परिवर्तन अनर्थक नहीं हैं और ये वैज्ञानिक अन्वेषणकी उन्नतिके साथ-साथ हुये हैं परन्तु विद्यार्थियोंको ये हतोत्साह कर सकते हैं और इस कारण भारतीय नामोंकी ओर ध्यान देनेके लिये यह अधिक दृढ़ युक्ति हो सकती है।"

अब हम वनस्पतियोंके संस्कृत नामों पर अपने विचार संक्षेपमें लिखना चाहेंगे। एक चीज़के अनेक पर्याय होना संस्कृत भाषाकी विशेषता है। औषधियाँ इस नियमको अपवाद नहीं हैं। प्राय: सब प्रसिद्ध पौधोंके संस्कृतमें अनेक पर्याय हैं और कईके तो बीससे चालीस तक नाम हैं। गिलोयके उनतालीस, हरड़के तीस, कमलके अड़तीस, इसके भेदोंके इस संख्यासे आधे और इसी प्रकार दूसरी औषधियोंके नाम हैं।

एक दृष्टिसे ये नाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्यमें किसी वैज्ञानिक विधिसे पौधोंका वर्णन न होने पर भी औषधियोंके पर्यायवाची शब्द प्रायः पौधेकी प्रमुख विशेषताओंको ओर संकेत दे रहे होते हैं जिससे हम पौधोंको पहचाननेमें इन नामोंसे कुछ सहायता ले सकते हैं। उपयोगिताकी दृष्टिसे वनस्पतियोंके संस्कृत पर्यायोंको हम निम्न चार समूहोंमें श्रेणीकरण कर सकते हैं—

(१) जिन पर्यायोंसे कुछ अभिप्राय प्रकट नहीं होता और अनर्थक शब्द मालूम होते हैं उन्हें हम रूढ़ी नाम कह सकते हैं। इसके उदाहरण हैं—धुस्तूर, टेंटू, निम्ब आदि। बहुतसे उदाहरणोंमें लोकमें प्रचलित हिन्दी नाम ही संस्कृतमें अपना लिये गये हैं।

२—पौधेके उत्पत्ति-स्थानकी ओर संकेत देने वाले नामोंको हम उत्पत्ति-बोधक नाम कह सकते हैं। इसके कुछ उदाहरण निम्न हैं—कुटज (कूटे शृङ्गे वा जायते, पहाड़में होने वाला वृक्ष), हैयवता, हियजा आदि हरड़के नाम हैं। इनका अर्थ है हिमालय पर्वत पर होने वाला वृक्ष।

नमी वाले स्थानों पर अधिक पैदा होनेके कारण पाटलाका नाम है अम्बुवासिनी।

३—पौधेका या पौधेके विभिन्न अंगोंका वानस्पतिक परिचय देने वाले पर्यायोंको हम परिचय ज्ञापक संज्ञा कह सकते हैं। फूल आकृतिमें सिंहके खुले हुए मुखके समान होनेसे बांसेका नाम सिंहास्य है। ढाकके तीन पात प्रसिद्ध हैं। इसलिए संस्कृतमें इसका एक नाम त्रिपर्ण-तीन पत्तों वाला वृक्ष है। बरसातमें पुनर्नवाके पत्र फूल आदि अंग फिर नये रूपमें प्रकट होते हैं। इसलिए इसे पुनर्नवा और वर्षाङ्गी कहते हैं। तुलसी पर फूलोंकी सुन्दर मञ्जरीको देख कर निघण्टुकारोंने इसका नाम सुमञ्जरी रख दिया है।

४—पौधे या पौधेके विभिन्न अंगोंके गुणों और उपयोगोंकी ओर संकेत देने वाले पर्यायोंको हम गुण प्रकाशक नाम कह सकते हैं। मद कारक होनेसे भांगका नाम मादिनी है। एरण्ड वात रोगोंको नष्ट करता है इसलिये इसी गुणको प्रकट करने वाला इसका एक पर्याय वातारि है।

अर्थोंके अनुसार संस्कृत पर्यायोंका श्रेणीकरण हमें पौधेके सम्बन्धमें बहुत कुछ बताता है। इस दृष्टिसे एक ही औषधिके अनेक पर्यायोंकी उपयोगिता अवश्य स्वीकार करनी पड़ती है। परन्तु एक और बात है जो प्रायः भ्रम पैदा करनेका कारण बनती है, वह यह कि एक सामान्य नाम भी बहुत-सी वनस्पतियोंका है। अरिष्ट शब्द रीठा, नीम और लशुन इन सबके लिए सामान रूपसे प्रयुक्त होता है। हरड़, श्वेत निर्गुण्डी, मञ्जिष्ठा, जयन्ती, भाँग, मृणाल, काञ्जिक, दोनों प्रकारके काञ्चन वृक्ष इन सबका अभया नाम ग्रहण होता है। गन्धहस्ती अगद में 'श्वेतावचाऽश्वगन्धा हिङ्ग्वमृता कुष्ठसैन्धवे लशुनम्" पाठमें अमृताका अर्थ गिलोय क्यों किया जाय, हरड़ क्यों न हो? आखुकर्णी लता और श्वेत अपराजिता दोनोंके लिए नागकर्णी शब्द प्रयुक्त होता है। गन्धर्व संस्कृतमें सफेद कनेर, सफेद एरण्ड (चकदत्त, वातरक्त चिकित्सा, अमृताधध्नमें) कस्तूरीमृग, अश्व (अमरकोष) और कोकिल (राजनिघण्टु); को कहते हैं। अक्षिपीडकका अर्थ शङ्खिनी, यवतिक्ता और श्वेत पीत शिम्बी भेद किया जाता है। स्वर्जिकाऽजशकृत्क्षारः सुरसोऽथाक्षिपीडकः (चरक, चिकित्सित स्थान अध्याय २३, श्लोक २१४) में क्या अर्थ करेंगे? सुरभीका अर्थ तुलसी, शल्लकी, सर्जभेद और पर्णासभेद किया जाता है। "द्वे बले सारिवाऽऽस्फोता सुरभीनिम्बपाटला" (चरक चिकित्सित स्थान; अध्याय २३, श्लोक २४१) इस श्लोकांशमें सुरभिसे लेखकको क्या अभिप्रेत है? लोह शब्द अगर और लोहा दोनोंके लिए प्रयुक्त होता है। जलवाप्यलोह केशर पत्रप्लव चन्दनं मृणालानि (चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय ६, श्लोक १२६) में अभीष्ट द्रव्यका निर्णय कठिन है। बड़ी इलायची और जीरा दोनोंको पृथ्वीका कहते हैं। किण्वं वराह रुधिरं पृथ्वीका सैन्धवं य लेपः स्यात् (चरक चिकित्सित स्थान, अध्याय ६, श्लोक १२१) पद्यांशमें उपर्युक्त दोनों अर्थ प्रकरण संगत जान पड़ते हैं। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर टीकाओं और भाष्योंकी सहायता बिना यह जानना प्रायः असम्भव हो जाता है कि उस विशेष शब्दसे लेखकका किस औषधिको लेनेसे अभिप्राय है।

पौधेके एकसे अधिक नाम होनेमें हमारी सम्मतिमें कोई ख़राबी नहीं। परन्तु एक ही नाम अनेक विभिन्न पौधोंका होना यह बड़ी भारी त्रुटि है। इससे ठीक-ठीक औषधिको ग्रहण करनेमें प्रायः गड़बड़ी होती है।

वैज्ञानिक जगतके ताज़े समाचार

(ले०—श्री श्रीप्रकाश)

हर ने हिटलर घोषणाकी थी कि वह एक नया अस्त्र ब्रिटेनके विरुद्ध युद्धमें प्रयोग करेगा। परन्तु वह अभी तक नया अस्त्र दृष्टिमें नहीं आया है। लोगोंका अनुमान है कि वह अस्त्र 'राकेट है'। राकेट शताब्दियोंसे अग्नि-क्रीड़ा में प्रयोग आता रहा और भविष्यमें बड़ा ही भयंकर उत्पात मचावेगा। एक सेना नायक, मेजर जेम्स ई० रन्डोल्फ ने अमेरिकन आर्मी मेगेज़ीनमें लिखा है कि 'राकेट'के जिसके अन्दर १० टन बारूद होगा और जो १०० मील तक फेंकी

जा सकती है, प्रयोग होनेकी असम्भावना है।

राकेट बहुत ही हल्के होते हैं और इनके बनानेमें व्यय भी कम लगता है। गत महायुद्धके पूर्वसे ही 'राकेट' का अध्ययन किया गया था, परन्तु वह युद्धमें अधिक प्रयोगमें न आ सका। अधिक-से-अधिक ऊँचाई, जहाँ तक राकेटकी पहुँच है, ७५०० फीट है।

आजकल सभी युद्धमें विजय प्राप्त करनेके इच्छुक हैं। वर्तमान युद्ध-प्रणालीमें कोयला एक अच्छा स्थान रखता है। बहुत ही उपयोगी खनिज है। एम० और बो० ६९३ नामक औषधियाँ इसीसे बनाई जाती है। इन औषधियोंने निमोनिया जैसे भयंकर रोग पर आधिपत्य जमा लिया है है और ये सेनामें प्रयोगको जाती हैं। अन्य औषधियाँ भी कोयलेसे निर्मितकी गई हैं। कोयलेसे रेज़िन (Resin) भी तैयार किया जाने लगा है। यह वायुयानके भिन्न-भिन्न भागोंमें प्रयोग किया जाता है।

यह सिद्धान्त बहुत समयसे प्रचलित है कि युद्ध-कालमें लड़के लड़कियोंसे अधिक जन्म लेते हैं। युद्धमें मनुष्योंको अधिक रणचण्डीके ऊपर बलि होना पड़ता है, इसीलिये इस हानिको पूरा करनेके लिये लड़के अधिक जन्म लेते हैं। वैज्ञानिक इस सिद्धान्तसे सहमत नहीं हैं। वे इसे कपोल-कल्पना समझते हैं। परन्तु जन-गणनाके ऊपर दृष्टि पड़ते ही इस सिद्धान्तमें सत्यताका अनुभव होने लगता है। गत महायुद्धमें इंगलैण्ड और वेल्समें लड़कोंकी संख्या १०३९ से १०४८, हो गई। स्काटलैण्डमें १०४२ से १०५३, फ्रांसमें १०४५ से १०५४ तथा जर्मनी में १०५५ से १०६८ बढ़ गई। अन्य युद्धमें सम्मिलित राष्ट्रोंमें भी बालकोंके जन्ममें भी वृद्धि हुई। परन्तु युद्धके पश्चात् ही संख्या घटने लगी।

प्रतिदिन ही नये-नये आविष्कार सामने आ रहे हैं। वैज्ञानिकोंने एक इस प्रकारका साधन निकाला है, जो कि खतरेके समय सोते हुये मनुष्यको जगा देता है। स्टील पर भी चित्र छीले जाने लगे हैं। एक इस प्रकारका केमरा (camera) बनाया गया है जो कि एक सेकण्डमें १ लाख २० हज़ार चित्र ले सकता है। मोटर वालोंको एक एक्स-रे यन्त्र दिया गया है जिसके द्वारा मोटरके टायरके भीतरका दिग्दर्शन बिना उसे हटाये हुये कर सकते हैं। वायुयानोंके लिये एक पेन्ट (paint) तैयार किया गया है जिसके लगा लेनेसे वह १०० फीटके ऊपर दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकारको ईंटोंका निर्माण हुआ है जो कि बहुत हल्की होती हैं और पानीमें भी तैर सकती हैं। इनको सरलतासे आरीके काटा जा सकता है और इनका ग्रह-निर्माणमें भी प्रयोगमें किया जा सकता है।

लन्दनमें १२ आदमियोंने ७½ घंटोंमें ७२ फोट × १९ फीटकी एक झोपड़ी एक नई वस्तुसे बनाई है। यह वस्तु पत्थर, मिट्टी व एक खास प्रकारके लकड़ीकी बुरादेको मिलानेसे बनती है। यह झोपड़ी आगसे पूर्ण-रूपसे रक्षित है और इसमें उसी प्रकार कीलें गाड़ी जा सकती हैं जिस प्रकार कि एक लकड़ीके तख़्तेमें।

यह प्रयोग तबके लिये किया गया है जब कि लकड़ी की कमी हो जायगी और लोहेका अभाव हो जायगा। इसमें एक साधारण झोपड़ीमें लगने वाली लकड़ीके एक दसवाँ भाग और ५४ पौंड लोहेका तार लगता है। इस प्रकारकी झोपड़ियाँ इङ्गलैण्डमें सैनिकोंके रहनेके लिये बनाई जा रही हैं।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्का मुखपत्र जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ५१

मेष-कन्या, संवत् १९९७ विक्रमी

अप्रैल-सितम्बर, सन् १९४० ईसवी

प्रधान सम्पादक

डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

विशेष सम्पादक

गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस-सी० (जीवन विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस-सी० (उद्भिज-विज्ञान)
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
श्रीचरण वर्मा, एम० एस-सी (जन्तु विज्ञान)
श्रीराम निवास राय (भौतिक विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग** [**इस जिल्दका मूल्य १॥)**

विषयानुक्रमणिका

अप्रैल

मई

जून

जुलाई

अगस्त

सितम्बर

विज्ञान Reg. No. A. 372.